AYURVED MAHA SAMMELAN PATRIKA

1954 G. K. U.



आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका





प्रधान सम्पादक

कविराज पं० [illegible]चन्द्र वैद्यशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

सम्पादक

पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी. ए., बी. आई. एम. एस.

विषय-सूची

महासम्मेलन सदस्यता-शुल्क

अत्यावश्यक सूचना

यदि आपने अपना १९५४ वर्षीय सदस्यता-शुल्क ५ रु० अभी तक न भेजा हो तो कृपया तुरन्त भिजवाने की व्यवस्था कर दें। आयुर्वेदोन्नति तथा उसकी रक्षा के लिये महासम्मेलन को अनुप्राणित एवं पुष्ट करना आपका कर्त्तव्य है—आप उससे विमुख नहीं होंगे ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है किन्तु यदि किसी कारणवश आप इस वर्ष शुल्क भेजने की स्थिति में न हों तो कृपया पत्र द्वारा इस कार्यालय को अवश्य सूचित कर दें।

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, महालक्ष्मी मार्केट,
चांदनी चौक, देहली।

अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति

एवं

कार्यकारिणी समिति का सम्मिलित अधिवेशन

स्थान—३६ वाँ अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन मण्डप, कोट्टकल (दक्षिण मालाबार)।

समय—दि० ६ मार्च १९५४ दिन शनिवार, ७-३० बजे सायं से।

विचार्य विषय :—

१. गताधिवेशन कार्य-विवरण की स्वीकृति।

२. नवीन सदस्यता एवं सम्वद्धता स्वीकृति।

३. सन् १९५२-५३ के आय-व्यय एवं सन्तुलन पत्रों पर आय-व्यय निरीक्षक (आडिटर) की रिपोर्ट के प्रकाश में विचार।

विशेष : उक्त आय-व्यय पत्र एवं सन्तुलन पत्र आडिटर की रिपोर्ट सहित आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के फरवरी मासीय अंक में प्रकाशित हो रहे हैं।

४. वर्तमान वर्ष (सन् १९५३-५४) के लिये अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के आनुमानिक आय-व्यय पत्रों (बजट) के निर्माण पर विचार एवं उनकी स्वीकृति।

विशेष : स्थायी समिति के विचार-विमर्श के अनन्तर यह बजट अधिवेशन में ही बनाया जायेगा और स्वीकृति के लिये प्रस्तुत किया जायेगा।

५. अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की नियमावलि संशोधन पर विचार।

विशेष : नियमावलि में विभिन्न संशोधनों के विषय पर कार्यालय में बहुत से सुझाव एवं प्रस्ताव प्राप्त हैं। अधिवेशन में उन सब पर विचार-विमर्श करने के अनन्तर संशोधित नियमावलि का प्रारूप तैयार कराया जायगा और उसे अन्तिम स्वीकृति के लिये विषय निर्वाचिनी समिति एवं महासम्मेलन के खुले अधिवेशनों में उपस्थित किया जायगा।

६. महासम्मेलन में उपस्थित किये जाने के लिये आये हुए प्रस्तावों पर विचार।

७. बिहार प्रान्त के वैद्य महानुभावों के दो दल बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के १९ वें वार्षिक अधिवेशन का पृथक्-पृथक् मुजफ्फरपुर एवं भागलपुर में आयोजन करने जा रहे हैं, इस स्थिति पर विचार।

८. श्री बनवारीलाल आयुर्वेद विद्यालय, देहली को विद्यापीठ के आधीन लेने के सम्बन्ध में स्थानिक संघ की सम्मति सहित तदर्थ समिति की रिपोर्ट पर विचार ।

विशेष : यह विषय विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति ने महासम्मेलन स्थायी समिति को निर्णयार्थ सौंपा है ।

९. अन्यान्य विषय अधिवेशनाध्यक्ष की अनुमति से ।

सभी सदस्य महानुभावों से सानुरोध प्रार्थना है कि अधिवेशन में समय पर पधार कर अनुग्रहीत करें । यदि किसी अनिवार्य कारणवश उपस्थित न हो सकें तो अपनी अमूल्य सम्मति निम्नांकित पते पर शीघ्र ही भेजने की अनुकम्पा करें ।

निवेदक
वामनराव दीनानाथ वैद्य
प्रधानमन्त्री,
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन ।

प्रेषक :
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय,
महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली–६.
ता० १६ फरवरी, १९५४.

निखिल भारतवर्षीयायुर्वेद विद्यापीठकार्यसमितेः
१९५४ तम वर्षीयं द्वितीयाधिवेशनम्

स्थानम्—३९ वां अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलनमण्डपम्, कोट्टकल (दक्षिण मालावार)।

समयः—ता० ६ मार्च १९५४ शनिवासरे रात्रौ सार्धनववादनतः।

विचार्य विषयाः—

१. गताधिवेशनेतिवृत्तस्वीकृतिः।

२. नवीनसंस्थानां सम्बद्धतास्वीकृतिविषये विचारः।

३. सन् १९५२-१९५३ तम वर्षीयायव्ययसंतुलनपत्रयोः तथा चायव्ययनिरीक्षकमहोदयस्येतिवृत्तविषये विचारः।

विशेषः—एते पत्रे, इतिवृत्तश्च फरवरीमासस्यायुर्वेदमहासम्मेलनपत्रिकायां प्रकाशिते स्तः।

४. वर्तमानवत्सरार्थं (१९५३-१९५४) नि० भा० आयुर्वेदविद्यापीठकार्यालयस्य "नि० भा० आयुर्वेद विश्वविद्यालय, ऋषिकेश" इत्यस्य चानुमानिकायव्ययपत्राणां निर्माणविषये विचारः तेषां स्वीकृतिश्च।

विशेषः—कार्यकारिणीसमितेः विचारविमर्शानन्तरं तेषां निर्माणं भविष्यति। स्वीकृत्यर्थञ्च महासम्मेलने समुपस्थापयिष्यन्ते।

५. अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलनस्य स्थायिसमितेः एवं विद्यापीठस्य कार्यकारिणीसमितेः "वंगलौर" इत्यस्मिन् स्थाने सम्पन्ने सम्मिलिताधिवेशने प्रस्तावसंख्या २३ (प्रस्तावोऽयम् १९५३ वर्षीयायाः मईमासस्यायुर्वेदमहासम्मेलनपत्रिकायाः पृष्ठ २९२ तः २९९ पर्यन्तं प्रकाशितोऽस्ति) इत्यस्यानुसारेण बावा कालीकमलीवाला नि० भा० आयुर्वेदविद्यापीठविश्वविद्यालयस्य निर्माणार्थमावश्यक कार्यक्रमनिरधारणविषये विचारः तद्विषयकानामावश्यकप्रस्तावाना च स्वीकृतिः।

विशेषः—वंगलौराधिवेशनस्य प्रस्तावानुसारेणोक्तविद्यालयस्य निर्माणार्थं निश्चितयोजनायाः साफल्यविषये सर्वेषु वैधकार्यक्रमेषु विचारविमर्शं भविष्यति। तथा च विभिन्नप्रस्ताव रूपेण तस्याः कार्यक्रमं निश्चितं भविष्यति। अस्मिन् विषये च निम्नांकिताः प्रस्तावाः सम्प्रति समुपस्थाप्यन्ते।

(क) नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठकार्यालयस्य ऋषिकेशे (उत्तर प्रदेश) परिवर्तनविषये विचारः।

(ख) आयुर्वेदविश्वविद्यालयस्य सञ्चालनार्थं महासम्मेलनविद्यापीठाभ्यामष्टसंख्यात्मकानां सदस्यानां निर्वाचनविषये विचारः।

(ग) "अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन", "नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ", "श्री बावा कालीकमलीवाला क्षेत्र" तथा च "आयुर्वेद सेवा समिति" इत्येतैः संगठितायुर्वेदविश्वविद्या-

लयस्य संचालनसमितेः व्यवस्थाविषये, कार्यसंचालनप्रबन्धविषये, नियमोपनियमानां निर्माण विषये च विचारः।

(घ) आयुर्वेदविश्वविद्यालयस्य नियमावलिनिर्माणविषये विचारः।

(ङ) आयुर्वेदविश्वविद्यालयार्थं धनसंग्रहयोजनाविषये विचारः।

(च) आयुर्वेदविश्वविद्यालयीयकोषस्य संगठनार्थं निम्नांकिते प्रस्तावे विचारः—

प्रस्तावः—"निश्चितं यत् बाबा कालीकमलीवाला नि० भा० आयुर्वेदविद्यापीठविश्वविद्यालयस्य स्थायीकोषार्थं आयुर्वेदसेवासमितेः यत् द्रव्यं, पञ्चनवतिसहस्राणि "बाबा कालीकमलीवाला" इत्यस्मिन् ट्रस्टे तथा लक्षात्मकं स्वकीये पार्श्वेऽस्ति तत्, तथा च यत् लक्षात्मकं विद्यापीठस्य पार्श्वेऽस्ति तच्च मेलयित्वा त्रिलक्षात्मकं द्रव्यं कस्मिंश्चित् कोषागारे (बैंक) अथवान्यस्मिन् कस्मिंश्चित् सुरक्षितस्थाने निवेश्यं तथा च तस्य सदुपयोगार्थं "श्री बाबा काली कमलीवाला ट्रस्ट" "आयुर्वेदसेवासमिति" "अ० भा० आयुर्वेदमहासम्मेलन तथा च नि० भा० आयुर्वेदविद्यापीठ द्वारा नियुक्तसमित्यै विनियोग करणस्याधिकारः प्रदेयः स्यात्।"

६. नि०भा० आयुर्वेदविद्यापीठकार्यालयस्योपरि देहलीवास्तव्यानां श्री जगदीशप्रसादमहोदयाना मारोपे तद्विषये च विद्यापीठमन्त्रिणरितिवृत्तविषये तथा च तस्मिन् विषये जांचसमितेः सदस्यानामभिमते विचारः।

७. नि० भा० आयुर्वेदविद्यापीठस्य नियमावलिसंशोधनविषये विचारः।

विशेषः—नियमावल्याः संशोधनविषये विभिन्नाः प्रस्तावाः कार्यालये प्राप्ताः सन्ति। अधिवेशने च तेषु सर्वेषु विचारविमर्शो भविष्यति तदनन्तरंच नियमावल्याः प्रागरूप निर्माय स्वीकृत्यर्थं विषयनिर्वाचनसमित्यां शिक्षासम्मेलने वा समुपस्थापयिष्यते।

८. शिक्षासम्मेलने प्रस्तुतार्थं प्राप्तेषु प्रस्तावेषु विचारः।

९. जोधपुरकेन्द्रप्रबन्धविषये विचारः।

१०. नि० भा० आयुर्वेदविद्यापीठस्य नियमावल्याः "नियमसंख्या ६ धारा ३" इत्यस्याधीनासु-सम्मानितसंस्थासु "गवर्नमेण्ट आयुर्वेदकालेज, रायपुर" (मध्य प्रदेश) इत्यस्य समावेश-विषये विचारः।

११ अन्यान्यविषयाः सम्मेलनाध्यक्षानुमत्यैव प्रस्तुप्ताः भविष्यन्ति।

सर्वे सदस्यमहानुभावाः प्रार्थ्यन्ते यदधिवेशनमिममलंकुर्वन्तु। उपस्थातुमशक्तैस्तु स्व-सम्मती विद्यापीठकार्यालये प्रहेया।

प्रेषकः—

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यालय,

महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली-६

ता० १९ फरवरी, १९५४.

निवेदकः

श्रीदत्त शर्मा

मन्त्री

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ।

।। श्री धन्वन्तरये नमः ।।

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ।।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक—कविराज पं० नानकचंद्र, वैद्य शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य ।
सम्पादक—पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४० अंक २	दिल्ली, माघ २०१०, फरवरी १९५४	वार्षिक ५) एक प्रति ।।)

सम्पादकीय

राजकुमारी अमृतकौर और आयुर्वेद

हिन्दु विश्वविद्यालय, बनारस, के आयुर्वेदिक कालेज के वार्षिक समारोह दिवस के समय व्यक्त किये गये राजकुमारी अमृतकौर के विचारों को पाठकों ने समाचार-पत्रों में पढ़ा होगा । अपने भाषण में जहां एक ओर उन्होंने आयुर्वेद में शोध-कार्य को प्रगति देने की बात कही है वहां दूसरी ओर उसे अमान्य ठहराते हुए कहा है—"संसार के सभी सभ्य राष्ट्रों ने आधुनिक चिकित्सा को अपने-अपने राष्ट्र की स्वास्थ्योन्नति का साधन मान लिया है । इनमें नवजात देश मिश्र एवं चीन भी हैं जिनकी प्राचीन संस्कृति सभ्यता भारत से मिलती जुलती है—तब यदि हम अपने देश के लिये कोई और मार्गावलम्बन करें तो यह अक्षम्य भूल होगी । इसी सिलसिले में आगे स्वास्थ्य-मन्त्रिणी ने कहा—"आधुनिक चिकित्सा की इतनी अधिक प्रगति हो गई है और मानव कल्याणार्थ इसे आज इतने साधन प्राप्त हैं कि आयुर्वेद या अन्य किसी चिकित्सा के द्वारा इसकी सहायता का प्रश्न ही नहीं उठता ।

आयुर्वेद समर्थकों को राजकुमारी के ये विचार बड़े दुःखदायी प्रतीत होंगे । क्योंकि इससे यह स्पष्ट है कि आयुर्वेद को स्वतन्त्र चिकित्सा पद्धति के रूप में सहज ही सरकारी

मान्यता प्राप्त नहीं हो सकती। राजकुमारी के आयुर्वेद विरोधी विचार सर्व-विदित ही हैं किन्तु इस स्पष्टोक्ति के लिये हम राजकुमारी का आभार मानते हैं। वैद्य समाज को इससे कुपित अथवा निराश नहीं होना चाहिये प्रत्युत इसे एक सामयिक चेतावनी मानकर आयुर्वेदोन्नति के कार्यों में जुट जाना चाहिये।

आयुर्वेद शाश्वत है, अमर है। आधुनिक चिकित्सा के समान अस्थायी सिद्धांतों पर उसका आधार नहीं। वे तो सत्य के समान अटल हैं। राजकुमारी चाहें तो भी आयुर्वेद को मिटा नहीं सकतीं। उनके पास सत्ता का बल है तो हमारे पास सत्य का। अतः हम भयभीत नहीं है।

वैद्य बन्धुओं से हमारा विनम्र निवेदन है कि वे क्षुद्र स्वार्थों, व्यर्थ के वाद-विवादों, द्वेष और वैमनस्य को छोड़कर अपने संगठन को दृढ़ करें और प्रत्येक सम्भव उपाय से इस कठिन परिस्थिति का सामना करने के लिये प्रस्तुत हो जांय।

केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् का षडयंत्र

गत ८, ९, १० फरवरी को अपने राजकोट अधिवेशन में केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् ने आयुर्वेद शिक्षण के लिये ५ वर्ष का पाठ्यक्रम तथा प्रवेशयोग्यता F. Sc. साईन्स में इंटरमीडियेट स्वीकार की है। परिषद् के इस निश्चय को यदि कार्यरूप में परिणत किया गया तो यह आयुर्वेद के लिये घातक सिद्ध होगा। F. Sc. प्रवेश योग्यता को स्वीकार किया जाना तो एक ऐसा कुचक्र है कि इससे आयुर्वेद का जो व्यापक प्रचार आज हो रहा है वह समाप्त होकर आयुर्वेद पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में भारी कमी आ जायेगी। आयुर्वेद को सर्वदा के लिये मिटाने के इस षडयंत्र से वैद्य समाज को समय रहते ही चेतना चाहिये।

स्वास्थ्य परिषद् यदि सच्चे अर्थों में आयुर्वेद की समुचित शिक्षा-व्यवस्था करने को उत्सुक थी तो उसे बम्बई राज्य द्वारा स्वीकृत ३१/२ वर्षीय शुद्धायुर्वेदिक पाठ्यक्रम को ही मान्यता देनी थी। महासम्मेलनाध्यक्ष श्री पं० शिवशर्मा जी ने इस आशय के तार भी १६ प्रमुख राज्यों के स्वास्थ्य-सचिवों को भेजे थे, किन्तु उसकी ओर कोई ध्यान दिया गया प्रतीत नहीं पड़ता, यह देश का दुर्भाग्य है। वैद्य समाज को इसके प्रतिकार का शीघ्र ही प्रयत्न करना चाहिये।

३९ वां वैद्य सम्मेलन, कोट्टकल

सदस्य महानुभावों को यह विदित ही है कि केरल आयुर्वेदिक कांग्रेस के निमंत्रण पर, ३९ वां अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, कोट्टकल (दक्षिण मालाबार) में आगामी ७, ८ तथा ९ मार्च को वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी की अध्यक्षता में हो रहा है। स्मरण रहे प्रथम यह अधिवेशन जनवरी के प्रथम सप्ताह में होने वाला था किन्तु दुर्भाग्यवश वैद्य श्री पी० एम० वारियर के दुःखद अवसान के कारण स्थगित कर देना पड़ा था।

इस अवसर पर विशेषतया उत्तर भारतवासी वैद्यबन्धुओं से हमारा यह निवेदन है कि वे स्थान की दूरी, यात्रा का कष्ट एवं व्यय की चिन्ता न करते हुए सम्मेलन में अधिक से अधिक संख्या में भाग लें और अपने आयुर्वेद-प्रेम, कर्त्तव्य-परायणता तथा त्याग का समुचित परिचय दें। आशा है दक्षिण भारतीय वैद्य भी बड़ी से बड़ी संख्या में भाग लेंगे।

हमारे उत्तर भारतवासी बन्धुओं के लिये तो यह अवसर इस रूप में भी उपयोगी है कि वे कोट्टकल से रामेश्वरम् और मदुराई के तीर्थ स्थानों को देख सकेंगे और भारतभूमि की अन्तिम सीमा पर स्थित कन्याकुमारी के रमणीक दृश्यों का आनन्द ले सकेंगे। मालाबार स्थित गुरुवयूर का प्रसिद्ध मन्दिर भी भारत के प्रमुख तीर्थ स्थानों में से एक है।

वर्ष भर में केवल एक वार ही ऐसा अवसर आता है कि देश के प्रत्येक कोने से वैद्यबन्धु एकत्रित होकर आयुर्वेद सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करते हैं और उनके समाधान के उपायों को निश्चित कर आगामी वर्ष के लिये कार्यपद्धति निर्धारित करते हैं। आयुर्वेद के समक्ष आज भी अनेक जटिल समस्यायें हैं जिनका हल तुरन्त किया जाना आवश्यक है। यह परस्पर विचार विनिमय तथा परामर्श से ही किया जा सकता है। हमें विश्वास है वैद्य-बन्धु अपने कर्त्तव्य को समझेंगे और सम्मेलन में भाग लेकर उसे पूर्णतया सफल बनावेंगे।

—नानकचन्द्र वैद्य शास्त्री

३६ वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, कोट्टकल में पहुंचने का सुगम रेल-मार्ग

आगामी ७, ८ तथा ९ मार्च को कोट्टकल (दक्षिण मालाबार) में अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का ३९ वां अधिवेशन हो रहा है। इसमें भाग लेने के इच्छुक महानुभावों की सुविधार्थ हम विभिन्न स्थानों से कोट्टकल पहुंचने के सुगम रेल-मार्ग का निर्देश कर रहे हैं। आशा है यात्रियों को इससे सुगमता रहेगी।

जम्मू काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पेप्सु तथा पंजाब के वैद्यबन्धु देहली आयें। जोधपुर जयपुर, राजस्थान के बांदीकुई होकर आगरा या देहली आयें। बनारस, लखनऊ, प्रयाग आदि के इटारसी आयें। पटना के इटारसी या खरगपुर जावें तथा उड़ीसा के खरगपुर।

देहली से मद्रास

देहली होकर जाने वाले वैद्यबन्धु ग्रांट ट्रंक एक्स्प्रैस से सायं ६-२५ पर सवार होकर तीसरे दिन सायंकाल ५-४० पर मद्रास पहुंचेंगे। ग्रांट ट्रंक एक्स्प्रैस मथुरा, आगरा, झांसी बीना, भोपाल, इटारसी, नागपुर, बलाडशाह, काजीपेट, डोर्नाकल, बेजवाडा होती हुई मद्रास पहुंचती है। अतः इन स्टेशनों या समीप के स्थानों के वैद्यों के लिये भी यही गाड़ी उपयुक्त रहेगी।

कलकत्ता से जाने वाले महानुभाव मद्रास मेल से मद्रास पहुंचेंगे।

मद्रास से तिरूर

मद्रास पहुंचने के उपरान्त वहां से तिरूर जाना होगा जिसके लिये मंगलोर एक्स्प्रैस उपयुक्त है। यह गाड़ी सायं ७-३० पर मद्रास से प्रस्थान कर अर्कोनम, कठपेडी, जालेरपेट, सलेम, इरोड़, कोयम्बेटूर, शोरानूर होते हुए दूसरे दिन प्रातः १०-१९ पर तिरूर पहुंचेगी।

बम्बई से जाने वालों को पूना, बैंगलोर, जालेरपेट होते हुए तिरूर पहुंचना होगा।

तिरूर से कोट्टकल

कोट्टकल तिरूर से ९ मील की दूरी पर स्थित है जहां रेल-मार्ग नहीं है। अतः तिरूर से कोट्टकल बसों द्वारा पहुंचना होगा। तिरूर में स्वागत-समिति के स्वयं सेवकों का प्रबन्ध रहेगा।

३९ वां अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, कोट्टकल

७ मार्च से ९ मार्च १९५४ तक

कार्यक्रम

शनिवार, ६ मार्च

सायं ७.३०	अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन स्थायी समिति का अधिवेशन।
„ ६ बजे	नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति का अधिवेशन।

रविवार, ७ मार्च

सायं ३ बजें	मंगलाचरण
,, ३.१५ से ३.३० तक	स्वागताध्यक्ष (आर्य वैद्यन श्री पी० वी० ईश्वरा वारियार) का स्वागत भाषण।
,, ३.३० से ३.४० तक	अध्यक्ष का निर्वाचन।
,, ३.४० से ५.१० तक	अध्यक्षीय भाषण, वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा द्वारा।
,, ५.१० से ५.३० तक	स्व पी० माधव वारियार के चित्र का उद्घाटन, श्री के० पी० केशवा मेनन द्वारा।
,, ५.३० से ६.१० तक	चाय अथवा काफी के लिये अवकाश।
,, ६.१० से ६.३५ तक	प्रदर्शनी का उद्घाटन (डा० पार्थनारायण पण्डित द्वारा)।
,, ६.३५ से ७.१५ तक	प्रदर्शनी का अवलोकन।
,, ७.१५ से ८.२५ तक	सायंकालीन भोजन के लिये अवकाश।
,, ८.३० बजे	अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन विषय निर्वाचिनी समिति का अधिवेशन।

सोमवार, ८ मार्च

प्रातः ८ बजे	मंगलाचरण
,, ८.५ से ८.२० तक	स्वागताध्यक्ष शिक्षा सम्मेलन (श्री पी० के० रमणि मेनन, प्रिंसिपल, आर्य वैद्यशाला, कोट्टकल) का भाषण।
,, ८.२० से ८.४० तक	उद्घाटन भाषण, नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ।
,, ८.४० से ८.४५ तक	विद्यापीठाध्यक्ष का निर्वाचन।
,, ८.४५ से ९.४५ तक	विद्यापीठाध्यक्ष (राजवैद्य श्री पं० नन्दकिशोर जी) का भाषण।
,, १० से १२ बजे तक	नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ विषय निर्वाचिनी समिति का अधिवेशन।
,, १२ से २ बजे सायं तक	भोजनावकाश।
सायं २ से ४ बजे तक	विद्यापीठ का खुला अधिवेशन।
,, ४ से ७ बजे तक	महासम्मेलन का खुला अधिवेशन।
,, ७ से ८.३० तक	भोजनावकाश।
,, ८.३० बजे	अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन विषय निर्वाचिनी समिति का अधिवेशन।

मंगलवार, ९ मार्च

प्रातः ८ बजे	मंगलाचरण
,, ८.५ से ८.४५ तक	मालाबार चिकित्सा सम्प्रदाय परिषद् का उद्घाटन (श्री बी० एन० नायर, वातवन्नूर द्वारा)।

प्रातः ८.४५ से ८.५० तक	सभापति निर्वाचन।
,, ८.५० से ९.५० तक	सभापति (ब्रह्म श्री व्यासकरा एन० एस० मूस) का भाषण।
,, ९.५० से १२ बजे तक	मालाबार चिकित्सा प्रणाली पर विचार-विमर्श।
,, १२ से २ बजे सायं तक	भोजनावकाश।
सायं २ बजे	मंगलाचरण।
,, २.५ से २.४५ तक	दार्शनिक परिषद् का उद्घाटन (श्री एम० एन० केशव पिल्लाई, बी० ए०, ए० एम० एस०, डायरेक्टर, देशी चिकित्सा, त्रिवेन्द्रम द्वारा)।
,, २.४५ से २.५० तक	सभापति का निर्वाचन।
,, २.५० से ३.४० तक	सभापति (पं० नारायण आयंगर, मदुरा) का भाषण।
,, ३.४० से ५.१५ तक	विचार-विमर्श।
,, ५.१५ से ५.४५ तक	सभापति के अन्तिम विचार।
,, ५.४५ से ६ बजे तक	चाय इत्यादि के लिये अवकाश।
,, ६ बजे से ६.३० तक	अध्यक्ष, अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, अन्तिम प्रवचन (स्वस्ति वाचन)।
,, ६.३० बजे	आभार-प्रदर्शन।

स्वर्ण जयन्ति उत्सव, आर्य वैद्य शाला, कोट्टकल

रविवार ७ मार्च, १९५४

कार्यक्रम (प्रातः ८ बजे से सायंकाल १ बजे तक)

प्रातः ८ बजे	प्रार्थना एवं ध्वजावरोहण।
,, ९ बजे	स्व० वैद्यरत्नम् पी० एस० वारियार की मूर्ति का उद्घाटन (स्थान—आर्य वैद्य कालेज तथा आतुरालय)।
,, १० बजे	सार्वजनिक सभा (कैलाश मन्दिरम् के सामने पण्डाल में)।

स्वागत भाषण (२० मिनट), मैनेजिंग ट्रस्टी, आर्य वैद्यशाला द्वारा।

उद्घाटन (अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलनाधिवेशन के उद्घाटन सहित) डा० गुरु स्वामी मुद्दालियर द्वारा।

स्वर्ण जयन्ति नर्सिंग होम का उद्घाटन।

अध्यक्षीय भाषण (वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी द्वारा)।

आर्य वैद्यशाला का इतिवृत्त—तथा सन्देश वाचन।

भाषण—(१) श्री पण्डिता राजन अत्तूर कृष्णा पिशारोदी (संस्कृत में)।
(२) श्री पी० रमन मेनन (मलयालम में)

अध्यक्ष का अन्तिम प्रवचन।

आभार-प्रदर्शन।

महासम्मेलन की प्रचलित नियमावलि

सन् १९५२ में नियमावलि के विषय पर संस्था में जो मतभेद खड़ा हो गया था उसके फलस्वरूप महासम्मेलन के कुछ सदस्य महानुभावों, विशेषकर जो ३८ वें आयुर्वेद महासम्मेलन, इन्दौर, में उपस्थित नहीं थे, का महासम्मेलन की प्रचलित नियमावलि के विषय पर ज्ञान कुछ अधूरा सा प्रतीत पड़ता है। उनकी सूचनार्थ निवेदन है कि इस समय महासम्मेलन नियमावलि सन् १९४७ संस्करण उन संशोधनों के साथ प्रचलित है जो ३८ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, इन्दौर, के अवसर पर उक्त नियमावलि में किये गये थे। ये संशोधन आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के नवम्बर १९५२ के अंक में पृष्ठ ५११, ५१२ तथा ५१३ पर प्रकाशित किये जा चुके हैं, परन्तु सर्वसाधारण की सुविधार्थ नीचे पुनः प्रकाशित किये जाते हैं।

वामनराव दीनानाथ वैद्य
प्रधानमंत्री,
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन।

३८ वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, इन्दौर में स्वीकृत नियमावलि संशोधन सम्बन्धी प्रस्ताव सं० २७

निश्चय हुआ कि नियमावलि में तदर्थ उपसमिति द्वारा प्रस्तावित एवं विषय-निर्वाचिनी समिति द्वारा स्वीकृत सभी भाषा संशोधन सम्मानित किये जायें, तथा विशेष नियमों में निम्न प्रकार परिवर्तन स्वीकार एवं लागू किये जायं:—

१. संस्था का नाम:—निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन के स्थान पर "अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन" आल इंडिया आयुर्वेदिक कांग्रेस (All India Ayurvedic Congress) रखा जाय।

२. नियमावलि संशोधन:—अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन के नियमों में संशोधन, परिवर्तन, परिवर्द्धन, ह्रस्वीकरण, आदि की स्वीकृति तथा लागू करने का अधिकार केवल महासम्मेलन को ही रहे।

३. "महामण्डल" यह शब्द हटा दिया जाय तथा इसे स्थायी-समिति का पर्यायवाचक न माना जाय।

४. "विशिष्ट सदस्य" की परिभाषा में महासम्मेलन के भूतपूर्व सभापतियों के साथ भू. पू. प्रधानमंत्रियों को भी समाविष्ट किया जाय।

५. प्रतिनिधि सदस्यों की श्रेणी हटा दी जाय।

६. संस्था सम्बद्धता:—महासम्मेलन से केवल प्रादेशिक अर्थात् प्रांतीय एवं राजकीय वैद्य सम्मेलन ही सम्बद्ध किए जायं किन्तु जिन प्रदेशों में ऐसे संगठन विद्यमान न हों वहां की साधारण वैद्य सभायें भी महासम्मेलन से सम्बद्ध की जायं।

७. सम्बद्धता शुल्क:—विभिन्न सम्बद्धता शुल्क निम्न प्रकार रखे जायं—

(क) प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन......२५ रु० वार्षिक।

(ख) साधारण वैद्य सभायें......१० रु० वार्षिक।

(ग) विद्यापीठ सम्बद्ध संस्थायें, अर्थात् विद्यालय......१५ रु० वार्षिक।

८. पदाधिकारी निर्वाचन में भारतवर्ष के किसी भी स्थान से कोई पदाधिकारी चुना जा सकेगा तथा जिस स्थान पर संस्था का प्रधान कार्यालय होगा वहां के लिये पदाधिकारियों की कोई संख्या निश्चित नहीं होगी।

९. (क) स्थायी समिति का अधिवेशन सभापति अथवा सभापति की अनुमति से प्रधान मंत्री जब उचित समझेंगे बुला सकेंगे।

(ख) स्थायी समिति के ५० सदस्य प्रार्थना-पत्र देकर स्थायी-समिति के असाधारण अधिवेशन की माँग कर सकेंगे।

(ग) स्थायी समिति के साधारण अथवा असाधारण अधिवेशन के स्थान का निश्चय सभापति के आदेश से होगा।

(घ) वर्ष में कम से कम स्थायी समिति की दो सभायें होनी आवश्यक होंगी।

१०. संस्था का प्रधान कार्यालय:—संस्था का प्रधान कार्यालय स्थायी रूप से देहली में रहेगा।

विशेष:—नियमावलि के शेष नियम अथवा उनका कोई अंश यदि उपर्युक्त संशोधनों के प्रतिकूल बैठता हो तो उन्हें ऐसे संशोधित किया जाना स्वीकार हुआ कि वे इन संशोधनों के अनुकूल बैठें।

प्रस्तावक—श्री बद्रीविशाल त्रिपाठी, कानपुर।
अनुमोदक—श्री ब्रह्मदत्त, भुसावल।

सर्व-सम्मति से स्वीकृत।

शुद्ध आयुर्वेद की समस्या

लें०—भिषगाचार्य श्री भी० वी० डेग्वेकर, जबलपुर

(उपर्युक्त शीर्षक लेख-माला में हमने सर्व-प्रथम लेख गत दिसम्बर मासीय पत्रिका में क० श्री कृष्णपद् भट्टाचार्य आयुर्वेद सरस्वती, झांसी का प्रकाशित किया था। इसी विषय पर दूसरा लेख आयुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वान् भिषगाचार्य श्री भी० वी० डेग्वेकर जी का प्रकाशित किया जा रहा है। श्री डेग्वेकर जी ने गत ता० १६-२० दिसम्बर को बम्बई में "आयुर्वेद-विद्वत्परिषद्" के विशेषाधिवेशन की अध्यक्षता की थी जिसका कार्य मुख्यतः शुद्धायुर्वैदिक पाठ्यक्रम की समस्या पर विचार करना था। अध्यक्षपद से श्री डेग्वेकर जी ने जो भाषण दिया था वह बहुत ही गम्भीर और विचारणीय होने से इसी पत्रिका में अन्यत्र प्रकाशित है—पाठक इस लेख को पढ़ने के अनन्तर उसे भी पढ़ लें और गम्भीरता-पूर्वक मनन कर अपने विचार पत्रिका में प्रकाशनार्थ अवश्य भेजें जिससे विषय पर सम्यक्-रूपेण प्रकाश पड़ सके।
—सम्पादक)

पत्रिका के दिसम्बर अंक में 'शुद्ध आयुर्वेद की समस्या' के सम्बन्ध में आचार्य कविराज श्री कृष्णपद भट्टाचार्य जी—आयुर्वेद सरस्वती, झांसी आयुर्वैदिक यूनिवर्सिटी—का लेख प्रसिद्ध हुआ है। उसमें जो प्रश्न उपस्थित किये गये हैं उन पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है।

मिश्र शिक्षण के दुष्परिणाम—

शुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम स्वीकार करने में अनेक समस्याएं और कठिनाइयां, जिस प्रकार श्री भट्टाचार्य जी के समक्ष उपस्थित हुई हैं, उसी प्रकार वे शुद्धायुर्वेद के प्रवर्तकों के सन्मुख भी उपस्थित हैं। परन्तु साथ ही कविराज जी इस बात का भी अनुभव प्राप्त करते होंगे कि जो मिश्र शिक्षण आज दिया जा रहा है उसी का प्रचार यदि चालू रहा तो पांच पचीस वर्ष में आयुर्वेद शास्त्र नामशेष हो जायगा। अतएव शुद्ध आयुर्वेद का पठन-पाठन प्राचीन परंपरा के अनुसार फिर प्रारम्भ होना नितांत आवश्यक है, एक बार इस 'आवश्यकता को मान्य करने पर 'Where there is a will, there is a way' इस सिद्धांत के अनुसार मार्ग भी अवश्य दिखने लगेगा।

समिति की योजना का उद्देश—

इसी मार्ग को ढूंढने के लिये बम्बई सरकार ने एक कमैटी नियुक्त की है जिसे इस दिशा में प्रयत्न करने का आदेश दिया है।

चिकित्सा कार्य सम्पूर्णतया सम्पादन करना यह तो इस पाठ्यक्रम का अन्तिम उद्देश अवश्य ही है। परन्तु प्रारम्भ से ही हमें वह साध्य नहीं हो सकता। अतएव जो जो विषय आज हमें पूर्णतया साध्य हो सकते हैं उन्हें सर्व आयुर्वेदीय तज्ञों की एकत्रित विचारधारा में संकलित करके एक पद्धति से पढ़ाना, तथा पठन-पाठन समग्र भारत देश में एक सा होना यही आवश्यक है।

प्रथम काय चिकित्सक निर्माण करना—

आधुनिक चिकित्सा पद्धति में भी अनेक प्रकार के विशेषज्ञ रहा करते हैं। आंख, कान, नाक आदि की चिकित्सा सर्वसाधारण चिकित्सक नहीं करता। मल, मूत्र, श्लेष्मा, रक्त आदि का परीक्षण विशेषज्ञ करते हैं। शस्त्र-चिकित्सा सब ही डाक्टर नहीं करते। इसी प्रकार प्रारम्भ में कुछ वर्ष तक इस शुद्ध पाठ्यक्रम से उत्तीर्ण चिकित्सक प्रधानतया कायचिकित्सक ही रहेंगे। परन्तु आयुर्वेद में कायचिकित्सा का इतना भंडार भरा हुआ है कि अभी हम उसके अष्टमांश का प्रयोग भी नहीं कर रहे हैं। वस्ति और सिराव्यध जिन दोनों का महत्व—

'तस्माच्चिकित्सार्ध मिति ब्रुवंति। कृत्स्नां चिकित्सामपि बस्तिमेके'
'सिराव्यधश्चिकित्सार्धं संपूर्णं वा चिकित्सितं। च० उ०
शल्यतन्त्रेस्मृतो यद्वद्बस्तिः कायचिकित्सिते। अ० सं० सू० ३६

हमारे ग्रंथकार 'ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष नहिकश्चित् श्रुणोतिमाम्' इस स्वर में कह रहे हैं, उन आप्त वाक्यों की ओर हमारा ध्यान भी नहीं जाता। इस परिस्थिति को बदल देना ही शुद्धायुर्वेदीय पाठ्यक्रम का प्रधान उद्देश है। प्रत्येक गुरुवैद्य इन दोनों उपक्रमों को केवल दो मास के प्रात्यक्षिक शिक्षण से साध्य कर सकता है।

बस्ति का महत्व—

बस्ति के लगभग ६०० प्रकार ग्रंथों में वर्णित हैं। अनुभव प्राप्त, केवल ४० वैद्य ही, प्रान्त में विशेष प्रयोग करके फल प्रसिद्ध करें तो कितना भारी कार्य होगा। आजकल इस देश में, पेट में दाहिनी ओर थोड़ा भी दर्द किसी को कुछ दिन होता रहे, उसे उंडुकपुच्छदाह (Appendicites) बताया जाकर आपरेशन किया जाता है। किन्तु सैंकडा ८० से अधिक शस्त्रक्रियाएं निरर्थक होती हैं। कारण उस विकार का अस्तित्व भी नहीं होता। ऐसे विकार बस्ति प्रयोग से अच्छे हो सकते हैं।

आज की प्रगति से हार या जीत मानना यह इस पाठ्यक्रम का उद्देश नहीं है। किन्तु प्राचीन ग्रंथों में जो उपक्रम, दावे के साथ रोग निवारण करने वाले प्रतिज्ञा से कहे जाते हैं, उनका प्रत्यक्षानुभव लेना यही मूल उद्देश है। जिन वैद्यों को केवल इन्हीं उपक्रमों का प्रत्यक्ष ज्ञान कराया जायगा वे उन्हीं का उपयोग करेंगे, एवं शास्त्र की उन्नति होगी।

१६५० के पश्चात् निर्मित ग्रंथ—

१९५० के पश्चात् जो ग्रंथ निर्माण हुए हैं उनमें यदि आयुर्वेदीय मूल तत्वों के आधार पर विवेचन किया हुआ हो, तथा उनमें प्रयोजित संज्ञाएं सुश्रुतादि ग्रंथों में नियोजित संज्ञाओं से विपरीत न हो, तो उन्हें हम मान्य कर सकेंगे। उदाहरणार्थ सुश्रुत ने 'सिरावर्ण विभक्ति शारीर' नाम का अध्याय अलग से वर्णन करके उसमें रोहिणी (शुद्ध रक्तवह नलिका को) नीला (अशुद्ध रक्तवह नलिका को) गौरी (श्वेत रक्त वह Lymphatic) को तथा अरुणा (automatic nervous system) को विशिष्ट संज्ञाएं दी हुई हैं। इसी नामकरण का स्वीकार करते हुए जो विस्तार करने वाले ग्रंथ प्रसिद्ध होंगे उनमें का विस्तार आधुनिक भी हो तो वह मान्य हो सकेगा। परन्तु विपरीत हो तो इस पाठ्यक्रम को मान्य न हो सकेगा। अमरकोष की 'नाडी तु धमनीसिरा' इन पर्याय वाचक शब्दों का कहीं कहीं प्रयोग किया गया है। परन्तु 'धमनीव्याकरण शारीर' 'सिरावर्ण विभक्ति शारीर' 'कलाप्रकरण' इत्यादि सुश्रुतोक्त स्पष्ट भेद मान्य करते हुए, जो आधुनिक ग्रंथ भी लिखे जायंगे उन्हें इस पाठ्यक्रम में अन्तर्भूत करने में प्रत्यवाय नहीं हो सकेगा।

आयुर्वेदीय चिकित्सा के लिये आधुनिक शारीर क्रिया विज्ञान की निरर्थकता—

आयुर्वेदीय चिकित्सा एवं निदान के लिये आधुनिक शारीर शास्त्र (Anotomy) तथा शारीरक्रियाविज्ञान (Physiology) का अध्ययन **आवश्यक नहीं है**। कारण हमारा चिकित्साशास्त्र केवल **त्रिदोष विज्ञान पर** अधिष्ठित है।

तस्माद्विकार प्रकृतीः अधिष्ठानांतराणि च।
बुद्ध्वा हेतुविशेषांश्च शीघ्रं कुर्यादुपक्रमम्। अ० हृ० सू०

हमें (१) विकार प्रकृति—अर्थात् दोषविकृति,
(२) अधिष्ठानांतर—किस शारीर विभाग में दोषों का संग हुआ है तथा
(३) हेतुविशेष—कारण विशेष जिनसे दोषों का प्रकोप हुआ हैं,

इन तीन बातों का ज्ञान होते ही चिकित्सा प्रारम्भ की जा सकती है। दूष्य, देश, बल, काल, अग्नि, वय आदि अन्य १० विषयों का ज्ञान उन्हीं दोषों के बलाबलादि के विज्ञान के लिये है। 'रोगस्तु दोषवैषम्यम्' ही हमारा प्रधान ज्ञान सूत्र है। हमारी अष्टविध परीक्षा भी इसी दोष विज्ञान के लिये है। दोषविज्ञान होते ही, व्याधि शरीर के किसी भी अवयव में हो, उस दोष की समावस्था प्राप्त होते ही रोग नष्ट होता है, **यही तो आयुर्वेद का मूलगामी वैशिष्ट्य है**। कीटाणु दोषविकृति के **पश्चात्** होने वाली विकृति है। अतः रोग नाश के लिये हमें अन्य किसी विज्ञान की आवश्यकता नहीं है।

स्थूल शारीर एवं स्थूल शारीर क्रिया विज्ञान—

स्थूल शारीर और शारीरक्रिया के विश्लेषण में आधुनिक विद्वानों ने अत्यधिक

प्रगति की है इसमें संदेह नहीं। परन्तु हमारी त्रिदोष चिकित्सा की दृष्टि से वह प्रगति निरर्थक है। जब समग्र शारीरक्रियाओं के कर्त्ता त्रिदोष हैं ऐसा आयुर्वेदीय सिद्धांत है तब इन शारीर क्रियाओं के आधुनिक विश्लेषण से हमें लाभ क्या? उदाहरणार्थ जितने धमनियों (nerves) के कार्य हैं वे सब शरीर में उत्पन्न होने वाले एकमात्र वात द्रव्य से होते हैं ऐसा आयुर्वेदीय सिद्धांत जब निश्चित हो जाता है तब वे धमनियां हृदय में जाने वाली हों, मस्तिष्क का कार्य कराने वाली हों, यकृत का स्राव उत्पन्न करने वाली हों अथवा अन्य अनेक शारीर कार्य कराने वाली हों, यदि वात द्रव्य को हम समावस्था में ले आवें तो उन समग्र शरीरगत धमनियों के कार्य सुव्यवस्थित होकर शरीर के समग्र वातजन्य विकार नष्ट हो जायेंगे। उन शारीर क्रियाओं का विश्लेषण, हमारी चिकित्सा साध्य करने में किसी भी उपयोग का न होगा। केवल ज्ञान मात्र की दृष्टि से उसका महत्व कितना ही अधिक क्यों न वर्णित किया जाय।

पुस्तक निर्माण के भगीरथ प्रयत्नों की निरर्थकता—

'जिन सज्जनों ने भगीरथ प्रयत्न करके संस्कृत और राष्ट्रभाषा में (आयुर्वेदीय रीति से ?) हजारों पुस्तकों की रचना की है, और जो लोग आज भी कर रहे हैं' उनके प्रयत्न का फल, केवल एक विशिष्ट पद्धति के वाङ्मय की वृद्धि, यही है। **आयुर्वेदीय चिकित्सा को उससे कोई भी लाभ नहीं है।** जैसे कि होमियोपैथिक चिकित्सा पद्धति लक्षण समुदाय के विशिष्ट विज्ञान पर अधिष्ठित है उसे इस शारीर क्रिया विश्लेषण से क्या लाभ हो सकता है? क्रोमोपेथी, द्वादश क्षार चिकित्सा, नेचरोपेथी आदि अनेक चिकित्सा पद्धतियों को जिस प्रकार इस आधुनिक शारीरक्रिया विज्ञान से कोई लाभ नहीं है उसी प्रकार आयुर्वेदीय त्रिदोषाधिष्ठित चिकित्सा पद्धति को उनसे कोई भी लाभ नहीं है। जो ज्ञान जिस चिकित्सा पद्धति को निरर्थक हो उसके निर्माता अथवा उस का विज्ञान प्राप्त 'आधुनिक स्नातक वैद्यों का एक बड़ा भाग' यदि 'हमारे शत्रुओं से जा मिलेगा' तो उसमें 'गृहकलह शुरू होने का कोई डर नहीं है। कारण ऐसे स्नातक तो पहले से ही आयुर्वेद से सम्बन्धविच्छेद कर चुके हैं। उनको स्वतः को वैद्य कहलाना ही बड़ा भारी पाप प्रतीत होता है। वे अपने को डाक्टर कहलाने में भूषण मानते हैं। तथा चिकित्सा करते समय शुद्ध ऐलोपेथिक पद्धति का निदान, पेथालाजिस्ट द्वारा, मल, मूत्र श्लेष्मादि की परीक्षा कराते हैं। कभी स्वप्न में भी वात, पित्त, कफ शब्दों का उच्चार नहीं करते। वे तो पहिले ही से आयुर्वेद के शत्रु, नगारे बजा कर, प्रसिद्ध हो चुके हैं। जो स्वयं शत्रु हैं वे 'शत्रुओं में मिलेंगे' इस वाक्य का अर्थ ही नहीं समझ में आता।

डाक्टर और मिश्र आयुर्वेदज्ञों की युति का डर—'सरकारी मिलावटी आयुर्वेदज्ञ लोग अपने साथी डाक्टरों से मिल कर 'अधिक तूफान मचायेंगे' यह बात ठीक है। इसका कारण यही है कि 'मिलावटी आयुर्वेदज्ञ' और उनके 'साथी डाक्टर' दोनों ही आयुर्वेद शास्त्र का एक अक्षर नहीं समझते। उनमें से डाक्टरों ने तो कभी भी आयुर्वेद पढ़ा

हुआ नहीं होता। उन्हें वात, पित्त, कफ इन शब्दों का मूलार्थ तक अवगत नहीं होता। ऐसे विषय के पूर्णतया अज्ञ व्यक्तियों 'ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापिनरं न रंजयति' के तूफान की ओर, केवल तिरस्कार की बुद्धि से देखना ही योग्य होता है। रहे 'सरकारी मिलावटी आयुर्वेदज्ञ लोग' ये तो अपने को 'आयुर्वेदज्ञ' कहलाना भी पाप समझने वाले हैं। इन्हें, आयुर्वेद का ज्ञान केवल ऐलोपैथिक डाक्टरों के समुदाय के सामने आयुर्वेद की निन्दा करने योग्य ही होता है। अतएव ऐसे व्यक्तियों के 'तूफान' को शुद्ध आयुर्वेदज्ञ केवल उपहासका विषय समझेंगे।

शल्य, शालाक्य प्रसूति तंत्र का अध्ययन—

शल्य, शालाक्य और प्रसूतितंत्र आयुर्वेदीय ग्रंथों में आवश्यक विस्तारयुक्त वर्णित हैं। उसका प्रत्यक्षोपयोग इसी लिये नहीं किया गया कि शासन ने, तथा शासकों का अंधानुकरण करने वाले एतद्देशीय स्वास्थ्य विभाग के संचालकों ने, उसकी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया, किन्तु अपना अधिकार देश में जमा रहे, इस विचार से उस प्राचीन विद्या की अवहेलना ही करते रहे। अब बम्बई राज्य के शासकों को प्रतीत हो चुका है कि इस विषय में भी प्राचीन ग्रंथों में इतना विवरण है कि उसके द्वारा चिकित्सा के समान ही उन विभागों में भी हम स्वतंत्र हो सकते हैं। अतएव सर्वप्रथम शुद्ध आयुर्वेदीय चिकित्सक निर्माण करने का कार्य जोरशोर से शुरू करने के पश्चात्, उन विभागों का भी निर्माण व प्रत्यक्ष क्रम की सुविधा की जायगी।

आज हमें केवल शुद्ध आयुर्वेदीय चिकित्सक निर्माण करना है और समग्र देश में उनका जाल फैला कर ऐलोपैथिक चिकित्सा के जो दुष्परिणाम और उसके द्वारा होने वाला देश के अपरिमित द्रव्य का परदेश गमन हो रहा है, उसको रोकना है।

ग्रंथ निर्माण करने वालों को चाहिये कि जिन संज्ञाओं का उपयोग शुद्ध आयुर्वेदीय समिति निश्चित करेगी वही काम में लाई जावें।

श्रीमान् भट्टाचार्य जी ने, भूतपूर्व वाइस चान्सलर पं॰ गोविन्द मालवीय जी को शुद्ध आयुर्वेद की परिभाषा सम्बन्धी जो उत्तर दिये हैं वे अधिकांश में अत्यन्त उपयुक्त हैं और उसके लिये, शुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम विद्वत्समिति के विशेष अधिवेशन के अध्यक्ष के नाते, मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूं।



शुद्धायुर्वेद समस्या

लें०—भिषगाचार्य श्री पं० मणिराम शर्मा, रतनगढ़

आचार्य कविराज श्री कृष्णपद भट्टाचार्य, झांसी आयुर्वेदिक यूनिवर्सिटी ने महासम्मेलन पत्रिका में "आयुर्वेदिक शिक्षासुधार और शुद्धायुर्वेद की समस्या" पर लेख लिखा है। इस सम्बन्ध में मेरी व्यक्तिगत धारणा यह है कि साढ़े तीन वर्ष का पाठ्यक्रम आयुर्वेदीय छात्रों को साङ्गोपांग ज्ञान कराने में कुछ न्यून रहेगा। केवल आयुर्वेदीय छात्र आधुनिक चिकित्सकों का मुकाबला नहीं कर सकेंगे। इसलिये कमसे कम चार वर्ष निरन्तर शुद्धायुर्वेद का ज्ञान छात्रों को कराया जाये। और एक वर्ष आधुनिक ज्ञान भी सिखाया जाय। आधुनिक ज्ञान का अर्थ यह है कि जो हमारी आयुर्वेदीय पुस्तकें आज तक बनी हैं और जिनमें आधुनिकता भी है उनमें से, या विद्वत् परिषद् द्वारा कोई नवीन संस्करण करवा कर उसको आधुनिक ज्ञान का रूप दें। यह ज्ञान वृद्धयर्थ पढ़ाया जाय। आतुरालयों में चिकित्सा तो आयुर्वेदीय पद्धति से ही स्नातकों द्वारा होनी चाहिये। जिस प्रकार कि जयपुर गवर्नमेण्ट आयुर्वेदीय कालेज के आतुरालय में होती है।

इस तरह पांच वर्ष के पाठ्यक्रम से सुसिक्षित स्नातक निर्भीक होकर जनता की सेवा कर सकेंगे, और आयुर्वेद के अनन्य भक्त सिद्ध होंगे।

गुरु गृह तथा प्रवेश योग्यता

इस विषय में मेरी राय है कि गुरुगृह की वजाय बोर्ड स्वयं देखभाल कर ऐसे विद्यालय ही स्वीकृत कर दे जहां पर बोर्ड के अनुसार शिक्षा का सुप्रबन्ध हो। और बोर्ड ने छात्रों के लिये जो योग्यता रखी है वह प्रारम्भ में तो ठीक है परन्तु कुछ समय के पश्चात मैट्रिक तथा मध्यमा दोनों परीक्षाओं के उत्तीर्ण छात्रों को ही स्वीकार करना चाहिये। क्योंकि मध्यमा परीक्षोत्तीर्ण के बिना छात्र ग्रंथों के मूल एवं टीकाओं के पाठ समझ नहीं सकेंगे। अब मेरा नम्र निवेदन है कि समय आदमी को बनाता है आदमी समय को नहीं अतः समयानुसार विशुद्धायुर्वेद के नाते वृहत्त्रयी लघुत्रयी के साथ-साथ में आज तक जो आयुर्वेदीय ग्रन्थों का संस्कृत या हिन्दी में प्रकाशन हुआ है उसको भी आयुर्वेद ही मान लेना चाहिये। क्योंकि हमने उसको अपनी भाषा में आत्मसात कर लिया है अतः उसे अपना लेना चाहिये—ऐसा पहिले भी होता आया है। इसी विशुद्धायुर्वेद विद्यालय के पाठ्यक्रम को अन्य प्रान्तीय सरकारें भी स्वीकार करेंगी। पुनः केन्द्रीय सरकार को भी वाध्य होकर इसी

पाठ्यक्रम को स्वीकार करना पड़ेगा। और तब ही हमारे आयुर्वेद की वास्तविक उन्नति हो सकेगी। आशा है इस मेरे निवेदन पर बोर्ड एवं वैद्यसमाज ध्यान देगा।

पिछले ५० वर्षों से जिस विशुद्धायुर्वेदीय पाठ्यक्रम शिक्षण के लिये भारत का वैद्य समाज प्रयत्नशील रहा और कृतकार्य न हो सका, वह कार्य आज बम्बई सरकार द्वारा सिद्ध हुआ। जिसका श्रेय वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा, प्रधान, अ० भा० आ० महासम्मेलन को है जिन्होंने अपने सतत परिश्रम और कुशल व्यवहार से सरकार को वाध्य कर इस कार्य को सम्पन्न करवाया, परं विशुद्धायुर्वेदीय पाठ्यक्रम के स्वीकृत होने मात्र से ही आयुर्वेद की उन्नति हो गई ऐसा समझना भ्रम होगा। आवश्यकता इस वात की है कि सम्पूर्ण वैद्यसमाज इस महान कार्य को विधिवत् सर्वाङ्गीण सम्पन्न करने के लिये कटिबद्ध होकर पूर्ण सहयोग प्रदान करे। अन्यथा यह सम्पूर्ण प्रयास विफल होकर भारत का आयुर्वेद ही नहीं सम्पूर्ण वैद्यसमाज भी हास्यास्पद होगा।



यकृद्दाल्युदर

ले० साहित्याचार्य वैद्य घनानन्द पन्त विद्यार्णव, देहली

रुद्धा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि सञ्चिताः।
प्राणाग्न्यपानान् सन्दूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥

वपावहन (Peritoneum) में तरल सञ्चित हो जाने को जलोदर कहते हैं।

उत्पत्ति के कारण—

१. सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रवृद्धे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव। यकृद्दाल्युदर।
२. वपावहन के रोगों के कारण जलोदर हो सकता है।
३. वृक्करोग।

शारीरिक लक्षण—पेट बड़ा हो जाता है प्रथमावस्था में आगे की ओर बढ़ा हुआ होकर अण्डाकार धारण करता है। बाद में जितना जल बढ़ता जाता है उतना पार्श्व बढ़ते जाते हैं इस समय जल सामने न होकर पेट के पिछले भाग व दोनों पार्श्वों की तरफ होता है इसी कारण से पेट गोल न होकर चौड़ा और चपटा हो जाता है।

निदान—तीन उपायों द्वारा यह जाना जाता है कि जल भर गया है।
(१) ताड़न (२) तरङ्ग (३) स्थानच्युति।

ताड़न—साधारणतः आमाशय व आंतों में वायु होने से ताड़न करने पर गुञ्जन होता है परन्तु जब पेट में जल जमा होता है तो जल पेट में दोनों पार्श्वों में निचले भाग में रहता है अतः इन दोनों स्थानों में ताड़न करने से जल होने पर ठोस शब्द सुनाई देगा परन्तु पेट के सामने की ओर आमाशय व आंतें उभर आती हैं अतः सामने ताड़न करने पर गुञ्जन मिलेगी। परन्तु जल जितना अधिक बढ़ता जाता है यह दोनों पार्श्वों व मध्य में आजाता है। और इस समय ताड़न करने से सामने बहुत थोड़े भाग में गुञ्जन मिलती है। क्योंकि आंतों और आमाशय का अधिक भाग जल में डूबा होता है और थोड़ा सा ही भाग ऊपर रहता है, जितना अंश ऊपर को रहता है उतने ही भाग में गुञ्जन मिलेगी। यदि इस समय रोगी को एक करवट लेकर लेटने को कहा जाय और उस करवट में ही देखा जाय तो जो हिस्सा करवट लेने पर ऊपर को होगा उस स्थान में ताड़न करने से गुञ्जन मिलेगी क्योंकि करवट लेने से जल नीचे की ओर चला जायगा और आंतें ऊपर को उठ आयेंगी और पेट के निचले हिस्से में अर्थात् निचली करवट में और बीच के भाग में एकत्रित हो जाने के कारण यहां पर ताड़न करने पर ठोस शब्द सुनाई देगा और यदि रोगी को दूसरी करवट लेने को

कह कर जिस करवट पहिले देखा था उस करवट लेटने को कहा जाय और दूसरी करवट को देखा जाय तो जिस पार्श्व में प्रथम गुञ्जन होता था वहां ताड़न करने पर ठोस शब्द पाया जायगा क्योंकि जल दूसरी अर्थात् निचली करवट में चला गया (जलस्य अधोगति के सिद्धान्त के कारण) इन ताड़न, गुञ्जन, व ठोस शब्दों का पाया जाना पेट में जल जमा होने का एक प्रधान लक्षण है।

तरङ्ग—समाततं पूर्णमिवाम्बुना च यथादृतिः क्षुभ्यति कम्पतेच शब्दायते चापि दकोदरं तत्। मा. नि.। रोगी को चित लिटाइये और रोगी के पेट के एक पार्श्व में बांये हाथ की हथेली को रख कर दाहिने हाथ की अंगुली से पेट के दूसरे पार्श्व में आघात कीजिये, इस प्रकार करने से बांये हाथ की हथेली की तली में एक धक्का (जल की तरङ्ग) लगता है इसको कम्पन कहते हैं। उदर में जल होने पर जल का प्रतिघात हथेली को अनुभव होता है यह एक निश्चित लक्षण उदर में जल विद्यमान होने का है। कभी-कभी उदर की दीवारों से भी उदर में जल न होने पर भी उपर्युक्त कम्पन पाई जाती है। इसके लिये पुस्तक की एक धार उदर के मध्य में रखें (भली प्रकार दबा कर रखें) तब यह कम्पन नहीं मिलेगा उदर में जल होने पर जो कम्पन पाया जाता हैं इसमें गलती होने की शङ्का न होगी।

स्थानच्युति—जलोदर में यकृत बढ़ जाता है और यह जल में डूब सकता है। यकृत के ऊपर थोड़ा जल होता है यदि इस समय अंगुली से यकृत पर दबाव डाला जाय तो जल वहां से हट जायेगा और अंगुली को यकृत स्पर्श करेगा। इससे यह जाना जाता है कि यदि उदर में जल न हो तो अनायास ही पसलियों के नीचे यकृत हाथों से विदित हो जाता है। डिम्भ के गुल्म और जलोदर में भूल हो सकती हैं।

(१) डिम्भ के गुल्म में ताड़न करने से उदर के सामने ठोस शब्द पाया जाता है किन्तु पार्श्व प्रदेशों में गुञ्जन पाया जायगा क्योंकि गुल्म के दबाव से अन्त्र सिमट कर एक ओर को हो जाती हैं अतः आंतों में वायु होने से उन पर ताड़न करने से गुञ्जन पाया जायगा।

(२) डिम्भ का गुल्म एक पार्श्व से आरम्भ होता है क्रमशः बढ़ कर मध्य तक आता है।

(३) नापने से दोनों में भेद जाना जा सकता है।

(अ) नाभि से विटप तक फीते द्वारा नापो, नाभि से कौड़ी तक नापो। जलोदर में नाभि से विटप तक जो नाप होगा ये नाप नाभि से कौड़ी के नाप की अपेक्षा एक इञ्च छोटा होगा। डिम्भ के गुल्म में ठीक इसके विपरीत नाप होगी अर्थात् नाप बड़ी होगी।

(आ) डिम्भ के गुल्म में नाभि से क्षुद्रान्त्र चूड़ा तक नापने से जिस ओर गुल्म हुआ है उस पार्श्व का नाप बड़ा होगा।

(ई) डिम्भ के गुल्म में उदर का नाप नाभि से आधा इंच नीचे सर्वापेक्षा बड़ा होता है परन्तु जलोदर में सबसे बड़ा नाप नाभि से कुछ ऊंचा हो सकता है।

यकृद्दाल्युदर का एक रोगी रामकिशन आयु ५४ वर्ष, कुछ वर्ष पूर्व कामला हुई थी, दान्त मुख में ५-४ ही बाकी हैं, आखें कुछ पीतवर्ण, पाखाना प्रातः सायं नहीं के बराबर, जिह्वा सफेद, पैर में जानुदेश पर्यन्त एक माह से शोथ, मूत्र थोड़ा, नाभि से नीचे दायें वायें पार्श्व में जल प्रतीति, श्वास एक मिनट में ३५। नाड़ी ८८, उष्मा मुख का ९९° ता० २७-१२-५३ को हमारे पास आने से पूर्व ऐलोपैथिक और होमियोपैथिक चिकित्सा करा चुका था।

प्रथमदिन—सुधानिधि रस २ रत्ती, स्वर्जिक्षार ५ रत्ती की ४ मात्रा २-२ घण्टे बाद दीं। सुधानिधि रस रसेन्द्रसार संग्रह–पिष्टं पांशु प्रगाढ़ममलम्—इत्यादि अ० १ श्लोक ७४ वाला दिया (इस रस पर जो विस्तार पूर्वक जानना चाहें हमारे रसेन्द्रसारसंग्रह की आनन्दी टीका में देख सकते हैं) इससे दूसरे दिन प्रातः एक दस्त साफ हुआ। पथ्य-केवल दूध शन्तरा मौसम्बी का रस दिया। द्वितीय दिन तीन पाव दूध १ शन्तरा १ मौसम्बी लिया हां इस दिन प्रातः पुनर्नवाष्टक क्वाथ—शार्ङ्गधर का—

पुनर्नवा भया निम्ब दार्वीतिक्ता पटोलकैः।
गुडूचीनागर युतैः क्वाथो गोमूत्र संयुतः॥

प्रत्येक दवा ३-३ माशा पुनर्नवा दोनों श्वेत और रक्त इस क्वाथ के साथ त्र्यूषणादि लौह की १-१ रत्ती की ४ मात्रा दिन भर में दीं, क्वाथ प्रातः सायं दिया। तीसरे दिन रोगी ने दूध सेर भर और दो शन्तरे लिए। तीन बार पाखाना, दो सेर मूत्र। चौथे दिन इसी प्रकार मूत्र ३ सेर। पांचवें दिन रोगी को चार दस्त हो गये अतः रात्रि को क्वाथ बन्द कर दिया। छटे दिन २४ घण्टे में ४ सेर मूत्र तीन पाखाने, डेढ़ सेर दूध ३ शन्तरा मौसम्वी लिया। पैरों का शोथ बिल्कुल उतर गया है कुछ टखनों में बाकी है यह रोगी के आदमी ने कहा नींद ठीक है भूख भी कहता है और कुछ खाने को मांगता है। आठवें दिन सब पूर्ववत्। रोगी को मैंने देखा तो पेट का पानी भी तीन हिस्सा कम हो गया था एक हिस्सा बाकी ताड़न से प्रतीत होता था। अब रोगी डेढ़ सेर दूध पीने लगा मौसम्बी शन्तरा भी ३-४ चीखू १-२। ११ वें दिन पेशाब घट कर २॥ सेर हो गया रोगी चलने फिरने की इच्छा करने लगा शेष सब पूर्ववत्।

त्र्यूषणादिलौह—

अयोरजस्त्र्यूषणयावशूकचूर्णं निपीतं त्रिफलारसेन—चरक। चि० शोथ प्रकरण।

त्रिकटु ३ भाग, यवक्षार १ भाग, वारितरलोहभस्म ४ भाग। मात्रा १–१ रत्ती।

इनमें लोह और यवक्षार मूत्रकर हैं, यवक्षार त्रिकटु दीपन पाचन भी हैं, हां पूर्वोक्त

क्वाथ में गोमूत्र २ तोला एक बार में मिलाया जाता था। हमारा रोगी तो गोमूत्र पीने को राजी था पर जहां तक हो रोगी के परोक्ष में ही गोमूत्र मिलाना चाहिये।

१५ वें दिन रोगी को भली प्रकार जांचा पेट का जल बिल्कुल साफ था। अब हमने बलकर भूख लगाने वाली दो गोली अग्नितुण्डी वटी की और बढ़ा दी हैं पेट का पानी साफ होने पर ४-५ अंगुल पसलियों से बाहर जिगर प्रतीत होने लगा है। मैंने यहां त्रिफला क्वाथ के बदले त्र्यूषणादिलौह का अनुपान पुनर्नवाष्टक (नव) इसलिये दिया है कि मैं कांस्यक्रोड (प्लूरिसी) में इस योग को ही विशेष वर्तता हूं यदि क्षयज कांस्यक्रोड न हो तो लाभ भी विशिष्ट होता है। इसका विशेष विवरण तथा पुनर्नवा मूत्ररेचन हृद्य होने से शोथघ्न है। हरीतकी और कटुकी निम्ब आदि यकृत में कार्यकर एक ही औषधि हैं। कटुकी बड़ी हृद्य है यह विषय विस्तारपूर्वक प्रतिसंस्कृत निदान चिकित्सा के द्वितीय भाग कांस्यक्रोड प्रकरण में दिया है। वैसे पूर्वोक्त योग में वारितरताम्र भस्म ¼ रत्ती देने से और अच्छा लाभ होता है। ताम्रभस्म विशेष हृद्य है यकृत रोगों को तो लाभकारी है ही। हां इस प्रकार की मूत्रकर तथा उदर शुद्धि कर औषधियां हृदय मस्तिष्क आदि की कलाओं में जब जल भर जाता है वहां भी कुछ हेर-फेर के साथ विशेष लाभ करती हैं।

एक आश्चर्यजनक घटना

इसी चिकित्सा के बीच में—रायबहादुर विशनचन्द्र जी एम. ए., एकाउन्टैन्ट जनरल जो अब पैन्शनर हैं आयु अब ७२ वर्ष की है अपनी चिकित्सा के लिये इन दिनों प्रतिदिन मेरे पास अपनी दवा लेने आ रहे थे। रोगी के परिचारक के मुख से प्रति दिन चार सेर मूत्र होने की बात सुनकर बोले—हां जब मैं लाहौर में एफ. ए. में पढ़ता था श्री जैकिशन कपूर जो कि रेलवे में एकाउन्टस् औफीसर थे बड़े खानदानी सम्पन्न हैं।

इनके घर के सब लोग उस दिन किसी कारण बाहर गये हुये थे उनकी स्त्री जिसकी अवस्था करीब ५०-५५ वर्ष की थी इनका पेट इतना फूला हुआ था जलोदर से कि चलना फिरना मुश्किल था। खटिया में रख भीतर बाहर ले जाते थे। अपने आंगन में पड़ी थीं करीब दिन के तीन बजे का समय था एक साधू भिक्षा मांगने आया उसने उस जलोदर वाली स्त्री से भिक्षा मांगी स्त्री ने उत्तर दिया कि मेरी तो यह हालत है उठ ही नहीं सकती आपको भिक्षा कैसे दूं। यह सुन महात्मा ने अपनी झोली में से एक पुड़िया निकाल जल से उसको खिला दी और चल दिये इसके २-३ घण्टे बाद उस स्त्री को पेशाब की बराबर धारा वहीं बैठे बैठे बहने लगी यहां तक कि उसकी पेशाब की धारा देखकर मुहल्ले की औरत मर्द बालबच्चों का एक मेला सा लग गया पेशाब में इतनी दुर्गन्ध थी कि आस-पास ठहरना मुश्किल था आंगन सारा पेशाब से भर गया। प्रायः उन दिनों मकानों में नालियां नहीं थीं और पानी के नल भी उन दिनों नहीं लगे थे। लोगों ने कूंए से घड़ों से पानी निकालकर आंगन धोया। तीसरे दिन से वह स्त्री चलने फिरने लगी ५-६ वर्ष तक मैंने उसको बराबर अच्छा देखा। साधू जी की खोज दूसरे दिन की गई तो कोई पता नहीं चला।

मस्तिष्क सुषुम्ना ज्वर (कण्ठकुब्ज ज्वर) की सफल चिकित्सा

A CASE OF TUBERCULAR MENINGITIS

लेखक—कविराज पुरुषोत्तम देव मुलतानी, आयुर्वेदलंकार
प्रधान चिकित्सक, राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय, हैदराबाद दक्षिण (२)

८ नवम्बर सन् ५२ ई० की शाम के ६ बजे थे और मैं सांयकालीन भ्रमण के लिए घर से निकलने को ही था चपरासी ने आकर कहा कि "साहब आपको याद कर रहे हैं (साहब से अभिप्राय हमारे भूतपूर्व स्पेशल आफिसर डा० आशानन्द पंचरत्न से हैं) डा० साहब ने कहा कि एक रुग्णा है जिसे स्थानीय सुप्रसिद्ध अस्पताल वालों ने जवाब दे दिया है और उसके जीवन के क्षण भी कुछ इने-गिने मालूम होते हैं। रुग्णा के पति को भी मैंने स्पष्ट कह दिया है कि इसके बचने के आसार नहीं हैं किन्तु फिर भी इसे प्रविष्ठ कर इसकी चिकित्सा प्रारम्भ कर दो।

मैंने कहा—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है किन्तु ऐसे असाध्य लक्षणों वाले रोगी को इस हालत में प्रविष्ठ करना कहाँ तक उचित है। उन्होंने मेरे विचार से सहमति प्रकट की किन्तु रोगी को प्रविष्ठ करने के लिए ही आदेश दिया।

रुग्णा का नाम :—यशोदा बाई, **आयु** :—२७ वर्ष।
प्रवेश तिथि :—८ नवम्बर १९५२ ई०

पूर्व इतिवृत :—प्रवेश तिथि से ६ मास पूर्व (२ जून सन् १९५२ ई०) रोगी को तीव्र शिर:शूल के साथ ज्वर का आक्रमण हुआ। रोगी के चिकित्सक ने उस ज्वर का निदान "आंत्रिक ज्वर (Typhoid fever)" किया तथा उसे "क्लोरोमाइस्टीन (Chloromystine)" का सेवन कराया गया, और रोगी का ज्वर २८ दिन बाद उतर गया। इसके ४ मास बाद (४ अक्टूबर १९५२) रोगी को तीव्र शिर:शुल, कटिशूल और सर्दी के साथ पुन: ज्वर का आक्रमण हुआ इसकी भी चिकित्सा 'क्लोरोमाइस्टीन' से की गई; लेकिन कुछ लाभ न होने से हैदराबाद के प्रसिद्ध ऐलोपैथिक चिकित्सालय में रोगी को प्रविष्ठ करवाया वहाँ पर आंत्रिक ज्वर के निदान के लिये 'विडाल परीक्षण Widal test' किया किन्तु उसके 'नकारात्मक' होने से मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव की परीक्षा की गई उसमें Tubercular Meningococus मिलने से रोग का निदान—"Tubercular meningitis" किया गया। तदनुसार प्रतिदिन क्लोरोमाइस्टीन के ३ सूचीवेध दिये गये (१–सुषुम्ना कांड में और २–मांस पेशीयों द्वारा) यह क्रम १५ दिन तक चालू रहा किन्तु रोगी के लक्षण व

कष्ट अधिकाधिक बढ़ जाने से ये सूचिवेध बन्द कर दिए गए और केवल एक औषधि मिश्रण दिया जाने लगा, इस औषधि में २ बार ज्वर कुछ कम हुआ पर स्वाभाविक तापमान पर नहीं आया; इस सब से निराश होकर डाक्टरों ने उसके जीवन से निराशा प्रकट की। परिणामतः रुग्णा के पति ने आयुर्वेद चिकित्सालय का आश्रय लिया।

पारिवारिक इतिवृत्त :—रुग्णा के पिता की मृत्यु लगभग ९ वर्ष पूर्व राजयक्ष्मा से हुई थी।

लक्षण :—रोगी को १००° ज्वर, नाड़ी की गति ११२; श्वास प्रश्वास २२; गर्दन व मेरुदंड बाह्यायाम; रोगी अतिकृश, मुख और आँखें भीतर धंसी हुई; मूर्च्छावस्था; ग्रीवाग्रंथियां सूजी हुई; दर्शन, स्पर्श, श्रवण तथा वाणी का संज्ञानाश; पुतलियां विस्तृत, व्यापी मांसक्षय; उदर में स्पर्शाक्षमता; २४ घन्टे से मूत्रावरोध व मलावरोध, शिरोलोठन, और आक्षेप; जिह्वा मैली मोटी और खुरदरी थी।

शारीर परीक्षा :—(दर्शन :–स्पर्शन) :—रोगी एक पार्श्व पर लेटा हुआ है; टांगें पेट की ओर मुड़ी हुई हैं; पुतली फैली हुई है; पुतली में Reflex बहुत ही मन्द है; रोगी को बाहिर के सब प्रकार की उत्तेजना बुरी लगती है। ग्रीवा स्तम्भ, कटि स्तम्भ तथा उरू स्तम्भ स्पष्ट है। रोगी के उरू को पेट पर संकुचित कर जंघा सीधा रखना चाहें तो नहीं होती (इसे kerning's sign कहते हैं)। पैर पकड़ कर यदि टांगों को फिराना चाहें तो रोगी पीठ पर से उठ जाता है लेकिन टांगों को नहीं मोड़ने देता (इसे Regidity या Bind zinsk sign कहते हैं) पेट पिचका हुआ है तथा पीछे को लगा हुआ है; पेट की त्वचा पर स्पर्श करके देखने से संज्ञा व प्रतिक्रिया नहीं प्रतीत होती।

उपर्युक्त लक्षण देख कर 'योग रत्नाकर' का निम्न सारगर्भित श्लोक स्मरण हो आया।

"शिरोऽर्ति कण्ठग्रह दाह मोह कम्प ज्वराः
रक्त समीरणार्ति हनुग्रहः तापविलाप मूर्च्छा
स्यात्कण्ठकुब्जः कष्ट साध्यः" ॥

उपर्युक्त सारे ही लक्षण रोगी में देख कर 'कण्ठकुब्ज ज्वर' अथवा 'पित्तोल्वण सन्निपात' रोगी का निदान करके तदनुसार निम्नलिखित शास्त्रीय चिकित्सा प्रारम्भ करदी। चिकित्सालय के नियमानुसार ऐलोपैथिक निदान की दृष्टि से तथा विद्यार्थियों के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से रोगी के सुषुम्ना द्रव, रक्त की परीक्षा भी आयुर्वेद महाविद्यालय के (Pathologist) डा० पोपले, एम० बी० बी० एस०; डी० डी० एस० (आजकल विदेश में उच्च शिक्षा प्राप्त करने गये हैं) द्वारा करवाई गई, जिसका परिणाम निम्नलिखित है।

I सुषुम्नाद्रव :—(तिथि १२ नवम्बर १९५२ ई०)

+ + + प्रोटीन=५५० मिलीग्राम % (०.०२—०.०५ %)

— — क्लोराईड़=५८० " % (०.७२—०.७५ %)

शर्करा=नाम मात्र ३० मिलीग्राम % (०.०५—०.०७५ %)

कोष्ठक=६३ % (बहु कोष्ठीय व श्वेताणु उपस्थित)

=विकृत जीवाणु अनुपस्थित

II रक्त परीक्षा :—Complete Blood Picture.

रुधिर रंजक (Haemoglobin) 60%

रक्त कण (Red Blood corpuscles) 5000

पुरुखंडन्यष्टि (Polymorpls) 82%

लसिकण (Lymphocytes) 17%

बृहद्खंडन्यष्टि (Monocytes) Nil

उषसिरंजक (Eosinophil) 10%

पीट रंज्य (Basoplils) Nil

असामान्य रक्तकण (Abnormal R. B. C.)
W. B. C.)
शीत ज्वरीय पर जीवी (Malarial Parasites) } Nil

III सुषुम्ना द्रव परीक्षा :—(तिथि २२-११-५२)

प्रोटीन (Protien) ५०० मिलीग्राम, प्रति १००.सी.सी.

क्लोराईड़ (Chlorides) ६६० मिलीग्राम, प्रति १०० सी.सी.

सु. शर्करा—उपस्थित (४० मिलीग्राम प्रति १०० सी.सी.)

कोष्ठक—बहुकोष्ठक तथा श्वेताणु पर्याप्त संख्या में विद्यमान विकृत जीवाणु अनुपस्थित ।

(द्रव में रक्ताणु की अधिकता होने से कोष्ठकों की संख्या नहीं गिनी गई)

चिकित्सा :—८ नवम्बर को रुग्णा को चिकित्सालय में सांयकाल प्रविष्ठ किया गया था इस लिए पहली मात्रा रात्रि के ८ बजे दी गई । 'कृष्ण चतुर्मुख रस १ रत्ती, महालक्ष्मी विलास रस १ रत्ती प्रति ३-३ घन्टे से कमलनाल स्वरस के अनुपान से दी गई ।' देह पर अफारे के लिए 'देवदार्व्यादि लेप' घी में मिला कर लगाया गया ।

रात भर रुग्णा अचेत ही रही बीच-बीच में प्रलाप भी करती थी । ९ नवम्बर को प्रातःकाल तापमान साधारण (नार्मल) हो गया तथा निम्न औषधि दिन में तीन बार दी गई ।

बसन्त मालती १ रत्ती, महालक्ष्मी विलास १ रत्ती, प्रवाल पंचामृत १ रत्ती, पिप्पली चूर्ण ३ रत्ती।

अनुपान :—कमलनाल स्वरस, तथा बाद में ½ घन्टे बाद अष्टादशांग कषाय २ औंस दिया गया।

सांयकाल ४ बजे—कृष्ण चतुर्मुख रस १ रत्ती, प्रवाल पंचामृत १ रत्ती, महालक्ष्मी विलासरस १ रत्ती।

अनुपान :—त्रिफला क्वाथ व मधु से। शतधौत घृत सिर पर रखा गया एवं 'महा नारायण तैल' की मालिश मेरु दंड पर की गई। सायंकाल ज्वर पुनः १००° तथा रात्रि को ९९° था। रुग्णा रात को १–२ घंटे सोई।

१० नवम्बर को तापमान प्रातः नार्मल था, किन्तु मध्याह्न में १००° होकर सायंकाल नार्मल तथा रात्रि में पुनः १००° हो गया। प्रलाप कुछ कम था। रुग्णा कुछ देर सोई।

११ नवम्बर को प्रातःकाल तापमान नार्मल था किन्तु मध्याह्न में १००° तक गया।

१२ नवम्बर को तापमान प्रातः नार्मल तथा मध्याह्न में ९९° था। रात को नींद आई; मलमूत्र का वेग भी हुआ, पीठ में अकड़ांद भी कम थी, तथा कुछ दर्शन, स्पर्शन की प्रतिक्रिया प्रतीत हुई।

इन दिनों, दिन में २-३ बार 'कटफलादि नस्य' भी दिया गया तथा रात्रि को नियमित तौर पर 'दशमूल क्वाथ' का (Retaining enema) भी दिया गया। शेष औषधियां ९ नवम्बर की तरह दी गईं।

१३ नवम्बर को ज्वर सारा दिन साधारण था किन्तु रात्रि में २ बजे १००° हो गया।

१४-१५-१६ नवम्बर को ज्वर सारा दिन नार्मल रहा। १४ नवम्बर से 'वसन्त मालती' नहीं दी गई; शेष चिकित्सा पूर्ववत। १७ से २० नवम्बर तक रोगी को ज्वर नार्मल था किन्तु दिन में कुछ घन्टे नार्मल से भी कम था। १८ से २२ नवम्बर तक चिकित्सा क्रम निम्न रहा।

प्रातः व सायं—वृहद् वातचिन्तामणि रस १ रत्ती, प्रवाल पंचामृत रस २ रत्ती, पिप्पली चूर्ण २ रत्ती।

अनुपान :—कमलनाल स्वरस+मधु व अष्टादशांग कषाय से।

मध्याह्न में :—महालक्ष्मी विलास रस १ रत्ती, कृष्ण चतुर्मुख रस १ रत्ती, प्रवाल पंचामृत १ रत्ती।

अनुपान :—त्रिफला क्वाथ+मधु से।

भोजन के उपरान्त :—द्राक्षारिष्ट ½ औंस+मुष्टि सुरा १० बूंद (डा० आशानन्द जी द्वारा निर्मित)

रोगी की शारीरिक अवस्था पहले से बहुत अच्छी थी। अब वह देखती थी, सुनती थी, प्रश्नों का उत्तर भी देती थी, पीठ में, सिर में दर्द बहुत कम था, रात्रि में नींद गहरी तथा प्रलाप नहीं था। २२ नवम्बर को सुषुम्ना द्रव परीक्षा परिणाम ऊपर प्रकाशित है उसमें भी ११ नवम्बर के परिणाम से काफ़ी भेद था। किन्तु सुषुम्ना प्रदेश में उसे काफ़ी पीड़ा हुई और उस रात को नींद ठीक नहीं आई तथा प्रलाप भी हुआ। इसलिए बाद में शारीरिक अवस्था सुधरने तथा सुषुम्ना भेदन से शारीरिक व मानसिक पीड़ा बढ़ने से सुषुम्ना द्रव की परीक्षा नहीं कराई गई।

भोजन प्रथम सप्ताह तो 'पिप्पली भावित' दुग्ध ही दिया गया तथा द्वितीय सप्ताह में सूजी की खीर तथा फलों का रस दिया गया। २२ नवम्बर के बाद रुग्णा को प्रतिदिन प्रातः पीठ पर 'महा नारायण तैल' की मालिश कर आधा घन्टे बाद उषःकालीन सूर्य किरणें पड़ने का प्रबन्ध किया गया। उस समय रोगी बैठने भी लगी तथा पार्श्व में हिलना डुलना भी सुगम हो गया।

२९ नवम्बर से १ दिसम्बर तक रुग्णा को प्रातःकाल 'अष्ट मंगल घृत' दुग्ध में दिया गया।

मध्याह्न में :—रसराज रस १ रत्ती, प्रवाल पंचामृत १ रत्ती, पिप्पली चूर्ण ३ रत्ती।

अनुपान—कमलनाल स्वरस+मधु से।

रुग्णा के चिकित्सालय से जाने तक यही क्रम जारी रहा। संक्षेप में, जो रुग्णा चिकित्सालय प्रवेश के समय न देखती न सुन सकती थी, जिसे स्पर्श ज्ञान भी कम था, वही रुग्णा 'हैदराबाद राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय' से अवकाश ग्रहण करते समय अपने को पहले से अधिक स्वस्थ अनुभव करती थी।

चिकित्सा के दौरान में हैदराबाद मेडीकल एण्ड हैल्थ सर्विसिज़ के वर्तमान डायरेक्टर 'डा० एल० डी० खत्री साहेब तथा 'डा० ख्वाजा हमीदुद्दीन साहेब' स्पेशल अफ़सर 'इण्डियन मेडिसन' हैदराबाद ने भी रुग्णा का निरीक्षण किया था।

आगन्तुज उन्माद और उसकी चिकित्सा

लेo—श्री रघुवीरशरण शर्मा वैद्य, बुलन्दशहर

(गतांक से आगे)

प्रसङ्गवश हम महादेव, कुबेर और उनके अनुचरों के सम्बन्ध में भी कुछ प्रकाश डाल रहे हैं ताकि वस्तुस्थिति के समझने में सहायता मिले। प्राचीन काल में त्रिविष्टम (तिब्वत) में देवों का प्रजातन्त्र राज्य था। इन्द्र यहां के शासक का पद था। तिब्वत में अमरावती नाम की नगरी थी यहीं पर इन्द्र का निवासस्थान था। महाभारत काल में पांडव अर्जुन ने इसी अमरावती में इन्द्र के घर पर ही रहकर ५ वर्ष तक दिव्यास्त्रों की शिक्षा पाई थी। और भारत युद्ध से लगभग सौ वर्ष पूर्व ऋषि भरद्वाज, कश्यप, भृगु, वशिष्ट और अग्नि ने इन्द्र से आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी। कराकोरम पर्वत लद्दाख और पश्चिमी तिब्वत की सीमा पर 'रुद्रौक' नाम का नगर था जिसका वर्तमान नाम रुदौक है और जिसका अर्थ रुद्रों का घर है। यहां पर ११ रुद्र रहा करते थे जिनकी गणना ३३ कोटि अथवा प्रकार के देवों में थी। पश्चिमी तिब्वत में एक यमपुर नाम का नगर था जो कि मेरु के दक्षिण और मानसरोवर के ऊपर था। यहीं पर वैवस्वत यम रहा करता था* देवों के अपराधों का निर्णय करना, उनको दण्ड देना, बन्दी बनाना, प्राणदण्ड देना, आदि समस्त अधिकार इसके हाथ में थे। कैलाश के पास मांधाता पर्वत है जहाँ कि सूर्यवंशी मांधाता राजा ने तप किया था। महादेव द्वारा भस्मासुर को भस्म करने की घटना भी तिब्वत ही की है वह स्थान आज भी भस्मासुर की ढेरी के नाम से प्रसिद्ध है। कैलाश पर्वत पर पार्वती और अपने नन्दिगणों के साथ महादेव जी रहा करते थे।†

कैलाश के समीप ही भूतों का देश है जिसमें भूत-प्रेत राक्षस और पिशाच नाम के मनुष्य रहा करते थे। इन्हीं भूतों के नाम पर उस प्रदेश का नाम भूतस्थान हुआ जिसको कि आज भूटान कहते हैं। इन पर महादेव जी का शासन था। कैलाश के ही समीप कहीं अलका नाम की पुरी थी जिसका निर्माण अलका नदी के नाम पर हुआ था और इसी में कुबेर रहा करते थे जो कि महादेव जी के मित्र‡ और अगदतन्त्र में महादेव जी के शिष्य भी थे जिसका उल्लेख चरक संहिता में भी मिलता है।

---

*दक्षिणेऽत्र पुनर्मेरोर्मानसस्य च मूर्धनि।
वैवस्वतो निवसति यमः स यमने पुरे। वायुपुराण ५०।८८।

†कैलाश पर्वत की परिधि या परिक्रमा ३२ मील की है।

‡कुवेरस्त्र्यम्बक सखो यक्षराड् गुह्यकेश्वरः। अमरकोश।

"अगदोऽयं वैश्रवणायाख्यातस्त्र्यम्बकेण षष्टि अङ्गः ।
अप्रतिहतप्रभावः ख्यातो महागन्धहस्तीति ॥" (च. चि. २३।८१)

कैलाश मानसरोवर§ के आस-पास के प्रदेश, पश्चिमी तिब्बत की सीमा रामपुर बुशहर तक इधर दक्षिण में बद्रीनाथ के आसपास तक गन्धर्व, किन्नर, गुह्यक, और यक्ष जाति के लोग रहा करते थे इन सब पर कुबेर का शासन था। ऋषि बाल्मीकि ने इस प्रदेश का और यहां के सभी पुरुषों के रहन-सहन का वर्णन बड़े सुन्दर शब्दों में किया है।|| हमारे वैदिक ऋषियों ने रोगोत्पादक जीवाणुओं के नाम भी देव, गंधर्व राक्षस और पिशाच आदि रख लिये थे इसी कारण इनको पशुपति (महादेव) और कुबेर के अनुचर नाम से लिखा है। अस्तु महाभारत काल तक इस देश की स्थिति अच्छी रही बाद में धीरे-धीरे बिगड़ गई। महाभारत काल से सौ वर्ष पूर्व भी हमारे आत्रेय पुनर्वसु ने कैलाश और मानसरोवर के समीप ही देव, गन्धर्व और यक्षों में ही अपना जीवन व्यतीत किया था इसी प्रदेश में अग्निवेश, जतूकर्ण, क्षारपाणि और भेलादि शिष्यों ने पुनर्वसु से आयुर्वेद की शिक्षा पाई थी। और यहां पर प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्यों के सम्मेलन हुआ करते थे जिनमें काशिपति वामक, दारूवाह, ऋषि कश्यपादि सम्मिलित होकर विवादास्पद विषयों का निर्णय किया करते थे।[१] किन्तु आज कैलाश पर्वत पर महादेव जी नहीं हैं उनकी प्रतिमा मात्र है आज कुबेर की अलकापुरी भी नहीं है हां अलका नाम की नदी अवश्य है। वस्तुतः प्राचीनकाल में देव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, दैत्य, दानव, राक्षस, पिशाच, गरुड़ और नाग आदि नाम की अनेक जातियां थीं जिनका अस्तित्व बौद्ध काल तक रहा बाद में वे सभी शनैः शनैः मानवों में विलीन हो गईं और आज उनका कोई अस्तित्व शेष नहीं है उनके चिह्न यत्र तत्र आज भी मौजूद हैं।[२] अब लेख बहुत बढ़ गया है अतः हम भी बढ़ना चाहते हैं।

यमदूत—प्रसङ्ग वश अपने कथन की पुष्टि में यहां पर यह और भी बताना आवश्यक समझता हूं कि इन्हीं राक्षस पिशाचादिकों को वेद और आयुर्वेद में यमदूत नाम से भी लिखा है अर्थात् इनका दूसरा नाम यमदूत भी माना है। अथर्व वेद में लिखा है कि "वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूताश्चरतोपसेधामि।" आरादराति निर्ऋतिं परोग्राहिक्रव्यादः पिशाचान्। रक्षोयत्सर्वं दुर्भूतं तम इवापहन्मसि। अथर्व ८।२।११।

अर्थात् निर्ऋति क्रव्याद, पिशाच और राक्षस आदि नाम के वैवस्वत के भेजे हुए

§मानसरोवर की परिधि ४५ मील और गहराई ३०० फिट है।

||बाल्मीकि उत्तरकांड सर्ग २५।

[१]देखो लेखक की धन्वन्तरि परिचय।

[२]इन सबका वर्णन लेखक ने 'पाताल लोक' और देवजाति का परिचय नाम की पुस्तक में विस्तार से किया है।

जो यमदूत हैं मैं उन सबको नष्ट करता हूं कैसे जैसे कि सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है। वाग्भट में लिखा है कि—

'यमदूत पिशाचाद्यैर्यत् परासु रुपास्यते ।
घ्नद्भि रौषधवीर्याणि तस्मात्तं परिवर्जयेत् । (वा. भ. शा. ५।१३०)

अर्थात् राक्षस, और पिशाचादि नाम के यमदूत मरणासन्न के पास पहुंच जायें और औषधियां कार्य करना छोड़ दें तो वैद्य को चाहिये कि उस रोगी की चिकित्सा न करे। इसी प्रकार सुश्रुत में कहा है कि "भूतप्रेत पिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च । मरणाभिमुखं नित्यमुपसर्पन्ति मानवम् । सु. सू. स्था. ३१।३१

अर्थात् भूत-प्रेत पिशाच और जो भी अनेक प्रकार के राक्षस हैं वे मरणाभिमुख पर आक्रमण करते हैं। भूत का अर्थ यमदूत ही है "भूताः यमानुचराः" (डल्हण) वैद्य बन्धुओं मरणाभिमुख शब्द केवल कृष्टसाध्य का द्योतक है असाध्य का नहीं।

यमदूत और विष्णु दूत—पुराणों में कहीं पढ़ा है कि यमदूत विष्णु भगवान के दूत से डरते हैं जहां विष्णुदूत रहते हैं वहां यमदूत नहीं जाते हैं और जाते हैं तो मारे जाते हैं। यह भी रूपक है रोचक तथा अलंकार की भाषा में लिखा है जिसका कि कवि को लिखने का पूरा अधिकार है। वास्तविकता यह है कि अदिति का पुत्र होने के कारण विष्णु और सूर्य दोनों ही का आदित्य नाम है। सूर्य और आदित्य दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। अतः विष्णु से यहां पर सूर्य का ग्रहण है। और दूत से सूर्य की किरणों का है। यमदूत सूर्य की रश्मियों से भयभीत रहते हैं सूर्य के प्रकाश में नहीं जाते और जाते हैं तो रश्मियां उनको भस्म कर देती हैं। यह है पौराणिक कथा का रहस्य।

अथर्ववेद—उन्माद रोग का वर्णन अथर्व वेद में भी है हम यह उचित समझते हैं कि उसको भी यहां पर लिख दिया जाय।

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालभीति ।
अतोधिते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितो सति ।। अथर्व ६।१११।१

हे वैद्य यह पुरुष जो कि उन्माद रोग में फंसा हुआ है जिसके कारण बे सिलसिले की बातें करता है; तू इसको उन्माद रोग से छुड़ा दे। और जब यह रोगी उन्मादरोग से छूट जायगा तब आपकी दक्षिणा या भेंट आपको दे देगा। "भागधेयः करो बलिः" (अमरकोश)

अग्निष्टे निशमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितो सति । अथर्व ६।१११।२

हे उन्माद रोगी तेरे उन्माद वैद्य शान्त कर देगा। वैद्य कहता है कि हे रोगी मैं विद्वान् वैद्य हूं तेरी चिकित्सा करता हूं तू उन्माद रोग में मुक्त हो जायगा।२।

देवैन सा दुन्मदित मुन्मत्तं रक्षसस्परि ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितो सति ।। अथर्व ६।१११।३

हे रोगी तेरा उन्माद देवकृत हो अथवा राक्षस कृत मैं आयुर्वेद का विद्वान् हूं तेरी चिकित्सा करता हूं जिसमें कि तू उन्माद रोग से मुक्त हो जायगा ।

पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः ।
पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितो सति ।। अथर्व ६।१११।४।

हे रोगी अप्सरायें इन्द्र भग और भी समस्त देवता तुझे दे रहे हैं अब तू उन्माद रोग से मुक्त हो जाएगा ।४।

अभिप्राय यह है कि उन्मादजनक जीवाणु दूर हो रहे हैं ।

इन्द्र—मन अपना कार्य करने लगा है भग[1] अर्थात् वीर्य बढ़ रहा है समस्त देवता अर्थात ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां भी अपना कार्य कर रही हैं ये सभी चिह्न रोग से मुक्त होने के हैं अतः अब तू शीघ्र स्वस्थ हो जायगा ।

याः क्लन्दास्तमिषी च योक्षकामा मनोमुहः ।
ताभ्यो गन्धर्व पत्नीभ्योऽकरं नमः ।। अथर्व २।२।५

अर्थात् जो अप्सरा नाम की गन्धर्व पत्नियां हैं वे मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट होकर रुलाती हैं मन को विकृत करके उन्माद रोग उत्पन्न करती है उनके लिये नमस्कार करते हैं अर्थात् उन पर हम औषध रूप वज्र से प्रहार करते हैं । "नमः इति वज्रनाम"
(निरुक्त २।२०)

"मनोमुहः मनसो मोहायेभ्यः । उन्मदाकारिण्यः" (सायण)

इसका उल्लेख कृष्ण यजुर्वेदीय संहिता में भी है ।

"गन्धर्वाप्सरमो वा एतं उन्माद यति य उन्माद्यति" (तै सं ३।४।८।४)
क्रव्याद मग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहिजातवेदः ।

हे अग्ने तू वेदों का ज्ञाता है रुधिर को विकृत करने वाले अथवा रक्त वर्ण वाले जीवाणुओं को और पिशाचों को जो कि मन को नष्ट करके उन्माद और अपस्मारादि रोगों को उत्पन्न करते हैं उनको नष्ट कर दे ।

अग्नि शब्द—उपरोक्त मंत्रों में उन्माद रोग की मुक्ति के लिये अग्नि से प्रार्थना की गई है वास्तव में यहां पर अग्नि का अर्थ वैद्य है जिसके कुछ प्रमाण ये हैं ।

परित्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहे । पूर्वार्ध (ऋ. १०।८७।२२)

हे अग्नि शरीर रूप नगर का तू रक्षक है हम तेरा स्मरण करते हैं ।

[1]भगं श्रीर्योनि वीर्येच्छा ज्ञान वैराग्य कीर्तिषु । मेदिनी

सं त्वा शिशामि जागृहि अहृध्वं विप्रमन्मभिः । उत्तरार्ध ।

(ऋ० १०।८७।२४)

हे विप्र राक्षसों के सम्वन्ध में तू सावधान रह हम तेरी प्रशंसा करते हैं।

उपरोक्त दोनों मंत्रों में विप्र शब्द अग्नि का वाचक है। और विप्र का अर्थ स्वयं वेद ने वैद्य स्वीकार किया है।

यत्रौषधीः समिम्मत राजानः समिताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहामीव चातनः ।

(ऋ० १०।९७।६। यजुः १२।८७)

अर्थात् जिसके पास औषधियों का भंडार है और जो राक्षसों और रोगों का नाश करता है उस विप्र को वैद्य कहते हैं।

ओषधयः संवदन्ते सोमेन सहराज्ञा ।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि ॥

ऋ० १०।९७।२२। यजुः १२।९६

औषधियां सोम नाम की औषधि से कहती हैं कि हे राजन् वैद्य हमको जिस रोग में प्रयोग करता है हम उस रोग को दूर कर देती हैं। ब्राह्मणः–औषधि सामर्थज्ञो ब्राह्मणो वैद्यः (सायण) इसके अतिरिक्त आयुर्वेद की प्राचीन काश्यप संहिता में भी वैद्य के लिये अग्नि शब्द का प्रयोग किया है और वह भी हेरफेर से नहीं वल्कि सीधा किया है जो कि इस प्रकार है।

"जाता जाता ऋषि सुता ह्रियन्ते राक्षसैर्पदा ।
तदामहर्षयः सर्वे वह्नि शरण मन्वियुः ।
होमजापतपोयुक्ता स्ततस्तुष्टोग्निरब्रवीत् ।
इमान् धूमान् प्रयच्छध्वं प्रयुङ्ध्वं च मर्हमितान् ।
रक्षोभूतपिशाचेभ्यो न भयं वो भविष्यति ।
अग्नेः सकाशाद्धूपान् स संलब्ध्वा चाधिकोऽभवत् ।
अधृष्याः सर्वभूतानां कुमारास्ते च रक्षिताः ।

(काश्यपसंहिता पृ० १३६)

अर्थात् जब जब ऋषियों की सन्तान होती थीं तब तब ही उनको राक्षस मार दिया करते थे। जब यह स्थिति निरन्तर चलती रही तब ऋषियों ने परस्पर मिलकर परामर्श किया और निर्णय किया कि हम सबको अग्नि (वैद्य) के पास चलना चाहिये। निर्णयानुसार एक डिपुटेशन अग्नि के पास गया और वहां जाकर अपनी दुखभरी कहानी सुनाई। दुखभरी कहानी सुनने के बाद अग्नि ने ऋषियों को राक्षस नाशक धूप तथा कुछ खाने की औषधियों के भी प्रयोग बताये। और विश्वास दिलाया कि यदि इन औषधियों

का आप लोग व्यवहार करते रहेंगे तो भविष्य में राक्षस, भूत, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व, और नागादि नामके सभी रोगोत्पादक जीवाणुओं से हानि न होगी और आपके बालक स्वस्थ तथा दीर्घजीवी होंगे। इस प्रकार ऋषियों ने अग्नि से धूपादि प्रयोगों को प्राप्त किया, उन का व्यवहार किया जिसका परिणाम यह हुआ कि ऋषि कुमार सर्व प्रकार के भूतों से (जीवाणुओं से) अधृष्य तथा सुरक्षित होकर दीर्घजीवी बने। पाठक इस कथा से अब आप जान गये होंगे कि अग्नि का अर्थ वैद्य भी होता है।

राक्षस चिकित्सा—

त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे।
अजश्रृंग्यजरक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ।२।
त्वया पूर्वमथर्वाणोजघ्नूनू रक्षांसि ओषधे।
त्वयाजघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः ।१।
एयमगन्नौषधीनां वीरुधां वीर्यावति।
अजश्रृंगी अराटकी तीक्ष्णश्रृंगी विऋषतु ।६।
आनृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरा पतेः।
भिनद्मि मुष्कावपि यामिशेपः ।७। अथर्व ४।३७।

हे अजश्रृंगी औषधि हम तेरे द्वारा अप्सराओं और गन्धर्वों का नाश करते हैं। अब तू अपनी उग्र गन्ध से राक्षसों का नाश कर ।१।

हे अजश्रृंगी पूर्वकाल में अथर्वा ऋषियों ने तेरे द्वारा राक्षसों का नाश किया था। और तेरे ही द्वारा कश्यप, कण्व और अगस्त्य ऋषियों ने किया था ।१।

वीरद् जातियों की औषधियों में अजश्रृंगी अधिक प्रभावकारी है यह घातक राक्षसों और घातक रोगों का नाश करती है। सौभाग्य से यहां आगई है अब यह राक्षसों का नाश कर देगी ।६।

चारों तरफ नाचने वाले चोटी वाले अप्सराओं के पति जो गन्धर्व हैं मैं अजश्रृंगी के प्रभाव से उनके अंडकोषों का निवारण कर दूंगा और साथ ही उनके शिश्न को भी नष्ट कर दूंगा ताकि भविष्य में सन्तति ही उत्पन्न न कर सकें।

वक्तव्य—अजश्रृंगी आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि है अजश्रृंगी मेषश्रृंगी विषाणा और विषाणका आदि इसके नाम हैं।

अजश्रृंगी के अतिरिक्त वेद ने गूगल, पीला, नलदी, औक्षगन्धि और प्रमन्दिनी औषधि और लिखी हैं जिनके व्यवहार से गन्धर्वादि नाश होते हैं। न दीयन्तु अप्सरसोयां तारमवश्वसम्। गुल्गुलूः पीलानलद्यौक्षगन्धिः प्रमन्दिनी।" (अथर्व ४।३७।३)

आचार्य सायण ने अथर्व वेद भाष्य में निम्नलिखित औषधियां और सम्मिलित की हैं।

"शिग्रुं हुत्वा जलं चैव गुग्गुलुं विषमेव च ।
पिप्पलीं कृष्णलीं चैव जुहुयाच्चातनेन तु ।
औषधीं सहमानां तु पृष्ठपर्णीं तथा पराम् ।
अजश्रृंगी समस्यैताम् अमंत्रं जुहुयात् सकृत् ।

(नक्षत्र कल्प सायण भाष्य)

नोट—लेखक की वेद और आयुर्वेद नाम की रचना से यह उद्धृत है। अतः सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

त्रिदोषों के स्वरूप विज्ञान के साधन

में उपस्थित एक शंका का समाधान

लेखक—पं० हरिनारायण शर्मा वैद्य, काव्यतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य

दिसम्बर सन् ५३ की आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका में श्री भी० वी० डेग्वेकर महोदय का एक लेख उपर्युक्त शीर्षक प्रकाशित हुआ है, जिसमें—दोषों के एक गुण की वृद्धि एवं क्षय होने का शास्त्रीय प्रमाण जानना चाहा है—

यथा—"किसी भी व्याधि में तत्तद् दोष के प्रमाण में वृद्धि या क्षय होता है केवल दोष के एक गुण में नहीं।"

सर्वाङ्गीण दाह होने लगते ही कई चिकित्सक पित्त के उष्ण गुण की वृद्धि मानते हैं समग्र पित्त दोष का नहीं। यह कथन किस शास्त्रीय आधार पर किया जाता है पता नहीं चलता।

"यदि किसी पाठक को एक गुण की वृद्धि का अन्य आधार शास्त्र में उपलब्ध हो तो वह अवश्य प्रसिद्ध करे।"

लेख भर में यही एक बात जिज्ञासित एवं मुख्य है। अतः मैं यहां केवल दोषों के एक, दो या तीन, अथवा सर्वांग रूप से वृद्धि-क्षय होने का शास्त्रीय प्रमाण उट्टङ्कित करता हूँ।

इस विषय के विचार में निदान पञ्चक का आश्रय लेना बहुत आवश्यक है। निदान पञ्चक में सम्प्राप्ति और उसके सभी भेदों से विचार करना उत्तम है, क्योंकि सम्प्राप्ति द्वारा ही दोषों की दुष्टता एवं शरीर में प्रसर्पण का ज्ञान सम्यक् प्रतिपादित है। प्रस्तुत विषय, सम्प्राप्ति के एक भेद—विकल्प से सम्बन्ध रखता है।

कुपित, पृथक् या द्वन्द्व अथवा समस्त दोष, या दोषों के अंशांश—वात के रूक्ष आदि, पित्त के उष्ण आदि और कफ के गुरु आदि गुणों का पता लगाना विकल्प सम्प्राप्ति मानी जाती है। भावार्थ यह है कि रोगों की परीक्षा के समय विकल्प सम्प्राप्ति के द्वारा यह सूक्ष्म बात भी मालूम हो जाती है कि किस दोष का कौनसा एक या दो, तीन या समस्त गुण का आधिक्य है। इस विचार से चिकित्सा-कार्य में बड़ी सहायता मिलती है। चिकित्सक को सम्प्राप्ति पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

यदि एक दो ही गुण की वृद्धि या क्षय न होता रहता तो पुराने आयुर्वेदाचार्य इसका उल्लेख न करते।

इसी, दोषों के एक, दो गुण की वृद्धि वा क्षय के निमित्त से व्याधि के रूप में भी

भिन्नता पाई जाती है, और व्याधि के बलाबल के तारतम्य से रोगी को वेदना में भी तारतम्य जान पड़ता है। चिकित्सा के फल-स्वास्थ्य में भी व्यस्त समस्त गुणों का शमन रहता है। दोष आदि की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवस्था पर ध्यान देने पर रोग की सारी बातों का ज्ञान हो जाता है। इस विषय में आर्षग्रन्थ सुश्रुत का प्रमाण है—

सर्वैर्भावैस्त्रिभिर्वाऽपि द्वाभ्यामेकेन वा पुनः।
संसर्गे कुपितः क्रुद्धं दोषं दोषोऽनुधावति। सूत्र—अ० २१।३७

एक दोष अपने सम्पूर्ण, तीन, दो अथवा एक भाव से कुपित होता है और उसी अवस्था में कुपित हुए या अकुपित अन्य दोष से मिलता है और उसकी संसर्ग संज्ञा होती है।

श्लोक में त्रिभिः, द्वाभ्याम्, और एकेन स्पष्ट प्रतिपादित है "दोषाणां समवेतानां विकल्पोंऽशांशकल्पना।" इसकी टीका श्री विजय रक्षिताचार्य ने निम्नांकित की है—

अंशांशकल्पनेति—अंशा वातादिगतरौक्ष्यादयः। तैरेकद्वित्र्यादिभिः समस्तैर्वा वातादि कोपावधारणं विकल्पना। एवं विधश्च दोषकोपो निदानवैचित्र्याद्भवति। तद्यथा-वातस्य रौक्ष्यशैत्यलाघववैशद्यादिगुणस्य एवं गुणः कषायरसः कलायश्च सर्वैर्भावैर्वर्धकः। रौक्ष्यशैत्यलाघवैस्तण्डुलीयकः। रौक्ष्यशैत्याभ्यां काण्डेक्षुः। रौक्ष्ये सीधुः। पित्तस्य सर्वैर्भावैर्वर्धको कटुको रसः, मद्यं च। हिंगु कटुतीक्ष्णोष्णत्वैः। दीप्यकस्तैक्ष्ण्योष्णाभ्याम्। औष्ण्येन तिलाः। तथा श्लेष्मणो सर्वैर्भावैर्वर्धको मधुरो रसः, माहिषं च पयः। स्नेह गौरव माधुर्ये राजादन फलम्, कशेरुः शैत्य गौरवाभ्याम्। शैत्येन क्षीरिणां फलानीति।

अर्थ यह है—वात आदि दोषों का एक, दो, तीन या समस्त गुण के प्रकट होने पर उस दोष के कोप का निश्चय होता है। यही विकल्प कहलाता है। इस प्रकार का दोष-कोप कोप के कारण—निदान की विचित्रता से होता है।

उदाहरण—वात में रौक्ष्य, शैत्य आदि जो-जो गुण हैं वे ही सब कषायरस तथा मटर में भी रहते हैं अतः दोनों ही द्रव्य से वात के सभी गुण बढ़ जाते हैं। चौलाई-अपने रूक्षता शीतता और लघुता, इन तीन गुणों से वायु के इन्हीं तीन गुणों की वर्धक होती है। काण्डेक्षु—देशी मध्यम ईख या पौंडा में रूक्षता और शैत्य गुण अधिक रहता है, अतः काण्डेक्षु से वात के दो ही गुण रौक्ष्य, शैत्य बढ़ते हैं। सीधु-मद्य विशेष से केवल एक रौक्ष्य गुण की ही वात में वृद्धि होती है।

इसी प्रकार कटु—चरपरारस अथच मद्य से पित्त के सब गुण बढ़ते हैं। हींग से केवल तीन (कटु, तीक्ष्ण, उष्ण) गुण, अजवायन से केवल दो गुण और तिल से पित्त के एक गुण (उष्णता) की वृद्धि होती है।

कफ के सभी गुणों का वर्धक मधुर रस तथा भैंस का दूध है। चिरौंजी तीन गुणों

का वर्धक, कशेरू दो गुणों का और क्षीरी-दुधहर वृक्ष (बरगद, पीपल, पाकड़ गूलर, पारिस पीपर) सिर्फ एक ही-शैत्य-गुण की वृद्धि में सहायक होता है।

इस शास्त्र प्रमाण से दाह होने पर चिकित्सक का यह कहना कि पित्त के केवल एक उष्ण गुण की वृद्धि हुई, बिल्कुल-सही है। जो चिकित्सक केवल आयुर्वेद के महत्त्व पर चिकित्सा करते हैं उन्हें पग-पग पर पूर्वोक्त दोषगुण वृद्धि का अनुभव भी हुआ करता है। पूरी आशा है कि श्री डिग्वेकर जी इस शास्त्रीय प्रमाण को यथेष्ट पायेंगे। इस विषय पर विस्तार से विचार प्रकट किया जा सकता हैं। किन्तु अवकाश के अनुसार। मैंने यह मत "संधाय भाषा" के रूप में व्यक्त किया है।

वात एक होने पर भी स्थान भेद से ५ प्रकार का माना गया है। फिर वात व्याधि प्रकरण में पित्त कफ़ द्वारा पाँचों प्राण आदि का १० आवरण तथा प्राण आदि का परस्पर २० प्रकार का आवरण का पता (अनुसंधान) लगा कर सब का पृथक् लक्षण और चिकित्सा लिखी गई। और वह बराबर प्रत्यक्ष होता तथा उस विचार से चिकित्सा करने पर वैद्यों को सिद्धि भी प्राप्त होती है एवं रोगीजन स्वास्थ्य लाभ भी करते हैं। अतः आकर-ग्रन्थों का सतत स्वाध्याय करते हुए सूक्ष्मरूप से निदान करने पर "व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानम्" और फिर "वेदनायाश्चनिग्रहः" भी हो जाता है।

आयुर्वेद विद्वत् परिषद, बम्बई

भिषगाचार्य श्री भी. वि. डेग्वेकर का अध्यक्षीय भाषण

श्रीयुत अध्यक्ष, शुद्धायुर्वेद अभ्यासक्रम समिति, समिति सदस्य, शुद्धार्वेद के पुरस्कर्ता प्रांतीय सदस्य व बंधुभगिनी गण--

आजका बड़ा सौभाग्य का दिवस है कि, जिस शुद्ध आयुर्वेद की परिपाटी हमारे देश में पुनश्च सरकार द्वारा स्वीकृत की जावे इस सम्बन्ध का प्रयत्न गत १५ वर्ष से एकसा चालू रहा, वह, सफल होकर आज उसी बम्बई सरकार ने जिसने मिश्र शिक्षण को आग्रहपूर्वक प्रारम्भ किया था—उसी प्राचीन शुद्ध परिपाटी का पुनरुत्थान करना स्वीकार किया है। इस विचार-परिवर्तन के लिये प्रधानमन्त्री श्री मुरारजी देसाई तथा आरोग्यमन्त्री श्री शान्तिलाल जी शाह धन्यवाद के पात्र हैं। यह मार्गदर्शन अन्य प्रान्तों पर भी अपना परिणाम करते हुए इसी प्रकार का शुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम वहां भी स्वीकार किया जायगा ऐसी हमें पूर्ण आशा ही नहीं किंतु निश्चित विश्वास है। कारण, हर एक प्रांत इस बात का अनुभव कर रहा है कि मिश्र शिक्षण प्राप्त स्नातकों में से ९९ प्रतिशत आयुर्वेद से इतनी घृणा रखते हैं कि अपने को वैद्य कहलाना भी उन्हें मानो विच्छू काटने के समान तापदायक होता है। तथा आयुर्वेदीय औषधियों का सम्पर्क भी उनके औषधालयों में नहीं पाया जाता। जिस चिकित्सा का ध्येय चरक में 'नात्मार्थं नापि कामार्थं अथ भूतदयां प्रति। इस सूत्र में संगठित किया है उसके स्थान में केवल व्यापार एवं अर्थलाभ को साधक बनाने वाली चिकित्सा-पद्धति उन्हें अधिक प्रिय होती है। यदि यह मिश्र शिक्षण पांच पचास वर्ष इस देश में चालू रहा तो आयुर्वेद के चिकित्सक अजायब घर म (म्यूझियम में) रखने योग्य संख्या में भी प्राप्त न हो सकेंगे। इस परिस्थिति का योग्य आकलन बम्बई सरकार को होकर शुद्ध पाठ्यक्रम निर्माण करने की सुबुद्धि हुई यह हमारे देश का परम सौभाग्य है।

हमारा कर्त्तव्य—अब हमारा कर्त्तव्य है कि सर्व दृष्टि से विचार करते हुए इस प्रकार का पाठ्यक्रम निर्माण करें कि जिससे हमारे शास्त्र के मूल तत्वों में किसी भी प्रकार की बाधा न आते हुए तथा शुद्धायुर्वेद की प्राचीन परम्परा एवं चिकित्सा पद्धति के हर एक अंग को प्राधान्य देते हुए वह प्रणाली प्रत्यक्षोपयोगी हो सके।

शास्त्रज्ञों के दो विभाग—इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हमें हमारे शास्त्रज्ञों के प्रथमतः दो विभिन्न विभाग करने चाहिये, जैसे कि आधुनिक चिकित्सा शास्त्र को भी मान्य हैं; एक काय-चिकित्सक (फिजीशियन्स) तथा दुसरे शल्य-चिकित्सक (सर्जन्स)। जिस प्रकार

आधुनिक शास्त्रज्ञों में भी विशेषज्ञ (स्पेशालिस्ट्स्) हुआ करते हैं—उदाहरणार्थ, शालाक्य-चिकित्सक (Those who treat eyes, ears, nose and throat), दन्त-चिकित्सक (डेंटिस्ट्स्), मलमूत्रश्लेष्मादि विश्लेषक (पॅथॉलॉजिस्ट्स्) इत्यादि उसी प्रकार हम भी शुद्धायुर्वेद द्वारा रोगों की सर्व प्रकार की चिकित्सा करने वाले चिकित्सक प्रथम निर्माण करें।

पंचकर्म—इन चिकित्सकों को वमन, विरेचन, बस्ति, शिरोविरेचन, तथा रक्तमोक्ष कराने के सब प्रकार के उपाय गुरुगृह में कराये जाने की नितांत आवश्यकता पाठ्यक्रम में अन्तर्भूत की जावे। रक्तमोक्ष के लिये जलौका प्रयोग, सिराव्यध, घटी, अलावू, तुंबी आदि प्रयोग प्रत्येक गुरु अपने चिकित्सालय में स्वतः करे और विद्यार्थियों से करावे। स्नेहन और स्वेदन ये दोनों—पंचकर्मों के पूर्व कराने के—साधन हैं। किस व्याधि में कौन से द्रव्य द्वारा स्नेहन कराना और किस प्रकार का स्वेदन कराना इसका सम्पूर्ण आलेख (चार्ट) बनाकर उस आलेख को चिकित्साकर्म कराने के स्थान पर बोर्ड पर लटका हुआ रखा जाय। इस प्रकार हर एक पंचकर्म के आलेख तैयार करके विद्यार्थिओं के सन्मुख रहने से सुविधा होती है।

सिराव्यध—सिराव्यध कराने की कला प्रत्येक वैद्य को अवगत कर लेना नितांत आवश्यक है। वह स्वल्प प्रयत्न साध्य है। आवश्यकतानुसार हर एक गुरु वैद्य को एक विशिष्ट स्थान में आठ दिन रहकर यह, और अन्य सरल कलायें अवगत कराने का साधन, इस अभ्यासक्रम समिति द्वारा बम्बई सरीके प्रधान स्थान में निर्माण किया जाना चाहिये।

अन्य उपक्रम—नस्य, धूमपान, गंडूष, कवलग्रह, प्रतिसारण, मुखालेप, मूर्धतैल, अभ्यंग, सेक, पिचु, शिरोबस्ति, कर्णपूरण, आश्चोतन, अंजन, पुटपाक, तर्पण इत्यादि का प्रात्यक्षिक प्रत्येक वैद्य को विद्यार्थी को अपने गुरु-गृह में कराना नितांत आवश्यक है। यह करा दिया जाने का सर्टिफिकिट गुरु से मिलना चाहिये। तथा प्रात्यक्षिक परीक्षा में इन सब विषयों की परीक्षा ली जानी चाहिये।

अष्टविध परीक्षा—अष्टविध परीक्षा म नाड़ी और मूत्र सम्बन्धी जितना विवरण योगरत्नाकर के प्रारम्भिक भाग में दिया हुआ है उतना विद्यार्थियों को मुखाग्र होना आवश्यक है। प्राचीन पद्धति के अनुसार ये सब विषय मुखाग्र रहा करते थे। वही पद्धति फिर से, इस गुरुपरंपरागत शिक्षण क्रम में अन्तर्भूत की जानी चाहिये। बाल वय में ग्रंथ के ग्रंथ कंठस्थ करा दिये जाते थे; उसके कारण विषय सदैव उपस्थित रहा करता था। वही प्रथा जब फिर से चलेगी तब ही प्राचीन पद्धति के वैद्य निर्माण हो सकेंगे।

मूत्र परीक्षा—तैलबिंदु द्वारा की जाने वाली मूत्र परीक्षा पूर्णतया शास्त्रीय (सायंटिफिक) है। मूत्र में विद्रावित (डिझाल्व्ह्.ड) जो द्रव्य रहते हैं उनके कारण मूत्र की ऊपर की सतह (सरफेस) में एक प्रकार का खिचाव उत्पन्न होता है। इसे 'सरफेस टेन्शन'

कहते हैं। उन द्रव्यों के अभाव में तैलबिंदु मूत्र पर एकदम प्रसारित होता हैं। वे द्रव्य विद्रावित हों तो वह बिन्दु धीरे-धीरे प्रसारित होता है। कई द्रव्य ऐसे हैं जिनके कारण प्रसारण बिलकुल नहीं होता। अतएव नागार्जुन की सुझाई हुई यह तैलबिंदु परीक्षा पूर्णतया शास्त्रीय है।

आप्तवाक्य पर श्रद्धा—हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि आधुनिक शास्त्रों के अनुसार जिसको हम प्रमाणित कर सकें वही सशास्त्र हैं, और बाकी सब अशास्त्र है, यह धारणा बिलकुल असत्य है। हमारा शास्त्र जो कुछ कहता है वह आप्तवाक्य है।

रजस्तमोभ्यां निर्भुक्ताः तपोज्ञानबलेन ये। येषां त्रिकालममलं ज्ञानमव्याहतं सदा॥
आप्ता शिष्टाविबुद्धास्ते, **तेषां वाक्यमसंशयम्**। सत्यं, वक्ष्यंति ते कस्मादसत्यं **नीरजस्तमाः**॥
च. सू. ११-श्लो. १८, १९ वाक्यों में कहे हुए शब्द हमारे दृढ़ विश्वास के विषय होना चाहिये। गत ५० वर्ष के कई, हमारे देश के उभय शास्त्रकोविद विद्वानों ने इस श्रद्धा को डावांडोल कराकर **शारीरे सुश्रुतो नष्टः** इत्यादि अनर्गल उक्तियां प्रचलित कराते हुए शास्त्र वाक्यों पर जो आघात किये हैं, उसी के फलस्वरूप प्राचीन आयुर्वेद नष्ट होने पर आया था, परन्तु इसी दृढ़ श्रद्धा के आधार पर हम उसे फिरसे पुनरुज्जीवित कर सकेंगे। आयुर्वेदीय ग्रंथचतुष्टय हमारी सात्विक श्रद्धा का विषय है, उसका हर एक वाक्य सत्य है, ऐसा दृढ़ विश्वास होना चाहिये। कारण वह आप्तों ने निर्माण किया हुआ हैं। दृढ़ श्रद्धा के बिना कार्य कभी भी सफल नहीं होता।

नाडी परीक्षा—इसी प्रकार हमारी नाडी परीक्षा भी पूर्णतया शास्त्रसिद्ध हैं। त्रिदोष शारीर द्रव्य हैं, वे उदीरित होने के पश्चात् अन्न रस में संमिश्रित होकर रसरक्त परिणालिका से रक्त में मिश्रीभूत होकर जो रक्त धातु पर परिणाम करते हैं वही परिणाम रक्तवहरोहिणी (नाडी) द्वारा विशिष्ट प्रकार का स्पर्श ज्ञान हमें कराता है। अतएव नाडी मंद, तीक्ष्ण, कुटिलगति इत्यादि अनेक प्रकार चलती हुई हमें प्रतीत होती है। उसकी परीक्षा बहुत दिनों के अनुभव के पश्चात् हो सकती है। उसके लिये वर्णों का अनुभव चाहिये। इस दृष्टि से योगरत्नाकर में जो नाड़ी सम्बन्धी प्रमुख लक्षण वर्णित हैं उन्हीं के अनुसार तद्विषयक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

आलेख—मल, मूत्र, शब्द, जिह्वा आदि द्वारा जो दोषों का ज्ञान हो सकता है, उससे दोषविकृति की पूर्ण निश्चिति होती है, अतः अष्टविध परीक्षा, गुरु-गृह में हर एक कष्टसाध्य व्याधि में अवश्य ही कराई जाय। तथा तत्सम्बन्धी हर एक रोगी का विवरण, विद्यार्थी द्वारा लिखवाने की परिपाटी स्वीकृत की जाय। तीन वर्षों के पाठ्यक्रम में निदान ३०० रोगियों का (भिन्न व्याधियों से पीड़ितों का) **आलेख** हर एक विद्यार्थी का अपने हाथ से लिखा हुआ, और गुरु के हस्ताक्षर व तिथि के समेत, परीक्षकों को उपलब्ध कराया जाना चाहिये।

शुद्धायुर्वेदीय पाठ्यक्रम यशस्वी होने के लिये जिस प्रकार, संक्षेप में, ऊपर लिखी हुई बातों की आवश्यकता है उसी प्रकार अन्य अनेक आवश्यकताएं हैं जिनका अब विचार करें।

(१) शिष्यों की पात्रता—इस पाठ्यक्रम के लिये, विद्यार्थी जितना अधिक अन्य शास्त्रपठित हो, उतनी ही उसकी विषय ग्रहण शक्ति अच्छी होती है। तथा वह बहुश्रुत भी होना चाहिये। आजकल बनारस की संस्कृत परीक्षाओं में कुछ आधुनिक विषय भी समाविष्ट किये जा रहे हैं। प्राचीन परम्परानुसार धातु-रूपावली शब्द-रूपावली, समासचक्र आदि कंठगत किये हुए विद्यार्थी अधिक उपयुक्त होंगे। परन्तु आज वे उपलब्ध न होंगे। अतः निदान संस्कृत विषय लेकर मैट्रिक वा तत्समान कक्षोत्तीर्ण विद्यार्थी, अथवा काशी, कलकत्ता आदि की निदान संस्कृत प्रथमपरीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थी लिये जायें, और गुरु-गृह में आवश्यकतानुसार संस्कृत का भी शिक्षण समयानुकूल दिया जाय। आयुर्वेद शास्त्रीय भाषा, चरक के अतिरिक्त अन्य तीनों ग्रंथों की, सरल है, और वाग्भट पूरा पढ़ लेने के पश्चात् चरक भी समझा जा सकता है। अतएव ऊपर वर्णन किया हुआ साधारण संस्कृत का ज्ञान भी पर्याप्त हो सकता है। पाठ्यक्रम में अभी जो पात्रता निश्चित की है वही योग्य प्रतीत होती है। तीन मास शिक्षण देने के पश्चात् गुरु विद्यार्थी की लिखित परीक्षा लेवे, और योग्यता प्रतीत हो तो आगे शिक्षण चालू रखे। नहीं तो उसे अयोग्य ठहरा कर अन्य कार्य करने दे। इस सम्बन्ध में गुरु का निर्णय ही मान्य किया जाय।

(२) गुरु की पात्रता—यह बड़ी जटिल समस्या है। ग्रंथचतुष्टय पढ़ाने वाले वैद्य आज की परिस्थिति में हर एक प्रांत के शहरों में भी उंगलियों पर गिनने लायक मिलना कठिन है। विद्यार्थी की प्रत्येक शंका का शारीर दृष्टि से समाधान करना यही आयुर्वेदीय शिक्षण का प्रमुख अंग है। त्रिदोष, अन्य शारीर द्रव्यों के समान ही, शारीर द्रव्य हैं। इसका परिषद् द्वारा निश्चय हो जाने पर भी उन्हें अत्यन्त शक्तिमान् द्रव्य कह कर शक्ति विशेषण प्रयोजित करने का ढकोसला अभी भी कई वैद्यों का कायम है। कारखाने के यन्त्र की एक छोटी सी सूची का भी महत्व उतना ही होता है जितना एक बड़े भारी चक्र का। शरीर के हर एक अवयव का शरीर संचालन में उतना ही महत्व है जो एक अत्यन्त सूक्ष्म अवयव का। फिर दोष को ही अत्यन्त शक्तिमान् और मल हीन शक्तिमान् कहने में तात्पर्य क्या ? क्षयी मनुष्य का जीवन जिस मल पर अवलम्बित रहता है उसे क्या कम शक्तिमान् कहेंगे। दोष शरीर को धारण करते हैं (देहं संधारयंत्येते) तो मल भी धारण करते हैं। (त्रयो दोषा धातवश्च पुरीषं मूत्र एव च। देहं संधारयंत्येते।)

अतएव अन्य शारीर द्रव्यों के समान ही दोष भी शारीर द्रव्य हैं। किन्तु उनका महत्व इस लिये कि असात्म्येंद्रियार्थसंयोगादि द्वारा जो शरीर पर दुष्परिणाम होता है उसका प्रथम आघात इन्हीं दोष संज्ञक तीन द्रव्यों पर होता है। तत्पश्चात् धातु और

मलों पर होता है। अतएव उनको 'दोषधातुमलमूलं हि शरीरम्' इस वाक्य में आद्यस्थान दिया है। प्रथम आघात सहन करने वाले जैसे दलरक्षक सिपाही होते हैं उसी प्रकार ये भी हैं। किन्तु उसके कारण वे सर्व शक्तिमान् नहीं होते। धातु मलों का सहयोग न हो तो दोष अकेले शरीर में क्या कर सकेंगे? अतएव सहकार्य की दृष्टि से सब का महत्व एक है। वे सब ही १३ पदार्थ समकक्षीय हैं। दोषों को प्रथम आघात सहन करना होता है। यही उनका महत्व है। उन्हीं की आद्य विकृति सब रोगों का कारण होती है। 'दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेककारणम्' दोष धातु मलों के सहकार्य से शरीर चलता है, न केवल दोषों से। अतएव सब ही द्रव्य शक्तिमान् हैं। उनमें तरतमभाव दिखाने से कोई लाभ नहीं।

ये दोष धातु मल संज्ञक सिद्धांत, विद्यार्थियों के अंतःकरण में कूटकूट कर भरनेवाला गुरु होना चाहिये। अतएव ग्रंथ-चतुष्टय नहीं तो निदान अष्टांग हृदय पूरी तौर से पढ़े हुए और सर्वांगसुन्दरा, हेमाद्रि टीकाओं के सहयोग से विवरण करने वाले गुरु तो अवश्य ही होना चाहिये। जिस गुरु को मान्यता देनी हो वह, यदि कमेटी योग्य और आवश्यक समझे तो, सूत्र या शरीरस्थान का कोई विशेष अध्याय विवरण करके सुनावे। किन्तु कमेटी ने एक बार गुरु से विचार विनिमय अवश्य ही करना चाहिये। सब ही गुरु के आवेदन-पत्र, बिना प्रत्यक्ष शिक्षण-पद्धति का परिचय किये, मान्य करना योग्य न हो।

(३) शल्य-शालाक्य और सौतिक का गुरुगृह में प्रात्यक्षिक कैसे हो सकता है? इन तीनों विषयों का प्रात्यक्षिक सर्व साधारण को आवश्यक न रखते हुए, विशेष ज्ञेय (स्पेशलाइज्ड) कोटि में उनका अंतर्भाव किया जाय। उनमें भी सौतिक केवल स्त्री वैद्यों के लिये ही एक विशेष विषय मान्य किया जाय। आजकल कई बड़े शहरों में सूतिकागृह रहा करते हैं। गुरु को अपने स्त्री-विद्यार्थियों को प्रात्यक्षिक के लिये वहां भेज कर अधिकारियों से प्रथम निरीक्षण करने की, तथा तत्पश्चात् स्वयं प्रसूति कराने की अनुज्ञा सरकार द्वारा प्राप्त करा लेनी चाहिये। इस प्रकार क्रमशः इस विषय का ज्ञान अधिकाधिक हो सकेगा। शल्य-शालाक्य में केवल औषधि (अंजन, क्षारकर्म, नस्य, मूर्धतैल, पुटपाक आदि) द्वारा जो चिकित्सा, शास्त्र में वर्णित है, वही गुरु-गृह में हो सकती है। उसका प्रयोगभी तो अभी वैद्य-समाज नहीं करता। उतना ही यदि प्रारम्भ किया जाय तो चिकित्सा सौकर्य कई गुना बढ़ जायगा। अतः अभी वही प्रारम्भ किया जाय।

(४) वातादि दोषों का प्रात्यक्षिक—दोषों की अवस्थायें—दोष शारीर द्रव्य हैं यह तो निश्चय हो ही चुका है। समावस्था में वे शरीर के भीतर भी रहते हैं अतः उस अवस्था में उनका प्रात्यक्षिक नहीं हो सकता। विकृतावस्था में वे प्रमाण से वृद्ध अथवा प्रमाण से क्षीण होते हैं। क्षीणावस्था में भी प्रात्यक्षिक नहीं हो सकता। परन्तु जब प्रमाण से वृद्ध होते हैं तब वे शरीर से बाहर निकलते हैं अथवा वमन विरेचन बस्तिद्वारा बाहर निकाले जा सकते हैं। इसी अवस्था में उनका प्रात्यक्षिक होता है। दोषों की एक और

अवस्था होती है, जिसे आमावस्था कहते हैं। इस अवस्था में ये आमसंज्ञक द्रव्य के साथ मिश्रित होकर फिर बाहर निकलते हैं। वातदोष जब आमामिश्रित होगा तब उसमें दुर्गंध नहीं रहेगी। इसी प्रकार वृद्धपित्त का वर्ण पीला व हरा (शुक्लारुणवर्ज्य:) रहेगा गंध विस्र अर्थात् आमगंधी तथा रस चिरपिरा और खट्टा (रसौ च कटुकाम्लौ) ऐसे रहेंगे। कारण वृद्धावस्था में प्रमाण में वृद्धि होती है। गुण वही रहते हैं किन्तु अधिक प्रमाण में। आमयुक्त कफ मटमैला, तारयुक्त, स्त्यान (खींचने पर रबर के समान फैलने वाला) शराप को या गिरने के स्थान पर चिपकने वाला होता है। ये सब लक्षण अष्टांग संग्रह सूत्रस्थान २१ अध्याय में दिये हुए हैं।

किस अवस्था में दोषों का प्रात्यक्षिक हो सकता है ?

एवं दोषों की (१) आम-पक्वावस्था (२) वृद्ध-क्षीणावस्था तथा (३) समावस्था ऐसी केवल तीन प्रकार की अवस्थायें हुआ करती हैं। इनमें से ये हमें प्रथम व द्वितीया-वस्थाओं में प्रत्यक्ष होते हैं। तीसरी अवस्था में नहीं हो सकते। क्षीणावस्था में भी प्रात्यक्षिक नहीं हो सकता, कारण वे उस अवस्था में भी बाहर नहीं आते। आम या वृद्धावस्थाओं में ही उनका प्रात्यक्षिक हो सकता है। अतएव इसी वृद्धावस्था में वमन-विरेचनादि पंचकर्मों द्वारा जब ये द्रव्य बाहर निकलते हैं तब ही उनका प्रात्यक्षिक होता है।

वमन में कफद्रव्य बाहर निकलता हुआ प्रत्यक्ष दिखाई देता है। शीत ऋतु में स्वस्थ मनुष्य को भी नासिका द्वारा तथा खकार द्वारा यह द्रव्य निकलता है। इस ऋतु में कफदोष का संचय होते रहने के कारण यह द्रव्य उत्पन्न होता रहता है। प्रमाण में वृद्ध होते ही शरीर से बाहर फेंका जाता है। दोष की वृद्धि जब इतनी अधिक नहीं होती कि व्याधि को उत्पन्न कर सके तब कोई व्याधि तो नहीं होती; किन्तु वह वृद्ध दोष शरीर से बाहर अवश्य ही आता रहता है। इसी वृद्ध कफदोष संज्ञक द्रव्य में हमें कफ के गुणों का—'स्निग्धः शीतो गुरुमंदः श्लक्षणो मृत्स्नः स्थिरः कफः।' प्रात्यक्षिक होता है। प्राचीन वैद्य इसी प्रकार प्रात्यक्षिक करते थे, और आधुनिक वैद्य भी, जिन्हें पाश्चिमात्य वैद्यक शास्त्रों का सम्पर्क तक नहीं है, अभी भी करते हैं। परन्तु आधुनिक शास्त्रज्ञों ने, तथा पाश्चिमात्य शास्त्र भी पढ़े हुए प्रसिद्ध वैद्यों ने, इन पदार्थों की मल संज्ञा का, योग्य शास्त्रीय अर्थ न समझते हुए, अनर्गल प्रलापरूप टीका करना प्रारम्भ किया। इनमें अग्रगण्य पूना के स्वर्गीय डॉ० गर्दे थे। नासिका या खकार से निकलने वाले द्रव्य को शारीर कफदोष, वमन में गिरने वाले पित्त को पित्तदोष, तथा अपान अथवा मुखमार्ग से निकलने वाले वायु को वातदोष, ऐसी संज्ञा देने वाले तथा इन्हीं वात-पित्त-कफों से शरीर उत्पन्न होता है—वातपित्तश्लेष्माणो एव देहसंभवहेतवः—कहने वाले ऋषि कितने मूर्ख कहे जाने योग्य हैं, इस प्रकार की टीका करने वाले ही बड़े विद्वान् समझे गये; तथा आधुनिक पाश्चिमात्य शिक्षा-प्राप्त वैद्य भी उसी का प्रचार करने लगे।

'तत्र वायुः सदा सूक्ष्म इतरौ तु द्वयात्मकौ।' और 'सूक्ष्मत्वं नाम इह अतींद्रियत्वम्।' इस प्रकार की स्वकपोलकल्पित व्याख्या कर दी। यह विचार प्रगट करते समय निदान 'सूक्ष्म' शब्द का अर्थ अरुणदत्त ने क्या किया है उसको तो ध्यान में लेना था। 'सूक्ष्मः स्रोतः प्रचारित्वात्' जिसका संचार स्रोतसों में होता है तथा जिसके गुण रूक्ष, लघु, शीतादि हैं वह पदार्थ अतींद्रिय कैसे हो सकता है। रूक्ष लघ्वादि, अतींद्रिय पदार्थ के गुण क्या कभी हो सकते हैं?

इस प्रकार जो विषय सीधासाधा था, समझने योग्य था उसको अपनी अशुद्ध विचार-धारा द्वारा उलटा-सुलटा करते हुए, शास्त्रीय विज्ञान में बड़ी बाधा उत्पन्न की। चरक के वायु सम्बन्धी 'स हि भगवान्...धाता...प्रजापतिः विश्वकर्मा...विष्णु...वायुरेव भगवानितिः' इस वाक्य पर चक्रदत्त ने क्या लिखा है, वह देखिये 'वायुरिह देवतारूपोऽभिप्रेतः। तेन तस्य भूतरूपचतुर्युगान्तकरानिलकरणलिंगमविरुद्धं, एवं यदन्यदप्यनुपपद्यमानं वायोः तदपि देवतारूपत्वेनैव समाधेयम्।' इस प्राचीन टीका की ओर जरा भी ध्यान न देते हुए तथा किसी भी शारीर द्रव्य को, यदि वह बड़े बड़े शारीर कार्य कराता हो तो उसे बड़े बड़े विशेषण अर्थवादात्मक दिये जाते हैं। इसका भी विचार न करते हुए, रूक्ष शीतादि गुणयुक्त वायुद्रव्य को अतींद्रिय कह देना कितना धाष्टर्य है, यह आप ही देखिये। आयुर्वेद की प्रगति में यदि कोई बड़ी भारी बाधायें आज तक आई हैं, तो वे यही कि, आधुनिकों ने प्राचीन टीकाकारों के विचार की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। बुद्धिमत्ता का ठेका प्राचीनों ने ही लिया था, आधुनिकों में उसका अभाव है, ऐसा मेरा मत नहीं है। परन्तु प्राचीन ग्रंथों को जब हम समझना चाहते हैं तो प्राचीन टीकाकारों ने उस सम्बन्ध में क्या कहा है इसकी ओर हमे पूरा ध्यान देना चाहिये यही मेरी धारणा है।

एवं वायु अतींद्रिय नहीं है किन्तु बाह्य वायु के (हवा के) समान ही एक वायुरूप पांच भौतिक द्रव्य है, यह सिद्धांत चरक सुश्रुतादि ग्रंथों के वाक्यों से निश्चित होता है। उसी प्रकार पित्त कफ भी पांच भौतिक द्रव्य हैं। तथा इन द्रव्यों का प्रात्यक्षिक उनको वृद्धावस्था में वमन विरेचनादि द्वारा शरीर से बाहर पड़ने के पश्चात् किया जा सकता है। यह बात निश्चित रूप से स्थिर हो जाना चाहिये।

(५) शारीर प्रात्यक्षिक—जितने शरीरावयव स्थूल हैं, उनका प्रात्यक्षिक आज उपलब्ध होने वाले आलेखों (charts) पर से हर एक गुरु द्वारा अपने विद्यार्थियों को करा दिया जा सकता है। चारों प्रकार की सिराएं **रोहिणी, नीला, अरुण** तथा **गौरी** और धमनी, भी आलेखों में दिखाई जा सकती हैं। कला, स्रोतस्, द्वादशाग्नि, सप्तत्वचा, मर्म ये सब सूक्ष्म होने के कारण उनका प्रात्यक्षिक नहीं हो सकता, किन्तु अनुमान प्रमाण द्वारा निश्चित कराई जा सकती हैं।

प्रत्यक्षतश्च यत् दृष्टं शास्त्रदृष्टं च यद्भवेत्। समासतस्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्धनम् ॥

इस उक्ति के अनुसार जो विषय हमें प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता उसे शास्त्रदृष्ट समझ कर उसका विज्ञान विद्यार्थियों को करना चाहिये।

सुश्रुत का भाषान्तर :—इस सम्बन्ध म श्री पटवर्धन जी का अंग्रेजी में लिखा हुआ सुश्रुत शारीर का भाषांतर हिन्दी भाषा में कराने का प्रयत्न तत्काल किया जाना चाहिये। उससे हर एक गुरु को शारीर पढाना बड़ा ही सुलभ हो जायगा। और सुश्रुत की प्रत्यक्ष शारीर के विज्ञान की परम्परा आदर्श के समान प्रत्यक्ष हो सकेगी।

(६) शिक्षण-पद्धति विषयप्रधान हो अथवा ग्रंथप्रधान

ग्रंथ प्रधान शिक्षण :—विषयप्रधान शुद्ध आयुर्वेद के ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हैं। वे तज्ञ विद्वानों द्वारा तैयार कराने होंगे। मेरा निजी मत ऐसा है कि हमारे ग्रंथ-चतुष्टय में एक शब्द भी निरर्थक नहीं है। आजकल हमें बारम्बार सुनाया जाता है कि इन प्राचीन ग्रंथों में जो कुछ उपयुक्त है वह तो ले लिया जाय, किन्तु जो विस्तार अनुपयुक्त है वह अलग कर दिया जाय। किन्तु मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि इनमें अनुपयुक्त ऐसा एक अक्षर भी नहीं है। प्राचीन लेखक वैय्याकरणों के समान ही 'अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते' इसी विचारधारा के अनुयायी रहे हैं। अतः व्यर्थ का विषय उसमें है ही नहीं। ग्रंथ चतुष्टय में एक ग्रंथ में की वही बात—जब कभी उन्हीं वाक्यों में—दूसरे में भी कही गई है। अतः केवल यही पौनः-पुन्य (repetition) निकाल देने की आवश्यकता है किंतु यह कार्य अच्छे विद्वान् वैद्यों द्वारा कई दिन तक करने योग्य है। जब तक वह होकर, मान्य ग्रंथ तैयार नहीं होते तब तक **ग्रंथप्रधान पठनपाठन** ही सुविधा का रहेगा।

ग्रंथोक्त श्लोक कंठ करने की प्रथा

दूसरे, हमें फिर से प्राचीन **श्लोक कंठ करने की प्रथा** का पुनरुज्जीवन करना है। वह प्रथा विशेषतः निदान और चिकित्सा के लिऐ बड़ी ही उपयोगी होती है। अष्टविध परीक्षा, सर्व रोग निदान, दोषों के समावस्था, क्षीणावस्था, वृद्धावस्था का स्वरूप, माधव निदान समग्र ये कंठ होने से चिकित्सा बड़ी ही सुलभ होती है। इस दृष्टि से ग्रंथप्रधान शिक्षण-पद्धति ही अभी विशेष सुविधाजनक होगी। इस तत्व को सरकारी पाठ्यक्रम के विधाता भी मान्य किये हुए हैं, कारण अष्टांगहृदय ग्रंथ ही पाठ्यक्रम के एक परीक्षापत्र में अंतर्भूत किया हुआ है। ग्रंथों की भाषा भी प्रासादिक होने के कारण विद्यार्थी उसी से परिचित होना चाहिए।

शुद्ध आयुर्वेदीय शिक्षणपद्धति का उद्देश्य

टीका पढ़ने की आवश्यकता—प्राचीन शिक्षाप्रणाली के अनुसार इन ग्रन्थों की निदान एकेक टीका भी पाठ्यक्रम में अन्तर्भूत होनी चाहिये। उसके अतिरिक्त ग्रंथ ठीक समझने की पात्रता विद्यार्थियों में न आ सकेगी। शास्त्रीय ज्ञान, वास्तविक और परिपूर्ण

करा देना, यही इस शुद्ध आयुर्वेदीय पद्धति का उद्देश है, ऐसा मैं समझता हूं। ग्रंथों का वास्तविक अर्थ, टीकाकारों का विवेचन पढ़े बिना विज्ञात नहीं हो सकता। विद्यार्थी तो अनभिज्ञ होते ही हैं, किन्तु उनके गुरु भी जब तक टीका नहीं पढ़ते, तब तक वास्तविक अर्थ से अपरिचित रहते हैं, और अन्त में जब उनका अर्थ टीकाकारों के विचार से भिन्न किया जाने पर विषय समझने में आपत्ति आने लगती है, तब इन्हीं मान्य टीकाकारों का अर्थ ही निर्णायक लेना पड़ता है। एवं ये टीकाएं मार्ग दर्शक (Mile Stones) होती हैं। तथा सूक्ष्मादि शब्दों के वास्तविक अर्थ समझने में सहायक होती हैं। यदि ग्रंथ चतुष्टय के आधार पर शिक्षणक्रम निश्चित करना हो तो हर एक ग्रंथ की एकेक टीका (१) अरुणदत्त (२) चक्रपाणि (३) डल्हण तथा (४) इंदु भी पाठ्यक्रम में अन्तर्भूत की जावें। शुद्ध आयुर्वेदीय शिक्षणक्रम यशस्वी होकर फिर से गत पिढ़ी के गुरुवर्य लागवण कर, त्र्यंबक शास्त्री जैसे आयुर्वेद के विद्वान् पैदा कराना हों, तो वही प्राचीन पाठ्यक्रम मान्य करना होगा। केवल उदरभर वैद्यों की वृद्धि होने के लिये मिश्र शिक्षण है ही।

(७) पाठ्य पुस्तकें

ग्रंथप्रधान शिक्षण इस परिषद को मान्य होता हो तो पाठ्य पुस्तकें अभी बनाने की आवश्यकता ही नहीं है। किन्तु यदि वह अस्वीकृत हो तो प्रथम हर एक विभाग सम्बन्धी एकेक वाक्य ग्रंथचतुष्टय में से एकत्रित किया जाना चाहिये। उसमें से एक भी विचारणीय वाक्य, अपनी योजना में अन्तर्भूत होना रह न जावे, इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। इस कार्य के लिये तीन विद्वान् वैद्य वेतन देकर नियुक्त किये जाना चाहिये। प्रथमतः विषयों का वर्गीकरण करना होगा, तत्पश्चात् तत्तद्विषय सम्बन्धी वाक्यों का। बाद में समानार्थी वाक्यों में से एक ही वाक्य लेकर अन्य वाक्यों में जो एक या अधिक विचार हों उनका अन्तर्भाव इसी में करना होगा। इस सब कार्य में, मूल विचारों में जरा भी बाधा न आवे, इस ओर विशेष ध्यान देना होगा। इस सम्बन्ध में एक कमिटी नियुक्त होना चाहिये। अभी तो ग्रंथवार पाठ्यक्रम ही मान्य किया जाय। जब इस प्रकार विषय प्रधान ग्रंथ बन जाय, तब परिवर्तन किया जा सकता है।

(८) विषयवार ग्रंथांश का व्याख्यानों में विभाजन

शुद्ध आयुर्वेद का अभ्यासक्रम, जो बम्बई सरकार द्वारा अभी प्रसिद्ध हुआ है, उसमें जितनी व्याख्यानों की संख्या, हर एक विषय के लिये नियुक्त है वह पर्याप्त प्रतीत होती है। उसमें अभी परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्यक्षानुभव के पश्चात् विद्यालयोंसे अथवा गुरुजनों से जो सुझाव होंगे उनका विचार एक वर्ष शिक्षण के पश्चात् किया जा सकता है।

यहाँ तक पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में जो सूचनाएं करनी थी उनका विचार हुआ। अब इस पाठ्यक्रम के अनुसार जो विद्यार्थी परीक्षोत्तीर्ण होंगे उनको प्रतीत होनेवाली असुविधाओं का विचार करें। (क्रमशः)

नि. भा. आयुर्वेद-शास्त्रचर्चा-परिषद्, हरिद्वार

परिषद् का आठवाँ दिवस

ता० २७-५-५३

(गतांक से आगे)

आचार्य श्री यादव जी—चरक आदि सर्व मान्य ग्रंथों से भेद होना त्याज्यता का हेतु नहीं है । कहीं-कहीं चरक और सुश्रुत में भी मतभेद है, किन्तु हम दोनों ही संहिताओं को मान्य समझते हैं और काम में लाते हैं । इसी प्रकार नागार्जुन का चरक से वीर्य के बारे में यदि मतभेद हो भी तथापि वह (नागार्जुन का मत) इस कारण त्याज्य ही है, यह विचार मेरी समझ में ठीक नहीं । 'भूत प्रसादातिशयाः वीर्यम्' ऐसा मत भी हमारे यहां है । जितनी विचारधारा इस विषय में मिलती है; उसमें एक ही ग्राह्य है और सब निस्तत्त्व हैं ऐसी बात नहीं है । सभी में कुछ-कुछ सार है । जहां जो सार प्रतीत हो, उसे लेना ही अच्छा है ।

श्री द० अ० कुलकर्णी जी—द्रव्य जो कुछ कार्य करता है वह गुण से कार्य करता है ऐसा कहा जा रहा है। किन्तु गुण ही कार्य करता है ऐसा अपने शास्त्रों का सिद्धान्त नहीं है । 'निर्गुणास्तु गुणाः स्मृताः' गुण में गुण और क्रिया नहीं रहते; इस कारण गुण वाला द्रव्य ही क्रिया करता है यही पक्ष समझ में आता है । 'नावीर्यं कुरुते किंचित्' इस उक्ति से द्रव्य में जो सार भाग है वही कार्य करता है ऐसा नजर आता है । हो सकता है कि ऐक्टिव प्रिंसिपल को हम वीर्य न कह सकें, किन्तु नजर ऐसा आता है कि द्रव्य का जो कोई भाग कार्यकारी हो, वही वीर्य है । वीर्य ही शक्ति कही जाती है; ऐसा सिद्धांत कर लिया प्रतीत होता है, किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि हरेक द्रव्य का भाग अन्त में इलेक्ट्रोन, नैवट्रोन रूप में आता है । वह द्रव्य का ही एक भाग है अथवा वह क्रिया रूप है ऐसा भी कह सकते हैं । वह द्रव्य का भाग है यह मत आधुनिक है । यही मत ठीक है 'शक्ति शक्ति मतोरभेदः ।' इसका भी यही तात्पर्य है । कार्मुकांश को ही वीर्य कहते हैं ।

स्वामी श्री मंगलदास जी—नागार्जुन की अपेक्षा चरक का लक्षण अच्छा है । चरक के लक्षण से गुण, रस, विपाक आदि सब वीर्य के रूप में आ जाते हैं । नागार्जुन ने द्रव्य को ही कार्यकारी माना है, गुण को नहीं । नागार्जुन ने जो हेतु गुण आदि के वीर्य न होने में दिये हैं, वही हेतु उनके मत का खण्डन करने में भी पर्याप्त हैं । इसलिये मैं

यह कहता हूँ कि चरक का ही लक्षण ठीक है। नागार्जुन के मत में गुण आदि कार्मुक नहीं होते।

श्री पं० शिवदत्त जी शुक्ल—लक्षण चरक मत से ही होना चाहिये, नागार्जुन के मत से नहीं। क्योंकि वह अभी स्वयं निश्चित नहीं है।

प्रभाव पर विचार

ता० २७–५–५३

पं० मुकुन्दी लाल जी—अचिन्त्य शक्ति के लिये प्रभाव शब्द का व्यवहार होता है, जिसे अंग्रेजी में 'फार्मोलौजिकल एक्शन' कह सकते हैं।

श्री रामरक्ष जी पाठक—वीर्य को अचिन्त्य शक्ति कहते हैं, इसमें यह और जोड़ देना चाहिये कि वह आज तक अचिन्त्य है। आगे ऐसा समय भी आ सकता है कि वह चिन्त्य हो जाय और उसे हम चिन्त्य कहने लगें।

आचार्य मणिराम जी शर्मा—मैं पाठक जी से सर्वथा विभिन्न मत रखता हूं। ऋषियों का माना हुआ अचिन्त्य सदा अचिन्त्य ही रहेगा क्योंकि उनके सिद्धांत निर्भ्रान्त और स्थायी हैं।

श्री मुकुन्दीलाल जी—दन्ती और चित्रक रस आदि में समान होनें पर भी दन्ती विरेचक है चित्रक नहीं, इसका कारण क्या है? इसको हम आज तक नहीं समझ सके। समय आगे ऐसा आ सकता है कि इसको हम समझ जांय, ऐसा मान लेने में कोई हर्ज नहीं है। मैटीरिया मेडिका में ऐसे वहुत से उदाहरण हैं।

श्री शिवदत्त जी शुक्ल—प्रभाव तो अचिन्त्य को ही कहते हैं, जिस दिन वह चिन्त्य हो जायगा प्रभाव ही नहीं रहेगा, उस दिन उसकी गणना वीर्य में होने लगेगी, प्रभाव तो अपना लक्षण नहीं छोड़ेगा।

श्री घनानन्द जी पन्त—मनुष्य के रक्त में शृङ्गिक विष डालनें से पानी हो जायगा। गारुड मणि का प्रवेश करने से फिर रक्त बन जायगा—गोरक्ष संहिता में ऐसा लिखा है। अकीक पत्थर कपड़े में लपेट कर अङ्गारों पर रखने से कपड़ा नहीं जलेगा, इसको जब चाहें देख सकते हैं; किन्तु इसका कारण बुद्धिगम्य नहीं है। इस कारण इसे और ऐसे स्थलों की अन्य चीजों को प्रभाव कहना होगा।

श्री हनुमत्प्रसाद जी शास्त्री—प्राचीन महर्षियों ने द्रव्यों पर गुण आदि द्वारा विचार कर सिद्धांत स्थिर किये हैं प्रभाव में समाविष्ट होने वाले भी कुछ धर्म सिद्ध हुए हैं। जो लोग यह कहते हैं कि जो आज अचिन्त्य हैं और कल चिन्त्य हो सकते हैं, इससे

कुछ बिगड़ता नहीं, एक-आध जगह ऐसा होने पर भी अन्य स्थल ऐसे बने ही रहेंगे जो अचिन्त्य हों।

श्री ठाकुरदत्त जी शर्मा—पारद के रस, गुण, वीर्य, विपाक आदि की परीक्षा करके डाक्टर कहते हैं कि पारद में सिफलिस के विष को नष्ट करने का कौनसा तत्त्व है, यह हम नहीं जानते हैं। ऐसे स्थलों में प्रभाव मानना ही पड़ेगा। प्रभाव सबसे ऊपर है 'प्रभावस्तान् व्यपोहति' शास्त्र का प्रमाण है। कार्य-कारण भावानुगम के विरुद्ध जहां काम होता है, उसे **प्रभाव** कहते हैं।

श्री यादव जी—अन्त्रवृद्धि (हार्निया) के असाध्य लक्षण के रोगी भी आज साध्य समझे जाते हैं। द्रव्य के और उसके कार्य के कार्य-कारण भाव का ठीक-ठीक ज्ञान न होने तक **प्रभाव** कहा जायगा। कार्य-कारण भाव के ठीक-ठीक पता लग जाने पर वह **वीर्य** शब्द से कहा जायगा **प्रभाव** शब्द से नहीं।

श्री गोडबोले जी—'रोगापनयन सामर्थ्यं शक्तिः।' शक्ति का कार्य-कारण भाव रसादि के साथ नियत (नियमानुसार सिद्ध) जब तक रहता है, तब तक वह शक्ति वीर्य कहलाती है। रसादि के साथ उस शक्ति का कार्य-कारण भाव निर्धारित न हो सकने के कारण अर्थात् रसादि से विरुद्ध धर्म होने के कारण प्रभाव मानना पड़ता है। ब्राह्मी का मेधाकर होना प्रभाव है। सहदेवी की जड़, शिखा में बांधने मात्र से ज्वर को नष्ट कर देती है, यह उसका प्रभाव है। जाठराग्नि संयोग और रक्त-मांस आदि के संयोग हुये बिना ही जो कार्य होता हैं उसका हेतु अचिन्त्य है। प्रायश्चित से जो पाप नाश होता है वह अचिन्त्य है। शान्ति आदि कर्म से भी रोग नाश होता है, वह भी अचिन्त्य है। अतएव प्रभाव कहाता है।

कर्म का विवेचन

श्री यादव जी—चरक में भी कर्म है किन्तु नागार्जुन के कर्म से भिन्न है। चरक के मत से थोड़ा भेद नागार्जुन की व्याख्या में है। पन्सारी की दुकान में पड़ी वस्तु रोगी को फायदा नहीं कर सकती किन्तु उन द्रव्यों का प्रयोग फायदा करता है। चरक ने वमनादि कार्यों को कर्म कहा है। इस पर भी विचार होना चाहिये कि प्रस्तावों को अमल में कैसे लाया जाय। पिछली मीटिङ्ग में भी प्रस्ताव हुये थे, किन्तु उनमें भी कोई प्रस्ताव कार्य रूप में परिणत नहीं हुआ है। ९२ आधुनिक द्रव्य भी अपने शास्त्र में निर्दिष्ट होने चाहिये। इन द्रव्यों का वर्गीकरण करके इनका पाञ्चभौतिकत्व समझ लें और अपने द्रव्यों में उनका समावेश कर लें, ऐसा होना चाहिये।

आयुर्वेद के शिरा-नाड़ी आदि शब्दों का अर्थ निश्चित करना होगा। भविष्य और

वर्तमान के लिए शब्द प्रयोग का मार्ग निर्धारण करना होगा। आज बहुत से शब्दों के बारे में बड़ा भारी मतभेद चल रहा है। जैसे 'हृदय' मस्तिष्क को कहना कि 'हृदय' हार्ट को कहना। द्रव्य गुण के बारे में तो बड़ा ही गड़बड़ चल रहा है। विद्वानों की एक सभा बैठा कर शिरा-धमनी आदि शब्दों के अर्थों का निर्णय करना चाहिये। द्रव्य गुण के बारे में हमने प्रस्ताव तो पास कर लिया, किन्तु उसे कार्य रूप में भी परिणत करना चाहिये। संशोधन का एक प्रकार होना चाहिये। जिससे हम अपना दृष्टिकोण गवर्नमेंट के सामनें रख सकें। वैद्यों के दृष्टिकोण से हम एक स्कीम उनके सामने रक्खें और उस पर विचार करने की प्रार्थना करें, कि इस कार्य के लिए यदि आप वैद्यों से कुछ प्रत्यक्ष विचार करना चाहें तो हमारे प्रतिनिधि इसके लिए भी तैयार हैं। स्कीम बना कर उनके सामने रखना और इसमें संशोधन कैसे हो सकता है, इस विषय में भी विचार करना चाहिये।

शारीरिक-पारिभाषिक शब्दों का निर्णय करने के लिए निम्नलिखित महानुभावों की एक समिति बनायी जाय।

१ डा० भा० गो० घाणेकर जी—बनारस
२ ,, धीरेन्द्रनाथ बनर्जी—कलकत्ता
३ ,, पी० एम० मेहता—जामनगर
४ ,, प्रसादीलाल झा—कानपुर
५ ,, जी० डी० शर्मा—लखनऊ
६ ,, लक्ष्मीपति—मद्रास
७ वैद्य कविराज उपेन्द्रनाथ दास—दिल्ली
८ ,, विश्वनाथ जी द्विवेदी—लखनऊ
९ वैद्य रामरक्ष पाठक—बेगूसराय
१० ,, रणजीतराय देशाई—सूरत
११ ,, हरिदत्त शास्त्री—जालंधर
१२ ,, गोडबेले जी—झाँसी

स्थान—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, गुसाईपुरा-झाँसी।

समय—दुर्गापूजा की छुट्टियाँ। —निर्विरोध स्वीकृत

रिसर्च कार्य विधि का दिग्दर्शन

विशेष-विशेष शब्दों के अर्थ और पर्याय वाचक शब्द तथा उनके आधुनिक पर्यायों का निश्चय एवं वे ग्रन्थ जिनमें से ये शब्द चुने जायें निम्न हों—

चरक संहिता—(जामनगर से प्रकाशित चरक संहिता में शब्द सूची है।)
सुश्रुत संहिता
अष्टाङ्ग हृदय संहिता

भेड संहिता
कश्यप संहिता
आष्टाङ्ग संग्रह संहिता

इसमें से शब्द सूची बनानी है। शब्द सूची सब सदस्यों के पास भेजी जाय।

प्राणिज, उद्भिज, पार्थिव या खनिज भौम तीन प्रकार के द्रव्यों का अन्वेषण, संशोधन या निर्णयार्थ गवेषणा की जाय—

१—प्राचीन साहित्य में उस द्रव्य के लिये जितनी सामग्री मिल सके उसे एकत्रित करना।

उदाहरण के तौर पर अन्जन और अभ्रक के विषय में जो कुछ प्राचीन साहित्य में मिलता है, उसे एकत्र करना। फिर उसके सैंपुल जितने मिलते हैं उन्हें उपलब्ध करना।

वैद्य का कार्य—आयुर्वेदोक्त लक्षणानुसार यही वह द्रव्य है, इसकी पूर्ण परीक्षा करना और निर्णय करना।

डाक्टर का कार्य—उनका रासायनिक घटक क्या है, इसका निर्णय करना

वैद्य का कार्य—ग्रन्थोक्त विधियों से उस द्रव्य की शुद्धि करना।

डाक्टर का कार्य—रासायनिक प्रक्रिया से संशुद्धि के परिणाम की परीक्षा करना। शुद्धि के बाद हुये रासानिक और भौतिक परिवर्तन की परीक्षा करना।

वैद्य का कार्य—संशोधन के बाद शास्त्रोक्त विधि से उस द्रव्य का मारण करना, मारण एक या दो विधियों से नहीं परन्तु शास्त्रोक्त और अपनी विशेष अनुभूत विधियों से तथा फकीरी विधियों से अलग-अलग मारण करना।

डाक्टर का कार्य—पृथक्-पृथक् मारित द्रव्यों में किस-किस में क्या परिवर्तन हुआ कौन-सा मारण उत्तम हुआ और कौन से में क्या कमी रही इसका निर्णय करना।

वैद्य का कार्य—वैद्य जब देखे कि भस्म तैयार हो गई, तो वैद्यकोक्त विधि से उस भस्म की शुद्धि की परीक्षा करें। जैसे—जिन धातुओं की भस्म बारितर होना चाहिये वह बारितर हुई कि नहीं। ताम्र भस्म अम्ल पर हरापन तो नहीं लाती—आदि से परीक्षा करें।

शुद्ध-सिद्ध हुई भस्मों का वैद्य रोगी पर परीक्षा करके देखें। उनके प्रयोग के फलों की लिखित रिपोर्ट तैयार करें। यह बात खनिज द्रव्य के विषय में कही गई है।

वानस्पतिक द्रव्यों के विषय में नाम निर्णय

निघण्टुओं में जहां एक से अधिक नाम दिये हुये हैं उसमें मेरा विचार है कि एक से अधिक नाम न हो। पुराने ग्रन्थों में एक वनस्पति के दो-चार नाम से अधिक न मिलेंगे।

पीछे के निघण्टुओं में पर्याय बढ़ाये गये हैं। उसमें प्रान्तीय प्रचलित देश भाषा के शब्दों के संस्कृत शब्द बनाकर लिखे हैं। उनमें बहुत से शब्द स्वरूप निर्देशात्मक हैं। वनस्पतियों की रचनानुसार उनका वर्गीकरण होना चाहिये। यह कार्य आरम्भ तो हुआ था किन्तु इसका विकास नहीं हुआ। वनस्पतियों के विषय में जो साहित्य मिले उसे एकत्र करना चाहिये। भिन्न-भिन्न रोगियों पर प्रयोग करके गुणादि का निश्चय करना चाहिये। वैद्य अच्छी प्रकार निदान करें। डाक्टर भी रोगी के रोग का निदान करे और वैद्य भी दोनों मिलकर निदान करें। डाक्टर का काम केवल निरीक्षण करना होगा परन्तु वैद्य का काम प्रयोग और निरीक्षण दोनों करना होगा।

प्राणियों का वर्गीकरण करना

प्राचीन ग्रन्थों में जो वर्गीकरण है, वह भिन्न प्रकार का है। प्राणियों का वर्गीकरण अपने ढङ्ग का करके अपने ग्रन्थों में समावेश कर लेना चाहिये।

वनस्पतियों का नाम-रूप और गुण-धर्म का निर्णय—वनस्पतियों के नाम और रूप का निर्णय करने के अनन्तर मनुष्य-रोगियों पर प्रयोग कर रस द्वारा, गुण द्वारा, विपाक द्वारा, प्रभाव द्वारा किसके द्वारा कर्म हुआ इस की परीक्षा करके निर्णय करें।

रसों का निश्चय—प्रधान रस, अनुरस या अप्रधान रस किससे कार्य हुआ यह निर्णय करें।

द्रव्य के स्वरूप आदि के निर्णय के विषय में मैंने अपने विचार के अनुसार सरणी रक्खी है, जिनको विमति हो या नया सुझाव देना हो वह देवें।

सन्दिग्ध तथा अन्य तन्त्रों में प्रचलित और साधू-सन्तों में प्रचलित वनस्पतियों के विषय में भी अनुसंधान होना चाहिये।

होमियोपैथी में आजकल जितनी वनस्पति बढ़ती जा रही है उतनी एलोपैथी में घटती जा रही है।

यूनानी में और **वैद्यों में** दोनों में प्रयोग होने वाली वनस्पति जैसे—गुलबनप्शा उसमें हमारा कर्तव्य इतना ही है कि उन्हें लेलें; क्योंकि उनके नाम-रूप और गुण-कर्म उनसे (यूनानों से) परीक्षित हैं, किन्तु अपनी विधि से उनके रस-गुण आदि का परीक्षण और निर्णय हमें करना ही चाहिये। उसकी पद्धति में इतना फेरफार कर सकते हैं कि रचनानुसार या प्राणिज पद्धति के परीक्षण के अनुसार उसका निर्णय कर लेना चाहिये। जैसे-रास्ना इस नाम से जिस-जिस प्रान्त में जिस-जिस द्रव्य का व्यवहार होता है, उनके नमूने मंगाना, नाम मंगाना, देश भाषा में अपढ़ लोग उसे क्या कहते हैं, हकीम या वैद्य उसे क्या कहते हैं,

निघण्टु के स्वरूप परिचायक नामों से जो सहायता मिल सके वह लेकर निर्णय करना फिर प्रयोग करके गुणों से निर्णय करना चाहिये। जैसे 'रास्ना वातहराणाम्' लिखा है, ऐसे गुणों से परीक्षा करनी चाहिये।

रोगी और रोग-परीक्षा

रोगी-परीक्षा—रोगी का भार इतना है, जीभ ऐसी है, बल इतना है, शरीर पर मांस इतना है, भूख इतनी है, इत्यादि।

रोग परीक्षा—रोग वातिक है, पैत्तिक है, श्लैष्मिक है, द्वन्द्वज है, सन्निपातिक है, सुख साध्य है, कृच्छ साध्य है, असाध्य है, आदि।

यह सब निर्णय वैद्य करेंगे।

कफ, टट्टी, पेशाब, रक्त आदि की परीक्षा डाक्टर करेंगे।

रोग परीक्षा—यह निदान-रोग का कारण है, यह पूर्वरूप है, यह सम्प्राप्ति है, यह सब वातादि दोषों के अनुसार लिखना होगा।

चिकित्सा आरम्भ करते समय

औषधि-आहार-विहार इन तीनों को मिला कर चिकित्सा होती है। किस रोगी को क्या आहार देना चाहिये किसको कितना सोनें देना, कितना खाने देना, यह सहेतुक लिखना चाहिये। यह सब हम क्यों करते हैं—यह सब स्पष्ट करना चाहिए। अन्न नहीं देते तो क्यों नहीं देते? पानी बन्द करते हैं तो क्यों करते हैं? इत्यादि का सहेतुक वर्णन होना चाहिये। फल जो भी हो उसे वैद्य लिखें। त्रिदोष सिद्धान्त का निर्णय इस प्रकार की चिकित्सा से अपने आप हो जायगा द्रव्य-गुण-कर्म और रोग इनका मेल है, इसलिये इनका परीक्षण स्वयं ही होता रहेगा।

अर्क मूल—अधिक मात्रा में देने से वमन होगी और अत्यल्प मात्रा में देने से वमन बन्द होगी तथा युक्त मात्रा में देने से कफ ढीला होकर उसकी वमन होगी।

श्री महेन्द्र कुमार शास्त्री—सब से पहले सन्दिग्ध वनस्पतियों पर अन्वेषण किया जाय। क्योंकि इनके सम्बन्ध से खनिज पदार्थों का शोधन आदि होता है। वनस्पति शास्त्र के अनुसार उनका वर्गीकरण भी होना चाहिये। बाजार में वनस्पतियों के सारे अङ्ग सम्पूर्ण नहीं मिलते हैं इस कारण बाजार से खरीदी हुयी वनस्पतियों की पूरी पहिचान नहीं होती, इस त्रुटि को हटाने के लिए वनस्पति उद्यान लगाने चाहिये, जिसमें सन्दिग्ध वनस्पति लगानी चाहिये। जैसे ब्राह्मी बंगाल में और लेते हैं यहाँ और लेते हैं, इनके नाम और स्वरूप भी विभिन्न हैं। शहद असली है कि नकली, इस पर विशेष वर्णन मिलता है। कस्तूरी, अम्बर, अशोक की छाल, अर्जुन की छाल इन सब के घटक द्रव्यों का यन्त्रों से

परीक्षण होना चाहिये। क्योंकि इनमें असली और नकली का बड़ा गड़बड़ चल रहा है।

विदेशी लोग इन चीजों को खरीदते समय सूक्ष्म वीक्षण यन्त्रों से इनके अवयवों का खूब परीक्षण करने के बाद खरीदते हैं। अन्य वनस्पतियों को खरीदते समय भी उन वनस्पतियों के सत्त्व (सारभाग) निकाल कर उसके अनुपात से उनकी उत्तमता के तारतम्य का निश्चय करके खरीदते हैं। इस प्रकार की परीक्षण-पद्धति के ग्रन्थ उनके यहाँ मिलते होंगे, हमें भी ऐसे ग्रंथ निर्माण करने चाहियें और वे उपाय काम में लेने चाहियें।

श्री द० अ० कुलकर्णी जी—आचार्य जी का सुझाव प्रकाशित किया जावे। सचित्र आयुर्वेद में एक अनुसन्धान-स्तम्भ रक्खा जावे। रिसर्च के लिये ऐसे विषय चुने जाएं जिसकी परीक्षा के साधन हमारे पास पूरे हों। प्रारम्भ में सन्दिग्ध वनस्पति शोध के लिये नहीं लेनी चाहिये। संशोधन मार्ग में जो अड़चनें आने वाली हैं उनको दृष्टि में रखना चाहिये। अभ्रक के सैंपुल को देख कर उसके घटक द्रव्य बता देना आसान नहीं। अमुक के भिन्न-भिन्न संशोधनों से उसमें क्या परिणाम होगा इसका ज्ञान रसायन-शास्त्र से होना दुष्कर है। कैमिष्ट यदि रासायनिक परीक्षा करने में समर्थ न हो, तो वह अपनी रिपोर्ट में यह लिखे कि हम असमर्थ हैं।

यह योजना संस्थाओं और वैयक्तिक रूप से तत्तद् वैद्यों के लिये विचार करने को भेज दी जानी चाहिये। वैद्य, डाक्टर और कैमिष्ट इन तीनों के निर्णय को स्वरूप देने वाली एक कमेटी होनी चाहियें।

आयुर्वेद को लेकर जो रिसर्च हो वह किसी एक द्रव्यों को लेकर न हो, क्योंकि आयुर्वेद में एक-एक द्रव्य का प्रयोग बहुत ही कम मिलेगा। मिश्रित द्रव्यों का ही बहुतायत से उपयोग मिलेगा। जो धात्वादि भस्म एक द्रव्य के रूप में दी जाती हैं, उनमें भी अनुपान के रूप में मिश्रित द्रव्यों का प्रायः उपयोग होता है। इस समय रिसर्च करने वालों की मनोवृत्ति यह है कि एक-एक औषध का प्रयोग हो मिश्रित का नहीं।

योग (नुसखे) की कल्पना में सिद्धान्त

प्रत्येक योग में एक द्रव्य तो प्रधान होता ही है, कोई द्रव्य प्रधान द्रव्य के दोषों को नष्ट करने में सहायक होता है और कोई प्रधान द्रव्य की शक्ति बढ़ाने में सहायक होता है, यही सिद्धांत योगों के निर्माण में सब जगह काम में लिया जाता है। जैसे—प्रकृति में सनाय प्रधान द्रव्य है। गन्धक, मुलहठी ये दोनों सनाय के दोष दूर करने के लिये हैं। सोंफ और मुनक्का ये दोनों उसकी शक्ति बढ़ाने के लिये हैं। इसी प्रकार सब जगह समझना चाहिये।

समाप्त

अस्माकं विद्यापीठाध्यक्षाः—

श्रीमद्-भिषग्रत्न-राजवैद्यनन्दकिशोराचार्याः

लेखकः—वैद्यरत्न श्री प्रभुदत्त शास्त्रिभिषगाचार्यायुर्वेदाचार्यः सीकरस्थः

सुविदितचरमेवैतद्यदैषमे सम्वत्सरे निखिलभारतीयायुर्वेदविद्यापीठाध्यक्षपदगौरवं, निर्विरोधं निर्वाचिता आयुर्वेदमार्त्तण्डाः श्रीमद्धन्वन्तरिकल्पाः शास्त्रसमुद्धारका जयपुरीयराजवैद्यपदभाजः सद्गुरुवर्याः श्रीमन्नन्दकिशोराचार्या विभूषयिष्यन्ति । भारतीयभिषजां सुपरिचिता अपि तज्जीवनक्रमवैशेष्यविज्ञानाय भूयोऽप्येते प्रासङ्गिके शुभावसरेऽस्माभिः संस्तूयन्ते नाम । सुदीर्घकालं स्वनामधन्यानां चरणसरोरुहच्छायामाश्रयता वात्सल्यपरिपूर्णदृष्टिनिरीक्षितेन किङ्करेण मया यावच्चरित्रावगाहनं कृतं तावन्निवेदयितुं साहसं विधीयत इति विज्ञाः सन्तः प्रसीदन्तोऽत्र दृष्टिं निपातयेयुः ।



जयपत्तनावसतेर्वर्षशतकपूर्वं श्रीमद्वंशधराणां श्रवणदासमहात्मनां शेखावाटीप्रदेशस्य खाटू (श्याम जी) ग्रामे पारम्परिकावासोऽभवत् । खाण्डलविप्रकुलेषु माटोलियाऽवटङ्कजामदग्न्य-गोत्र-त्रिप्रवर-शुक्लयजुर्वेदीयमाध्यन्दिनीशाखाध्यायिनो पितृ-पितामह-प्रपितामहादयोऽपि पूर्वं वैद्यव्यवसायानुवर्तनेनैव निर्वाहमकार्षुः । खाटूग्रामतश्चौमूंग्राम्मप्रवासिताः पुनश्च प्राप्तराज्याश्रयाजयपुरे निवासं कृतवन्तः । एतेषां पूर्वपुरुषा दौलतरामशर्माणो जयपुरनगरनिर्माणानन्तरं राजधान्यामागतवन्तः । श्रीमतां पितामहानामानन्दीलालशर्मणां पितृव्यचरणाः श्रीलालमहोदया भगवद्भक्ताः परमयोगिनश्चासन् । वर्तमानजयपुरपुरन्दरपितामहाः स्व० रामसिंहवर्माणः प्रतिदिवसं तेषा मन्तिके भगवद्दर्शनार्थमुपतिष्ठन्ति स्म । एकदा जयरामपुराग्रामे स्वामिभिः स्वेष्टदेवश्रीनृसिंहभगवते नैवेद्यं निवेदयित्वा, सपरिकरमागतं राजानमवेक्ष्य दीपद्याशाकेनेव लघुस्थाल्यामवस्थितेन भगवत्प्रसादेनातृप्ति भोजनंतदैवकारितमिति सुविख्यातमस्मिन्प्रदेशे । तदेवं सर्वप्रथमं श्रीलालयोगिवर्याणां भ्रातृजरूपेणैव वैद्य आनन्दीलालशर्मणां परिचयोऽभूद्राजानम् । राज्ञा तेभ्यो ससम्मानं श्रीविहारिदेवमन्दिरं ग्रामद्वयञ्च

तदानीमेव प्रदत्तम् । तदनन्तरं स्वर्गीयजयपुरमहाराजमाधवसिंह नृपतिभिश्चैतेषां पितॄणां-चिकित्सासेवामवलक्ष्य चिकित्सकचूड़ामणिश्यामलालशर्मभ्यः सैकग्रामं श्रीगोविन्दमन्दिरं प्रार्पितम् । तदेवं ग्रामत्रयस्यस्वामिनः सामन्तवर्ग-प्राप्तभूमेरधिपतयः श्रेष्ठिजनसमादृत-चिकित्सावैभवाः सुरसरस्वतीलक्ष्म्योरेकत्र समागमस्थलास्त्रभवन्तः स्वचिकित्साकर्म कौशलेन न केवलं राजस्थानमपितु समग्रं भारतवर्षमायुर्वेदविज्ञानसरणिसाफल्यप्रदर्शनार्थ-मुपकुर्वन्ति । वर्तमानमहाराजश्रीमानसिंहमहोदयोऽपि स्वकीयराज्याधिरोहणरजतजयन्ती-महोत्सवावसरे चरितनायकेभ्योजयपुरराज्ये महतीं तदीयायुर्वेदसेवामवबुध्य सुप्रसन्नोभूत्वा, "भिषग्रत्न" मित्युपाधिं, सातिशयं राजसम्मानं सुबहुपुरस्कारञ्च प्रार्पयत् । श्यामलाल-महाभागानां पुत्ररत्नत्रयीषु ज्येष्ठा गुणगरिष्ठा सुतनयद्वयान्विताश्चैते स्वजातौ महत्प्रतिष्ठिता द्विजकुलमुच्चाययन्तीति महद्भागधेयमायुर्वेदोपासकानाम् ।

बाल्यकालिकीं शिक्षामेते स्वदीक्षागुरुभ्यो गङ्गाधरशास्त्रिभ्यः प्रच्छन्नयोगसाधकेभ्योः ऽधिगत्यानन्तरं व्याकरणसाहित्यदर्शनादियोग्यतां सम्यगधिगतवन्तः । वेदवेदाङ्गमीमांसा-दिशास्त्राणामध्ययनार्थमेते विद्यावाचस्पति स्व० मधुसूदन सरस्वती—वीरेश्वर शास्त्रि-महा-महोपाध्यायपण्डित गिरिधरशर्मप्रभृतिविदुषामन्तेवासित्वमङ्गीचक्रुः । कुलक्रमागतायाः स्वभवने बोभूयमानाया आयुर्वेदचिकित्साया भारं दित्सुभिः स्वपितृभिर्नियोजिता एते जयपुरीय संस्कृत विद्यालयआयुर्वेदाध्ययनं प्रारब्धवन्तः । वर्षद्वयेन च "सिद्धभेषजमणिमाला" प्रभृत्यनेकग्रंथरत्ननिर्मातॄणां भट्टश्रीकृष्णरामकविवर्याणामात्मजानां निखिलभारतवर्षीय द्वितीयपनवेलसम्मेलनस्य सभापतीनामायुर्वेद विद्यानिधीनां काव्यकलाकुशलानां शास्त्रार्थ-महारथीनां श्री गङ्गाधरभट्टशर्मणामन्तेवासित्वावसरे—आयुर्वेदोपाध्याय परीक्षामुत्तीर्णवन्तः । अनन्तरं प्रत्यक्षकर्माभ्यासपुरःसरं मुच्चशिक्षां ग्रहीतुमनसः श्रीमतां पूज्यपादानां भारतविख्यात-वैभवानाम् सुगृहीतनामधेयानामायुर्वेदमार्त्तण्डानां स्व० लक्ष्मीरामस्वामिनां सेवां विदधाना यथानियमंक्रमशो भिषग्वर—भिषगाचार्यपरीक्षे सबहुमानमुदतरन् । किञ्च भेषजनिर्माण रोगिदर्शनादि-विशिष्ट प्रायोगिककार्यमपि श्रीस्वामिनां कृपातो गृहे-चिकित्सालये च स्वभ्यस्त-वन्तः । एवमेते तेष्वेव दिवसेषु भिषग्वर परीक्षोत्तीर्णा अपि प्रायोगिकक्रियाकुशलाः सुप्रतिष्ठितविद्वत्समाजे बहुशः समादृता अभवन् । अध्ययनसमाप्त्या साकमेवैतेषां योग्यताभुग्धाः महामनसः स्वर्गीयाः पण्डितमदनमोहनमालवीयाः स्वकीये हिन्दू विश्वविद्यालये वाराणस्या-मायुर्वेद प्राध्यापकत्वेन नियुक्तवन्त एनान् । तत्रचैभिः कियान् कालो, स्वर्गीय धर्मदासाचार्या-णामध्यक्षतायांप्रभुदत्ताग्निहोतॄणां समक्षं चिकित्सितपटून बटून् चरक-सुश्रुतरसरत्नसमुच्च-यादिग्रन्थानध्यापयद्भिर्व्यतिगमितः । स्वल्पेनैव कालेन गृहे चिकित्साभारं दित्सुभिः स्वपितृ-भिरेते ततः पुनराहूताः मालवीयमहोदयानामाशीर्वादपत्रकमेकमादाय गृहागमनानन्तरं तदा-दर्शानुरूपं सुविशाले स्वचिकित्सालय एव रोगिनैरोग्यसम्पादने प्रावीण्यं प्राप्तवन्तः ।

अथ च १९८१ विक्रमाब्दे जयपुरीयसंस्कृतमहाविद्यालयीयायुर्वेदविभागे द्वितीया-ध्यापकपदे नियोजिता अभवन् । तत्र च वर्षनवकपर्यन्तमध्यापयन्तो १९९० विक्रमाब्दे

लक्ष्मीरामस्वामिनामध्यापन कृत्यतो विरामग्रहणानन्तरमेते विशिष्टयोग्यतया तेषां स्थाने-आयुर्वेदप्रधानाध्यापका नियुक्ता अभवन् । तदानीमपि राजस्थानीयवैद्यानां मध्ये चिकित्सा-कर्मणि सुप्रतिष्ठिता उच्चनागरिकाणां मूर्द्धन्या राज्ञां सामन्तश्रेष्ठिवर्गस्य च गृहे चिकित्सा-प्रसरमादधाना आसन् । तथाऽपि स्वभावतः सरलाः, दयालवोऽनुत्सेकिनोनम्रातिशयाः शिष्य-वत्सलाश्च सन्तीत्येते महानुभावा धन्या मान्या आयुर्वेदस्य शिर उन्नमयितार सुप्रसिद्धाः सन्तोऽपि विज्ञापनप्रचारविरहिता इदानीं यावत् महासम्मेलन-विद्यापीठाध्यक्षपदं स्वतो ज्येष्ठानां कृते परित्यज्य रचनात्मक कार्येषु संलग्ना अस्वीचक्रु रिति महदाश्चर्यम् ।

तथाऽप्येते सन्मित्रानुयायिनामनुरोधात्-द्विवारं राजपुत्रप्रान्तीय वैद्यसम्मेलनाध्यक्षत्वं, जयपुरराज्यप्रथमवैद्याधिवेशन साभापत्यं, खाण्डलविप्रमहासभाया अखिलभारतीयमनेकवारं प्रधानासनं, हिन्दीसाहित्यसम्मेलनस्य द्वात्रिंशज्जयपुरीयाधिवेशने विज्ञानपरिषदो वैज्ञानिकं स्वागताध्यक्षपदं, किञ्च न केवलं नीरसवैज्ञानिकत्वमपितु सरससाहित्यिकत्वं परिपाल्याखिल-भारतीय संस्कृत साहित्यसम्मेलनावसरे जयपुरे तदीय सफलतायै स्वागताध्यक्षरूप त्वमप्यङ्गी-चक्रुः । बहुत्राभिनन्दनानि च प्रापुः ।

आयुर्वेदविषये किञ्च विषयान्तरेषु यदा श्रीमन्तोलिखन्ति समितिषु स्वकीयं पक्षं समुपस्थापयन्तिच, तन्महदूर्जस्करं सम्पद्यते । चरकसंहितायाश्चिकित्सास्थानस्य वैज्ञानिकी-संस्कृतटीकायाः श्रीगणेशः श्रीभद्भिर्वर्षेभ्यो पूर्वमेव विहितः । परिस्थितिवशादिदानीमप्रकाशिता सा तूर्णमेवालोकपथमाव्रजिष्यति विदूषाम् । सुश्रुतसंहितायाः सूत्रस्थानस्य, चक्रपाणिविरचित-भानुमतीव्याख्यासमवेतस्य स्वामिलक्ष्मीराम निधिद्वारा प्रकाशितस्थ परिशोधन मेतैः सम्पादितम् । स्वे भवने बहुलानां ग्रंथरत्नानां संग्रहोऽस्ति हस्तलिखितान्यपि ग्रंथानि तत्र सन्ति। संग्रहालयेऽस्मिन् राजमहाराजानां नेतृवर्याणञ्च शतशः पत्राणि चिकित्साचातुर्यपरिचाय-कानि मयाऽवलोकितान्यपि विस्तारभीत्या नैवात्रोट्टङ्कितानि । नवनूतनपरिपाट्या चिकित्सो-पयोगीनां शिक्षोपयोगीनाञ्चायुर्वेदग्रंथानां संस्कृतभाषायामेव सम्पादनं संकलनञ्चैत उपादेय मामनन्ति ।

पीयूषपाणित्वादेते जयपुरराजपरिवारस्यान्तरङ्गचिकित्सकाःसन्ति । तथैव जोधपुर-बीकानेर-कूचविहार-अलवर-किशनगढ़ादिराजपरिवारैरति समादृताः सहस्रमुद्रा-दिवसात्मकेन-व्ययेन चिकित्सार्थं बहिर्गच्छन्ति । राष्ट्रीयनेतृवर्या अस्माकं राष्ट्रपतयो राजेन्द्रप्रसाद महोदयाः स्व० जमनालालबजाजाः, रविशंकरशुक्ल—हीरालालशास्त्रिप्रभृतयश्चैतेषां चिकित्साचातुर्येण चमत्कृताः प्रभाविताश्च सन्ति । शतशो महानुभावा अनुदिनमेतेषां गृहे पंक्तिमनुबध्य चिकित्सार्थं कृपावृष्टिनिपातार्थञ्च प्रतीक्षन्ते नाम ।

महाभागानां ज्येष्ठतनयाः श्रीरामदयालुशास्त्रिभिषगाचार्याः पितृपादाननुसृत्य जयपुरीय विद्वत्सु प्रतिभासमन्विताः सिद्धहस्त चिकित्सकाश्च श्रीनवजीवन चिकित्सालयाख्यं कर्ममन्दिरं शुद्धायुर्वेदप्रणाल्या संचारयन्ति । वास्तुकलाकुशला महानुभावाः स्वकीये "नवजी-

वनोपवनाख्ये" नगराद्बहिरुद्याने सुविशाले रमणीकैर्भवनैःसुशोभितमारोग्याश्रमं निर्माप्य तत्र देशदेशान्तरेभ्यः समागतानां रोगिजनानामारोग्यं साधयन्ति ।

अस्माकं चरितनायकाः पूज्यपादानां स्व० लक्ष्मीरामस्वामिनां विशेषतः कृपापात्र-तल्लजा आसन् । अहर्निशं श्रीस्वामिनामाज्ञा पवित्रयति स्म हृदयमेतेषाम् । रोगिदर्शनादिकर्मणि बहुत्र श्री स्वामिभिः सरु भ्रमणावसरोऽलभ्यन्त । सामयिकीं गुणवैशेष्यापादनीं शिक्षामपि प्रतिदिनं यथावसरं स्वामिन एभ्यो वितरन्ति स्म । एवमेषामुपरि स्वामिमहाभागानां पूर्णः स्नेह आसीत् । एतेऽपि भक्त्यतिशयेन सेवन्ते स्म तान् । तेषामन्तरङ्गेषु कार्येष्वपि प्रवन्धका आसन्निति स्वामिनामेते-लब्धान्तरङ्गपदवीकाः शिष्याः सन्ति । मद्रास कमीशन-चोपड़ा-कमीशन प्रभृतिराजकीयसमितीनां पुरतः सविशेषमायुर्वेदस्य वैज्ञानिकत्वमुपयोगित्वञ्च संसाधितमेभिः । श्री स्वामिलक्ष्मीरामनिधेः कोषाध्यक्षाः, श्री धन्वन्तरिरसायनशाला-आतुरालय औषधालयादि-प्रबन्धक-समितीनामध्यक्षाः, जयपुरीयश्रीदादूमहाविद्यालयसंस्थापने प्रयत्न-शीलाश्चाभवन् । धर्मार्थकार्येषु-एभिः समये समये अनेक सहस्ररूप्यकाणां दानं कृतं-क्रियते करिष्यते च । तदर्थं निधिसंस्थापनवाञ्छाऽप्यस्त्येतेषाम् । आयुर्वेदीयोपयोगिग्रंथान्निर्माय तत्प्रकाशनव्यवस्था-गवेषणापीठस्थापनयोजना च विचार्यतेऽहर्निशम् कृतौ परिणमयितुम् ।

यद्यप्येभिः संस्कृतविद्यालयीयायुर्वेदविभागे छात्राणां ज्ञानपिपासाशान्त्यर्थं प्रायोगिक-शिक्षासाधनानां प्रबन्धो विहितस्तथाऽपि स्वतन्त्रतया आयुर्वेदविभागस्य प्रगतिस्तत्र कुण्ठितैवा-सीत् । एषु दिवसेष्वेव जयपुरसंस्कृतविद्यालयस्याध्यक्षपदभारं गिरिधरशर्माभिस्त्यक्तं राजवैद्य-महाराजान्–अङ्गीकारयितुं शिक्षाधिकारिणः सज्जा आसन् । तेषामनुरोधमननुपालयद्भिरा-युर्वेदसमुद्धारार्थं पृथगेव सर्वाङ्गसम्पन्नस्य-आयुर्वेदमहाविद्यालयस्य स्वतन्त्र स्थापनायाः, ग्राम्यौषधालयातुरालयादिसंस्थापनस्य, भिषजां पञ्जीकरणस्य (रजिस्ट्रेशन) च प्रस्तावो राज्याधिकारिणां समक्षमुपस्थापितः । जयपुरराज्ये सरमिर्जाईस्माईलमहोदयानाम्प्रधानामात्य-काले तत्सर्वं कृतौ परिणतं सञ्जातम् । १९४६ ऐशवीयाब्दे संस्कृत विद्यालयात् पृथग्भूय आयुर्वेदविभागो "गवर्नमेन्ट आयुर्वेदिक कालेज" नाम्ना नूतनमहाविद्यालयस्वरूपेण राज्यद्वारा सस्थापितस्तत्र च प्रधानाचार्यपदमिम अलंकृतवन्तः । सोऽयं विद्यालयः श्रीमतामधिकृतौ शुक्लपक्षीय चन्द्र इवोत्तरोत्तरमेधमान इदानीं राजस्थानप्रान्तीयविद्यालयेषु आदर्शरूपतां गृह्णातीति श्रीमतामेव प्रभावस्तत्रकारणम् । यदसौ माधवविलासनाम्नि राजप्रासादे सम्विराज-तेतराम् । विद्यालयस्यपाठ्यक्रमनिर्माणाय समितिरेका नियोजिता सर्वकारेण; तस्या अध्यक्षत्वेन भवद्भिर्यथा शिक्षाक्रमो निर्धारितः स इदानीमपि प्रान्तीयेषु समस्तविद्यालयेषु प्रचलन्नास्ते । विद्यालयेन सह प्रयोगशाला-रसायनशाला शवच्छेद-औषधालय-शतशय्या-समन्वित-रुग्णान्तरागाराण्यपि संस्थितानि सान्ति । जयपुर-राज्यावसरे चिकित्सकपञ्जीकरण समितेः ग्राम्यौषधालयादिसंचालनकार्यस्य च अवैतनिकसञ्चालका (ऑनरेरी डायरेक्टर) एत एवासन् । सार्द्धसहस्रा भिषजस्तदानीं पञ्जीकृता यथायथं कार्यमधिवहन्ति । तदेवं सुविज्ञातं पाठकैर्यदेक एव महारथी चिकित्सायां समृद्धः प्राध्यापने च विनियुक्तः समनोयोगं

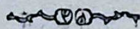
कार्यं कुर्वन् स्वधीयेषु दैनन्दिनविधिविधानेषु निरवकाशोऽपि आयुर्वेदसमुद्धारकार्येषु कीदृक् प्रयत्नवान्-प्रचेष्टते ?

स्वतन्त्रताप्राप्तेरनन्तरं राजस्थानप्रान्ते विभिन्नराज्या नामेकीकरणं (इण्ट्रीग्रेशन) समुपक्रान्तं स्व० सरदारपटेल महाशयेन। तत्र च प्रान्तीयायुर्वेदविधीनां व्यवस्थाया एकीकरणाय भूयो नवनिर्माणाय चैकोपसमितिः राज्ये संयोजिता मन्त्रिप्रमुखैः श्रीहीरालाल शास्त्रिभिः। तस्याः प्रधानपदे कार्यंकुर्वन्नेते नवनिर्मित राजस्थानप्रदेशीयविभिन्नभागेषु व्याप्तानां कार्यकलापानां सुसङ्गठनं सम्पादितवन्तः। इदानीमपि तया योजनिकयैव सुसम्बद्धा कार्यश्रृंङ्खला आयुर्वेदविभागीयव्यवस्थां सुदृढां चरीकर्त्ति। आयुर्वेदशिक्षणालयेषु पुरा परिव्याप्तां सरणीं विपरिवर्त्य सामयिकप्रयोजनानुविधायिनीं संविधातुं योग्यतया राजस्थानराजप्रमुखैः "सुपरिण्टेन्डेन्ट ऑफ आयुर्वेदिक स्टॅडीज्" इति नाम्ना पदमेकं निर्माय तत्र राजवैद्यमहाभागानां नियुक्तिः कृता। तत्कार्यजातमपि सम्यङ निर्वाह्य विगत–१९५२–ऐशवीयाब्दस्य नवम्बरमासतः प्रान्तेऽस्मिन् आयुर्वेदविभागानां पुनरेकीकरणावसरे राजप्रमुखैः-"डॉइरेक्टर" पदे सुप्रतिष्ठापिता एते प्रान्तीयायुर्वेदस्य सर्वाध्यक्षरूपत्वेन पदमिममलंकुर्वन्ति। एतेषां (डॉयरेक्टोरेट) कार्यालयो राजस्थानराजधान्यां जयपुरपत्तन एव तिष्ठति। प्रान्तेऽस्मिन् द्वौ राजकीयविद्यालयौ—जयपुरउदयपुरस्थितौ, अन्येच बीकानेर, सीकर, रामगढ़, रतनगढ़ादि स्थानस्थाः पञ्चशो विद्यालयाः, पञ्चराजकीयभेषजनिर्माणशालाः, चतुःशताबधयो ग्राम्यौषधालयाः, पञ्जीकरणविभागादयश्च सर्वेऽपि श्रीमतामधिकृतिस्थाः सन्तीति-इतर प्रान्तेभ्यो वैशिष्ट्यमेतद्राजस्थानस्य। एतस्मिन् वर्षेऽपि राजस्थानराजकीय स्वास्थ्यमन्त्रालयद्वारा लक्षैकरौप्यमुद्राणां स्वीकृतिः आयुर्वेदकार्यपरिवृद्धयर्थं सम्प्राप्ता एभिः। तदनुसारं ३० त्रिंशन्नूतनौषधालयाः स्थापयिष्यन्ति प्रान्तेऽस्मिन्। किञ्च शिक्षणालयानामभिवृद्धयै सविशेषां व्यवस्थां सम्पादयिष्यन्ति। कियदवधिपूर्वं श्रीमद्भिः "गाडगील-अर्थनियोजनोपसमितेः" समक्षं भारतवर्षीयपञ्चवर्षीययोजनायां राजस्थानप्रान्ते - आयुर्वेदविधीनां विस्ताराय स्वकीयसुविचारपरिपूतः प्रस्ताव उपस्थापितः। वैयक्तिकरूपेणाऽपि श्रीगाडगिलमहोदयायुर्वेदोत्कर्षार्थं बहुशोविनिवैदितम्। एतेषां वार्तया आयुर्वेदविरोधिनोऽपि प्रभाविताः कथमपि तदुत्कर्षमीहन्ते।

तदेवं बहुविधावश्यकीयकार्यविधौ संलग्ना अप्येते विद्यापीठाध्यक्षपदभारमप्युररीकृत्य सार्थयिष्यन्तीति "महतामेव प्रभुशक्तिर्बलवती" तिचिन्तयामहे। राजस्थानप्रान्तेजयपुरप्रान्ते च विद्यापीठपरीक्षाणां मान्यता प्रागप्यासीत्। परमिदानीं श्रीमताम्पदग्रहणेन राजस्थान-विद्यापीठ-परीक्षासु सामञ्जस्यं, परस्परं सम्मानप्रदानञ्चाधिकमेव विवृद्धमिति महत्सौभाग्यमस्माकम्।

आशास्ते तत्रभवन्तः श्रीमन्त आयुर्वेदविश्वविद्यालयस्य सत्वरमेव संस्थापनाय स्वानुभवसारभूतं यत्किमपि प्रयत्नजातं सम्पादयिष्यन्ति। एतादृशं महान्तमनुभवशालिनं सभापतिं सम्प्राप्य विद्यापीठसंस्था गौरवान्विता-धन्यैव किमु ? सार्थाऽपि भविष्यति-किमतिशयेन ?

ये तु शास्त्रविदो दक्षाः शुचयः कर्मकोविदाः।
जितहस्ता जितात्मानस्तेभ्यो नित्यं कृतं नुमः॥



A NOTE

On the career of Vaidyaratna Shri Pt. Shiv Sharma, Ayurvedacharya, President-elect of the All India Ayurvedic Congress, Kottakal

(SOUTH-MALABAR)

We published in the January issue of the Patrika a note pertaining to the manifold services rendered by Vaidyaratna Shri Pt. Shiv Sharmaji, Ayurvedacharya, Ayurveda-Brihaspati (D.Sc. A.), Ayurveda-Shiromani, President-elect of the 39th All India Ayurvedic Congress, Kottakal (South Malabar), to the cause of Ayurveda. The note was in Hindi and our brothers of the South who will act as hosts of the 39th All India Ayurvedic Congress, have not been able to fully follow it. Hence we are giving hereunder just a resume of the President's career for the benefit of those who have not been able to avail of the Hindi text.

1. Born in Patiala State in the year 1906.

2. Son of Vaidyaratna Shri Pt. Ram Parsadji Sharma, Rajvaidya of Patiala and Director of Ayurvedic Services, Patiala and East Punjab States Union.

3. Educated at the Patiala State Ayurveda Maha-Vidyalaya under the direct care and attention of his renowned father taking his degree of AYURVEDACHARYA in 1928-29.

4. Remained the Senior Professor of Medicine at the Punjab's leading Ayurvedic Institution, the Dayanand Ayurvedic College, Lahore.

5. Former Editor-in-Chief of the Ayurveda Mahasammelan Patrika.

6. Author of the English treatise, the System of Ayurveda, and commentator of many Ayurvedic Texts including 'Shiv Deepika' commentory on Ashtang Hridaya.

7. Former Vice-Chairman of the Board of Directors, Rishikul Vidyapeeth, Haridwar.

8. President over the Punjab Provincial Ayurvedic Conference, Sialkot.

9. President, Nidan Parishad, 23rd All India Ayurvedic Congress, Bikaner, 1933.

10. President, Chikitsa Parishad, 24th All India Ayurvedic Congress, Shikarpur, Sind, 1934.

11. President, All India Ayurvedic Teachers' Conference (Ayurvedic Shiksha Sammelan), Nagpur, April, 1938.

12. President, 28th All India Ayurvedic Congress, Bombay, December, 1938.

13. President, All India Ayurvedic Congress, Jodhpur, 1939, in which capacity he undertook a long tour of the South and Konkan.

14. Undertook a long and arduous tour of Bengal and Assam as President of the All India Ayurvedic Congress in 1940.

15. President, Darshan Sambhasha Parishad of All India Ayurveda Adhyapak Shiksha Parishad, Avadi, Madras, 1941.

16. General Secretary, All India Ayurvedic Congress, 1941 to 1944.

17. Attended on Gandhiji und Shrimati Kasturba and spoken of very highly by Gandhiji in his letters from the Agakhan Palace, Poona.

18. Member—Board of Ayurvedic and Unani Systems of Medicine, Punjab, 1941-47.

19. Sole Arbiter of Shri Harjimal Dalmia Memorial Gold Medal and Purse.

20. Judge, Shri Mangli Prasad Paritoshik, Allahabad (Ayurvedic Section).

21. Awarded the Title of VAIDYARATNA by the Government of India, 1946.

22. Leading physician of the North, attending on practically all the Northern Indian princes and statesmen before the partition of the country.

23. Inaugurated many provincial Conferences all over India.

24. Acted as the Leader of the Deputation of the All India Ayurvedic Congress at the time of the 3rd Health Ministers' Conference held in New Delhi in 1950 and addressed the Ministers in that capacity.

25. President, First Bombay State Ayurvedic Conference, Bombay, 1951.

26. President, Special Session of the All India Ayurvedic Congress, Ghaziabad, Uttar Pradesh, 1951.

27. Vice-President and Working President of the All India Ayurvedic Congress, 1950-52.

28. President, 38th All India Ayurvedic Congress, Indore, 1952.

29. Delivered the Convocation Address, Jhansi Ayurvedic University, 1952, and remained Chancellor of the said University in 1952-53.

30. Presented a memorable memorandum to the Inaugural Session of the Central Council of Health held at Hyderabad in January, 1953. This memorandum is credited by Vaidyas from all over the country with having confronted the Central Ministry of Health with an unexpected situation thereby wrecking their main anti-Ayurvedic resolution.

31. President, 2nd Hyderabad State Ayurvedic Congress, Tandur, 1953.

32. President, First Mysore State Ayurvedic Congress, Bangalore, 1953.

33. President, 3rd Himachal Pradesh Ayurveda Sammelan, Simla, 1953.

34. Fellow of the Faculty of Medicine (ancient and modern), Lucknow University, U.P., 1953.

35. Member of the Health Panel of the National Planning Commission, Government of India, since the year 1951.

36. President over the Gurukul and Rishikul anniversaries at Kangri and Hardwar.

37. The acceptance and introduction by Bombay Government of a Shudha Ayurvedic Course for Ayurvedic studies in that State is one of his many triumphs in the Ayurvedic field.

38. Visited many States of the Indian Union as President of the All India Ayurvedic Congress and met the Chief Ministers and Health Ministers thereof and discussed Ayurvedic problems with them. Recently he had long interviews with Shri Pt. Jawahar Lal Nehru and Shri Dr. Sarvapalli Radhakrishnan, Prime-Minister and Vice-President of India respectively.

39. The Ayurvedic world almost adores him for his eloquence, erudition, scholarship, brilliancy snd extra-ordinary qualities of the head and heart. He is the most respected protogonist of Ayurveda in the entire world. His fame has travelled beyond the seas and he has admirers practically all over the world. Many Vaidyas lovingly call him the "Jawaharlal of Ayurveda."

कुम्भ मेला प्रयाग

और उस में हमारे विद्यापीठ-मंत्री श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा का महत्वपूर्ण कार्य

लेखक—वैद्य नथमल जोशी, आयुर्वेदाचार्य, कानपुर

पूर्ण कुम्भ प्रयाग में समाज-सेवा के यत् किंचित् कार्य में भाग लेने के लिये मैं भी वहां जनवरी मास के प्रारम्भ में ही चला गया था। वहां जाकर नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के मंत्री श्री पं० श्रीदत्त जी महाराज के प्रबन्ध में चल रहे श्री १०८ बाबा कालीकमली वाले के विशाल कैंप में ठिकाना किया। यह कैंप गंगा के पार एकदम संगम के सामने उत्तर प्रदेश के राज्यपाल के कैंप के साथ स्थित था। कुम्भ मेले में यह सबसे बड़ा कैंप था और इसमें १५००० यात्रियों के निवास का प्रबन्ध किया गया था। इस कैंप की सुव्यवस्था की प्रसिद्धि सुन कर उत्तर प्रदेश सरकार के उच्च अधिकारी भी वहां पहुंचे। उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री पं० गोविन्दवल्लभ पन्त तथा केन्द्रीय रेलवे मिनिस्टर श्री लालबहादुर जी शास्त्री ने श्री पं० श्रीदत्त जी के कार्यसंचालन की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। उत्तर प्रदेश के कई मिनिस्टर, इलाहाबाद हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस श्री मलिक, इलाहाबाद डिविजन के कमिश्नर, इलाहाबाद के डिप्टी कमिश्नर, सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस आदि श्री पंडित जी के पास आते रहे और उनकी कुटिया में आकर उनके साथ बैठते रहे। श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन भी तीन बार उनके पास पधारे। लीडर, भारत, अमृत बाजार पत्रिका तथा अमृत पत्रिका में इनके कैंप की बहुत प्रशंसा की गई।

इस कैंप की व्यवस्था इतनी सुन्दर थी कि वहां किसी की एक भी वस्तु चुराई नहीं गई और वहां के निवासी सभी प्राणी कुशलता पूर्वक रहे। एक धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय भी इनके कैंप में बराबर चल रहा था।

उक्त अवसर पर पण्डित जी से किस श्रद्धा, भक्ति से अधिकारी वर्ग, सेठ साहूकार और धनी मानी मिल रहे थे, यह वैद्य जगत के लिये बहुत ही गौरव का विषय था।

वैरागी और निर्मल साधुओं की कुटियों में आग लग गई और वे सभी कुटियां मिनटों में ही भस्मसात् हो गईं। श्री पं० श्रीदत्त जी उन कुटियों के सभी निवासियों को अपने कैंप में ले आये और उनके निवास एवं खानपान का पूर्ण प्रबन्ध किया। उनमें से जो प्रयाग से अपने स्थायी ठिकाने पर जाने के इच्छुक थे उन्हें अपने पास से रेल-किराया दे-कर विदा किया। और २९०० रु० सहायता में डिप्टी कमिश्नर द्वारा बंटवाया।

उक्त कैंप में विभिन्न प्रकार के कार्य चल रहे थे। १०८ ब्राह्मणों द्वारा श्री भागवत पारायण विष्णु महायज्ञ चल रहा था। कैंप के विशाल सभा मण्डप में कई सभायें समय-समय पर हुईं। एक वैद्य सम्मेलन का भी आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन उत्तर प्रदेश के आयुर्वेद विभाग के डिप्टी डायरेक्टर श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी ने किया। उक्त सम्मेलन में भाषण देते हुए वैद्यवर श्री पं० श्रीदत्त जी ने कहा कि मैं ऋषिकेश आयुर्वेद विश्वविद्यालय के निर्माण के लिये वैद्यसमाज से सहयोग की याचना करता हूं। यदि यह सहयोग मुझे प्रचुर मात्रा में मिलेगा तो उक्त विश्वविद्यालय के लिये मैं २०,००,००० रुपये एकत्रित कर देने की आशा रखता हूं।

इस अवसर पर प्रयाग में बहुत से वैद्य भी पधारे थे जिनमें से वैद्यरत्न पं० राम प्रसाद जी तथा वैद्य श्री मस्तराम जी पटियाला, वैद्य श्री गोवर्द्धन शर्मा छांगाणी, श्री शिव करण छांगाणी तथा श्री गुलराज जी मिश्र, नागपुर, श्री पं० मुन्शीराम जी भटिण्डा, श्री गणेशदत्त जी शास्त्री, मेरठ, श्री स्वामी जयराम दास जी, तथा श्री स्वामी मंगलदास जी, जयपुर, श्री पं० नानकचंद जी, श्री स्वामी चेतनानन्द जी तथा वैद्य श्री रामस्वरूप चक्रवर्ती जी, देहली, श्री पं० महादेव शास्त्री तथा श्री पं० सत्यनारायण मिश्र, कानपुर, श्री श्रीराम शर्मा तथा श्री कन्हैयालाल भेड़ा, बम्बई, श्री रामदयालु जोशी, पटना, पं० दुर्गादत्त जी शास्त्री, अ० भा०, बनारस के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं।

विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति की बड़ी सफल एक बैठक भी इस अवसर पर हुई।

वैद्यराज श्री पं० श्रीदत्त जी की कार्यविलक्षणता वैद्यसमाज के लिये एक गौरव का विषय है। उनका संस्कृत प्रचार परिषद्, प्रयाग द्वारा अभिनन्दन किया गया और बड़ी सभा में इन्हें मानपत्र भेंट किया गया। इस समारोह की अध्यक्षता कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री रामाप्रसाद मुखर्जी नें की। राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन की अध्यक्षता में हिन्दी साहित्य परिषद् की ओर से भी उनका अभिनन्दन किया गया। एक गोरक्षा सम्मेलन का भी आयोजन किया गया। इस सिलसिले में एक शिष्ट मण्डल श्री पं० श्रीदत्त जी के नेतृत्व में श्री पं० जवाहरलाल नेहरू जी से भी ता० ३ फरवरी की रात्रि को मिला। लगभग एक घण्टे तक बातचीत हुई। गौरक्षा के विषय पर श्री पं० श्रीदत्त जी ने विभिन्न विचार श्री नेहरू जी के समक्ष रखे और श्री नेहरू जी ने आश्वासन दिया कि इस विषय पर अब वे बहुत गम्भीरता से विचार करेंगे।

आयुर्वेद लोक

तृतीय हिमाचल आयुर्वेद-सम्मेलन

हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन का तृतीय वार्षिक सम्मेलन शिमला में वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी, आयुर्वेद बृहस्पति, के सभापतित्व में दिनांक ५, ६ दिसम्बर को सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

प्रथम दिवस के कार्यक्रम में मुख्य-मुख्य रोगी निरीक्षण, वानस्पतिक प्रदर्शनी उद्घाटन थे। प्रदर्शनी श्री महेन्द्रकुमार शास्त्री बी० ए०, आचार्य पौद्दार आयुर्वैदिक कालेज, की अध्यक्षता में हुई तथा इसका उद्घाटन श्री गौरीप्रसाद जी, स्वास्थ्यमंत्री हिमाचल प्रदेश, द्वारा किया गया। दोनों महानुभावों ने संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित भाषण दिये।

दूसरे दिन खुला अधिवेशन हुआ जिसका उद्घाटन श्री वाई० एस० परमार, मुख्य मंत्री हिमाचल प्रदेश, ने किया। हिमाचल प्रदेश, पंजाब व पैप्सु के वैद्यों के अतिरिक्त स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा हिमाचल विधान सभा के सदस्य भी भारी संख्या में उपस्थित थे।

उद्घाटन के पश्चात् सभापति श्री पं० शिवशर्मा जी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सारगर्भित एवं रोचक भाषण हुआ। आपने हिमाचल प्रदेश तथा पंजाब दोनों उत्तरी राज्यों से अपील की कि वे अपने साधनों को संगठित कर सम्मिलित प्रयत्नों द्वारा एक संयुक्त आयुर्वैदिक आतुरालय तथा कालेज की स्थापना करें। यह ऐसे केन्द्रीय स्थान पर हो जो कि दोनों प्रान्तवासियों की सहज पहुंच के भीतर हो। आगे आपने कहा कि राष्ट्र को आयुर्वैदिक चिकित्सा की परमावश्यकता है क्योंकि ऐलोपैथी द्वारा प्रयुक्त तीव्र विषों से जो शारीरिक और मानसिक क्षति हुई है उस से राष्ट्रीय स्वास्थ्य को बड़ा आघात पहुंचा है।

यह बड़े दुःख की बात है कि आयुर्वैदिक विभागों के अधिकारी इस विषय पर अपेक्षित बुद्धिमत्ता तथा गम्भीरता से विचार नहीं करते।

पं० शिवशर्मा ने आगे आयुर्वैदिक विभागों को असहानुभूतिपूर्ण अनायुर्वैदिक तत्त्वों से मुक्त करने की आवश्यकता पर जोर दिया। विभिन्न राज्यों के आयुर्वैदिक विभागों में आयुर्वेद विरोधी तथा कृति-ध्वंसक कार्य का जिस प्रमाण में आयुर्वैदिक व्यवसाय द्वारा सामना करना पड़ रहा है वह अब प्रत्यक्ष रूप में सामने आ रहा है और जनता एवं आयुर्वेद जगत आश्चर्यचकित है कि इस विषय में क्यों कुछ नहीं किया ज़ा

रहा है। यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि बम्बई में M. B. B. S. पाठ्यक्रम में से ऐनाटामी के कुछ अंशों को निकाल कर आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम में जोड़ दिया गया परिणामतः प्रथम आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम का परिणाम १६% रहा जबकि प्रथम M. B. B. S. पाठ्यक्रम का परिणाम ६०% था।

अन्त में श्री शिवशर्मा जी ने आयुर्वेदिक व्यवसाय से अपील की कि पारस्परिक विवाद दोषारोपण से पृथक रहे। स्वार्थ एवं द्वेष का त्याग करे तथा आयुर्वेद को सर्वप्रथम एक मिशन तदुपरान्त आजीविका का साधन माने।

अध्यक्ष महोदय के भाषण के बाद श्री डा० डी० आर० मेहता, जो स्वास्थ्य विभाग, हिमाचल प्रदेश के उपसंचालक हैं, का भाषण हुआ।

अधिवेशन में अनेक उपयोगी प्रस्ताव पास हुए। जिनमें से पहिले प्रस्ताव में हिमाचल सरकार द्वारा एक आयुर्वेदिक फार्मेसी की स्थापना एक प्रगतिशील पग बताया गया तथा उसके लिये धन्यवाद किया गया। इसी प्रस्ताव में आगे सरकार से मांग की गई कि वह गवेषण कार्य प्रारम्भ करे जिससे आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का विकास हो तथा एक आयुर्वेद विद्यालय भी खोले जिसका प्रारम्भ उपवैद्य श्रेणी प्रारम्भ करके किया जावे। सरकारी औषधालयों में रोगी शैयाओं का अविलम्ब प्रबन्ध करने की मांग भी की गई जिसके अन्तर्गत प्रत्येक औषधालय में उपवैद्य तथा परिचारिकाओं की नियुक्ति अनिवार्यरूप से की जावे।

दूसरे प्रस्ताव द्वारा सरकार से अनुरोध किया गया कि प्रान्तीय आयुर्वेदिक विभाग को ऐलोपैथी से पृथक कर आयुर्वेदज्ञों के अधिकार में दे दिया जावे।

एक अन्य प्रस्ताव द्वारा आयुर्वेदिक चिकित्सालयों में काम करने वाले कर्मचारियों को पंजाब राज्य के अनुसार वेतन तथा रहन सहन की सुविधायें दिये जाने की मांग की गई।

आसाम राज्य आयुर्वेद महासभा गौहाटी के प्रथम वार्षिक अधिवेशन का कार्यक्रम

गौहाटी ४ जनवरी—आज संध्या के पाँच बजे से स्थानीय कर्जनहाल (नवीन चन्द्र वरदोलई हाल) में उक्त अधिवेशन सम्पन्न हुआ आसाम के सुप्रसिद्ध ज्ञानवयोवृद्ध भूतपूर्व डिप्टिकमिश्नर रायबहादुर श्री दुर्गेश्वर शर्मा M. A. B. L. ने अधिवेशन का उद्घाटन किया तदनन्तर वैद्यराज डाक्टर श्री प्राणजीवन माणिकचन्द्र जी मेहता, डायरेक्टर, केन्द्रीय अनुसंधानशाला, जामनगर के सभापतित्व में अधिवेशन का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। श्री सभापति का आयुर्वेद के उद्धार के विषय में हृदयग्राही मार्मिक अभिभाषण हुआ। आपनें आयुर्वेद

को अप्रतिहत सिद्धसिद्धान्तित, नित्य, शाश्वत सर्वश्रेष्ठ एवं सम्पूर्ण चिकित्सा पद्धतियों का निर्गमस्थान बताते हुए कहा कि निकट भविष्य में ही आयुर्वेद अनिवार्य्य रूप से उन्नति को प्राप्त होगा। आपने जनता एवं राज्य अधिकारियों से इसे समुन्नत करने के लिये अकृत्रिम प्रोत्साहन देने की अपील की। सभापति जी को उक्त सभा-की तरफ से "आयुर्वेद धन्वन्तरि" का उपाधिपत्र प्रदान किया गया। अनन्तर आयुर्वेदोन्नति विषयक प्रस्ताव पास किये गये एवं निम्न प्रकार से नव निर्वाचन हुआ। कविराज श्री नरनारायण गोस्वामी (नलवाडी) को कार्य संचालन के लिये सभापतित्व का भार अर्पण किया गया। पं० श्री जगदीश्वर शर्मा एवं श्री उत्तमचन्द्र गोस्वामी को पूर्ववत संयुक्तमन्त्री, कविराज श्री रमेश चन्द्रसेनगुप्त को कोषाध्यक्ष एवं प्रान्त के सभी मुख्य-मुख्य स्थान से ४५ सदस्य चुनें गये। इसके बाद श्री सभापति जी एवं आगत सभी सज्जनों को धन्यवाद ज्ञापन पूर्वक सभा विसर्जित की गई।

आयुर्वेद विद्वत्परिषद्, बम्बई

पाठकों को यह तो विदित ही है कि कुछ दिन पूर्व ही बम्बई सरकार ने शुद्ध आयुर्वेदीय पाठचक्रम एवं गुरु परम्परा द्वारा उसके शिक्षण को मान्यता देकर एक अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया है, एवं इसके संचालनार्थ श्री वैद्य वामनराव जी की अध्यक्षता में एक समिति की भी नियुक्ति की है।

इस समिति को अखिल भारतीय वैद्य समाज का सहयोग एवं मार्ग दर्शन प्राप्त हो इस हेतु से बम्बई में ता० १९-२० दिसम्बर को आयुर्वेद पारंगत वैद्य शिरोमणि श्री भिकाजी विनायक डेग्वेकर, आयुर्वेदाचार्य, M.Sc.L.L.B. के सभापतित्व में एक आयुर्वेद विद्वत्-परिषद् का आयोजन किया गया। परिषद् के स्वागताध्यक्ष श्री वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा जी एवं स्वागत मंत्री १. श्री सोमेश्वर भट्ट, २. श्री श्रीराम जी शर्मा, ३. श्री अनन्ताचार्य एवं ४. श्री लक्ष्मीबाई बोखणकर थे।

ता० १९ को मध्याह्न में जगन्नाथपुरी पीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य जी महाराज ने अपने आशीर्वचनों द्वारा परिषद् का उद्घाटन किया। तदन्तर स्वागताध्यक्ष श्री वैद्यरत्न शिवशर्मा जी ने अपने भाषण में समागत सज्जनों का स्वागत करते हुये राज्य सरकार द्वारा बनाई गई 'शुद्ध आयुर्वेद पाठचक्रम समिति' की योजना का इतिहास समझाया एवं सभी वैद्य महानुभावों से इसमें सहयोग देने की प्रार्थना की।

सभापति श्री डेग्वेकर जी ने अपने अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण भाषण में आयुर्वेदीय पाठचक्रम उसकी शिक्षण व्यवस्था वर्तमान समस्याएं आदि पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला (आपका भाषण अन्यत्र प्रकाशित है)। परिषद् का कार्य दो दिन तक चला जिसमें शुद्ध आयुर्वेद-पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षण के लिए गुरु, विद्यालय, छात्रों की योग्यता, पाठ्यक्रम में

निर्धारित विषयों के लिये ग्रन्थांश एवं ज्ञेयांश आदि विषयों पर महत्वपूर्ण सारगर्भित चर्चा हुई, तथा प्रायः सभी विषयों पर सर्वसम्मत निर्णय हुये। परिषद् के सभी विषयों पर विशेषकर जहां जहां कुछ विरोध या आपत्तियां आईं उन विषयों का निराकरण आचार्य श्री यादव जी महाराज तथा श्री सभापति जी एवं क० प्रतापसिंह जी ने अपने योग्य मार्ग दर्शन द्वारा किया। इस वृद्धावस्था में भी परिषद् के कार्य में आदि से अन्त तक आचार्य श्री यादव जी ने पूर्ण भाग लिया यह परिषद् के लिये अत्यन्त सौभाग्य की बात थी।

परिषद् में बम्बई नगर के प्रायः सभी प्रमुख वैद्यों के अतिरिक्त बाहर से पधारने वालों में सर्व श्री क० प्रतापसिंह जी, दत्तात्रेयजी शास्त्री कुलकर्णी (डाइरेक्टर आयुर्वेद विभाग उत्तर प्रदेश), श्री रामरक्षक जी पाठक (बेगूसराय), श्री पराडकर जी शास्त्री (अकोला), श्री रणजीतराय जी देशाई (सूरत), श्री जलूकर शास्त्री (अध्यक्ष महाराष्ट्र वैद्य मण्डल) (नशीराबाद), श्री मरुलाराध्य शास्त्री (अध्यक्ष निखिल कर्णाटक वैद्यमण्डल), (बीजापुर), श्री लक्ष्मीशंकर जी शास्त्री (अहमदाबाद), श्री ब्रह्मदत्त शर्मा (भुसावल), श्री माधवप्रसाद जी शास्त्री (अहमदाबाद), त्र्यम्बक लाल जी जोशी (भरौंच), श्री वैद्य गोगटे (नासिक), श्री हलसीकर जी, नागेश जी शास्त्री (कानपुर), श्री विन्दुमाधव जी पण्डित (नासिक), श्री पाण्डुरंग हरिदेश पाण्डे (पूना) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

ता० २० को रात्रि ८ बजे मंत्रियों द्वारा आभार प्रदर्शन के पश्चात् वन्देमातरम् गीत एवं 'भिषजां साधुवृत्तानां' इस भद्राभिलाषा के साथ ही अत्यन्त सौजन्यपूर्ण वातावरण में परिषद् का कार्य विसर्जन किया गया।

—कल्याणप्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य, बम्बई।

बम्बई राज्य मन्त्रिमंडल अभिनन्दन समारोह

ता० १९ दिसम्बर को भारतीय विद्या भवन, (बम्बई) में बम्बई राज्य की लगभग ५० आयुर्वेदीय संस्थाओं द्वारा, बम्बई राज्य के मन्त्रिमण्डल का अभिनन्दन किया गया।

कुछ दिन पूर्व ही बम्बई सरकार ने शुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम एवं गुरु परम्परा शिक्षण प्रणाली को मान्य किया है। इसके उपलक्ष्य में यह आयोजन किया गया था।

राज्य विधान परिषद् के अध्यक्ष माननीय श्री रामचन्द्रजी हुकेरीकर ने समारोह की अध्यक्षता की।

सर्व प्रथम वैद्य श्री रामजी शर्मा ने अपने संस्कृत पद्यों द्वारा मन्त्रिमण्डल का स्वागत एवं अभिनन्दन किया। तदनन्तर वैद्य श्री सोमेश्वर जी भट्ट ने संदेशवाचन किया। तत्पश्चात् आचार्य श्री यादव जी महाराज, कविराज प्रतापसिंह जी, श्री पं० शिवशर्मा जी, श्री दत्तात्रेय कुलकर्णी जी, श्री भिकाजी, विनायक डेग्वेकर, श्री कन्हैयालाल जी भेंडा एवं श्रीमती

श्री महारानी जामनगर आदि के भाषण हुये। श्री वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा जी ने शु० आ० पाठ्यक्रम समिति की रचना के इतिहास पर प्रकाश डाला एवं इसके लिये मन्त्रिमण्डल को धन्यवाद दिया, तथा आशा प्रकट की कि राज्य सरकार ने जिस शुभ कार्य का श्रीगणेश कर आयुर्वेदोन्नति के मार्ग की एक बहुत बड़ी बाधा दूर की है—वह इसकी सफलता एवं उन्नति के लिये भविष्य में भी सदैव पूर्ण सहयोग देती रहेगी।

श्री महारानी जी ने आयुर्वेद की बहुत प्रशंसा की एवं कहा कि मैं सदैव आयुर्वेद की सेवा करती रही हूं—तथा भविष्य में भी करती रहूंगी।

स्वास्थ्य मंत्री माननीय श्री शान्तिलाल जी शाह नें कहा कि आप सब वैद्य समाज का पूर्ण सहयोग हुआ तो—आयुर्वेद अवश्य ही उन्नति करेगा। अन्य आवश्यकीय कार्य होने से आपने कोई भाषण नहीं किया, एवं कुछ समय पश्चात् ही आपको बाहर जाना पड़ा।

मुख्य मंत्री श्री मुरार जी भाई ने अपने भाषण में कहा कि आयुर्वेद एक पूर्ण वैज्ञानिक शास्त्र है एवं हमारे देश के लियें सर्वाधिक उपयोगी चिकित्सा पद्धति है, गत सैकड़ों वर्षों में विदेशी शासन के कारण इसे प्रगति का अवसर नहीं मिला। एवं राज्याश्रय न होने के कारण इसकी यह दशा हुई। मेरा तथा अन्य साथी मन्त्रियों का मानना है कि आयुर्वेद को उसकी अपनी पद्धति से बढ़ानें का मौका देना चाहिये, एवं इसी हेतु से हमने शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम समिति की रचना की हैं। आपने गुरु परम्परा प्रणाली द्वारा शिक्षण की भी बहुत प्रशंसा की, एवं कहा कि गुरु कृपा बिना सच्चा ज्ञान होना कठिन है।

मुख्य मंत्रि ने आयुर्वेदीय संस्थाओं की एकता पर भी जोर दिया आपने कहा कि सम्पूर्ण वैद्यसमाज को संगठित रहना चाहिये। आपने आयुर्वेद की उन्नत्यर्थं सर्व प्रकार की सहायता देने का आश्वासन दिया।

आचार्य श्री यादव जी महाराज ने श्री मुख्य मंत्री, सौराष्ट्र के राजप्रमुख श्री जाम साहब, महारानी जाम साहब, एवं अन्य मन्त्रियों को पुष्प मालायें पहनाईं तथा श्री दत्तात्रेय शास्त्री जलूकर एवं श्री लक्ष्मी शंकर जी शास्त्री द्वारा आभार प्रवचन किया गया। अल्पाहार एवं फ़ल रसपान के अनन्तर समारोह विर्सजित हुआ।

ऊपर लिखित वक्ताओं के अतिरिक्त समारोह में सम्मिलित होने वाले सज्जनों में माननीय श्री जाम साहब (राजप्रमुख सौराष्ट्र), श्री डा० नरवणे (उपमन्त्री मद्य निषेध विभाग), श्री बाबू भाई पटेल (उपमंत्री) श्री हरिदत्त जी शास्त्री (विद्यापीठाध्यक्ष), श्री रामरक्ष जी पाठक, श्री वामनराव दीनानाथ, श्री रामगोपाल जी शास्त्री, श्री गजानन जी शर्मा, श्री पराडकर शास्त्री, श्री हलसीकर जी, श्री गोगटे, श्री गजानन्द जी राजवैद्य, श्री दामुभाई जी, श्री हिम्मतलाल जी मुनि, श्री वैद्यनाथ जी शर्मा, श्री ना० ह० जोशी, श्री रविशंकर जी

याज्ञिक, श्री जयन्तीलाल जी ठाकुर, श्री वेदप्रकाश जी शर्मा, श्री वैद्य सीताराम जी भिषगाचार्य आदि के नाम मुख्य हैं।

—वैद्य घासीराम शर्मा शास्त्री, बम्बई

कुम्भ नगर प्रयाग में आयुर्वेद सम्मेलन

बाबा काली कमली वाला कैम्प में—

१ फ़रवरी—आज बाबा कालीकमली वाला कैम्प कुंभनगर में एक वृहत् आयुर्वेद सम्मेलन समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर देश देशान्तरों के गण्य मान्य वैद्य महानुभाव उपस्थित थे। जिनमें से आ० वृहस्पति पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, आ० विद्यार्णव छांगाणी जी, श्रीमान् कुलकर्णी जी, वैद्यराज जयरामदास जी, स्वामी मंगलदास जी, पं० देवराज शास्त्री, वैद्यराज पं० मुन्शीराम, नानकचन्दजी वैद्यशास्त्री, रा. ब. श्रीदत्तजी, आयुर्वेदाचार्य रामनाथशर्मा, स्वामि दयानिधिजी, पं० रविदत्तशर्मा हरदोई, श्रीखुशवख्तरामजी हरिद्वार, योगींद्रचंद्र दिल्ली, लक्ष्मीनारायण मिश्र मेरठ, सुरेन्द्र जी झांसी, पं० काशीप्रसाद शुक्ल, पं० वेणीमाधव द्विवेदी, पं० गिरिजाशंकर अवस्थी के नाम उल्लेखनीय हैं।

श्रीमान् कुलकर्णी जी नें अपने मधुर भाषण द्वारा सम्मेलन का उद्घाटन किया तदनन्तर शुक्ल जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में आयुर्वेद की उत्कृष्ठता तथा वैज्ञानिकता का वर्णन बड़े सारर्गभित शब्दों द्वारा किया। तत्पश्चात् निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए।

राष्ट्रीय चिकित्सा

प्रयागीय महाकुम्भ मेले का यह आयुर्वेद सम्मेलन केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों से अनुरोध करता है कि वे देशवासियों की भावना का आदर कर आयुर्वेद को देश का राष्ट्रीय स्वास्थ्य और चिकित्सा विज्ञान घोषित कर उसकी सप्रयोग शिक्षा की ऐसी व्यापक व्यवस्था करें कि उसके सभी अंगों की पुष्टि और पूर्ति के सांथ आधुनिक समयानुकूल स्वास्थ्य और चिकित्सा विभाग के संचालन के लिये सुयोग्य संचालक अधिकारी और कर्मचारी सफलता पूर्वक तैयार हो सकें।

शुद्ध आयुर्वेद

इस सम्मेलन की सम्मति में मिश्रित वैद्यक शिक्षा का पाठ्यक्रम न तो सफल हुआ और न उसके द्वारा आयुर्वेद के निष्णात वैद्य तैयार हो सके। ऐसी दशा में बम्बई प्रान्त की सरकार ने शुद्ध आयुर्वेद की शिक्षा का जो पाठ्यक्रम प्रचलित किया है उसके लिये यह सम्मेलन उसे धन्यवाद प्रदान करता है। इस सम्मेलन की सम्मति में सभी प्रान्तों में ऐसे

पाठ्यक्रम का प्रचार और उसके अनुसार सप्रयोग शिक्षा की व्यवस्था होनी आवश्यक है।

यह सम्मेलन यह भी अनुरोध करता है कि ऐसी शिक्षण के पश्चात् दो वर्ष का एक ऐसा पाठ्यक्रम भी प्रचलित होना आवश्यक है जिससे सन्तुलन और समन्वय की दृष्टि से आधुनिक आवश्कता के अनुकूल उन सब बातों की शिक्षा पूर्ण की जाय जिनके आधार पर पूर्ण समर्थ शिक्षित वैद्य देश की स्वास्थ्य रक्षा और चिकित्सा का कर्त्तव्य पूर्ण करने योग्य हेल्थ आफीसर और मेडिकल आफिसर का पद संभालने में सफल हों।

विद्यापीठ के स्नातकों को अधिकार

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के अंगभूत आयुर्वेद विद्यापीठ के पाठ्यक्रमानुकूल उसकी परीक्षाएं भारत की प्रथम और आदर्श परीक्षाएं हैं। उसके स्नातकों को जहां भी अध्यापक, शासक और चिकित्सक के रूप में कार्य करने का अवसर मिला है वहां उन्होंने अपनी योग्यता और सफलता का परिचय दिया है। किन्तु इस सम्मेलन को खेद है कि इधर प्रान्तों के बने हुए कुछ बोर्ड विद्यापीठ के स्नातकों को रजिस्ट्री, सरकारी नौकरी तथा ग्रांट आदि के लिये स्वीकार नहीं करते अथवा उनके प्रति उदारता का व्यवहार नहीं करते हैं। यह सम्मेलन केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों से आग्रहपूर्ण अनुरोध करता है कि विद्यापीठ के स्नातकों को उनकी योग्यता के अनुसार अधिकार और कार्य देने में न्यायारूप व्यवहार करने की घोषणा करने की कृपा करें।

पृथक आयुर्वेद-विभाग

आयुर्वेद जगत का यह दृढ़ और निश्चित विचार है कि आयुर्वेद की सर्वांग उन्नति के लिये केन्द्र और समस्त प्रान्तों में आयुर्वेद का स्वतन्त्र विभाग स्थापित होना परमावश्यक है। इसलिये यह सम्मेलन सरकार से अनुरोध करता है कि शीघ्र ही डायरेक्टर मेडिकल तथा हेल्थ सर्विसेज की अधीनता से पृथक् स्वतन्त्र आयुर्वेद विभाग स्थापित करने की व्यवस्था की जाय।

एक सा पाठ्यक्रम

यह सम्मेलन अनुभव करता है कि भारत के सभी प्रांतों के आयुर्वेद महाविद्यालयों का एक सा पाठ्यक्रम होना आवश्यक है। इसलिये यह सम्मेलन नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ से अनुरोध करता है कि इस कार्य की सिद्धि के लिये सभी आयुर्वैदिक शिक्षण संस्थाओं के प्रतिनिधियों के सहयोग से एक सर्वमान्य पाठ्यक्रम तैयार करने की व्यवस्था करे।

औषधालयों की रिपोर्ट

इस महाकुम्भ मेले के अवसर पर कितने सरकारी, धार्मिक संस्थाओं और व्यक्तिगत उदार धनियों के द्वारा कई आयुर्वैदिक औषधालय सफलतापूर्वक तीर्थयात्रियों की सेवा कर

रहे हैं। यह सम्मेलन सभी के उदारतापूर्ण कार्य की प्रशंसा करता है और साथ ही अनुरोध करता है कि इन सबों के कार्यकर्ता गण अपने-अपने औषधालय की रिपोर्ट इस सम्मेलन के संचालक को देवें। ताकि सरकार के पास आयुर्वैदिक सेवा सफलता की सप्रमाण रिपोर्ट भेजी जा सके।

कुम्भ के समय आयुर्वैदिक अस्पताल

प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन और नासिक के कुम्भ के अवसरों पर लाखों धार्मिक जनता एकत्र होती है और अपनी प्रकृति परम्परा तथा धार्मिक भावना के अनुकूल आयुर्वैदिक औषधि ही ग्रहण करना चाहती है। किन्तु खेद है कि सरकार के द्वारा अब तक ऐसे मेलों में आयुर्वैदिक इनडोर हास्पिटल खोलने की व्यवस्था नहीं होती। यही नहीं यथेष्ट आयुर्वैदिक औषधालय भी नहीं खोले जाते। इस प्रयाग महाकुंभ के समय लाखों रुपये खर्च करने पर भी सरकार का ध्यान इधर आकर्षित नहीं हुआ यह एक क्षोभ का विषय है। यह सम्मेलन आशा करता है कि सरकार आगे आने वाले कुम्भों के समय इसकी पूर्ति का ध्यान रखने की कृपा करेगी। तथा २५ रोगी शैय्या के इनडोर हास्पिटल की व्यवस्था कर जनता को सुविधा प्रदान करेगी।

सनातनधर्म प्रतिनिधि सभा कैम्प में

गत ३१ जनवरी को सनातनधर्म प्रतिनिधि सभा के आयोजन द्वारा सनातनधर्म प्रतिनिधि के पण्डाल में मध्याह्नोत्तर ३ बजे पं० मुन्शीराम जी राजवैद्य की अध्यक्षता में आयुर्वेद सम्मेलन कुम्भ मेला फूसी में हुआ, जिसके उद्घाटनकर्त्ता पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल आ० वृहस्पति जी थे तथा स्वागताध्यक्ष कविराज पं० नानकचन्द्र वैद्य शास्त्री, प्र० सम्पादक सम्मेलन पत्रिका, थे। उद्घाटन करते हुए शुक्ल जी ने अनेक प्रकार से आयुर्वेद की वैज्ञानिकता को सिद्ध करते हुए भारत की जनता को यह सुझाव दिया कि वह आयुर्वैदिक चिकित्सा द्वारा लाभ उठाते हुए सरकार को दर्शायें कि हमें अन्य किसी भी चिकित्सा द्वारा लाभ नहीं हो सकता अतः हमारे नगर, गांव, तथा प्रान्तों में आयुर्वेदीय होस्पिटल तथा चिकित्सालय खोलने की ओर ध्यान दे।

इसके अनन्तर स्वागताध्यक्ष ने आयुर्वेद की उपयोगिता तथा वैज्ञानिकता दर्शाते हुए कई एक दृष्टांत तथा प्रयोगों का वर्णन किया तथा जनता से सानुरोध आयुर्वेद चिकित्सा को अपनाने के लिये कहा। तत्पश्चात् सम्मेलनाध्यक्ष जी नें अपना वक्तव्य कहते हुए डाक्टरों द्वारा त्यक्त रोगियों को आयुर्वेद पद्धति से रोग निवारण करने के अनेक उदाहरण दिये और यह सिद्ध किया कि पाश्चात्य वेत्ता बिना आयुर्वेद को जाने कैसे उसे अवैज्ञानिक कहते हैं। पहिले उन्हें अपनी आंगल चिकित्सा को तो वैज्ञानिक सिद्ध करना चाहिये। जहां तक विज्ञान का सम्बन्ध है ऐलोपैथी कई वार फेल हो चुकी है। इसके लिये आपने अनेक उदाहरण दर्शाये। अन्त में निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हुए।

(१) अखिल भारतवर्षीय सनातन धर्म महासभा अन्तर्गत कुम्भ प्रयाग का यह वैद्य सम्मेलन भारत सरकार से सानुरोध मांग करता है कि वैज्ञानिक एवं सर्वांगपूर्ण आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति को उचित स्थान प्रदान करे और अधिक से अधिक आयुर्वेदिक औषधालय व आतुरालय खोल कर उससे लाभ उठाने वाली ८० प्रतिशत जनता की मांग को पूरा करे।

(२) यह वैद्य सम्मेलन प्रान्तीय सरकारों द्वारा संचालित आयुर्वेदिक विद्यालयों की शिक्षा पद्धति पर असंतोष प्रकट करता हुआ यह मांग करता है कि वह प्रत्येक प्रान्त में विशुद्ध आयुर्वेदिक विद्यालय तथा आतुरालय जिनमें आंख, नाक, कान आदि विभाग अलग-अलग हों खोल कर अपनें कर्तव्य का पालन करें।

आयुर्वेद को सार्वभौम स्वरूप प्राप्त करानें के लिये और आयुर्वेदिक वैद्यों के द्वारा हैल्थ डिपार्टमेण्ट और मेडिकल डिपार्टमेण्ट संचालन करने की योग्यता प्राप्त करने के लिये सम्मेलन यह भी अनुरोध करता है स्नातकोत्तर शिक्षा द्वारा अनुसंधान और नवीन प्रक्रियाओं की जानकारी भी करानी वैद्यों को आवश्यक है।

(३) यह सम्मेलन प्रान्तीय सरकारों से सानुरोध मांग करता है कि वह टेन्डर द्वारा कम मूल्य पर ही औषधि खरीद कर जनता के धन और स्वास्थ्य का ह्रास न करें। तथा आयुर्वेदिक फारमेसियों को टेन्डर देकर औषधि खरीदते समय उसके मूल्य के साथ साथ उसके स्तर का पूर्ण रूप से ध्यान रक्खें, और अनुसंधान द्वारा परीक्षित औषधियां ही ली जायें।

(४) यह वैद्य सम्मेलन आयुर्वेदिक फारमेसी संचालकों से प्रार्थना करता है कि ठीक स्तर की औषधि से जनता को लाभ न होने से आयुर्वेद पद्धति को हानि पहुंचती है। अत: औषधि निर्माण शास्त्रीय पद्धति के अनुसार कर आयुर्वेद के मान को बढ़ावें। शास्त्रीय पद्धति से बनी हुई औषधियों का नुक्सा साथ में दिया जावे।

(५) यह वैद्य सम्मेलन भारत सरकार से प्रार्थना करता है कि गवर्नमेण्ट विभागों में जैसे पोस्टल, रेलवे, मिलेटरी इत्यादि कर्मचारियों को रुग्ण अवस्था में इलाज करने पर रजिस्टर्ड वैद्य अथवा हकीमों से दिया हुआ प्रमाण पत्र प्रमाणित माना जाय।

शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम बम्बई

शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम समिति की द्वितीय सभा दि० २८-१-५४ को बुद्ध भवन औट ट्रेम रोड, फोर्ट, में अध्यक्ष श्री वैद्य वामनराव जी दीनानाथ की अध्यक्षता में दोपहर के २ वजे सम्पन्न हुई। सभा में समिति के सातों सदस्य उपस्थित थे। सर्व प्रथम गत सभा का कार्य विवरण सम्मत किया गया।

इसके अनन्तर पाठ्यक्रम समिति की प्रथम सभा में नियुक्त की हुई उपसमिति की ओर से आया हुआ विवरण चर्चा के लिये रखा गया और उस पर निम्नलिखित विचार सम्मत हुए।

(अ) समिति के संचालनार्थ आवश्यक नियम और उपनियम।

(आ) राजमान्य गुरु की पात्रता और उनके लिए आवश्यक आवेदन-पत्र।

(इ) राजमान्य गुरु के पास अध्यापनावश्यक साधन सामग्री।

(ई) विद्यालयों की पात्रता और उनके लिए आवश्यक साधन सामग्री और आवेदन-पत्र।

(उ) विद्यार्थियों की प्रवेश पात्रता के लिए गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज बनारस की प्रथमा परीक्षा के समकक्ष अन्य संस्कृत परीक्षाएं तथा बम्बई प्रान्त की S.S.C. परीक्षा के समकक्ष अन्य बोर्ड और विश्वविद्यालयों की परीक्षाएं। यह सब कार्यवाही अन्तिम निर्णय के लिये सरकार के पास भेजी जायेगी और उसके पश्चात् वह प्रकाशित की जायेगी।

आयुर्वेद द्वारा ही देश की स्वास्थ्य समस्या का हल सम्भव है

हैदराबाद के मुख्य मंत्री श्री बी० रामाकृष्णराव के उद्गार

हैदराबाद १० दिसम्बर, "आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति द्वारा ही भारतीय जनता के स्वास्थ्य व व्याधि की समस्या का उचित हल हो सकता है" यह शब्द हैदराबाद के मुख्य मंत्री डा० बी० रामकृष्णराव ने शहर से साठ मील दूर मैदक शहर में "आयुर्वेद धर्म चिकित्सा सदनम्" का उद्घाटन करते हुए कहे। आपने हैदराबाद में आयुर्वेद आन्दोलन से पिछले सोलह वर्ष से अपना सम्बन्ध प्रकट किया। तथा अपनें अनुभव से ऐसा विश्वास प्रकट किया कि भारतीय खान-पान, रहन-सहन और जलवायु को देखते हुए तथा आयुर्वैदिक औषधियों की अनुकूलता, सुलभता एवं निरुपद्रवता की दृष्टि से भारतीय ग्रामीणों के लिए यही चिकित्सा पद्धति अनुकूल एवं हितकर होगी। हैदरावाद आयुर्वेद मण्डल के प्रधान श्री रामानुज स्वामी तथा स्थानीय कार्यकर्त्ताओं के उत्साह की सराहना की तथा श्री स्वामी जी महाराज के १०८ धर्मार्थ औषधालय जनता द्वारा खुलवाने के संकल्प को महासंकल्प बतलाते हुए अपनी शुभ कामनाएं प्रकट कीं। तथा स्थानीय वैद्य समाज से आशा प्रकट की कि वह इस महासंकल्प को अवश्य पूरा करके छोड़ेंगे।

इससे पूर्व श्री रामानुज स्वामी ने मुख्य मंत्री के आयुर्वेद प्रेम की प्रशंसा की तथा आयुर्वेद धर्म का महत्व तैलुगु भाषा में समझाया। श्री पं० राधाकृष्ण जी द्विवेदी भूतपूर्व प्रिंसिपल आयुर्वैदिक कालेज ने हिन्दी में सृष्टि के आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक संक्षेप में आयुर्वेद के इतिहास तथा गौरव की चर्चा की। श्री पं० रामराज जी, श्री पं० गोवर्द्धन जी शर्मा, उपमंत्री हैदरावाद राज्य आयुर्वेद महामण्डल, तथा कविराज पुरुषोत्तम देव जी मुल्तानी, प्रधान वैद्य राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय, हैदराबाद, विशेष रूप से इस अवसर पर उपस्थित थे।



निखिल भारतवर्षीयायुर्वेद विद्यापीठकार्यसमितेः

१९५४ तमवर्षीयं प्रथमाधिवेशनम्

स्थानम्—बाबा कालीकमली वाला शिविरं (कैम्प) कुम्भ मेला, प्रयाग।
समय—ता० ५ फरवरी १९५४ शुक्रवासरे मध्याह्नोत्तर द्विवादनतः।

उपस्थितिः—सर्वश्री रामप्रसाद शर्मा पटियाला। जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, प्रयाग। श्रीराम शर्मा, बम्बई। रामदयालु जोशी, पटना। सत्यनारायण मिश्र, कानपुर। मुंशीराम शर्मा, भटिण्डा। स्वामी चेतनानन्द, देहली। गणेशदत्त शास्त्री, मेरठ। नथमल जोशी, कानपुर। मस्तराम कौशल, पटियाला। ब्रह्मानन्द शर्मा, भटिण्डा। रामस्वरूप चक्रवर्ती, देहली। श्रीदत्त शर्मा, विद्यापीठमन्त्री।

सम्मतिप्रेषकाः—सर्वश्री पं० हरिदत्त शास्त्री, विद्यापीठाध्यक्ष, बम्बई। नन्दकिशोर शास्त्री, रायपुर। घनानन्द पन्त, देहली। वामनराव दीनानाथ, बम्बई। शिवनाथ शर्मा, देहली। आचार्य नित्यानन्द सारस्वत, पिलानी। वैद्यरत्न प्रतापसिंह, इन्दौर। मणिराम शर्मा, रतनगढ़। मनोहरलाल, देहली। लक्ष्मीकान्त दामोदर पुराणिक, नागपुर। आचार्य माधवप्रसाद, रतलाम। वासुदेव शास्त्री, उज्जैन। कान्तिनारायण मिश्र, पटियाला। कालीचरण शर्मा, बनारस। गयाप्रसाद शास्त्री, हैदराबाद। ब्रह्मदत्त शर्मा, भुसावल। भगवन्तराय जैन, कनखल। प्रभाकर चट्टोपाध्याय, कलकत्ता।

वैद्य श्री रामस्वरूप चक्रवर्ती महोदयानां प्रस्तावे तथा मेरठनिवासी श्री गणेशदत्तशास्त्रिमहोदयानामनुमोदने सर्वेसामुपस्थितसदस्यमहोदयानां समर्थने च राजवैद्य श्री रामप्रसाद शर्माणः सभापतयः अभूवन्। तेषां साभापत्ये द्विवादनतः कार्यक्रमोऽभूत्।

१. सर्वप्रथमं गताधिवेशनस्य कार्यविवरणं श्रावितं सर्वसम्मत्या स्वीकृतञ्च।

२. "मद्रास तथा ट्रावनकोर कोचीन" इत्यस्य सर्वकारैः सम्मानितस्य एरणाकुलस्थस्य माधवायुर्वेदविद्यालयस्यायुर्वेदशास्त्रिपरीक्षायाः पाठ्यक्रमादि निरीक्षणानन्तरं निर्णीतं यदुक्तविद्यालयस्यायुर्वेदशास्त्रीएल.ए.एम.परीक्षाविद्यापीठस्य विशारदपरीक्षायाः तुल्यत्वेन स्वीकृता स्यात्।

३. "उत्तरप्रादेशिकदेशीचिकित्साबोर्ड" इत्यस्य गृहस्वास्थ्यविशारदापरीक्षायाः पाठ्यक्रमे विचारपरामर्शोऽभूत्। विचारानन्तरञ्च निर्णीतं यत् गृहस्वास्थ्यविशारदा परीक्षा विद्यापीठस्य भिषक् परीक्षायाः तुल्यत्त्वेन स्वीकरणीया। तस्यां परीक्षायां समुत्तीर्णाः छात्राः विद्यापीठस्य वैद्यविशारदपरीक्षायाः प्रथमखण्डे प्रवेष्टव्याश्च।

४. "हिन्दीसाहित्यसम्मेलन प्रयाग" इत्यस्यायुर्वेदरत्नपरीक्षायाः पाठ्यक्रम-निरीक्षणानन्तरं वैद्य श्री जगन्नाथप्रसादशुक्लमहोदयानां सम्मत्यानुसारेण च सर्वसम्मत्या निर्णीतं यदुक्तपरीक्षा विद्यापीठस्य विशारदपरीक्षायाः तुल्यत्त्वेन स्वीकरणीयेति ।

५. सर्वसम्मत्या निर्णीतं यत् यासां सम्मानितसंस्थानामुच्चपरीक्षा विद्यापीठस्यायुर्वेदाचार्य एवं वैद्याचार्यपरीक्षाकृते स्वीकृतास्ति तासां प्रथमा परीक्षा विद्यापीठस्य भिषक्-परीक्षायाः तुल्यत्त्वेन स्वीकरणीया तस्यां समुत्तीर्णेभ्यः छात्रेभ्यश्च विद्यापीठस्य वैद्यविशारद परीक्षायाः प्रथमखण्डे प्रवेशाधिकारः प्रदेयः ।

६. सर्वसम्मत्या निर्णीतं यत् कस्यापि राज्यसम्मानितविश्वविद्यालयस्य स्नातकाय-(ग्रेजुएट) विद्यापीठस्य वैद्यविशारदपरीक्षायाः प्रथमखण्डे प्रवेशाधिकारः प्रदेयः ।

७. निश्चितं यत् विद्यापीठनियमावल्याः नियमानुसारेण षोडशवर्षात्, अष्टादश-वर्षाद्वा न्यूनवयस्कानां यासां एषाम्वा छात्राणां भिषक्परीक्षाकृते परीक्षावेदनपत्राणि प्राप्तानि सन्ति तासां तेषाम्वावेदनपत्राणि स्वल्पवयस्कत्वात् न स्वीकरणीयानि ।

८. निर्णीतं यत् जामनगर (सौराष्ट्र), पुरी (उड़ीसा), काठमाण्डू (नेपाल), गोहाटी (आसाम), झांसी (उत्तर प्रदेश), इत्येतेषु स्थानेषु सन् १९५५ तः विद्यापीठपरीक्षाकेन्द्राणि स्थापनीयानीति ।

९. सर्वसम्मत्या निर्णीतं यत् दक्षिणे भारते प्रजावैद्यपरीक्षायाः संचालनं श्री डा० ए० लक्ष्मीपतिमहोदयानां सहयोगेण विधेयं तत्कृते चापेक्षितकार्यभारं विद्यापीठमंत्री स्वयमेव तेभ्यः प्रदद्यात् ।

१०. (क) १९५३ वर्षीयायुर्वेदविशारदपरीक्षायाः क्रमांक २८५ विषये उपसमितेः सदस्यानामितिवृत्तं (रिपोर्ट) समुपस्थितम् । इतिवृत्तं छात्रानुकूलमस्ति, इतिज्ञात्वा सर्वसम्मत्या निर्णीतं यदुक्तपरीक्षार्थिने आगामिन्यां मार्चमासिकपरीक्षायां केवलं कौमारभृत्यविषये प्रवेशाधिकारः प्रदेयः । यद्यसौ परीक्षार्थ्यस्यां परीक्षायां प्रविष्टुं न शक्नुयात्तर्हि तस्यायमधिकारः १९५५ वार्षिकपरीक्षापर्यन्तं सुरक्षितं स्यात् । इदमपि निर्णीतं यत् परीक्षार्थी विलम्बशुल्करहितं परीक्षाशुल्कं कार्यालये संप्रेषयेत् ।

(ख) निर्णीतं यदुक्तपरीक्षार्थिनः उत्तरपुस्तकानां लेखनिरीक्षकस्य लेखविशेषज्ञ श्रीउग्रसेनमहोदयस्य शतरुप्यात्मकं (बिलं) स्वीकरणीयम् ।

मिश्रितविषया :—

(क) निश्चितं यत् सन् १९४१ तः १९५३ पर्यन्तं आचार्य-विशारद-भिषक् परीक्षाणां प्रश्नपत्राणि मुद्रितव्यानि, तेषां मुद्रणव्ययस्य व्यवस्था प्रचलितवर्षस्य व्यय एव कुर्यात् ।

(ख) निर्णीतं यत् "जोधपुर" इत्यस्य केन्द्रस्य परीक्षास्थलः कस्मिंश्चिद्विद्यालये सार्वजनिकस्थाने वा भवेत् । (शेष पृष्ठ १३२ पर देखो)

साहित्य-सत्कार

यक्ष्मचिकित्सा प्रथमखण्डो द्वितीयखण्डश्च

लेखक :—प्रभाकर चट्टोपाध्यायः एम० ए० रससिद्धः
राजवैद्य आयुर्वेद भवन, १७२ बहु बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता
मूल्यम्—क्रमशः २॥), ५) रुप्यकम्

बङ्ग भाषायां लिखिते ग्रन्थेस्मिन् यक्ष्मनिदाने चिकित्सिते च संक्षेपेण यावन्तःक्षयाः तेषु तेषु अङ्गेषु धातुषु च अद्यावधि आविष्कृततमाः सन्ति तेषां निदानं पृथक् चिकित्सा च तथै तेषां प्रत्येकस्य उपद्रवस्य अवस्था विशेषे चिकित्सापि वर्णिता, एवं यक्ष्मिणां जलवायु परिवर्त्तनार्थं कदा कस्को देश समुचितः इत्यपि सूचितम्। येन छात्राणां प्रवुद्ध वैद्यानामपि च यथावसरं चिकित्सायाममहदुपकारः स्यात्। न खलु केवलं समालोचनाया पुस्तकस्य, आभ्यन्तरा विषया अध्ययन परिशीलन मन्तरा सम्यकतया ज्ञातुं शक्या।

आयुर्वेदस्य पाठ्य पुस्तकेषु आलोच्य पुस्तकेषु वा इयं प्रवेशार्हा मया कैन्सरचिकित्सा समालोचनायां 'यदि पुस्तकमिदं संस्कृतभाषया लिखितं स्यात् तदा समस्त भारतस्य अनेन लाभः स्यादिति' लिखितमनुसृत्य प्रतिज्ञातं चट्टोपाध्यायै यदितः प्रभृति संस्कृतभाषयैव पुस्तक लेखनं करिष्यामीति। उदीयमानेन सिद्धहस्तलेखकेन केचन सिद्धफला शास्त्रपरम्परानुयाताः स्वानुभूततयापि प्रयोगा निर्दिष्टाः।

इदमत्रावधेयं लेखकैः प्राचां योगाः यत्र उद्ध्रियन्ते तत्र तत्तद्ग्रन्थनामोद्धारः ग्रन्थस्य गौरवायजायते।

—वैद्य घनानन्द पन्त, देहली

माधव निदान पूर्वार्द्धम्—ले० श्री सुदर्शन शास्त्री, ए० एम० एस०, अध्यापक, ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज, हरिद्वार। प्रकाशक—जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस—१। पृष्ठ सं० ४५६, मूल्य ७) रु० सजिल्द।

इस सम्पूर्ण माधव निदान की अनेक टीकायें प्रकाशित हो चुकी हैं किन्तु प्रस्तुत विद्योतिनि टीका में प्राच्य और पाश्चात्य मतों के तुलनात्मक विवेचन द्वारा उनमें एकरूपता स्थापित करनें का जो प्रयास किया गया है, उससे यह ग्रंथ विशेष उपयोगी बन गया है।

इस ग्रंथ के अध्ययन से छात्रों को विशेष लाभ होगा तथा वैद्य महानुभाव भी इससे आयुर्वेदीय निदान का ज्ञान प्राप्त कर रोग परीक्षा में कुशल हो सकेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है।

—नानकचन्द्र शर्मा

गावों में औषधरत्न (द्वितीय-भाग)—प्रकाशक कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय, पो० कालेड़ा-कृष्णगोपाल (अजमेर), पृष्ठ सं० ३५८, मूल्य अजिल्द ३॥), सजिल्द ५)।

यह ग्रंथ कृष्णगोपाल ग्रंथमाला का १५ वां पुष्प है। उक्त कार्यालय ने इस ग्रंथ का निर्माण कर न केवल ग्रामवासी जनता का प्रत्युत छात्रों तथा वैद्यों का महानुपकार किया है। इस ग्रंथरत्न के अवलोकन से ग्रामों में प्राप्त होने वाली वनस्पतियों के परिचय तथा गुणों का विशेष ज्ञान प्राप्त हो जाता है। औषधियों के प्रायः सभी देशान्तर भाषाओं के नाम देकर इस ग्रंथ को वास्तव में रत्न ही सिद्ध किया है। आयुर्वेद जानने वालों के लिये यह ग्रंथ विशेष उपकार करने वाला होगा, ऐसा मेरा विचार है। इसके प्रथम भाग का अवलोकन हो जाता तो समीक्षा पूर्ण रूपेण होती। —नानकचन्द्र शर्मा

(पृष्ठ १३० का शेष)

(ग) निश्चितं यत् जयपुरकेन्द्रव्यवस्थाभारवहनार्थं जयपुरस्थाः प्रतिष्ठितवैद्यमहानुभावाः एव प्रार्थनीयाः।

(घ) देहलीस्थितवैद्य श्री शिवनाथमहोदयानां पत्रं विशेषविचारार्थं प्रस्तुतम्, विचारविमर्शानन्तरञ्च सर्वसम्मत्या निर्णीतं यत् "विद्यापीठ" अखिलभारतवर्षीया संस्था अस्ति अतः अस्याः कार्यकारिणीसमितेरधिवेशनानि भारतवर्षस्य यस्मिन् कस्मिनपि स्थाने भवितुमर्हन्ति। अतः प्रयागेऽपि कार्यसमितेरधिवेशनं नानियमितं नचानुचितमस्ति।

(ङ) कानपुरवास्तव्यश्रीसत्यनारायणमिश्रमहोदयानां पत्रे विचारविमर्शोऽभूत्। विचारानन्तरञ्च निश्चितं यत् केन्द्रव्यवस्थाविषये विद्यापीठमंत्री सिद्धाधिकारोऽस्ति। अतः केन्द्रव्यवस्थाविषये विद्यापीठमन्त्री स्वयमेव आवश्यकतानुसारेण येनकेनापि प्रत्यक्षाप्रत्यक्षरूपेणवा निरीक्षणं कुर्यात् इतरेण कारितव्यम्वा।

अन्ते श्रीसभापति महोदयानां समागतसदस्यमहानुभावानाम्वा धन्यवादपुरःसरं सार्धत्रिवादनसमये सभा विसर्जिता।

श्रीदत्त शर्मा
विद्यापीठ मन्त्री
नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, देहली

३१ अक्टूबर १९५३ को समाप्त होने वाले वर्ष का आय-व्यय पत्र

व्यय	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
वेतन व्यय				२२४३	८	०
मुद्रण तथा लेखन सामग्री				८९७	०	९
डाक तथा तार व्यय				४२८	१५	३
यातायात व्यय				६१	८	६
यात्रा व्यय				१०८०	२	०
प्रचार व्यय				३३९	३	०
आडिट व्यय				२५	०	०
कानूनी व्यय				१५३०	३	६
मिश्रित व्यय				१५६	११	६
बैंक कमीशन				२६	१४	०
उपकरण पर घटती				१०३	०	०
बट्टा खाता				६	१४	६
आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका—	रु०	आ०	पा०			
पत्रिका कागज व्यय	२४४७	१५	६			
मुद्रण	४९२६	७	३			
वेतन	१५३८	११	६			
यातायात	४१	१	३			
डाक व्यय	५०८	१	३			
मिश्रित व्यय	१०	५	६	९४७२	१०	३
कुल योग				१६३७१	११	३

आय	रु०	आ०	पा०
संरक्षक सदस्यता शुल्क	२०१	०	०
आजीवन ,, ,,	१६००	०	०
मान्य ,, ,,	३०००	०	०
प्रान्तीय सम्बद्धता शुल्क	५२५	०	०
साधारण ,, ,,	१४०	०	०
विविध आय	१५९	१०	०
व्याज	२४२९	१४	
भेंट (श्री सेठ लक्ष्मण राव नर्वेकर, हुबली)	५१	०	
आयुर्वेद औषध निर्माता संघ सदस्यता शुल्क	७७५	०	
पुस्तक विक्रय	३०	१२	
पत्रिका विज्ञापन	२७३९	८	
पत्रिका विक्रय	३८	०	
आय से व्यय की अधिकता जो सन्तुलन-पत्र में लेजाई गई	४६८१	१५	३
कुल योग	१६३७१	११	३

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, देहली

३१ अक्टूबर १९५३ को सन्तुलन पत्र

देय

	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
स्थिर कोषः—						
गत वर्ष का	२२९०२	०	१०			
व्यय की आय से अधिकता को						
कम किया	४६८१	१५	३	१८२२०	१	७
अग्रिम प्राप्त १९५४ वर्षीय						
सदस्यता शुल्क				२५	०	०
देय बिल				८४१	१२	०
नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ				७८७४१	६	२
दातव्य धनराशि				४३	७	०
उचन्त खाता				४०	६	९

सम्पत्ति

	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
उपकरण, गत वर्ष का	१०३२	१५	६			
वर्ष में नवीन वृद्धि	१४५	८	३			
	११७८	७	९			
उपकरण पर घटती को						
कम किया	१०३	०	०	१०७५	७	९
पुस्तकों का स्टाकः—						
पुस्तकालय	२१९	२	०			
विक्रयार्थ पुस्तकें	१६६	०	०	३८५	२	०
विभिन्न ऋण				१५०५	८	६
प्राप्य व्याज				१०७४४	०	०
निधि समिति कोषः—						
ट्रेजरी सेविंग्ज़ सर्टिफिकेट्स्	१२०००	०	०			
नेशनल सेविंग्ज़ सर्टिफिकेट्स	५८११०	०	०			
पोस्टल कैश सर्टिफिकेट्स	१००००	०	०			
नाथ बैंक लि० (दिवालिया)	२००२	०	०	८२११२	०	०
अग्रिम व्यय (पत्रिका कागज)				१७०	०	०

अग्रिम व्यय (पत्रिका कागज)				१७०	०	०
बैंकों में जमा:—						
सेंट्रल बैंक आफ इण्डिया लि०	५७९	०	९			
नाथबैंक लि० (दिवालिया)	८००	१५	३			
यूनाइटिड कमर्शल बैंक लि०	२६३	१५	०	१६४३	१५	०
नकद रोकड़				२७६	३	३

कुल योग ९७९१२ ४ ६ | कुल योग ९७९१२ ४ ६

विजयकुमार शर्मा	तिलकराम शर्मा	शिवनाथ शर्मा	वामनराव दीनानाथ	शिवशर्म्मा
अकाउन्टेन्ट	कार्यालय मंत्री	कोषाध्यक्ष	प्रधान मंत्री	अध्यक्ष

आडीटर का प्रमाण-पत्र

हमने नि० भा० आयुर्वेद-महासम्मेलन के ता० ३१ अक्टूबर १९५३ को समाप्त होनेवाले वर्ष के उपरिलिखित सन्तुलन-पत्र तथा उक्त तारीख तक के साथ लगे हुए आय-व्यय-पत्र को हिसाब की किताबों, रसीदों तथा व्यय-पत्रों के सहित जांचा और समस्त जानकारी तथा सूचनायें प्राप्त कीं। हमारे विचार में उपर्युक्त सन्तुलन-पत्र तथा आय-व्यय-पत्र हमारी पृथक् रिपोर्ट के अतिरिक्त ठीक प्रकार बनाये गये हैं तथा सन्तुलन-पत्र, हमें दी गई सूचनाओं एवं जानकारी के आधार पर और महासम्मेलन की पुस्तकों के अनुसार अ० भा० आ० महासम्मेलन की स्थिति का सच्चा और सही परिचायक है।

देहली
ता० ८-१२-५३

ह० जे० सी० माथुर एण्ड कम्पनी
चार्टर्ड अकाउन्टेन्टस्

निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ, देहली

३१ अक्टूबर १९५३ को सन्तुलन-पत्र

देय

	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
स्थिर कोष :–						
गत वर्ष का	८७६८६	१०	३			
आय की व्यय से अधिकता						
को जोड़ा	४४५७	१५	३	९२१४४	९	६
विभिन्न कोष :–						
पुरस्कार खाता	१६७	१०	०			
विश्वविद्यालय कोष	६९३२	१३	९			
श्री शंकरदा जी शास्त्री पदे						
स्मारक कोष	१६८९६	१५	६	२३९९७	७	३
देय बिल				१२७	२	०
अग्रिम प्राप्त १९५४ वर्षीय परीक्षा शुल्क				३१९	०	०
विभिन्न दातव्य धनराशि				१६०६	१३	३
उचन्त खाता				७०	४	०

सम्पत्ति

	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
उपकरण गत वर्ष का	२२२३	१२	६			
वर्ष में नवीन वृद्धि	१२५	८	३			
	२३४९	५	०			
उपकरण पर घटती को कम किया	२२२	०	०	२१२७	५	
पुस्तकों का स्टॉक (विद्यापीठ प्रकाशन)				९६७	०	
पुस्तक विभाग में पुस्तकों का स्टॉक विक्रयार्थ पुस्तकें				१०२१	२	५
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन	७८७४१	६	२			
शंकरदा जी शास्त्री पदे स्मारक कोष व्यय	८४९	१०	०			
विश्वविद्यालय कोष व्यय	३३३	७	६	७९९२४	७	८
विभिन्न ऋणि				११११	६	०
मैनेजर, बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र ऋषिकेश, को अग्रिम दिया				१००००	०	०
श्री शंकरदा जी शास्त्री पदे स्मारक कोष—						
ट्रेजरी सेविंगज् सर्टिफिकेट्स	१००००	०	०			
कैश सर्टिफिकेट्स, यू० क० बैंक लि०	४९९५	०	०	१४९९५	०	०

				कैश सर्टीफिकट्स, यू० कं० बैंक लि०	४९९९	०	०	१४९९९ ० ०
				विभिन्न बैंकों में जमा—				
				पंजाब नेशनल बैंक लि०—				
				श्री शंकरदा जी पदे स्मारक कोष	१५५१	१५	६	
				चालू खाता	२०९	१	६	
				वचत खाता	४३६३	६	७	
				सैन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया—				
				वचत खाता	१९६०	९	३	
				नकद रोकड़	३३	१४	०	८११८ १४ ०
कुल योग	११८२६५	४	०	कुल योग				११८२६५ ४ ०

विजयकुमार शर्मा	तिलकराम शर्मा	श्रीदत्त शर्मा	शिवनाथ शर्मा	वामनराव दीनानाथ	शिवशर्मा हरिदत्त शास्त्री
अकाउन्टेन्ट	कार्यालय मंत्री	विद्यापीठ मंत्री	कोषाध्यक्ष	प्रधान मंत्री	अध्यक्ष

आडीटर का प्रमाण-पत्र

हमने नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के ता० ३१ अक्तूबर १९५३ को समाप्त होने वाले वर्ष के उपरिलिखित सन्तुलन पत्र तथा उक्त तारीख तक के साथ लगे हुए आय-व्यय-पत्र को हिसाब की किताबों, रसीदों तथा व्यय-पत्रों सहित जांचा और समस्त आवश्यक जानकारी तथा सूचनायें प्राप्त कीं। हमारे विचार में उपर्युक्त सन्तुलन-पत्र तथा आय-व्यय-पत्र हमारी पृथक् रिपोर्ट के अतिरिक्त ठीक बनाये गये हैं तथा सन्तुलन-पत्र हमें प्राप्त हुई सूचनाओं एवं जानकारी के आधार पर तथा विद्यापीठ की पुस्तकों के अनुसार नि० भा० आ० विद्यापीठ की स्थिति का सच्चा और सही परिचायक है।

देहली
तारीख ८-१२-५३

ह० जे० सी० माथुर एण्ड कम्पनी
चार्टर्ड अकाउन्टेन्टस,

निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ, देहली

३१ अक्टूबर १९५३ को समाप्त होने वाले वर्ष का आय-व्यय पत्र

व्यय	रु०	आ०	पा०	आय	रु०	आ०	पा०
वेतन	११२६०	१०	९	आयुर्वेदाचार्य परीक्षा-शुल्क	५३१५	०	०
मुद्रण तथा लेखन सामग्री	१४४१	४	९	वैद्याचार्य " "	५१०	०	०
डाक तथा तार व्यय	१२४०	८	९	आयुर्वेद विशारद " "	६०१०	०	०
केन्द्र तथा परीक्षण व्यय	१४५७	४	३	वैद्य " " "	१२७०	०	०
रेलवे पार्सल व्यय	२६	८	०	आयुर्वेद भिषक् " "	६४३३	०	०
यातायात व्यय	८२	११	६	विलम्ब शुल्क	९३४	०	०
यात्रा व्यय	१०९६	१	०	गुणांक तथा पुनःसंशोधन शुल्क	६३८	८	०
बैंक कमीशन	१२	०	०	उप प्रमाण-पत्र तथा प्रमाणपत्र प्रतिलिपि शुल्क	१७८	८	०
मिश्रित व्यय	२१६	१	३	सम्बद्धता शुल्क	३८४	०	०
आडिट व्यय	१००	०	०	विविध आय	३३१	३	०
उपकरण पर घटती	२२२	०	०	ब्याज	१५६	४	०
कर्मचारी रक्षाकोष संस्था प्रदत्तधनराशि	५४९	६	०	विद्यापीठीय प्रकाशनों से लाभ	४७१	०	०
कार्यालय किराया	१५७८	०	०	पुस्तक विभाग की पुस्तकों की बिक्री से लाभ	११४१	१	६
जल, विद्युतादि व्यय	२३	०	०				
पुस्तक विभाग व्यय	९	१	०				
आय की व्यय से अधिकता जो संतुलन पत्र में ले जाई गई	४४५७	१५	३				
कुल योग	२३७७२	८	६	कुल योग	२३७७२	८	६

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ के आय-व्यय के विषय में आडिटर की प्रथक रिपोर्ट

सदस्यगण,

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ,

देहली।

महानुभावाः,

हमने अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन तथा विद्यापीठ के ३१ अक्टूबर १९५३ को समाप्त होने वाले वर्ष के आय-व्यय का निरीक्षण किया है और आय-व्यय पत्र को प्रस्तुत करते समय हम निम्नलिखित सुझाव देते हैं:—

आयुर्वेद महासम्मेलन

१. विभिन्न ऋणि

१५०५॥)॥ के ऋणियों में से संलग्न सूची के अनुसार ७०८॥≈)॥ के ऋणि १ वर्ष से भी अधिक पुराने हैं। उनसे अविलम्ब रुपया प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाना चाहिये।

विद्यापीठ

१. आय

परीक्षा-शुल्क आदि से होने वाली आय मनिआर्डर द्वारा प्राप्त होती है और इसलिये पुस्तकों में केवल मनिआर्डर कूपनों द्वारा ही प्रमाणित की जाती है। इन कूपनों पर डाकखाने की मुद्रा (मोहर) नहीं रहती। इसके अतिरिक्त अनेक कूपनों पर कुछ नहीं लिखा रहता। अतः आय-व्यय पत्र के विभिन्न शीर्षकों में दिखाई गई आय की उचित प्रामाणिकता प्राप्त नहीं की जा सकी। हमारे विचार में रुपया भेजने वाले व्यक्ति को कैशियर, अकाउन्टैन्ट तथा कार्यालय मन्त्री के हस्ताक्षरों से युक्त कैश प्राप्ति की रसीदें काटी जानी चाहियें।

ह० जे० सी० माथुर एण्ड क०

चार्टर्ड अकाउन्टैन्ट्स्

Extract from G.O. No. 3318, Health, dated 24 October, 1952.

Indigenous Systems of Medicine—Registration of Practitioners—Rule I (iv) of the Rules for Registration—Revival—Orders—

PASSED

After careful consideration the Government consider that persons who do not hold any of the qualifications referred to in sub-rules (i) to (iii) of rule i of the rules for the registration of practitioners of Indigenous Medicine shall be eligible for registration by the Central Board of Indigenous Medicine if they satisfy the following conditions :—

(i) The candidate should produce a certificate from a recognized Guru under whom he has undergone training for four years and also any other relevant documentary evidence of practice of the profession.

(ii) He should pass an examination to be conducted by the Commissioner for Government Examinations.

(iii) He must not be below 25 years of age. The Guru referred to in paragraph (i) above should possess the following qualifications.

(i) He should be a well recognized practitioner of Indigenous Medicine.

(ii) He must have had atleast 10 years, extensive practice before accepting the responsibility of training others. A list of such Gurus selected and approved by Government will be maintained by the Central Board of Indigenous Medicine.

Applications for Registration of Gurukulas have to reach the President, Central Board of Indigenous Medicine, Madras before 15th January 1954. Application forms may be obtained from the office of the President.

TRUE-EXTRACT.

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—कैक्स्टन प्रेस, नई दिल्ली।

मार्च १९५४

फाल्गुन २०१०

आयुर्वेद
महासम्मेलन पत्रिका

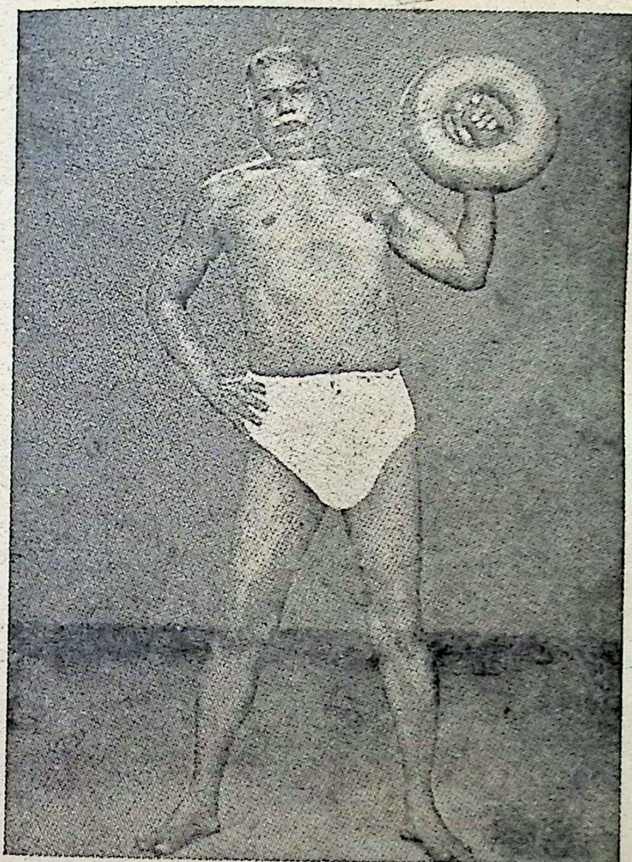


प्रधान सम्पादक
कविराज पं० [illegible] वैद्यशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी. ए., बी. आई. एम. एस

आरोग्य-यात्रा

श्री डा० ए० लक्ष्मीपति, भिषग्रत्न, मद्रास, जिन्होंने गत ३ मार्च को अपनी आयु के ७४ वर्ष पूर्ण कर ७५ वें वर्ष में पदार्पण किया है। आपने अपना जन्म-दिवस मद्रास से १५ मील पर स्थित अवडि के आरोग्य आश्रम की पैदल यात्रा करके मनाया। डाक्टर साहब शारीरिक व्यायाम तथा मर्दन (मालिश) की उपादेयता में पूर्ण विश्वास रखते हैं तथा प्रतिदिन २८ पौंड के भार वाले सन्तोला से व्यायाम करते हैं। इस बड़ी आयु में भी आप पूर्णतया स्वस्थ हैं। आप अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के दो बार सभापति रह चुके हैं। भगवान् आपको दीर्घ आयुष्य प्रदान करे।



AROGYA YAATRA

Dr. A. Lakshmipathi who has completed 74 years on 3rd March 1954, celebrated his birthday by a *pilgrimage on foot* to the Arogya Ashramam at Avadi—15 miles from Madras. He is a believer in the benefits of Physical Exercise and Massage. He enjoys perfect health at this age. He takes exercise daily with a Santola weighing 28 pounds. He has twice been the President of the All India Ayurvedic Congress. We wish him many happy returns of the auspicious day.

विषय-सूची

।। श्री धन्वन्तरये नमः ।।

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ।।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक--कविराज पं० नानकचंद्र, वैद्य शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य ।
सम्पादक--पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय--महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४० अंक ३ | दिल्ली, फाल्गुन २०१०, मार्च १९५४ | वार्षिक ५) एक प्रति ।।)

स्व० श्री माधववारियाराणां कृते श्रद्धाञ्जलयः

(१)

अयि ! वैद्य समाज !! तेऽधुना क्षतिपूर्तिर्महती कथं भवेत् ।
अह ! हा !! गतवानितो यतः सहसा वारियरो नु माधवः ।।१।।
आकाशमार्गं द्रुतकार्यसाधकः प्रयास्यमानो जनताश्रुभिः सह ।
देहेन भूमावपतत् सविस्मयं स्वर्गं गतोऽसौ प्रियया सहात्मना ।।२।।
चिकित्सया मृत्युमुखागतानपि स्वस्थान् व्यधात् योयमकार्य बाधकः ।
स माधवो हा बत वैरवृत्तिना नीतो दिवं शून्यदयेन मृत्युना ।।३।।
कृतकनकजयन्तीवैद्यशालाविशाला, रसभसितगुटीचूर्णावलेहासवाढ्या ।
दिशि दिशि किल यस्य ख्यापयन्ती सुकीर्तिं, कलयति पृथुबुद्धि कार्यशैलीं श्रमं च ।।४।।
सप्रियः शान्तिमाप्नोतु स्वर्गस्थोऽयं महामनाः ।
दुःखेऽस्मिन परिवारस्य वयं हि समवेदिनः ।।५।।

—वैद्य ब्रह्मदत्त शर्मा शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, भुसावल ।

(२)

१. आविर्भूय समुद्रतोऽमृतघटं पाणौदधच्छोभने ।
देवान्वैविदधे जरामरणतो यो निर्भयात् सर्वथा ।।
मर्त्यांश्चानु शशास जीवनहितं वैद्यागमं शाश्वतम् ।
मूर्ध्ना सम्प्रति वन्द्यते स भगवान् धन्वन्तरि विश्वपः ।।

२. धन्यं कोट्टकलं पुनः पुनरहो आकारतो लघ्वपि ।
प्राधान्ये शिवशर्म्मणः सुकृतिनः सद्वैद्यचूडामणेः ।।
यत्राद्याखिलभारतीयभिषजां सम्मेलनं जायते ।
श्रीमन्माधववारयार सुमतेरात्मात्रकर्त्ता ध्रुवम् ।।

३. हे हेमाधव वारयार सुभिषक् ! स्वर्गातिथे ! साम्प्रतं ।
त्वत्संकल्प सुपूर्तिरुत्तमतया जातात्र निःसंशयम् ।।
त्वद्भ्रातृप्रमुखैरुदारहृदयैरन्यै भिषग्बन्धुभिः ।
आहूता महती सभा सुभिषजामेषा त्वयामन्त्रिता ।।

४. नष्टा यद्यपि पाञ्चभौतिकतनू राकाश यानेन ते ।
सत्कर्मार्जितकीर्तिमूर्तिरनिशं सञ्जीवति श्रीमतः ।।
विद्वांसो गुणगृध्नवः सहृदया गायन्ति ते सद्गुणान् ।
त्वां श्रद्धाञ्जलिभिः स्तुमो दिविगतं सम्मेलनेऽस्मिन् वयम् ।।

५. दृष्ट्वा कोट्टकले स्वकीयनगरे सम्मेलनं संप्रति ।
सर्वप्रान्तसमागतोत्तमभिषग्वृन्दाप्तदिव्यच्छटे ।।
श्रीमन्माधववारयार सुमतेरात्मा हि सन्तोक्ष्यति ।
सर्वेषां हि शिवं करोतु भगवान् धन्वन्तरिः सर्वदा ।।

—श्री दयानिधि स्वामी, ऋषीकेश।

नोट :—उपर्युक्त श्रद्धांजलियां कोट्टकल अधिवेशन के अवसर पर पढ़ी गईं ।

३६ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के खुले अधिवेशन में सर्वसम्मति से स्वीकृत महासम्मेलन सम्बन्धी प्रस्ताव

प्रस्ताव सं० १

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन स्वर्गीय वैद्य श्री तथा श्रीमती पी० एम० वारियार, कोट्टकल, पुरुषोत्तम शास्त्री हिर्लेकर, अमरावती, हरिशास्त्री पराडकर, अकोला, हेमराज शर्मा राजगुरु, नेपाल, भगवन्तराय जैन, कनखल, रायसाहब तनसुख जी व्यास, ब्यावर-अजमेर, डी० के० भारद्वाज, बंगलौर, ठाकुरदत्त मुलतानी, देहली, तथा आचार्य सुरेन्द्र मोहन, देहली, के असामयिक देहावसान पर हार्दिक दुःख का अनुभव करते हुए शोक सहानुभूति प्रकट करता है तथा दिवंगत आत्माओं की सद्गति एवं उनके शोकाकुल परिवारों को शान्ति प्रदान करने की भगवान् श्री धन्वन्तरि से प्रार्थना करता है ।

श्री सभापति द्वारा

प्रस्ताव सं० २

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन अध्यक्ष श्री पं० शिवशर्मा जी से अनुरोध करता है कि वे केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रणालय तथा उससे प्रभावित अन्य राज्यों के राष्ट्रीय स्वास्थ्य के लिए हानिकर तथा आयुर्वेदिक प्रगति में बाधक कार्यों पर पूर्ण प्रकाश डालते हुए एक स्मृतिपत्र तैयार करें, जिसे यदि आवश्यकता हो तो गुप्त रखा जाय, तथा इस स्मृतिपत्र को भारत के प्रधानमन्त्री के समक्ष इस ध्येय से उपस्थित करें कि वे केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रणालय की इन अत्यन्त हानिप्रद स्वास्थ्य नीतियों को दबाने के लिए हस्तक्षेप करें ।

प्रस्तावक—श्री टी० टी० राधाकृष्णन् ।

अनुमोदक—श्री ब्रह्मदत्त वैद्य, भुसावल ।

प्रस्ताव सं० ३

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन बम्बई राज्य द्वारा आयुर्वेदिक शिक्षण तथा प्रशिक्षण के प्रश्न पर सहानुभूतिपूर्वक, यथार्थ तथा हार्दिक विचार करने एवं

उसके परिणामस्वरूप शुद्धायुर्वेदिक पाठ्यक्रम को स्वीकृत तथा प्रारम्भ करने के लिए उस राज्य की सरकार के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है। इस महासम्मेलन का यह दृढ़ मत है कि इस शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम के द्वारा ही सच्चे तथा योग्य वैद्य तैयार हो सकते हैं एवं राष्ट्र तथा चिकित्सा व्यवसाय के हित के लिए आयुर्वेद की सर्वोत्कृष्ठ निधियों को प्रकाश में लाया जा सकता है।

श्री सभापति द्वारा।

प्रस्ताव सं० ४

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम समिति बम्बई राज्य द्वारा निर्मित पाठ्यक्रम को मान्यता प्रदान करता है।

श्री सभापति द्वारा।

प्रस्ताव सं० ५

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन सभी राज्य सरकारों से अनुरोध करता है कि प्रत्येक राज्य में गुरुशिष्य-परम्परा द्वारा शुद्धायुर्वेदिक पाठ्यक्रम के आधार पर सुयोग्य वैद्यों को अधिकाधिक संख्या में तैयार करने के लिए बम्बई राज्य सरकार की योजना को स्वीकार करके उसे कार्यान्वित करें।

प्रस्तावक—श्री वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर।

अनुमोदक—श्री हरिशंकर, प्रसाद, बरौनी, बिहार।

प्रस्ताव सं० ६

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन भारत की प्रत्येक राज्य सरकार से यह सानुरोध प्रार्थना करता है कि वह देश के किसी भी राज्य द्वारा सम्मानित प्रमाणपत्रों अथवा उपाधियों को अपने राज्य में भी मान्यता प्रदान करें तथा एक अथवा अनेक राज्यों द्वारा मान्य एवं अन्य राज्यों द्वारा अमान्य प्रमाण पत्रों तथा उपाधियों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली वर्तमान विषमता एवं कठिनाइयों को समाप्त करें।

यह अधिवेशन केन्द्रीय सरकार से भी अनुरोध करता है कि समस्त भारत के लिए एक केन्द्रीय देशी चिकित्सा बोर्ड स्थापित करने के लिए समुचित विधेयक का निर्माण करे।

श्री सभापति द्वारा।

प्रस्ताव सं० ७

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन राजकोट में केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् के अधिवेशन, जिसमें आयुर्वेद को कोई प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं था, द्वारा स्वीकृत

आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम, तथा तदर्थ प्रवेश योग्यता सम्बन्धी प्रस्ताव को आयुर्वेद जिज्ञासुओं के लिए नितान्त अनुपयुक्त एवं भारत की जनता के लिए अत्यन्त हानिकर समझता है तथा इस प्रकार के अज्ञानतामूलक पग की घोर निन्दा करता हुआ भारत के सुशिक्षित समाज से साधारणतया तथा वैद्यसमाज से विशेषतया इसका घोर विरोध करने का अनुरोध करता है।

प्रस्तावक—स्वामी चेतनानन्द, दिल्ली।

अनुमोदक—श्री रामचरण चतुर्वेदी, बम्बई।

" श्री वैद्य बिहारीलाल शर्मा, नवसारी।

प्रस्ताव सं० ८

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों से साग्रह अनुरोध करता है कि वे केन्द्रीय तथा प्रान्तीय स्वास्थ्य परिषदों में प्रधानतया वैद्यों को प्रतिनिधित्व प्रदान करें, क्योंकि भारतवर्ष में ८० प्रतिशत से अधिक जनता आयुर्वेद से लाभ उठाती है और आयुर्वेद के द्वारा ही नगरों से सुदूर ग्रामों में वैद्यों द्वारा ही निर्धन असहाय तथा अनाथ जनता की रोगों से रक्षा की जाती है।

प्रस्तावक—श्री वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर।

अनुमोदक—श्री हरिशंकर प्रसाद पाठक, बरौनी, बिहार।

प्रस्ताव सं० ९

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन बिहार सरकार के शिक्षामन्त्री तथा शिक्षा-सुपरिन्टेन्डेन्ट से साग्रह अनुरोध करता है कि वे बिहार राज्य में ३० वर्ष पूर्व से "बिहार संस्कृत समिति" द्वारा जो गुरुशिष्य-परम्परा के आधार पर शुद्धायुर्वेदीय पाठ्यक्रम चलाया जा रहा है, उसे आयुर्वेद की अभ्युन्नति के लिये उसी रूप में प्रोत्साहित करते रहें। बिहार राज्य सरकार इस विषय में अभिनन्दन की पात्र है कि प्रमुख वैद्यराजों के प्रयास से शुद्ध आयुर्वेद की प्रगति के लिए बम्बई राज्य सरकार ने जो आयुर्वेदीय योजना वर्तमान में बनाई है, वह योजना बिहार राज्य में ३० वर्ष पहिले से ही प्रचलित है।

प्रस्तावक—श्री वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर।

अनुमोदक—श्री हरिशंकर प्रसाद पाठक, बरौनी, बिहार।

प्रस्ताव सं० १०

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन मद्रास स्टेट गवर्नमेंट कालेज आफ इंडिजीनस मैडिसन के पाठ्यक्रम में ऐलोपैथिक विषयों के शिक्षण में देशी चिकित्सा के विषयों से अधिक समय निश्चित करने पर अत्यधिक निराशा का अनुभव करता है। साथ ही उस नीति परिवर्तन पर जिसके फलस्वरूप कालेज से सम्बन्धित आतुरालय के

पंचकर्म वार्ड तथा वनस्पति संग्रहालय को समाप्त कर दिया गया है, हार्दिक असन्तोष व्यक्त करता है।

यह सम्मेलन इन परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी अधिकारियों को यह स्मरण दिलाते हुए कि इन परिवर्तनों से देशी चिकित्सा की प्रगति में पर्याप्त हानि हो सकती है, मद्रास सरकार से यह अनुरोध करता है कि वह कालेज में प्रचलित शिक्षण तथा प्रशिक्षण में किसी प्रकार का परिवर्तन तब तक न करे जब तक कि सरकारी विभागों तथा कालेज से सम्बन्ध न रखनें वाले देशी चिकित्सा के योग्य विद्वानों की इस विषय में सम्मति न ले ले।

प्रस्ताव—श्री के० राघवन।

अनुमोदक–श्री वी० सुब्रह्मन्यम्, श्रीरंगम।

प्रस्ताव सं० ११

जनता को आयुर्वेदीय चिकित्सा से अधिकाधिक लाभ पहुंचाने के ध्येय से यह सम्मेलन सभी राज्य सरकारों से सानुरोध प्रार्थना करता है कि वे अपने-अपने राज्य के विभिन्न भागों में अधिक-से-अधिक संख्या में आयुर्वेदीय औषधालय स्थापित करें तथा प्रत्येक जिले के प्रधान नगर में एक-एक वृहद् आयुर्वेदीय चिकित्सालय भी स्थापित करें।

प्रस्तावक-–श्री वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर।

अनुमोदक-–श्री हरिशंकर प्रसाद पाठक, बरौनी, बिहार।

प्रस्ताव सं० १२

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन अपने राज्य में एक आयुर्वेदीय कालेज खोलने के लिए आन्ध्र राज्य सरकार का धन्यवाद करता है तथा उस सरकार से अनुरोध करता है कि वह इस कालेज को अष्टांग आयुर्वेदिक कालेज के रूप में चलाए।

श्री सभापति द्वारा।

प्रस्ताव सं० १३

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन वैद्य श्री हरदयाल जी की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त करता है जो सैन्ट्रल ड्रग्ज एक्ट के लागू होने के फलस्वरूप उत्पन्न आयुर्वेदिक निर्माणशालाओं तथा चिकित्सकों की कठिनाइयों पर विचार करे तथा उनके निराकरण के उपायों के विषय में अपने सुझाव प्रस्तुत करे।

श्री सभापति द्वारा।

प्रस्ताव सं० १४

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन विसूचिका तथा क्षय रोग जैसी महामारक व्याधियों से बचने के उपायों पर विचार करने तथा उनके प्रतिरोधक उपायों के विषय में एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिये पटना निवासी श्री पं० हरिनारायण जी चतुर्वेदी की अध्यक्षता में एक समिति का निर्माण करता है। इस समिति के चार अन्य सदस्य होंगे जिनकी नियुक्ति महासम्मेलनाध्यक्ष द्वारा समिति के अध्यक्ष की सम्मति से की जाएगी।

श्री सभापति द्वारा।

प्रस्ताव सं० १५

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों की आयुर्वेद सम्बन्धी नीति को ध्यान में रखते हुए साधारणतया समस्त वैद्यसमाज का तथा विशेषतया अपने सदस्यों का ध्यान इस ओर आकर्षित करता है कि वे अपने समय के कुछ घण्टे प्रतिसप्ताह अवश्य ही जनसम्पर्क कार्य तथा जनता में आयुर्वेद ज्ञान की वृद्धि के लिए प्रदान करें जिससे जन साधारण अपने दैनिक जीवन को आयुर्वेदीय नियमों के अनुकूल चलाते हुए देश तथा संसार की बढ़ती हुई रोग संख्या को कम करने में सहायक हो सकें।

प्रस्तावक—श्री केशव प्रसाद आत्रेय, देहली।
अनुमोदक—श्री रामचरण चतुर्वेदी, बम्बई।

प्रस्ताव सं० १६

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन महासम्मेलन से सम्बन्धित सभी प्रान्तीय आयुर्वेदिक सम्मेलनों को यह आदेश देता है कि वे अपने प्रान्त के जिले या नगर निवासी वैद्यों की सभायें तत्तत् जिला या नगर में प्रतिसप्ताह या कम-से-कम प्रतिमाह रखने का आयोजन करें जिनमें वे स्वानुभवसिद्ध औषधि या रोगों के निदान-चिकित्सा पर परस्पर विचार-विमर्श करें, तथा सर्वसम्मति से स्वीकृत विचार महासम्मेलन कार्यालय में प्रकाशनार्थ भेजें। इसके अतिरिक्त अन्य राजकीय या प्राइवेट अन्वेषणशालाओं से भी अनुरोध है कि वे अपने द्वारा अनुसंधानित चिकित्सा या रोग सम्बन्धी विचार आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका में बहुजन हितार्थ प्रकाशनार्थ भेजती रहें।

प्रस्तावक—श्री रामचरण चतुर्वेदी, बम्बई।
अनुमोदक—श्री केशव प्रसाद आत्रेय, देहली।

प्रस्ताव सं० १७

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन 'शुद्धायुर्वेद' का शब्दार्थ "अष्टांगायुर्वेद" समझता है।

प्रस्तावक—श्री डा० ए० लक्ष्मीपति, मद्रास।
अनुमोदक—श्री हरिदत्त शास्त्री, बम्बई।

प्रस्ताव सं० १८

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन उन विभिन्न राज्य सरकारों, बोर्ड आफ इण्डियन मैडिसन्ज, स्थानीय तथा म्युनिसिपल बोर्डों तथा धर्मार्थ संस्थाओं को धन्यवाद देता है जिन्होंने अपने-अपने प्रतिनिधि ३९ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, कोट्टकल, दक्षिण मालाबार, में भाग लेने के लिए भेजे।

श्री सभापति द्वारा।

प्रस्ताव सं० १९

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन देहली नगरपालिका समिति को महासम्मेलन अधिवेशन में भाग लेने के लिए अपने प्रतिनिधि स्वरूप कविराज श्री केशव प्रसाद आत्रेय को भेजने तथा नगरपालिका कोष से उनके यात्रा-व्यय को देने के लिए धन्यवाद देता है।

श्री सभापति द्वारा।

प्रस्ताव सं० २०

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन सम्मेलन के मुख-पत्र "आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका" में ८ पृष्ठ का एक स्वतन्त्र संस्कृत अंग स्थिर रूप से रखने का निश्चय करता है तथा उसके सम्पादन का भार वैद्य श्री वी० बी० नटराज शास्त्री, त्रिचनापल्ली को सौंपता है एवं वैद्य विशारद श्री एस० वी० राधाकृष्ण शास्त्री, टेपाकुलम, को उनके सहायक रूप में नियुक्त करता है।

श्री सभापति द्वारा।

प्रस्ताव सं० २१

निश्चय हुआ कि अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के ४० वें अधिवेशन के लिए ट्रावनकोर—कोचीन का निमन्त्रण स्वीकार किया जावे।

प्रस्ताव सं० २२

नियमावलि संशोधन सम्बन्धी

(क) निश्चय हुआ कि आयुर्वेद महासम्मेलन की तदर्थ समिति द्वारा परिवर्तित, संशोधित एवं प्रस्तावित नियमावलि स्वीकार की जावे।

(ख) निश्चय हुआ कि उक्त नियमावलि शीघ्र ही प्रकाशित कर दी जाय और आवश्यकतानुसार इसका अंग्रेजी संस्करण भी निकाला जाय।

प्रस्तावक—श्री बद्री विशाल त्रिपाठी, कानपुर।
अनुमोदक—श्री प्रभुदत्त शास्त्री, सीकर।

प्रस्ताव सं० २३

संस्था रजिस्ट्रेशन सम्बन्धी

निश्चय हुआ कि इस ३९ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन द्वारा स्वीकृत नियमावलि के आधार पर अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के पुनः रजिस्ट्रेशन की व्यवस्था की जाय।

प्रस्तावक—श्री बद्री विशाल त्रिपाठी, कानपुर।
अनुमोदक—श्री केशव प्रसाद आत्रेय, देहली।

प्रस्ताव सं० २४

नियमावलि संशोधन विकल्पात्मक प्रस्ताव

(क) निश्चय हुआ कि महासम्मेलन नियमावलि में जो संगठनात्मक विधान जोड़ा गया है उसकी सूचना सभी प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलनों को दी जाय और उनमें से जो तो तदनुसार कार्य आरंभ करना चाहें उन्हें महासम्मेलन के अंगरूप समझा जाय और जो अभी इस संगठनात्मक कार्य को प्रारम्भ न करना चाहें उन्हें २५ रुपया वार्षिक शुल्क लेकर पूर्ववत् प्रादेशिक शाखा के रूप में सम्बद्ध संस्था माना जाय।

(ख) निश्चय हुआ कि जो साधारण वैद्य सभायें अभी तक १० रुपया वार्षिक शुल्क देकर महासम्मेलन से सीधी सम्बद्ध होती रही हैं उनके लिए यह सुविधा पूर्ववत् चालू रखी जाय।

(ग) निश्चय हुआ कि उपर्युक्त प्रस्ताव संशोधित नियमावलि के अन्त में परिशिष्ट रूप में प्रकाशित किया जाय।

प्रस्तावक—श्री बद्री विशाल त्रिपाठी, कानपुर।
अनुमोदक—श्री डा० वाई० पार्थनारायण पण्डित, बंगलौर।

पदाधिकारी गण

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के निर्वाचित पदाधिकारियों की नामावलि।

अध्यक्ष—वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा, बम्बई।
उपाध्यक्ष—श्री डा० वाई० पार्थनारायण पण्डित, बंगलौर।
" वैद्य श्री पं० ओंकार प्रसाद शर्मा, देहली।
प्रधानमंत्री—वैद्य श्री वामनराव दीनानाथ, बम्बई।
संयुक्तमंत्री—क० श्री स्वामी चेतनानन्द, देहली।

सहायक मंत्री—वैद्य श्री नित्यानन्द सारस्वत, पिलानी।
" " बाबूराम मिश्र, हापुड़।
" " श्रीराम शर्मा, बम्बई।
" " वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर।
कोषाध्यक्ष—वैद्य श्री शिवनाथ शर्मा, देहली।
प्रधान सम्पादक—कविराज श्री कैलाशचन्द्र अग्रवाल, देहली।

महासम्मेलन स्थायी समिति के लिए मान्य सदस्यों में से ५० निर्वाचित सदस्यों की नामावलि

१. सर्वश्री वैद्य बैकुण्ठनाथ, गौहाटी। २. कृष्ण मैनन, आरकोट। ३. एम० वेंकट शास्त्री, बेजवाड़ा। ४. सी० वी० लक्ष्मीकान्त, राजमहेन्द्री। ५. पूर्णचन्द्र रथ, पुरी। ६. बालकराम शुक्ल, ऋषिकेश। ७. रवीन्द्रचन्द्र चौधरी, मिरजापुर। ८. बद्री विशाल त्रिपाठी, कानपुर। ९. सत्यव्रत प्रेमी, मेरठ। १०. जगदीश प्रसाद, सहारनपुर। ११. काशीनाथ, बनारस,। १२. रामनाथ शास्त्री, इटावा। १३. राधाबल्लभ, रीवां। १४. एम० आर० फडथार, बंगलौर। १५. जानकीनाथ धार, श्रीनगर। १६. भुवनचन्द्र जोशी, देहली। १७. कैलाशचन्द्र अग्रवाल, देहली। १८. घनानन्द पन्त, देहली। १९. काशीनाथ शर्मा, देहली। २०. मनोहरलाल, देहली। २१. कृष्णानन्द, फिरोजपुर। २२. धनजी भाई के० ठाकुर, बम्बई। २३. रामरक्षपाल, डालमियां दादरी। २४. माधव गणेश जोशी, पूना। २५. कालीदास चट्टोपाध्याय, कलकत्ता। २६. गणपति मिश्र, कलकत्ता। २७. शम्भुप्रसाद केशवलाल, अहमदाबाद। २८. कपिलदेव त्रिपाठी, बक्सर। २९. भी० वि० डेग्वेकर, जबलपुर। ३० वामन सदाशिव आदनकर, चन्दा। ३१. केदारनाथ, नागपुर। ३२. रामनारायण शास्त्री, इन्दौर। ३३. सुरेन्द्र बहादुर शास्त्री, ग्वालियर। ३४. रामचन्द्र शास्त्री, अमरावती। ३५. ईश्वरदास स्वामी, जयपुर। ३६. मूलचन्द्र शास्त्री, लक्ष्मणगढ़। ३७. विश्वप्रिय शास्त्री, भरतपुर। ३८. तारनदत्त शास्त्री, सीकर। ३९. पद्मनाभ शास्त्री, बीकानेर। ४०. अम्बालाल जोशी, जोधपुर। ४१. कृष्ण गोपाल, कोटा। ४२. खण्डपरशु छत्रसिंह बारोट, बड़ौदा। ४३. बिहारीलाल, नवसारी। ४४. महाशंकर नरोत्तम भट्ट, कच्छ-भुज। ४५. गयाप्रसाद शास्त्री, हैदराबाद। ४६. रामकृष्ण वासुदेव, जालना। ४७. चन्द्रानन्द, काठमण्डू। ४८. पं० रामोदार मिश्र, मुजफ्फरपुर। ४९. सी० करुणाकरम, शोरानूर। ५०. श्री नारायण हरि जोशी, बम्बई।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यकारिणी के ५० निर्वाचित सदस्यों की नामावलि

१. श्री डा० ए० लक्ष्मीपति, मद्रास। २. श्री एम० वेंकट शास्त्री, बेजवाड़ा।
३. " डा० वी० सुब्रह्मण्यम्, श्रीरंगम्। ४. " वी० वी० कृष्ण शास्त्री, बंगलौर।

५. श्री गयाप्रसाद शास्त्री, हैदराबाद ।
६. श्री जगदीश्वर शर्मा, गौहाटी ।
७. ,, जोगेशचन्द्र घोष, ढाका ।
८. ,, कालीदास चट्टोपाध्याय, कलकत्ता ।
९. ,, हरिवक्ष जोशी, कलकत्ता ।
१०. ,, विजयकाली भट्टाचार्य, कलकत्ता ।
११. ,, पूर्णचन्द्र रथ, पुरी ।
१२. ,, श्रीराम शर्मा, बम्बई ।
१३. ,, सोमेश्वर मायाशंकर भट्ट, बम्बई ।
१४. ,, माधवप्रसाद नारायणशंकर, अहमदाबाद ।
१५. ,, शशिकांत भूलाभाई पंड्या, अहमदाबाद ।
१६. ,, चुन्नीलाल रेवाशंकर, बड़ौदा ।
१७. ,, जीवराम कालीदास शास्त्री, गोंडल ।
१८. ,, महाशंकर नरोत्तम भट्ट, कच्छ-भुज ।
१९. ,, भीकाजी विनायक डेग्वेकर, जबलपुर
२०. ,, सुन्दरलाल शुक्ल, जबलपुर ।
२१. ,, गोवर्धन शर्मा छांगाणी, नागपुर ।
२२. ,, प्रेमशंकर शर्मा, उदयपुर ।
२३. ,, ख्यालीराम द्विवेदी, इन्दौर ।
२४. ,, रामनारायण शास्त्री, इंदौर ।
२५. ,, मंगलदास स्वामी, जयपुर ।
२६. ,, हरिशंकर प्रसाद पाठक, बरौनी ।
२७. , मणिराम शर्मा, रतनगढ़ ।
२८. ,, उदयचन्द्र भट्टारक, जोधपुर ।
२९. ,, शिवशर्मा द्विवेदी, अजमेर ।
३०. ,, केशवदेव, भिवानी ।
३१. ,, रामनारायण शर्मा, पटना ।
३२. ,, वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर ।
३३. ,, रामरक्ष पाठक, जामनगर ।
३४. ,, दुर्गादास शास्त्री, बनारस ।
३५. ,, जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, प्रयाग ।
३६. ', बद्रीविशाल त्रिपाठी, कानपुर ।
३७. ,, गणेशदत्त सारस्वत, जामनगर ।
३८. ,, चन्द्रमणि प्रसाद, रीवां ।
३९. ,, कैलाशचन्द्र अग्रवाल, देहली ।
४०, ,, मनोहरलाल, देहली ।
४१. ,, घनानन्द पन्त, देहली ।
४२. ,, भुवनचन्द जोशी, देहली ।
४३. ,, केशवप्रसाद आत्रेय, देहली ।
४४. ,, रामस्वरूप चक्रवर्ती, देहली ।
४५. ,, कुंवर रामेश्वर सिंह, जालन्धर ।
४६. ,, विप्रबन्धु, अमृतसर ।
४७. ,, प्रकाशनाथ तिवारी, जालन्धर ।
४८. ,, विश्वनाथ, जम्मू ।
४९. ,, रामप्रसाद शर्मा, पटियाला ।
५०. ,, सीताराम भावे, फैजपुर ।

श्री सभापति द्वारा ।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन

१९५३-५४ के लिए स्वीकृत आनुमानिक आय-व्यय पत्र

आय		व्यय	
संरक्षक सदस्यता शुल्क	१०००-०-०	वेतन व्यय	२५००-०-०
आश्रयदाता ,,	५००-०-०	मुद्रण तथा लेखन सामग्री	१०००-०-०
आजीवन ,,	२५००-०-०	डाक तथा तार व्यय	५००-०-०
मान्य ,,	५०००-०-०	यातायात व्यय	५०-०-०

प्रान्तीय सम्बद्धता शुल्क	६००-०-०	यात्रा व्यय	१०००-०-०
साधारण सम्बद्धता शुल्क	१००-०-०	प्रचार व्यय	५००-०-०
ब्याज	२५००-०-०	आडिट व्यय	२५-०-०
पुस्तक विक्रय	१००-०-०	बैंक व्यय	२५-०-०
पत्रिका विज्ञापन	३०००-०-०	उपकरण पर घटती	१००-०-०
पत्रिका विक्रय	१५०-०-०	मिश्रित व्यय	१५०-०-०
मिश्रित आय	२००-०-०	किराया कार्यालय	१२००-०-०
प्रतिनिधि शुल्क	३५०-०-०	कर्मचारी रक्षाकोष	५०-०-०
पत्रिका मुद्रण का अर्धव्यय		विद्युत् जलादि व्यय	५०-०-०
विद्यापीठ से प्राप्य	३०००-०-०	नियमावलि प्रकाशन	३००-०-०
		संस्था रजिस्ट्रेशन	५०-०-०
			७,५००-०-०
		पत्रिका व्यय :—	
		मुद्रण तथा लेखन	७०००-०-०
		वेतन	१८००-०-०
		यातायात	२५-०-०
		डाक व्यय	५००-०-०
		मिश्रित	२५-०-०
		बचत	२१५०-०-०
	१६,०००-०-०		१६,०००-०-०

३६ वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ के खुले अधिवेशन (कोट्टकल, दक्षिण मालाबार) में सर्वसम्मति से स्वीकृत नि० भा० आ० विद्यापीठ के प्रस्ताव

(ता० ८-९ मार्च १९५४)

प्रस्ताव सं० १

निश्चय हुआ कि श्री बाबा कालीकमली वाला नि० भा० आयुर्वेद विश्वविद्यालय की योजना (जो कि एतदर्थ गत इन्दौर महासम्मेलनावसर पर निर्मित एक विशेष उपसमिति द्वारा निश्चित हो चुकी है तथा जिसे गत बंगलौर की स्थायी समिति के अधिवेशन में प्रस्ताव के रूप में स्वीकृत किया जा चुका है) के अनुसार विश्वविद्यालय का कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ करने के लिये नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ का कार्यालय दिल्ली से तुरन्त ही ऋषिकेश विश्वविद्यालय के लिये निर्धारित स्थान आत्मविज्ञान भवन में भेज दिया जाय ताकि ६००) रुपये के करीब मासिक बचत होकर वह रुपया विद्यालय की परिवर्धित रूप-रेखा के लिये व्यय हो सके।

प्रस्तावक—पं० हरिदत्त शास्त्री, बम्बई।
अनुमोदक—पं० वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर।

प्रस्ताव सं० २

यद्यपि बंगलौर स्थायी-समिति में प्रस्ताव स्वीकृत था तथाऽपि क्षेत्र ट्रस्ट के अनुरोध से अब नये रूप में यह पुनः

(क) निश्चय हुआ कि उक्त विश्वविद्यालय की योजना को कार्यान्वित करने के लिए निम्नलिखित महानुभावों की कार्यसमिति बनाई जाय जिसमें योजना के अनुसार चार नाम महासम्मेलन की ओर से—

१. श्री पं० शिवशर्मा जी, बम्बई। २. वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह जी, इन्दौर। ३. श्री डा० वाई० पार्थ नारायण पण्डित, बंगलौर। ४. वैद्यरत्न श्री परमानन्द जी, देहली।

और चार नाम विद्यापीठ की ओर से—

१. श्री विद्यापीठाध्यक्ष—महानुभाव जो भी हों। २. श्री पं० श्रीदत्त शर्मा, ऋषिकेश। ३. श्री वी० बी० नटराज शास्त्री, तिरुचिरापल्ली। ४. श्री पं० हरिदत्त शास्त्री, बम्बई।

और चार नाम आयुर्वेद सेवा-समिति, ऋषिकेश की ओर से—

१. श्री महन्त इन्द्रेश चरण जी महाराज, देहरादून। २. रायबहादुर लाला उग्रसेन जी, वार-एट-ला०, देहरादून। ३. श्री बाबू ज्ञान स्वरूप जी, देहरादून। ४. श्री स्वामी दयानिधि जी, ऋषिकेश।

तथा श्री बाबा कालीकमली वाला पंचायत क्षेत्र ट्रस्ट समिति को अपनी ओर से ४ नाम शीघ्र भेजने को लिखा जाय।

इस प्रकार चारों संस्थाओं के चार-चार सदस्यों द्वारा बनाई गई उक्त विश्वविद्यालय कार्यसमिति में १७ वां एक सदस्य विश्वविद्यालय का कुलपति (चान्सलर) रहेगा।

(ख) निश्चय हुआ कि विश्वविद्यालय कार्यसमिति के ये सदस्य प्रथम पांच वर्ष के लिए निर्वाचित किए जाते हैं, परन्तु इस बीच में यदि कोई स्थान किसी कारणवश रिक्त हो जाय तो उसकी पूर्ति उस-उस संस्था द्वारा की जाय जिस संस्था की ओर से वह सदस्य नियुक्त हुआ हो।

प्रस्तावक—श्री वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फ़रपुर।
अनुमोदक—स्वामी चेतनानन्द जी, देहली।

प्रस्ताव संख्या ३

निश्चय हुआ कि प्रस्ताव सं० २ के अनुसार निर्मित विश्वविद्यालय कार्यसमिति को विश्वविद्यालय संचालन सम्बन्धी व्यवस्था प्रबन्धादि विषयक नियमोपनियम तथा उपरोक्त संस्थाओं के पारस्परिक अधिकार व स्वत्व के सम्बन्ध में निर्णय करके नियमानुसार रजिस्ट्री करवाने का पूर्णाधिकार दिया जाता है।

प्रस्तावक—श्री केशवप्रसाद आत्रेय, देहली।
अनुमोदक—श्री ब्रह्मदत्त शर्मा, भूसावल।

प्रस्ताव सं० ४

निश्चय हुआ कि क्योंकि विद्यापीठ की विश्वविद्यालय योजना को कार्यान्वित करने के लिए श्री बाबा कालीकमली वाला क्षेत्र ट्रस्ट तथा उनकी आयुर्वेद-सेवा-समिति ने जो विशाल भूभाग तथा प्रारम्भिक आवश्यकता पूर्त्यर्थ आवश्यक बिल्डिंग्ज़ आदि का विनियोग करने की अनुमति दी है वह लगभग २ लाख के क्षेत्र की तथा लगभग ३ लाख के ही आयुर्वेद-सेवा-समिति की होती है और २ लाख रुपया नकद आयुर्वेद-सेवा-समिति का जो जमा है (जिसमें से ६५ हज़ार रुपया क्षेत्र-समिति के पास जमा है) से करीब ७ लाख की सम्पत्ति उपरोक्त दोनों संस्थाओं ने इस विश्वविद्यालय योजना को कार्यान्वित करने के लिए प्रस्तुत की है, यह सम्मेलन एतदर्थ उक्त दोनों संस्थाओं का धन्यवाद करता है।

श्री सभापति द्वारा।

प्रस्ताव सं० ५

(क) निश्चित हुआ कि श्री बाबा कालीकमली वाला नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ विश्वविद्यालय योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए आयुर्वेद-सेवा-समिति का जो ९५ हज़ार रुपया श्री बाबा कालीकमलीवाला क्षेत्र ट्रस्ट के पास जमा है, वह, तथा जो १ लाख रुपया आयुर्वेद-सेवा-समिति के पास जमा है, वह, और जो १ लाख रुपया नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के पास जमा है वह, सब करीब ३ लाख रुपया इकट्ठा करके किसी सुरक्षित जगह पर विश्वविद्यालय के नाम पर जमा किया जाय।

(ख) उपरोक्त रुपये में से वर्तमान में अढ़ाई लाख रुपया स्थायी-कोष के रूप में किसी सुरक्षित स्थान में रक्खा जाय तथा ५० हज़ार रुपया विश्वविद्यालय के प्रारम्भिक कार्य संचालन में व्यय करने का अधिकार उपरोक्त समिति को दिया जाता है।

(ग) जहां तक स्थायी कोष का सम्बन्ध है इसको अधिक से अधिक बढ़ाने के लिए श्री बाबा कालीकमलीवाला क्षेत्र तथा आयुर्वेद-सेवा-समिति, आयुर्वेद महासम्मेलन तथा आयुर्वेद विद्यापीठ–ये चारों संस्थायें मिलकर निरन्तर प्रयत्न करती रहें जिससे स्थायी-कोष की वृद्धि होती रहे और कार्य संचालन के लिए जो व्यय की आवश्यकता हो उसे दूसरे मार्गों से आय करके पूरा करें।

प्रस्तावक–श्री डा० वाई० पार्थनारायण पण्डित, बंगलौर।
अनुमोदक–रसवैद्य वामनाचार्य, कोल्हापुर।
समर्थक–श्री बद्री विशाल त्रिपाठी, कानपुर।
समर्थक–श्री एम० वैंकट शास्त्री, बेजवाड़ा।

प्रस्ताव सं० ६

(क) प्रस्ताव सं० ५ के अनुसार अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ का जो ७८७४१ रुपया ६ आना २ पाई महासम्मेलन के पास जमा है उसे विश्वविद्यालय योजना को कार्यान्वित करने के लिए नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के कोष में वापिस जमा करा दिया जाय।

(ख) नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ का महासम्मेलन में जमा उपर्युक्त ७८७४१ रुपया ६ आना २ पाई महासम्मेलन ने अपनी निधि समिति को सौंप रक्खा है, अतएव अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन अपनी निधि समिति को आदेश देता है कि समिति के आधीन धनराशियों में से ७८७४१ रुपया ६ आना २ पाई शीघ्रातिशीघ्र श्री विद्यापीठमन्त्री द्वारा नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कोष में वापिस कर दे।

(ग) अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन एवं नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ का यह

खुला अधिवेशन निश्चय करता है कि महासम्मेलन निधि समिति से विद्यापीठ कोष का ७८७४१ रुपया ६ आना २ पाई प्राप्त करके और उसमें विश्वविद्यालय कोष में अभी तक प्राप्त ६६३२ रुपया १३ आना ९ पाई जमा करके और शेष १४३२५ रु० १२ आ० १ पा० अपने चालू कोष से डालकर और कुल १ लाख रुपया बनाकर इसे शीघ्रातिशीघ्र विश्वविद्यालय कार्यसमिति के पास जमा करा दिया जाय।

विशेष—उक्त प्रस्ताव को उक्त विश्वविद्यालय कार्यसमिति के रजिस्ट्रेशन के बाद तुरन्त कार्य रूप में परिणत कर दिया जाय।

प्रस्तावक—श्री वी० बी० नटराज शास्त्री, तिरुचिरापल्ली।

समर्थक—श्री प्रभुदत्त जी शास्त्री, सीकर।

प्रस्ताव सं० ७

(क) निश्चय हुआ कि यह विश्वविद्यालय भारत का सार्वदेशिक विश्वविद्यालय होगा और किसी प्रान्त विशेष का नहीं होगा।

(ख) निश्चय हुआ कि विश्वविद्यालय कार्य समिति विश्वविद्यालय के लिए धनसंग्रह करे और स्थायी कोष की वृद्धि करने का यत्न करे।

(ग) अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन—विद्यापीठ की ओर से इस धनसंग्रह के कार्य के लिये निम्नलिखित महानुभावों की एक समिति नियुक्त की जाती है :—

१. श्री स्वामी जयरामदास जी, जयपुर। २. श्री पं० उदयचन्द्र जी भट्टारक, जोधपुर। ३. श्री वैद्य भगीरथ जोशी, कलकत्ता। ४. श्री पं० मणिराम शर्मा, रतनगढ़। ५. श्री गोवर्द्धन शर्मा छांगाणी, नागपुर। ६. श्री भीकाजी विनायक डेग्वेकर, जबलपुर। ७. श्री कन्हैयालाल भेड़ा, बम्बई। ८. श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य, बम्बई। ९. श्री वैद्य वामनराव दीनानाथ, बम्बई। १०. श्री जीवराम कालिदास शास्त्री, गोण्डल। ११. श्री चुन्नीलाल रेवाशंकर, बड़ौदा। १२. श्री डा. वाई. पार्थनारायण पंडित, बंगलौर। १३. श्री वी. बी. नटराज शास्त्री, त्रिचनापल्ली। १४. श्री पं० ठाकुरदत्त शर्मा, देहरादून। १५. श्री सत्यनारायण शास्त्री, बनारस। १६. श्री पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, प्रयाग। १७. श्री रामदयालु जोशी, पटना। १८. श्री वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर। १९. श्री रामदेव ओझा, मुजफ्फरपुर। २०. श्री ओंकार प्रसाद शर्मा, देहली। २१. श्री शिवनाथ शर्मा, देहली। २२. श्री मनोहरलाल जी, देहली। २३. श्री पुरुषोत्तमदत्त गिरधर, भिवानी। २४. श्री नाना साहिब पौराणिक, पनवेल। २५. श्री पं० शिवशर्मा, बम्बई। २६. श्री एम० वेंकट शास्त्री, बेजवाड़ा।

इसके संयोजक श्री पं० श्रीदत्त जी होंगे।

इस समिति को अपने में अन्य सदस्य सम्मिलित करने का अधिकार दिया गया।

प्रस्ताव सं० ८

निश्चय हुआ कि आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम, परीक्षा व्यवस्था, अन्वेषणादि शास्त्रीय

(शेष पृष्ठ १८५ पर)



अयुर्वेद विश्वविद्यालय, ऋषिकेश, का प्रधान द्वार।

३६ वां अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन कोट्टकल (द० मालाबार)

वैद्यरत्न श्री पण्डित शिव शर्म्मा का

अध्यक्षीय भाषण

मित्र वृन्द,

आज हम आयुर्वेद महासम्मेलन के इतिहास में सब से दुःखद घटना के अन्धकार में एकत्रित हो रहे हैं। हमारे लिये यही अत्यन्त कष्टप्रद था कि जिस समय इस अधिवेशन के प्रथम निमंत्रणदाता राव साहब श्री तनसुख व्यास इसकी तैयारी में सोत्साह संलग्न थे उस समय क्रूर काल ने उन्हें हमसे छीन लिया। परन्तु आर्यवैद्यन् श्री माधव वारियर का ऐसे समय वायुयान दुर्घटना में दुःखद निधन होना जब कि वे अपने जीवन के उन्नत शिखर पर थे और जिस समय आयुर्वेदिक सम्प्रदाय उनको आयुर्वेदिक संसार के भावी नेता की दृष्टि से देख रहा था, वैद्य जगत् को इतना दुखाभिभूत छोड़ गया कि कुछ समय के लिए तो आयुर्वेद महासम्मेलन की सम्पूर्ण प्रगति ही सर्वथा रुकी रही। निस्सन्देह यह उनकी निर्मित की हुई संस्था, केरल प्रादेशिक आयुर्वेदिक कांग्रेस, की दृढ़ता और निष्ठा का एक उच्च प्रमाण है कि जब यह अपने नेता की आकस्मिक और हृदयविदारक मृत्यु के संघात से स्तब्ध हो गयी तब भी इसने उनके द्वारा दिये गये निमंत्रण का पूर्ण मान किया। अपने दिवंगत नेता को इससे बड़ी श्रद्धांजलि हम और कोई नहीं दे सकते कि जो लक्ष्य उन्हें प्रिय थे उनका आदर करें और उनकी पूर्ति तन-मन-धन से करने का प्रयत्न करें। विपत्ति और कठिनाई के समय में वैद्य समाज को कौन सा मार्ग ग्रहण करना चाहिए इस प्रश्न का उत्तर केरल प्रादेशिक आयुर्वेद काँग्रेस ने अपने नेतृत्व पर महान् आघात होने के पश्चात् ही यह अधिवेशन करके दिखाने में स्पष्टतया दे दिया है।

आयुर्वेद महासम्मेलन के आगे सब से कठिन कार्य इस देश के सुशिक्षितों का पुनर्शिक्षण करके सीधे मार्ग पर लाना है। गत १५० वर्षों में जो शिक्षाक्रम भारतव में रहा उसका निर्माण बहुत बारीकी से किया गया और उसका संचालन भी उतनी ही सफलता से किया गया। इस शिक्षा का निर्माण और संचालन करने वाले भारतवर्ष के भूतपूर्व विजेताओं में सब से योग्य और सफल शासक अंग्रेज थे। उसका फल यह हुआ कि इस देश की स्वतन्त्रता प्राप्त होने के चिरकाल पश्चात् भी आज हमारे बहुत से सुशिक्षितों का बुद्धिपारतंत्र्य चारों ओर दृष्टिगोचर हो रहा है।

हमारा यह कर्तव्य है कि अपने उन देशवासियों को जो आयुर्वेद को सन्देह की दृष्टि

से देखते हैं इस शास्त्र की उपयुक्तता और वैज्ञानिकता तथा इसका प्रकार और विशालता ठीक रीति से समझा दें।

आयुर्वेद उस रूप में एक साधारण चिकित्सा प्रणाली मात्र नहीं है जिस रूप में कि अन्य पद्धतियां हैं। ज्ञान और क्रिया का जितना बड़ा क्षेत्र आयुर्वेद द्वारा व्याप्त है उसको कोई चिकित्सा प्रणाली भी किसी प्रकार अपने में अन्तर्भूत नहीं कर सकती।

आयुर्वेद आयु और वेद दो शब्दों से बना है जिनमें वेद का अर्थ ज्ञान अथवा विज्ञान है। यदि शाब्दिक अनुवाद ही किया जाय तो आयुर्वेद की समता अंग्रेजी शब्द बायालोजी से होगी। बायालोजी भी दो ग्रीक शब्दों से बना है जिनमें बायॉस का अर्थ आयु और लोगास का अर्थ ज्ञान है। परन्तु व्यवहार में बायालोजी का सम्बन्ध जीवविज्ञान मात्र से है, परन्तु आयुर्वेद का अर्थ जीवविज्ञान ही नहीं, बल्कि जीवन यात्रा की सर्वाङ्गीण कला का विज्ञान भी है। इनमें महत्व जीवन कला को अधिक दिया गया है। आयुर्वेद और बायालोजी शब्दार्थ की दृष्टि से पर्यायवाचक होते हुए भी व्यवहारार्थ एक दूसरे से कितने भिन्न हो जाते हैं इसका स्पष्टीकरण इन शब्दों के विशेषण रूप में प्रयोग करने से तुरन्त हो जाता है। जहां बायालोजिकल धर्म का अर्थ पाशव जीवन व्यतीत करना है वहां आयुर्वेदिक धर्म का अर्थ मानव और देवीय धर्म का पालन है। इसी प्रकार बायालोजिकल आचरण और आयुर्वेदिक आचरण इन शब्दों में भी वही भेद विद्यमान है। यही परिस्थिति बायालोजिकल विज्ञान और आयुर्वेद विज्ञान की है।

आयुर्वेद का वास्तविक स्वरूप और क्षेत्र जनसाधारण को समझाने के लिए कुछ थोड़े से सूत्रों का संक्षिप्त निरीक्षण ही पर्याप्त है।

शरीर का जीव से संयोग होना जीवन कहलाता है। इस जीवन का काल से संयोग होना आयु कहलाता है। शरीर शरीरेन्द्रीय, मन और आत्मा का प्रसन्न रहना स्वास्थ्य कहलाता है। मनुष्य का दुख से संयोग रोग कहलाता है। आयुर्वेद का प्रयोजन शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य की रक्षा और उन्नति करना है। वे चाहे एक व्यक्ति का स्वास्थ्य हो चाहे एक नगर या देश का। इसका दूसरा प्रयोजन मनुष्य और मनुष्य समाज की अनागत व्याधि से रक्षा करना और व्याधि उत्पन्न होने पर उसका निराकरण करना है। चिकित्सा का प्रयोजन शरीर धातुओं की समता का पुनर्स्थापन है।

जीवित संसार दो प्रकार का हैं, स्थावर और जंगम। जीवन के यह दोनों महान् वर्ग आयुर्वेद चिकित्साके विषय हैं। जहाँ शालिहोत्र संहिता आदि ग्रन्थ केवल हाथी, घोड़े, गाय तथा अन्य पशुओं की चिकित्सा का वर्णन करते हैं वहां वृक्षायुर्वेद वृक्षों और वनस्पतियों की रक्षा और स्वास्थ्य पर प्रकाश डालता है। श्री शिवतत्वरत्नाकर का वृक्षायुर्वेदाधिकार निम्नलिखित श्लोकों में स्थावर जगत की त्रैदोषिक प्रकृति का वर्णन करता है।

नराणामिव वृक्षाणां वातपित्तकफाः गदाः
संभवन्ति यतस्तस्मा त्कुर्य्यात्तद्दोषनाशनम्॥

कृशो दीर्घो लघू रूक्षो निद्राहीनोऽल्पचेतनः ।
न धत्ते फलपुष्पाणि वातप्रकृतिकस्तरुः ।।
आतपाऽप्तहनः पाण्डुश्शाखाहीनो मुहुर्यदि ।
अकालपाकः स्याच्छाखी स तु पित्तात्मकः कृशः ।।
सिद्धशाखादलश्शाखी सम्यक् पुष्पफलोज्ज्वलः ।
लतापरीतगात्रस्तु कफवान परिमण्डलः ।।

परन्तु चिकित्सा का मुख्य अधिष्ठान मनुष्य स्वयं है ।

स्वास्थ्य की रक्षा और उन्नति दिनचर्या और ऋतुचर्या द्वारा की जाती है । जिनका पालन समुचित आहार-विहार द्वारा किया जाता है । दिनचर्या के मुख्य विषय प्रातः उठना, वेगों को धारण न करना तथा नियमित रहना, दांतों और जिह्वा को स्वच्छ रखना,नस्य-सेवन, नासा और गले की शुद्धि के लिये विभिन्न प्रकार का कवलग्रहण और कवल धारण, विभिन्न प्रकार के अभ्यंग और स्नान, शुद्ध वस्त्र धारण, हाथ और पांव की स्वच्छता और रक्षा, क्षौर, विषैली और हानिकर आहार तथा मादक वस्तुओं का त्याग, हित और मित आहार, उचित विश्राम और निद्रा, निवास स्थान की स्वच्छता, उस प्रकार के शारीरिक साहसों का त्याग जिनसे उरःक्षत और अन्त्रच्युति आदि उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं, निवास के आस पास के स्थान की स्वच्छता, जल की स्वच्छता, तैल उबटन आदि उपकरणों की स्वच्छता, कीट मशक आदि का दूरीकरण इत्यादि हैं ।

ऋतुचर्या भी एक परम उपयुक्त और मनोरंजक विषय है जो वर्ष की द्वैमासिक षड् ऋतुओं के तापमान, आर्द्रता तथा अन्य जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों और विशेषताओं के अनुसार दिनचर्या में आवश्यक परिवर्तन करने का विधान करता है । जो व्यक्ति इन चर्याओं का नियमपूर्वक पालन करता है उसका शरीर ऋतुओं के परिवर्तन से होने वाली व्याधिओं और महामारियों से सुरक्षित रहता है और वह स्वस्थ और दीर्घ जीवन प्राप्त करता है ।

जनपदोध्वंसक रोगों के प्रतिकार और विनाश के लिए व्यक्तिगत और सामूहिक उपायों का उल्लेख इस प्रयोजन से किया गया है कि व्यक्ति और समाज के स्वास्थ्य की उचित रक्षा की जा सके ।

आयुर्वेद में व्याधि चार प्रकार की हैं, आगन्तुक (चोट, डंक, दुर्घटना, छूत इत्यादि), शारीरिक (आहार, क्रिया दोषादिजन्य), मानसिक (लोभ, मोह आदि) और स्वाभाविक (जीवन, मरण आदि)। सामान्यतया (प्रत्येक अवस्था में नहीं), आगन्तुक व्याधि शल्य साध्य, शारीरिक व्याधि औषधि साध्य, मानसिक व्याधि ज्ञान साध्य और स्वाभाविक व्याधि मोक्ष-साध्य है ।

सुश्रुत ने १२५ शल्य शस्त्रों का वर्णन किया है जिनका प्राचीन भारत में प्रयोग किया जाता था । विद्यार्थियों के लिये शवच्छेदन आवश्यक था और उदर तथा मस्तिष्क का

खीलना आदि प्रधान शल्य क्रियाय परम योग्यता और सफलता से की जाती थीं। भारत के विभाजन से पूर्व की पंजाब सरकार ने एक समिति बनायी थी जिसका नाम 'कमेटी ऑन एप्लाइड् साइन्सेज' रखा गया था। इसके चेयरमैन कर्नल वी. आर. मिराजकर, एफ. आर. सी. एस., थे। इस समिति की देखरेख में और उस धन की सहायता के साथ जो श्री मूलचन्द्र खैरातीराम ट्रस्ट लाहौर ने प्रदान किया, मैं उन १२५ प्राचीन भारतीय शल्य-शस्त्रों का पुनर्निर्माण करने में सफल हो गया था। उन्हें देखकर कमेटी के चेयरमैन जो उस समय उस प्रान्त के सर्वोत्कृष्ट सर्जन समझे जाते थे, बोल उठे थे कि शायद ही कोई ऐसा आधुनिक आपरेशन हो जो उन शस्त्रों द्वारा न किया जा सके। विभाजन की मार काट में जो ध्वंस हुआ उसमें देरतक यह पता नहीं चला कि उन शल्य-शस्त्रों का क्या हुआ जिन पर कि मुझे इतने स्नेहपूर्ण श्रम का व्यय करना पड़ा था और जिनकी सहायता से तथा आधुनिक विज्ञान की सहायता से मैं भारतीय शल्य-चिकित्सा का पुनर्निर्माण करके उसे उसके प्राचीन शिखर पर पुनः स्थापित कर सकने का स्वप्न देख रहा था। मुझे यह जान कर बहुत सन्तोष हुआ है कि उस ट्रस्ट के सदस्य उनमें से बहुत से शस्त्रों को पाकिस्तान से भारत की सुरक्षित भूमि पर लाने में सफल हुए हैं और वे शस्त्र अब देहली के ट्रस्ट के कार्यालय में पहुँच गये हैं। मुझे यह आशा है कि वे शस्त्र अब हमें प्राप्त हो सकेंगे और हम उनका प्रयोग आयुर्वेदिक शल्य-शास्त्र की शोध में कर सकेंगे।

शल्यक्रिया के अतिरिक्त आगन्तुक व्याधियों के लिये अन्य बहुत से आयुर्वेदिक लेप, तैल, क्वाथ तथा मलहर द्रव्यों का बाहरी प्रयोग किया जाता है जो अपने क्षेत्र में अत्यन्त लाभकारी प्रमाणित हुए हैं।

शारीरिक व्याधि की आयुर्वेदिक चिकित्सा निम्नलिखित संक्षिप्त सूत्र में सम्यक् वर्णित हैं :—

"औषधि, अन्न और विहार का व्याधि के हेतु अथवा व्याधि के विपरीत प्रयोग करना अथवा विपरीत न होते हुए भी विपरीतार्थकारी प्रयोग करना जिससे कि व्याधि का शमन हो, उपशय कहलाता है।

इस सूत्र से यह स्पष्ट है कि आयुर्वेदिक चिकित्सक को अपने शास्त्रीय पाठ के प्रकाश में ऐलोपैथी, होमियोपैथी और नैसर्गिक चिकित्सा सभी प्रणालियों के सिद्धांतों को स्वास्थ्य और व्याधि की समस्या को सुलझाने के लिये वैकल्पिक आयुर्वेदिक मार्गों के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। औषधि, अन्न और विहार यह तीनों ही वर्ग अत्यन्त विस्तृत हैं। एक वमन और विरेचन का अध्याय ही छः सौ औषधि योगों का वर्णन करता है। विहार वर्ग में व्यायाम, स्नान, अभ्यंग आदिकों का वर्णन है जिनका संख्या प्रकार सैकड़ों की गिनती में पहुँचता है।

मानसिक व्याधि और मानसिक रोग प्रतिबन्ध का अर्थ और स्वरूप आयुर्वेद में वह नहीं है जो ऐलोपैथी में है। आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से मानसिक रोग का अर्थ दुष्ट

विचार प्रणाली और मानसिक रोग प्रतिबन्ध का अर्थ मानसिक स्वच्छता की रक्षा है। यहां भी इन शब्दों का अर्थ ऐलोपैथिक परिभाषा में करने में वैसी ही कठिनाई पड़ती है जैसी आयुर्वेद को बायालोजी कहने में। ऐलोपैथी की पुस्तकों में मानसिक रोग प्रतिबन्ध का क्षेत्र केवल उन व्यक्तियों तक सीमित है जिनकी मानसिक प्रगति रुक गयी है। मानसिक आचरण सम्बन्धी रोगों का निम्नलिखित लक्षण उपर्युक्त अभिप्राय को स्पष्ट कर देगा। "मानसिक आचरण पीड़ितों का अभिप्राय उन व्यक्तियों से है जिनमें मानसिक प्रगतिरोध के साथ साथ इस प्रकार की दुष्ट और अपराधी प्रवृत्तियां विद्यमान हैं जिनसे दूसरे व्यक्तियों की रक्षा करने के लिए इनकी देख रेख और नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है।" व्याधित आचरण का अर्थ आधुनिक विज्ञान में केवल दुष्ट मानसिक अवस्थाएं होने के कारण यह स्वाभाविक है कि आधुनिक विज्ञान वास्तविक सत्य और धर्म, जो जन और जनसमूह के लोभ और मोह आदि का दमन कर संसार में शांति और सुख के स्थापन करने में एक मात्र कारण बन सकते हैं, का सर्वथा विस्मरण कर दे। आचरण शुद्धि का अर्थ आधुनिकों ने केवल साधारण मानसिक रोग पीड़ितों का नियन्त्रण मात्र ही समझा है। परन्तु आयुर्वेद में उच्च मानसिक और आध्यात्मिक आचरण का प्रयोग अनन्त वैयक्तिक और सामूहिक विपत्तियों के विशिष्ठ प्रतिबन्धक के स्वरूप में वर्णित किया है। यह उपदेश केवल आयुर्वेद शास्त्र में ही मिलता है तथा अन्य प्रणालियों के क्षेत्र से सर्वथा बाहर की बात है।

आयुर्वेद ने रोग प्रतिबन्ध के क्षेत्र को बहुत विशाल बना दिया है महामारियों के कारणों का वर्णन करते हुए जहां पुनर्वसु ने जल, वायु, देश और काल के दुष्ट होने को कारणत्व दिया है वहां वह एक पग (और एक बहुत बड़ा पग) और आगे गया है जब वह कहता है कि अधर्म और असत्कर्म भी महामारी उत्पन्न कर सकते हैं।

जनपदोध्वंसन में मनुष्य स्वयं किस प्रकार महामारी के कारण बन सकते हैं यह चरक ने निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है :—

"यदा देशनगरनिगमजनपदप्रधानधर्ममुत्क्रम्य अधर्मेण प्रजा प्रवर्त्तयन्ति तदाश्रितोपाश्रिताः पौरजनपदा व्यवहारोपजीविनश्च तमधर्ममभिवर्द्धयन्ति। ततः सोऽधर्मः प्रसभं धर्ममन्तर्धत्ते ततस्तेऽन्तर्हितधर्माणो देवताभिरपि त्यज्यन्ते। तथा शस्त्रप्रभवस्यापि जनपदोध्वंसस्य अधर्म एव हेतुर्भवति। येऽतिवृद्धलाभक्रोधरोषमानास्ते दुर्बलानवमत्य आत्मस्वजनपरोपघाताय शस्त्रेण परस्परमभिक्रामन्ति, परान् वाभिक्रामन्ति, परैर्वाभिक्राम्यन्ते"।

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट होगा कि मनुष्य जाति को कष्ट देने वाली विपत्तियों की रोक थाम के लिए आचरण सम्बन्धी स्वच्छता को साधारण पाश्चात्य मानसिक रोग प्रतिबन्ध से भिन्न एक महत्वपूर्ण स्थान आयुर्वेद ने दिया है। आयुर्वेद के सिद्धान्तों के अनुसार दुष्ट मनोवृत्ति न केवल मनुष्य समाज के सुख और शांति पर ही आघात पहुंचाती है परन्तु प्रकृति की प्रगति भी विषम बना देती है और भूमि और उसकी उपज ऋतुओं का नियमित

परिवर्तन तथा वृष्टि और शीतोष्ण की स्वाभाविक परिस्थिति को भी बिगाड़ देती है। आधुनिक पदार्थवादी के लिये यह आवश्यक नहीं की वे इस सम्पूर्ण दृष्टिकोण को स्वीकार करें, परन्तु यह तो सभी स्वीकार करेंगे कि इस दृष्टिकोण से जिस धार्मिक आचरण का निर्देश किया गया है वह सर्वमान्य होना ही चाहिए।

चरक ने लिखा है—

भ्रश्यति तु कृतयुगे केषांचिदत्यादानात् साम्पन्निकानां शरीरगौरवमासीत्। सत्वानां गौरवाच्छ्रमः श्रमादालस्यमालस्यात्संचयः संचयात्परिग्रहः परिग्रहाल्लोभः प्रादुर्भूतः···लोभादभिद्रोहः। अभिद्रोहदनृतवचनमनृतवचनात् कामक्रोधमानद्वेषपारुष्याभिघातभयतापशोकचित्तोद्वेगादयः प्रवृत्ताः···ततस्तानि प्रजा शरीराणि हीणगुणपादैः····आक्रान्तानि। अतः प्राणिनो ह्रासमवापुरायुषः क्रमशः इति।"

आयुर्वेद ने मानसिक रोग प्रतिबन्ध के लिये और उच्च मनोवृत्ति प्राप्त करने के लिये ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति और समाधि आदि का सेवन ही उत्कृष्ट मार्ग बतलाया है।

स्वाभाविक व्याधि

स्वाभाविक व्याधि का विषय तो आयुर्वेद के सिवाय किसी अन्य चिकित्सा शास्त्र ने छू कर भी नहीं देखा। जन्म, मरण, भूख, प्यास और निद्रा यह स्वाभाविक व्याधियां कही गयी हैं। इनकी जो चिकित्सा वर्णित है उसे साधारण अर्थों में चिकित्सा नहीं कहा जा सकता। वह तो आध्यात्मिक मार्ग का ग्रहण और मोक्ष की प्राप्ति ही है। परन्तु यहाँ पर मैं इस क्लिष्ट विषय को, जो कि सब विचारकों को मान्य भी नहीं होगी, नहीं उठाऊंगा।

आयुर्वेद के मुख्य सिद्धान्त

आयुर्वेद के पांच मुख्य सिद्धान्त हैं। प्रकृतिपुरुष सिद्धान्त, पंच महाभूत सिद्धान्त, त्रिदोष सिद्धांत, सप्तधातु सिद्धांत तथा रस, वीर्य, विपाक प्रभाव सिद्धान्त यह क्रमशः आरम्भवाद, विकासवाद, जीव विज्ञान, गात्र विज्ञान और आहार क्रिया की व्याख्या करते हैं।

पंचकर्म

पंचकर्म आयुर्वेद की एक विशिष्ट क्रिया है। जो सुव्यवस्थित आहार तथा उपचार द्वारा, जिसमें कि वमन, विरेचन, स्नेहन, स्वेदन और शिरोविरेचन प्रधान हैं, शरीर का शोधन और निर्विषीकरण करती है।

मालाबार का महत्व

मालाबार प्रान्त में आकर मैं यह धृष्ठता नहीं कर सकता कि पंचकर्म के विषय में कुछ कहूं, क्योंकि इस विषय में इस देश ने इतनी उन्नति की है कि शेष संपूर्ण देश शिष्य-

भावैण पंचकर्म की क्रियाओं में उच्चतर ज्ञान प्राप्ति की इच्छा से इस देश की ओर देखता है।

जनसाधारण के लिये आयुर्वेदिक पद्धति के संक्षिप्त और सामान्य क्षेत्र का यह दिग्दर्शन करके में उन आयुर्वेदिक विषयों पर कुछ प्रकाश डालना चाहता हूँ जिनके सम्बन्ध में पूर्ण सूचना प्राप्त न करके कई व्यक्ति जनता में निरन्तर भ्रान्ति फैलाते रहते हैं।

: शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम और इसका वास्तविक अर्थ :

हम उत्तरदायी नहीं

साधारणतया यह सत्य है कि आयुर्वेद के शिक्षण और प्रशिक्षण में वैद्य समाज को कुछ कहने या करने का अधिकार अभी तक सरकारों ने नहीं दिया है। विभिन्न सरकारों के आयुर्वेद विभागों की योजना और शासन का निर्माण उन डाक्टरों द्वारा ही हुआ है जिनको केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों ने इस काम के लिये नियुक्त किया। इन शासकों का यह आग्रह रहा है कि आयुर्वेद के विद्यार्थियों के अध्ययन काल का दो तिहाई भाग ऐलोपैथी पढ़ने में व्यतीत हो और केवल तृतीयांश आयुर्वेद के अध्ययन में। संदिग्ध चिकित्सा योग्यता वाली इस शिक्षित उपज की सबसे कड़ी समालोचना इस पाठ्य प्रणाली के निर्माणकर्ता डाक्टरों द्वारा ही की जाती है कि यह स्नातक ऐलोपैथिक चिकित्सा करने के योग्य नहीं। इस विरोधी आलोचना का समर्थन दूसरी कड़ी आलोचना द्वारा होता है जब वैद्य सम्प्रदाय यह शिकायत करता है कि यह स्नातक आयुर्वेद का प्रातिनिध्य नहीं कर सकते। इन आलोचनाओं के फलस्वरूप यह पाठ्यक्रम उन्हीं डाक्टरों द्वारा बार-बार दोहराये जाते हैं। वही डाक्टर ऐसे वैद्यों की सहायता लेकर जिनके सहयोग और दासता पर वे विश्वास कर सकते हैं आयुर्वेदिक शिक्षण के भाग्य विधाता बने रहते हैं। पाठ्य प्रणाली में कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं किया जाता। प्रत्येक पुनर्विचार के पश्चात् विद्यार्थी की ऐलोपैथी प्रवेश योग्यता ही बढ़ाई जाती है और पाठ्य प्रणाली का ऐलोपैथिक भाग ही परिवर्तित किया जाता है जिससे ऐलोपैथिक रंग ही विद्यार्थी पर अधिक चढ़ सके। विस्मय इस बात का है कि जो डाक्टर इन पाठ्यक्रमों का निर्माण करते हैं वही इस उपज की निन्दा में सबसे अधिक ऊंची आवाज़ से चिल्लाते हैं।

डेढ़ वर्षीय आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम

भावी वैद्यों के आयुर्वेदिक ज्ञान की उन्नति के लिये उनके पाठ्यक्रम में ऐलोपैथिक ग्रंथांशों की वृद्धि करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहना अत्यन्त विस्मयजनक है। इन चालों के शिकार स्नातकों की कठिनाइयों का कुछ ज्ञान बम्बई सरकार के आयुर्वेदिक आतुरालयों में लगे हुए वैद्यों की परिस्थिति के अध्ययन से हो सकता है। प्रथम तो यद्यपि कहने के लिये गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेजों का अध्ययन काल साढ़े चार वर्ष का है, उसमें वास्तविक आयु-

वदिक पाठ्यक्रम का भाग एक वर्ष और कुछ मास से अधिक नहीं रहता, क्योंकि उस जीवन का प्रधान अंश ऐलोपैथी पढ़ने में ही व्यतीत होता है। जिन डाक्टरों ने यह पाठ्यक्रम बनाया है उन्होंने ही फ़ैकल्टी की एक आज्ञा द्वारा इन वैद्यों पर यह प्रतिबन्ध भी लगाया है कि सरकारी अस्पतालों में वे ऐलोपैथिक औषधियों का प्रयोग न करें। दूसरे शब्दों में उन्हें उस विज्ञान का फल भोगने से सरकारी आज्ञा द्वारा रोक दिया गया है जो विज्ञान उनकी इच्छा के विरुद्ध सरकारी ही आज्ञा द्वारा उन पर ठोसा जाकर उनके अध्ययनकाल और विद्यार्थी-जीवन का मुख्य अंश निगला जाता है और उनको विवश किया जाता है कि जो विज्ञान उन्हें केवल एक वर्ष और कुछ महीने ही पढ़ने को मिला है और वह भी ऐसे वैद्यों के नीचे जो आयुर्वेद के प्रति निरन्तर घृणा प्रदर्शित करने वाले डाक्टरों को स्वामीरूपेण स्वीकार कर उनकी नौकरी करने को तैयार हैं, उसी से सीमित रह कर अपना चिकित्सा कार्य चलायें। एक वर्ष और कुछ महीने में यह विशाल आयुर्वेद शास्त्र एक साधारण बुद्धिका विद्यार्थी कहां तक ग्रहण कर सकेगा और इस विज्ञान के प्रति जनता के हृदय में क्या आदर उत्पन्न कर सकेगा।

वैद्य के शारीर ज्ञान पर, सर्जन के शारीरविज्ञान पर अधिक आग्रह

आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम में जो ऐलोपैथिक अंश रखे गये हैं उनकी भी एक अजीब कहानी है। बाम्बे की फ़ैकल्टी आफ़ इण्डियन मेडिसिन के जी. एफ़. एम. कोर्स के अनाटमी "शारीर" पेपर में क्रास सेक्शन के लिए ५० नम्बर रखना एक अत्यन्त प्रकाशमान उदाहरण है। वास्तविक व्यवहार में यह विषय इतना अनावश्यक और अनुपयुक्त समझा जाता है कि एम. बी. बी. एस. कोर्स में इस विषय को केवल १५ नंबर दिये गये थे। परन्तु विषय क्लिष्ट और अनुपयुक्त होने के कारण अनाटमी का यह विषय एम. बी. बी. एस. के अनाटमी के पत्र से पूर्णतया हटा लिया गया। यह समझना बड़ा कठिन है कि प्रत्यक्ष शारीर का जो अत्यन्त कठिन विषय भावी सर्जनों के लिये भी इतना अनावश्यक समझा जाता है कि उसको उनके पाठ्यक्रम से बिल्कुल ही हटा लिया गया, उसको भावी वैद्यों के लिये जिनका शल्य से बहुत कम सम्बन्ध रहेगा इतना महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य क्यों समझा गया कि उसके लिये १५० में से ५० नंबर सुरक्षित किये गये। इस नीति को देखते हुए किसी को भी विस्मय नहीं होगा कि जो सर्वनाश होना था, बल्कि नियोजित किया गया था, वह होकर रहा, जहां एम. बी. बी. एस. परीक्षा में ६० प्रतिशत विद्यार्थी सफल हुए वहां जी. एफ. एम. में केवल १६ प्रतिशत विद्यार्थी ही उत्तीर्ण हो सके। ८४ प्रतिशत आयुर्वेदिक विद्यार्थियों के जीवन काल के इस पैशाचिक वध पर किसी सरकारी क्षेत्र में एक जूं तक भी नहीं रेंगी।

उपर्युक्त परिस्थिति को यदि कोई कलाकार चित्र के रूप में चित्रण करे तो उसका शीर्षक नीचता और द्रोह ही हो सकेगा और उसका विशुद्ध वर्णन बम्बई के उस प्रसिद्ध ऐलोपैथी के वाक्य को उद्धृत करने से ठीक हो सकेगा जिसने एक केन्द्रीय सरकार के मंत्री के समक्ष

यह कहने की भूल कर दी कि उसके दल ने आयुर्वेदिक संस्थाओं को अपने आधीन रखा ही इसलिए था कि वह जनता पर आयुर्वेद की निरर्थकता सिद्ध कर सके।

आयुर्वेद शिक्षा शरीर में उपर्युक्त पुरानी और असाध्य व्याधि को देखते हुए ही बम्बई के कुछ अग्रणी वैद्यों ने बम्बई सरकार से यह प्रार्थना की कि वह आयुर्वेद के शिक्षण और प्रशिक्षण के लिये कोई दूसरा मार्ग निकाले। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह वर्तमान शिक्षा प्रणाली को सर्वथा हटा देना नहीं चाहते थे—परन्तु उन्हें ज्ञात था कि पिछले १५ वर्षों में जो अनियंत्रित एकपक्षीय ऐलोपैथिक राज्य अभागे आयुर्वेदिक विभागों पर रहा है उस राज्यकाल में कुछ स्वार्थी और दलों ने सरकारी शासन और विभिन्न समितियों पर इतना गहरा अधिकार जमा लिया है कि कुछ समय तक उन समितियों और संस्थाओं को इस पाप से मुक्त करना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं हो सकता था। शीघ्रातिशीघ्र इस प्रकार के वैद्य उत्पन्न करने के लिये जो आयुर्वेद का सच्चा प्रातिनिध्य कर सकें वही एक मार्ग था जो बम्बई के वैद्यों ने ग्रहण किया। वर्तमान आयुर्वेदिक कालेजों के स्नातक तो अपने आपको वैद्य कहलाने में भी लज्जा का अनुभव करते हैं और जनता के सामने अपने आपको ऐलोपैथी के स्वरूप में प्रकट करना चाहते हैं। उन्होंने आयुर्वेद की अपेक्षा ऐलोपैथी का अधिक अध्ययन किया है चाहे वह ऐलोपैथी न्यूनमात्रा में ही पढ़ाई गई। आयुर्वेद तो ऐलोपैथी से भी न्यूनतर मात्रा में पढ़ाया गया। जहां कहीं भी वह इस प्रकार के प्रतिबन्ध से मुक्त होते हैं जैसा कि बाम्बे फैकल्टी ने सरकारी आतुरालयों के वैद्यों पर लगाया है वे तुरन्त ऐलोपैथिक इन्जैक्शनों और औषधियों की शरण में भागते हैं क्योंकि उनका आयुर्वेद का ज्ञान इतना पर्याप्त नहीं कि वे योग्यता और आत्मविश्वास से उनका आश्रय ले सकें। जो रोगी इनसे चिकित्सा करवाने वाले हैं वह ऐसे वैद्यों को मिलकर विस्मित होते हैं जो उन्हें ऐलोपैथिक चिकित्सा प्रदान करते हैं। उनमें से वह रोगी जो पहले ही ऊँचे दर्जे के डाक्टरों से उच्च ऐलोपैथिक चिकित्सा करा कर और उससे कोई लाभ न पाकर फिर आयुर्वेद की शरण लेते हैं और फिर वैद्यों को एक नीचे स्तर पर ऐलोपैथिक चिकित्सा करते हुए देखते हैं अधिक ही निराश और असंतुष्ट होते हैं।

बम्बई सरकार का धन्यवाद

बम्बई सरकार से जो वैद्यों ने यह प्रार्थना की कि एक इस प्रकार का आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम स्वीकार करे जिससे आयुर्वेद के स्नातक आयुर्वेदिक सिद्धान्तों और चिकित्सा प्रणाली का न्यूनतम आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर सकें तो सरकार ने सहानुभूति से इसपर विचार किया। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि यह प्रार्थना बिना विचार किये ही स्वीकृत हो गई। जो लोग हमारे मुख्य मंत्री श्री मुरार जी देसाई तथा स्वास्थ्य मंत्री श्री शान्तिलाल शाह को अच्छी प्रकार जानते हैं उनको यह बताना पिष्टपेशण होगा कि केवल निरन्तर आन्दोलन द्वारा अथवा किसी शब्दजाल द्वारा उनको बहका लेना सर्वथा असंभव है। उनका ध्यान किसी भी प्रार्थना की ओर तभी आकर्षित होता है यदि उसमें कुछ वास्तविक योग्यता हो। श्री मुरारजी देसाई की दृढ़ता तो उनके कट्टर विरोधी भी स्वीकार करते हैं। उन्होंने हमें

अपनी न्यायप्रियता और बुद्धि का साहाय्य दिया और श्री शान्तिलाल शाह ने तो बुद्धि और परिश्रम दोनों का प्रयोग किया। जो प्रश्न श्री शान्तिलाल शाह ने इस विषय में किये वे इतने गम्भीर और मार्मिक थे और किसी भी विषय को पूर्णतया स्वीकृति योग्य न होते हुये स्वीकार कर लेने की प्रथा का विरोध करना उनके लिए इतना निश्चित कर्त्तव्य था कि जब वैद्य समाज ने उनका सन्तोष करके शुद्ध आयुर्वेद का पाठ्यक्रम आरम्भ करने के लिये उनकी स्वीकृति प्राप्त कर ली तो हमें यह विश्वास हो गया कि शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम का कट्टर से कट्टर विरोधी भी यदि वह इमानदार, समझदार और वास्तविक जिज्ञासु होगा तो इस पाठ्यक्रम को स्वीकार करने के लिए तत्पर हो जाएगा।

३॥ वर्ष-४॥ वर्ष से द्विगुण से अधिक !

यह कहा गया है कि साढ़े तीन वर्ष का समय इतना थोड़ा है कि इसमें विद्यार्थी आयुर्वेद के सिद्धान्तों को पूर्णतया ग्रहण नहीं कर सकेंगे। विस्मय यह है कि इस समालोचना का मुख्य स्रोत वे व्यक्ति हैं जो पिछले १५ वर्ष से उस पाठ्यक्रम का समर्थन करते चले आये हैं जिसमें आयुर्वेदाध्ययन काल एक वर्ष और कुछ महीनों से अधिक नहीं। तथ्य यह है कि शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम के स्नातक के पास आयुर्वेदाध्ययन के लिये प्रचलित आयुर्वेदिक कालिजों के पाठ्यक्रम के समय से तीन गुना नहीं तो दो गुना समय अवश्य होगा। इसके अतिरिक्त उसका अध्ययन उन आचार्यों के पास होगा जिनका चिकित्सा कौशल और प्रखर पांडित्य ही उस श्रद्धा और मान को जीवित देख रहा है जो आयुर्वेद को भारतवर्ष में और भारतवर्ष से बाहर प्राप्त है।

केन्द्र का आयुर्वेद से सामान्य और शुद्धायुर्वेद से विशेष विरोध

हमें खेद है कि भारत की स्वास्थ्य मन्त्रिणी राजकुमारी अमृतकौर ने उस पाठ्यक्रम का अनावश्यक विरोध किया है जिसको टाइम्स आफ इण्डिया ने बम्बई सरकार की शुद्ध आयुर्वेद सम्बन्धी उत्कृष्ट योजना कहा है। यह ठीक है कि इस विरोध से बम्बई राज्य में आयुर्वेद की प्रगति में कोई रुकावट नहीं पड़ सकती। बम्बई सरकार ने एक प्रेस वक्तव्य द्वारा स्पष्ट ही घोषित कर दिया है कि वह इस विरोध की कुछ परवाह न करके आगामी जून मास तक शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम आरम्भ कर देगी।

केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रिणी से मैं अपील करूंगा कि वह अपने वक्तव्यों और कृतियों में कुछ अंश न्याय और वास्तविकता का भी डालना आरम्भ करें। केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग जिस नैरन्तर्य से आयुर्वेद का विरोध करता है और जिन पुरानी खंडित दलीलों का आयुर्वेद को दूषित करने के लिये बार-बार प्रयोग करता है यहां उनके दोहराने की आवश्यकता नहीं। आयुर्वेद महासम्मेलन के इन्दौर के अधिवेशन में मैंने राजकुमारी जी के आयुर्वेद-विरोधी सभी प्रिय सिंहनादों का खंडन भली प्रकार कर दिया था। उनमें यह प्रश्न भी था कि जब चीन, रूस, जापान, मिश्र इत्यादि देशों ने आधुनिक चिकित्सा प्रणाली स्वीकृत कर ली

है तो भारतवर्ष में ही क्यों राष्ट्रीय चिकित्सा प्रणाली की मांग उठती है। आयुर्वेद का समर्थन केवल इसके सस्तेपन के कारण भी नहीं किया जा सकता। आयुर्वेद की इस लिये भी आवश्यकता नहीं कि इसमें जो कुछ भी लाभप्रद था वह ऐलोपैथी ने आत्मसात कर लिया है। सत्य एक है और विज्ञान अविभाज्य है, अतएव एक समय में दो वैज्ञानिक चिकित्सा प्रणालियां नहीं हो सकतीं। आयुर्वेद में प्रगति नहीं है इसलिये भी यह त्याज्य है। आयुर्वेद की सहायता करना राज्य के धन का दो स्थानों पर व्यय करना होगा। उपर्युक्त प्रश्न और कथनों में जो भ्रान्तियां हैं वह मैंने इन्दौर के भाषण में दो से सोलह पृष्ट तक अच्छी प्रकार स्पष्ट कर दी हैं इसलिये इन सिंहनादों पर मैं अब विचार नहीं करूंगा।

केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रिणी का उच्च स्थान और साधनों का दुरुपयोग

सामान्यतया मैं राजकुमारी जी के भाषणों की यहां चर्चा न करता परन्तु वे एक ऐसे पद पर आरूढ़ हैं जिसपर उन्हें एक महान् राष्ट्र के विशाल साधन तथा अनन्त सरकारी और अर्धसरकारी संस्थाओं का असीमित समर्थन प्राप्त है। यह अधिकार उनके हस्तगत होने के कारण उन्हें बहुत से सरकारी अथवा सार्वजनिक अधिवेशनों, सम्मेलनों, समितियों संगठनों और संस्थाओं पर सभापतित्व करने के लिये या उनका उद्घाटन करने के लिये जनता में बोलने का बार-बार अवसर दिया जाता है क्योंकि ऐसा करने से उनका कृपाभाव और संरक्षण निमंत्रणदाताओं को प्राप्त होता रहता है। जिस उच्च स्थान पर वे आरूढ़ हैं वहां से वे कुछ भी कहें, उनके कथन की उपयुक्तता अथवा शास्त्रीय या वैज्ञानिक मूल्य का कुछ भी ध्यान न करते हुए प्रायः समाचार पत्र उनके दृष्टिकोण का प्रकाशन करते ही रहते हैं। अतएव जिन भ्रान्तियों तथा असत्य आन्दोलन का प्रचार वह करती हैं यदि उनका उचित खंडन साथ-साथ न होता रहे तो भोली जनता के धोके में आ जाने का भय बना ही रहता है। मैं यहां उनके केवल उन दो भाषाणों पर कुछ कहूँगा जिनको इन दिनों समाचार पत्रोंने विशेष प्रसिद्धी दी है। उनमेंसे एक तो वह भाषण है जो थोड़े दिन हुए उन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक कालिज के वार्षिक दिवस पर दिया था।

अन्धकार निराकरण

भारत सरकार के प्रेस इन्फ़रमेशन ब्यूरो द्वारा प्रसारित किये गये इस भाषण का पहला वाक्य यह है:—यदि आयुर्वेद आधुनिक चिकित्सा प्रणाली को कुछ विशिष्ट दान देने का इच्छुक है तो यह इसके उन्हीं समर्थकों द्वारा दिया जा सकता है जिनको कि वैज्ञानिक शिक्षा मिली है। एक आयुर्वेदिक कालेज के उत्सव के लिये यह एक अत्यन्त असंगत और बेसमझ आरम्भ है। प्रथम तो ऐलोपैथी के लिये आधुनिक चिकित्सा शब्द का प्रयोग करना ही पक्षपातपूर्ण है। कोई विज्ञान केवल अधिक पुराना होने के कारण कम आधुनिक नही बन जाता यदि किसी सिद्धान्त या सिद्धान्तसमूह के जन्मकाल पर ही उसकी

आधुनिकता का निर्णय किया जाता हो तो होमियोपैथी ऐलोपैथी की अपेक्षा कहीं अधिक आधुनिक है। दूसरे यह समझना भी एक धृष्टता है कि आयुर्वेद के समर्थकों का लक्ष्य ऐलोपैथी के निर्माण में सहायता करना है। तीसरे उन्हें यह ज्ञान होना चाहिए कि संस्था ने उन्हें जो निमंत्रण भेजा था वह स्वास्थ्य मंत्रिणी के नाते उनका समर्थन और संरक्षण निमंत्रणदाता संस्था और उस संस्था के प्रधान विषय के लिये प्राप्त करना था। उन्हें इसलिये नहीं बुलाया गया था कि वे यह समझ लें कि यह आयुर्वेद विद्यालय ऐलोपैथी का भक्त है और ऐलोपैथी के निर्माण में दान देने के लिये उसके आगे झोली पसार देना ही उनका मुख्य कर्तव्य होगा। चौथे यदि वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त शब्द से उनका तात्पर्य ऐलोपैथों से था तो उन्होंने एक बहुत अनुपयुक्त अवसर पर अनुचित और एकपक्षीय आन्दोलन में भाग लेने का अपराध किया और ऐसा करने में एक न्यायाधीश के आसन से नीचे उतर कर उन्होंने एकपक्षीय वकील का स्थान ग्रहण किया। मैं राजकुमारी जी को फिर याद दिलाना चाहता हूं कि उच्च स्तर के अमेरिकन और वृटिश ऐलोपैथ स्वयं इस दावे की निन्दा और उपहास करते हैं कि केवल ऐलोपैथी ही वैज्ञानिक है। डाक्टर कैनेथ वाकर जो लन्दन हास्पिटल में सर्जरी के हंगेरियन प्रोफेसर हैं बहुत स्पष्टता से कहते हैं कि केवल मध्यम या अधम श्रेणी के वैज्ञानिक ही 'वैज्ञानिक' मार्ग को सत्य का एकमात्र मार्ग समझते हैं। तो भी उन्होंने इस भाषण में यह समझ लिया कि हमारे जीवन का मुख्य लक्ष्य ऐलोपैथी के निर्माण में सहायता करना है और वह हम तब तक नहीं कर सकते जब तक कि ऐलोपैथी शिक्षा प्राप्त न कर लें। इस प्रथम वाक्य के पश्चात् ही इससे सर्वथा उल्टा दूसरा वाक्य "आयुर्वेद विज्ञान के लिये केवल सच्चा आत्मसमर्पण ही इसको इसकी प्राचीन कीर्ति की ओर ले जा सकेगा" श्रोता को इस असमंजस में डाल देता है कि इनका अन्तिम लक्ष्य ऐलोपैथी को उन्नत करना है अथवा आयुर्वेद को। थोड़ा आगे चल कर वे फिर अपील करती हैं कि "आयुर्वेदिक क्रियाओं की रक्षा करनी चाहिए जिससे कि उनका अन्तर्भाव आधुनिक चिकित्सा प्रणाली में किया जा सके" आगे वे कहती हैं—"यह प्रश्न कभी उठ ही नहीं सकता कि ऐलोपैथी को हटा कर वह स्थान आयुर्वेद अथवा किसी अन्य चिकित्सा प्राणाली को मिल सके।" अपने पुराने सिंहनाद को दुहराते हुए वह यह तो कहती हैं कि मिश्र और चीन आदि भारत से भी पुराने देश हैं परन्तु इस पुराने प्रश्न का फिर कहीं उत्तर नहीं है कि नोबल पुरस्कार विजेता डाक्टर एलैक्सिस केरल और कैनेथ वाकर जैसे प्रसिद्ध अग्रणी पाश्चात्य चिकित्सक आधुनिक भारतीय चिकित्सा प्रणाली को ही इस आशा से क्यों देखते हैं कि डाक्टरी दवाइयों के अवैज्ञानिक और विषैले उपयोग से होने वाली शारीरिक और मानसिक व्याधियों के निराकरण के लिये आयुर्वेद ही सहायक सिद्ध हो सकेगा। इन विषैली औषधियों के जो दुष्ट प्रभाव शरीर मात्र पर पड़ते हैं उनका पूर्ण ज्ञान न औषधि देने वाले को है न खाने वाले को। राजकुमारी जी यह कभी नहीं सोचतीं कि चीन और मिश्र का वर्णन यह लोग क्यों नहीं करते। एक स्थान पर वह कहती हैं कि "यद्यपि इन दोनों प्रणालियों में किसी प्रकार का सामंजस्य नहीं हो सकता तो भी विद्यार्थियों को पढ़ाते समय इनका सामंजस्य करने का कभी प्रयत्न भी नहीं किया गया।"

यह असत्य है। चोपड़ा कमेटी ने यह प्रयत्न किया। राजकुमारी ने चोपड़ा कमेटी रिपोर्ट को रद्द कर दिया और एक नयी कमेटी का निर्माण कर दिया जिसने एक छोटी सी पुस्तिका रिपोर्ट के रूप में पंडित कमेटी रिपोर्ट के नाम से निकाली। एक दूसरा आक्षेप राजकुमारी ने और किया है, "आज आयुर्वेद में जनसमूह सम्बन्धी स्वास्थ्य क्रिया का पूर्ण रूपेण अभाव है" इस भारतीय नारी के इस कथन की तुलना एक अमेरिकन ऐलोपैथ डाक्टर जार्ज क्लार्क एम. डी. के इस कथन से कीजिये कि यदि आधुनिक औषधियों के स्थान पर चरकोक्त क्रियाओं का प्रयोग किया जाय "तो संसार में कब्रें खोदने वालों के लिये काम घट जायगा और पुराने रोगियों की संख्या भी कम हो जायगी।" इस भाषण में जहां एक स्थान पर राजकुमारी यह कहती हैं कि भारतवर्ष की चिकित्सा प्रणाली केवल ऐलोपैथी ही होगी वहां दूसरे स्थान पर बनारस विश्वविद्यालय को यह उपदेश देती हैं कि वह आयुर्वेद के पुनरुद्धार में अग्रणी बने। राजकुमारी जी ने एक विशिष्ठ अपील हम लोगों से की है कुछ प्रकाश की किरणें अपने भीतर भी डालें और फिर नाटकीय भोलेपन के साथ कहा है "मुझ में यह शक्ति नहीं, और ईश्वर का धन्यवाद है, कि किसी में भी यह शक्ति नहीं है कि वह सत्य को नष्ट कर दे। और विज्ञान यदि सत्य की खोज नहीं तो और क्या है।" जैसा कि राजकुमारी के भाषणों की सदा की प्रथा है वैसा ही इस भाषण में भी वास्तविक और संगत विषयों से दूर रहने का प्रयत्न किया गया है और बहुत से असत्य और विवादग्रस्त कथनों को तथ्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इस भाषण को इतना विस्तृत प्रकाशन मिला है कि इससे उन लोगों के मन में जिन्हें किसी विषय के गम्भीर अध्ययन का अभ्यास नहीं है आयुर्वेद के मान का पर्याप्त ठेस पहुंची है।

इस से पहले कि मैं राजकुमारी जी के बनारस के भाषण पर कुछ कहूं मैं उनके एक दूसरे वक्तव्य में से उनके दो कथनों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। इस भाषण का भी समाचार पत्रों ने बहुत प्रचार किया। यह कथन राजकुमारी ने श्रीमती लीलावती मुंशी की इस मांग का कि भारतवर्ष में अपाहिजों के संततिनिरोध का प्रवन्ध सरकार को करना चाहिए विरोध करते हुए भारतीय संसद में दिये गये उनके वक्तव्य के अंश हैं। अपाहिजों के संततिनिरोध के लिये कोई पग भारत सरकार को उठाने की आवश्यकता नहीं-ऐसा कहते हुए राजकुमारी ने यह भी कहा कि यह समस्या भारतवर्ष में इतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितनी कि उन देशों में जहां ऐसा पग उठाया गया है अर्थात् इंग्लैंड और अमेरिका आदि में ही अपाहिजों की संख्या अधिक है—भारतवर्ष में नहीं। फिर राजकुमारी जी ने कहा कि "अब आधुनिक विज्ञान इतना उन्नत हो गया है कि कोई भी व्याधि असाध्य नहीं रही। शायद कैन्सर और क्षय की परिवर्धित अवस्थायें असाध्य हों।"

२०० प्रतिशत असत्य

मैं इस अन्तिम कथन के औचित्यानौचित्य पर ही कुछ कहना चाहता हूं। जब उनकी बनारस की वक्तृता का यह वाक्य ध्यान में आता है कि सत्य को नष्ट करने की

शक्ति उनमें नहीं है तो यह कथन विशेष मनोरंजक बन जाता है क्योंकि इसमें सत्य और असत्य का निपात १ : २० है। ऐलोपैथी एक महान् विज्ञान है। विज्ञानप्रिय व्यक्तियों द्वारा इसे अपनी महान् कृतियों के बल पर ही पर्याप्त वास्तविक आदर प्राप्त हो सकता है। इसको ऊपर उठाये जाने के लिए एक विशाल असत्य की आवश्यकता नहीं। ऐलोपैथी के लिये इस प्रकार के विशाल और कट्टरतापूर्ण दावे करना वैद्यों की अपेक्षा डाक्टरों को कहीं अधिक लज्जित करता है। यह कहना कठिन है कि दो सहस्र प्रतिशत असत्य कह सकना एक शक्ति का चिन्ह है अथवा क्षीणता का, परन्तु जो व्यक्ति एक दायित्वपूर्ण और उच्च आसन से इसे सरलता से कह सकता है उस द्वारा सत्य और धर्म का उपदेश दिया जाना एक विचित्र घटना है। राजकुमारी जी ने उपर्युक्त वक्तव्य इस देश के स्वास्थ्य सम्बन्धी शासन के सात वर्ष के सम्पर्क के पश्चात् दिया है। इस काल में उन्होंने बहुत से आधुनिक और वैज्ञानिक आतुरालयों का निरीक्षण किया होगा। क्या उन्हें किसी आतुरालय में आधुनिक ग्रन्थों में वर्णित इन आधुनिक व्याधियों से पीड़ित एक भी रोगी नहीं मिला जिन्हें सर्वथा असाध्य समझा जाता है जैसे कि विभिन्न प्रकार के ल्यूकीमिया, (असाध्य श्वेताणु वृद्धि) हाज़किन्ज डिजीज़ (ग्रन्थिक ज्वर) फेटल अनीमियाज–कलीज़ अनीमिया तथा मार्बल बौन डिजीज़ (विभिन्न असाध्य पांडु रोग) इत्यादि। उस देश के भविष्य का क्या बनेगा जिसके सर्वोच्च स्वास्थ्य अधिकारी को धोका देकर उससे इस प्रकार का दावा कराया जा सकता है। मैं यह विश्वास करना नहीं चाहता कि राजकुमारी जी को सत्य तो ज्ञात था परन्तु उन्होंने जान बूझ कर ऐसा वक्तव्य दिया। यह उनकी इमानदारी पर कड़ी चोट होगी। परन्तु मैं यह भी विश्वास करना नहीं चाहता कि जो डाक्टर उन्हें घेरे रहते हैं उन्होंने यह असत्य उनके मन में जमा दिया। ऐसा मानना उनकी बुद्धि पर कड़ा आक्षेप करना होगा।

स्वास्थ्य विभाग प्राचीन पंजरों का अजायबघर

मेरा विश्वास तो यह है कि उनका हृदय बुरा नहीं और वे बुरा करना भी नहीं चाहतीं परन्तु वह आशुविश्वासकारी हैं और उनकी इस मानसिक निर्बलता का लाभ वह ऐलोपैथ उठाते हैं जिनकी चालाकी और खुशामद डाक्टरी संसार में भी प्रसिद्ध हो चुकी है। यद्यपि वे आयुर्वेद पर यह निरन्तर आक्षेप करती रहती हैं कि यह आधुनिक नहीं है उन्होंने अपने विभाग को एक पुराने पंजरों के अजायबघर में परिवर्तित कर लिया है जिस में ऐसे व्यक्ति भरे हुए हैं जिन्हें कभी का रिटायर हो जाना चाहिए था। परन्तु उनका राजकुमारी जी पर कुछ ऐसा प्रभाव है कि केवल जनता, समाचार पत्र, और डाक्टरी सम्प्रदाय ही नहीं परन्तु पब्लिक सर्विस कमीशन का विरोध करके भी वह उनके कार्यकाल की वृद्धि करती ही जाती हैं। उन्हीं की आंखों से वे देखती हैं उन्हीं के कानों से सुनती हैं उन्हीं के मुख से बोलती हैं उन्हीं की कलम से लिखती हैं। मैं तो ईश्वर से प्रार्थना करता हूं और आशा करता हूं कि यह भ्रान्ति मात्र ही हो। परन्तु इस विश्वास का दूसरा विकल्प कि

जिस प्रकार के वक्तव्य ऊपर दिये गए है वे उनके अपनी ही वुद्धि की उपज हैं और भी अधिक भयंकर होगा। मैं तो पहले ही विकल्प को पसन्द करूंगा। और यह आशा करूंगा कि उन्हें अच्छे सलाहकार मिलें। मेरे विश्वास का समर्थन एक सर्वथा स्वतन्त्र विदेशी स्रोत से भी हुआ है। डाक्टर मेरी स्टोप्स जिसका नाम आज संसार भर में फैला हुआ है, ने भी राजकुमारी जी की शीघ्र बातों में आजाने की आदत के सम्बन्ध में निम्न शब्द कहे हैं– "राजकुमारी अमृतकौर ऐसी भोली हैं कि निरापद समय जैसे झूठे आन्दोलन पर भी उन्हें विश्वास आगया....... मैं विस्मित हूं कि पंडित नेहरू को इतनी बुरी सलाह मिली कि उन्होंने अमृतकौर को यह पद दिया क्योंकि जिस चाल पर वह चल रही हैं वह भारतवर्ष के लिये सक्रिय रूप से घातक है ......जो हानि अमृतकौर भारतवर्ष को पहुंचायेंगी उसका ज्ञान नेहरू को उस समय होगा जब प्रतिकार के लिये अत्यधिक विलम्ब हो चुकेगा।" (करेन्ट, जनवरी १३, १९५४, से उद्धृत)।

तीन युग, क्रूरता–धूर्त्तता–नीचता

डाक्टर मेरी स्टोप्स को राजकुमारीजी की कृतियों पर इसलिये विस्मय हुआ कि उन्हें यह ज्ञात नहीं कि उनके पूर्वजों का इतिहास भी भोलेपन का ही प्रतीक है जिनकी अवसरानुकूलता इसी से स्पष्ट होती है कि जब सिक्खों ने पंजाब पर विजय पायी तो उन्होंने हिन्दू धर्म त्याग कर सिक्ख धर्म स्वीकार कर लिया। जब अंग्रेज़ों ने उस प्रान्त पर विजय पायी तो उन्होंने सिक्ख धर्म त्याग कर इसाई धर्म स्वीकार कर लिया। राजकुमारी जी गांधी जी के साथ राष्ट्रीयता और आयुर्वेद की भक्त थीं। श्री नेहरू के साथ वे अन्तर्राष्ट्रीयता और ऐलोपैथी की भक्त हैं। इसलिये इसमें कोई विस्मय की बात नहीं कि उनका बनारस का भाषण नागपुर कांग्रेस के आयुर्वेद सम्बन्धी प्रस्ताव का पूरा उलट है। उस समय हमें पक्षपात का वचन मिला था अब हमें न्याय भी प्राप्त नहीं। मैं फिर कहूंगा कि आयुर्वेद को नष्ट करने का प्रयत्न जो मुग़ल राज्य में क्रूरता से किया गया और वृटिश राज्य में धूर्तता से वह इस समय नीचता से किया जा रहा है।

ब्रिटिश मार्का सत्य

एक अंग्रेज़ी पुस्तक जिसका नाम "इण्डिया इन पिक्चर्ज़" था और जिसे, २५ वर्ष के लगभग हुए भारतवर्ष में बेचने के लिये भेजा गया था और जो उस समय चित्रों के प्रेमियों के पुस्तकालयों में प्रायः देखने में आती थी, में एक चित्र था जिसमें एक पठान सड़क के किनारे वैठा हुआ था। उसके सामने एक कपड़ा बिछा हुआ था जिस पर कुछ मनके और कुछ जड़ी बूटियां पड़ी हुई थीं। उसके चारों तरफ़ कुछ रस्ते चलने वाले लोग एकत्रित हुए खड़े थे। चित्र का शीर्षक था "एक आयुर्वेदिक चिकित्सक जनता के सामने अपने सौदे का प्रदर्शन कर रहा है।" अब समय बदल गया है। वह विशाल अंग्रेजी कम्पनी जिसने इस पुस्तक के

भारत में विक्रय कराने में विशेष सहायता दी थी अब एक भारतीय कम्पनी बन गयी है। उसके एक प्रकाशन ने जो कि पूर्वीय संसार का अग्रणी समाचार पत्र समझा जाता है उस आयुर्वेद हानि का प्रतिकार भी उदारता से किया है जो उसके पूर्वाधिकारियों ने की थी। परन्तु बुद्धिस्तर, शिक्षास्तर और धार्मिक स्तर तीनों की दृष्टि से राजकुमारी जी अभी उसी पठान के पीछे खड़ी हैं और आयुर्वेद के महान् विज्ञान को उन्हीं जड़ी बूटियों और मनकों द्वारा देख रही हैं जिनके द्वारा अंग्रेज़ अपनी सांस्कृतिक उपज को आयुर्वेद दिखाना पसन्द करते थे।

अन्य छुट भैये

आयुर्वेद के विरुद्ध जनता के अज्ञान का अनुचित लाभ उठाने में राजकुमारी जी की सहायता कुछ दूसरे तत्व भी करते हैं। इस समय बम्बई में नागरिक प्रदर्शनी के नाम से एक प्रदर्शनी खुली हुयी है इसमें जहां दूसरे व्यापारियों ने दुकाने ली हैं वहां एक दुकान स्थानीय किंग एडवर्ड मैडिकल हास्पिटल ने भी ली है। एक ऐलोपैथिक विद्यार्थी इस दुकान में खड़ा रहता है। वह लोगों को बुलाकर यह बतलाता है कि ऐलोपैथिक चिकित्सा लेने में उन्हें कितना अधिक लाभ है। माल बेचने की एक घृणित प्रथा अपने पूर्ण शिखर पर तब तक नहीं पहुँच सकती थी जब तक कि साथ में यह भी न बताया जाय कि वैद्य अयोग्य हैं। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये इस दुकान में एक चित्र लगाया गया है जिसमें एक लम्बी दाढ़ी वाला आदमी केवल रोगियों की नाड़ी देख रहा है परन्तु उसके पास ऐसे कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं जैसे कि इस तमाशे के दूसरी ओर ऐलोपैथिक विभाग में पड़े हैं। बुद्धिमानों के लिये यह चित्र विशेषतया मनोरंजक और सूचनाप्रद है क्योंकि इसमें वह पतन और अज्ञान पूर्ण घोरता से विद्यमान हैं जिन्होंने हमारे देश के कुछ व्यक्तियों की बुद्धि और आत्मा को विशेष रूप से ग्रसित किया है। कल्पना कीजिये कि सुश्रुत (जो कि चित्र के दाढ़ी वाले चिकित्सक द्वारा चित्रित किया गया है) का जन्म भारतवर्ष में न होकर इंग्लैंड में होता और यह प्रदर्शनी भी इंग्लैंड में होती और वहां ऐसा चित्र बनता तो उस चित्र में और इस भारतीय चित्र में निम्नलिखित भेद होते:—चिकित्सक के मुंह पर दाढ़ी मूंछ न होकर वह बिल्कुल साफ़ होता क्योंकि वह सुश्रुत एक सर्जन था। सुश्रुत के यह प्रसिद्ध शब्द की चिकित्सा कार्य में प्रवेश करने से पहले दाढ़ी मूंछ बिल्कुल साफ़ होनी चाहिएं, नख कटे हुए होने चाहिएं और वस्त्र श्वेत होने चाहिएं राष्ट्रीय गर्व के साथ इस चित्र के नीचे लिखे जाते। यह भी लिखा जाता कि विश्व के इतिहास में यह पहला सर्जन था जिसने शवच्छेदन की प्रथा को नियमित रूप से प्रचलित किया था। उसके १२५ शल्य यन्त्र जो कि परम-उपयोगी थे पुनः निर्मित किये जाते और वे उस चित्र में अवश्य दिखाये जाते जिससे कि देश यह गर्व कर सकता कि जब शेष संसार जंगलीपन के अन्धेरे में डूबा हुआ था उस समय सुश्रुत के देश ने शल्य-चिकित्सा में विस्मयजनक उन्नति कर ली थी। चित्र में यह दिखाने

की बजाय कि सुश्रुत केवल नाड़ी पकड़े ही खड़ा है यह स्पष्ट किया जाता कि आज से सहस्रों वर्ष पहले इस व्यक्ति ने यह स्पष्ट कह दिया था कि केवल नाड़ी देखना ही रोग विनिश्चय का एक मात्र साधन नहीं है। यह भी स्पष्ट किया जाता कि सुश्रुत के काल के तीन हज़ार वर्ष पश्चात् प्लास्टिक सर्जरी पर (संधान शल्य क्रिया पर) जो पुस्तकें लिखी गयी हैं वे आज भी शल्य विज्ञान के इस अंश को सुश्रुत के देश के विज्ञान नाम से वर्णित करती हैं।

स्वर्गवासी सम्राट् के भारतवासी सैनिक

मैं इस विषय को और अधिक नहीं बढ़ाऊंगा। मेला आदि उत्सवों पर अपनी दुकानदारी करना और प्रदर्शनी के स्थल पर रोगी बटोरने का प्रयत्न करना वास्तविक विज्ञान और विद्वता के मार्ग से भिन्न है। किंग एडवर्ड चिरकाल हुआ इस संसार से विदा हो गये परन्तु किंग एडवर्ड मैडिकल मैमोरियल बड़ी शूरवीरता से असत्य-प्रसार के उस कार्य को जारी रखने में संलग्न है जिसका सम्राट् के देशवासियों ने कई शताब्दियों पूर्व भारतवर्ष में सूत्रपात किया था।

विचारणीय प्रश्न

मैंने उपर्युक्त समालोचना भारत की स्वास्थ्य मंत्रिणी के प्रति किसी द्वेष भाव के कारण नहीं की। मेरी यह तीव्र इच्छा है कि उन्हें सत्य का ज्ञान हो जाय। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि उन्हें सत्य-मार्ग से भ्रान्त कर दिया गया है। यदि वे उस आत्मनिरीक्षण और सत्य, जिसका वास्ता उन्होंने अपने समालोचकों को दिया है एक अंश में भी पालन करें तो उनके सामने एक स्पष्ट और कृतिसाध्य पथ विद्यमान है। उस पथ पर पहुंचने के लिए कुछ विशिष्ट प्रश्नों के सच्चे उत्तर देने का प्रयत्न करना मात्र पर्याप्त है। ऐसा करने में उन्हें सबसे पहले यह ज्ञान हो जाने की आवश्यकता है कि आयुर्वेद के सम्बन्ध में जो वक्तृतायें और कार्य उन द्वारा किये गये हैं उनकी एक विशिष्टता यह रही है कि किसी भी नीति का प्रयोग करके इन प्रश्नों का सामना न किया जाय। आज भारतवर्ष को स्वतन्त्रता मिले ७ वर्ष हो चुकने के पश्चात् भी आयुर्वेदिक समस्यायें बुरी तरह उलझी पड़ी हैं। ऐसा कभी न होता यदि जानबूझ कर इन प्रश्नों से भागने का प्रयत्न निरन्तर जारी न रहता। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन प्रश्नों के उत्तर स्वार्थमय ऐलोपैथ अथवा उनके आयुर्वेदिक अनुयायियों द्वारा एकत्रित नहीं होने चाहिएं। चिरकाल से आयुर्वेद का प्रातिनिध्य संदिग्ध भावना और विद्वता वाले ऐलोपैथ अथवा उनकी कठपुतलियों द्वारा करवाया जा रहा है। इनमें कुछ प्रश्न तो ऐसे हैं कि उनकी जांच तभी ठीक हो सकती है यदि विभिन्न चिकित्सा-प्रणालियों के प्रतिनिधियों के साथ-साथ जनता के कुछ सुजागृत प्रतिनिधि जैसे कि राजनीतिज्ञ, शासक, न्यायाधीश इत्यादि भी सम्मिलित हों।

भारतीय स्वास्थ्य समस्या की कुंजी इन्हीं प्रश्नों में निहित

भारतवर्ष में प्रचलित आयुर्वेद, ऐलोपैथी, यूनानी, होमियोपैथी और नैचुरोपैथी इन पांच चिकित्सा प्रणालियों में से क्या कोई एक प्रणाली ऐसी है जो अन्य चारों को पूर्णतया आत्मसात कर सके ?

क्या यह सत्य है कि वास्तव में आयुर्वेद और यूनानी में केवल लिपि का ही भेद है और यूनानी एक अंश में आयुर्वेद की एक शाखा है और सरलता से आयुर्वेद में अन्तर्भूत हो सकती है तथा इसे पृथक और स्वतन्त्र स्थान दिये जाने का कारण भारतवर्ष की साम्प्रदायिक रक्षा की नीति है न कि वैज्ञानिक उत्साहै-वृद्धि ? क्या केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग यूनानी को आयुर्वेद से पृथक् रखने में इसलिये भी दिलचस्पी रखता है कि इनके एक हो जाने से उस सिंहनाद के नष्ट हो जाने का भय है कि एक देश कई चिकित्सा प्रणालियों का समर्थन नहीं कर सकता इसलिये एक डाक्टरी का ही समर्थन होना चाहिए ?

क्या यह सत्य है कि आज से तीन हज़ार वर्ष पहले आयुर्वेद ने होमियोपैथिक सिद्धांत को स्वास्थ्य और व्याधि के विज्ञान के रूप में अपने ग्रन्थों में एक वैकल्पिक चिकित्सा मार्ग का स्थान दिया जिसके कारण होमियोपैथी सरलता से आयुर्वेद में अन्तर्भूत हो सकती है ?

क्या यह सत्य है कि आयुर्वेदिक चिकित्सा का विहार विभाग अभ्यंग स्नान तथा अन्य शारीरिक क्रियाओं से इतना पूर्ण है कि यदि वह कृत्रिम रश्मियों का प्रयोग भी स्वीकार कर लें तो आधुनिक नेचरक्योर का सम्पूर्ण क्षेत्र आयुर्वेद में अन्तर्भूत हो जाता है ?

क्या यह सत्य है कि होमियोपैथी और नेचरक्योर मनुष्य के स्वास्थ्य और व्याधि सम्बन्धी निश्शेष क्षेत्र पर पूर्ण अधिकार तब तक नहीं कर सकेंगे जब तक कि सर्जरी आदि आवश्यक चिकित्सा के अंग उनके शास्त्र से दूर रहेंगे ?

क्या यह सत्य है कि शवच्छेदन आज से तीन हज़ार वर्ष पूर्व भारतवर्ष में नियमित रूप से किया जाता था, पश्चिम (ग्रीस) में हीरोफ़ाइलस द्वारा प्रथम शवच्छेद किये जाने से भी कई शताब्दियां पूर्व ?

क्या यह सत्य है कि जैसा कि आक्सफ़ोर्ड के डाक्टर रूडाल्फ़ हर्नले ने कहा है—उस समय के वैद्यों ने शल्य और शारीर में उच्चकोटि का ज्ञान प्राप्त कर लिया था और १२५ शल्य यन्त्र निर्माण करके बड़ी शल्य क्रियायें करना आरम्भ कर दिया था तथा इस समय भी आयुर्वेदिक प्रणाली का क्षेत्र बिना किसी आयुर्वेदिक सिद्धान्त का खण्डन हुए क्रियात्मक शल्य-विज्ञान को पूर्णतया आत्मसात् कर सकता है ?

क्या यह सत्य है कि उपर्युक्त प्रश्नों द्वारा एकत्रित की गयी सूचना के प्रकाश में केवल दो विज्ञान, ऐलोपैथी और आयुर्वेद ही इस योग्य हैं जो अन्य विज्ञानों को उचित सामंजस्य के साथ आत्मसात् कर सकने का दावा कर सकें ?

क्या यह सत्य है कि ऐलोपैथी और होमियोपैथी के सिद्धान्तों में परस्पर इतना स्पष्ट और घोर विरोध है कि दोनों में से एक भी दूसरे को आत्मसात् नहीं कर सकता ?

क्या यह सत्य है कि ऐलोपैथी बहुत से ऐसे तीव्र विषैले द्रव्यों का प्रयोग करती है जिनका नेचरक्योर के साथ कभी भी सामंजस्य नहीं हो सकता और जिस सरलता और स्वाभाविकता के साथ प्राकृतिक चिकित्सा आयुर्वेद का एक अंग बन सकती है ऐलोपैथी का कभी नहीं बन सकती ?

क्या यह सत्य है कि चिकित्सा के कुछ स्पष्टतया परस्पर विरोधी मार्ग अपने अपने क्षेत्र में पूर्ण सफलता और सिद्धि प्रमाणित कर चुके हैं जिसके कारण वैकल्पिक चिकित्सा के सिद्धान्त की सत्यता मानना अनिवार्य हो जाता है ?

क्या यह सत्य है कि आयुर्वेद ही एक ऐसा विज्ञान है जिसने वैकल्पिक मार्गों, जिनमें कि होमियोपैथी के समान औषधि और ऐलोपैथी के विपरीत औषधि भी सम्मिलित हैं, की उपयोगिता का निरीक्षण, प्रतिपादन और प्रयोग किया ?

क्या यह सत्य है कि आयुर्वेद और ऐलोपैथिक चिकित्सा-प्रणालियों में सामंजस्य की असम्भवता का सिंहनाद केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग ने वर्तमान में ही निर्मित किया जिसका लक्ष्य कि चोपड़ा कमेटी की रिपोर्ट को रद्द करना था ?

क्या यह सत्य है कि इस सामंजस्य की असंभवता के सिंहनाद का उन सत्रह सरकारी और प्रान्तीय रिपोर्टों में सर्वथा अभाव है जो केन्द्र और प्रान्तों में गत तीस वर्षों में समय समय पर इन प्रश्नों की जांच के लिये बिठाई हुई समितियों द्वारा राजकुमारी जी के चोपड़ा समिति-रिपोर्ट को रद्द करने से पहले तैयार की गईं और क्या यह सत्य है कि इन जांच समितियों के सदस्य प्रायः डाक्टर या डाक्टरों के अनुयायी वैद्य थे ?

क्या यह सत्य है कि इन सभी रिपोर्टों तथा इनके अतिरिक्त बहुत से देशी और विदेशी डाक्टरों के भाषणों में इसी बात का आग्रह किया जाता था कि भारतवर्ष की चिकित्सा प्रणाली मुख्यतया आयुर्वेद बननी चाहिए और इसमें अन्य चिकित्सा प्रणालियों के उपयोगी अंशों का अन्तर्भाव होना चाहिए ?

चोपड़ा कमेटी-रिपोर्ट क्यों रद्द की गयी ?

क्या यह सत्य है कि इस रिपोर्ट को, जिसकी समिति के नौ ही सदस्य वैद्य नहीं थे और जिन्होंने समिति-निर्माण से चिरकाल पश्चात् एक ऐसे वैद्य का सहकार प्राप्त किया जो रिपोर्ट की भाषा से अपरिचित था, केवल इसलिये रद्द किया गया कि इसमें सामंजस्य के पक्ष में बहुत प्रबल और अकाट्य प्रमाणों से समर्थित सिफारिशें विद्यमान थीं ?

क्या यह सत्य है कि चोपड़ा समिति-रिपोर्ट प्रकाशित होने के पश्चात् केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग ने एक गुप्त नोट विभिन्न राज्यों की सरकारों को भेजा जिसमें चोपड़ा समिति की सिफारिशों का खण्डन करके राज्यों को भी इसका विरोध करने के लिए अनुरोध किया गया था ?

क्या यह सत्य है कि चोपड़ा कमेटी में विद्या-वयोवृद्ध चिकित्सा सामंजस्य के अग्रणी विद्वान् कैप्टन श्रीनिवास मूर्ति आइ. एम. एस. द्वारा दिये गये अकाट्य प्रमाणों पर विचार करने के स्थान पर सर्जन जनरल ने एक बहुत साधारण स्तर के एक सरकारी अधिकारी के पास पहुँच कर और उससे यह कहलवा कर कि आयुर्वेद और ऐलोपैथी में कभी सामंजस्य नहीं हो सकता यही अवैज्ञानिक और अप्रामाणिक कथन अपने गुप्त पत्र में डाल कर यह मांग की कि क्योंकि सामंजस्य का प्रश्न व्यक्तिगत समिति से ही सम्बन्ध रखता है अतएव इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं ?

क्या यह सत्य है कि चोपड़ा समिति-रिपोर्ट की सिफ़ारिशों के प्रभाव के निराकरण के लिये और उनके स्थान पर उससे उल्टी सिफ़ारिशें करने के लिये अपवित्र शीघ्रता के साथ पंडित कमेटी नाम रख कर एक दूसरी समिति का निर्माण किया गया ?

क्या यह सत्य है कि इसकी जाँच का एक विषय एक सरकारी आज्ञा थी कि यह कमेटी आयुर्वेद को ऐलोपैथी में अन्तर्भूत करने के मार्ग और साधन ढूंढ़ निकालने का प्रयत्न करे ?

क्या यह सत्य है कि यद्यपि इस समिति के कुछ सदस्य चोपड़ा कमेटी के कृतिध्वंस के नाटक के प्रधान पात्र थे तो भी वे विशाल आयुर्वेद शास्त्र को ऐलोपैथी के संकुचित क्षेत्र में समाविष्ट करने का कोई मार्ग न निकाल सके और उन्हें अपनी रिपोर्ट में यह स्वीकार करना पड़ा कि इस रीति से अन्तर्भाव सर्वथा असम्भव है ?

क्या राजकुमारी जी के लिये यह उचित है कि उच्च सरकारी स्तर पर कठिन और कुटिल परिश्रम करने पर भी जब ऐलोपैथी में आयुर्वेद का अन्तर्भाव होना असम्भव सिद्ध हुआ, यद्यपि उस लक्ष्य की पूर्ति के लिये चोपड़ा समिति-रिपोर्ट प्रमाणयुक्त वृहत् श्रम का कृतिध्वंस तक भी किया गया, तो भी वह अपने भाषणों में ऐलोपैथी में आयुर्वेद के अन्तर्भाव के लक्ष्य की रट निरन्तर लगाती रहें ?

क्या सरकार ने कभी इससे विपरीत दिशा की ओर भी सामंजस्य के लिये पग उठाने का प्रयत्न किया अर्थात् आयुर्वेद के विशाल क्षेत्र में ऐलोपैथी के उपयुक्त अंशों को सम्मिलित करने में कोई सुविधा या सहायता किसी को प्रदान की ?

क्या यह सत्य है कि केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग, जिसका अर्थ वह क्षुद्र ऐलोपैथिक दल रह गया है जो राजकुमारी जी की सब क्रियाओं का संचालन करता है, ने इस अत्यन्त महत्व-पूर्ण राष्ट्रीय और वैज्ञानिक प्रश्न पर कभी ज़रा भी ध्यान नहीं दिया ?

क्या यह सत्य है कि राजकुमारी ने अपने बनारस के भाषण में विज्ञान का लक्षण सत्य की खोज किया और क्या केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग में आयुर्वेद द्वारा भारत की आयुर्वेदेतर प्रणालियों को आत्मसात् किये जाने की सम्भावना के सम्बन्ध में सत्य की खोज सर्वथा निषिद्ध है ?

क्या यह सत्य है कि भारत के डाक्टर वैद्य सम्प्रदाय को अन्य विज्ञानों से ज्ञान प्राप्त कर विज्ञान-वृद्धि करने का उपदेश केवल तभी तक देते रहे जब तक कि वह ऐसी वृद्धि को सर्वथा असम्भव समझते रहे ?

क्या यह सत्य है कि जब प्रथम बार सामंजस्यता के प्रश्न का गम्भीरता से अध्ययन किया गया तो तब डाक्टरों को पहली बार यह ज्ञान हुआ कि आयुर्वेदिक चिकित्सा में इतनी विशालता और आयुर्वेदिक चिकित्सकों में इतनी दूरदर्शिता और विद्वता विद्यमान है कि वह अन्य चिकित्सा-प्रणालियों को आत्मसात् करने में समर्थ है ?

क्या यह सत्य है कि इस ज्ञान का उदय होते ही चिकित्सा सामंजस्य के विरोध का सूत्रपात कर दिया गया और राजकुमारी को यह कार्य सौंपा गया कि वह सरकारी क्षेत्रों के भीतर और बाहर आयुर्वेद-वृद्धि के प्रयत्न में निरन्तर बाधा डालते रहने का युद्ध आरम्भ कर दें ?

क्या यह सत्य है कि सामंजस्य की इस भयंकर सम्भावना को पहचान कर बम्बई राज्य के आयुर्वेद विभाग के ऐलौपैथिक स्वामियों ने एक विशिष्ट नीति निर्धारित कर दी कि आयुर्वेद की पाठ्य पुस्तकों में केवल वही पाठ रहें जो आज से १५० वर्ष पूर्व विद्यमान थे और १५० वर्ष से इधर की कोई कृति अथवा आविष्कार चाहे वे वैद्यों द्वारा ही क्यों न हुआ हो या ऐसी पुरानी सूचना भी जो पिता-पुत्र या गुरु-शिष्य द्वारा चली आयी हो परन्तु १५० वर्ष पहले पाठों में लिखित रूप में न पायी जाती हो वर्तमान पाठ्य ग्रन्थों में सम्मिलित न की जाय !

मैं इस प्रश्न सूची को समाप्त करता हूं। इससे स्पष्ट हो गया होगा कि आयुर्वेदिक चिकित्सकों के उन्नति के मार्ग को किस नीचता से निरुद्ध किया जाता है। इससे यह भी स्पष्ट होगा कि जहां उच्चाधिकारी एक ओर आत्मनिरीक्षण, सत्य और न्याय की दुहाई देते हैं वहां वही अधिकारी दूसरी ओर किस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक ध्वंस की किस अनौचित्य से रक्षा और समर्थन करते हैं।

आत्मनिरीक्षण

मुझे भारत सरकार की आलोचना करने में कुछ भी आनन्द नहीं आता मैं किसी ऐसे दल का सदस्य नहीं हूं जो कांग्रेस का विरोधी हो। मैं सरकार के ऐसे विरोध से घृणा करता हूं जो केवल स्वार्थ के कारण किया जाय-उदाहरणार्थ कुम्भ के अवसर पर जो प्राकृतिक दुर्घटना हुई उस पर कांग्रेस के विरोधियों ने जो अनुचित लाभ उठाना चाहा उसे मैं उचित नहीं समझता। मैं कोई असन्तुष्ट अथवा असफल व्यक्ति भी नहीं हूं। अपने देशवासियों और सह-व्यवसायियों से जितना स्नेह और सद्भाव मुझे प्राप्त हुआ है उससे किसकी आत्मा प्रसन्न और सन्तुष्ट नहीं होगी ? मैं आज या भविष्य में राजकुमारी जी या उनके उत्तराधिकारियों की किसी तुच्छ अथवा महती कृपा का इच्छुक भी नहीं हूं। इतनी धृष्टता मुझमें है कि मैं यह भी कह दूं कि वैतनिक कार्य तो दूर रहा किसी बड़ी या छोटी सरकारी अथवा सार्वजनिक समिति या संस्था की सदस्यता भी मैं तब तक स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता जब तक कि मैं स्वयं अपने को यह आश्वासन न दे लूं कि मैं कुछ ग्रहण करने के लिये नहीं बल्कि कुछ सेवा-दान करने के लिये ही एक उचित लक्ष्य की पूर्ति में सम्मिलित हो रहा हूं। मेरी यह इच्छा है कि वर्तमान सरकार योग्य बने और भी दृढ़ हो। यद्यपि आयुर्वेद की महती हानि कांग्रेस राज्य में हुई है तो भी मैं ऐसा समझता हूं कि अभी दूसरा कोई दल ऐसा सुसंगठित नहीं जो शासन की बागडोर योग्यता से संभाल ले या जिस में उच्च श्रेणी के कार्यकर्ताओं की इतनी अधिक संख्या हो। मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि यदि सरकार भारतवर्ष में आज ही आयुर्वेदिक शिक्षा का बीज नाश कर दे तो मेरे व्यक्तिगत भविष्य अथवा आजीविका पर उसका लेश मात्र भी कोई दुश्प्रभाव नहीं पड़ सकता। अंतएव मुझे इससे कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं होगा यदि राजकुमारी जी इस देश की स्वास्थ्य समस्याओं को अधिक वास्तविकतापूर्ण दृष्टिकोण से देखना आरम्भ कर दें। मैं राजकुमारी जी को यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि अपने देशवासियों का स्वास्थ्य मुझे भी उतना ही प्रिय है जितना कि उनको सम्भवतः हो सकता है। यह सम्भव है कि इन प्रश्नों पर आयुर्वेदिक सम्प्रदाय का दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण हो परन्तु ऐसे दृष्टिकोण को हटाने का एकमात्र मार्ग यही हो सकता है कि इस देश की विचित्र परिस्थितियों और साधनों के प्रकाश में इन समस्याओं का सामना किया जाय न कि यह कि वैज्ञानिक और वैद्यकीय प्रश्नों को राजनीति और विवाद के नीचे स्तर पर घसीट लिया जाय। मैं यह स्वीकार करता हूं कि नीति विशेषज्ञता में मुझे ऊंचा स्तर प्राप्त नहीं। जब रूस और अमेरिका युद्ध की तैयारी करते हैं और शान्ति की बात चीत तो मुझे विस्मय होता है। जब विरोधी देशों के राजदूत पारस्परिक मिथ्या प्रशंसा में प्रवृत्त होते हैं और जब कहने वाले और सुनने वाले सभी जानते हैं कि सर्वथा असत्य कथन किया जा रहा है तब भी मुझे विस्मय

होता है। आजकल की आवश्यकता ही यह प्रतीत होती है कि दो वाणियों से बोला जाय और उस कला में मैं निपुण नहीं। मैं एक ही वाणी से बोलता हूं और जब वह मेरे मस्तिष्क से मेरी जिह्वा तक पहुंचती है तो उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगता। यही कारण है जो मेरे वाक्य कभी-कभी कठोर समझ लिये जाते हैं। परन्तु जब मैं अपनी बात कह चुकता हूं तो उस बातके पीछे अन्य कोई कटुता छिपी नहीं रहती। मैं इस व्यवहार को अधिक उचित समझता हूं इसकी अपेक्षा कि साधु की मुस्कान और नीतिपूर्ण तथा संसदीय भाषा के पीछे छुरी छिपी हुई हो।

कभी तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आयुर्वेदिक प्रश्नों पर जिन लोगों को अन्तिम अधिकार प्राप्त है उनकी सचाई को खटाई में डालने वाली तथा सत्य प्रकट करके असमंजस में डालने वाली घटनाओं का एक विवश और एकाकी दृष्टा बनना मेरे भाग्य में ही लिखा गया है। जब बम्बई के एक प्रसिद्ध डाक्टर ने एक केन्द्रीय मन्त्री के सामने यह कहा कि जनता में वह आयुर्वेद के सम्बन्ध में कुछ भी कहें परन्तु उसके दल ने आयुर्वेद विभाग को अपने अधिकार में केवल इस लक्ष्य को ही लेकर लिया था कि वह आयुर्वेद की निरर्थकता सिद्ध कर दे तब उसके जाने के पश्चात् ही अकस्मात् मुझे ही केन्द्रीय मन्त्री के घर में पग रखने का और उनसे बात करने का अवसर क्यों मिला? इसी प्रकार एक अन्य केन्द्रीय मन्त्रीके घरमें जाने का मुझे उसी समय संयोग क्यों हुआ जबकि वह यह शिकायत कर रहे थे कि डाक और तार विभाग के कर्मचारियों का एक प्रार्थनापत्र राजकुमारी जी ने अस्वीकार कर दिया जिसमें उन्होंने यह प्रार्थना की थी कि उन्हें आयुर्वेदिक चिकित्सा कराने की आज्ञा दी जाय और उसका व्यय उसी कोष में से दिया जाय जो उनके वेतन से सरकार काटती है और जिसका व्यय उन्हें ऐलोपैथिक चिकित्सा दिलाने पर करती है? (यहां यह वर्णनीय है कि इन कार्यकर्ताओं ने एक दूसरा प्रार्थनापत्र भी पहले प्रार्थनापत्र की अस्वीकृति के पश्चात् स्वास्थ्य मन्त्रिणी को दिया। दूसरी प्रार्थना में इन्होंने प्रधान प्रमाण यह दिया कि यदि सरकार वैद्यों को रजिस्टर और सम्मानित करती है और यदि डाक और तार विभाग के कार्यकर्ताओं को आयुर्वेदिक चिकित्सा कराने का निषेध नहीं और यदि उन्हें ऐलोपैथिक चिकित्सा से वह लाभ नहीं होता जो आयुर्वेद से होता है तो उनके वेतन से कटे हुए कोष से वैद्यों के बिल उसी प्रकार क्यों नहीं चुकाये जाते जिस प्रकार की डाक्टर के चुकाये जाते हैं) राजकुमारी जी की कई वक्तृताओं में कई बार दोहराये हुए सन्देहास्पद दावे को कि जहां वह जाती हैं लोग उन्हें घेर लेते हैं और ऐलोपैथिक चिकित्सा की मांग करते हैं मुझे ही कई बार सुनने का दुर्भाग्य क्यों प्राप्त हुआ? और इन भाषणों में कोई भी वर्णन इस घटना का क्यों नहीं किया गया कि डाक्टरी चिकित्सा न करवाने और आयुर्वेदिक चिकित्सा ही मांगने वाले कार्यकर्ताओं की आग्रहपूर्ण माँग को केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग किस प्रकार दवाये बैठा है? अन्य बातें तो हुई परन्तु मेरी भूमि

भी शिमले की पहाड़ियां ही क्यों हुई जिससे कि मुझे प्रान्त के उन अनपढ़ वहमी अक्खड़ों का सम्पर्क प्राप्त हुआ जिनमें से एक बड़े सन्तोष के साथ यह वाक्य कह सकता था कि मतपत्र तो मैं स्वास्थ्य की देवी को ही डालूँगा जिससे कि उसका कोप मुझे और मेरे कुटुम्ब का नाश न कर दे और इसी प्रकार आकस्मिकता मेरे जैसे व्यक्ति को, जिसने कि अखिल भारतीय अध्यक्षता के अपने गत तीन चुनावों में एक बार भी किसी एक भी व्यक्ति से मत न मांगा हो, शिमले में एक ऐसे घर में क्यों ले गयी जिसमें कि उससे पहले ही दिन राजकुमारी स्वयं उस घर की पुत्री से जिसे कि जनसंघ राजकुमारी के विरोध में चुनाव लड़ने के लिये खड़ा कर रहा था, यह कहने गयीं थीं कि क्या तुम अपनी बड़ी बहिन के विरुद्ध खड़ी होकर चुनाव लड़ोगी ?

जीवन मार्ग के प्रत्येक कोने और मोड़ के ऊपर मुझ इस प्रकार की घटनायें देखनी पड़ीं। इन घटनाओं को देख कर जब सत्य, इमानदारी और आत्मनिरीक्षण की अपील बार-बार सुनता हूँ तो बुद्धि विचलित हो जाती है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के ड्राफ्ट पुस्तक में एक वाक्य है जिसका अभिप्राय यह है कि सरकार जिस व्यक्ति को वैद्य बनायेगी वह एक अच्छा वैद्य पहले होगा अन्य कुछ पीछे होगा। प्लानिंग कमीशन की स्वास्थ्य परिषद् की एक बैठक में जिसमें कि इसके ५४ ही सदस्य उपस्थित थे यह चर्चा उठी कि इस सम्बन्धमें भारत सरकार की नीति स्पष्ट करके ड्राफ्ट में लिख देनी चाहिए तब केवल राजकुमारी जी ने ही यह कहा कि ऐसा करने की अवश्यकता नहीं है। इस सलाह का सच्चा अर्थ एक ही हो सकता है कि भारत सरकार की ऐसी इच्छा है कि जिस व्यक्ति को वह वैद्य बना कर जनता को देना चाहती है वह वास्तव में वैद्य न हो।

अमृतकौरीय मारक गण

भारतवर्ष को आयुर्वेद की कड़ी आवश्यकता है जिस समय भोर समिति रिपोर्ट लिखी गयी थी तब इस समिति के सदस्य स्वर्गीय डाक्टर विश्वनाथ ने एक विरोधी नोट में यह चेतावनी दे दी थी कि आयुर्वेद की समस्या को जान बूझ कर दबाना भारतीय जनता की वास्तविक चिकित्सा सम्बन्धी सहायता के प्रसार में बाधा डालेगा। परन्तु भोर समिति के सेक्रेट्री डाक्टर राजा ने उसी रिपोर्ट को चिपके रहने का प्रयत्न किया है तथा राजकुमारी की कृपा से जो उनके कार्यकाल को परिवर्धित करती गयीं या उन्हें वैकल्पिक नियुक्तियां देती गयीं वह केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग को भी चिपके हुए हैं। जहां एक ओर डाक्टर राजा का यह आग्रह है कि आयुर्वेद का स्नातक भी तब तक जनता में व्यवसाय करने का अधिकारी न हो जब तक कि वह साथ में एम. बी. बी. एस. का पूरा कोर्स भी पास न कर ले तथा जिस आग्रह को राजकुमारी अपनी वक्तृताओं में निरन्तर दुहराती रहती हैं, वहां दूसरी ओर सहायक वर्ग के नाम से भारत के ग्रामों में केवल दो ही वर्ष की ट्रेनिंग देकर मैट्रिकुलेशन

पास नवयुवकों को फैलाने का प्रबन्ध किया जा रहा है। जब राजकुमारी ने इस योजना को गत वर्ष केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् की पहली बैठक में रखा तो भारतीय राज्यों के प्रचंड बहुमत ने इस चिकित्सा सम्बन्धी भयंकरता का समर्थन करने से सर्वथा इनकार कर दिया। फिर भी शनैः शनैः और साल भर के परिश्रम से उसने इस पक्ष में अपना बहुमत निर्माण किया जिसमें निर्बल और दब जाने वाले राज्यों को डराने और बहकाने से विशेष सहायता मिली। अन्ततोगत्वा इस वर्ष राजकोट में उसने यह योजना स्वीकार करा ही ली। जनता को ऐसा बताया गया है कि यह सहायक वर्ग केवल इसलिये बनाया गया है कि जो डाक्टर ग्रामों में कार्य करते हैं यह उनकी सहायता करेंगे। परन्तु यहां एक बहुत संगत प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता कि भारतीय ग्रामों में डाक्टर हैं भी या नहीं ? यदि वहाँ डाक्टर नहीं हैं तो उनको तैयार करने में कितना समय लगेगा। यदि उनको तैयार करने में अभी पचास वर्ष और लगाने हैं तो यह सहायक वर्ग किसकी सहायता के लिये तैयार किया जा रहा है ? स्पष्ट है कि इस सहायक वर्ग द्वारा आयुर्वेद के लिये जो गांवों की मांग है उसे दबाने का प्रयत्न किया जायेगा। ग्रामीणों की रक्षा करना इतना आवश्यक नहां समझा गया जितना कि ग्राम वैद्य को नष्ट करना। इस पर विचार नहीं किया गया कि इन अत्यन्त अल्पशिक्षित व्यक्तियों के हाथों में सल्फ़ोनामइड और बारबिटूरेट्स जैसी भयंकर औषधियां कितनी हानिकर सिद्ध हो सकती हैं। यह तो प्रायः निश्चित है कि यह राजकुमारी निर्मित राक्षस गांव के वैद्य को मारने में सफल न होकर गांव की जनता का नाश करने में ही सफल हो सकेंगे। क्या स्वास्थ्य मंत्रिणी के लिये यह अधिक बुद्धिमत्ता न होगी कि जो द्रव्य इन सन्दिग्ध योग्यता और भयंकर संभावना से पूर्ण उपज के ऊपर नष्ट करने का निश्चय किया गया है उसके एक अंश को गांव के वैद्यों को ही अधिक शिक्षित करने में व्यय करें ? ऐसा करने की सलाह प्लानिंग कमीशन की स्वास्थ्य परिषद् की एक मिटिंग की कार्यवाही में पहले ही से विद्यमान् है। यदि भारतवासियों की स्वास्थ्य संम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति ही सच्चा लक्ष्य है और भारत सरकार के निधि अथवा भारतीय जनता के स्वास्थ्य को हानि पहुंचा कर भी ऐलोपैथी का प्रसार करना अभिप्रेत नहीं तो इस सलाह को तुरन्त कार्य रूप में परिणत करना चाहिए।

आयुर्वेद महासम्मेलन

आदि नेताओं को श्रद्धांजलि

आयुर्वेद महासम्मेलन का जन्म हुए लगभग अर्धशताब्दी हो चुकी। इस जीवनकाल में अपने समय के उच्चतम आयुर्वेदिक विद्वानों का सहयोग और समर्थन इसे प्राप्त हुआ है। इसके आदि निर्माणकर्ताओं में से कई आज हमारे मध्य में नहीं हैं। श्री शंकरदा जी शास्त्री

पदे, श्री गंगाधर भट्ट, कविराज गणनाथ सैन, कविराज योगेन्द्रनाथ सैन, श्री लक्ष्मीनारायण स्वामी, श्री यामिनीभूषण राय, कोचीन नरेश महाराजा श्री राम वर्मा, पंडित डी. गोपालाचारलू, कविराज उमाचरण भट्टाचार्य, कविराज हाराणचन्द्र चक्रवर्ती, महामना पंडित मदनमोहन मालवीय, श्री नारायण शंकर देवशंकर, श्री गंगाधर शास्त्री गुणे, पंडित ब्रजबिहारी चतुर्वेदी तथा कविराज मणीन्द्रकुमार मुखरजी जो समय–समय पर अपने जीवन काल में महासम्मेलन के अध्यक्ष और पथप्रदर्शक रहे आज स्वर्ग से ही हम लोगों को आशीर्वाद भेज सकते हैं। इस महती संस्था के कुछ विद्या-वयोवृद्ध नींव डालने वाले आज भी जीवित हैं और संस्था के सिर पर उनका हाथ होना हमारे सौभाग्य का विषय है। श्री कृष्ण शास्त्री कवड़े, श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य, श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, कैप्टन श्रीनिवास मूर्ति, मेरे पूज्य पिता और गुरु श्री रामप्रसाद जी शर्मा, डा० लक्ष्मीपति, कविराज प्रताप सिंह, श्री गोवर्धन शर्मा छांगांणि, राजवैद्य जीवराज कालीदास शास्त्री तथा कविराज हरिरंजन मजुमदार, जिन्होंने इस एक मात्र निखिल भारतीय आयुर्वेदिक संस्था को अपनी प्रकाशप्रद अध्यक्षता से सुशोभित किया है अब भी संस्था को अपना पूर्ण समर्थन प्रदान करते हैं और इस उच्चाधिकार की बागडोर छोड़ने के अनन्तर भी आवश्यकता पड़ने पर सहायता के लिये सदा तत्पर रहते हैं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि इन सब को दीर्घ जीवन प्रदान करे जिससे ये भविष्य में भी उसी प्रकार हमारा पथ प्रदर्शन कर सकें जैसा कि भूत काल में करते आये हैं।

शासन से प्रार्थना

सरकार का ध्यान मैं इस ओर आकर्षित कराना चाहता हूँ कि डाक्टरी सम्बन्धी कोई भी निर्णय आल इण्डिया मैडिकल कौंसिल की सम्मति लिये बिना नहीं किए जाते। इसी प्रकार भारतवर्ष में आयुर्वेद महासम्मेलन के जोड़ की कोई सँस्था नहीं। एक संस्था नेशनल मैडिकल ग्रेजुएट्स एसोसिऐशन ऐसी है जिसे एक पृथक निखिल भारतीय संस्था कहा जा सकता है परन्तु उसका जन्म हुए बहुत समय व्यतीत नहीं हुआ और वह सामान्य वैद्य समाज का प्रातिनिध्य न करके वैद्यों के एक विशिष्ट समूह की प्रतिनिधि संस्था है। हमारा सम्बन्ध इस संस्था से भी अत्यन्त स्नेहमय है हमारे बहुत से सम्मिलित सदस्य हैं और ऐसे प्रधान भी हैं जो दोनों संस्थाओं के अध्यक्ष रह चुके हैं जैसे कि कैप्टन श्री निवास मूर्ति। हमें इसमें भी पूर्ण प्रसन्नता होगी कि सरकार की आयुर्वेद सम्बन्धी भावी नीति के निर्माण में इस संस्था की सम्मति को भी ग्रहण किया जाय।

हम लम्बे दावे नहीं करते

हमारा यह दावा नहीं कि आयुर्वेद इतना पूर्ण है कि इसमें उन्नति के लिए स्थान नहीं। चरक ने कहा है कि चिकित्सा शास्त्र कभी सम्पूर्ण नहीं हो सकता। उसने यह भी कहा है कि सम्पूर्ण संसार बुद्धिमानों के लिए गुरु है और मूर्खों के लिए शत्रु है। अतएव जो भी हितकर आयुवर्धक और स्वास्थ्यप्रद भाव हो उसे शत्रु से भी ग्रहण करना चाहिए। परन्तु जैसा कि रक्तचाप में सर्पगन्धा और फिरंग रोग मे सोमल विष के प्रयोग इत्यादि स्पष्ट करते हैं आयुर्वेद में सर्वथा गतिरोध नहीं हुआ और इसकी भावग्राह्यता अब भी अन्य सम्पूर्ण चिकित्सा प्रणालियों की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है। मेरा यह विश्वास है कि इस विज्ञान और इस जाति का भला इसी में है कि आयुर्वेद शिक्षा-दीक्षा की भावी योजना और उसका संचालन तुरन्त वैद्य समाज को सौंप दिया जाय। १५ वर्ष से जो आश्वासन मैं देता आया हूँ कि शुद्ध आयुर्वेद से हमारा अभिप्राय निश्चल आयुर्वेद से नहीं बल्कि एक प्रगतिशील आयुर्वेद से है जो विशिष्ट आयुर्वेदिक सिद्धान्तों की नींव के ऊपर सम्पूर्ण लाभ-कारी भावों को आत्मसात् कर परिवर्धित होता जा सके। मैं यह विश्वास भी दिलाना चाहता हूँ कि चिकित्सा की जिन शाखाओं में पाश्चात्य प्रणाली उत्कृष्ट है उनमें वैद्य समाज को डाक्टरों से सहायता लेने में तनिक भी विलम्ब नहीं होगा। यदि आयुर्वेद क्षेत्र में असहानुभूतिपूर्ण और रुकावट डालने वाले डाक्टरों के हाथ से सत्ता लेकर उत्सुक और प्रगतिशील आयुर्वेदिक चिकित्सकों के हाथ में न पहुँचा दी गयी तो आयुर्वेदिक समस्या को सुलझानेके सम्पूर्ण सरकारी प्रयत्न उसी प्रकार असफल होते रहेंगें जैसे कि गत १५ वर्षों में होते रहे हैं।

आभार प्रदर्शन

• अन्त में उस महान् और हृदयस्पर्शी समर्थन के लिये जो मेरे और आयुर्वेद महा-सम्मेलन के सम्बन्ध के काल में आप मुझे प्रदान करते रहे हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। लगभग सोलह वर्ष से महासम्मेलन की नीति-संचालन करने के उत्तरदायित्व का भार मेरे कन्धों पर रहा है। इस कार्यकाल में कितना विश्वास और स्नेह मुझे प्राप्त हुआ उसका अनुमान इसी से लग सकता है कि महासम्मेलन के सभापतित्व के मेरे प्रथम चुनाव को छोड़ कर अपने गत तीन चुनावों में मुझे एक वोट भी कभी किसी से मांगना नहीं पड़ा केवल अपना नाम वापिस न लेनेका अर्थ ही मेरे लिये इस उच्चपद की प्राप्ति होता रहा। मैं आज आपको यह सूचित करना चाहता हूँ कि क्रमशः मेरे लिये यह कठिन होता जाता है कि मैं इस विशाल और बढ़ती हुई संस्था का कार्य उसी शक्ति और सामर्थ्य से करता जा सकूँ जैसा कि पंजाबके स्वास्थ्यप्रद जलवायुमें रह कर मैं कर सकता था। मेरी अब यह इच्छा है कि आगामी वर्ष के लिये आप किसी अधिक योग्य और सशक्त कार्यकर्ता की खोज में रहें।

मेरी सेवायें तो सदा आपको प्राप्त रहेंगी ही। यह देखते हुए कि गत वर्षों में आपने मुझे कितना सौजन्य प्रदान किया और इस वर्ष कितने सहयोग की मुझे आशा है यह मेरा कर्तव्य बन जाता है कि अध्यक्ष न होते हुए भी अपनी सेवाओं पर सदा ही आपका अधिकार मानता रहूँ।

प्रस्ताव

(पृष्ठ १५६ का शेष)

सम्बन्धी कार्यों में विश्वविद्यालय कार्यसमिति को परामर्श देने के लिये आयुर्वेद जगत के निम्नलिखित प्रसिद्ध विद्वानों की एक आयुर्वेद शास्त्रीय परामर्श समिति बनाई जावे।

१. श्री वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य, बम्बई। २. कविराज उपेन्द्रनाथदास, देहली। ३. वैद्य श्री घनानन्द पन्त, देहली। ४. वैद्य श्री मणिराम शर्मा, रतनगढ। श्री स्वामी जयरामदास जी, जयपुर। ६. श्री नित्यानन्द सारस्वत, पिलानी। ७. श्री डा० ए० लक्ष्मी पति, मद्रास। ८. कैप्टन श्री जी० श्रीनिवास मूर्ति, मद्रास। ९. वैद्यरत्न श्री पं० रामप्रसाद शर्मा, पटियाला। १०. श्री डी०एन० बनर्जी, कलकत्ता। ११. श्री हरिनारायण चतुर्वेदी, पटना। १२. श्री बलदेव प्रसाद, बनारस। १३. श्री कालिकाप्रसाद मिश्र, सीतामढ़ी। १४. श्री वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर। १५. श्री विद्यापीठाध्यक्ष। १६. श्री महासम्मेलनाध्यक्ष।

इसके संयोजक श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा होंगे।

समिति को अपने में आवश्यकतानुसार और सदस्य सम्मिलित करने का अधिकार दिया गया।

प्रस्ताव सं० ९

निश्चय हुआ कि आयुर्वेद विश्वविद्यालय का शिलान्यास आदरणीय श्री डा० राजेन्द्रप्रसाद जी द्वारा कराया जाय और इस सम्बन्ध में श्री विद्यापीठमंत्री राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन जी के सहयोग से श्री राष्ट्रपति जी की सुविधानुसार शिलान्यास का समय निश्चय करायें।

प्रस्ताव सं० १०

१. निश्चय हुआ कि विद्यापीठ कार्यालय के ऋषिकेश परिवर्तित किये जाने के कारण नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के चालू बैंक हिसाब जो इस समय सैंट्रल बैंक ऑफ इण्डिया तथा पंजाब नेशनल बैंक की दिल्ली शाखाओं में चल रहे हैं उन्हें वहाँ बन्द कर दिया जाय।

२. निश्चय हुआ कि नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के नाम नवीन चालू तथा बचत बैंक हिसाब पंजाब नेशनल बैंक हरिद्वार तथा नेशनल बैंक ऑफ लाहौर, ऋषिकेश में खुलवा लिये जांय और उनका संचालन श्री पं० श्रीदत्त शर्मा, विद्यापीठ मंत्री, निम्नलिखित महानुभावों १. श्री स्वामी दयानिधि जी, ऋषिकेश, उपाध्यक्ष विद्यापीठ, २. श्री पं० विष्णुदत्त शास्त्री, कोषाध्यक्ष, तथा ३. श्री पं० सागरदत्त शर्मा, हरिद्वार, सदस्य विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति में से किसी एक के साथ हस्ताक्षर करके करेंगे।

३. निश्चय हुआ कि सुविधा की दृष्टि से नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ का एक हिसाब श्री बाबा कालीकमली वाला पंचयात क्षेत्र, ऋषिकेश, जो कि ऋषिकेश में गवर्नमैंट म्युनिस्पिल्टी तथा पोस्ट आफिस का भी बैंकर है, के पास खोल दिया जाय और उसका संचालन श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा, विद्यापीठ मंत्री, द्वारा किया जाय।

पदाधिकारी-गण

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के निर्वाचित पदाधिकारियों की नामावलि :—

सभापति—राजवैद्य श्री नन्दकिशोर जी, शास्त्री, जयपुर।

उप सभापति—श्री स्वामी दयानिधि जी, ऋषिकेश।

" श्री नटराज शास्त्री, त्रिचनापल्ली।

प्रधान मंत्री—रा० ब० श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा, ऋषिकेश।

सहायक मंत्री—श्री पं० बालकराम जी शुक्ल, ऋषिकेश।

कोषाध्यक्ष—पं० विष्णुदत्त शास्त्री, ऋषिकेश।

नि. भा. आयुर्वेद विद्यापीठ का सन् १९५३-५४ के लिए स्वीकृत आनुमानिक आय-व्यय पत्र

आय		व्यय	
आयुर्वेदाचार्य परीक्षा शुल्क	५४००-०-०	वेतन व्यय	९०००-०-०
वैद्याचार्य "	१०००-०-०	मुद्रण तथा लेखन सामग्री	२५००-०-०
आयुर्वेद विशारद "	५०००-०-०	डाक तथा तार व्यय	१५००-०-०
वैद्य विशारद "	२८००-०-०	केन्द्र तथा परीक्षण व्यय	१५००-०-०
आयुर्वेद भिषक् "	७०००-०-०	रेलवे पारसल व्यय	१००-०-०
प्रजावैद्य "	१०००-०-०	यातायात व्यय	१००-०-०
रजिस्ट्रेशन शुल्क	४४००-०-०	यात्रा व्यय	१०००-०-०
विलम्ब शुल्क	७००-०-०	बैंक कमीशन	२५-०-०
गुणांक शुल्क	५००-०-०	आडिट फीस	१००-०-०
उपप्रमाणपत्र तथा प्रमाणपत्र प्रतिलिपि शुल्क	२००-०-०	कानूनी व्यय	१००-०-०
		कर्मचारी रक्षाकोष	५००-०-०
सम्बद्धताशुल्क	४५०-०-०	किराया कार्यालय	६००-०-०
व्याज	२००-०-०	जल विद्युतादि व्यय	२५-०-०
विद्यापीठीय प्रकाशन पर लाभ	५००-०-०	उपकरण पर घटती	२००-०-०
विक्रीय पुस्तक विभाग पर लाभ	५००-०-०	मिश्रित व्यय	२५०-०-०
मिश्रित आय	३५०-०-०	कार्यालय परिवर्तन व्यय	५००-०-०
	३००००-०-०	विश्वविद्यालय-ऋषिकेश की स्थापना तथा संचालनार्थ	१००००-०-०
			२८०००-०-०
		आय की व्यय से अधिकता	२०००-०-०
			३००००-०-०

विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के लिए ५० निर्वाचित सदस्यों की नामावलि

१. वैद्य श्री मनोहरलाल जी, देहली।
२. वैद्यरत्न परमानन्द जी, देहली।
३. वैद्य श्री घनानन्द जी पन्त, देहली।
४. वैद्य श्री मोहनलाल शास्त्री, देहली।
५. श्री रामस्वरूप चक्रवर्ती, देहली।
६. श्री बालकराम शुल्क, ऋषिकेश।
७. श्री भगवानदास पाण्डेय, कनखल।
८. श्री पारसदास जैन, कनखल।
९. श्री भुवनचन्द्र जोशी, कनखल।
१०. श्री रामप्रकाश स्वामी, कनखल।
११. श्री विष्णुदत्त शास्त्री, ऋषिकेश।
१२. श्री धर्मस्वरूप रतूड़ी, देहरादून।
१३. श्री केशवदेव शर्मा, भिवानी।
१४. श्री पुरुषोत्तमदत्त गिरधर, भिवानी।
१५. श्री जानकीनाथ धार, श्रीनगर।
१६. श्री देवराज शास्त्री, अमृतसर।
१७. श्री पं० नानकचन्द, देहली।
१८. श्री स्वामी चेतनानन्द, देहली।
१९. श्री बलदेव प्रसाद, बनारस।
२०. श्री सागरदत्त, हरिद्वार।
२१. श्री कालिकाप्रसाद, बनारस।
२२. श्री नित्यानन्द सारस्वत, पिलानी।
२३. श्री गणेशदत्त शास्त्री, मेरठ।
२४. श्री मणिराम शर्मा, रतनगढ़।
२५. श्री हनुमत्प्रसाद शास्त्री, रामगढ़।
२६. श्री जयरामदास स्वामी, जयपुर।
२७. श्री अम्बालाल शास्त्री, अजमेर।
२८. श्री भीकाजी विनायक डेग्वेकर, जयपुर।
२९. श्री वी०जे० पण्डया, बम्बई।
३०. श्री श्रीराम शर्मा, बम्बई।
३१. श्री लक्ष्मीशंकर रामकृष्ण शास्त्री, अहमदाबाद।
३२. श्री हरिनारायण चतुर्वेदी, पटना।
३३. श्री रामदेव ओझा, मुजफ्फरपुर।
३४. श्री द० अ० हलसीकर, हुबली।
३५. श्री एम० वेंकट शास्त्री, बेजवाड़ा।
३६. श्री वी०बी० नटराज शास्त्री, बेजवाड़ा।
३७. श्री वाई० पार्थनारायण पंडित, बंगलौर।
३८. श्री परमेश्वरम पिल्ले, त्रिवेन्द्रम।
३९. श्री गयाप्रसाद शास्त्री, हैदराबाद।
४०. श्री एम० विश्वेश्वर शास्त्री, मद्रास।
४१. श्री शचीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, कलकत्ता।
४२. श्री गुलराज शर्मा, नागपुर।
४३. श्री शिवकरण छांगाणी, नागपुर।
४४. श्री पी०डी० मुले, अमरावती।
४५. श्री पं० पुरुषोत्तमदत्त, नवांशहर, जालन्धर।
४६. श्री केशवप्रसाद आत्रेय, देहली।
४७. श्री रामप्यारे अवस्थी, कानपुर।
४८. श्री रमेशचन्द्र, अजमेर।
४९. श्री पी०वी० ईश्वर वारियार, कालीकट।
५०. श्री बद्रीविशाल त्रिपाठी, कानपुर।

(शेष पृष्ठ २०० पर)

कोट्टक्कल् इति प्रदेशे सम्मिलितायाः अखिलभारतायुर्वेदपरिषदः
एकोनचत्वारिंशत्तमे योगे स्वागतसंघाध्यक्षेणार्यवैद्येन

पि. वि. ईश्वरवारियर् महाशयेन कृतं

स्वागत प्रभाषणम्

ऊर्णोष्णीषावतंसं मृदुधवलपटीवारवाणोत्तरीयम्
रूप्योद्यद्वेत्रदण्डं स्फटिकमयपिधानावृतामीलिताक्षम् ।
काले काले करांभोरुहमुकुलसमाराद्धधन्वन्तरिं तं
ध्यायाम्याचार्यवर्यं हृदि ललितकलाकोविदं वैद्यरत्नम् ॥

अभिवन्द्यवैद्यमहाशयाः, पूज्याः सभासदः,

आयुर्वेदास्याभ्युदयाय प्रचारणाय च विविधान् क्लेशानविगणय्यात्र सम्मिलितेभ्यः सर्वेभ्यो भवद्भ्यः सविनयं स्वागतं ब्रवीमि । भारतवर्षस्थविविधदेशेभ्यः समागतानां वृद्धवैद्यपंडितानां पुरतः स्थातुं महीयसा पूर्वपुण्येनैव पारयामीतिमन्ये । यत्किञ्चिदपि वक्तुमुद्यते मयिद्वित्रेभ्यो मासेभ्यः पूर्वं समापतितो दारुणः सम्भवः तरलयति मे मनः । अस्य महासम्मेलनस्य कारणभूतान् पुण्यश्लोकान् पत्नीसमेतमेव दिवंगतान् माधववारियर् महाशयाननुस्मृत्य न किञ्चिदपि वक्तुं युक्तम् । तेषां महाशयानामसान्निध्यात् संजातं वैकल्यं परिहर्तुं तदेकदेशत्वमप्यविन्दन् तत्सहप्रवर्तकोहमाज्ञप्तोस्मि अखिलकेरलायुर्वेदसमित्या । तदनुरोधेनैव भवतां पुरतस्तिष्ठामि । समस्तभारतायुर्वेदपरिषदं हिमवत्प्रान्तात् केरलमानिनीषन्तस्ते महाशयाः संवत्सराधिकं महान्तं प्रयत्नं कुर्वन्तस्तत्फले समासन्ने हतविधिना लोकान्तरं नीताः । नूनममर्त्यलोकस्थास्ते अस्मदारंभं समीक्ष्य करुणयानुगृह्णीयुरित्येव विश्वसिमि । 'अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र' इत्याप्तवचनमनुस्मृत्य कथमपि समादध्मः । किमन्यत् करणीयम् ? तयोर्दंपत्योर्नित्यशान्तिमाशास्महे ।

अथ प्रस्तुतानुसारेण केरलेषु आयुर्वेदचरित्रस्य संक्षेपतो विवरणं स्थान एवेति मन्ये । आयुर्वेदोयमशास्त्रीय इति पाश्चात्यसांप्रदायिकैः भिषग्भिरधिक्षिप्यते । अमुमेवाधिक्षेपमधिकृत्य प्रथमं चिन्तयामः । शास्त्रशब्देन सिद्धान्तसमाहारो विवक्ष्यते । सिद्धान्तशब्दार्थस्तु चरकसंहितायां तद्विद्यापरिभाषाविवरणप्रकरणे, "सिद्धान्तो नाम यः परीक्षकैर्बहुभिः परीक्ष्य हेतुभिः साधयित्वा स्थापितो निर्णयो यस्ससिद्धान्त"—इति विवृतः । अतश्चिराय परीक्ष्य निराकृत्य सर्वानपि पूर्वपक्षान् स्थापितानि तत्वान्येव सिद्धान्तदशां प्राप्नुवन्तीति व्यक्तम् । अनयैव रीत्या सुचिरपरीक्षणानन्तरमेव स्वीकृता आयुर्वेदसिद्धांताः । 'हरीतकीफलं विरेचनं; मदनफलन्तु वमनं' इत्यादीनि तत्वानि बहूनि महर्षिभिः दृष्टानि । किंतु पाश्चात्यानामेषु सिद्धांतेषु न श्रद्धा प्रत्ययो वा दृश्यते । इदानीमप्यांगलवैद्यसरणिः परीक्षणदशायामेव वर्तते । न

सिद्धान्तपदं प्राप्तवती । किंतु साधु परीक्ष्य स्वीकृताः आयुर्वेदसिद्धांताः आकल्पान्तं स्थास्यन्त्येव । सर्वथायुर्वेदसरणिः शास्त्रानुसारिणीत्येवाभिप्रैमि । सत्यप्येवमस्माभिर्न्नैकार्योलं-भावः इतः परमपि ज्ञेयानि सन्ति बहूनि तदर्थमस्माभिः प्रयतितव्यं च ।

अर्वाचीन एव काले केवलं पञ्चाशद्वर्षेभ्यः आरभ्यायुर्वेदस्य एतावान् प्रचारः सञ्जातः । पूर्वस्मिन् काले केरलेषु प्राधान्येनाष्टवैद्याभिधानाः भिषजः अन्येपि केचन शास्त्रानुसारेण चिकित्सायां प्रावर्तन्त । वैद्यानामत्यन्तवैरल्यात् चिकित्सार्थं तदासादनं निधानासादनमिव सुदुर्ल्लभमासीत् । सत्यपि तल्लाभे महता प्रयासेन यत्र कुत्राप्यन्विष्य यावदौषधानि सञ्चीयन्ते तावद्रोगिणां कथा कावास्यादित्यनुमेयम् । एवं सतिवस्तुतत्वे पि०एस० वारियर् महाशयाः कुट्टञ्चेरि अप्फन् मूस्सत् इति प्रसिद्धादष्टाङ्गहृदयादीनि शास्त्राणि साकल्येनाधीत्य, टी०एम० वर्गीस् महाशयादांगलवैद्यविद्यामभ्यासाद्यख्याताः अभवन् । अध्ययन-काल एव आदुर्वेदपठनस्य क्लेशसाध्यत्वमपाकतुं वारियर् महाशयाः मनसा प्रतिजज्ञिरे । तत्प्रतिज्ञायाः परिणतं फलमद्य दृश्यते केरलेष्विदंपूर्वतया समारब्धा सप्तत्रिंशद्वायनी वैद्य-पाठशालैषा । तेषामेव प्रयत्नफलमियमार्यवैद्यशाला च । अस्याः सुवर्णजूबिलीमहोत्सवोप्यद्यैव निर्वृत्त इति महदस्माकमभिमानास्पदम् । कषायादीनां चिरकालमदोषेण परिरक्षणोपायोपि तैरेवोपज्ञातः । प्रसंगवशादेतावदुपन्यस्तम् ।

अथ केरलेषु वर्तमानायामायुर्वेदसरण्यामितरदेशेष्वविद्यमानाः काश्चन सविशेषताः सन्ति । तासां धाराषष्टिकावमर्द्दनतैलसेकादीनां देशान्तरेष्वपि प्रचारः संपादनीयः । तदर्थं भरणाधिकारिभिः प्रयत्नः कर्तव्यः । कीदृशः कथं वा क्रियतामित्यन्ते निर्दिश्यामि ।

रोगाणां निर्मूलनमेव चिकित्साप्रयोजनम् । शोधनचिकित्सयैवतत्साध्यमित्यत्र नास्ति संशयलेशोपि । "प्रयोगः शमयेद्व्याधिं योन्यमन्यमुदीरयेत् नासौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद्योन-कोपयेत्" इत्येव चिकित्सारहस्यम् । इदानीं आंगलवैद्यैः नवीनानि बहून्यौषधानि उपज्ञातानि; प्रतिदिनमुपज्ञायन्ते च । परन्तु शमनरूपाणि तानि कदाचिद्रोगांतराणामुत्पादकान्यपि भवेयुरिति तज्ञा एव वदन्ति ।

रोगनिर्णयायाधुनातना वैद्याः,

'दोषं दूष्यं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः

सत्वं सात्म्यं तथाहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः सूक्ष्मसूक्ष्माः समीक्ष्यैषां'—

इत्यायुर्वेदानुशासनं प्रायोनानुसरन्त्येव । अत एव तेषां विषये 'न स स्खलतिजातुचित्' इत्याचार्योक्तिरपि न फलिता दृश्यते । वेदनाशमनमेव रोगिणामाद्यमिष्टम् । तत् साधयित्वैव रोगनिर्मूलनाय चिकित्सा कर्तव्या । केनचिद् वृद्धवैद्येनोक्तम्—'व्याधेस्तत्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च-कृंतनम् एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः' इति । अस्मिन् श्लोके नत्रं वैद्यत्वमितिशब्देना-न्वीय व्याधिपरिज्ञानेन वेदनाकृंतनेन वा न वैद्यस्य वैद्यत्वं किंतु आयुःप्रभुत्वेनैवेति केचन

वदन्ति। वस्तुतस्तु आयुःस्थितिर्दैवायत्तैव। तथापि वैद्योपि तत्र सहकारी भवेदित्येव तेषामाशयः।

इदानीं भरणाधिकारिणां साहाय्येन विनापि आयुर्वेदस्य महीयान् प्रचारस्संजात इत्यनेन ज्ञायत एव यादृशो जनानामस्मिन्नादरः प्रत्ययश्च भवतीति तथाप्यधुना विविधकारणैः महता धनव्ययेन चिकित्सा निर्वर्तयितव्या भवतीति दरिद्राणामेषादुरसदा संवृत्ता। एतां दुरवस्थां परिहर्तुं भरणाधिकारिभिरेषाङ्गीकृत्य साहाय्यकरणेनादरणीया। तदर्थं स्वीकर्तव्याः केचन मार्गाश्चात्रनिर्दिश्यन्ते :—

(१) तत्तद् प्रान्तेषु (District) आयुर्वेदपाठशालाः प्रतिष्ठापनीयाः। तदुपांत एव सर्वविधनवीनसामग्रीसमेता आतुरशाला औषधोद्यानं औषधनिर्माणशाला च करणीयानि। अयं निर्देशो नसद्य आदतुं शक्यः। तथापि राजकीयायुर्वेदपाठशालाभ्यः प्राप्तबिरुदानां कृते वर्तमानास्वांगलचिकित्सशालासु विभागांतरं कल्पयितुं शक्यते। तत्र च तत्तद्देशीयाः वैद्यपण्डिता नियुज्येरन्। तेषां ज्ञानकोशात् विविधान्यपूर्वौषधरहस्यानि लभ्येरन्। तैः सह तान्यपि नाष्टानि मामूवन्नित्ययं निर्देशो लोकोपकारप्रदःस्यात्।

(२) वर्तमानासु राजकीयचित्तरोगचिकित्साशालासु आयुर्वेदसंप्रदायोपि प्रयुज्येत। तदनुसारेण कतिपयेषु रोगिषु धारास्नेहपानादयः परीक्षणीयाः। तथा चेत् बहवो रोगिणः स्वस्थाः स्युरित्येव विश्वसिमि। आयुर्वेदचिकित्सया रोगिणः स्वस्थाश्चेत् तेषां स्थानेषु इतरेषां रोगिणां प्रवेशः सुकरः स्यात्। आयुर्वेदवैद्यायावत् शस्त्रक्रियानैपुण्यं प्राप्नुवन्ति तावदांगलवैद्या एव तां निर्वहेयुः, रोगनिर्णयार्थं कालदेशादिपरीक्षारूपाः पूर्वोक्तोपायाः नवीनोपकरणानि च प्रयुज्येरन्।

(३) यस्यां पाठशालायां वैद्यविद्वद्भिरङ्गीकृता पाठपद्धतिरुपयुज्यते, यत्रास्ति चिकित्सायाः औषधनिर्माणस्य शस्त्रक्रियायाश्च परिचयं लब्धुं सौकर्यं सैव पाठशाला भरणाधिकारिभिरङ्गीकार्या। तादृशविद्याशालाभ्यः प्राप्तबिरुदाः एव भिषजः अङ्गीकर्तव्याः। भिन्न भिन्न प्रविश्यासु च परस्परं बिरुदस्य साधुता स्वीकर्तव्या च।

(४) सर्वेष्वपि प्रांतेषु केन्द्रभूता काप्यौषधनिर्माणशाला प्रवर्तयितव्या। शाखाशालाभ्यः केन्द्रशालाया एव संस्कृतान्यौषधानि प्रदेयानि। तास्तस्या एवादद्युरपि। एवं चेत् भूयांसो रोगिणश्चिकित्सामासयितुं शक्नुयुः। बहूनां वेतनलाभेन जीवितयात्रानिर्वहणं सुसाधं भवेच्च।

(५) अद्यतनमद्यवर्जननियमेन आयुर्वेदवैद्यैः बहुविधाः क्लेशाः अनुभूयन्ते। सम्यक् विचिन्त्य तत्परिहारः कर्तव्यः।

(६) आयुर्वेदवैद्यानामभ्युदयाय सांप्रतं वर्तमानः सुसंघटितोपि संघः भूयोपि कार्यक्षमः कर्तव्यः।

(७) नानादेश्यभाषासु वैद्यविषयकाणि मासिकपत्राणि प्रचारणीयानि।

पूज्याः सभासदः,

एतत्सम्मेलनानुबंधि किमप्यायुर्वेदसंप्रादायानुरोधि शस्त्रौषधादिवस्तुप्रदर्शनमस्माभिरुपकल्पितम् । प्रदर्शनमिदं वैद्यविद्यार्थिनां आयुर्वेदचिकित्सकानां चोपयोगाय भवेदिति विश्वसिमि । अलं बहुना सर्वेभ्यो वः स्वागतं भूयोपि व्याहराभि । अस्य महासम्मेलनस्योद्घाटनं कर्तुं Dr. M.R. Guruswami Mudaliar महाशयाः अत्र समागताः इत्यस्माकं महदिदं प्रमोदास्पदम् । अत्र युष्माकं वासः सर्वथा सुखकरो भवेदिति यथाशक्ति संविधानान्यस्माभिः कृतानि । तथापि यत्र कुत्रापि प्रमादो दृश्येत चेत् सकरुणमस्मान् बोधयितुं अनुग्रहीतुं च प्रार्थयामि । सर्वानपि विश्वंभरः अनुगृह्लातु इति प्रार्थयन् विरमामि ।

Inaugural Address

Delivered by

Dr. A. Lakshmipathi, B.A.M.B. & C.M. Bhishagratna, Madras

At the 39th All-India Ayurved Vidyapeeth Sammelan

Kottakkal, South Malabar.

Mahaasayaah,

I am grateful to the organisers for associating me with this function today.

My first thoughts on this occasion go to Sri Arya Vaidya, Madhava Warrier, who lived a glorious life. In his untimely death our country has lost a great devoted and unostentatious worker for Ayurveda.

Old people like me form the link between the past and the present. I see that the present students of Ayurveda, particularly those belonging to Government Colleges, do not know and do not care to know the history of Ayurveda. Like the great political struggle fought by the Indian National Congress, the All India Ayurvedic Congress had to fight its own battles for the preservation of the Cultural heritage of the Nation and the great Science of Ayurveda, on the bed-rock of which, our civilisation stands. The All-India Ayurvedic Congress was started in the year 1907. Those were the days, when most of us, as young men, were inspired with intense patriotism and worked for national regeneration of India through various channels. I do not find that zeal and enthusiasm for voluntary service in the young men of today.

Although the Independence of India has been secured, Ayurveda has not come to its rightful place. The materialistic attitude due to the wrong education of our leaders and the glamour of the West due to luring advertisements of the so-called modern scientific achievements, are greatly responsible for the present apathetic attitude of some of our modern medical practitioners. They should be proud of the great heritage of valuable scientific researches of the inspired Ayurvedic savants, whose only aim was for the benefit of mankind.

Ayurveda is ancient, but it is a living science having its roots well-laid in the habits and daily life of the people of India, serving their social, economic, religious intellectual and spiritual needs. Ayurveda is not only scientific but it is also very democratic in its outlook. What I

mean by the Science of Ayurveda is not what is practised today, when the State patronage was denied for centuries, but that which is intended by the great authors.

In spite of the most recent advances, the scope of modern medicine is very limited as it depends mainly on direct perception, whereas Ayurveda considers concentrated mental effort—Tapas—and intuition as additional sources of knowledge (Gnaana). The Scope of Ayurveda is endless—Anantapaaram.

"Paadosya Viswaa Bhootaani
Tripaadasya Amritam Divi".

In fact, the whole material world which constantly changes and is perishable is only one-fourth. The other three-fourth is eternal and is beyond human conception.

Modern Medicine, as it stands today cannot even go into the study of the Aatma, which is the real dweller and director of the human body

Ayurvedic institutions should, therefore, exist until Modern Science changes its attitude towards this entity called Aatma and its influence on man's conduct in health and disease. It matters very little whether a few drugs are added or a few are removed. What is most important is man's attitude towards the aspirations or values of life for the attainment of which every human being has to strive namely, Dharma, Artha, Kama and Moksha.

A man can be most miserable with all the earthly treasures, if he does not have his senses under his control. Self-control (Indriya Nigraha), forbearance (Titeeksha), Non-violence (Ahimsa) and democracy (Sarwasaamyata) are the cardinal principles of Ayurveda. Peace in all the worlds is the motto of Ayurveda. Epidemics of wars are treated on a par with infectious diseases which can be

prevented by Dharma—righteous conduct of the leaders of the nation just as infectious diseases which can be prevented by the proper conduct of the individual. Lokahitam-benefit of the living beings is the sole object of Ayurveda.

The Tridosha Theory of Ayurveda is of great practical utility in the diagnosis and treament of diseases.

It is with a feeling of satisfaction and pardonable pride that I have placed on record here, the work of the Vidyapeetha during the last 40 years.

The All-India Ayurveda Vidyapeetha started its autonomous existence in the year 1912. The executive of the Association is elected every year on a democratic basis, every member having only one vote. The Vidyapeetha is like a University of the affiliating type. It conducts examinations in 4 grades. Acharya for Post-graduates, Visarada for Teachers and Bhishak for General Practitoners. Recently, the Vidyapeetha has started an examination for the Village Vaidyas called the Praja Vaidya Examination. In this examination, the Vaidyas will be examined not only to test their knowledge of Ayurveda, but also their training in modern advances of the healing art, such as, First Aid, to the injured and Minor Surgery, Maternity and Child Welfare, and Village Sanitation and Modern Methods of Prevention of Infectious Diseases. No one can say that the outlook of the Vidyapeetha is narrow and orthodox. The Vidyapeetha stands for Sampurna and Ashtaanga Ayurveda—the complete and eight pointed science of life.

The Vidyapeetha has 20,000 qualified Ayurvedic Physicians on its rolls throughout India. Examinations are now conducted at 66 centres. The convocations of the Vidyapeetha are held along with the annual conference of the All-India Ayurvedic Congress. Talented scholars such as Kaviraj Gananath Sen of Calcutta, Sri Swami Lakshmi Ramji Acharya of Jaipur, Jyotishchandra Saraswathi of Delhi, Pandit Hari Dutta Sastri of Lahore, Pandit D. Gopalacharlu of

Madras and Yadavji Trikamji Acharya of Bombay, were at its helm directing the policies of the Vidyapeetha.

There are now 31 affiliated Colleges and Schools training students for the examinations in addition to the numerous gurukulas imparting instruction in Ayurveda in their homes in the traditional manner.

The Vidyapeetha has now decided to start a fullfledged teaching institution called the All-India Ayurvedic University at Rishikesh with the help of the Ayurveda Seva Samiti founded by the famous Baba Kali Kambliwala at Rishikesh.

I am of opinion, that our work now lies in the direction of research in oder to dig out the valuable truths contained in Ayurvedic literature and in the vast treasures of clinical material, the custodians of which are the Village Vaidyas working in the remote villages and the old men and women who are still preserving the ancient heritage. The forests of India where the Rishis lived and worked for the benefit of mankind also provide valuable material for our Research.

Let us dedicate ourselves again and again to serve Ayurveda as there is no better charity than the gift of a comfortable life to the suffering humanity.

"Nahi Jeevita Daanaat hi
Daana Manyet Vishisyate"—Charaka

उत्तर प्रदेशीय कार्यवाहक वैद्य सम्मेलन

आवश्यक सूचना

उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन में चल रहे दीर्घकालीन विवाद को दृष्टि में रखते हुए तथा उत्तर प्रदेश में आयुर्वेद सम्बन्धी कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिये अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति ने अपने ता० १०-११-५३ के अधिवेशन में यह निश्चय किया था कि जब तक वर्तमान वैद्यसम्मेलन का विवाद समाप्त न हो जाय तब तक के लिये उत्तर प्रदेश में एक कार्यवाहक वैद्यसम्मेलन स्थापित किया जाय तथा उसके सभापति तथा प्रधानमंत्री का निर्वाचन ३ मास के भीतर-भीतर करा दिया जाय। परन्तु ३९वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के पहिले जनवरी के लिये निश्चित होने के कारण और पुन: उक्त सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष के अपनी पत्नी सहित वायुयान की दुर्घटना द्वारा स्वर्गवास हो जाने से उक्त सम्मेलन के मार्च मास के लिये निश्चित होने के कारण और इसी बीच में पूर्ण कुम्भ के महापर्व के आ जाने के और उसमें उत्तर प्रदेशीय वैद्य महानुभावों के विशेषतया कार्यग्रस्त होने के कारण चुनाव का यह कार्य ३ मास में सम्पन्न न किया जा सका। इस परिस्थिति में अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति ने इस कार्य की अवधि ३१ मई तक बढ़ा दी है।

उत्तर प्रदेशीय वैद्य महानुभावों के सहयोग की परमावश्यकता है। अब समय भी बढ़ गया है। अतएव उत्तर प्रदेश के सभी रजिस्टर्ड वैद्य बन्धुओं से प्रार्थना है कि वे शीघ्रातिशीघ्र उक्त कार्यवाहक वैद्यसम्मेलन के सदस्य बनें। सदस्यता शुल्क २) रुपये की प्राप्ति पर इस कार्यालय द्वारा सदस्यता आवेदनपत्र पूर्ति के लिए भेजा जाएगा। चुनाव की पद्धति तथा तत्सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम की घोषणा आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के अप्रैल मासीय अंक द्वारा की जायेगी जो देहली से २० अप्रैल को निकलेगी।

क्योंकि उक्त कार्यवाहक सम्मेलन किसी प्रकार से भी उत्तर प्रदेशीय वैद्यसम्मेलन, जिसके विषय में मुकद्दमा चल रहा है, से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, अतएव उसके आजीवन तथा प्रतिष्ठित सदस्य महानुभावों को भी इस कार्यवाहक सम्मेलन के शीघ्रातिशीघ्र सदस्य

बन जाना चाहिये। और उत्तर प्रदेश में आयुर्वेद के इस संगठनात्मक कार्य को बल देना चाहिये।

गुरुदत्त
निर्वाचनाध्यक्ष
वामनराव दीनानाथ, केशवप्रसाद आत्रेय
परामर्शदाता

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय,
महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक,
देहली-६

आवश्यक सूचनायें

१. ३९ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, कोट्टकल (द० मालाबार) के अवसर पर हुई आयुर्वेद महासम्मेलन स्थायी समिति तथा विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति का कार्य-विवरण, महासम्मेलन अधिवेशन सम्बन्धी विस्तृत समाचार, नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के अध्यक्ष राजवैद्य श्री पं० नन्दकिशोर जी का अभिभाषण इत्यादि आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के आगामी एप्रिल मासीय अंक में प्रकाशित किये जायेंगे।

२. नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यालय ऋषिकेश को परिवर्तित हो चुका है। अतः विद्यापीठ कार्यालय से सभी पत्र-व्यवहार भी निम्नलिखित पते पर किया जाना चाहिये—

आयुर्वेद मार्तण्ड रा० ब० श्री पं० श्रीदत्त शर्मा,
मंत्री—नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ,
आत्मविज्ञान-भवन,
ऋषिकेश, जि० देहरादून (उ०प्र०)।

३. अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन तथा पत्रिका कार्यालय देहली में पूर्व पते पर ही स्थिर रहेंगे।

1. The proceedings of the Standing Committee of the All India Ayurvedic Congress and the working Committee of the All India Ayurved Vidyapeeth held at Kottakal at the time of the 39th Session of the All India Ayurvedic Congress, detailed news of the 39th All India Ayurvedic Congress and Vidyapeetha, the presidential speech delivered by Rajvaidya Pt. Nand Kishoreji, President, All India Ayurved Vidyapeeth, at the occasions, etc., will appear in the next April issue of the Ayurved Mahasammelan Patrika.

2. The office of the All India Ayurved Vidyapeeth has been transferred to Rishikesh and all future correspondence with the Vidyapeeth office should be conducted on the following address :

Ayurved Martand R.B. Pt. Shri Duttji Sharma,
Secretary, All India Ayurved Vidyapeeth,
Atma Vigyan Bhawan,
Rishikesh, Dist. Dehradun, U.P.

3. The offices of the All India Ayurvedic Congress and Ayurved Mahasammelan Patrika will, however, remain at the present address.

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन नियमावलि

३९ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन पर संशोधित एवं स्वीकृत अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की नवीन नियमावलि प्रकाशित हो गई है। प्रति कापी का मूल्य ॥) आठ आना मात्र। डाक व्यय अतिरिक्त।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय,
महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली।

वैद्य श्री परमानन्द जी देहली यूनिवर्सिटी कोर्ट के सदस्य बने

हर्ष का विषय है कि देहली के ख्यातनामा चिकित्सक वैद्यरत्न श्री पं० परमानन्द जी देहली यूनिवर्सिटी कोर्ट के सदस्य चुने गये हैं। यह वैद्यसमाज के लिए गौरव का विषय है कि देहली जैसे उच्च विश्वविद्यालय ने एक वैद्य को यूनिवर्सिटी कोर्ट का सदस्य चुना। हम इस अवसर पर वैद्यसमाज की ओर से श्री पं० परमानन्द जी को बधाई देते हैं।

नाँगिया आर्य आयुर्वैदिक कन्या महाविद्यालय, देहली

छात्राओं का प्रवेश

सर्व साधारण की सूचनार्थ निवेदन है कि उपरोक्त विद्यालय में प्रथम वर्ष (भिषक्) की छात्राओं का प्रवेश १५ अप्रैल १९५४ से प्रारम्भ होगा, जो छात्रायें प्रवेश प्राप्त करना चाहें, वे शीघ्र आवेदन पत्र भेजें। शेष सूचना प्रास्पेक्टस से प्राप्त करें।

नांगिया आर्य आयुर्वैदिक कन्या महाविद्यालय,
आर्य समाज, बिरला लाइन, सब्जी मण्डी,
देहली।

आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना

नवम जिला वैद्यसम्मेलन इटावा के प्रस्तावानुसार आयुर्वेद शिक्षा-परिषद् ने पाञ्चाल आयुर्वेद महाविद्यालय की योजना स्वीकृत करली—जिसमें बम्बई सरकार द्वारा स्वीकृत शुद्धायुर्वेद की प्रत्यक्ष कर्माभ्यास द्वारा शिक्षा होगी और नि० भा० आ० विद्यापीठ तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की परीक्षाओं को भी प्रोत्साहन दिया जावेगा।

अभी अस्थायी रूप से जब तक विद्यालय की बिल्डिंग नहीं बनती तब तक रामनाथ जी शास्त्री के औषधालय के ऊपर की बिल्डिंग में विद्यालय चलेगा।

एक केन्द्रीय आयुर्वेद पुस्तकालय की भी स्थापना होगी जिसका आयोजन रामनाथ शास्त्री करेंगे। वैद्यों को इसमें पूरा-पूरा सहयोग देना चाहिये।

रामनाथ शास्त्री, इटावा

उत्तर प्रदेशीय आयुर्वेद बोर्ड का नया चुनाव

"बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन, उत्तर प्रदेश का नया चुनाव बहुत शीघ्र होने जा रहा है। रजिस्टर्ड वैद्यों को चाहिये कि यदि उन्होंने अपनी चिकित्सा का स्थान परिवर्तन किया हो तो शीघ्र ही रजिस्ट्रार, बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन, उत्तर प्रदेश लखनऊ को सूचित कर अपना पता सही करा लेवें। जो सज्जन रजिस्टर्ड हो चुकने के बाद चिकित्सा करना बन्द (किसी कारणवश) कर चुके हैं उन्हें भी कार्यालय को सूचित कर देना चाहिये, अन्यथा बैलेट पेपर (मतपत्र) ग़लत पते पर पहुंचने के कारण वापस होकर व्यर्थ हो सकते हैं।"

उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन—रजिस्टर्ड
वैद्यसंगठन समिति—कार्यालय
कानपुर

भारतीय संसद सदस्य श्री आर. बी. धूलेकर जी का जोधपुर में शुभागमन

जनमत प्राप्त करने की वैद्य समाज से मार्मिक अपील

भारतीय संसद सदस्य एवं झांसी आयुर्वेद यूनिवर्सिटी के संस्थापक श्री आर. बी

धूलेकर सौराष्ट्र के व्यापक दौरे में जाते हुये एक दिन के लिये जोधपुर में भी ठहरे। स्थानीय वैद्य समाज ने आपका प्रातःकाल रेल्वे स्टेशन पर स्वागत किया और फिर आपने एक प्रेस सम्मेलन में भाषण दिया जिसमें वैद्यों को जनमत प्राप्त करने की मार्मिक अपील की।

स्थानीय मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा के मंत्री के आग्रह को स्वीकार कर आपने सभा के कार्यालय में भी पधारने का अनुग्रह किया जहां स्थानीय वैद्यों की एक सभा का विशाल आयोजन आपके स्वागत समारोह में किया गया था। पुरुषार्थी आयुर्वेद मंडल ने भी आपका स्वागत किया और सायं आप राजकोट काठियावाड़ के लिये प्रस्थान कर गये।

मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारणी
सभा जोधपुर

पंचपुरी वैद्य सभा हरिद्वार—की एक अत्यावश्यक मीटिंग वैश्यकुमार सभा भवन कनखल में श्री पं० शिवशंकर जी, मालिक हिमालय डिपो, की अध्यक्षता में ता० १७-२-५४ को हुई, जिसमें निम्न लिखित प्रस्ताव पास किया गया।

प्रस्ताव

यह सभा पंचपुरी के प्रसिद्ध वैद्य श्री भगवन्तराय जी जैन, अध्यक्ष देशरक्षक औषधालय, कनखल, के आकस्मिक देहावसान पर हार्दिक दुःख प्रगट करती है तथा दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करती है व उनके परिवार के प्रति समवेदना प्रगट करती है।

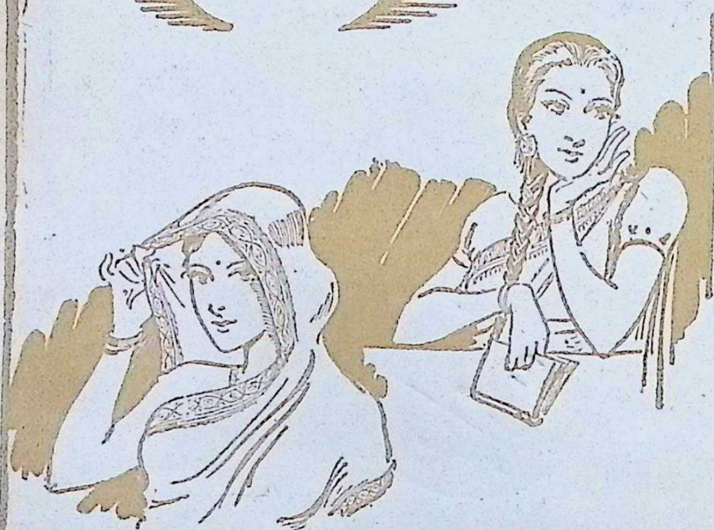
मदनमोहन शर्मा वैद्य
प्रधानमंत्री

(पृष्ठ १८७ का शेष)

विद्यापीठ नियमावलि संशोधन सम्बन्धी प्रस्ताव

विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति द्वारा तदर्थ निर्मित समिति ने विद्यापीठ नियमावलि में संशोधन प्रस्तावित किये, इन संशोधनों पर विषय निर्वाचिनी समिति में विचार हुआ और उत्तर पुस्तकों के पुनः परीक्षण सम्बन्धी विषय को हटा देने के संशोधन को अस्वीकार किया गया। नियमावलि के शेष सभी संशोधन पहिले विषय निर्वाचिनी समिति ने और पुनः खुले अधिवेशन ने स्वीकार किये।



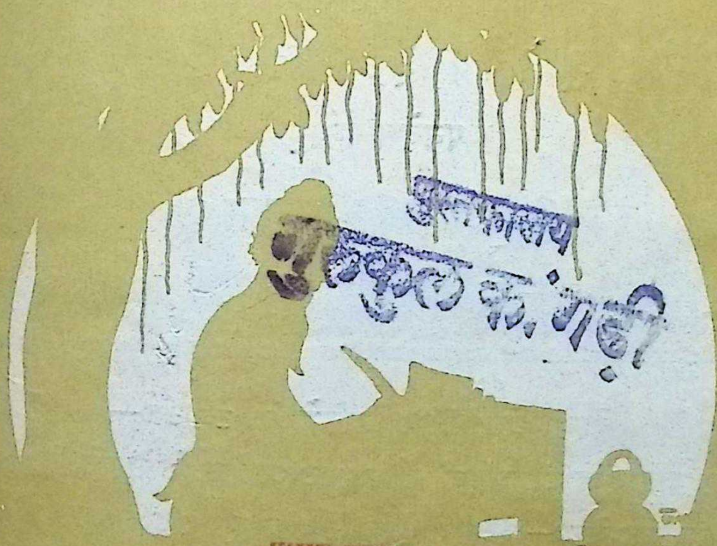


नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—कैक्स्टन प्रेस, नई दिल्ली।

अप्रैल
१९५४

चैत्र
२०१०

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका



प्रधान सम्पादक
कविराज पं० मानकचन्द्र देवशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी. ए., बी. आई. एम. एस.

।। श्री धन्वन्तरये नमः ।।

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ।।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक——कविराज पं० नानकचंद्र, वैद्य शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य ।

सम्पादक——पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.

पत्रिका कार्यालय——महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४० अंक ४ | दिल्ली, चैत्र २०१०, अप्रैल १९५४ | वार्षिक ५) एक प्रति ॥)

विषय-सूची

३९वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, कोट्टकल, दक्षिण मालावार, का संक्षिप्त कार्य-विवरण

ता० ६ से ९ मार्च १९५४ तक

भगवान् श्री धन्वन्तरि की असीम अनुकम्पा से कई विघ्न बाधाओं को पार करता हुआ अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का ३९वां वृहत् अधिवेशन दक्षिण भारत में आयुर्वेद के प्रसिद्ध केन्द्र कोट्टकल (मालाबार–केरल प्रदेश) में ता० ६ से ९ मार्च १९५४ तक वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी की अध्यक्षता में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। आयुर्वेद महासम्मेलन के अन्तर्गत नि० भा० आयुर्वेद शिक्षा सम्मेलन, जयपुर निवासी राजवैद्य श्री पं० नन्दकिशोर जी शर्मा शास्त्री की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

यह अधिवेशन अखिल केरल आयुर्वेदिक कांग्रेस के अध्यक्ष स्वर्गीय आर्यवैद्यन श्री पी० माधव वारियार के आमन्त्रण पर दक्षिण की प्रसिद्ध रसशाला "आर्य वैद्यशाला" के स्वागत एवं आतिथ्य में सम्पन्न हुआ। इसी अवसर पर आर्य वैद्यशाला का स्वर्ण-जयन्ती उत्सव भी बड़े समारोह से मनाया गया। महासम्मेलन सभा-मण्डप एवं प्रदर्शिनी की व्यवस्था आर्य वैद्यशाला के विभिन्न भवनों एवं विशाल आंगनों में समुचित प्रकार से की गई थी। प्रतिनिधियों के निवास का प्रबन्ध आर्य वैद्यशाला के नव-निर्मित स्वर्ण जयन्ती नर्सिंग होम में किया गया था।

महासम्मेलन का कार्यालय ५ मार्च को प्रातःकाल कोट्टकल पहुंच गया था। विद्यापीठ मंत्री रायबहादुर श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा भी उसी दिन मालाबार एक्स्प्रेस से वहां पधारे। प्रतिनिधि महानुभाव तो ४ मार्च से ही आने प्रारम्भ हो गए थे। प्रतिनिधियों के स्वागत का बड़ा सुन्दर प्रबन्ध तिरूर रेलवे स्टेशन पर ही किया गया था। सभी समागत प्रतिनिधियों को बसों, टैक्सियों एवं मोटर कारों द्वारा कोट्टकल पहुंचाने का प्रबन्ध किया गया था।

महासम्मेलनाध्यक्ष वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी ता० ६ मार्च को प्रातःकाल मालाबार एक्स्प्रैस से तिरूर पहुंचे। उसी गाड़ी से विद्यापीठ के निर्वाचित अध्यक्ष राजवैद्य श्री पं० नन्दकिशोर जी शर्मा, विद्यापीठ के तत्कालीन अध्यक्ष श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री, महासम्मेलन प्रधानमंत्री वैद्य श्री वामनराव दीनानाथ जी तथा महासम्मेलन के अन्य गण्यमान्य बहुत से सदस्य पधारे। स्टेशन पर स्वागताध्यक्ष आर्यवैद्यन श्री पी० वी० ईश्वर वारियार तथा स्वागत् समिति के प्रमुख सदस्यवृन्द ने श्री अध्यक्ष महोदय तथा

अन्य समागत सभ्यों का स्वागत् किया। दोनों निर्वाचित अध्यक्षों, विद्यापीठाध्यक्ष श्री पं० हरिदत जी शास्त्री, श्री डा० वाई० पार्थनारायण पण्डित तथा श्री डा० ए० लक्ष्मीपति आदि महानुभावों को श्री स्वागताध्यक्ष महोदय ने स्वर्णहार पहिनाए। आर्यवैद्य कालिज, कोट्टकल के विद्यार्थीगण भी स्टेशन पर भारी संख्या में उपस्थित थे। एक बहुत प्रफुल्लित एवं प्रसन्न वातावरण में सभी समागत प्रतिनिधियों के साथ श्री अध्यक्ष महोदय को आर्य वैद्यशाला के तिरूर कार्यालय में लाया गया। सभी को जी भर कर नारियल का बड़ा मधुर जल पिलाया गया जिससे यात्रा एवं वहां के ग्रीष्म ऋतु से जनित उष्णता की पर्याप्त मात्रा में शान्ति हुई। तदुपरान्त बसों, टैक्सियों, स्टेशन वैगनों एवं मोटर कारों के एक लम्बे तांते में श्री अध्यक्ष महोदयों तथा अन्य प्रतिनिधियों को कोट्टकल ले जाया गया। इस बार वहां मालाबारी ढंग से विशेष स्वागत की व्यवस्था आर्य वैद्यशाला के बड़े भवन के प्रधान द्वार पर की गई थी। एक बहुत बड़ा प्रज्वलित होम कुण्ड था, उसके सामने से होकर तथा कुंकुम आदि का तिलक लगा कर सभी प्रतिनिधियों के भीतर प्रवेश की व्यवस्था की गई थी।

ता० ६ मार्च, १९५४

रात्रिको ९।। बजे से महासम्मेलन के सभा मण्डप में वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी के सभापतित्व में स्थायी समिति का अधिवेशन हुआ। तदुपरान्त १०।। बजे विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति का अधिवेशन वैद्यराज श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ जो १२।। बजे अर्धरात्रि तक चला। उक्त समितियों के अधिवेशनों के कार्यविवरण पत्रिका में अन्यत्र प्रकाशित हैं।

ता० ७ मार्च, १९५४

यह दिन आर्य वैद्यशाला के स्वर्ण जयन्ती महोत्सव से प्रारम्भ हुआ। प्रातःकाल ७।। बजे कैलाश मन्दिर में भगवत् बन्दना की गई। ८ बजे आर्यवैद्यशाला के नवनिर्मित स्वर्ण जयन्ती नर्सिंग होम के विशाल आंगन में वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी ने एक बड़ी जनसंख्या की उपस्थिति में धन्वन्तरि ध्वजा को फहराया। उस अवसर पर एक छोटा सा भाषण भी उन्होंने दिया। तत्पश्चात् सभामण्डप में कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम आर्य वैद्यशाला के मैनेजिंग ट्रस्टी आर्यवैद्य श्री पी० के० वारियार ने स्वागत भाषण किया तत्पश्चात् स्वर्ण जयन्ती महोत्सव का उद्घाटन "दैनिक मात्रभूमि" के सम्पादक श्री के० पी० केशव मैनन ने अपनी सुमधुर वक्तृता द्वारा किया। तदुपरान्त उक्त उत्सव की अध्यक्षता का आसन आयुर्वेद वृहस्पति, आयुर्वेदाचार्य, वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी, अध्यक्ष अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, ने ग्रहण किया और अपना भाषण दिया। इसके पश्चात् पण्डितराज श्री अत्तूर कृष्ण पिशारोदी ने संस्कृत में तथा साहित्य कुशल श्री पी. रमन मैनन ने मलयलम में स्वर्ण जयन्ती के इस शुभ उत्सव की स्मृति में भाषण दिए। मलयलम

के भाषण के आशय को यद्यपि इस विवरण का लेखक नहीं समझ सका तो भी इतना लिख सकता है कि इस भाषण से इस भाषा के ज्ञाता, जो वहां प्रभूत संख्या में उपस्थित थे, बहुत प्रभावित हुए और दीर्घ करतल ध्वनि वहां बार बार हुई। यह भाषण न समझने वालों के लिए भी अत्यन्त रोचक प्रतीत पड़ा। अन्त में सभापति महोदय ने उत्सव का विसर्जन करते हुए छोटा सा भाषण दिया और ठीक ११। बजे पूर्वाह्न में सभा-समाप्ति के पश्चात् वहां के जनसमूह ने अपने आप को एक जुलूस के रूप में संगठित किया। सभी नेतागण तथा प्रतिष्ठित प्रतिनिधि कारों की एक बड़ी सेंख्या में जुलूस के पीछे पीछे चले। जुलूस कैलाश मन्दिर से चल कर कोट्टकल नगर में से होता हुआ ठीक ११॥ बजे आर्यवैद्य कालिज तथा हास्पिटल में पहुंचा। वहां पर आर्य वैद्यशाला के संस्थापक स्वर्गीय वैद्यरत्न श्री पी० एस० वारियार की एक मनुष्याकार संगमरमर की बहुत सुन्दर मूर्ति का श्री डा० एम० आर० गुरुस्वामी मुदालियार, बी०ए०, एम०डी० एण्ड सी०एम०, डायरेक्टर, देशी चिकित्सा विभाग मद्रास राज्य, ने अपने कर कमलों द्वारा अनावरण किया। मूर्ति अनावरण के समय आपने स्वर्गीय श्री पी० एस० वारियार की विविध आयुर्वेदीय सेवाओं पर प्रकाश डाला। मध्याह्न में ठीक १२ बजे आर्य वैद्यशाला के जयन्ती उत्सव का कार्यक्रम आनन्द पूर्वक समाप्त हुआ।

मध्याह्नोत्तर ठीक २॥ बजे महासम्मेलन के ३९ वें अधिवेशन का कार्यक्रम धन्वन्तरि बन्दना और मंगलाचरण के गीतों से प्रारम्भ हुआ। सभामण्डप मनोरम ढंग से सुसज्जित था। मालाबारी ढंग के बांसों तथा पत्तों के प्रयोग से एक विशाल छत वाला मण्डप बनाया गया था। इतना विशाल मण्डप, जिसमें दस सहस्र के लगभग जनसमूह सुविधापूर्वक बैठ सके ऐसे ही नगर में बिना कपड़े के शामियाने के बनना सम्भव था। भारत के विभिन्न स्थानों से सहस्रों की संख्या में प्रतिनिधि उपस्थित थे। दक्षिण के वैद्य महानुभावों की संख्या ही एक सहस्र के लगभग थी। मंच पर भगवान् श्री धन्वन्तरि एवं वारियार परिवार के इष्टदेव विशम्भर भगवान् के बड़े-बड़े चित्र स्वर्ण छत्रों के नीचे सुसज्जित थे। सारा मण्डप बिजली की फ्लोरोसेंट लाइट से दिन में भी उपस्थित जनों को चकाचौंध कर रहा था। चारों ओर बहुत उत्साह, उल्लास, स्नेह और सौन्दर्य का वातावरण सभी को प्रफुल्लित कर रहा था। प्रेस प्रतिनिधि भी बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित थे। उस समय मंच पर विराजमान बहुत से प्रतिनिधियों में से महासम्मेलनाध्यक्ष वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी के अतिरिक्त विद्यापीठाध्यक्ष राजवैद्य श्री पं० नन्दकिशोर जी, जयपुर, श्री पं हरिदत्त जी शास्त्री, जालन्धर, वैद्य श्री वामनराव दीनानाथ जी, बम्बई, रायबहादुर श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा, ऋषिकेश, श्री स्वामी दयानिधि जी, ऋषिकेश, श्री स्वामी जयरामदास जी, जयपुर, श्री स्वामी चेतनानन्द जी, देहली, कविराज श्री केशवप्रसाद जी आत्रेय, देहली, वैद्य श्री निरंजनलाल जी, जयपुर, वैद्य श्री प्रभुदत्त जी शास्त्री, सीकर, वैद्य श्री रामस्वरूप चक्रवर्ती, देहली, श्री डा० ए० लक्ष्मीपति, मद्रास, श्री डा० वाई० पार्थ-

नारायण पण्डित, मंगलौर, श्री वी०बी० नटराज शास्त्री, तिरुचिरापल्ली, श्री०जी० वामनाचारी, कोल्हापुर, श्री वी०आर० हरिदास, मंगलौर, श्री पी०एस० रामाशास्त्री, टेपाकुलम, श्री के० परमेश्वरम् पिल्ले, त्रिवेन्द्रम, श्री डा० वी० सुब्रह्मण्यम, श्रीरंगम, आदि-आदि के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं।

मद्रास राज्य के देशी चिकित्सा के डायरेक्टर श्री डा० एम०आर० गुरुस्वामी मुदालियार ने अपनी मनोहर वक्तृता द्वारा महासम्मेलन के अधिवेशन का उद्घाटन किया। तत्पश्चात् स्वागताध्यक्ष आर्यवैद्यन श्री पी०वी० ईश्वर वारियार ने अपना स्वागत भाषण पढ़ा जो आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के गतांक (मार्च १९५४) में प्रकाशित हो चुका है।

तदनन्तर महासम्मेलन की अध्यक्षता के लिए आयुर्वेद वृहस्पति आयुर्वेदाचार्य वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी के नाम का औपचारिक प्रस्ताव उपस्थित किया गया और उसका समर्थन किया गया। इसके पश्चात् उन्होंने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया। स्वागताध्यक्ष महोदय ने विभिन्न प्रकार के पुष्पहार उन्हें पहिनाए। इसके बाद उन्होंने अपना अध्यक्षीय भाषण पढ़ा। उक्त भाषण आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के गतांक म प्रकाशित हो चुका है। सायं ५ बजे यह सभा विसर्जित हुई।

सायं ५।।। बजे महासम्मेलन के उपाध्यक्ष श्री डा० वाई० पार्थनारायण पण्डित ने अपने कर-कमलों से प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। प्रदर्शनी ३८ वें आयुर्वेद महासम्मेलन, इन्दौर, जितनी विशाल तो नहीं थी परन्तु यह देखते हुए कि दूरस्थ पंजाब प्रान्त की फार्मेसियां भी वहां पर्याप्त संख्या में पहुंची हुई थीं इसे सुप्रचारित एवं सफल कहना चाहिए। प्रदर्शनी में सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि दक्षिण भारत की जड़ी-बूटियों का साधारणतया तथा केरल प्रदेश की बूटियों का विशेषतया वहां पर बहुत बड़ा प्रदर्शन किया गया था और प्रदर्शनी का यह विभाग-विशेष एक अच्छे उद्यान का सा दृश्य दे रहा था। स्वयं आर्य वैद्यशाला भी प्रदर्शन की एक अच्छी वस्तु थी। इसकी बड़ी-बड़ी भट्टियां तथा रसायनशाला की मिलों जैसी ऊंची चिमनी यहां के बड़े आयुर्वेदिक उद्योग का परिचय दे रही थी। प्रायः सभी प्रतिनिधियों ने इस रसशाला का रुचिपूर्वक निरीक्षण किया। ऐसी रसायनशालाएं आयुर्वेद-जगत के लिये वास्तव में गौरव का विषय हैं। प्रदर्शिनी में आयुर्वेदीय यंत्र-शस्त्रों का भी एक विभाग था तथा औषध निर्माण में प्रयुक्त होने वाली कुछ नवीन ढंग की मशीनें भी वहां प्रदर्शित की गई थीं।

प्रदर्शिनी के प्रतिनिधियों द्वारा निरीक्षण के पश्चात् स्वर्गीय श्री पी० माधव वारियार के बड़े चित्र का, जो मंच के आगे सुसज्जित था, श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी ने अनावरण किया। इस समय भाषण देते हुए श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी ने उस दुःखद वायुयान घटना का वर्णन किया जिसमें श्री माधव वारियार का अपनी धर्मपत्नि सहित देहान्त हो गया था। श्री वारियार महोदय के हृदय तथा मस्तिष्क के असाधारण गुणों तथा उनके चिकित्सा

कौशल का वर्णन करते हुए श्री अध्यक्ष महोदय ने कहा कि आयुर्वेद जगत को उनके असामयिक देहावसान से बहुत क्षति पहुंची है जिसकी निकट भविष्य में पूर्ति होनी असंभव प्रतीत पड़ती हैं। तत्पश्चात् सभा ने एक मिनट तक खड़े होकर तथा मौन धारण करके स्वर्गीय वारियार दम्पति की आत्माओं के लिए शान्ति तथा सद्गति की कामना की।

रात्रि को ८॥ बजे से पण्डाल में महासम्मेलन विषय निर्वाचिनी समिति का अधिवेशन हुआ जिसमें अनेक प्रस्ताव खुले अधिवेशन में रखे जाने के लिए स्वीकार हुए। रात्रि को १२ बजे यह अधिवेशन समाप्त हुआ।

ता० ८ मार्च, १९५४

प्रातःकाल ठीक ८ बजे महासम्मेलन के आयुर्वेदिक शिक्षण अंग निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ का निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद शिक्षासम्मेलन प्रारम्भ हुआ। मंगलाचरण के पश्चात् आर्यवैद्य कालेज, कोट्टकल, के प्रिंसिपल श्री पी० के० रामुनी मैनन ने आयुर्वेद शिक्षा सम्मेलन का स्वागत भाषण पढ़ा। यह भाषण इसी पत्रिका में अन्यत्र प्रकाशित है। तत्पश्चात् मद्रास निवासी श्री डा० ए० लक्ष्मीपति ने शिक्षा सम्मेलन का उद्घाटन किया। आपका भाषण आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के गतांक में प्रकाशित हो चुका है। तदनन्तर शिक्षा सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए राजवैद्य श्री पं० नन्दकिशोर जी शास्त्री का नाम प्रस्तावित करते हुए वैद्यरत्न श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री ने उनकी विद्वता, चिकित्सा कौशल तथा आयुर्वेदीय सेवाओं पर प्रकाश डाला। फिर विभिन्न प्रतिनिधियों ने संक्षेप में इस प्रस्ताव का समर्थन एवं अनुमोदन किया। इसके पश्चात् श्री राजवैद्य जी को विद्यापीठाध्यक्षता का आसन सुशोभित करने के लिए प्रार्थना की गई। शिक्षा सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष महोदय ने उन्हें पुष्पहार पहिनाए। तदुपरान्त श्री राजवैद्य जी ने अपना विद्वतापूर्ण भाषण संस्कृत में पढ़ कर सुनाया। उक्त भाषण इसी पत्रिका में अन्यत्र प्रकाशित है। अध्यक्ष के भाषण के अनन्तर ठीक ११ बजे शिक्षासम्मेलन का यह अधिवेशन विसर्जित हुआ।

अपराह्न २ बजे से विद्यापीठ की विषय निर्वाचिनी समिति का अधिवेशन राजवैद्य श्री पं० नन्दकिशोर जी की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ जिसमें खुले अधिवेशन में रखे जाने के लिए प्रस्ताव स्वीकार हुए।

सायं ४ बजे से महासम्मेलन का खुला अधिवेशन वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम स्वर्गीय श्री पी० माधव वारियार के लिये कुछ श्रद्धाञ्जलियां पढ़ी गईं, जिनमें से दो श्रद्धाञ्जलियां आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के गतांक में प्रकाशित हो चुकी हैं। साथ ही ३८ वें आयुर्वेद महासम्मेलन इन्दौर के अनन्तर स्वर्गस्थ वैद्य बन्धुओं की आत्माओं के लिये शान्ति एवं सद्गति का प्रस्ताव सभा ने खड़े होकर तथा १ मिनिट तक मौन धारण करके स्वीकार किया। तदुपरान्त महासम्मेलन विषय निर्वाचिनी समिति के पहिले दिन के अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव उपस्थित किये गये जो सर्वसम्मति से स्वीकार हुए। सायं ७ बजे के लगभग खुला अधिवेशन समाप्त हुआ।

रात्रि को ६ बजे से महासम्मेलन विषय निर्वाचिनी समिति का दूसरा अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। इसमें बहुत से प्रस्ताव खुले अधिवेशन में रखे जाने के लिये सर्व सम्मति से स्वीकार हुए। केवल ४० वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के लिये निमन्त्रणों की स्वीकृति पर सदस्यों की सहमति नहीं हो सकी जिसके कारण उक्त विषय का निश्चय मतों द्वारा करना अनिवार्य हो गया। एक निमन्त्रण बीकानेर वैद्य सभा की ओर से वैद्य श्री ठाकुर प्रसाद जी शर्मा ने उपस्थित किया। दूसरा निमन्त्रण बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की ओर से उक्त सम्मेलन के अध्यक्ष वैद्य श्री वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर, ने उपस्थित किया। तीसरा निमंत्रण डा० वाई० पार्थनारायण पण्डित जी ने मैसूर की ओर से उपस्थित किया। चौथा निमन्त्रण कोचीन त्रावणकोर की ओर से वयोवृद्ध वैद्य श्री के० परमेश्वरम् पिल्ले, त्रावणकोर, ने उपस्थित किया। सभी निमन्त्रणदाताओं ने अपना अपना पक्ष बड़े कौशल एवं चातुर्य से उपस्थित किया। बहुत वादविवाद के अनन्तर श्री प्रधान जी की अपील पर बिहार तथा मैसूर के प्रतिनिधियों ने अपने-अपने निमन्त्रण वापिस ले लिये। तत्पश्चात् क्षेत्र में एक बीकानेर तथा दूसरे कोचन-त्रावणकोर के दो निमन्त्रण शेष रह गये। उभय पक्ष कुछ ऐसी परिस्थितियों में ग्रस्त था कि कोई अपना निमन्त्रण वापिस लेने के लिये तैयार नहीं था। अन्ततोगत्वा इस विषय पर मत लिये गये। बीकानेर के पक्ष में ८ मत आये और वह गिर गया। कोचीन त्रावणकोर के पक्ष में बहु मत प्राप्त हुआ। श्री अध्यक्ष महोदय, श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री, तथा श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा तथा अन्य कुछ सदस्य तटस्थ रहे। इस प्रकार बहुमत से ४० वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के लिये कोचीन-त्रावणकोर का त्रिवेन्द्रम में अधिवेशन करने के लिये निमन्त्रण स्वीकार हुआ। शेष सभी प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार हुए। रात्रि को १२ बजे विषय निर्वाचिनी समिति का अधिवेशन विसर्जित हुआ।

ता० ९ मार्च, १९५४

केरलीय चिकित्सा सम्प्रदाय परिषद्

प्रातः ८ बजे मंगलाचरण के साथ केरलीय चिकित्सा सम्प्रदाय परिषद् का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। श्री वी० नारायण नायर ने इस परिषद् का उद्घाटन किया। तदुपरान्त वैद्य श्री व्यासकरा एन०एस० मूस, नें अपना पाण्डित्यपूर्ण अध्यक्षीय भाषण पढ़कर सुनाया जो इसी पत्रिका में अन्यत्र प्रकाशित है। तत्पश्चात् लगातार तीन घण्टे तक इस विषय पर विभिन्न प्रकार की चर्चा चलती रही। अन्त में परिषद् के अध्यक्ष महोदय ने सम्पूर्ण विचार विमर्श पर अपना अभिमत प्रकट किया और परिषद् का अधिवेशन ठीक १२ बजे विसर्जित हुआ। भारत के उत्तरवासी वैद्यों के लिये यह परिषद् बहुत रोचक एवं लाभ-प्रद रही।

दार्शनिक परिषद्

मध्याह्नोत्तर २ बजे से मङ्गलाचरण के अनन्तर दार्शनिक परिषद् का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। कोचीन-त्रावणकोर राज्य के देशी चिकित्सा विभाग के डायरेक्टर श्री एम०

एन० केशव पिल्ले ने उक्त परिषद् का उद्घाटन किया। तदुपरान्त मदुरा निवासी पण्डितवर श्री नारायण आयंगर ने अपना विद्वत्तापूर्ण भाषण पढ़कर सुनाया। लगभग दो घण्टे विषय पर चर्चा हुई और तदुपरान्त अध्यक्ष महोदय ने विभिन्न प्रकार से शंका समाधान करते हुए अपना अभिमत व्यक्त किया और ठीक ५ बजे परिषद् का अधिवेशन विसर्जित हुआ।

महासम्मेलन-विद्यापीठ का खुला अन्तिम अधिवेशन

सायं ५ बजे महासम्मेलन-विद्यापीठ का खुला अधिवेशन प्रारम्भ हुआ जिसमें अवशिष्ट प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकार हुए। विद्यापीठ तथा महासम्मेलन के खुले अधिवेशनों में सर्वसम्मति से स्वीकृत सभी प्रस्ताव, आनुमानिक आय-व्यय तथा नियमावलि के संशोधन एवं चुनाव आदि के विषय में स्वीकृत प्रस्ताव आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के गतांक में प्रकाशित हो चुके हैं।

विशेष :—खुले अधिवेशन में सभी प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकार हुए परन्तु विद्यापीठ कार्यालय के देहली से ऋषिकेश परिवर्तित किए जाने के विषय पर यद्यपि कानपुर निवासी आचार्य श्री बद्रीविशाल त्रिपाठी का कोई विरोध नहीं था तो भी इसमें उनका एक संशोधन यह था कि विद्यापीठ कार्यालय के साथ आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय भी ऋषिकेश को परिवर्तित किया जाय क्योंकि उनके मत से यह महासम्मेलन-विद्यापीठ के कार्य-संचालन के लिए अधिक सुविधाप्रद एवं हितकारक होगा।

अन्त में सायं ७ बजे के लगभग श्री स्वागताध्यक्ष महोदय, महासम्मेलन के कुछ प्रतिनिधियों तथा महासम्मेलन एवं विद्यापीठ के अध्यक्षों ने अपनी-अपनी ओर से आभार प्रदर्शन किया और निजी त्रुटियों के लिये औपचारिक क्षमा याचना की। बहुत आनन्द पूर्ण वातावरण में सभी कार्यक्रम चला। एक दूसरे से पृथक होने के कारण जो दुःख का अनुभव किसी को हो सकता है वह, उभय ओर दिखाई पड़ रहा था। तत्पश्चात् भगवत् बन्दना की गई और श्री परमात्मदेव के प्रति इस उत्सव के सफलता पूर्वक समाप्त होने के लिये कृतज्ञता प्रकट की गई। अन्त में दो कन्याओं ने हमारे राष्ट्रीय गीत जन गण मन का संगीतपूर्वक गान किया। ठीक ८ बजे सन्ध्या के समय अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का ३९ वां अधिवेशन बहुत स्नेहपूर्ण वातावरण में विसर्जित हुआ।

———

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन स्थायी समिति के अधिवेशन का कार्यविवरण

स्थान—सभा मण्डप, ३९ वां अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, कोट्टकल, द० मालावार

समय—ता० ६ मार्च १९५४ रात्रि ८-३० से।

उपस्थितिः—

सर्व श्री पं० शिवशर्मा, बम्बई, दयानिधि स्वामी, ऋषिकेश, हरिदत्त शास्त्री, बम्बई, श्रीदत्त शर्मा, ऋषिकेश, जयरामदास स्वामी, जयपुर, ब्रह्मदत्त शर्मा, भुसावल, बद्रीविशाल त्रिपाठी, कानपुर, निरंजनलाल शर्मा, जयपुर, नन्दकिशोर शास्त्री, जयपुर, रामस्वरूप चक्रवर्ती, देहली, वैद्यनाथमिश्र, मुजफ्फरपुर, पार्थनारायण पण्डित, बंगलौर, बी. आर. हरिदास, मंगलौर, हरिशंकरप्रसाद पाठक, बरौनी, न. वी. राधाकृष्ण शास्त्री, मद्रास, कृ. राघवन, मद्रास, स्वामी चेतनानन्द, देहली, ए. लक्ष्मीपति, मद्रास, ह० ज० रामशास्त्री, बंगलौर, जी. जी. वामनाचार्य, कोठारिया, ठाकुरप्रसाद, बीकानेर, केशवप्रसाद आत्रेय, देहली, आर. सी. चतुर्वेदी, बम्बई, वी. सुब्रह्मण्यम, श्रीरंगम, प्रभुदत्त, सीकर, वामनराव दीनानाथ, बम्बई।

अधिवेशनार्थ निम्नलिखित महानुभावों के सम्मतिपत्र प्राप्त हुएः—

सर्व श्री वेदव्रत शर्मा, कासगंज, त्रिकमलाल जे. रावल, बम्बई, घासीराम, देवास, पूर्णानन्द शास्त्री, श्री माधोपुर, स्वामी रामप्रकाश, बम्बई, कपिलदेव त्रिपाठी, पटना, ओंकारनाथ शर्मा, सरदारशहर, ख्यालीराम द्विवेदी, इंदौर, मणिराम शर्मा, रतनगढ़, नन्दकिशोर, बनारस, लालमणि मिश्र, रगौल, मेलाराम, देहली, ऋषिराम, अलवर, सुखरामप्रसाद, पटना, जगदीश्वर शर्मा, गौहाटी, चन्द्रानन्द, काठमाण्डू, माधोप्रसाद, जोधपुर, धीरेन्द्रमोहन भट्ट, बतौली, शिवजी जेठाभाई, कच्छ, शम्भूनाथ पाण्डेय, कानपुर, सूर्यकान्त शर्मा, भगवतगढ़, पुरुषोत्तमदेव मुलतानी, हैद्राबाद, लक्ष्मीशंकर रामकृष्ण शास्त्री, अहमदाबाद, चुन्नीलाल रेवाशंकर, बड़ौदा, विरंचि शर्मा, इस्लामपुर।

कार्य-विवरण

१—स्थायी समिति के गताधिवेशन का कार्यविवरण पढ़ा गया और सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

२—नवीन सदस्यता स्वीकृति का विषय उपस्थित हुआ तथा निम्नलिखित सदस्यतायें स्वीकार हुईंः—

क–संरक्षक सदस्यता:–श्री पं० रामदयालु जी जोशी, पटना।

ख–आजीवन सदस्यता:–शिवशंकर जगन्नाथ वैद्य, नदियाद, शान्तिलाल नारायण जी, वसंत, बम्बई, मोहनलाल गुप्ता, बम्बई, रामचन्द्र शर्मा, देहली, एन. रामाराव वारियार, मदुरा, के. एस. वारियार, त्रिचिनापल्ली, एस. वारियार, कोट्टकल, पी. कृष्ण वारियार, कोट्टकल, पी. ईश्वर वारियार, खोजीकोड, प्रभुदत्त शास्त्री, सीकर।

ग–ता० ६ मार्च १९५४ तक जिनका मान्य सदस्यता शुल्क कार्यालय में प्राप्त हो गया है उन सभी की मान्य सदस्यता स्वीकार हुई।

३—सन् १९५२–५३ के आय–व्यय पत्र एवं संतुलन पत्र विचारार्थ उपस्थित हुए। निश्चय हुआ कि नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के आय-व्यय पत्र एवं सन्तुलन पत्र भी साथ ही उपस्थित किये जायं तथा वे भी उपस्थित किये गये।

विशेष:–उक्त आय-व्ययपत्र एवं संतुलन पत्र आडीटर की रिर्पोट सहित आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के फ़रवरी मासीय अंक के पृष्ठ १३३ से १३९ तक प्रकाशित हैं।

क--तदुपरान्त इन पत्रों पर क्रमश: विचार विमर्श प्रारम्भ हुआ तथा निश्चय हुआ कि एक वर्ष से अधिक से ७०८ रु० ५ आ० ६ पा० की जो धनराशि विभिन्न ऋणियों से प्राप्त नहीं हो रही उसे प्राप्त करने का कार्यालय पूर्ण यत्न करे। परन्तु यत्न करने पर भी ता० ३१ अक्टूबर १९५४ तक जो धनराशियां प्राप्त न हो सकें उन्हें बट्टे खाते में डाल दिया जाय। परन्तु बट्टे खाते की उस कुल धनराशि को ३ वर्ष में बराबर बराबर बट्टे खाते में डाला जाय ताकि सम्पूर्ण बट्टेखाते का भार एक ही वर्ष में न पड़े। तत्पश्चात् महासम्मेलन के आय-व्यय पत्र एवं संतुलन पत्र सर्वसम्मति से स्वीकार हुए।

ख--तदुपरान्त विद्यापीठ के आय-व्यय एवं सन्तुलनपत्रों पर विचार हुआ और वे भी सर्वसम्मत्ति से स्वीकार हुए।

मनिआर्डर प्राप्ति के विषय पर आडिटर की रिर्पोट पर विचार हुआ तथा निश्चय हुआ कि प्रत्येक धनराशि भेजने वाले को दोहरी रसीद भेजने की आवश्यकता नहीं परन्तु जो व्यक्ति मनिआर्डर कूपन्ज् पर धनराशि नहीं लिखते परन्तु कार्ड या पत्र द्वारा इसकी सूचना देते हैं उनके कार्ड या पत्र ही प्रमाण समझ कर रसीद के साथ नत्थी कर दियें जांय। दोहरी रसीद केवल उन व्यक्तियों को भेजी जाय जो न तो कूपन पर कुछ लिखें और न ही उनकी ओर से कोई और लिखित सूचना प्राप्त हो।

४. सन् १९५३-५४ के लिये महासम्मेलन-विद्यापीठ के आनुमानिक आय-व्यय पत्रों के निर्माण का विषय उपस्थित हुआ तथा निश्चय हुआ कि पहिले उन सब प्रस्तावों पर विचार किया जाय जिनका प्रभाव आय-व्यय पत्र पर पड़ सकता है, तथा उन स्वीकृत प्रस्तावों के प्रकाश में महासम्मेलन तथा विद्यापीठ प्रधानमंत्रियों को आनुमानिक आय-व्यय तैयार करके विषय निर्वाचिनी समिति में उपस्थित करने का आदेश दिया जाय।

५. महासम्मेलन नियमावलि संशोधन का विषय उपस्थित हुआ तथा निश्चय हुआ कि संशोधन सम्बन्धी सभी प्रस्तावों को विचार में लेकर निम्नलिखित महानुभावों द्वारा संगठित एक उपसमिति अपने सुझाव विषय निर्वाचिनी समिति नें उपस्थित करेः—

समिति के सदस्यः—

१. आचार्य श्री बद्रीविशाल त्रिपाठी, कानपुर।
२. श्री डा० वाई० पार्थनारायण पंडित, बंगलौर।
३. श्री पं० प्रभुदत्त शास्त्री, सीकर।
४. कविराज श्री केशवप्रसाद आत्रेय, देहली।
५. वैद्य श्री वामनराव दीनानाथ, बम्बई।

६. महासम्मेलन पर विचारार्थ आये हुए प्रस्ताव उपस्थित किये गये तथा निश्चय हुआ कि इन पर विचार करने के लिये निम्नलिखित महानुभावों की एक उपसमिति बना दी जायः—

१. वैद्य श्री वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर।
२. श्री स्वामी दयानिधि जी, ऋषिकेश,।
३. श्री स्वामी चेतनानन्द जी, देहली।
४. वैद्य श्री ब्रह्मदत्त शर्मा, भुसावल।
५. श्री एस. वी. राधाकृष्ण शास्त्री, टेपाकुलम।
६. वैद्य श्री वामनराव दीनानाथ, बम्बई।

७. बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के मतभेद के विषय पर विचार उपस्थित हुआ। यह देखते हुए कि स्थायी समिति की ता० १० नवम्बर १९५३ की मीटिंग में स्थायी समिति को यह आश्वासन मिला था कि बिहार प्रान्त के वैद्यों का मतभेद मिट गया है और इस सूचना का खण्डन अथवा विरोध किसी दल की ओर से नहीं किया गया, तथा यह देखते हुए कि बिहार के वैद्यों में प्रथम समझौते होने के बाद एक सम्मेलन सम्बद्ध किया जा चुका है और महासम्मेलन की यह नीति नहीं कि एक ही प्रान्त में एक से अधिक सम्मेलन सम्बद्ध किये जाने की प्रथा भविष्य में प्रोत्साहित की जाय, सर्वसम्मति से निश्चय किया जाता है कि जो सम्मेलन महासम्मेलन से सम्बद्ध किया जा चुका है उसे

ही बिहार प्रान्त में महासम्मेलन की सम्बद्ध शाखा समझा जाय, तथा यह भी निश्चय हुआ कि बिहार के सभी वैद्यों को इसी सम्मेलन में सम्मिलित होने की प्रेरणा दी जाय।

८. श्री बनवारीलाल आयुर्वेद विद्यालय, देहली, को विद्यापीठ के आधीन लेने का विषय उपस्थित हुआ। इस सम्बन्ध में स्पष्टीकरणार्थ तदर्थ उपसमिति तथा स्थानिक संघ की रिपोर्ट भी पढ़ी गई। इस रिपोर्ट पर उक्त विद्यालय के ट्रस्टियों का मत भी पढ़ा गया। यह देखते हुए कि विद्यालय के लिये जिस पाठ्यप्रणाली का निर्माण रिपोर्ट ने सुझाया है वह महासम्मेलन विद्यापीठ की पाठ्यप्रणाली तथा शुद्धायुर्वेद की स्थिर नीति के विरुद्ध है निश्चय हुआ कि जब तक विद्यालय की पाठ्यप्रणाली का विषय महासम्मेलन की नीति के अनुकूल न हो जाय तब तक इस विषय पर विचार न किया जाय। यह भी निश्चय हुआ कि इस प्रस्ताव की प्रतिलिपि उपसमिति के प्रत्येक सदस्य को भेज दी जाय।

९. उत्तर प्रदेशीय कार्यवाहक वैद्य सम्मेलन स्थापना सम्बन्धी निर्वाचन समिति के अध्यक्ष का पत्र उपस्थित हुआ तथा निश्चय हुआ कि उक्त सम्मेलन के चुनाव सम्बन्धी कार्य के लिये ३१ मई १९५४ तक अवधि बढ़ा दी जाय।

१०. श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी, अमृतसर, का महासम्मेलन की आजीवन सदस्यता से त्यागपत्र पढ़ा गया। सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि त्यागपत्र में लिखित आरोपों को निराधार और अनुचित घोषित करते हुए उनके त्यागपत्र को स्वीकार किया जाय।

महासम्मेलन के विचार्य विषयों की समाप्ति पर विद्यापीठ के विचार्य विषय लिये गये जिसका कार्यविवरण पृथक् दिया गया है।

वामनराव दीनानाथ वैद्य
प्रधानमंत्री,
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन।

निखिल भारतीयवर्षीयायुर्वेद विद्यापीठ कार्यकारिणी समितेः १९५४ तम वर्षीयस्य द्वितीयाधिवेनस्य कार्यविवरणम्

स्थानम्—३९ तमाखिलभारतवर्षीयस्य महासम्मेलनस्य मण्डपम्, कोट्टकल, दक्षिण मालावार।

समयः—ता० ६ मार्च १९५४ रात्रौ सार्धदशवादनतः।

उपस्थितिः—उपस्थितसदस्यानां सूची उपर्युक्त महासम्मेलनस्य स्थायीसमितेः कार्यविवरणे प्रकाशितास्ति।

सम्मतिप्रेषकाः—सम्मतिप्रेषकाणां सूची उपर्युक्त महासम्मेलनस्य स्थायीसमितेः कार्यविवरणे प्रकाशितास्ति।

श्री हरिदत्त शास्त्रि महोदयानां साभापत्ये कार्यक्रमः प्रारम्भोऽभूत्।

१. गताधिवेशनस्य कार्यविवरणं श्रावितं सर्वसम्मत्यास्वीकृतञ्च।

२. नि०भा० आयुर्वेद शिक्षासम्मेलनस्य विचारार्थं सम्प्राप्तेषु प्रस्तावेषु नि०भा० आयुर्वेद विश्वविद्यालय "ऋषिकेश" इत्यस्मिन् स्थाने निर्माणविषये प्राप्तेषु प्रस्तावेषु तथा विद्यापीठ नियमावलिसंशोधनविषये प्रस्तुतेषु प्रस्तावेषु निश्चितं यदुपर्युक्तानां सर्वेषां प्रस्तावानां विषयाणाञ्च प्रारम्भिक विचारार्थं तत्कृते च स्वकीयपरामर्शप्रदानार्थं च निम्नांकितानां सदस्य महानुभावानामेकोपसमितिर्नियुक्ता स्यात्।

१. राजवैद्य श्री पं० नन्दकिशोर शास्त्री, जयपुर।
२. श्री पं० हरिदत्त शास्त्री, जालन्धर।
३. श्री पं० श्रीदत्त शर्मा, ऋषिकेश।
४. श्री स्वामी दयानिधि, ऋषिकेश।
५. श्री वी०बी० नटराज शास्त्री, तिरुचिरापल्ली।

३. विद्यापीठ कार्यालयस्योपरि देहलीवास्तव्यानां श्री जगदीशप्रसादमहोदयानामारोपाणां विषये निर्णीतं यत् विद्यापीठकार्यकारिणीसमितेरधिवेशनोऽयमस्मिन् विषये श्री विद्यापीठमन्त्रिणरितिवृत्तं तथाच तस्मिन् विषये निर्णायकसमितेः सदस्यानामितिवृत्तञ्च स्वीकरोति।

इदमपि निश्चितं यत् विद्यापीठ कर्मचारिणं श्री रुद्रदत शास्त्रिणं संस्थातः पृथक् करणीयः।

४. समुपस्थिते जोधपुरस्य विद्यापीठकेन्द्रविषये राजवैद्य श्री नन्दकिशोर महोदयैरन्यैर्वा

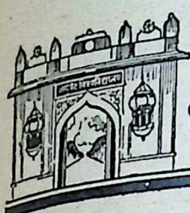
राजस्थानीयैः वैद्य महानुभावैः मतैकेनोक्तं यत् परीक्षा सम्बन्धे तु चागोदगुरांसाहब महोदयानां स्थानं सार्वजनिकमेव विज्ञायते । तस्मिन् स्थाने परीक्षाविषये न काप्य-व्यवस्था जाता न वा सम्भाव्यते । अपरपक्षीय श्री माधवप्रसाद महोदयानां च प्रस्तावस्योपस्थापकः समर्थकश्च कोऽपि प्रतिनिधिर्नास्ति अतः सर्वसम्मत्या निश्चीयते यत् एतादृशावस्थायां कस्यापिपरिवर्तनस्यावश्यकता नास्ति ।

५. गवर्नमेंट आयुर्वैदिक कालेज, रायपुर (म०प्र०), इत्यस्य विद्यापीठसम्मानित संस्थासु समावेश विषयः समुपस्थितः । किन्तु उक्तविद्यालयस्य पाठ्यक्रमाभावे विषयः स्थगितः ।

६. निश्चितं यत् भरतपुर निवासि वैद्यमदनमोहन शर्मणः षोडश छात्राणां विलम्बशुल्कं विशेषपरिस्थितिवशात् क्षन्तव्यम् ।

श्री सभापति महोदयानां धन्यवादपुरस्सरं रात्रौ द्वादशवादनकाले सभा विसर्जिता ।

श्रीदत्त शर्मा
विद्यापीठमंत्री ।



आयुर्वेद विश्वविद्यालय

आयुर्वेद विश्वविद्यालय की आवश्यकता

वैद्यों एवं आयुर्वेद हितैषियों से अपील

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन ४७ वर्षों से अपना कार्य कर रहा है। निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ को स्थापित हुए भी ४३ वर्ष हो चुके हैं। पुण्यस्मृति श्री शंकर दा ज़ी शास्त्री पदे ने इस संस्था को जन्म दिया, तत्पश्चात् आयुर्वेद के महारथियों ने इसका बड़े यत्न से कार्य संचालन किया और समस्त भारत के वैद्यों को संगठित किया।

मैं भी आयुर्वेद महासम्मेलन का ४५ वर्ष से सदस्य हूं। उस नाते से मैं अपने प्रेमी भाइयों को यह बतलाना चाहता हूं एक आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना का उद्देश्य आयुर्वेद महासम्मेलन का आरम्भ से ही चला आ रहा है। दुर्भाग्यवश हम इसकी स्थापना बहुत काल तक नहीं कर सके यह हमारे सम्पूर्ण वैद्यसमाज पर एक प्रकार का आरोप है क्योंकि हमारे वैद्यसमाज में वड़े २ प्रतिष्ठित एवं धुरन्धर चिकित्सक हो चुके हैं और वर्तमान में भी हैं जो बाहर जाने की एक दिन की फीस एक एक दो दो हजार रुपया लेते रहे हैं और आयुर्वेद का महत्व अपनी चिकित्सा प्रणाली से बढ़ाते रहे हैं। ऐसी अवस्था में आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना न होने का एक मात्र कारण हमारे वैद्यसमाज की उदासीनता है, नहीं तो एक क्या भारत में वैद्य लोग कई विद्यालय एवं विश्वविद्यालय बना सकते हैं। वे सर्वथा सामर्थ्यवान हैं।

महासम्मेलन विद्यापीठ का निजी विद्यालय न होने से वर्तमान सरकार ने इस प्रकार की आपत्ति बार बार की है कि सम्मेलन का कोई विधिवद्ध संचालित विद्यालय नहीं है, इसी लिये ही विद्यापीठ की परीक्षाओं को कहीं कहीं मान्यता नहीं मिल रही है। ऐसी अवस्था में हमारी संस्था का अधिक नहीं तो एक विश्वविद्यालय तो अवश्य होना ही चाहिये।

हमारे कुछ वैद्य बन्धुओं का यह मत भी मालूम हुआ है कि जब प्रान्तीय सरकारें और भारतीय सरकार आयुर्वेद शिक्षा का प्रबन्ध कर रही हैं तो आयुर्वेद महासम्मेलन-

विद्यापीठ द्वारा अपना विद्यालय बनाने की क्या आवश्यकता है इसके उत्तर में मेरा निवेदन है कि सरकार ने अंग्रेजी शिक्षा के स्कूल तथा कालेज स्वयं खोले, फिर मिशन स्कूल, मिशन कालेज, डी. ए. वी. स्कूल, डी. ए. वी. कालेज, सनातनधर्म स्कूल, सनातनधर्म कालेज, ब्राह्मण स्कूल, सिक्ख स्कूल, सिक्ख कालेज, जाट कालेज, हिन्दू युनिवर्सिटी, मुस्लिम युनिवर्सिटी, गुरुकुल, ऋषिकुल आदि जनता द्वारा क्यों खोले गये ? ऐसा इस लिये किया गया क्योंकि इससे ही विभिन्न धर्मों के अनुयायियों ने अपने अपने सम्प्रदाय एवं जाति की रक्षा की, यदि यह सिद्धान्त कि सरकार ही जो करे वही होने देना चाहिये ही सर्वमान्य हो तो केवल सरकारी स्कूल और कालेज ही खोलने पर्याप्त थे, ये जातीय स्कूल कालेज खोलने की कुछ आवश्यकता न थी, परन्तु देश के धर्म की रक्षा एवं स्वतंत्रता प्राप्ति इन्हीं देशी संस्थाओं के खोलने से सम्भव हुई ।

जहां तक आयुर्वेद का सम्बन्ध है, इन सरकारी आयुर्वेदिक स्कूल एवं कालेजों में तो आयुर्वेद की नाम मात्र की शिक्षा की व्यवस्था की गई है, वास्तविक आयुर्वेद तो कहीं अन्यत्र निवास करता है और वह है वैद्यों की निजी-संचालित संस्थाओं में । हमारा अपना आयुर्वेद विश्वविद्यालय ही आयुर्वेद की प्राचीन पद्धति के आदर्श को आधुनिक वैज्ञानिक संसार के सामने प्रकट करने वाला हो सकता है । हम अपने आयुर्वेद विश्वविद्यालय में शुद्ध आयुर्वेद की शिक्षा प्रशिक्षा देते हुए अपने छात्रों को अन्य चिकित्सा प्रणालियों के सिद्धान्तों का भी बोध करायेंगे ताकि वे तुलनात्मक ज्ञान और विवेचन से आयुर्वेद की सर्वप्रमुखता को सिद्ध कर सकें । साथ ही हमारे उच्च विज्ञान की शिक्षा का सहस्रों वर्षों से जो अभाव हो गया है उसका भी अनुसन्धान (रिसर्च) करके आयुर्वेद को वैज्ञानिक रूप में संसार के समक्ष रखेंगे । संक्षेप में उक्त विश्वविद्यालय में अष्टांग आयुर्वेद के शिक्षण प्रशिक्षण एवं कर्माभ्यास की व्यवस्था की जायगी और साथ में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान डाक्टरी सम्बन्धी तुलनात्मक ज्ञान भी सभी अंगों में छात्रों को दिया जायगा । ऐसा आयुर्वेद विश्वविद्यालय बनाने का हमारा संकल्प है ।

अपने वैद्य बन्धुओं से यह निवेदन कर देना भी मैं उचित समझता हूं कि सन् १९४५ से अपना चिकित्सा व्यवसाय तथा गृहस्थ के अन्य कार्यों को त्याग कर मैं वानप्रस्थी जीवन व्यतीत कर रहा हूं । अपने जीवन निर्वाह के लिये मैं किसी संस्था से आर्थिक लाभ प्राप्त नहीं कर रहा हूं और मेरी जीवन वृत्ति मेरी सम्पत्ति से चल रही है । जैसा कुछ बनता है अपनी उपार्जित सम्पत्ति से मैं संस्थाओं की भी कुछ न कुछ आर्थिक सहायता करता रहता हूं । सारे सांसारिक कार्यों से उदासीन होता हुआ भी मैं आयुर्वेद विद्यापीठ तथा आयुर्वेद विश्वविद्यालय के कार्य संचालन में क्यों पड़ा इसका स्पष्ट कारण भी आप महानुभावों के सामने रख देना अनुचित न होगा । इसका मूल कारण यह है कि इस जीवन में मेरी जो भी उन्नति हुई है और जितना भी धनोपार्जन मैंने किया है वह केवल इस पुनीत आयुर्वेदिक

(शेष पृष्ठ २६३ पर)

एकोनचत्वारिंशत्तम-निखिलभारतीयायुर्वेद-विद्यापीठ-शिक्षासम्मेलनस्य सभापतेः
आयुर्वेदमार्त्तण्ड-भिषग्रत्न राजवैद्य पं० श्रीनंदकिशोरशर्म्मणो भिषगाचार्यस्य

अभिभाषणम्

आविर्भावमुपेयिवान् य उदधेश्चञ्चत्किरीटोज्ज्वलो
दीप्यत्कुण्डलवान् चतुःपृथुभुजः स्रग्वी हरिद्राम्बरः।
सौधं कुम्भमभीतिमम्बुजमथो बिभ्रज्जलौकां करैः
सः श्रीमान् भवताद् भवस्य भगवान् धन्वन्तरिः श्रेयसे ॥१॥
यत्प्रातिभरसासिक्त आयुर्वेदमहातरुः।
फलत्यद्यापि जगति महात्मानो जयन्ति ते ॥२॥
आयुष्याम्नायमाम्नाय नानोन्मेषैर्विवर्ध्य च।
जगतः श्रेयसे सक्ताः स्मरणीया दयामयाः ॥३॥

अयि चिकित्सक-कुमुद-कुल-राकाशशाङ्क-सङ्काशाः ! सविशेष-शेमुषी-प्रकाशित-चतुराशावकाशाः स्वागतसभाध्यक्षाः !! भारतीयचिकित्सोदञ्चना-चिन्तन-चतुराशयाः सदस्यमहाशयाश्च !!!

श्रीमदाद्यवैद्यभगवद्धन्वन्तरेरपारयाऽकम्पयाऽनुकम्पया प्राप्तोऽयं परमः प्रमोदावसर; यदत्र सुविख्यात-भैषज्यकला-कुशलाखिलाऽगदङ्काराऽलङ्कार-भूतानामनल्पानां विपश्चिद्वरेण्यानां धर्म्माचार्य्याणां शङ्करभगवत्प्रभृतीनां केरलाचार्य्याणाञ्च सुभिषजां प्रादुर्भावकेऽस्मिन् केरलप्रदेशे नानाविधोपयोग्यगण्य-पण्य-जातविस्तार-शोभमानेऽस्मिन् वि[illegible] [illegible]पती: स्म इत्यमन्दां प्रधानभूते कोट्टाकलाभिधे नगरे वयमाय[illegible] [illegible]परामह सन्निहितेष्वपि संख्यातिगेषु संख्यावत्सु वैद्यवरेण्येषु विद्वद्वरवरणीयस्य साभापत्य-पदस्य यस्तावन्महीयान् भारो मादृश आयुर्वेदपद्धतेर्नगण्यसेवके साधारणे भिषजि विन्यस्तः श्रीमद्भिः, कथं स सेत्स्यति सुफलाय श्रेयसे वेति जानीते स वै विश्वेषामीशिता भगवान् जानकीजानिः।

यदि कस्यचन मदन्यस्य आयुर्वेदागमपारदृश्वनश्चिकित्सकचूडामणितामुपेयुषो यशोजुषो मान्यमनीषिणो नियुक्तिरिह समकरिष्यंस्तत्र भवन्तो भवन्तस्तदावश्यं स्थानमिदं पदं वा परमशोभिष्यत।

किन्त्विदानीं मान्यानामादेशः शिवायैवेति, श्रीमतां निर्देशपालनं विधेयमेवेति, आयुर्वेदसेवाऽप्यौपयिकीति, धर्मकोटिमुपेतापि क्रिया लोकस्योपकर्त्तुमलमिति निश्चित्याहं पदमिदमधितिष्ठन्, कयाचिदपि सेवया, सदुपयोगेन वा, सुविचारेण वा, शुभमन्त्रणया वा,

सुखप्रयोगेण सहयोगेन वा, संविधानेन वा परितोषलेशमपि कलये चेदनुभवैकनिधीनां भिषक्शिखामणीनां, तत्सफलं ममात्रोपस्थानं, नान्यथेति स्मारयामि प्राकरणिकीं कालिदासीयां सूक्तिम्—

"आ परितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥"

तदहं निध्याय किमपि धान्वन्तरं धाम जगन्नैरोग्यकरं, परञ्च मम सर्वस्वभूतं जगदभिरामं श्रीलक्ष्मीरामाभिधानं श्रेयोनिदानं महश्चाशेषानत्र भवतो महतः सतश्च प्रणम्यास्यायुर्वेदविद्यापीठस्योपयोगाय, सम्मेलनस्य च श्रेयोवहनायायुर्वेदवाङमयमधिकृत्य यावत् किमपि मनाक् प्रस्तोतुमभिलषामि तावदेव ह्यस्माकमधन्यतया सम्मेलनस्यास्य निमन्त्रणप्रदातॄणां स्वागताध्यक्षाणां केरल-प्रादेशिकायुर्वैदिक-कांग्रेसाध्यक्षाणामार्यवैद्यानां स्वनामधन्यानां श्रीमाधववारियर्महोदयानां सपत्नीकानां वायुयानदुर्घटनया पुरन्दर-पुरातिथ्य-ग्रहणवार्त्तां संस्मृत्य सहसैवैकान्तदुःखजोऽश्रुसम्पातः प्रवर्त्तते । वारियर्महाभागानामिदमसामयिकं निधनं न केवलं दक्षिणवैद्यसमाज एव, अपितु निखिलेऽपि भारतीयवैद्यसमाजेऽनभ्रं वज्रपातमिव मन्ये । तेषां सौजन्यं, सङ्गठननैपुण्यं, अद्भुतञ्चिकित्सावैदुष्यं, जनोन्मादकरी वाग्मिता, तिग्मता तेजोविशेषस्य, प्रणयिता च परार्त्तिप्रहाणसरणौ न केषामप्यसाम्मुख्यं विदितचराणां चक्षुष्मतामादधातीति तेषां पुण्यस्मरणेनैवात्मानं पुनीमहे महेऽत्र सर्वतः पूर्वम् । प्रार्थयामहे च निखिलजीवलोकसाक्षिणं कारुण्यैकनिधानं परमशान्तिनिदानं परब्रह्माभिधानं महस्तस्मै दिवङ्गताय महात्मने शाश्वतिकीं शान्तिमभिप्रदातुम् ।

विद्वद्वर्या वैद्यवर्य्याः !!!

सुविदितचरमेवेदं तत्र भवतामार्याणां यत् सकलशास्त्रविज्ञानं सज्ञानं श्रुतिस्मृति-पुराणादिषु सुरभारतीरत्नभाण्डागारप्रतीकेषु सुप्रबन्धेष्वेव चमत्कुरुते नान्यत्रेति । आर्यावर्त्तस्य विकासक्रमे प्रवर्द्धमानेऽपि समयः सः सुवर्णमय एवासीत्, यत्र धर्म्मकर्म्मादयः शौचाचार-विचाराः, आरोग्यसत्वप्रवर्धनप्रयत्ना आर्त्तवा आहारविहाराः, रोगापनोदनीयाः सिद्धौषध-प्रसाराः, दण्डविधानादयो राजवेद्य-विचाराः, प्रायश्चित्तादयः स्वान्तःशोधनोपचाराः, यागादयः श्रेयसां प्रसाराः, परमेश्वरोपासनादयश्चेतःशुद्धिविस्ताराः, योग-वेदान्त-सांख्यादयश्चात्मदर्शन-समाचाराः, किम्बहुना अशन-पीतिप्रमुखा निखिला अपि लौकिकव्यवहाराः संस्कृत्रिमामेव सुरवाचमुपजीव्य समुपनिबद्धाः समुपलभ्यन्ते । अन्यत्र भाषासु ईदृक्प्रत्यययावहा इयत्परिच्छेदा अनन्ता इव न विद्यन्ते । तदिदं महामहिमशालित्वं संस्कृतवाङमयस्य न को न स्वीकरोति हृदयवान् मानवः इति सार्वजनीनमनुभवामि ।

तदीदृशे विश्वोपकारकर्तृत्वसहस्रपूर्णेऽस्मिन् संस्कृतवाङमये विमले विशाले महासमुद्र इव चतुर्दशरत्नेष्वेकमायुर्वेदरत्नमपि परितः प्रस्फुरदेव जगदीश्वरावतारेण भगवता धन्वन्तरिणा प्रादुष्कृतमिति तदिदं भैषज्यं नाम चिन्तामणिरत्नमिव भावनीयम् । चिन्तामणिर्हि चिन्तयतां ध्यायतां मनसि विचारयताञ्च देहवतां चिन्तनानुसारमेव मनोरथान् प्रददानो न क्षीयते,

न हीयते नाल्पीभवति, न च प्रभाः परिक्षिणोति, प्रत्युत अधिकाधिकं चमत्कुर्वन्नतिशयेन समर्चयतामभीष्टानि वर्षतीत्यायुर्वेदोऽपि सुचिरं परिशीलयतामायुषः शास्त्रं पठतां सम्यगधीयानानां तत्प्रयोगेषु मनसा परोपकृतिमत्या समनुषञ्जताञ्च लोकानां वैद्यानां मनोरथान्, अभीप्सितानि यशोऽर्थराशि-प्रतिष्ठा-पुण्य-मैत्रीप्रभृति-सत्फलानि च सफलयत्येवेति कियतीं प्रशस्तिं कलयामो वयमस्यायुषो वेदस्य। यस्यालोचनावसरे हि साम्प्रतं साम्प्रतिका गृहसर्वस्वं तिरस्कुर्वाणाः पाश्चात्यगुणगण-पोषणप्राणाः पंडितंमन्यमाना मानवा अपि परमं विस्मयमादधाना दन्ताऽन्तर्दत्ताङ्गुलयो लोलुक्यन्ते।

अभिरूपभूयिष्ठाः! भिषक्श्रेष्ठाः!!

आयुर्वेदो हि नाम व्याधिप्रतीकारव्याख्यानम्, वेदनम्। स चायुर्वेदो भगवता ब्रह्मणा त्रिस्कन्धत्वेन वर्णितचरः। व्याधीनां सप्तविधत्वं पुनर्द्विविधत्वं वा महर्षयः प्रायशोऽनुमन्यन्ते। ते पुना रुक्सामान्यादेकाकारा अपि समुत्थान-स्थान-वर्ण-नाम-वेदना-प्रभावोपक्रम-विशेषैरपरिसंख्येया भवन्ति। उक्ता अनुक्ता वा व्याधय उक्तस्कन्धत्रय एवान्तर्भवन्तीति निश्चप्रचम्।

तद्धि ब्रह्मणा प्रोक्तं हेतुलिङ्गौषधज्ञानात्मकस्कन्धत्रिकप्रविभक्तं स्वस्थातुरपरायणं किञ्चिदिव निरूप्यते। तत्र हेतुस्कन्धो यथा हेतुशब्देन निमित्तम्, आयतनम्, कर्त्ता, कारणं, प्रत्ययः, समुत्थानम्, निदानमित्येतेषां च ग्रहणम्।

आध्यात्मिकः, आधिदैविकः, आधिभौतिक इति, असात्म्येन्द्रियार्थयोगः, प्रज्ञापराधः, परिणाम इति, प्रधानं, व्यभिचारीति, दूरस्थः, निकटस्थ इति, रुग्जनकः, दोषप्रकोपक इति व्यञ्जकः, उत्पादक इति, बाह्यः आभ्यन्तर इति, प्राकृतः, वैकृत इति, प्रकृतियोगः, अप्रकृतियोग इति, आशयापकर्षी चेत्येतेषां पल्लवीभूतः समुदायः स्कन्धः, इत्यर्थः।

लिङ्गस्कन्धो यथा—लिङ्गशब्देन पूर्वरूपम्, "लिङ्गम्, आकृतिः, चिह्नम् संस्थानम्, व्यञ्जनम्, रूपम्"-इत्यादि शब्देन परीतं लक्षणञ्च—जात्यागतिशब्दाभ्यां व्याप्ता सर्वप्रकारा सम्प्राप्तिश्च, यथा-संख्या सम्प्राप्तिः, विकल्पसम्प्राप्तिः, प्राधान्यसम्प्राप्तिः, बलसम्प्राप्तिः, कालसम्प्राप्तिश्चेति, वर्णस्वरीयादिलक्षणोऽरिष्टराशिश्चेत्येतत्सर्वमपि गृहीतम्भवति।

औषधस्कन्धो यथा—औषधशब्देन आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकास्त्रय उपायाः, सात्म्यशब्दापरपर्य्यायाअष्टादश उपशयाः। हेतुविपर्य्यस्तहेतुविपर्य्यस्तार्थकारिणश्चौषधान्नविहाराः, व्याधिविपर्यस्त-व्याधिविपर्यस्तार्थकारिणश्चौषधान्नविहाराः, हेतुव्याधिविपर्यस्त-हेतुव्याधिविपर्य्यस्तार्थकारिणश्चौषधान्नविहाराः, मन्त्रौषधिमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपाततीर्थगमनादिरूपो दैवव्यपाश्रयः, आहारौषधयोजनारूपो द्रव्यव्यपाश्रयः, मनोनिग्रहादिरूपः सत्वावजयश्च, वमनविरेचनास्थापनानुवासनशिरोविरेचनप्रकारमन्तःपरिमार्जनम्, बाह्यस्पर्शप्रधानमभ्यङ्गस्वेदप्रदेहपरिषेकोन्मर्दनोद्वर्तनादिरूपं बहिःपरिमार्जनम्, छेदनभेदन-व्यधनदारणलेखनोत्पाटनप्रच्छनसीवनैषणाग्निक्षारजलौकोरूपं शस्त्रप्रणिधानम्, सन्तर्पणोपक्रमः, अपतर्पणोपक्रमश्चेत्यादयः सर्वेऽपि गृह्यन्ते।

इत्थं स्कन्धत्रयप्रविभक्तोऽयमायुर्वेदतरुः कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषरूपेषु अष्टास्वङ्गेषु प्रविसृतो धनच्छायो जगन्ति नैरोग्यविश्रान्तिसुखमनुभावयतीतिवदन्-अहमग्रेऽस्यायुर्वेदस्य विकासक्रमं कञ्चन उपढ़ौकयामि।

सोऽयमायुर्वेदः आदौ ब्रह्मणः सकाशाद्दक्षप्रजापतिं प्राप्त, प्रजापतेश्चाश्विनौ, ताभ्याञ्च महेन्द्रमिति दैवोपक्रमिको विकासः, परं स दिव्येव प्रसृतो न भूमिभागे। अतः परञ्च धन्वन्तरिभरद्वाजादिभिः क्रमशः प्रसारितमिदमायुःशास्त्रं भूतले सम्यक्प्रकारेणेति सर्वेषां भिषजां नाविदितचरम्।

तदस्य ह्यष्टाङ्गायुर्वेदस्य विकासक्रमेतिवृत्तं नितांतं प्रत्नतमं वरीवर्त्ति। निश्चप्रचमेतद्वक्तुं शक्यते यन्मूलग्रंथानां विद्यमानस्वरूपो यो दृग्गोचरीभवति, स भूयोदर्शनजन्य-ज्ञान-परम्परातः प्राप्तरूप एवेति। कालानुसारिझञ्झानिलान्दोलनैस्तेऽनेकधांशिकक्षतिमापादिताः। सुविशेषशेमुषीकैः परिष्कारकैश्च तत्पूर्त्यै अपि महत् प्रयतितमेव स्यादित्यपि न तिरोहितं तदक्षरजुषां वैद्यविदुषाम्। चरकसंहिताया विद्यमानस्वरूपे संस्कर्त्तुः सम्पादकस्य परिश्रमस्तु प्रत्यक्षचर एव सर्वेषामस्माकम्। दृढ़बलस्यैषा स्वीकृतिः समास्ते महामहिमशालिनी, यत्—

> अस्मिन् सप्तदशाध्यायाः कल्पाः सिद्धय एव च।
> नासाद्यन्तेऽग्निवेशस्य तन्त्रे चरक-संस्कृते॥
> तानयं कापिलबलिः शेषान् दृढ़बलोऽकरोत्।

एवमैतिहासिकानुसन्धानपरा विपश्चित्प्रवराः कतिपये चिकित्सकवराश्चरकसंहितायाः समयनिर्णयाभ्युपगमे साफल्यमलभन्त। गवेषणासरणिरेषा सम्प्रत्यपि कार्यपथमधिरूढ़ाऽवलोलुक्यते। नास्त्ययमं विषयं पल्लवितुं मेऽत्र लिलेखिषा। केवलमेतावन्मात्रमत्र परिचाययितुं यते यत् संहितानां रचनाक्रमस्तासु स्वत एव परिपूर्णतामवगाहते। विषयाणां क्रमबद्धं चारुचयनमपि भाषासौंदर्यमनुसरति। अर्थात् यादृशं यत्र भाषालालित्यं, तादृशं तत्र क्रमिकं विषयसञ्चयनमपि। प्रयत्नोऽयं तेषां वस्तुतः साफल्यमभजत यदन्वेषकाः प्रशासनीया वा संहितैकमात्राध्ययनेनैवाङ्गाष्टकमवगच्छेयुः, युगपदेव च कस्याप्येकस्य मनोनीतस्य विशिष्टांगस्य विशेषज्ञताञ्च ते लभेरन्। उदाहरणार्थं-चरकसंहिता पूर्वं पुरस्कर्त्तुं शक्यते। या हि कायचिकित्सादृशा विशेषज्ञताया निकषोपलतां बिभ्रती सभवशिष्टांगसप्तकस्य ज्ञानतालिकायाः संक्षेपमपि प्रदर्शयति। दीर्घंजीवितीयापरपर्यायेणावतरणाध्यायेन दोषत्रयानुसारं वैशेषिकदर्शनेन सहायुषो वेदस्य साम्यमाविष्कुर्वता भेषजसाक्षात्करणं तद्वर्गीकरणञ्च प्रारभ्यते। विधेयानन्तेसदः प्रत्याययितुं चाग्रिमेषु द्वितीयतृतीयाद्यध्यायेषु अग्रे च भैषज्यपरिचयः परिपुष्यते। मुष्टियोगसध्रीचीनेषु च कण्डूपामा-विचर्चिका-दद्रुप्रभृतिषु रुजां विस्तारेषु सुपरिचितभैषज्यप्रलेपादिभिश्चमत्कृतिचञ्चितः सुविस्मयात्रहो विश्वासः समापाद्यते।

सोऽयं क्रमः सूत्रस्थाने यथायथं प्रतिपाद्यमानो दृग्गोचरी भवति। सूत्रस्थाने हि भेषजचतुष्कः, स्वस्थचतुष्कः, निर्देशचतुष्कः, कल्पनाचतुष्कः, रोगचतुष्कः, योजनाचतुष्कः, अन्नपानचतुष्कः इति चतुष्कसप्तकं वर्णितं वरीवर्ति। समवशेषायां चाध्यायद्वय्यां चिकित्सकस्य कर्तव्याणां निर्देशस्तज्ज्ञानपूर्त्तये च वितर्कस्य क्रमोऽपि समुपनिबद्धो दरीदृश्यते। प्रसंगानुगत-मिदमप्यवश्यं समुट्टङ्कनन्न वैयर्थ्यमेष्यति, यत्-चरकसंहितां व्याचिख्यासवो भिषजो ग्रंथस्या-र्थावबोधने तद्रहस्यावकलने च सहस्रं वत्सराण्यतिवाह्य स्वकीयभावानां मूर्त्तरूपमिव तद्व्याख्यानं भाष्यञ्चारीरचन्। निधीयंति चैतानि व्याख्यानरत्नानि संस्कृतवाङ्मय-भाण्डागारस्यायुर्वेदौपयिकस्येति सार्वजनीनम्।

चरकव्याख्यातृषु वर्त्तन्ते त इमे कतिपये भाष्यप्रणयिनः कृतिनः। यथा-हरचन्द्रः, जैज्जटः, ईशानदेवः, ईश्वरसेनः, वाप्यचन्द्रः, बकुलः, गुणाकरः, चंद्रिकाकारः, आषाढ़वर्मा, ब्रह्मदेवः, हेमदत्तः, पैतामहः, गदाधरः, योगेन्द्रनाथसेनः, ज्यौतिषचंद्र-सरस्वती चेत्यादयः शतशो लुप्तप्रकाश्याप्रकाश्य-भाष्यनिधयः कृतिनश्चिकित्सकचूड़ामणयः। रोगनिश्चयं टीकमानो विद्वान् श्रीविजयरक्षितस्तूपरिनिर्दिष्टानां कतिपयटीकाकृतां स्मरत्यपि यथा—

"भट्टार-जेज्जट-गदाधर-वाप्य-चन्द्र—
श्री चक्रपाणि-बकुलेश्वर-सेन-भोजैः।
ईशान-कार्त्तिक-सुकीर-सुधीरवैद्यै—
मैत्रेय-माधवमुखैर्लिखितं विचिन्त्य॥" इति।

सूचीनिर्दिष्टास्त्रयश्चरमाष्टीका कृतो वर्त्तमानशताब्द्यामेवास्यां लब्धजनुषः समासते। तदस्मिन् ग्रन्थरत्ने महत्यनुपमे निहितं प्रदीप्तमिव ज्ञानं विविधाभिर्दृष्टिभिरुररीकृतमुदारैर-गदङ्कारैरितिमदीयोऽभिप्रायः। कतिपयसम्बत्सरेभ्यः पूर्वं राष्ट्रभाषयापि चास्याः संहिता-याष्टीकाः सन्दृब्धाः। यथा हि जामनगरवास्तव्येन महता श्रीप्राणजीवनेन सेयं चरकसंहिता तिसृष्वपि (अंग्रेजी-हिन्दी-गुजराती) भाषासु सम्यगनूदिता। तत्रच प्रातिस्विकानि टिप्पणानि यथास्थानं प्रदत्तानि। ग्रन्थाशयं विशकलयितुं टिप्पण्युट्टङ्कनस्य सोऽयं क्रमः पूर्वेषां यशोजुषां भाष्यकारविदुषामप्यासीदेव। यथा श्रीविजयरक्षितेन चरकसंहितायाः कियन्तःशिरसीयेऽध्याये क्षयस्थानवृद्धिभिर्दोषान् विवेचयता स्वतः पूर्वोद्भवयोर्द्वयोष्टीकाकृतोर्मते समुल्लिखिते। यथा—

"प्रकृतिस्थं यदा पित्तं मारुतः श्लेष्मणः क्षये।
स्थानादादाय गात्रेषु यत्र यत्र विसर्पति॥
तदा भेदश्च दाहश्च तत्र तत्रानवस्थितः।
गात्रदेशे भवत्यस्य श्रमो दौर्बल्यमेव च॥

अस्य प्रयोजनं वातस्यैव तत्र विगुणस्य स्वस्थानानयनं कार्य्यन्न तु पित्तस्य ह्रासनम्। ये तु एनां पित्तस्य स्थानाकृष्टिं न विदन्ति, ते दाहोपलम्भेन पित्तवृद्धिं मन्यमानाः पित्तं ह्रासयन्तः पित्तंक्षयलक्षणं रोगान्तरमिवोत्पादयन्त आतुरमतिपातयन्तीति भट्टारहरिचन्द्रः।

अन्येत्वाहुः—भ्राजकादिभेदेन सर्वदेहस्थिते पित्ते यदा स्वाशयाकृष्टं पित्तमवयवान्तरमनिलेन प्रापितं तदा तदवयवान्तरस्थितं पित्तमागन्तुकपित्तसम्बन्धेनाधिकमेव जातं, ततश्च पित्तवृद्धिलक्षणैवेयं दुष्टिर्न दुष्ट्यन्तरम् अन्यथा दाह एव न स्यात्। "न हि समानस्थो दोषो विकारं जनयति" इति।

भट्टारहरिश्चन्द्रस्य त्वयमभिप्रायः "यद्यप्येवं तथापि चिकित्साभेदार्थं वृद्धि-क्षय-व्यतिरिक्तस्थानान्तरगतिरूपो दुष्टिविशेषोऽवश्यमेवैष्टव्यः। अन्यथा वृद्धं पित्तमिति मत्वा विरेचनं पित्तह्रासनं वा कार्य्यम्। न च तत्तत्र योग्यम्, किन्तु स्वस्थानानयनम्। यथोक्तं चरकाचार्येण—"क्षयः स्थानं च वृद्धिश्च विज्ञेया त्रिविधा गतिः" इत्यादि तत्प्रायिकमिति।
(मधुकोषः)

अष्टाङ्गायुर्वेदविकासपौर्वापर्य्यसमीक्षया सिद्धयतीदं यच्चरक संहितायाः प्रणयनसमये जगतां स्वास्थ्यमतिसमुन्नतस्तरीयमेवासीत्। यतो हि रसायन-वाजीकरणप्रकरणं तत्र चिकित्सातः पूर्वमेवोपनिबद्धमास्ते। परं वाग्भटेन तत्प्रकरणमुत्तरतन्त्रे पृथक् सन्दृब्धम्। तदस्यायुर्वेदस्य प्रयोजनं हि स्वस्थस्य स्वास्थ्यसंरक्षणम्, आतुरस्य व्याधिपरिमोक्षः—इति द्वेधा कथितम्। तच्चाचार्यवाग्भटेन सूक्ष्मेक्षिकया निर्वोढम्। उक्तसंहितायाश्चिकित्सास्थाने ज्वर-गुल्म-ग्रहणीनाञ्चिकित्साप्रकरणानि प्रातिस्विकाङ्काञ्चन धोरणीं धारयन्ति। आयुर्वेदे वर्णिताः सिद्धान्ता वर्गीकरणभित्तावेवावलम्बिता इति न विस्मर्त्तव्यम्। हेतुविभागावसरे वात-पित्त-कफा एव वर्गीकरणविधया व्याख्येयाः। इदमपि सिद्धप्रायं यत्त्रिदोषनाम्ना व्यवहृतानां वातपित्तकफानां स्थूलसूक्ष्म-सूक्ष्मतरतमा अनेकशो भेदाः शक्यसम्पादाः। तदेतेषां मूर्त्तामूर्त्तत्वेऽपि कल्पनीय एव। अपेक्षाकृता च पित्तश्लेष्मभ्यां वातस्य महत्ता विशेषेण सूचिता। वातस्य स्रंसभ्रंशव्यासाद्या वेदना स्वलक्षणीयन्ति च। एवं पित्तस्यापि लीलाकोटिरपूर्वैव। आर्षभाषासु तदेतेषां मौलिकतत्वानां विवेचनमूहापोहविधया कलितमिदमाश्चर्यावहम्। तथा हि—"अशीतिर्वातविकाराः, तदत्र वातविकाराणामसंख्येयायानामाविष्कृततमा व्याख्याताः......सर्वेष्वपि खल्वेतेषु वातविकारेषूक्तेष्वन्येष्वनुक्तेषु वायोरिदमात्मरूपमपरिणामि कर्मणश्च स्वलक्षणं यदुपलभ्य तदवयवं वा विमुक्तसन्देहा वातविकारमेवाध्यवस्यन्ति कुशलाः"
(चरक सं० सू० अ० २०)

इदमत्राप्यध्येयमेव—उपक्रमाः, उपक्रममार्गाश्चेति भिन्नकोटिका एव वर्णितचराः, मधुराम्ललवण-स्निग्धोष्णा वातोपक्रमाः, स्नेहनस्वेदनास्थापनानुवासनादीनि वातोपक्रममार्गाः, मात्रा कालश्च तदुभयसाधकौ भवतः। यथा—"तं मधुराम्ललवणस्निग्धोष्णैरुपक्रमैरुपक्रमेत। स्नेहस्वेदास्थापनानुवासननस्तःकर्मभोजनाभ्यङ्गोत्सादनपरिषेकादिभिर्वातहरैर्मात्रां कालञ्च प्रमाणीकृत्येत्यादि।
(चरक सू० स्था० अ० २०)

पित्तश्लेष्मणोः सम्बन्धे बहून्युदाहरणानि सम्प्रसार्य न हि विस्तारविधेः प्रयोजनम्। अत्रास्माभिर्व्याहृतमेव यत्—लक्षणभेषजस्कन्धयोरपि वर्गीकरणपद्धतिमाश्रित्यैव विशिष्ट्या सरण्या प्रवर्त्तनीयम्।

लक्षणस्कन्धे चक्रपाणिदत्तेन रोगानीकविमानव्याख्यामुपक्राम्यता दत्तेयमवतरणिका—"पूर्वाध्याये स्रोतोरूपाधिष्ठानभेदेन रोगानभिधाय प्रभावादिभेदेन रोगानभिधातुं रोगानीकं विमानमुच्यते।" अत्रैव मूले मुनिना लिखितम्—

"द्वे रोगानीके भवतः..............प्रभावभेदेन–साध्यमसाध्यञ्च........बलभेदेन—मृदु दारुणञ्च..........अधिष्ठानभेदेन—मनोऽधिष्ठानं शरीराधिष्ठानञ्च,..............निमित्तभेदेन—स्वधातुवैषम्यनिमित्तम्, आगन्तुकञ्च........आशयभेदेन—आमाशयसमुत्थं पक्वाशयसमुत्थञ्चेति। एवमेतत्प्रभावबलाधिष्ठान-निमित्ताशयद्वैधं सद्भेदप्रकृत्यन्तरेण भिद्यमानमथवा सन्धीयमानं स्यादेकत्वं बहुत्वं वा,.........अपरिसंख्येयं—पुनर्यथा......रुग्वर्णसमुत्थादीनामसंख्येयत्वात्।" (च० वि० स्था० अ० ६)

अपि च रोगाणामनुबन्ध्यानुबन्धकोटिकं विवेचनमतीव महत्त्वपूर्णम्। एतावन्मात्रज्ञानेनापि रुजां निश्चायिकायाः प्रणाल्या दिग्दर्शनं सुकरमेव। चक्रपाणिदत्तेनैतन्निर्दिष्टं स्पष्टमेव यत्—

"स्वतन्त्रो हि दोषः प्रकोपकाले विकारान्करोति। अस्वतन्त्रस्तु अप्रकोपकाल एव विकारं प्रधानदोषेरितःसन् करोति। तद्विपरीतलक्षण इत्यनेन अव्यक्तलिङ्गोऽस्वहेतुप्रकुपितः परचिकित्साप्रशमनीयश्च अनुबन्ध इति लभ्यते। अनुबन्धो हि-अबलवत्त्वेन न लिङ्गं व्यनक्ति, तथा परहेतुना किञ्चिदनुगुणेन कृतः परचिकित्सयैव किञ्चिदनुगुणया शाम्यति।" अनुबन्धशब्दश्चायं व्यक्तलिङ्गतादिधर्मयुक्ते दोषे वर्त्तते।

(च० वि० स्था० चक्र० टीका० अ० ६)

अत्रेदमाकूतम्—कस्मिंश्चिदपि रोगविशेषे तस्य हेतवो लक्षणानि च समानरूपेण संगृहीतानि भवन्ति। यत आभ्यन्तरेणैव हेतुजातेन लक्षणानां निर्णयः स्वाभाविकः। दोषदूष्याणामसामान्या प्रतिक्रिया विशिष्टप्रणालिकानि लक्षणजातानि सूचयति। अतो वच्मो हेतुलक्षणयोर्द्वयोरपि तादात्म्यसम्बन्धो वरीवर्त्ति। वस्तुतः स्पष्टीकरणार्थमेव रोगस्कन्धस्य पृथग् विवेचनया सहैव त्रिविधशिष्यबुद्धिहिततयैव हेतुलक्षणयोरपि पार्थक्येन विवेचनं विहितमिति समवधेयम्। वस्तुतस्तु हेतुलक्षणज्ञानं सहचरितमेव प्रभवद् भैषज्यविज्ञानेऽप्यनन्तरं भिषजां कोविदतामाविष्करोतीति। देशकालज्ञानमन्तरा ज्ञातभैषज्यविज्ञानोऽपि भिषक् प्रयोगपरिपाट्यां सर्वदा निष्फलो भवति। अतएव योजनाचतुष्कस्य महत्त्वं वर्णयन्ति प्राञ्चः। यथा चाहुरभियुक्ताः—

यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः।
देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिरसंशयम्॥

भेषजस्कन्धविवेचनप्रसङ्गेन सममेव कानिचिदुदाहरणानि कायचिकित्सासम्बद्धानि प्रस्तौमि। तथाहि परमविवेचकेनाष्टाङ्गहृदयव्याख्यात्रा श्रीहेमाद्रिणा ह्यष्टाङ्गकं परिभाषमाणेन समुल्लिखितम्—"तत्र कायशब्देन सर्वावयवं सर्वावस्थञ्च शरीरं गृह्यते। बालादिशब्दैस्तस्यैवावस्थाविशेषा लक्ष्यन्ते, ऊर्ध्वाङ्गन्त्ववयवविशेषः, बालः प्रथमं वयः, ग्रहो ग्रहार्त्तत्वम्, ऊर्ध्वाङ्गं शिरः, शल्यं व्रणार्त्तत्वम्, दंष्ट्रा विषार्त्तत्वम् शल्यदंष्ट्राशब्दौ व्रणविष-

मात्रोपलक्षणौ, जरा पश्चिमं वयः, वृषः स्त्रीप्रसङ्गित्वम्............विवक्षितविवेकाच्च चिकित्साया एव ह्यङ्गत्वम्,..........तत्रावस्थामात्राश्रयाणां बालादिव्यतिरिक्तावस्थाविशेषाश्रयाणामवयवमात्राश्रयाणाम्, ऊर्ध्वाङ्गव्यतिरिक्तावयवविशेषाश्रयाणाञ्च व्याधीनां कायचिकित्सिते प्रतीकारः। बालचिकित्सादिषु तु तत्तद्विशेषैकनिष्ठानामिति शास्त्रार्थेतिकर्त्तव्यता।''

हेमाद्रिमतेन कायचिकित्सैवायुर्वेदस्य विशिष्टा मूलभित्तिः। शेषाणि शल्यादीनि सप्ताङ्गानि कायचिकित्सामेवावलम्बन्ते। शल्यतन्त्रीयाणि छेदनभेदनादिशस्त्रसाध्यानि कर्माणि विहाय व्रणीयेषु षष्टिमितोपक्रमेषु एकादश उपक्रमाः केवलेन कायचिकित्सासूत्रेणैवोपनिबद्धाः सन्ति, इत्थमत्र सुश्रुतः—''प्रागुपदिष्टः शोफस्तस्यैकादशोपक्रमा भवन्त्यपतर्पणादयो विरेचनान्ताः, ते च विशेषेण शोथप्रतीकारे वर्त्तन्ते.........शेषास्तु प्रायेण व्रणप्रतीकारे हेतव एवेति।''

दुरदृष्टतया पाश्चात्यैश्चिकित्सकैर्व्रणप्रतीकारमात्रं हि शल्यकर्म मन्यते। यदि सुश्रुतसम्मता मर्मपरिहारपुरस्सरं शल्यकर्मणां पूर्वे ह्युपक्रमा अवलम्बेरन्, तदापि सुनिश्चितरूपेण व्रणकर्मणां संख्या जगति वर्त्तमानानुपातेन सामिभागभूतैवावशिष्येत। इत्थंप्रकारतयैव सर्वेष्वङ्गेषु कायचिकित्सायां निर्भरत्वं स्वयंसिद्धम्।

बालतन्त्रे शिशोर्वेदनादिकं प्रातिस्विकलक्षणैर्विज्ञेयमेतावदंशं परिहाय चिकित्सिते सर्वं कायचिकित्सासमानान्तरम्। अत्र केवलं देशकालमात्राविशेषाववोधेनैव भेषजानि समुपयुज्यन्त इति सिद्धयति।

भूतविद्या हि मानसशास्त्रसम्बद्धमेकमायुर्वेदस्यैवाङ्गम्। अत्र हि चिकित्सायां प्रायशो व्यवह्रियमाणोत्कटगन्धबहुलद्रव्योपयोगः प्रायो वैशिष्ट्यमेवावहति, शेषश्च पञ्चकर्माद्युपक्रमः कायचिकित्सासमान एवेति।

शालाक्यतन्त्रे पञ्चकर्मणामुपयोगिताभिज्ञजनविदितैव। अथ च सत्यावश्यकत्वे शल्यकर्मणो मिश्रणमपि सामान्येनात्र दृग्गोचरीभवति, केवलमूर्ध्वाङ्गस्य विवेचनन्तदीयाङ्गस्य प्रातिस्विकं वैशिष्ट्यम्।

स्थावरजङ्गमद्वैविध्येन विषाणामाक्रमणमगदतन्त्रस्य स्वीयं वैशिष्ट्यम्, उपक्रममार्गस्तु कायचिकित्सां बाहुल्येनानुकुरुते। यत्र कुत्रचिदंशादिषु छेदनादिक्रिया क्षार[illegible]मित्यादि शल्यतान्त्रिकं कर्माप्यंशेनात्रोपयोगि। [illegible]करणतन्त्रयोस्तु कायचिकित्सायाः सर्वांशेनोपयोगोऽनुभूयते। यथाहुः—

यथास्थूलमनिर्वाह्य दोषान् शारीरमानसान्।
रसायनगुणैर्जन्तुर्युज्यते न कदाचन॥

मदीयकथनस्यायमाशयो यत् कायचिकित्साविशेषज्ञस्य कायचिकित्साकर्मणि बौद्धिको व्यापारः श्रमो वा शल्यादिचिकित्सकापेक्षया नूनमधिक एव प्रतीयते। स हि नितरां मननकोटिमवलम्ब्य प्राय आध्यात्मिकेन मार्गेण प्रचलति। महर्षिभिस्तु यत्र कुत्रचन- स्थले चिकित्सामार्गं विशदयद्भिरेतत्स्पष्टीकृतम्, यत्-ऋते रोगविशेषनामोल्लेखात्केवलं ज्ञानालोक-

मार्गेणैव रोगस्य लक्षणैर्हेत्वन्वेषणसामञ्जस्यन्निरूस्य चिकित्साविधानेन अद्भुतं साफल्यमवाप्तुं-शक्यते। मदीयो द्रढीयान् विश्वासः—यत्त्रिविधशिष्यावबोधधियैव रोगलक्षणानां चिकित्सा-सरणीनाञ्च शास्त्रे तत्तत्स्थलेषु सामूहिकानि दुर्गाणीव विरचितानि प्रतिभान्ति। उत्तर-कालीनाः संग्रहकारा अपि सुभिषजोऽमूं सरणिं समन्वीयुः, अतएव राजयक्ष्मणः क्षतक्षीणस्य च सामान्यमनुसन्धायैव चरकमहर्षिमुपमीयता वाग्भटेन विचक्षणप्रवरेणाचार्यवरेण न क्षतक्षीणः पृथक् पठितः। एवमेवार्शोऽतिसारग्रहणीरुगधिकारान् पृथक् पठित्वापि चिकित्सासूत्राणां मिथः समन्वयादनुग्राहकतया स एवेत्थं समादिशत्।

अर्शोऽतिसारग्रहणीविकाराः प्रायेण चान्योन्यनिदानभूताः।
सन्नेऽनले सन्ति न सन्ति दीप्ते रक्षेदतस्तेषु विशेषतोऽग्निम्॥

(वाग्भटचि० स्थानम्)

पाचकाग्निविकाराननुसन्दधानो वाग्भटाचार्य इदमित्थं तावन्निश्चकर्ष सर्वसारम्। अष्टाङ्गहृदयागते निदानस्थानेऽपि पाण्डुशोफविसर्पाणां रुजामेकत्रैवाध्यायेऽन्तर्भावो दृग्गोचरी-भवति-इति व्याधिवर्गीकरणस्यैवोदाहरणान्येतानि। अत्र हि स्फुटं कञ्चन सङ्केतमुट्टङ्कयितुम-भिलषन्निदमावेदये द्वित्रैरुदाहरणैः। तत्र प्रथमोदाहरणं यथा-वृक्करोगः समृद्धं विवेचनमपेक्षते, परमेषां नामग्राहं व्याधिविशेषस्य स्वल्पमपि परिचयन्न चञ्चयतीति बहु विमृश्यैव प्रत्येमि, यद्विषयेऽस्मिन् विमर्शैषणाया आवश्यकतामन्वभविष्यंस्तदा महर्षयः स्वयमेव किञ्चनानवद्यं हृद्यञ्चाभणिष्यन्।

शोथसामान्यनिदाने निजे श्वयथुविवरणे ये हेतवो लक्षणानि चाविष्कृतानि, तानि समस्तानि परिचाययन्ते वृक्कलक्षणान्येव। ग्राम्याब्जानूपमित्यादि शोथाधिकारिकं वर्जनीयम-पथ्यजातं वृक्करोगाणामपथ्यसंग्राहकत्वं सङ्केतयति।

वृक्करोगाणां नानाविधता तु सुनिश्चितैव। तेषु सङ्कोचः, स्थानभ्रंशः शोथः, प्रदाहः-इत्यादीनि लक्षणानि सर्वथा दोषजान्येवोद्भावनीयानि। वृक्करचनाया अतिगहनत्वाद्यदा कदा दोषसाधारणैरुपक्रमैः स्रंसव्यासादीनामकस्माद्विलये संजातेऽपि मन्ये-आनुबन्धिकलक्षणानि तु याप्यरूपेण सर्वथा प्रचलन्त्येव। अत एवानुबन्धिकरूपेण रोगस्य प्रायो दीर्घकालानुबन्धिता सर्वथानुमीयते। परं गुल्माष्ठीलादिवत् वृक्करोगाणां नामग्रहणं न कर्तुं पार्य्यते। मूत्रमार्गेण मलं संशोध्य रक्तस्य स्वच्छतापादनं वृक्कयोर्मुख्यं कर्मनिदिशन्ति विद्वांसः। तदिदं स्वाभाविकं कर्म वृक्कयुगलेन शोणितादेव सम्प्राप्यम्। तेनान्वयसम्बन्धेन शोणितमेवानुग्राहकं वृक्कयोः। फलतः वृक्करोगाणामुपक्रमकाले शोणितशुद्धिरेव सर्वतः प्रथममपेक्षणीया भवति। प्रमेहः, जलोदरः, पाण्डुता, शोथः, मनसोऽस्थैर्य्यमित्याद्या विकृतयो वृक्करोगाणां परिचायकलक्षणत्वे-नाभिमताः। पाश्चात्यचिकित्सकास्तु वृक्कक्षयमपि मन्वते।

मुनिना विधिशोणितीयाध्याये सूत्रस्थान एतत्सर्वमपि विवेचनं मौलिकरूपेण विहितम्। इदन्तु नो विस्मयावहं यत्पाश्चात्यचिकित्सासरण्या वृक्करोगाणां सर्वथा निर्णये सञ्जातेऽपि चिकित्साविधयः प्रायशः साफल्यकोटिं नाधिरोहन्ति। मन्ये चिकित्सायामसाफल्ये पाश्चात्य-दृष्टिकोणेन वृक्करोगाणां स्वातन्त्र्येण स्वीकारकल्पनैव मूलं नान्यत्। वस्तुतो हि शरीरे

केनचित्सम्प्राप्तिविशेषेण सञ्जातेषु तत्तद्रोगविशेषेषु (पाण्डुशोफादिषु) वृक्कयोर्विकृतिरप्यवश्यम्भावितया अस्वतन्त्रैव समुदेति। यतः प्राचीनैः स्वतन्त्रपरतन्त्ररोगाणां कल्पना एतादृशे दुरूहे रोगनिश्चयसम्बाधे कृता। परतन्त्रा व्याधयः प्रधानरोगस्य क्रियमाणे चिकित्सिते स्वयमेवोपशाम्यन्ति। तथैव वृक्करोगा अपि पाण्डुशोफादीनामुपक्रमे प्रचाल्यमाने स्वयमेवोपशाम्यन्ति, दुर्बला वा भवन्ति। तस्य प्रधानप्रशमात्प्रशम इति निष्कर्षः। पुनर्नवा-गोक्षुर-तृणपञ्चमूलादीनां सामान्यप्रयोगेणैव शरीराज्जलीयांशप्रस्रावको वस्तुतश्चमत्कारकारी भवति नितरामायुर्वेदविदश्चिकित्सकस्य यशःप्रसारी वृक्कोपक्रममार्गः।

वृक्कामयेषु स्वर्णरसेन्द्रादिघटिताः प्रयोगा हानिकराः-इति पाश्चात्यवैज्ञानिकैश्चिकित्सकजगति बद्धमूलत्वेन विश्वासः समुद्भावितस्तावदेव स्थास्यति, यावदनुसन्धानशालासु भूयोदर्शनेन सिद्धान्तस्यास्य निर्णयो न प्रख्यायेत। विज्ञानबहुले समयेऽस्मिन् तद्घटितप्रयोगान् व्यवहरन्तः प्रायः शङ्कमाना एव वैद्याश्चिकित्सापथे प्रवर्त्तमाना दरीदृश्यन्ते। केचन श्रद्धालवो वैद्याः प्राचां मतमित्थं समादधति यद्रसशास्त्रप्रक्रियया शुद्धं सिद्धं हिरण्यं न पुनरुत्थीयमानं स्वल्पमात्रया प्रयुक्तं सहयोगिभिर्द्रव्यैः प्रयुज्यमानं न किमपि हापयति दूषयति च वृक्कावयवम्। किन्तु सानुरोधं वच्मि, न गतानुगतिकतया समागृह्य समाधेयम्। अवश्यं प्रयोगाणां फलपरिणामोऽनुसन्धायैव प्रख्यापनीयः। यदि नाम प्राचां विपरीतोऽपि परिणामः सङ्घोष्येत, तदा सर्वथा जोषमेवावलम्ब्य स्थेयम्। पुनः कृते परीक्षणादिप्रयत्ने सति परिणामानुकूल्ये तत्तेषां भारतीयानां वैज्ञानिकानामद्भुतक्षमता जगति सर्वैरेव नतमस्तकैः स्वीकृता भविष्यतीति नूनम्।

इदमहं विश्वसिमि—वृक्करोगाणां सर्वथा लाक्षणिकता सुगृहीता भवति तदा तेषां चिकित्सापि वर्गीकरणसिद्धान्तमनुसृत्यैव, सम्बद्धप्रधानरोगेषु अन्विष्य यथायथं प्रयोज्या। अहमत्रान्यदपि प्रार्थये "लवणस्य सर्वथा परिहार्य्यत्वे सिद्धेऽपि मुनिः चिकित्सास्थाने शोथाधिकारे क्षारगुटिकाप्रयोगं कञ्चिदर्थमुद्दिश्यैव निर्दिष्टवान्। एषोऽनुयोगोऽपि बहुलतयाऽन्वेषणानां परिणतिमवलम्बते तत्पाठश्चेत्थम्—

क्षारद्वयं स्याल्लवणानि चत्वार्ययोरजो व्योषफलत्रिके च।
.... ।
द्रोणद्वयं तथा मूलकशुण्ठकानां स्याद्भस्मनः.............. ।
कृत्वा सुशुष्कां विधिनोपयुञ्ज्यात्........................ ।
प्लीहोदरश्वित्रहलीमकांस्तु पाण्ड्वामयारोचकशोषशोफान्।
विषूचिकागुल्मगराश्मरीश्च सश्वासकासाः प्रणुदेत्सकुष्ठाः।

मन्ये-एतदनुवदतैव चक्रपाणिदत्तेन व्याख्यातम्—"चत्वारि लवणानि सामुद्रवर्जं दीर्घंजीवितीयोक्तानि" इति। किञ्च शोथाधिकारोक्तायां कंसहरीतकीफलस्तुतौ—

'कार्श्यामवातावसृग्म्लपित्तवैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान्'

इत्येतदुद्धरणं वृक्करोगोपक्रमान्सङ्केतयति। शैलेययोगश्च यत्र तत्र रक्ताल्पतापरिचायके पाण्डुरोगे शोथादौ च सर्वत्रैव व्यवहृतः। इत्थमेव धात्रीफलानामुपयोगश्च पाण्डुरोगे

नैकधारूपेण समुपागतो दृश्यते । बीजकारिष्ट-धात्र्यरिष्ट-धात्र्यवलेहादियोगानां फलस्तुतिः रोचनार्था वागिव वृक्करोगचिकित्सनां सङ्केततः प्रकटं समादिशति।

इदं पुनर्भूयो विस्मयावहं यत्त्रिकालाबाधितज्ञानशालिभिर्महर्षिभिः संहिताग्रन्थेषु प्रयोगाणां याः फलस्तुतयो निर्दिष्टास्ता उत्तरकालिकानां संग्रहकाराणामिव न काल्पनिकाः, नालङ्कारायमाणाः, किन्तु ताः प्रायशो रोगाणां हेत्वन्वेषणे चिकित्सकस्य साहाय्यापादने सफला उपयोगपरिपाटीति निश्चिनुमः । तत्तेषां प्रयोगाणां फलसूचीमनुसृत्य सावधानतया कर्ममार्गे प्रवर्त्तितव्यम् सुभिषग्भिः ।

योगराजरसायनाभिधः प्रयोगविशेषः सुतरां वृक्करोगिषु व्यवहृतः प्रायशः सफल एवेति नाकपृष्ठमधितिष्ठन्तः स्वामिश्रीलक्ष्मीरामपूज्यपादा अस्मद्गुरुवरा अपि भृशमनुवभूवुः। चरकस्येमं प्रयोगमाचार्यसुभटो वाग्भटः ताप्यादिलौहनाम्ना समुद्धृतवान् । तथा हि—

ताप्याद्रिजतुरौप्यायोमलाः पञ्चपलाः पृथक् ।
चित्रकत्रिफलाव्योषविडङ्गैः पालिकैः सह ॥
शर्कराष्टपलोन्मिश्राश्चूर्णिता मधुना द्रुताः ।
पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम् ॥
कुष्ठान्यजरकं मेहं शोफं श्वासमरोचकम् ।
विशेषाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च ॥

द्वितीयमुदाहरणम्, यथा-चरकसंहितायास्त्रिमर्मीयचिकित्साप्रकरणे वस्तिहृदयशिरसां त्रयीं मुख्यतमामाकलयद्भिरुदावर्त्तसम्प्राप्तिलिङ्ग—चिकित्सितं निर्दिशद्भिश्चाचार्यचरणैर्या रोगतालिका समुद्भाविता सा चिकित्साकर्मणि महत्युपयोगिनीति निश्चप्रचम् । आचार्यश्चक्रपाणिदत्तोऽत्र सपूर्वपक्षमेवं समाधत्ते "ननु कथमपानः कुपितोऽपानस्यैव सङ्गं करोति इति...... अत्र ब्रूमः--आत्मनैवायं दुष्टः सम्यगप्रवर्त्तमान आत्मनः सङ्गं करोतीत्युच्यते, यथा-मन एव मनोनिग्रहं करोति, उक्तञ्च—

इन्द्रियाभिग्रहः कर्म मनसःस्वस्य निग्रहः.................. ।
ततश्च रोगा ज्वरमूत्रकृच्छ्रप्रवाहिकाहृद्ग्रहणीप्रदोषाः ।
वम्यान्ध्यबाधिर्य्यशिरोऽभितापवातोदराष्ठीलमनोविकाराः ।
तृष्णास्रपित्तारुचिगुल्मकासश्वासप्रतिश्यार्दितपार्श्वरोगाः ।
अन्ये च रोगा बहवोऽनिलोत्थाः........................ ।
..............................भवन्त्युदावर्त्तकृताः सुघोराः ।

विवेचनेनानेन वातप्रातिलोम्यमपि हृद्रोगस्यान्यहेतुभिः साकं विशेषकारणत्वमाप्नोति। इदानीं हि शारीरकरचनोपक्रमेण हृदयस्य ग्राहकक्षेपककोष्ठादीनां विकृतिन्निश्चित्य हृदयस्य प्रातिस्विकरोगाणामेका बृहत्तालिका निरमीयत । प्रायः प्रतिपदमुदावर्त्तप्रतीकारदिशो महत्त्वं चिकित्सापद्धतावनुभूयते । उदावर्त्तमूलकदृष्टिकोणेन चरकानुसारिणीञ्चिकित्सासरणिमधिकुर्वाणेन मया नैकशः सर्वांशेनाशिकरूपेणापि सफलता लब्धा, इति किमधिकं कथयामि।

सम्प्रत्यनेहसोऽनल्पीयान् सङ्कोचः। अन्येषां विषयाणां प्रदर्शनव्यामोहश्च त्रिमर्मीयचिकित्सितस्योपबृंहणान्मामित उदञ्चयति। प्रकरणेऽत्र सुरभिषङ्निर्विशेषाणामस्मद्गुरुचरणानां स्वर्गीयश्रीलक्ष्मीरामस्वामिनां मत्कृतं पुण्यं स्मरणन्नाप्राङ्गिकं कलयिष्यन्ति तत्र भवन्तः प्रेक्षावन्तः। तेषां हि चिकित्साशैली महतो मननस्य परिणामशालिनी-आसीत्। तदिदं सर्वन्तैरध्यापनस्य सततसत्रेऽधिगतम्। अभिधातो रोगनिर्देशने मौनन्तेषामलङ्करणमिवासीत्। लाक्षणिकचिकित्सायामेवावहितमनसान्तेषान्तन्मननं हि परमं लक्ष्यमासीत्। ते हि हेतुप्रत्यकनीकतां व्याधिप्रत्यनीकतया संसृज्य धनुषा बाणेनेव रोगशत्रुवेधने सफलधानुष्काः सिद्धचन्ति स्म।

इयमुदाहरणद्वयी अध्यापनकलां प्रोत्साहयितुमुट्टङ्किता मया। यतो हि—अध्यापनकला तादृङ्महत्वपूर्णः श्रम आस्ते, यत्र दीर्घतमः पूर्णो बुद्धिप्रभासः, विशालस्यान्तस्तलस्यानन्तमौदार्य्यञ्चापेक्षितम्भवति। प्रसङ्गवशादिदमभिधानं नानुचितमिव प्रतिभास्यति, यत्प्रयोगप्रधानेऽस्मिन्नायुर्वेदशास्त्रे केवलेन ग्रन्थाध्ययनमात्रेणैव न किञ्चित्सेत्स्यति, अपितु पौनःपुन्येनाभ्यासः सद्गुरुनिकटाधिवासेन तत्तत्कर्मदर्शनलब्धं ज्ञानञ्च चिकित्साकर्मणि साहाय्यं कुरुते। तद्यथा—

शल्यशालाक्यविषययोर्वैद्या यद्यपि नैव प्रवर्त्तन्ते चिराय, तथापि विद्यालयोपयुक्तेषु पाठचक्रमेषु तदेतयोः शिक्षणमनिवार्यं साभिनिवेशं नियोक्तव्यम्। पाश्चात्यचिकित्सकानामपि समानपाठचक्रमेण शिक्षायां प्रवर्त्तमानायामपि तच्छात्राणां कतिपय एव सिद्धचन्ति शस्त्रकौशले स्नातकाः। यथा शिल्पकर्मणि ज्ञानसामान्येऽपि समेषां रथकाराणां केचनैव कारवः कुशलाश्च भवन्ति। कर्मणां कौशले प्राय एवं हि निदर्शनानि दीयन्ते। न हि बहुतिथः कालोगतः-सुश्रुतसंहितायाश्चरमाष्टीकाकृतः स्वर्गताः श्रीहाराणचन्द्रचक्रवर्त्तिमहोदयाः सम्मान्यवरा अनुभविनश्चिकित्सकाः प्रथिता आसन्। तत्कृतं सुश्रुतार्थसन्दीपनं भाष्यं न केवलं शब्दजालसन्दृब्धमेवास्ति, प्रत्युत तेषां प्रातिस्विकप्रयोगपरिपाटीसमनुभूतान्यभूतपूर्वाणि विवेचनान्यनुसन्धानानि चासते तत्र।

शल्यतन्त्रे शस्त्रकर्मातिरिच्य भारतीयपरम्परायाः क्षारप्रणिधानमपि विशिष्ट एवोपक्रमोऽस्ति। तदत्रैव सम्मेलनसिंहासने द्वादशाधिवेशनमहोत्सवे स्वधिराजता चक्रवर्त्तिमहोदयेन निम्नाङ्कितं भणितं तद्यथा—

"तत्र क्षारपाचनक्रमस्त्वसुकरः सुचिरं गुहाप्रविष्टश्चेति विशदं निवेदयिष्यामः। तद्यथा—प्रथमन्तावदेकतो वृद्धावेकस्मिन् पार्श्वे, उभयतश्चोभयोः पार्श्वयोः कनिष्ठाग्रमितं मुष्कप्रदेशं काकोडुम्बरिकादिजैः कर्कशैः पत्त्रैः प्रघृष्य, शस्त्रेण वा विलिख्य, द्वित्राणि दिनानि क्षारं पातयेत्, ततः क्षारभक्षितत्वेन प्रसुप्तेऽस्मिन्देशे हंसपक्षनाडीपरिणाहां पृथुमुखीं लौहशलाकां शनैः शनैर्भ्रामयन्प्रवेशयेत्, यावन्नातुरो वेदनामनुभवेत् शोणितं वा नागच्छेत्। अनुभूतायां वेदनायां शोणिते वाऽऽगते पुनः क्षारं निपात्य यथावसरं कच्चीनालं प्रवेश्य कच्चीपत्रेणैवाच्छाद्य वस्त्रपट्टेनावेष्ट्य बध्नीयात्। सर्वमेवं दैनन्दिनं कुर्यात्, यावद् भिन्नान्तरावरणत्वेन अन्तरुदकं सवेगं नागच्छेत्। आगते चोदके प्रागवत्कच्चीनालं प्रवेश्य जयन्तीपत्त्राणि अग्निसन्तप्ते पिठरे सममङ्गुलोत्सेधं विन्यस्य वस्त्रावच्छिन्नेन पाणिना प्रपीड्य

'रोटीति' प्रसिद्धं पिष्टकमिव कृत्वा कदलीपत्त्रोपरि विन्यस्तेन सर्वतो वृषणमावेष्टच वस्त्रपट्टेन बध्नीयात्, मुञ्चेच्च द्वचहत् त्र्यहाद्वा यावदारोग्यदर्शनात्। उपद्रवञ्च यथास्वं प्रतिकुर्वीत।" इति।

इमे चक्रवर्तिमहोदयाः, हन्त, अस्या एव शताब्द्या अंतिमशस्त्रचिकित्सका भिषजोऽभूवन्। तर्हि नैकवारं स्वहार्ददुःखानुभवेन भणितं, यत्पाश्चात्यशैलीशिक्षणं विनापि यद्गुरुपरम्पराप्राप्तं शस्त्रकर्मणो व्यावहारिकं ज्ञानं तैरधिगतमासीत्तद्बोधनाय (प्रदानाय) तेऽभीप्टाञ्छिष्यान् नाधिगतवन्तः।

एवं सर्वमपि कर्माहमहमिकया गुरुप्रत्यक्षमभ्यासपूर्वकं जिज्ञासमानेषु शिष्यवरेण्येषु सत्स्वपि-ऋतमेवेदं प्रतिभाति-यत्कारुण्यसिन्धवः श्रमशीलाः शिष्यवत्सलास्तादृशा गुरव एव विधेयानां बुद्धयुपबृंहणाय सुक्षमा भवन्तीति मामकीनोऽप्यनुभवः।

प्राक्तनानामाचार्याणां ग्रंथप्रणयनकलाप्रावीण्यं न केवलमेतद्देश्या एव, किञ्चवैदेशिका अपि मुक्तकण्ठं प्रशंसन्ति। आर्षग्रंथानामिदं वैशिष्टचं परमं विस्मयावहम्। आयुर्वेदविषयेऽपि सोऽयमेव क्रमः प्रस्फुटमनुभूयते। अष्टाङ्गप्रविभक्तस्यायुर्वेदस्य प्रत्यङ्गमेकैकशो ग्रंथाः समुपनिबद्धाः सन्ति। परमेकत्रैव ग्रन्थेऽष्टाङ्गानां सविवेकः सन्निवेशश्चापि समुपलभ्यते। तन्त्रस्य न वैशिष्टचोदाहरणं तेषु सर्वत्र सम्मिलतीति विचित्रः समन्वयस्तेषाम्।

प्रत्येकं तन्त्रं स्वप्रक्रियायां स्वानुभवेन पूर्णमपि गुणवृत्त्या-अवशिष्टानि सर्वाणि सप्तापि तन्त्राणि संगृह्णाति। महानेष प्रयोगोऽनया दृशा विधीयते स्म, यत् कोऽपि वैद्यः कस्याप्येकस्य मनोनीताङ्गस्य विशेषज्ञोऽन्येषाञ्चावशिष्टाङ्गानां ज्ञेयांशेषु सुविदितचरो भवत्वेवेति चरक-सुश्रुत-काश्यपसंहिताः सर्वा-अप्यत्र ज्वलत्प्रमाणम्।

ऐतिह्यदृशा प्राचीनतमोऽपि आयुर्वेदस्य ज्ञानोपचय आर्षचिकित्सापद्धतिसामञ्जस्यं सर्वेष्वेव तन्त्रेषु सामान्यरूपेणोपवेशयति। संग्रहकाराचार्याणामुत्सङ्गतः प्रसरन्त्यामार्षचिकित्सा-प्रणाल्यां किञ्चन अन्यान्य चिकित्सनानुभावानां मिश्रणं प्रावर्त्स्यत्, यल्लक्षणानि पुरस्तादनुचकासते। संगृहीताश्चेदृग्विधाः प्रयोगा वाग्भटाचार्येणापि। तथैव चक्रपाणिदत्तवङ्गसेनाभ्यां नैकशः प्रयोगाः समुच्चिताः।

चिराय प्रसरन्त्यामार्षप्रणाल्यामेषा मिश्रणपरम्परा बहुतिथात्कालादनन्तरं प्रवृत्ता, तत्फलायितानि च तस्यां स्वरूपपरिवृत्तिकराणि लक्षणानि यत्र तत्र दृश्यन्ते। इदमत्रावधेयम्-यदार्षी पद्धतिस्तु वनस्पतिसिद्धौषधानि प्राचुर्य्येण प्रयुङ्क्ते। तत्र हि दोषाणां सामनिरामावस्थां देशकालवयःसात्म्यसत्त्वसारादींश्च परिपूर्णं विविच्य द्रव्यगुणाधारतया एकैकशो वनस्पतयश्चीयन्ते तदनुभावादिविशेषज्ञैर्विचक्षणैः। तैश्च यथापात्रं यथोपयोगं ता वनस्पतयो यथाविधि नियोज्यन्ते, नान्यथेति। तदुक्तम्—

ज्वरे पेयाः कषायाश्च सर्पिः क्षीरं विरेचनम्।
षडहे षडहे देयं कालं वीक्ष्यामयस्य च॥

इति अवधार्यम् । परं यत्र पूर्वोदितानां व्युत्क्रमगृहीतानां त्वरितमेव दोषप्रशमनार्थं वनस्पतिभेषजानां व्याधिप्रत्यनीकरूपेण प्रयोगः क्रियते, तमहमार्षप्रणाल्यां कलितं मिश्रणमेव मन्ये । रसोपरसानां धात्वादीनाञ्च प्रयोगास्तादृशास्तदेतस्यैव निदर्शनानीति भावयन्तु भवन्तुः । यथा—

शिलाजतुक्षौद्रबिडङ्गसर्पिर्लौहाभयापारदताप्यभक्तः ।
आपूर्यते दुर्बलदेहधातुस्त्रिपञ्चरात्रेण यथा शशाङ्कः ॥

मध्यमे काले सेयं ग्रंथसंग्रहप्रणाली प्रमत्ताश्वयुगोढ़ा शकटीव प्रचलिता । तस्यां हि अनुभूतप्रयोगाणां यत्र तत्र देशेष्वपि सूचयस्तालिका अनुक्रमाश्चापि निर्मातुमारब्धाः । सोऽयं क्रमो न भेषजेष्वेव । प्रत्युत द्रव्यगुणनिदानान्तमपि प्रवर्द्धमानस्तादृशान्निर्मीयमाणान्निबंधानपि स्वाङ्के समुपस्थापयति । भावप्रकाश–चक्रदत्तबङ्गसेनादयो निबन्धा अत्रैव कोटावुदञ्चन्ति । परन्त्वाचार्यवाग्भटानन्तरमर्वाक्तिनसङ्गृहीतृणाञ्चयनक्रम उत्तरोत्तरं शैथिल्यमेवोपगतो नाभ्युन्नतिमित्यनुभूयमानमास्ते । शारीरशास्त्रे शरीरक्रियाविज्ञाने द्रव्यगुणनिदानचिकित्सादिषु च प्रायशः पारस्परिकादानप्रदानमाकलयंति स्म निबंधाः केवलन्नामभिरेव भेदभाजः प्रतीयंते । तेषु मौलिकता उन्मूलितप्रायास्ति, किञ्चानेकस्थलेषु जनश्रुतयो हि सम्भृता दृश्यंते । अहमेतादृशान् संग्रहकारानायुर्वेदमुच्चस्तरं प्रापयितुं क्षमान्न प्रत्येमि, किन्तु तेषामनुभूतप्रयोगसंग्रहणे तान् प्रशंसामि । एवं ग्रन्थप्रणयनस्रोतांसि निरन्तरं प्रचलन्तीत्येव मन्ये । आस्ताम्—

रसशास्त्रपरम्परायां गवेषणीयस्थानेषु वाग्भटमादौ कृत्वा भावप्रकाशपर्य्यन्तमर्वाचीनेषु निबन्धेषु केचन भारतेतरे (विदेशीयाः) अपि भेषजयोगा धातुरसादीनाञ्च विशिष्टा योगा अहिफेनादीनाञ्चोपयोगा दृग्गोचरीभवन्ति । चरकसुश्रुतसंहितयोरपि धातुमणिप्रभृतिको लेख उद्देशमात्रेणागतः । परन्तेषां शोधनादिकं तद्भावितानाञ्च तत्सिद्धानां साधितानाञ्च रसमिश्रितौषधानामुल्लेखा न प्राप्नुवन्ति । यथा—

"सुवर्णं समलाः पञ्च लौहाः ससिकता सुधा ।
मनःशिलाले मणयो लवणं गैरिकाञ्जने ॥
भौममौषधमुद्दिष्टं.......................।" —(चरक सू० अ० १)

"पार्थिवाः सुवर्णरजतमणिमुक्तामनःशिलामृत्कपालादयः ।"
(सुश्रुत० अ० १)

एवमेव काश्यपसंहितायाः खिले भागे लौहरजसां ताम्ररजसाञ्च मिलंति योगाः, परं तच्छोधनभस्मीकरणभृत्युल्लेखनंतत्र किमपि नाप्नोति, किंतु रसशास्त्रपरम्परायामशोधितानां तेषाम्प्रयोगो न फलावह इति प्रयोगकाले तेषां शोधनाद्यपि अभिमतमेव भवेदित्यर्थतोऽनुमीयत एव । चरकसंहितायां रसायनाधिकारोल्लिखिते द्वितीयब्राह्मरसायनप्रयोगेऽपीदृशो वर्त्तते समुल्लेखः यथा—

"पक्षात्यये चोद्धृत्य कनकरजतताम्रप्रवालकालायसचूर्णाष्टभागसंयुक्तमर्धकर्षवृद्धया यथोक्तेन विधिना प्रातः प्रातः प्रयुञ्जानो.............यथोक्तान् गुणान् समश्नुते" इति । (चरक० चि० स्थाने० रसा० पादः १)

अपरे ब्राह्मरसायनयोगेऽपि, यथा—

"सुशुष्कं तत्कृष्णाजिनस्योपरि दृषदि श्लक्ष्णपिष्टमयः स्थाल्यां निधापयेत्सम्यक् । तच्चूर्णमयश्चूर्णाष्टभागसंयुक्तं मधुसर्पिभ्यामग्निबलमभिसमीक्ष्य प्रयोजयेदिति" (करप्रचितीये रसा० चरकचि० स्थाने)

भारतीयरसप्रक्रियोल्लेखः सर्वतः पूर्वं रसविषयकेषु ग्रन्थेषूपलभ्यते । रसप्रक्रियाशास्त्रे हि सिद्धाचार्यापरनाम्ना प्रसिद्ध आचार्यो नागार्जुनः प्रथमो विवेचकः परिगण्यते । एतदुत्तरकालमेव रसमिश्रितवानस्पत्यौषधानां प्रयोगाश्चापि बोभूयमाना दरीदृश्यन्ते । भारतवर्षेऽत्र रसप्रक्रियाप्रचारोत्तरमपि नैकशः शताब्दीपर्यन्तं पाश्चात्यप्रदेशास्तत्परिग्रहणप्रचारशून्या एवावलोकिताः । निष्कर्षोऽयं, यद् भारतवर्षेणैव सर्वतः प्रथमं रसविद्याप्रचारस्य श्रेयः समधिगतम् । अस्मादेव पावनतमाद्देशात्तज्ज्ञानं सर्वतः प्रससार । भगवद्गोविन्दपादाचार्यादयः सिद्धा अवोभूवन् सम्प्रदायस्यास्य प्रवर्त्तयितारः । सत्यप्येवं नासीदस्य बहुलः प्रचारः प्रसारो वा ।

बौद्धकालादेवायं रससम्प्रदायः प्रचारपथमागतवानिति न कथमपि सन्देहास्पदम् । कथमसौ सम्प्रदायः प्रवर्त्तितः, का चास्योद्गमवीथिरित्याद्यवगन्तुमिमान्यैतिहासिकानि तथ्यानि समुपलभ्यन्ते । यत्—

सेयं रसायनविद्या नाम ग्रीसदेशे मिश्रदेशे वा न सर्वप्रथमं प्रससार, तथात्वे तु तद्देशीया विद्वांसस्तत्प्रकाशने न मौनमवालम्बेरन् । तृतीयचतुर्थशताब्दीपर्यन्तं तद्देशीयानां विद्यायामस्यां ज्ञानं शून्यमेवासीत् । पारदस्य प्रयोगाः केवलं 'कैमिस्ट्री' पदवाच्यायामेव विद्यायां पाश्चात्यदेशेषु प्रचारमवापुः । भेषजप्रक्रियासु रसप्रयोगन्न ते विदधिरे । अत्रैतिहासिकानां समवायेनैवायं निर्णयः कृतः समुपलभ्यते, यद्भारतीयवैज्ञानिकैरेव देहसिद्धौ लौहसिद्धौ वा प्राथम्येन रसोपयोगो विहितः । वैदिकसमये सोमरसस्य बाहुल्येन व्यवहारदर्शनात् कदाचन रसायनविद्याया अपि प्रचारः—ऋग्वेदकालादेव भारते आसीत्, इति केचन मन्वते । किन्तु रसायनविद्याया नाम दीर्घजीवितीयोद्देश्येन क्रियमाणेषु भेषजप्रयोगेषु रूढेस्तद्व्यवहारः संहिताग्रन्थेष्वपि वैदिकदृशैव समवतीर्णः—इति मे विश्वासः । यूषशारीररसादिषु सोमरस इव रसशब्दो व्यवाह्रियत । रसस्यैव तरलतागुणमादाय पारदे द्रवीकृतधातुषु च उत्तरकालं रसशब्दो गौणो निरदिश्यत । तदनेन भारतीयरसप्रक्रियायास्तु मूलं चिरन्तनमिति न कोऽपि विवादः । लोहशास्त्रप्रणयने महर्षिः पतञ्जलिः प्राथम्येन प्रस्तूयते प्राज्ञैर्बहुषु स्थलेषु । जरथुस्त्रात्प्रागेव पारस्यदेशनिवासिनो भारतीयब्राह्मणेभ्यो रसायनविद्यामधिगतवन्त इत्यपि ज्ञायते । तद्विद्याविषये ग्रीसदेशीयाः पारसीकदेशनामस्मरणं सबहुमानं स्वीयेषु रसायनग्रंथेषु कुर्वते ।

तेन स्पष्टं पौर्वापर्य्यमनुमिनुमः। अरबदेशेऽपि द्वादशशाताब्दयां रसप्रक्रियाया प्रचार भूयान् आसीत्। किन्तु प्रथमशताब्दीसमुद्भूतः श्रीभर्तृहरिः—'उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवः' इत्यादि पठितवान्, अतो भारते रसविद्यायाः सद्भावोऽतिपुराणत्वेन सर्वथा सम्मत एव।

तदेवं सिद्धयति—यदार्षसमयादनन्तरं भैषज्यकल्पनायां रसतन्त्रं सङ्केतयन् कश्चनाभिनवो युगः प्रावर्त्तत। आदित आर्षसमयेऽपि खनिजपदार्थानां ज्ञानमुपलभामहे, तच्च स्पष्टीकृतमप्युपरिनिर्दिष्टैरुदाहरणैः। किन्तु चिकित्साप्रणालीषु तत्पारम्परिकं मौलिकं ज्ञानमक्षुण्णं तन्वद्यदभूतपूर्वं परिवर्त्तनं दृशोरतिथित्वं भजते, तत्प्रभावोऽद्याप्यधिकाधिकमादरणीयकोटिमधिरूढ़ो दृश्यते। भारतवर्षेऽत्रेदृग्विधानामनल्पानां वैज्ञानिकान्वेषणानां केन्द्राणि समासन्, येषां परम्पराक्रमो राजनैतिकैराघातप्रतिघातैर्विनष्टप्राय एव।

रसतंत्रं हि विशिष्टतमाभिः संशोधनमारणादिप्रक्रियाभिः पारदगन्धक—सुवर्ण-रौप्य-लौहाभ्रादि पार्थिवं द्रव्यकदम्बकं चिकित्सौपयिकतामापादयति। चिकित्साचतुराणां रसायनाचार्याणां राद्धान्तो वर्वर्त्ति, यद्रसप्रयोगैस्तादृग्विधैर्भाव्यम्, यैः शरीरं प्रविष्टान्यौषधद्रव्याणि गुणकराण्यवश्यं स्युः, किन्तु प्रतिक्रियया न तानि हानिकराणि भवेयुः। तादृशेन रूपेणैवैतेषां प्रयोगाः स्युः। खनिजधात्वादीनि निरिन्द्रियद्रव्याणि वनस्पतिप्रभृति-सेन्द्रियद्रव्याणां रसैर्भावयित्वा बहुविधपाकैः संस्कारैश्चौपयौगिकानि विधातुं सफलाः प्रयत्नाः समक्रियन्त।

भस्मनां वारितरत्व-निश्चन्द्रत्वकलने च तेषामाचार्याणामुद्देश्यं शरीरग्राह्यतापादनस्वरूपमेव। वर्त्तमानचिकित्साशास्त्रेऽपि खनिजपदार्थानामुपयोगो बाहुल्येनावलोक्यते। विचारसञ्चारेऽस्मिन् पक्षद्वयी समानान्तरैव। औषधद्रव्यगुणान् प्रकाशयितुं पद्धत्योर्द्वयोरपि क्रमो भिन्नताम्भजते। आधुनिको गवेषणापरिणामः सूचीवेधद्वारा भैषज्यं रक्तप्रवाहे सम्मिश्र्य तस्य शीघ्रफलप्रदायित्वं साधयति। पाश्चात्यैर्द्रव्यविशेषविद्भिरभीष्टौषधयोगेषु तरलस्वरूपेणैव तद् द्रव्याणि परिणमय्य, तत्प्रदानेनातुरलाभरीतिरूरीकृता। इदमत्र निर्णीतं प्रायो यत्—सुवर्णपारदसदृक्षाणि बलवन्ति चोर्जस्वन्ति द्रव्याणि शरीरेषु द्रवत्वेन तथानुप्रवेश्यन्ते, तत्तानि यकृन्मूत्रपिण्डाद्यवयवेषु तीव्रं क्षोभमुज्जनयन्ति, तदिहानुभवैकसाक्षिणः प्रष्टव्याः।

भारतीया रसगवेषकास्तु पुनस्तादृशान् धातून्, अतिसूक्ष्मरूपेषु परिणमय्य, तदुग्रतत्वानि भयोत्पादकांश्च तांस्तान्विशेषानपगमय्य वनस्पतिरसादिभावनाभिर्भावयित्वा रसप्रक्रियोक्तशोधनादिभिः संशोध्य, मुखमार्गेणैवान्तःप्रवेशरूपां सरणिमद्भुतामेव प्रवर्त्तयाञ्चक्रुः। तेषां रासायनिकपरिवर्त्तनानि सुसंस्कृत—सुवर्ण—गन्धक—पारदानां मिश्रणभूते मकरध्वजनामके सिद्धौषधे ध्रुवमद्भुतगुणोद्भावकानि भवन्तीति को नाम न स्वीकरोति चक्षुष्मान्।

निरुत्थानां भस्मनां विश्लेषणदिशा प्राकृतरूपे परिणमनं परमसम्भवम्। एतादृशा असंख्येया योगा रसशास्त्रेषु निहिताः। एतस्यामवस्थायां वयमिदं निवेदयामो यत्प्राचामाचार्याणामिव भैषज्यकला-कोविदानां परश्शतं वर्षाणि द्रव्यौषधगुणपरिणामानुभवं कृत्वैव ग्रंथलेखनकृतदेशोपकाराणां निर्हेतुकं तिरस्करणन्न योग्यम्। कज्जली-रससिन्दूर-मकरध्वजा-

नामन्तरं समानोपादानहेतुकतया साम्प्रतिका वैज्ञानिकाः स्वीकर्तुं संदिहायन्ते। यदि ते प्राच्यरसशास्त्राणां रासायनिकपरिवर्त्तनविधानानां धैर्य्येणानुशीलनं कलयिष्यन्ति, तदा ह्येतेषामन्वेषणानामस्यां दिशि फलानि सुमधुराणि स्थिराणि चोपलप्स्यन्ते-इति न संदेहलेशः।

रसशास्त्रस्य लौहसिद्धिर्देहसिद्धिश्चेति द्वयोरुद्देश्ययोः प्रथमं लौहसिद्धिः साक्षात्-प्रत्योत्पादनमुद्दिश्यैव कृता भवेत् प्रसारिता च जगति। यतो हि प्रत्यक्षविश्वासोत्पादनमन्तरा तत्र लोकानामप्रवृत्तेः। ततो देहसिद्धिं चरमं लक्ष्यं साधयितुन्ते प्रवृत्ताः।

एवमेव लौहादिधातुव्यतिरिक्ता अन्येऽप्यनेके खनिजाताः पदार्थाः भारतीयरस-विधानोपयोग आदीयंते स्म। अभ्रक-माक्षिक-वैक्रांत-विमल-सस्यक-राजावर्त्त-शिलाजतु-ताल-स्फटी-गंधक-कंकुष्ठ-मनःशिला-सौवीर-गैरिकादीनां प्रयोगाः, तथैव कार्यभेदेन चुम्बक-कपर्द-समुद्रफेन-गौरीपाषाण-अग्निजारादीनाञ्चापि व्यवहाराः समुपलभ्यन्ते। किम्बहुना तदिदं संक्षिप्यैवोच्यते-यदि रसशास्त्रमेतत् आयुर्वेदचिकित्सापद्धतेः पृथक् क्रियेत, तदायुर्वेदस्य भेषजकल्पः समग्र आमूलचूलमर्धदग्धवदवशिष्येत।

रासायनिकाः सिद्धांता अपि चायुर्वेदचिकित्सापद्धतौ घनिष्ठतया सम्मिलिताः सन्ति। आर्षीयं परमुदारा मौलिकता रसचिकित्सां त्रिदोष-द्रव्यगुण-सिद्धांतव्यापिनीं स्वरूपान्तर्गतां कृत्वाद्याप्यक्षुण्णा विराजत इति महत्सन्तोषावहम्।

प्राचीनेषु रसतन्त्रेषु सुवर्णादिधातूनां योगा अद्भुतमिश्रणैरुपनिबद्धाः। स्नायुमण्डलीयेषु रोगेषु सांक्रामिकेषु राजयक्ष्मादिरोगेषु च सुवर्णयोगो निर्बाधं सुचिराय प्रवृत्तोऽद्यापि व्यवह्रियते। ताम्रस्य प्रयोगोऽद्यत्वे नवीनचिकित्सकैरप्युररीकृतो दृश्यते। अस्मत्प्राचीनरसागमेऽभ्रकस्यापि योगा बाहुल्येनोपलभ्यन्ते। खनिजोत्थस्याभ्रकस्य धान्याभ्र-कसम्पादनादनन्तरं भस्म सत्त्वञ्च निर्मीयते रसायनविद्भिः। अभ्रकाद्विश्लिष्टं सत्त्वमुत्त-मलौहत्वेन स्वीकृतम्। अभ्रकस्यानेके प्रयोगा मिश्रणत्वेन शास्त्रे निर्दिष्टाः। यथा-श्वास-कासयोः श्रृंगाराभ्रस्य, पुंस्त्वबृंहणे मन्मथाभ्रस्य, अम्लपित्त-पित्ताशयशूल-पित्ताश्मर्यादिषु विद्याधराभ्रस्य, जीर्णज्वरे विषमज्वरे वा जीवनानन्दनाभ्रस्य, हृद्रोगेषु नागार्जुनाभ्रस्य प्रयोगो दरीदृश्यते। फलतो भिन्नेषु रोगेषु नानावनस्पतिभिरभ्रं संसाध्य यथोचितप्रयोगेषु तत्सम्मिश्रणेन परमो लाभोऽनुमीयते-इति तदीयं विज्ञानम्। श्वासकासोपयोगिनाभ्रकभस्मना पुंस्त्वोद्दीपकमन्मथाभ्रकमिश्रणे न कार्यकारिता समुद्भाव्यते। परन्तत्र शतावरीगोक्षुरस्वर-सपुटितस्यैवाभ्रभस्मनः प्रयोगः साफल्यं चमत्कारकारितां वा लभते-इत्येतेषु सूक्ष्मेषु भावानुभावेषु रसशास्त्रिणां गम्भीरमुदारञ्च मननं प्राप्नुमः।

नागो धातुराधुनिकविज्ञानवादिभिर्विषप्रतिक्रियाकर्त्तृत्त्वेनाभिमन्यते। आद्यैराचार्यैरपि चैतस्य न पक्वं भसितं घातकरमेवोपदर्शितम्। परं प्रक्रियाविशेषेण शोधितोऽयं नागो भस्मसाद्भूतस्तु सुधेव जायत इत्यत्र न सन्देहः। वैद्याः प्रयुञ्जते चैनं बाहुल्येन गदविदलिते जगति साम्प्रतम्। एवंविधा सुवर्णताम्रलौहशिलोद्भवानामपि नैके योगाश्चमत्कारिका उपलभ्यन्ते।

रसेन्द्रसंस्काराणां विषयेऽत्र नाहमतिविशदं विवेचयन् सप्रसङ्गमिदं संक्षेपत एव किञ्चिदावेदयामि परमावश्यकम्–ध्यायतामिदं प्राचामाचार्याणां निगदं परमगदरूपंवचः—

'रसबन्धः स हि धन्यः प्रारम्भे यस्य सततमिति करुणा।
सिद्धे रसे करिष्ये महीमहं निर्जरामरणाम् ॥

अर्थात्—पारद–कल्पानां बलमवलम्बमाना वयं सकलं महीतलं सम्मुखीकृत्य घोषयामः पारदप्रभावेण लोकान् जरारहितान् दीर्घजीवनान् स्वस्थान् सबलानालोकितुमाशास्महे निःसन्देहम् ।

मृत्युसंख्यापि लोकानां कालकलनायामेवावलम्बिता भविष्यति इति सत्यमेव प्रतिभाति। इत्थमुदञ्चितेऽप्यनंतशास्त्रविचारसंघर्षसहेऽस्मिन्नायुःशास्त्रस्य विषये बहुलतरं वदन्नहमावश्यकानग्रेतनान्विचारानुपस्थापयामि ।

विद्यालय स्थापना–

अतीतैरनेकसंवत्सरैरायुर्वेदसम्मेलनेषु विद्यापीठेन महाविद्यालयस्य स्थापनाय भूयान् प्रयत्नातिशयः प्रवर्त्तमान आस्ते ।

विद्यापीठं नाम आयुर्वेदस्य सर्वदिक्षु प्रचारार्थं बद्धपरिकरं विलोक्यते प्रायशः, फलतः परं साफल्यञ्च लेभे, किंतु अतीतः स समयः प्रचारस्य । "केवलं रचनात्मकया सरण्यैव वास्तविकी सफलता अस्माभिरासादयितव्या ।" एवं रूपेण दृष्टिकोणः सर्वथा परिवर्त्तनीयः। भारते प्रचलितेषु आयुर्वेदविद्यालयेषु या अध्ययनाध्यापनावस्था दृग्गोचरीभवति, तया प्रायशः सुपरिचिता एव तत्र भवन्तः । स्नातकाः परीक्षोदधिं हेलयैव समुत्तीर्य्य न वास्तविकीं चिकित्सकयोग्यतामासादयन्ति, यां च वयमस्मिन् युगे कामयामः । यथा–"य इमे कुलीनाः— इत्यारभ्य केवले शरीरज्ञाने शरीराभिनिर्वृत्तिज्ञाने प्रकृतिविकृतिविज्ञाने च निःसंशया ...... तन्त्रस्य च ग्रहण-धारण-विज्ञान-प्रयोग-कर्म-कार्य्य-काल-कर्तृ करण-कुशलाः, कुशलांश्च स्मृति-मति-शास्त्र-संयुक्ति-युक्ति-ज्ञानस्य आत्मनः शीलगुणैरविसंवादनेन च सम्पादनेन सर्वप्राणिषु चेतसो मैत्रस्य मातृ-पितृ-बन्धुवत्-एवमुक्ता भवन्ति अग्निवेश ! प्राणानामभिसराः, हन्तारो रोगाणामिति ।"

(चरक सं०सू०अ० २९)

तदत्र महामहोपाध्यायानां स्वर्गतकविराजश्रीगणनाथसेनशर्ममहाभागानां महासम्मेलनस्यैकादशाधिवेशनेऽभिभाषितस्य वक्तव्यस्य सोऽयमंशो नाप्रासङ्गिको भविष्यति, तद्यथा—

"इदं परं शल्यायते नश्चेतसि, यत्-निखिलभारतीयवैद्यसम्मेलननियोजितानां भारतीयागदङ्कारवर्य्याणां धीरविचारसम्भूते सकलवैद्यकविषयावगाहिनि, आयुर्वेदविद्यापीठ-पाठचक्रमे स्वयमुद्भावितान् स्वल्पतरविषयान् पाठचक्रमानेवानुसरन्ति, ग्रन्थाध्ययनमात्रेण च तुष्यन्ति केचन वैद्यकविद्यालयाध्यक्षाः । न हि ते प्रयतन्ते छात्राणां शारीरादिविज्ञानाय कर्माभ्यासाय चिकित्सानैपुण्याय वा । एवञ्च सुलभोपाधिलाभाद् ज्ञानलवदुर्विदग्धाः स्वल्पज्ञाः कर्मानभिज्ञाश्च प्रादुर्भवन्ति केचन वैद्याः। ये च द्विपवन्मदान्धाः ज्ञेयान्तरमेव न पश्यन्ति। न हि वैद्यकन्नाम न्यायसांख्य वेदान्तधर्मशास्त्रादिवत् ग्रन्थाध्ययनमात्राकलनीयं शास्त्रं यस्य

वाग्विस्तराभ्यासेन अभिज्ञायेरन् रोगाः, उपक्रम्येरन् वा सम्यगातुराः। अत्र हि पदे पदे कर्मदर्शनं रोगपरीक्षणं वस्तुपरिचयो योग्याकरणञ्चापेक्ष्यन्ते। यैर्विना केवलशास्त्रज्ञः प्रमुह्यति आतुरानासाद्य प्राप्य भीरुरिवाहवम्। ईदृशैश्च न सम्भाव्यते वैद्यकोन्नतिरनल्पेन कालेन। न च गुरुगृहेषु कथमपि पञ्चषान्मासान् वर्षं वा गमयित्वा करुणार्द्रहृदयस्य गुरोः प्रसादाल्लब्धप्रशंसापत्रैर्वैद्यैरादीप्यते वैद्यक-ज्योतिः।

अतः प्रार्थयामहे सर्वान् वैद्यकप्रेमिकान्-माभूवन्नसंख्याः वैद्यकपाठशालाः। भवन्तु पुनः स्वल्पसंख्या अपि सम्भृतसकलसम्भाराः कुशलाध्यापका आरोग्यशालाशालिनश्च वैद्यकविद्यालयाः, येषु वर्षचतुष्टयं वर्षपञ्चकं वा यथाविधि शिक्षेरन् शास्त्राणि, समीक्षेरन्नातुरान्, प्रयुञ्जीरन् प्रयोगान् शिष्याः, लभेरंश्च निर्दिष्टकालानन्तरमेव परीक्षाफलोपार्जितानि प्रशंसापत्राणि। अध्यापनञ्च तेषु भारतीयप्रधानवैद्याचार्याणां बहुपरिश्रमफलमायुर्वेदविद्यापीठपाठ्यक्रममनुसृत्यैव प्रवर्त्तताम्। अन्यथा बहूनामवश्यज्ञातव्यविषयाणां ज्ञानाभावः स्यादेव। दुर्वारश्च अनतिप्रयोजनेषु श्रमः पौनःपुन्येन। साकल्येन पठनं तु चरकसुश्रुतादिसंहिताग्रन्थानामेव भवितुमर्हति, तदपि न सर्वेषां, आयुर्वेदाचार्यपदलाभोत्सुकानामेव। प्रधानलक्ष्यं हि शिक्षायाः, न ग्रन्थाध्ययनमात्रं किन्तु तत्तद्विषयाभिज्ञानं कर्मनैपुण्यञ्च।"

तदर्थञ्च विद्यापीठं यतिष्यत एव, एतादृशान् लोकान् संपादयितुं छात्रानुद्भावयितुं तादृशयोग्यतापादकं विशालमेकं विद्यालयं क्वचन स्थापयितुं च।

एतदेव विषयमवलम्ब्य पुनस्तैरेव कविराजराजिमुकुटालङ्कारैरगदङ्कारमहाभागैस्तत्रैवं हार्दः प्रकाशितः।

"अथ वैद्यकविद्यालय-स्थापनमधिकृत्य विद्यते बहुवक्तव्यन्नाम। तत्र विशाले भूभागे मध्यतो महाविद्यालयः षड्भिः सप्तभिर्वा सुविभक्तैः प्रशस्तपाठागारैरपरैश्च ग्रन्थागारभेषजपरिचयागारादिभिः समन्वितो यथा भवितुमर्हति, तथास्माभिः स्वयं चित्रयित्वा दर्शितः। परितश्च महाविद्यालयम्, आरोग्यशाला, औषधवितरणगृहम्, प्राकृतशारीरवस्तुप्रदर्शनागारः वैकृतशारीरवस्तुगृहम्, छात्रावासः कर्मकरावासो भेषजनिर्माणागाराश्च भवेयुः। दूरे च शवच्छेदागारः। अभितश्च सर्वं नानायुर्वेदीयभेषजालंकृतमुपवनम्, यत्र अविकृतस्वरूपा वनौषधीः परिचिन्वीरन् शिष्याः। न च सद्वृत्तोपदेशार्थं भगवत्कृपालाभार्थं च विष्णुमन्दिरमपि धर्माचार्यालंकृतं तत्र विहास्यते।

ईदृशश्च महाविद्यालयः क्व स्थापनीयः-इत्यत्र दृश्यते बहुविधवैमत्यं भिषजाम्। केचिदाहुः—एक एवास्तु महाविद्यालयो भगवतो भरद्वाजस्य लीलाभूमौ वैद्यसम्मेलनानुमतपूर्वे प्रयागक्षेत्रे। अन्ये मन्यन्ते, अस्तु सर्वौषधिप्रभवस्य हिमवतः पाददेशे त्रिलोकपावने हरिद्वारक्षेत्रे। अपरेऽभिदध्युः-अस्तु वैद्यविद्या-महापीठभूतस्य बङ्गदेशस्य अथवा भारतवर्षीयप्रधाननगर्यां कलिकातायाम्। अपरे हिन्दूविश्वविद्यालयाधिकारिणः समयर्थन्ते—अस्तु सर्वविद्याऽऽकरभूमौ वाराणस्यामेव। अथान्ये केचन "मुरारेस्तृतीयः पन्थाः" इति न्यायेन अर्थयावनमपि वैद्यकमायुर्वेदमहाविद्यालयं देहल्यामेव स्थापयेरन् न च मानयेरंस्ते निखिलभारतीयमायुर्वेद-

विद्यापीठं वैद्यसम्मेलनं वा। एवं स्थिते तपस्विनो बहुधाकृष्यमाणस्य का गतिर्गर्भस्थस्य आयुर्वेदमहाविद्यालयस्येति यत् सत्यमाकुलीभूतो वैद्यलोकः।

अत्र ब्रूमः। यदि शक्यते स्थाप्यन्तामनेके वैद्यकमहाविद्यालयाः। परं पुराण-नवीनोभयमतज्ञानां विदितवेदितव्यानां बहूनामध्यापकानामसौलभ्यान्न शक्यमेतत् संप्रत्येव। न ह्यलं स्थापयितुं शास्त्रमात्रसाराणां विदुषामपि केषाञ्चन साहाय्यमात्रेण धनसंग्रहमात्रेण वा अन्वर्थनामा वैद्यकमहाविद्यालयः। अवश्यं हि ते परिचाययितव्या विद्वांसोऽपि शारीरादिनवीनविषयेषु (दुर्दैववशाद् विलुप्तप्रायेषु) शिक्षापद्धतिषु च कालोचितासु। अतोऽभ्यर्थये कर्मवीरान् माभून्महाविद्यालयस्य संख्याबहुत्वे स्थानविषये वा कस्यापि हठः। सर्वथा अध्यापकसौलभ्यं कार्यसौकर्यं च विचार्य स्थाप्यतां महाविद्यालयः सफलीक्रियतां चास्माकं मनोरथ इति।

इदञ्चैतत्प्रसङ्गे महोदारचरितान् दानशौण्डान् परहितरतान् प्रार्थयामहे भारतीयनरेन्द्रान् भूस्वामिनश्च "मा तावत् स्वस्वपत्तनेषु शतशो वैद्यकविद्यालयस्थापनाय नियुज्यन्तां वो धनानि पृथग्भावेन किन्तु एकस्यापि आदर्शभूतस्य महाविद्यालयस्य प्रतिष्ठार्थमापूर्यतां सर्वैरेकाग्रतया महाकोषः। किञ्च निजपत्तनेषु स्थाप्यन्तां भवद्भिः प्रकामं वैद्यकमतानुसारेणारोग्यशाला औषधवितरणालयाश्च रोगशतक्लिश्यमानानां प्रजानामुपकाराय। परं न्यस्यतां न्यस्यतामेष वैद्यकशिक्षणगुरुभारः समर्थानां संभूय प्रवृत्तानां भारतमान्यानां वैद्यकाचार्यधुरीणानामेव शिरसीति।"

परमीदृशस्यादर्शविद्यालयस्य स्थापना कुत्र देशे प्रदेशे वा पुरे वा ग्रामे वा विधेया इति विचारोऽपि मुहुरामर्दितः सम्मेलनेषु नाद्यावधि निश्चयं व्रजतीति महानरुचिदोऽयमाभाणकः। अत्रापि प्रधानायां राजधान्यामेव भवतु इति पूर्वं विचारः प्रसृतोऽपि न सत्यस्वरूपमाप्तुमशकत्। एतदर्थं वर्त्तमानविद्यापीठसभापतिश्रीहरदत्तशास्त्रिभिस्तथा मेधावद्भिः श्रीशिवशर्मभिः प्रेरितैर्वैद्यवर्य्यैः श्रीदत्तमहोदयैः वर्त्तमानविद्यापीठमन्त्रिभिः हिमाद्रेरुपत्यकायां हृषीकेशक्षेत्रे—एतादृशविद्याभवनस्थापनायै प्रयतितम्। इच्छन्ति ते विद्यालयं मूर्त्तिमन्तं विधातुमरतरमेव। वयमपि तद्दिनमाशुतरमेव समीक्षितुकामाः विद्यापीठाधिकारिणो वा वैद्यसम्मेलनाधिकृतान् वा सदस्यान् वा दर्शकान् वा देशवासिनो धनाढ्यान् वा राज्यतन्त्राधिकारपरान्वा महापुरुषान् स्फुटं प्रार्थयामो यदीदृशं विद्यामन्दिरं शीघ्रातिशीघ्रं स्थापयितुं सुसंगठिता नेहसूत्रसन्नद्धा औदार्य्यविशालाशया भवन्तः, आयुर्वेदोत्थानपरम्परानुगते प्रकृतिरमणीये वनस्पतिसहस्रैराश्रयणीये सरसे घने ललितकलोदयोपयोग्ये प्रतिभाविकासक्षमे शान्तिनिवासरूपे कस्मिंश्चित्सुविचारितस्थान एव तदिदं विशालमुत्तालमम्बरास्फालं स्थापयन्तु इति।

अनुसन्धानपीठानां स्थापना—

एतत्तु सर्वे सममेव विदन्ति प्रायशो यदाधुनिके विज्ञानप्रत्यक्षवादप्रचुरेऽस्मिन् कालेऽपि प्राचामौषधानां फलानि प्रभावाश्च लोके मान्याः परमाश्रयणीयाश्च सन्ति। तादृशामौषधानां नवीनानाञ्च वनस्पतीनां मूलानां कन्दानां क्षुपानां लतानामनुसन्धानं पूर्वजैर्महर्षिभिरिवास्माभिरपि पुनः प्रकर्त्तव्यमिति।

अनुसन्धानकरा हि जनास्तत्तद्विद्योपबृंहका अभिमताः । तत्तद्ग्रन्थपठनपाठनमात्रतो न हि जनास्तदुदयदायिनो भवन्ति । अतो हि परमावश्यकमिदं वैद्यजगदभ्युदयार्थं लोकोपकारार्थञ्च यद् भारतेऽस्मिन् द्वित्राणि पञ्चषाणि वा अनुसन्धानपीठानि भवेयुः । येषु वैद्याः कृतशास्त्रश्रमा अपनीतबहिर्भ्रमा उदितचारुचिकित्साक्रमास्तत्र विनियुक्ताः सन्तो यत्र तत्र वनस्पतीन्, मूलान् फलानि पत्राणि वा सुमहद्गुणदायीनि नवीनानि ते पश्येयुः, पृच्छेयुस्तत्रत्यान्वनौकसोऽनुभवप्रवीणान्वृद्धान् सादरं सविनयं सपुरस्कारं सभक्तिचेति ।

नवीनताया ऋते वर्त्तमाने जगति न कोऽपि प्रत्ययमादधाति मनुष्यः, तदर्थं नूतनान्यौषधानि, नवीना योगाः, नवीना उपक्रमा अपि सम्यगनुसन्धेयाः । पूर्वेऽपि महर्षयः सकलं त्यक्त्वा कर्मजातं प्रतिवनं प्रतिप्रान्तं प्रतिपर्वतं गुहासु च वेशं वेशं द्वन्द्वानि सहमाना इमान् योगान् प्रादुश्चक्रिरे । तत्कृपावशादेवाद्य जगति वयं समुन्नतशिरस्का विदेशीयान् हेलया घोषयन्त आयुर्वेदविद्याप्रभावं दर्शयामः ।

एतदुद्दिश्य विचारशीलानां त्यक्तप्रमीलानां सुविदुषां वैद्यवराणां परिषदेका नियोक्तव्या । सा चानुसन्धानपीठस्य कार्यसञ्चालनार्थं सामयिकीं रूपरेखां सम्प्रकाश्य अर्थव्यवस्थां च विधाय कार्यं प्रारभेत । परिषदोऽस्या नियोगः सर्वाङ्गपूर्णेषु विद्यालयेष्वेव सम्भवेदिति मदीय आग्रहः । युगानुसारिणीं प्रवृत्तिमभिलक्ष्य भिषग्वरेण्यैस्तत्तदायुर्वेदीयरत्नानां यानि खनिभ्यः समुद्भूतानि मूलस्वरूपेणाद्यापि विराजन्ते, तत्तेषां शाणोल्लेखनं सामयिकमिति मत्वा विधेयम् । अभिप्रायोऽयं यत् सर्वाणि तानि प्रयोगनिकषोपरि पर्य्यवेक्ष्य लोकानां समक्षं समुपस्थापनीयानि । येन प्राचामायुर्वेदविदां महती प्रख्यापना स्यात् । विस्मितं च जगत् सम्भवेत् । भारतीयो ज्ञानकोषः न कस्मादपि हीनः, प्रत्युत परिपूर्णोऽनन्तश्च सर्वथा विश्ववन्द्यो वरीवृत्यते इति ।

उद्योगमपहाय सुषुप्तिमवलम्ब्य संज्ञाहीनतयावस्थानं न वयमभिप्रैमः । वयन्तामोजस्विनीं सचमत्कृतां तीव्रवेगवतीं स्फूर्त्तिमाश्रित्य स्वल्प एव काले जराजीर्णमिममायुर्वेदपुरुषं विकलावस्थातो निर्मोच्य समुज्ज्वलास्थासम्पन्नं बलिनं परं दृढं सारस्फारशरीरवन्तं च कर्तुं साभिलाषाः ससाहसाः सोत्काः सोद्यमाश्च प्रभवेम इति ।

अनुसन्धानीया विषया इमे दर्शनीयाः ।—

१—आयुर्वेदीया ग्रन्था अन्वेष्याः प्राचीनाः पूर्णाः प्रकीर्णरूपा अपि । मुक्तका योगाश्च सामञ्जस्योद्भावका विचारधारा अपि संग्रहयोग्याः । उपनिबद्धव्याश्च ।

२—भेषजद्रव्याणि सङ्कलनीयानि तत्प्राप्तिस्थानानि च तद्गुणाः, तद्रूपपरिचयकाराश्च जनास्तत्प्रभावाश्च ।

३—सिद्धा महात्मानश्च ते गवेष्या ये रससम्प्रदायानुसारमौषधकल्पानपि रसकल्पानपि सेमं जानन्ति यदा कदाचन ते लोकेभ्यः प्रदर्शयन्त्यपि । पारदस्य विशिष्टाः संस्कारा बहुषु महात्मसु सिद्धेषु विद्योतन्तेऽद्यापि ते च तेभ्यः प्रापणीयाः ।

४—अस्मदुत्सृष्टप्रायेषु अष्टाङ्गेषु विशिष्य च शल्यशालाक्यकर्मणि समुपयज्यमानानि साधनानि-आयुर्वेदे वर्णितानां विधीनां प्रयोगाः फलानि तद्दिशो व्यवहाराश्च। एवं वन्हिकर्म, क्षारकर्म, रक्तावसेचनं (शिराव्यधः) कुटीप्रावेशिक–वातातपिकादिरसायन-कल्पाः, वाजीकरणानां च योगाः, एवं पञ्चकर्माणि चेति मौलिकानुसंधानानि कलनीयानि, तेष्वनेकानि त्वातुरालयेष्वेव प्रयोक्तुं शक्यानि।

५—अनुसंधानीय-विषयेषु पञ्चमोऽस्ति पाश्चात्यविज्ञानाविष्करणानां स्फुटप्रयोजनानामङ्गीकरणम्। तच्चाधिकृत्य निखिलभारतवर्षीयषष्ठवैद्यसम्मेलने सभाधिपतिभाषणे विश्वविदितवैद्यकवैदुष्यैर्धीरधिषणावधीरितस्वर्वैद्यैरस्मद्गुरुचरणैः स्व० श्रीलक्ष्मीरामस्वामिमहाभागैः कलिकातानगर्यां यदभ्यधायि, तदेवात्र स्मार्यते संक्षेपेण। "मदीयश्चतुर्थ उपायो नवीन-पाश्चात्यविज्ञानाविष्कारसारस्य स्वीकरणम्। स्वविज्ञानोन्नत्यै ज्ञानपूर्वकमुपयोगश्च। सर्वाणि प्राचीनार्यविज्ञानानि व्यपेतरसानीव स्तब्धानि, यत्र महर्षिभिस्त्यक्तानि, तत्रैव पीठे गर्त्ते वा सीदन्ति, न कालेन पुनः प्रचलन्ति। देशकालप्राणा न तेषु प्रविश्य तान्यनुप्राणयन्ति।... भारते समायातानां विदेशीयानां विज्ञाने यत्सारभूतं तदस्माभिरात्मसादकारि काले काले। ग्रीकानामायातानां विज्ञानसारोऽस्माभिर्मन्ये ज्यौतिषिकैरिव सुविज्ञातः स्वभ्यस्तः स्वस्वशास्त्रकुक्षौ प्रवेशितश्च। भारते फिरङ्गप्लेगादयो नवनवा बहवो रोगाः कालक्रमेण प्रविष्टास्तथा चास्मदीयचिकित्सायां नवोपायसृष्टिः स्वाभाविकी तथैव च देशान्तरागतक्रमाणां स्वीकरणं जीवितविज्ञानलक्षणम्। जीवन्नेव हि जन्तुराहारादिविभिन्नं पदार्थजातं पाचनक्रियया रसनिर्माणेन चात्मसात् करोति। एवं पाश्चात्यचिकित्साया योंऽशः सर्वोपकारी विज्ञानानुमोदितः स स बलादस्माभिरात्मीयतां नेयः।"

सम्प्रति भारतीयशासनाधिकारिभिर्जामनगरे यदेकमायुर्वेदीयमनुसन्धानपीठं डा० श्रीप्राणजीवनजीमेहतामहोदयानामाध्यक्ष्ये समुपस्थाप्य यावान् द्रव्यव्ययश्चेक्रियते, न स पाश्चात्यविज्ञानानुसन्धानपीठानां द्रव्यव्ययस्य शतांशमप्यनुकरोति। किमपि भवतु नाम। शासकानामितो दृष्टिपातः शुभावह एव। सदैव हि सत्कार्याणि प्रशंसनीयानि भवन्ति। किन्त्वस्माभिरपि परावलम्बिभिरेव न भाव्यम्। सर्वैः सम्भूय आत्मनिर्भरत्वं चावलम्ब्य सर्वतः पूर्वं कुत्रचन आदर्शविद्यालये आदर्शनानुसंधानपीठमवश्यं स्थापनीयम्।

चोपडासमितिरपि आयुर्वेदानुसन्धानार्थं योजनामेकां समुस्थापितवती, सापि युक्तैव। परमहं ब्रवीमि–आयुर्वेदविद्यापीठस्य, एवं महासम्मेलनस्यापि कर्त्तव्येषु परिगणिता सेयमनुसंधानपीठोपस्थापनयोजना। न वा किम्, नो चेदवश्यं समावेश्या प्रतिपालनीया च। तस्य अयं प्रश्नः प्रथमोपादेयो विधेयश्च। केषाञ्चन विशेषज्ञानां समितिं नियोज्याग्रेसरं कर्म कारयेत। एवं वयमपि तदर्थं विचारयामो, यदि कालक्षेपणं कुर्वन्तो वैद्यपुंगवाः–उदासीना एवं शिथिलोद्योगाः सन्तो न विधास्यन्ति किमपि तत् आयुर्वेदोऽयमधिकां क्षतिमनुभवन् अशक्तावयवो दिनं दिनमनुपतनमाश्रयिष्यत्येव।

एतद्विषये ममेदं मतमवलोकनीयम्—

संहिताग्रंथाः संक्षिप्ताः सूत्ररूपेणैवानुवर्णिता आसन्, तेषामध्यापकास्तानि तानि सूत्राणि विस्तरतो व्याख्याय छात्राणां विवेकं अवर्धयन्। तत्प्रत्यक्षानुभवार्थं च यथाशक्यं अयतन्त। यथापूर्वमनुसरन्तोऽध्यापका आयुर्वेदस्य सूत्राणि दर्शितदिशैव पाठयन्तिस्म तद्वत् एतद्वक्तुं न शक्यम् यत् प्राचामायुर्वेदाचार्याणामध्यापकानां सन्निधौ साम्प्रतमिवानुसंधानोपकरणानीदृशानि अद्यतनानिवत् आसन्न वा आसन् इति, तथापि तेषां छात्रास्तन्निर्णयं कृतानुसंधाना इव नवनवोन्मेषशालिन आयुर्वैदिकौषधेषु बहुधाकलितमनना इव भवन्ति स्म, यानद्यापि वयं स्मरामः सातिशयम्। वयमप्येवं विदधीमहीति साहसावेदनीयः सारः।

अयमस्ति विचारणीयो विषयः सम्प्रति—यत्—

आयुर्वेदविद्यापीठाभिधं सुव्यवस्थितं प्रतिष्ठानं वैद्यानां निधानमिव जागर्त्ति। अत्र कानिचित् संशोधनानि आभ्यन्तरव्यवस्थायामवश्यंकरणीयत्वेन स्वीकरणीयानि।। मन्ये विद्यापीठमेवास्माकं द्रविणादानस्य विपुलं स्रोतो वरीवर्त्ति, अस्मिन् विहिते संशोधने परिवर्त्तने वा नियतमार्थिकसङ्कोचोऽस्माभिः सर्वतः पूर्वं समनुभूयेत एव। परन्तु शीघ्रमेव सा स्थितिरवश्यं परिवर्त्तिता भविष्यति। गृहीते रचनात्मकस्वरूपेऽस्माभिर्विद्यापीठसंस्थाद्वारैव आयुर्वेदस्य दृढो योजनाभ्युदयो निस्सन्देहं भविता एवेति मे विश्वासः। तदत्र मदीयाः केऽपि विचाराः क्रमशः प्रस्तूयन्ते।

क—आदर्शविद्यालयसिद्धांतं मौलिकत्वेन स्वीकुर्वाणैरस्माभिर्भारते प्रतिप्रान्तं द्वित्रा अधिका वा व्यवस्थिता विद्यालया अपि विद्यापीठाधिकृताः स्वीकार्याः। तेष्वेवाधीयानाश्छात्रा विद्यापीठपरीक्षासु उपविशेरन् नान्ये। यत्र च प्रायोगिकविषयाणां शिक्षणव्यवस्थायाः सुप्रबन्धोभवेत्। विशाला भेषजनिर्माणशाला न्यूनातिन्यूनं पञ्चाशत्संख्या रोगिशय्याः शवच्छेदनागारादिकं च संभवेत्। तत्तेषां विद्यालयानां निरीक्षणमपि विद्यापीठद्वारा नियोजिता निरीक्षकाः प्रतिषण्मासं वर्षान्तरेण वा विदध्युः। यदा च व्यवस्थासु निरीक्षकैस्त्रुटिरनुभूयेत तदा विद्यापीठतस्तेषां सम्बन्धविच्छेदोऽपि नियम्येत। ये च केवलं ग्रंथाध्यापनपराः शिक्षणालयास्तेषामायुःशास्त्रशिक्षणक्षेत्रतो बहुधा प्रयत्य दूरादेव बहिष्कारः सम्मेलनमञ्च एव विधेयः।

ख—प्रान्तीय गवर्नमेण्ट द्वारा सञ्चाल्यमाना आयुर्वेदविद्यालयाः सर्वेऽपि अस्मदायुर्वेदविद्यापीठपाठ्यक्रमं व्यवहर्तुं सानुरोधं समभ्यर्थनीयाः। एतदर्थं विद्यापीठस्य विशिष्ठाः प्रतिभुवः सदस्याः सम्भूय आफलोदयं प्रयतेरन्, तदावश्यं कार्यसिद्धर्न सन्देहः।

ग—विद्यापीठस्य परीक्षाकेन्द्राधिकारिणस्तत्वावधाने परीक्षकनियोजिका परिषदेका संस्थाप्या, परीक्षकाश्च समुचितानुपातेन प्रश्नपत्रनिर्माणार्थं पञ्जिकानिरीक्षणार्थं च पुरस्करणीयाः ये च परीक्षकाः नियमावहेलनपरा दृश्येरन् ते सत्वरमेव तत्कार्यतोऽपसारणीयाः। एतत्प्रबन्धाय सफलानुभवाः, परं प्रतीताः, अभेद्याः सुविद्वांसः कर्मठाः कार्यकर्त्तारः समुपनि-

योज्याः। विद्यापीस्य कार्यालय आदर्शविद्यालय एव कुत्रचित् स्थानविशेषे व्यवस्थित-रूपेण भवेत्।

महासम्मेलनकार्यालयस्तु नियमानुसारं सौकर्येण यत्र कुत्रचित् स्थाने परिवर्त्तन-सापेक्षः, किन्तु विद्यापीठकार्यालयस्तु सुविचार्य निश्चित एव स्थाने सदा सन्निवेशनीयः। यत्र हि विद्यापीठसम्वद्धं सर्वविधं विवरणजातं सुरक्षितं भवेदित्येतत् सर्वं निश्चितप्रस्तावे-र्घोषितव्यम्।

घ—स्वीकृतविद्यालयानां सूचीसन्निवेशानन्तरं परीक्षाकेन्द्राणां संख्या स्वभावत एव स्वल्पा स्वल्पतमा वा भविष्यति। परीक्षाकेन्द्राणां च नियन्त्रणमुद्दिश्य दृढप्रतिज्ञा अभीरवो धार्मिकाः सुचरिताश्च भिषजो यथाकालं निरीक्षकत्वेनाभिमताः केन्द्रेषु प्रस्थाप्येरन्। फलतः केन्द्रव्यवस्था यथा सुचार्वी सम्भवेत् तथा प्रयतितव्यम्।

ङ—विद्यापीठद्वारा प्रचलितासु परीक्षासु भिषङ्नाम्नी परीक्षा प्रतिरोद्धव्या। केवलं द्वे एव परीक्षे विशारदाचार्यरूपिण्यौ समुपस्थाप्ये। पञ्चवार्षिकपाठचक्रमे विशारदपरीक्षा त्रिभिर्वर्षैः खण्डत्रयेण समाप्या। आचार्यपरीक्षा तु खण्डद्वयेन वर्षद्वयेन निर्वाह्या भवेत्।

परीक्षाक्रमस्तु कतिपयैर्वर्षैर्न केवलं संस्कृतभारत्या एव प्रचलति, अपितु राष्ट्रभाषा-माध्यमेनापि शिक्षणं प्रवर्त्तमानमास्ते। राष्ट्रभाषया शिक्षणव्यवस्थायामहमप्यनुमतोऽस्मि। मन्ये, उत्तरपुस्तकानि देवभाषायां सङ्कलयन्तश्छात्रा अपि राष्ट्रभाषायामेव गृहीतविद्या भवन्ति। न हि कुत्रचन संस्कृतवाङ्मयमाश्रित्यैव अध्यापकाश्छात्रान् प्रबोधयन्ति। केवलं प्रश्नानामुत्तर-मात्रमेव संस्कृतभाषायां परिलिखन्तश्छात्राः संस्कृतमाध्यमेनाधीयाना अनुमताः। ममैष आग्रहो यत्, राष्ट्रभाषायां लेखपरीक्षा सर्वथा निरोद्धव्या स्यात्, परं शिक्षणक्रमस्तु सर्वथा प्रायोगिकमूलक एव स्यात्-इति। संस्कृतवाङ्मयस्य स्वारस्यं भाषाप्रौढिमन्तरा वेदनीयं भवेदिति तु विद्वांसः सर्वथा मन्मतेन सम्मता एव स्युः। राष्ट्रभाषायां प्रचलितायामपि परीक्षा-प्रणाल्यां ग्रंथावबोधाय संस्कृतज्ञानमावश्यकमिति तु सर्वथैव सिद्धांतोऽयं न परिहरणीयः।

सामयिकमिदं प्रस्तूयते—यदायुर्वेपाठ्यक्रमनिर्णायकसमितेः पुनः स्थापनं स्यात्। प्रतिप्रान्तं एतदुद्दिश्य शासनाधिकृताः प्रार्थनीयाः। यत् "प्रान्तीयावश्यकतानुभावका विद्वांसो वैद्याः पाठ्यक्रमसमितौ प्रतिनिधित्वेन सम्प्रेषणीयाः। ये च स्वानुभवेन प्रान्तस्थितिमनुरुध्य उपक्रम्यमाणेषु विद्यालयेषु सुरुचिरं पाठ्क्रमं प्रवर्त्तयितुं सर्वथा अनुमता भवेयुः। ऐकम-त्यञ्चावलम्ब्य सहयोगिनः स्युः।"

पाठ्यक्रमस्य हि शुचितायां सुनिरूपणीयतायां तत्तद्विद्यालयानामायुर्वृद्धिः सुलभेति न सन्देहलेशः। आकुलितपाठ्यक्रमा हि शिक्षणसंस्थाः स्वल्पजीविन्यो भवन्ति। अतः पाठ्य-क्रमस्तथा सुसमीक्ष्य निर्धारणीयो यस्मिन् येन वा अस्माकमायुर्वेदस्य मौलिकतायाः किमपि न हीयेतांशः। सामयिकञ्च विकासस्रोतः कथमपि नावरुध्येत। नवीनविषयाणां सन्निवेशोऽपि समुचितानुपातेन भवेत्—इति।

पाठ्यक्रम एव तादृशोऽपि कश्चन नवीनः सन्निवेश उपयोज्यो येनानुसंधानकराः प्रमाणितपाण्डित्यरूपेण साम्प्रतिकविषयाणां चूडान्तं परिबोधं प्रापणीयाः। ते च विशिष्टाचार्योपाधिना (पोस्टग्रेजूएट) सम्माननीयाः। पदार्थविद्यायां (फीजिक्स) रासायनिके (कैमेस्ट्री) च निगमे प्रायोगिकं ज्ञानं न्यूनान्न्यूनं लब्ध बी० एस्० सी० पदैः सदृशं भवेत्तेषाम्। एवमेव जनपदस्वास्थ्याधिकारिणो विधातुञ्चोपाधिपरीक्षायामेव व्यवस्था स्यात्।

तत्तादृशाः शल्यकर्मवेत्तारोऽपि विशिष्टया सरण्या उत्तमशल्यचिकित्सक (सिविलसर्जन) परीक्षासु विनियोजिताः सफलश्रमाः स्युः। यावानपि विशेषः पोष्टाचार्यपरीक्षासु सन्निवेश्यः, सःसम्पूर्णो देशकालानुसारं सर्वथा समीक्ष्य प्रवर्त्तयितव्यः। प्रारम्भे च पाश्चात्यशल्याध्यापनश्चिकित्सका एव अध्यापकत्त्वेन सन्निवेश्या भवेयुः, परं सत्रान्त एव उत्तीर्णव्रताः स्नातकास्तत्स्थानं लभेरन्, आद्रियेरंश्च मनसा वाचा कर्मणा भगवन्तमायुर्वेदकल्पतरुं परिषिञ्चमानाः–इति सर्वमपि सुश्रृंखलया विधेयमितिसुनीतिर्निर्धारणीया।

धात्रीशिक्षाया उपवैद्यशिक्षणस्य चापि पाठ्यक्रमाः सुनियतरूपाः पृथक् पृथक् नियोज्याः। तेषां च पाठनकालो द्विवार्षिक अधिको वापेक्षणीयः। माध्यमञ्चैतेभ्यो राष्ट्रभाषाया एव विधानलभ्यं भवेत्।

अस्माकं विद्यालयेष्वेव वा विद्यापीठेऽपि तत्तदुक्तप्रकारेण राजयक्ष्मणो नेत्ररोगस्य वा संक्रामकाणां चान्येषां गदानां वा विशेषज्ञा उत्पादनीयाः शिक्षणीयाः प्रयोजनीयाश्च तत्तत्कर्मसु सादरम्।

यदि मनोनीता इमे विषया यथोपयोगं सत्त्वरमेव मूर्त्तिमन्तः प्रत्यक्षाः सम्मुखमस्माकमुपागच्छेयुश्चेदवश्यं तदेभिर्वयं संसारेऽस्मिन् पुनरपि चमत्कर्त्तुं प्रभविष्यामो जनानुपकर्त्तुं चेत्यत्र न किमप्यवितथम्। एवं च विद्यापीठं सेवमानोऽहमेवं वाञ्छामि यज्जगति आयुर्वेदः प्रतिपदं भूमौ भ्राजमानं भूयात्। भारते तादृशा वैद्याश्चिकित्सका विद्यापीठतः प्रादुर्भूयासुः, येषां सुधाप्लुतौ सिद्धौ लघुतरौ श्रेयोवहौ पाणी, मङ्गलकर्यौ सुधाभृत इव शान्ते सान्त्वनाप्रदे शीतले नैरोग्यं वर्षन्त्याविवदृशौ, सुखस्रोतोझरी व्याधिप्रशमनकरी सामधमभूतेव साहाय्यप्रदा च वाक् मङ्गलमूलं विपत्प्रतिकूलं व्याधिकृते शूलमिव आर्त्तानां गृहे पदार्पणं सदसद्विवेचनपट्वी हिताहितनिर्णयकुशला रुजां निदानकरणे भेषजपरिणामप्रबोधने च तीक्ष्णा कुशाग्रायिता चोपकारपरायणा दीर्घदर्शिनी परमतत्वविमर्शिनी च मतिः, दयारसपूर्णं शास्त्रपरिशीलने सततोत्साहं भेषजगुणाग्राहिलं विमलं परमुदारं धर्मसारं च मनः स्वदेशाभिमानप्राभारं, स्वविद्यागुणप्रकाशे दीप्यमानः दीनान् समुद्धर्त्तुमहमहमिकापूर्णं प्रवर्त्तमानः रोगिणां परिचर्यार्थं च मृदुतामावहत् ओजस्तेजसोरेकाधारोऽहंकारश्च भूयात्।

एतादृशानां वैद्यानां सहस्राणि लक्षाणि वा क्रमशः प्रतिवर्षं विद्यापीठमुपजनयेत्तदास्माकं मनोरथाः साफल्यमापादयेरन् इति-तामिमामस्माकमाशां भगवान् महामहेश्वर एव सफलयितुमलं नान्य इति निवेदयन् अहमिदं वक्तव्यमुपसंहर्त्तुमिच्छन्किञ्चिदेव विद्यापीठोप-

योगि जगतश्च निकटतमं सन्देशनं पुरस्तात् श्रीमतामुपस्थापयामि ।

स्वतन्त्रताप्राप्त्यनन्तरं शासकसंघे ये येऽधिकारिणो महामान्या धन्या वदान्याः कामं समुपलब्धाः परन्ते नवीनांग्लविद्याशिक्षाव्यवहारादिभिरोतप्रोतमनोमस्तिष्काः न प्राचां शास्त्राणि न्यायान् नियमान् वा सम्यगाकलयन्तस्तत्प्रवाहपतितमायुर्वेदमपि गुणतो गौरवत उपादेयतया हितकृत्तया सुलभतया समर्थतया सुगमत्वेन साहजिकतया वा स्वीयतया वा केनापि कारणेन न जानन्ति न च ज्ञातुमिच्छन्ति, इत्येव महदाश्चर्यकरम् । सुचिरात्कालत आयुर्वेदोऽयं क्व विपरीतभावनाभावितान्तःकरणानां यूरोपीयविद्यैकरशणानां प्रभुत्वलब्धि-चाटुकाराणां गौरीचिकित्साचाकचक्यचमत्कृतचेतसां वा महानुभावानां हस्ते आस्ते ।

स्वातन्त्र्योपलब्धेः पश्चात् नवीना इमे वैज्ञानिकचिकित्सकास्तु आयुर्वेदस्य परमं विरोधमावहन्तो यत्र तत्र वैद्यकपद्धतिमिमां मूलोत्खातमेव दूरीकर्त्तुं वक्तुमारब्धाः । शासकाश्च पश्चिमीयशिक्षादीक्षिताः स्वस्वगुरूणामांग्लानामुपसेवनमेव तेषां पादानुरंजनमेव धर्मतो धनतो मनसा वाचा कर्मणा च सर्वथाकलयन्तो नानुमन्यन्ते स्वदेश्यान्, नाभिजानन्ति स्वप्रतिवेशिनः, न परिचिन्वन्ति चायुर्वेदम्, नाभिसेवन्ते तदौषधानि, नोपसेवन्ते रसान् रसायनानि चेति विगलितः पन्थाः ।

एतदर्थञ्च प्रचलितमिमं प्रवाहमुपरोद्धुं क्रान्तिकारिणां पदानामुत्थापनं योग्यमिति निश्चित्य वयं विशुद्धायुर्वेदस्यौषधानि तादृग्बलोपवृंहितानि विरच्य विरच्य नवीनान् रोगाना-विष्कारमाविष्कारं आमयोपशमनं सत्त्वरं ससुखं सरलञ्च कारंकारं जनताद्वारैव तेषां व्यामोहस्य शीर्षं स्फोटयेमस्तेन ते स्वयमेवास्मासु विश्वसितुमारभेरन् ।

तत्तत्प्रान्तेषु शासनाधिकरणेन आयुर्वेदाय नाममात्रत आश्रयदानो विधातुमारब्धः, तथापि मन्ये तन्नाममात्रेण अश्रुप्रोञ्छनमेव प्रतीयते । ते हि नवीनचिकित्सायामेव कोषमधिकं व्ययीकुर्वन्ति । भगवन्तमायुर्वेदकल्पतरुं सघनं सच्छायं च विधातुं सोऽल्पीयान् प्रयत्नो नगण्य एवेति दृष्टचरं नावितथम् ।

अर्थकष्टं चायुर्वेदविषये सर्वतो बाधकमिति सर्वे जानन्ति भवन्तः, अत एव, शासने च वर्गप्रथायाः (पार्टीप्रथा) चक्रप्रथायाः कारणेन प्रान्तीयशासने केन्द्रस्य अयाचितमनिष्ट-ञ्चानुगमनं कर्त्तुमापतति । एतेनापि आयुर्वेदप्रगतौ बाधैव समुत्पद्यते, न हितम् ।

सम्प्रति केन्द्रस्य प्रथमाधिकारिभ्यः आयुर्वेदस्योपयोगितया वस्तुतस्तद्गुणाधिकतया सुगमतया स्वल्पार्घतयोपलम्भनेन च सम्यगवबोधयितुं परमावश्यकतास्ते । तदर्थं चास्माकं सम्मेलनद्वारा चलितानां प्रयासानां बलवत्कलनस्य चावश्यकत्वं देहल्यां विद्यापीठकार्यालय-स्थापनाया इदमेवैकं प्रमुखं कारणं दृष्टम् । परमद्यावधि समुचितप्रयासस्य व्यवस्था न भवितुमशकत् ।

देहलीसम्मेलनात् पूर्वं शिष्टमण्डलमेकं कैप्टिन-डा० श्रीनिवासमूर्त्तीनामधिपतित्वे केन्द्राधिकृतां पुरुषाणां शासकानां पुरस्तादुपस्थितम्, तदनन्तरं च न कश्चिदीदृश उपायः

कृतो येन किमप्याश्वासनमायुर्वेदायोपलब्धं भवेत् ।

सम्प्रत्यपि मुख्याधिकारभाजा मन्त्रिणा सहयोगस्य प्रयासः कर्त्तव्य एवास्ते । न्यूनान्न्यूनमिदमेवावेदयामो यदायुर्वेदोत्थानाय परिषदमेवैकां स्थापयन्तुकृपया । तया च परिषदा सह युञ्जाना वयं युक्ततमं पन्थानं लप्स्यामहे । अत इदानीमेष एव प्रयासो विशेषरूपेण भवतु नाम ।

अनन्तरं वैद्यान् प्रति किञ्चित् सविनयं सप्रणयं सानुरोधं च अभ्यर्थये–बहुतिथः कालो यापितो वैद्यैः स्वसङ्घटनायाम् । परमद्यावधि न सा सङ्घटना पूर्णा । अयं हि कालः "सङ्घेशक्तिः कलौ युगे" इतिसूक्तिमनुसरति । एकसूत्रसंग्रथिता मणयो मालाकारं परिणताः साध्यं साधयितुं सुशकाः, तद्वदिव वयमपि वैद्या एकसूत्र (लक्ष्य) निबद्धाः संग्रथिताः (एकतामापन्ना): स्वसाध्यं सम्यक् साधयितुं समर्था भविष्याम इत्यत्र न कोऽपि सन्देहः ।

वैद्याः पुनरद्यतने काले विपरीतचक्रप्रवाहमुपनिर्वर्णयन्तः पाश्चात्यौषधानि व्यवहरन्तो लोकदृशि निपातमेव व्रजिष्यन्ति नोन्नतिमिति निश्चप्रचमवयन्तु भवन्तः । इदमपि मुहुरनर्थकरमेव दृश्यते यद्वैद्या अधिकांशतया दलबन्धप्रथामनुकुर्वन्तः स्वं स्वं दलं भिन्नं भिन्नमेव पृथग्-पृथगुद्देश्यमासाद्य घटयन्ते । सैष पन्थाः कदाचनापि न क्षेमाय बलाय सम्पदे न भविष्यति । एष विस्फोटपदार्थसदृशो व्यामोहमार्गः कदाचन् स्वानेव धक्ष्यति । तस्मादेवं द्वेषमूलं दूरतोऽपसार्य सुखकरे ह्येकतासूत्रे विराजन्तु । प्रजावर्गेण सम्पर्कं वर्धयन्तः, ग्रामोपसमितिभिः संयोगं कलयन्तः तासु तासु च राजकीयसंस्थासु स्वयं प्रविशन्तोऽपि च लोकसमाजेषु प्रान्तीयसंसत्सु चापि स्वप्रभावं स्थापयन्तः तत्र तत्र निचयेषु वर्धमानाभिः संस्थाभिः स्वोत्कर्षं ख्यापयन्तः तत्र तत्राधिकृताः भवन्तु स्वीयबलेन बुद्ध्या गुणेन व्ययद्वारेण चायुर्वेदकुशलतया च । तत्र तेषु च सर्वत्र सर्वेषु आयुर्वेदस्य महत्वं गुणवत्वं हितावहत्वं सम्यगुपयोजयन्तु नाम । तदा सर्वं सुतरां हितकरं स्यादस्माकं करणम् । जनसम्पर्कवृद्धिकुशला हि साम्प्रतं काले लक्ष्यमारोहन्ति नान्ये—इति निश्चित्य जनसम्पर्कं नानोद्योगेनापि वर्धयन्तु भवन्तः–इति मदीयोऽभिप्रायः ।

संक्षेपेण निवेदितासु-आसु विचारधारासु न जाने कियन्त्यो रोचिष्यन्ते श्रीमद्भ्यः । परमहं पूर्णं विश्वसिमि यदवश्यं सारं ग्रहीष्यन्ति नीरक्षीरविवेकिनो वैद्यमनीषिणः ।

मौलिकविकासो हि आयुर्वेदाभ्युदयाय भवेदिति मे महती पक्षपातिता । भूतदयासाधकेषु आर्ष-चिकित्साशास्त्रेषु भारतीयपरम्परैव निश्चला विलसेदिति भूयादस्माकं पूततमं वलक्षं लक्ष्यम् । भारतीय-चिकित्सन-सरण्यां पाश्चात्यानुकरणमेव व्यावसायिकताया निदानम् । ऋते चाध्यात्मिकप्रेरणाया न तन्नियन्त्रणं सुशकम् । इदानीं भेषजसमूहे कृत्रिमव्यापारः क्रियान् वर्धमानो वरीवृत्यतेतमामिति सार्वजनीनमेव । सम्भवतः प्राचीनेऽनेहसि तु यातायाताऽसौविध्यादेव वैद्या अप्राप्यौषधानां प्रातिनिध्यद्रव्याणि निरचीयन्त, किन्त्विदानीन्तु प्रतिनिधिद्रव्याणां स्थाने प्रतिरूपक (कृत्रिम) द्रव्याणां प्रयोगो निर्दरं चेक्रियते भैषज्यव्यवसायिभि-

वैद्यबन्धुभिः । ईदृग्विधा व्यवसायिनो बुधा भैषज्यनिर्माणे कृत्रिमतामापादयन्तोऽलघूनि भेषजविक्रयभाण्डागाराणि स्थापयन्तो दरीदृश्यन्ते ।

अयमेव व्युत्क्रमः शिक्षणे, निर्म्माणे, उपक्रमे च सर्वत्रैव शनैः शनैः स्थैर्यं लभमानो दृग्गोचरतामेति । समुपेक्षणे हि सेयमायुर्वेदकल्पवल्ली कथं पुष्पिता फलिता च बोभविष्यतीति शोचं शोचं दोलायते मे मानसम् । सामयिकप्रभञ्जनप्रवाहेण समागतामिमां दूषितसरणिमपसारयितुमकृतकालक्षेपैरस्माभिरवश्यं सयत्नैर्भाव्यमिति मुहुर्मुहुरावेद्य, पुनरपि स्थानस्यास्योपयोगाय मन्नियुक्तेर्धन्यवादान्प्रददानो मत्कृतास्त्रुटीः क्षमापयन्विरमामि सदसोऽस्य कार्यान्तरविचारावसरदानाय—

प्रयोग-ज्ञान-विज्ञान-सिद्धि-सिद्धाः सुखप्रदाः ।
जीविताभिसरा ये स्युस्तेभ्यो नित्यं कृतं नमः ॥

अथापीदं भवतु सन्मङ्गलाशासनम्—

आरोग्यं वितरतु भानुरातुरेभ्यः, कल्पन्तां प्रतिकरणे रुजाञ्च वैद्याः ।
उत्कृष्टा परिषदलं चिकित्सकानामस्माकं जयतु जगत्प्रहर्षिणीयम् ॥

निखिल भारतीयायुर्वेदमहामण्डलस्य ३९ तमेधीवेशने केरलेषु कोट्टक्कल आर्यवैद्यशालायाः परिसरभूमौ सम्मिलिते प्रवृत्तायाः "केरलीय-चिकित्सासम्प्रदायपरिषद्" उद्घाटकपदमङ्गीकृत्य "वटक्केप्पाट्टे' नारायणन् नायर नामकेन भिषजावतारितमिदं

वाङ्मुखम्

अयि भोः मान्याः आयुर्वेदधुरीणाः सुहृदः,

धन्योहमस्मि यदिह भवतां गुरुतरेऽस्मिन् सम्मेलने महत् स्पृहणीयं च पदमेतत् प्रापितः समाजप्रवर्तकैः सुहृद्भिः। तेषां मयि पक्षपातः, मम वार्धक्यात् केरलीयत्वादायुर्वेदाभिमानित्वाच्चेत्यवगम्यते।

सर्वेपि खलु जानन्ति कस्याश्चित्परिषद उद्घाटनं नाम तत्रोपन्यस्यमानस्य विषयस्य सदस्यबुद्धौ निलीनस्योद्दीपनेन व्यक्तव्यवहारयोग्यतापादनमेव भवितुमर्हतीति। अतोहमत्र परिषदो विषये वर्तमानमवस्थान्तरं सामान्येन, केरलीयचिकित्सायुक्तिविशेषं विशेषेण च परामृश्य प्रथममत्र किञ्चित् प्रस्तोतुमिच्छामि।

प्रारम्भः—

अतिमानुषमतिवैभवशालिनामृषीणामनर्घं दर्शनप्रभावमवष्टभ्य स्वयमाविर्भूतः सोयमायुर्वेदसुधाकरश्चिरात् "भारतीयायुर्वेदमहामण्डलम्" नामोपाधिमाश्लिष्य प्रकाशमानः सम्प्रति केरलदेशमपि स्वसन्निवेशेनानुगृह्णातीति परमाह्लादस्थानमिदमस्माकम्। केरलीयायुर्वेदकलायास्तत्तादृशमहनीयप्रभावो विग्रहो नवीनैरङ्गप्रत्यङ्ग भूषणैरलंकृत्य यत्र प्रतिष्ठितोस्ति सेयमार्यवैद्यशालाया अङ्कणभूमिः कालोचितसकलसंविधानसमुज्वलं प्रसाध्यैतत्सम्मेलनायोपस्थापितेति मन्ये साधु कृतमेतत्प्रवर्तकैरिति (हन्त स्मृते ! सावधाना भव। नवीनविज्ञानवाहनकेतुग्रस्तस्य तरुणकलानिधेस्तस्य नागलोकनिपातवार्तामुत्पाट्यास्मिन्नवसरे तद्विशल्यघ्नं मर्म मा संक्षोभय।) आयुर्वेदपुण्यदेवताप्रसादनं परमपुरुषार्थं मन्यमानः कृतकृत्य एव दिवं गतः स्मरणीयचरितः श्रीमान् पि. एस. वारियार महाशयः सत्यं स्मृतिपथमारुह्य प्रमोदयत्यस्मान्। यो हि स्वात्मजैरनेकैः शिष्यैः सुहृद्भिश्च निर्वर्त्यमानमेतं सम्मेलनोत्सवमवेक्ष्याह्लादभरितो भूत्वा दिव्यरूपेणास्मानद्यानुगृह्णाति॥

इह खलु भारते परिपूर्णेन राजकीयसाहाय्येनोपोद्बलितं, कालोचितसर्वसंविधानमनोहरं, पाश्चात्यभूमाववतीर्णं, कालेन देशान्तरेषु लब्धप्रसरं, "अलोपति" संज्ञया प्रथितमेकं

वैद्यकमेव महीयते; नवीनविज्ञानो (Science) पस्कृतैर्विचित्रैः प्रयोगैः प्रेक्षावतां परिलालन-भाजनं च भवति। सांप्रदायिकमार्यवैद्यकमपरिष्कृतं नवीनविज्ञानस्पर्शाक्षमत्वादप्रमाणमराजयोग्यं परिवर्जनीयमिति, देशाभिमानादज्ञानात्, सुलभत्वाद्गत्यन्तराभावाच्चेदं ग्रामेषु बहुभिरङ्गीक्रियत इति, प्रवाहापतितेषु रोगशान्तिरूपेषु फलेष्वेतत्प्रभावः सादरमभिष्टूयते इति च नव्यशिक्षिता अभिप्रयन्ति। चिरादेवं नवीनविज्ञानपक्षस्यार्षसम्प्रदायपक्षस्य च सम्मर्दमनिवार्यमवेक्षमाणा भारतराज्यस्वातन्त्र्यलाभप्रफुल्लान्तरङ्गा भरणाधिकारिणः प्राचीनकलाजालमनुगृह्णन्त इव प्रख्यापयन्ति स्म "देशीयवैद्यकं सर्वमप्यालोपतिकविज्ञानेन सहैकीकृत्य राजकीयावलम्बः समग्रः सम्पादनीय" इति। "एवंविधो वैद्यकसमुच्चयः" कथं सन्धातव्य इति परीक्ष्य निर्धारणाय, कर्तव्यनिर्देशाय चोभयपक्षनिष्णातानां "चोप्रा" महाशयाध्यक्षितानां संघातः (Committee) कोपि संकलितः। तेन च संघेन गवेषणं कृत्वा कर्तव्यनिर्देशः समर्पितः। तदनुसारेण राजकीयायुर्वेदकलाशालासु पाठ्यग्रन्थपरिवर्तनं प्रयोगप्रकारनवीकरणादिकं च समारब्धम्। मद्रपुरे सेयं महापाठशाला यथानिर्दिष्टं सर्वकलाशालया सह संयोजनमलभमाना, समुन्चितमिश्रवैद्यकाङ्गीकरणं नियमविरुद्धमवज्ञाकरं चेत्यवखण्डिता, परिम्लानेव विषण्णेव च कथञ्चिदात्मानं धारयतीति समुच्चयवादिनो विमनायन्ते। संस्थानान्तरेष्वपि प्रायः समान एवायं पराजय इति ज्ञायते॥

आयुर्वेदपरिष्करणस्याधुनिकी दशा

एवं प्राप्ते मनोरथभ्रंशे केचित् चोप्रासंङ्घस्य राजकीयानां वा ज्ञानवैकल्यमौदासीन्यं गवेषणप्रकाशः तत्फलं च वात्र हेतुमुदाहरन्ति। अन्ये पुनः सूक्ष्मतरेण गवेषणेन वैद्यकसमुच्चयः शक्यं प्रसाधयितुमिति प्रतीक्षन्ते। गवेषणविषयकश्चायं प्रवादः प्रमादो वा चिरात्समारब्धः साम्प्रतमायुर्वेदिकानामप्यन्तरङ्गं तरङ्गयति॥

संयोजनं नाम क्षीरनीरन्यायेन, तिलतण्डुलन्यायेन वा द्वयोरेकीकरणमेव। उभयस्वरूपसंस्थानमपरित्यज्य विहितः संयोगो वियोगप्रवणः क्षणमेकत्वप्रतीतिं जनयन्नपि नोद्दिष्टफलोपस्थापने समर्थो भवतीति, क्षीरनीरन्यायेन सर्वावयवसन्धानं तु प्रभावातिशयदर्शनादिष्टमर्थमनुकूलयतीति च पश्यन्ति केचिद्विचारशीलाः। अहं तु मन्ये यदि तात्पर्येणात्र पण्डिताः प्रवर्तन्ते, राजकीयहस्तावलम्बश्चात्र तावन्मात्रमुपकरोति, तदा प्राचीननवीनचिकित्सासंकरात्मकमातुराणामाश्वासनोपयुक्तमेव, विलक्षणं किमपि वैद्यकमाविर्भविष्यतीति। गवेषणसंस्कारः कालं देशं फलस्वरूपं चाविगणय्य स्वयमनुवर्तते। तस्य परिणामस्तावदिष्टरूपोऽनिष्टरूपो वा भवति। तदनुसरणविषये नित्यमस्वतन्त्रा मनुजाः॥

कीञ्च नवीनवैज्ञानिकैर्निर्दिश्यमानो गवेषणप्रकार आयुर्वेदस्यागमांशे न घटते। इन्द्रियग्राह्यैर्गुर्वादिभिर्गुणैः, पाञ्चभौतिकद्रव्यजालगोचरैः, सौम्याग्नेयवायव्यरूपेण विभक्तैः, श्लेष्मा पित्तं वात इति दोषत्रयसंकेतावरुद्धैराविष्कृतो दृढं निबद्धश्चायुर्वेदागमः, नवीनवैज्ञानिकोल्लिखितानामुपादान भूत भौतिकद्रव्याणामंशांशविकल्पनात्मकं, नवीनं, गवेषणं सर्वथा न सहते। चिकित्सायुक्तिषु चागमानुसारिणीषु नवीनं गवेषणमवैज्ञानिकमशास्त्रीयं च भवति।

वैद्यकसमुच्चयं परमलक्ष्यं परिकल्प्य राजकीयसम्बन्धेन प्रवर्त्यमानोयं गवेषणप्रयत्नः परिष्कृतानेकानर्घदोहदसंपन्नोपि फलपर्यन्तं नावतिष्ठेत। फलितोपि च नाभिप्रेतमास्वादं जनयिष्यति। अन्ते आर्यवैद्यकं केवलमन्धविश्वासे निमग्नं न शक्यमुद्धर्तुं, तेजस्वि राजकीयमन्तरिक्षं प्रापयितुं वा इति पाश्चात्यैः समर्थितस्य स्वतन्त्रभारतेपि परिलाल्यमानस्यायुर्वेदावहेलनसंस्कारस्योच्चैः पदप्राप्तये हस्तदानं करिष्यति ॥

अहो प्रमादः! अनन्तरपूर्वसंवृत्तं "इन्त्याप्रधानसचिवस्य" नेरुमहाशयस्य केरलेषु पर्यटनं, धर्मार्थिन्यायानपेतैर्वाग्विर्षघोषैः सर्वेषामत्रासाधारणचमत्कारप्रदानं च वहुष्वर्थेषु सफलं संवृत्तमित्युत्पश्यामः। अत्र हि आयुर्वेदवैद्यशालाभिरौषधशालाभिरन्यैश्च तथाविधैः सफलं केरलीयवैद्यकप्रवर्तनं विपुलं व्यक्तं च प्रदर्शयद्भिः प्रस्थानैः संकीर्णेषु, नगरेषु ग्रामेषु पाठालयेषु च यावच्छक्यं परिष्कृतेषु, संचरन्नेष महाशय आयुर्वेदस्यान्यत्रादृश्यं विकासं प्रत्यक्षीचकारेति नात्र संशयावकाशः। हन्त! क्वचिदपि क्षणमात्रमायुर्वेदानुकूलस्तस्य हृदयस्पन्दो नाश्रूयत इति चित्रीयामहे। आरोग्यप्रदानसामर्थ्यं केवलमुल्लिख्य वैज्ञानिकमतादृशं वा (Scientific or unscientific) किमपि समुचितेन साहाय्येन परिरक्षणीयमिति प्रभुधर्मस्तेन महाशयेन हन्त! नानुगृहीत इति विषीदामः। अस्मिन्नर्थे विस्तरस्य नायमवसरः। नवीनविज्ञानं (Modern Science) गवेषणं (Research) राजकीयसम्बन्धं च परामृशतो मे बुद्धौ प्रस्फुरितमप्रकृतमिदमत्र मया प्रकाशितमिति क्षम्यतामागः ॥

प्रायः सर्वाः कलाः गवेषणं तत्तत्कालाद्युचितमालम्ब्य यदि लोकोपकाराय प्रगल्भन्ते। अत एतन्न जातु नवीनवैज्ञानिकैराविष्कृतं भवितुमर्हति। प्रतिदिनमिवान्यथान्यथा विपरिणमन्तं विकल्पप्रवाहमनुजीवन्त्यः प्रयोगप्रधानाः कलाः गवेषणक्षुण्णां पदवीं सर्वात्मनानुलम्बन्ते। आयुर्वेदोपि नियममेतादृशं नातिवर्तते। सर्वतोमुखं कालदेशदशापरिणामानुरोधि सुप्रतिष्ठितं

गवेषणं पूर्वसिद्धमेव

दिव्यमृषीणां गवेषणमायुर्वेदस्यालम्बः। आगमविषये पुनरिदानीं व्याख्यानेन सरलतरेण तदर्थव्युत्पादनमेव गवेषणं नाम भवति। विमर्शकलाविचक्षनैश्च प्राचीनाचार्यैः विशदं विस्तीर्णं च व्याख्यानं विधायायमार्थव्युत्पादनं निपुणतरमकारि। प्रयोगाः पुनः "दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः सत्त्वं सात्म्यं तथाहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः सूक्ष्मसूक्ष्माः समीक्ष्य" विधातव्यत्वात् सदा गवेषणमपेक्षन्ते। आगमज्ञो, दृष्टकर्मा, अभ्यासशाली, दक्षश्च वैद्यस्तत्र न प्रमाद्यति। प्रयोगेषु "युक्त्या युक्त्या युक्त्या" इति पदे पदे प्रबोधयन्तः पूर्वाचार्याः गवेषणपारम्पर्यरक्षणे जागरूका एव दृश्यन्ते। द्रव्याणामपि गवेषणमागमदृष्टेन, लोकदृष्टेन, स्वानुभवसिद्धेन, च मार्गेण शोधनादिकर्मसु, ग्राह्यांशे, संयोजने पाके, विनियोगे चात्यन्तमपेक्ष्यते। गवेषणसंस्कारसम्पन्ना एव भिषजः कर्मसिद्धिमृच्छन्ति। गवेषणस्य प्रकारो फलं चादौ चिकित्सकबुद्धिमारोहति; ततः क्रमेण शिष्याणां, तद्विधानां च व्यवहारैरुपबृंहितं नवं नवमारोग्यप्रदानपरिपाटीपरिष्करणमनुरुणद्धि। क्रमेणागमवत्प्रतिष्टामधिगत्य वहुविधविकल्पचारुतरः प्रतिदेशं भिन्नभिन्न इव भूत्वा दोषजैर्दोषपीडितैश्च सत्क्रियते। भारतेस्मिन् पुरैव "कालिङ्गो" "मागध" इत्यादिदेशभेदोपाधिमा-

श्रित्य प्रचलितोयमधुनापि यूनानिवैद्यकं, द्राविडवैद्यकं, केरलवैद्यकमित्यादिरूपेण प्रसिद्धं विशेषमनुविदधाति। तत्तद्देशीयपण्डितानां सुस्थिरं साधुसङ्घटितं, गवेषणमेव देशीयवैद्यक-भेदस्वरूपमनुपालयतीति स्पष्टमेवेदम् ॥

अस्मत्केरलदेशीयवैद्यकस्य चिरप्रवृत्तविकल्पप्रवाहप्रतिष्ठितं विविक्तं व्यवहारमुदाहृत्यायमर्थोत्र विशदीकर्तुं शक्यते वा इति परीक्षामहे। तद्यथा—

केरलीय वैद्यकम् बहोःकालात् प्रागेव केरलेष्वायुर्वेदस्य सर्वाभ्युपगतः प्रचारः प्रतिष्ठितः पारंपर्येण सुरक्षितश्चाद्यापि परिपुष्ट एव प्रचलति। अत्र हि चिकित्सा-कर्मणि जीवितसर्वस्वं विनियुज्य विराजन्ते कानिचिदष्टवैद्यकुलानि। द्विजन्मानस्ते धनाढ्या, वैदिकधर्मनिष्ठा, भार्गवेन केरलभूप्रतिष्ठाया आदिकर्त्रा वैद्यवृत्तिं परिगृहीता इत्यैतिह्यादव-गम्यते। लौकिकेषु शास्त्रीयेषु चार्यधर्मकर्मसु योगादिषु ते यथाविधि देववैद्ययोरश्विनीसुतयोः स्थाने परिगृह्य पूज्यन्ते; रोगारोग्यमृत्युदशानिर्णये परमप्रमाणतया स्वीक्रियन्ते च। आरो-ग्यदेवताया भगवतो धन्वन्तरेरुपासनेनाश्विनीकुमारयोराराधनेन चाध्यात्मिकं माहात्म्य "ममृत-पाणित्वं" नामाधिगत्य नाममात्रैरौषधैरनुग्रहैश्च रोगनिवारणकर्मणि दिव्यं प्रभावं प्रदर्शया-मासुरित्यद्यापि पण्डितपामरगोचरमैतिह्यमत्र प्रचलति। एतत्कुलानामष्टसंख्याकत्वादष्टाङ्ग-वैद्यकपरत्वादुभयप्रकारत्वाच्च वाष्टवैद्याभिधानमन्वर्थं पश्यन्ति विद्वांसः। चिकित्सायामेतेषा-मष्टाङ्गहृदयमेव परमं प्रमाणमासीत्। आयुर्वेदस्वरूपमष्टाङ्गहृदयार्थे समवरुद्धं चिकित्सा-युक्तिसर्वस्वप्रबोधाय पर्याप्तमेवेति व्याख्यानकलाविलासशालिनस्ते सम्यगभ्यमन्यन्त। अष्टाङ्ग-हृदयवैद्यं नामायुर्वेदाद्विलक्षणं किमपीति वार्तात्राद्यापि नात्यन्तमपयाता। केरलदेशे पुरा वाग्भटस्यागमनमष्टवैद्येभ्यः साक्षादुपदेशदानमप्यैतिह्ये निरूढमस्ति। वाग्भटस्य प्रधानशिष्य-तया प्रसिद्धो हृदयस्य संग्रहस्य च व्याख्याता सुप्रसिद्ध इन्दुपण्डितः केरलीय इत्यैतिह्यमत्र प्रचलति। वाग्भटस्वरूपध्यानमन्त्रादिभिस्तदुपासनमत्र समादृतम्। एकादश्यादिव्रतवासरेषु बुद्धमताचार्यप्रणीतत्वाभिप्रायादष्टाङ्गहृदयस्य पाठोत्र वर्जितः। अष्टवैद्यकुलेषु संस्कृताध्ययने नियुक्ता ब्रह्मचारिणः समग्रमष्टाङ्गहृदयग्रन्थगतं वाक्यजालं मुखस्थं कुर्वन्ति। पितुः, पितृ-व्यस्य, भ्रातुर्वा चिकित्साकर्मणि व्यापृतस्य सान्निध्यमपरित्यज्य रोगनिर्णये चिकित्साविधावौ-षधपाकादिषु च कार्यान्तरानन्तरितमेतत्कुलधर्मकर्माभ्यासं कुर्वन्ति। एवमार्यवैद्यकस्य वृत्त्यर्थे विनियोगमचिन्तयन्तः स्वधर्मत्वाभिमानेन तत्र धृतव्रता, अष्टवैद्या एव केरलीयचिकित्सा-विशेषोपज्ञातार इति ज्ञायते। तेषां हि शिष्याः, प्रशिष्याश्च बहवो गुरुकुलवासादायुर्वेदतत्व-ग्रहणे, ग्रन्थपाठे क्रियायुक्तौ, प्रयोगविशेषेष्वौषधपाकेषु च सामर्थ्यमधिगत्याष्टवैद्यपारंपर्य-महीनं परिपालयन्तोद्यापि सम्यगाद्रियन्ते। श्रीसामूतिरिमहाराजः, गोश्रीमहाराजः, श्रीमद-नन्तपुरमहाराजश्च स्वगृहवैद्यपदमष्टवैद्येभ्यो विभज्य, स्वस्वराज्यभरणपरिपाटीषु तत्कुलपरि-पालनमपि क्रोडीकृत्य "वर्षाशन" द्रव्यदानादिभिर्बहुपाकुर्वन्नधुनाप्युपकुर्वन्ति ॥

एते केरलीया भिषजस्त्रिदोषवैषम्यतत्वदर्शनबलेन तत्तल्लिङ्गानां रोगेषु मात्रा भेदेन

केरलीयचिकित्साविशेषाः तदुपपत्तिश्च

समवेतानां विकल्पनेन, दोषकोपनिष्कर्षणे वैदग्ध्यमन्यादृशं वहन्तश्चिकित्साविधावनेकं परिवर्तनमकार्षुः । आपातग्रहणे तावदशास्त्रीयमसंगतं चेति प्रतीतिं जनयन्तः प्रयोगाः भूयस्तरामत्र प्रचरन्ति । पञ्चकर्मसु, तत्पूर्वकर्मणि, स्नेहस्वेदात्मके पश्चात्कर्मणि प्रशमनरूपे, चाद्रियमाणा एतच्चिकित्साप्रकारा विशेषेण कायचिकित्सायां, सान्निपातिके च दोषसञ्चये, विजयमसन्दिग्धमार्जयन्ति । तेषु च "षष्टिकापिण्ड" स्वेदनं तैलसेको "धारा" चेति सर्वधातुगतदोषनिर्हरणसमर्थाः प्रयोगाः प्राधान्येन परिगण्यन्ते । वातस्य दोषधातुमलसाम्राज्यं प्रयोगेषु मुख्यतया स्मरणीयमभिमन्यमानाः मूर्ध्नि तैलेन धारां सर्वाङ्गसेकं च निराम लिङ्गेषु प्रायो महाव्याधिषु विस्रब्धमेते प्रयुञ्जते । तक्रेण कषायेण क्षीरेण च केवलेन मिश्रेण द्रव्यान्तरसंस्कृतेन च पित्तकफानुबन्धमात्राभेदं परीक्ष्य मूर्ध्नः सेको बहुधा विकल्प्यते । तैलसेकः पिण्डस्वेदः धारा चेति विरुद्धगुणैरिव प्रयोगैर्यौगपद्येन सङ्घटितेस्मिन्नुपक्रमे रोगी प्रतिदिनं क्रियारम्भे विरेचनौषधं सेवते । स्नानमौषधसंस्कृतक्षीरपेया, मध्यमपथ्यसंविधानेन भोजनं चेत्यादिः क्रमोत्र प्रायेणानुविधीयते । आगमानुसारेण स्नेहस्वेदपूर्वकं विरेचनौषधे दातव्ये तद्दानपूर्वकमुष्णस्निग्धतैलयमकादिभिः सेकेन स्नेहस्वेदकर्म प्रसाध्यते । युगपच्च शीतरूक्षद्रवसेको मुहूर्ताधिकं कालं मूर्ध्नि क्रियते । "एवं दोषाणां चयप्रकोपप्रशमप्रयोजकमिदं क्रियायौगपद्यं पारंपर्योपदेशमात्रप्रमाणकं; फलञ्चास्य यादृच्छिकमिति प्रत्यवतिष्ठमानान् प्रति किञ्चिदिवोपपत्तिप्रदर्शनमवसरोचितं मे प्रतिभाति ॥

चिरानुवृत्तोयं प्रयोगविशेषोर्वाचीनैः पारंपर्यमाश्रित्यानुरुध्यत इति युज्यते वक्तुम् । अस्योपज्ञातॄणामाद्यानामावश्यं प्रमाणावलम्बित्वमनपलपनीयम् । तत्पूर्वत्वात्पारंपर्यस्याप्रसङ्गः स्पष्टः । फलस्यापि यादृच्छिकत्वकथनं न विचारसहम् , तस्य खल्वनिश्चितत्वे कर्मसु प्रेक्षावतामनादरः कर्मलोपश्च भवेदेव । अनुभवेन तु कर्मविशेषोयं फलञ्चात्र जनानां श्रद्धातिशयं जनयतीति प्रसिद्धम् । स्नेहस्वेदाभ्यां क्लेदितस्य द्रवीकृतस्य च दोषस्य निर्हरणं मृदुना युक्तिविशेषेण साध्यत इति "बुद्धिप्रसादं वलमिन्द्रियाणा" मित्यादि विविक्तं फलमनेनानुभूयत इति चात्र स्पृहणीयो विशेषः । युक्तिश्चात्रैवं धीमतां परीक्षणमर्हति । अत्र हि केवलवाते शिरस्यापि तैलधारा क्रियते । वाताधिकयोः संसर्गसन्निपातयोस्तैलेन सर्वाङ्गसेकः मूर्ध्नि क्षीरादिधारापि क्रियते । पित्ताधिके, शिरोरोगे नेत्ररोगे प्रमेहोन्मादयक्ष्मविसर्पकुष्ठरक्तपित्तमदात्ययाढ्यवातादिषु तत्तदोषकोपमात्रावैचित्र्यं सूक्ष्मसूक्ष्मं परीक्ष्य तत्तदुचितौषधं तैलं धाराद्रव्यं क्वाथपेयादि च कालदेशसात्म्याद्यनुकूलं परिकल्प्यन्ते । अच्छपेयविधिप्रदर्शितानि पथ्याहारादीनि "यान्यहानि क्रिया तानि तावन्त्यन्यान्यपि" समाद्रियन्ते । दोषाणां समवेतानां, दूष्याणां, कालार्थकर्मणां च परिणाममात्राविशेषविज्ञानोपयोगीनि लिङ्गानि निष्कर्षेण निरूप्य, रोगस्य संप्राप्तावुपशये मार्गे च निश्चितां व्युत्पत्तिमवाप्य, क्रियायौगपद्ये संकरे वा भिषगप्रमत्तः प्रगल्भते । आगमो हि जिज्ञासूनां विज्ञानोपायो भवतिः युक्तिविशेषावलबेन प्रयुज्यमान एव रोगप्रशमनरूपाय फलाय कल्पते । दक्षश्चिराभ्यासभावितधीः दृष्टकर्मा चागमज्ञो भिषक् युक्त्या विकल्पितं यदौषधादिकं प्रतिरोगं प्रयुङ्क्ते तदेव चिकित्सा नाम भवतीति "तत्तत्क्ष-

णोत्थिता युक्तिः भिषजां कर्मसिद्धिकृत आगमः पूर्वसिद्धानां युक्तिनामक्षतो निधिः" इति च युज्यते वक्तुम् । बहुशः प्रयुक्तोव्यभिचरितफलकश्च युक्तिसंवलितः प्रयोगविशेषो व्यवहारे रूढः शिष्यपरम्परयाभिरक्षितश्चावश्यमागमस्योपाङ्गतयाङ्गीकरणमर्हति । अत एव केरलीया उक्तपूर्वान् क्रियाविकल्पान् सर्वोपकरणसंविधानक्रमवर्णनपूर्वकं परिष्कृत्य संस्कृतभाषामयं "धाराकल्पं" नाम ग्रन्थमारोपयामासुः । रोगपरीक्षणे दोषनिर्णये भैषज्ययोगेषु च सिद्धफलकं गवेषणमष्टवैद्या न कदापि गोपयामासुः । इदं च वस्तु सर्वसमानया सुरभारत्या देशभाषया च तैः कृतेषु ग्रन्थेषु दत्तदृष्टिभिरभिज्ञैः न कथञ्चिदपह्नोतुं शक्यते । योगामृतं योगसारः, चिकित्सामञ्जरी, चिकित्साक्रम इत्यादयो ग्रन्थाः 'सारसंग्रह' 'पाठ्य' कैरलीभास्वरप्रभृतयो व्याख्यानग्रन्थाश्च तेषामागमतत्वविरोधेन गवेषणरसिकत्वं विशदयति । आकारग्रन्थार्थभाविताया वैद्यस्यबुद्धेरेव साक्षात् क्रिया सम्बन्धः, शास्त्रोपदेशस्तु तद्गवेषणयुक्तिद्वाराणि सर्वतः समुद्घाट्यगतार्थो भवतीति बोधयन्ति च । अत एव चिकित्सामञ्जरीप्रभृतीनां प्राचीनभाषाग्रन्थानामध्ययनेन केवलं त्रिदोषप्रकृतिविकृतिषु व्युत्पत्तिमासाद्यात्र वहवो भिषजश्चिकित्साकर्मणि यशो, धनं चार्जयन्ति; केरलवैद्यकमायुर्वेदाद्विलक्षणः कोपि सम्प्रदाय इति प्रथां परिपालयन्ति च ॥

सुविदितमिदं भवतां यदत्र "आर्यवैद्यशालायाः" स्थापकः पोषकः परिष्कर्ता च यावच्छक्यं गवेषणोपायानद्भुतेन पौरुषेणायुर्वेदे समयोजयत् इति । अन्यादृशेन निरन्तरेण निशितेन चास्य चेतनात्मकेन गवेषणेन संपादितैरष्टाङ्गशारीरबृहच्छारीरादिभिः समुच्चयवासनावतां मनोहरैर्ग्रन्थैरुच्चावचैश्चौषधपाकपरिष्करणविनियोगप्रचारणैरनुकरणीयैरन्यैश्चायुर्वेदमासिकग्रन्थप्रसाधनादिभिः केरलीयानां गवेषणसंस्कारोधुनापि परिरक्षितो दृश्यत इतीदं सन्तोषस्थानमस्माकम् ।

केरलीयौषधयोगाः — औषधयोगाश्चात्र परिवर्तनयुक्तिप्रभावनवीकृताः शास्त्रभावनापरिपक्वधियां चमत्कारं जनयन्तो रोगपीडितानामाश्वासनायाद्यापि प्रचरन्ति । तेषु धान्वन्तर कस्तूर्यादि-गोरोचनादि-निर्गुण्ड्यादिप्रभृतयः गुलिकायोगाः कर्पूरादि-मञ्जिष्ठादिप्रमुखाश्चूर्णयोगाः, भृङ्गामलक-तेकराज-जात्यादिरूपास्तैलयोगाः, करुम्पिरुम्पादि-पञ्चसारगुलकामेश्वर-"पुलिकुलम्प्" इत्यादयो लेहयोगाः, शास्त्रोक्तमुष्टियोगघटितानामौषधानां विचित्रैः परिवर्तनैः पुनर्नवीकृताः नानाविधाः कषायतैलादियोगाः केरलवैद्यकस्वरूपस्य विविक्तं गात्रमुपबृंहयन्ति ॥

एवमनन्यगोचरं गवेषणपाटवं चिरादुपलभ्य, वैद्याचार्यपदवीमधिरुह्यागमानुसारेणैव नवीनान् ग्रन्थान् विरच्य, जातिमताद्यविशेषेण शिष्यपारंपर्यं प्रतिष्ठाप्यास्माकमष्टवैद्याः कालदेशविशेषाव्यतिरेकेण पूज्यन्ते । स्वानुभवसिद्धानां प्रयोगप्रकाराणामौषधानां च देशीयवैद्या निगूहनं कुर्वन्तीति नवीनानामपहास एवं केरलीयैः प्रागेव दूरीकृत इति स्पष्टमेतत् ॥

अयमत्रास्ति वक्तव्यो विशेषः । प्राचीनकेरलीयवैद्याः रसचिकित्सायां वैमुख्यं प्रावर्शयन् । यद्यपि तत्कृतेषु ग्रन्थेष्वर्वाचीनेषु रसादीनां शुद्धिप्रकारः रसघटिता

रसचिकित्सा

औषधयोगाश्च प्रकटितास्तथापि प्रत्यवायभूयिष्ठं रसादिप्रयोगमन्तरेणैव चिकित्साकर्म यावच्छक्यमनुष्ठेयमिति तेषामभिमान इति ज्ञायते । अष्टाङ्गहृदये तावद्रसाद्युपदेशाभावमत्र हेतुमुदाहरन्ति केचित् ॥

केरलीयानां गवेषणाभ्यासफलं न केवलमुन्मादादिरोगेषु, नवीनाविष्कृतेषु रक्तसम्मर्दा (Blood Pressure) दिषु च जनैरहीनमनुभूयते । तत्र रक्तसम्मर्दं प्रकृत्य किमप्युपपादनमत्र युक्तं पश्यामि । रक्तसम्मर्दो नाम रोगः नवीनैराविष्कृत इति प्रकीर्त्यते । परीक्षणयन्त्रेण चालोपतिका वैद्या रक्तवेगमात्राव्युत्पादनं तद्गतं प्रदर्शयन्ति; कौतुकं च जनयन्ति । किं तु नवीनैः सिरावस्ति- (Injection) प्रभृतिभिश्चिकित्सितः सोयं विकारः प्रायो न प्रशाम्यति; क्वचित् सुस्थिरायच वृद्धेरस्वास्थ्याय प्रवर्धते च । पूर्वोक्तेन धाराप्रयोगेन तु यथावत्प्रयुक्तेनास्य प्रशमोनुभूयते । तत्रोपपत्तिः संक्षेपेणात्र दीयते ॥

रक्तसम्मर्दः

रोगस्य नवीनमाविष्करणं नाम लक्ष्यलक्षणविमर्शेन व्यवहारयोग्यतापादनमेव । लक्षणानि, रोगस्याङ्गानि, अङ्गित्वमारोप्य चिकित्साविशेषव्यवस्थापनेन पृथक्करणं क्षमन्ते । युक्तिरसिकेन गवेषणपटुना च वैद्येन व्यक्तमव्यक्तं च नवीनरोगाणामाविष्करणमीदृशमनुपेक्षणीयमेव । चिकित्सायुक्तौ च तेनाप्रमत्तेन भाव्यम् । व्यवहारार्थं तु हेतुसंप्राप्त्यादिनिरूपणमादरणीयं भवति । तद्यथा—

धारायाः स्पृहणीयत्वम्

निरन्तरचिन्तादन्तुरितान्तरङ्गस्याप्रशान्तस्य नरस्योत्तमाङ्गे रक्तप्रवाहवेगोधिको विषमश्च भूत्वोर्दानवायोः पित्तस्य च संचयं करोति; तल्लिङ्गानि च प्रायो मानसिकानि प्रदर्शयति । आयुर्वेददृष्टचात्र दोषः पित्तानुबद्धो वातः, दूष्यं चौजः तदुपाधिभूतं नाडीमण्डलञ्च, सर्वेन्द्रियव्यापारतरङ्गिते मूर्ध्नि, तदुपाधिभूतानां नाडीनां तत्पोषकस्य च रक्तवेगस्य विषमता, व्यापारवतां प्रायः सर्वेषां मात्राभेदेन व्यक्ताव्यक्तरूपेण, अल्पानल्पकालस्थायिनी हन्तासकृदनुभोक्तव्यैव भवति । रजस्तमोदोषाभिभूते हृदये विक्षेपारतिभ्रमादिष्वसह्यतां गतेषु व्यापारोपरमात्मको विश्रमः सर्वोपरि स्पृहणीय इत्यत्र न सन्देहः । स चात्र धाराया अभ्यासेनावश्यं संपद्यत इति पूर्वोक्ततदुपपादनयुक्तिपरामर्शेन प्रेक्षवन्तः साधु प्रतियन्त्येव ॥

एवमुक्तानामनुक्तानां च प्रादेशिकवैद्यकलानां परीक्षणेन वैद्यकसमुच्चयः सम्पादनीय इति तस्य च तथात्वमभंगुरं परिरक्षणीयमिति च जायमानः संरम्भः कियन्मात्रं साधुरित्यत्र पण्डिताः प्रमाणम् । आयुर्वेदालोपतिकयोर्विज्ञान-प्रयोग-द्रव्य-सम्पत्तेरैक्यं तु विचारशीलैः पृथगेव निर्णेयं भवति । ममाशयस्तावदनेनोपन्यासेन स्पष्टीकृतः । महाशयाः ! दीर्घेस्मिन्नुपन्यासे कृपया चिरमवधानं दत्तवद्भ्यो भवद्भ्यो धारयामि बहून् धन्यवादान् ॥

इति

केरलीयचिकित्सासम्प्रदायपरिषदमिमां सविनयमुद्घाटयामि ।

भगवान् धन्वन्तरीः प्रसीदतु ॥

निखिलभारतीयायुर्वेदमहासम्मेलनस्य एकोनचत्वारिंशत्तमाधिवेशने

केरलीयचिकित्सासंप्रदायपरिषदि

सभापतेरष्टवैद्यकुलोद्भवस्य, एन्- एस्. मूसस्य भाषणम्

ब्रह्मदक्षाश्विमघवदात्रेयादीन्नतोऽस्म्यहम् ।
आयुर्वेदविदो वैद्यान् लोकत्रयहितैषिणः ।।
आयुर्वेदार्थकर्पूरचामीकरकरण्डकम् ।
वन्हेऽहं वाहटाचार्यं विद्वद्वैद्यशिखामणिम् ।।

अयि भो महाशयाः सदस्याः !

अद्य खलु समवेतस्यास्य सम्मेलनस्य महनीयमिदं स्थानमलंकर्तुं सुप्रसिद्धेषु बहुषु महाशयेषु विमलविपुलधीषु विद्यमानेष्वपि महामहिमशालिनामत्र भवतामनल्पेन कृपाविशेषेण प्रेरितोऽहमत्रागतोऽस्मि भवदीयमलंघनीयं निदेशमनुपालयितुम् ।।

यद्यपि भवदाज्ञया पदमेतत् स्वीकृतं मया, तथापि मत्कर्तव्यनिर्वहणे भवतां महानुभावानां संप्रति साहाय्यमभ्यर्थये ।।

अत्रास्मिन् सम्मेलने न मे वर्तते बहुवक्तव्यम् । अथापि केरलेषु परं लब्धप्रचारं चिकित्सासंप्रदायमधिकृत्य कौतूहलेन किञ्चिदिह प्रपञ्चयितुं प्रारभ्यते ।।

पुरा किल भगवान् भार्गवरामः केरलदेशमुद्धृत्यार्णवाज्जन निवासयोग्यं कृत्वोत्तरदेशेभ्यो द्विजानानीयात्रैवावासयत्; तेभ्यो भूमिमिमां सोदकञ्च प्रादात् । तदनन्तरं रागादिभिर्मानसैर्ज्वरादिभिश्च भौतिकै रोगकर्दवकैरनवरतमिव पीडयमानां जनतामनुजिघृक्षुः परमकारुणिकः श्रीपरशुरामः केरलदेशवासिनामारोग्यसंरक्षणार्थं वैद्योत्तमानामष्टौ कुलानि स्थापयामासेति वयमितिहासेभ्योऽवगच्छामः । एते वैद्यवंश्याः पारंपर्यक्रमेणामयक्लिष्टानामुल्लाघतां निर्वर्त्याद्यापि परिलसन्ति ।।

इह खलु भारतखण्डस्य दाक्षिणात्ये भूविभागे पश्चिमोदधिकच्छप्रसिद्धेऽत्र परशुरामक्षेत्रे प्रचुरप्रचारोऽस्त्यायुर्वेदशास्त्रस्येति विज्ञापनीयं न मन्यामहे ।।

प्राक्तने काले भारतवर्षस्योत्तरस्यां दिशि प्राचीनाचार्याणां चरकसुश्रुतादीनां ग्रन्थेषु प्रापञ्चिकोपयोगाय प्रपञ्चितानां चिकित्सासंप्रदायानां प्रचारः प्रायेण कालवैपरीत्यात्, वैदेशिकानामाक्रमणेन, राज्यविप्लवादिभिश्चानेकैरन्यैश्च कारणैः क्रमेण मुमूर्षाकल्पां दशामवाप । ततश्च तस्मिन् प्राचीनकाले चरकादितन्त्रेषु प्रतिपादितानां चिकित्सासंप्रदायानां प्रयोगान् विहाय प्रायेणाभूत् पारदगन्धकादिधातूपधातुतत्वान्वेषणचिन्ता । अद्यापि केरलेतरविषयेषु, चरकसुश्रुतादिषूदितेभ्यो भेषजप्रयोगेभ्यो रसतन्त्रादिग्रन्थप्रोक्तानां प्रयोगाणामुपयोगोऽधिकं विद्यते । केरलेषु तु व्याधिप्रतीकारश्चरकसुश्रुतादिमतानुसारी वर्तते । अत्र तु

चिकित्सासरणौ बहवो व्यतिरेका अपि दरीदृश्यन्ते देशान्तरचिकित्सासरण्यपेक्षयेतीदमपि विज्ञापनीयम् ॥

तदत्र किञ्चित् कथ्यते—

व्याधिप्रतीकारविषयेषु मुख्यत्वेन कतिपया एव विशेषा विषयाः संगृहीतुं युज्यन्ते । रसायनाधिकारे षष्टिकपिण्डस्वेदषष्टिकान्नलेपकायसेकादयः, कायचिकित्सातन्त्रे वमनविरेकादि-कर्माणि स्नेहस्याच्छपानप्रयोगश्च, ऊर्ध्वाङ्गचिकित्साधिकारे तैलसेकतक्रधारादयश्च, शल्यतन्त्रे शोणितविस्रावणाय शृङ्गजलौकादिप्रयोगश्च, इत्येवं बहुफलाश्चिकित्साभेदाश्च प्राधान्यार्हा विषयाः । बालचिकित्सा विषचिकित्सेत्यादिचिकित्साशाखासु केरलीयानां संप्रदायभेदाश्च विद्यन्ते । तेषां सम्यक्स्वरूपप्रतिपादनाय केरलीयैर्भिषग्वरैर्विरचिताः कैरलीमयागैर्वाणीमयाश्च बहवो ग्रन्था अपि समुपलभ्यन्ते । षष्टिकस्वेदादिकर्माणि चरकसुश्रुतादितन्त्रेषु सूत्ररूपेण प्रतिपादितान्यपि तद्गुणपरिचयार्थं कर्मसिद्धिप्रकाशनार्थं चास्माभिरिदानीमनल्पं विद्यते करणीयम् । भारतभूमेरुत्तरदिग्विभागेषु वमनादिपञ्चकर्मणां षष्टिकस्वेदादीनाञ्च प्रचारोऽद्य विरलतयैव वर्तत इति सखेदं प्रस्तुमः । तस्मात् सुधियः, प्रकाममभिज्ञायन्तां च दुर्लभानि तानि कर्माणि ॥

भारतखण्डस्य नानादेशेभ्यः समागतानां भिषग्वर्याणां व्याधिप्रतीकारतत्पराणां केरलीयचिकित्सासंप्रदायपरिचयमाधित्सूनां प्रबन्धोऽयं हितकरः प्रमोदवर्द्धकश्चास्त्विति संप्रार्थ्य केरलदेशमात्रप्रचलितस्य षष्टिकान्नपिण्डस्वेदादिचिकित्साविधानस्य वैशिष्ट्यं स्वरूपं च दिङ्मात्रमत्र किञ्चित् प्रदर्श्यते ॥

१. षष्टिकपिण्डस्वेदः

तिलमाषादिना कृतेन सम्यक्सन्तप्तेन पिण्डेन कृतः स्वेदः पिण्डस्वेदशब्दवाच्यः । षष्टिकपिण्डस्वेदोऽयं केरलदेशमात्रे प्रचुरप्रचाराणां चिकित्सासंप्रदायानां प्रथमगणनीयः । येन वाससि पिण्डीकृत्य बद्धेन षष्टिकतण्डुलकृतपायसेन सर्वाङ्गमेकाङ्गं वा स्विद्यते ॥

वाहटस्तु 'गवादिशकृतार्द्रेण पिण्डीकृतेनोपनाहद्रव्योत्कारिकाकृसरमांसपिण्डैर्वा वात-रोगेष्विति पिण्डस्वेदः'' इति संग्रहे स्वेदावचारणीयाध्याय इमं संप्रदायं सूचयति ॥

चरकाचार्योऽपि—

"तिलमाषकुलत्थाम्लघृततैलामिषौदनैः ।
पायसैः कृसरैर्मांसैः पिण्डस्वेदं-प्रयोजयेत् ॥"

इति कथितवान् ॥

पिण्डस्वेदक्रियायाः पूर्णरूपं तु प्रकाशितेष्वायुर्वेदग्रन्थेषु न प्रतिपादितं दृश्यते । केरलेषु त्वयं संप्रदायोऽतिपुरातनकालादारभ्यैतावन्तं कालं भिषग्वरैः पारंपर्यक्रमेणानुवर्त्यमानो भवति ॥

सार्द्धप्रस्थपरिमिते बलामूलकषाये तुल्यगोक्षीरमिश्रिते द्विकुडुबं षष्टिकतण्डुलानां पक्त्वा तेनान्नेन कृतैरष्टभिर्वासोबद्धैः पिण्डैर्यथोक्ततैलेनाभ्यज्यातुरं पूर्ववत्पच्यमानकषाय-

मिश्रितपयसि चान्तरान्तरा क्षिप्त्वोष्णीकृतैः सर्वांगे कण्ठादधः सम्यक्संवाहनं कारयेत्, मुहुर्तं वा सार्द्धमुहुर्तं वा रोगबलानुसारेण। पश्चादभ्यज्य तैलेन, कोष्णांबुना स्नानं कारयेत्। लघु हितं चान्नं मितं भोजयेच्च। इति पिण्डस्वेदस्य संक्षेपतो रीतिरुक्ता ॥

कायसेकचिकित्सायामुपयुज्यमाना तैलद्रोणी पिण्डस्वेदविधानेऽप्युपयोक्तुमर्हति। चतुर्भिः परिचारकैरियं स्वेदक्रिया निर्वर्त्यते। तैलद्रोण्या उभयोः पार्श्वयोरासीनाश्चत्वारः परिचारका द्रोणीमधिरूढस्य रोगिणो देहे वासोबद्धैः पर्यायेण सुखोष्णीकृतैश्चतुर्भिः पिण्डैः पूर्वोक्तरीत्या संवाहनं कुर्वते ॥

पिण्डस्वेदस्तु हस्तपादांगशोषस्तंभगौरवसुप्ततादिषु वातात्मकेषु विकारेषु योज्यः। स च सम्यक्प्रयुज्यते चेत् बलमभिवर्द्धयति पोषयति चांगानि। तथा चोक्तम्—

सर्वांगगा बलयुताश्च समीररोगा
रक्तप्रकोपजनिताश्च तथाऽतिकृच्छ्राः।
ये सन्ति देहबलनाशकरा नराणां
नश्यन्त्यनेन विधिना सहसाखिलास्ते ॥

२. षष्टिकान्नलेपः

क्षीरेण सह पक्वेन षष्टिक्तण्डुलचूर्णेन कृतो लेपः षष्टिकान्नलपशब्दवाच्यः। वाताश्रयेषु रोगेषु शस्तोऽन्नलेपोऽपरश्चिकित्सासंप्रदायः केरलदेशे प्रयुज्यमानो वर्तते। बलामूलकषायसिद्धे गोक्षीरे साधु पाचितं षष्टिकतण्डुलकृतपायसं सर्वांगे कण्ठादध एकांगे वा लेपयित्वा स्वेदक्रिया क्रियत इति शास्त्रोक्तरीतिरत्र प्रायोगिकतां नीता ॥

"वाते सरक्ते सघृतः प्रदेहो गोधूमचूर्णं छगलीपयश्च।" इति

चरकसंहितायामारग्वधीयाध्याये,

"वातघ्नैः साधितः स्निग्धः कृसरो मुद्गपायसः।
तिलसर्षपपिण्डैश्च शूलघ्नमुपनाहनम् ॥" इति वातशोणितचिकित्सिते

वाहटेन चायं प्रयोगोऽनुमन्यते। प्रयोगविज्ञानं तु दिङ्मात्रप्रदर्शिताच्छास्त्रान्न सिध्यति। तीर्थात्तशास्त्रार्थैर्दृष्टकर्मभिर्भिषग्वरैः पारम्पर्यक्रमेणानुष्ठीयमानोऽयं सम्प्रदायः केरलेष्वाद्रियते। यद्यपि कासुचित् क्रियास्वयं सम्प्रदायः पिण्डस्वेदमनुकुरुते। तथापीतरासु तस्माद्भिद्यते च ॥

अथेदानीं षष्टिकान्नलेपविधानं तु समासेनोपदेक्ष्यते ॥

बलामूलस्य पलत्रयं प्रस्थत्रयेऽपां साधु साधयेत्। पादावशेषितेन वस्त्रपूतेनानेन कषायेण त्रिकुडुवं गोक्षीरं मिश्रयित्वा तस्मिन् कुडुबमेकं षष्टिकतण्डुलं नातिसूक्ष्मरजः कृत्वा प्रक्षिप्य मृद्वग्निना पाचयेत्। घनत्वमापादिते सति चुल्लितोऽवतार्यामुं पायसं रोगिणो बलं दूष्यदेशादींश्चाभिसमीक्ष्य लेपनविधौ कोष्णं प्रयोजयेदिति ॥

अन्नलेपनात् प्रागेव रोगिणं चिकित्सकनिर्दिष्टेन भेषजसिद्धेन तैलेन यथा वदुत्तमांगम-

नपहायाभ्यक्तसर्वांगं कारयेत् । कायसेकचिकित्सायामुपयुज्यमाना तैलद्रोणी चान्त्रताप्युपयोग-योग्या भवति । आतुरं सम्यग्यथासुखमस्यां तैलद्रोण्यां शाययेत् । द्रोण्या उभयोः पार्श्वयोरासीनौ परिचारकौ शयानस्य रोगिणो देहे पूर्वोक्तं पायसं करतलैर्मन्दं मन्दं प्रलेपयेताम् । कण्ठप्रदेशस्याधोभागे स्कन्धादारभ्य पादपर्यन्तमल्पाल्पं प्रलिप्य मृद्नीयाताम् । देहे प्रलिप्तं पायसं यथा शीतलं न भवति तथा क्रियासमाप्तिपर्यन्तं सर्वांगं करतलमर्द्दनेन सन्तप्तं कृत्वा संरक्षणीयम् । अन्यथा कृच्छ्रसाध्या असाध्या वा रोगा भवेयुः । पायसलेपनसंवाहनानन्तरमातुरस्य देहलिप्तमवशिष्टं सम्यगपनीय तैलेन पूर्ववदभ्यंज्यात् । ततः स्नापयित्वा रोगिणं निवातप्रदेशे वासयेत्, हितं मितं चाहारमाशयेच्च । इति संक्षेपतोऽन्नलेपनविधिः ॥

प्रयुज्यमानोऽन्नलेपो हन्ति वातात्मकान् गदान् ।
हस्तपादांगशोषञ्च स्तंभगौरवसुप्तताः ॥
सर्वदेहाश्रयं दाहं चेष्टाहानिं च भग्नताम् ।
बलपुष्टिकरश्चायं वलीपलितनाशनः ॥
क्रममुष्णं कदुष्णं वा यथादोषं यथाबलम् ।
वातशोणितरोगेषु सिद्धिकामः प्रयोजयेत् ॥

३. कायसेकविधिः

इदानीं तावत् कायसेकविधिं समासेनोपदेक्ष्यामः ।

देवदारुबकुलसरलपुन्नागाम्राशोकखदिरासनकपित्थनिंबजंबूदुंबरचन्दनचम्पकवत्सकडोलाभिषुकाद्यन्यतमं निःछिद्रं सारवन्तं काष्ठमाहृत्य हस्तचतुष्कायामां द्वात्रिंशदंगुलिविस्तारां हस्तमात्रभित्तिकां सोपधानां सस्नेहगमनद्वारां बहिर्भागे पाददेशेऽष्टांगुलगोमुखाकारां हस्तमात्रोन्नतशिरोभागां पाददेशे तदर्द्धमात्रां कृतां दाराशिबिकां प्रशस्तामाहुः ॥

प्रशस्ततिथिवारनक्षत्रमुहूर्तादियुते दिने देवब्राह्मणवैद्यवृद्धातिथीन् संपूज्य पूर्वाह्ण एवातुरमधिरोप्य शिबिकां कनकरजतताम्रायोमृदन्यतमपात्रमष्टाञ्जलिपरिमितोदरं त्र्यंगुलमूलनालच्छिद्रं कनिष्ठिकामूलवदग्रनालम्, एवंविधं करकचतुष्टयं वा स्नेहेनापूर्य रोगिणः स्नेहभाण्डपतनभीतिर्यथा न स्यात्, तथा स्निग्धाः सावधाना बुद्धिमन्तः परिचारका दृढतरमवलंब्य सुखोष्णमविच्छिन्नमातुरस्य सव्यदक्षिणपृष्ठोत्तानप्रदेशेषु सर्वांगधारां चतुर्द्धा विभज्य सेचयेयुः । हस्ततलप्रपूर्णपिचुना वा पूर्ववद्धारां कुर्युः ॥

आतुरस्य दूष्यादींश्च देहबलञ्च निरूप्य प्रतिदिनं वा, एकाहान्तरितं वा, त्रीणि पञ्च सप्त वा दिनानि नूतनस्नेहेन सेचनं कुर्यात् ॥

वातेऽत्युष्णं पित्ते सोष्णं कफयुक्ते रक्तपित्ते द्रवीभूतमात्रं स्नेहं सेकविधौ प्रयोजयेत् । केवलानिले स्नेहचतुष्टयं वा केवलं तैलं वा, पित्तयुक्ते सघृतं तैलम्, कफयुक्ते घृतैकभागं तैलम्, रक्तयुक्ते केवलं सर्पिश्च ॥

स तु स्नेहसेकः सम्यक्प्रयुज्यमानः पक्षाघाताक्षेपकबहिरायामान्तरायामापतानकखाञ्जयपांगुल्यकम्पादीन् पार्श्वपृष्ठकटीजानुजंघाद्रिग्रहशूलानि संकोचस्तंभगौरवसुप्तता इत्येवंविधान् वातजान् विकारानुपशमयति, धातूनाप्याययति, पञ्चेन्द्रियाणि द्रढयति, क्षतक्षीणं प्रीणयति, देहं पोषयति, बलं वर्द्धयति च ॥

अपि चोक्तं धाराकल्पे—

धातूना दृढतां करोति वृषतां देहाग्निवर्णौजसां ।
स्थैर्यं पाटवमिन्द्रियस्य जरसो मान्द्यं चिरं जीवितम् ॥
अस्थ्नां भंगमपाकरोति नितरां दोषान् समीरोदिकान् ।
सर्वस्नेहकृता सुखोष्णसुभगा सर्वांगधारा नृणाम् ॥

एकांगसेको गुल्मांभिघातादिषु योज्यः ।

तथा चोक्तं धाराकल्पे—

गुल्मानाह भगन्दरव्रणतुनीशूलाभिघातास्रवा ।
तोदावर्त्तककोठमूढमरुदष्ठीलाविसर्पादिषु ॥
प्लीहाध्मानकविद्रधिप्रतितुनीष्वेकांगसेकं तथा ।
कुर्याद्धस्ततलप्रपूर्णपिचुना मन्दं सुखोष्णं भिषक् ॥

षष्टिकादिस्वेदविधानस्य रासायनिकत्वे युक्तिः ॥

षष्टिकौदनस्वेदविधिः सम्यक्प्रयुज्यमानः सन् रासायनिकं फलं प्राप्नोति । कथमिति चेत्, ब्रूमः- पिण्डस्वेदादिविधौ षष्टिकादेः कोष्णत्वोपयोगेन स्वेदः संभवति । तेन शरीरबाह्यभागेषु त्वचि स्थितानां स्वेदवहानां स्रोतसां विवृतिः सम्पद्यते । अस्मिन् विधाने प्रयुज्यमानेन संवाहनेन च भेषजानां त्वगादिमार्गेण सारांशानां धातुसंवर्द्धनायान्तर्गमनम्, बहिर्निर्गतस्वेदादेरपनयनं च संभवतः । अनेन हेतुना संभावितस्य रक्तसंवह अतिवेगतया मलानां निस्सरणमपि सुष्ठुतरं सिध्यति । ये किट्टांशा रसादिधातुष स्थिताः स्रोतस्सु संलीनाः त्वचि रोमकूपादिषु सन्निचिताः ते स्वेदक्रियायाः साहाय्येन कोष्ठं प्राप्नुवन्ति । एते कोष्ठस्थिता मला अस्मिन् पिण्डस्वेदादिविधौ प्रयुज्यमानस्य विरेचनौषधस्य साहाय्येन गुदमार्गेण कोष्ठाद्बहिर्भागे निस्सरन्ति ॥

एवं पिण्डस्वेदादिके युक्तया क्रियमाणे सति स्रोतसां शुद्धिः स्यात्, किट्टस्य बहिर्निस्सरणं च, तेन रसरक्तादेः शोधनम्, तेन धातूनां पोषणम्, तेन दोषसाम्यम्, तेन तेन स्वास्थ्यं दीर्घायुष्ट्वञ्च । अस्य च पिण्डस्वेदविधेः प्रभावातिश योऽयम् ॥

४. शिरस्सेकविधिः

अथेदानीं शिरस्सेकविधिः समासेनोपदेक्ष्यते—

शिरस्सेकं चिकीर्षुरनुकूलतिथिवारनक्षत्रादिभिः प्रशस्ते दिने संभृतसंभारं निवातं प्रशस्तमगारं प्राप्य कृतदेवार्च्चनः सन् देवदारुबकुलसरलादीनामन्यतमेन कृतां तैलद्रोणीं

पूर्वाह्णे काले सम्यगातुरोऽधिरुह्य यथोक्ततैलेनाभ्यञ्ज्यात् । ततः कनकरजतादिना मृदा वा देवदारुसरलाद्यन्यतमेन वा कृतं द्विप्रस्थद्रवपूरणोचितोदरं कनिष्ठिकापर्वमूलच्छिद्रं धारापात्रं शयनस्योपरि लंबशिक्ये निधाय स्नेहेन कषायेण वा क्षीरेण तक्रेण वाऽपूर्य परिचारको दृढतरमवलंब्य धारामविच्छिन्नमातुरस्य शिरसि फालप्रदेशे सम्यगुपकल्पयेत् । रोगिणो दूष्यादीन् देहबलञ्च यथावन्निरूप्य त्रीणि पञ्च वा सप्त वा दिनानि धारां योजयेत् । धारायाः परमः कालो मुहूर्त्तद्वयम्, अथवा यावत् स्वेदसमुत्भवः कर्णमुखनासास्रुतिर्वेदनोपशमो वा भवति । ततः स्नेहादावपनीते कोष्णांभसा स्नातं यथार्हं भोजयेत् ॥

स्नेहपरिषेकस्तु विशेषेण, अरूंषिकाशिरस्तोददाहपाकव्रणेषु प्रयोक्तव्यः । ये गुणा मूर्द्धतैल उक्तास्ते स्नेहपरिषेकेऽपि बोद्धव्याः । यदुक्तं वाहटे गण्डूषादिविधौ-

कचशतनसितत्वपिञ्जरत्वं परिपुटनं शिरसः समीररोगान् ।
जयति जनयतीन्द्रियप्रसादं स्वरहनुर्मूद्धबलञ्च मूर्द्धतैलम् ॥

इति ॥

इतरदेशापेक्षया केरलेषु शिरस्सेकस्य बहुविधाः संप्रदायभेदाश्च विद्यन्ते ॥

चतुर्विधमूर्द्धतैलान्तर्गतस्य तैलादिपरिषेकस्य दोषदूष्यादिविशेषापेक्षं स्नेहस्य स्थान क्वाथक्षीरतक्रादिभिरपि शिरस्सेकोविधीयते ॥

क्षीरधारा

क्षीरपरिषेचनं तु वातिके शिरोरोगे वातघ्नदशमूलादिसिद्धक्षीरेण, पैत्तिके पित्तघ्न-जीवनीयादिसिद्धक्षीरेण, श्लैष्मिके कफघ्नवत्सकादिसिद्धक्षीरेण च क्रियते यथायोग्यम् ।

निद्रानाशस्मृतिभ्रंशादिष्वपि क्षीरधारा प्रशस्यते । तत्र तु दोषदूष्याद्यपेक्षं बलाशता-वरीक्वाथमिश्रितेन तरुणनालिकेरफलोदकसहितेन क्षीरेणोपकल्पिता क्षीरधारा पूर्वोक्तविधिना कार्या ।

मदमूर्च्छाप्रलापभ्रमदाहयुक्ते वातोत्तरे सान्निपातिके ज्वरे तु स्तन्येन धारा प्रस्तूयते ।

तक्रधारा

तक्रधारा प्रायेण धात्रीक्वाथेन मिलितेन तक्रेण क्रियते । सा तु श्लैष्मिके शिरोरोगे प्रमेहे चातिमात्रं प्रशस्यते ।

तथाचोक्तं धाराकल्पे—केशादीनाञ्च शौक्लचं क्लममपितनुतां दोषकोपं शिरोरुम्-बाधामोजःक्षयं तत्करचरणपरिस्तोदनं मूत्रदोषम् ।

सन्धीनां विश्लथत्वं हृदयरुगरुची जाठराग्नेश्च मान्द्यं धात्रीतक्रोत्थधारा हरति शिरसि वा कर्णनेत्रामयौघम् ॥ इति ॥

आरग्वधादिवर्गकषायमिश्रितेनोदश्विताऽपि तक्रधारा क्रियते । सा तु मुख्यत्वेन पाद-दरणादिषु केषुचित् कफजनितविकारेषु चोपयुज्यते ।

अस्मिन् तक्रधाराविधौ प्रयुज्यमानस्य तक्रस्य निष्पादने क्षीरस्य विश्वमेघतिन्त्रिणी-वृन्तादिभिरौषधसंस्कारो विधीयते ।

५. शिरोवस्तिः

स्नेहस्य बहिःकपालदेशे पूरणं शिरोवस्तिशब्दवाच्यम् ॥

तस्य विधिस्तु वाहटाचार्येण सविस्तरं संग्रहेऽभ्यधायि ॥

तद्यथा—

शिरोवस्तिविधिस्तु वस्तिं सुमृदितं द्विमुखं शिरःप्रमाणमाकर्णप्रवेशं द्वादशांगुलविस्तारं कुर्यात् ॥

अथ शुद्धतनोः सायं रात्रौ वा स्वभ्यक्तस्विन्नस्य जानुसमसोपाश्रयासनोपविष्टस्य केशान्ते श्लक्ष्णं त्र्यंगुलं सुसूक्ष्मेण माषपिष्टेन सद्यः सुखांबुमृदितेनोभयतः प्रदिग्द्धं वस्त्रपट्टं बध्नीयात् । ततस्तस्योपरि सन्धाय वस्तिमाकर्णं वस्तिमूलं च दृढमवलीकं समं चैलवेणिकया बध्वा पुनर्माषपिष्टेनापरिस्रावि कृत्वा यथाव्याधिदोषदूष्यहितं सिद्धमन्यतमं स्नेहं सुखोष्ण-मासेचयेत्, यावत् केशभूमेरुपर्यंगुलम् । तावच्च धार्यो यावत् कर्णमुखनासास्रुतिर्वेदनोपशमो वा भवति ॥

विशेषतो वातजेषु विकारेषु दशमात्रासहस्राणि । पित्तरक्तजेष्वष्टौ । षट् कफजेषु। सहस्रमरोगकर्मणि ।

ततोऽपनीते स्नेहे विमुच्य वस्तिं शिरसः स्कन्धग्रीवापृष्ठललाटादीन्यनुसुखं मर्दयेत्। उष्णांबुना स्नातञ्च यथार्हं भोजयेत् । स्नेहोक्तं चास्याचारमादिशेत् । एवं त्रीणि पञ्च सप्त वा दिनानि योजयेदिति ॥

शिरोवस्तिस्तु दारुणे शिरोरोगे तिमिरे नासास्यशोषे प्रसुप्त्यर्दितजागरे च हितः ॥

६. शिरोलेपः

आर्द्रपिष्टस्य द्रव्यस्य शिरसि लेपः शिरोलेपशब्दवाच्यः ॥

"नतोत्पलं चन्दनकुष्ठयुक्तं शिरोरुजायां सघृतः प्रदेहः ।" इति चरकेण,

"पित्तरक्तसमुत्थानौ शिरोरोगौ निवारयेत् ।
शिरोलेपैः सर्सपिष्कैः परिषेकैश्च शीतलैः ॥ इति सुश्रुतेन,
शिरोभितापे पित्तोत्थे स्निग्धस्य व्यधयेत्सिराम् ।
शीताः शिरोमुखालेपसेकशोधनवस्तयः" ॥

इति वाहटेन च सूचितस्य शिरोलेपनविधेरपि प्रयोगः केरलेषु दृश्यते ॥

अथेदानीं शिरोलेपविधानं समासेनोपदेक्ष्यते ॥

शिरोलेपं चिकीर्षता पुरुषेण प्रथमं शिरस्यभ्यंगं कृत्वा तक्रभावितानां बिगतबीजानां

शुष्कामलकीफलानां कुडुबं तक्रेण पिष्ट्वा शिरोदेशेऽर्द्धांगुलोन्नतं लेपनं कुर्यात्। ततः कोमलैः कदलीदलैर्न्नलिनीपत्रैर्वा शिर आवृत्य नातिगाढश्लथं बध्नीयात्। मुहूर्त्ते सार्द्धमुहूर्त्ते वा व्यतीतेऽपनयेच्च तं लेपम्। पुनरभ्यंगञ्च कारयेद्यथाविधि तैलेन, कोष्णांबुना स्नानञ्च। एवं सप्ताहमर्द्धमासं वा शिरोलेपनविधिरनुष्ठेयो दिने दिने। उष्णोदकोपचारी स्यादित्यादि-सामान्यनिर्दिष्टं पथ्याचरणं चात्र शस्यते ॥

पथ्यापथ्यविवेचना

क्रियास्वेतासूपसेव्यमानमन्नपानादिकं किञ्चिदत्रोपदिश्यते हिताहितावबोधनार्थम्।

षष्टिकस्वेदादिषु सर्वकर्मसु, उष्णोदकोपचारी स्यादित्यादिकः स्नेहपानप्रकरणनिर्दिष्टः क्रमः सर्वथोऽनुष्ठेयः। ततः शालिषष्टिकादिपथ्याहारमश्नीयात्। रोगवति पुरुषे दूष्यदेशादीन् सम्यगवीक्ष्य हितमौषधं चोपकल्पयेत्। तथा तं पुरुषं कोष्ठशोधनार्थं गन्धर्वहस्तादिक्वाथं यथोक्तं पाययेत्। हितार्थी साहसानि मनोवाक्कायकर्माणि सततं त्यजेत्। लोभेर्ष्याद्वेषादीनि च। किञ्च यः पुरुषो यादृशेन पथ्यान्नसेवनादिना यावन्तं कालं स्वेदादीनि कर्माण्यासेवते, तं ततः परमपि तावन्तं कालं तादृशेनैव पथ्यान्नसेवनादिना तथावदुपाचरेत्।

एतावता प्रबन्धेन केरलदेशेषु प्रचरितानां चिकित्सासंप्रदायानां स्वरूपं फलसिद्धिं चाश्रित्य यथोचितं निरूपितमासीत् ॥

अथ वमनादीनां पञ्चकर्मणां दोषशोधनविषयमधिकृत्य किञ्चिदिहाभिधीयते ॥

अनेकप्रकारं संभवदपि द्वैरूप्यानतिक्रमात् निखिलं द्रव्यजातमाहृतं द्विविधं भवति, शोधनरूपं शमनरूपं चेति ॥

तत्र यत् कुपितान् दोषान् बहिर्न्निस्सार्य रोगोपशमनं करोति तच्छोधनम्। यत् विषमाणां दोषाणां बहिर्न्निरसनं विना साम्यं नयति तच्छमनम् ॥

अत्र शोधनरूपमौषधं पञ्चविधम्, निरूहो वमनं कायविरेकः शिरोविरेको रक्त-मोक्षश्चेति।

शमनाख्यं तु सप्तधा भिद्यते पाचनादिरूपेण। तद्यथा पाचनं दीपनं क्षुत्पिपासा व्यायाम आतपो मारुतश्च ॥

अधुना शोधनविषयमधिकृत्य किञ्चिद्विमृश्यते ॥

सर्वेषामपि वमनादीनां शोधनकर्मणां पूर्वं स्नेहस्वेदाववश्यं कर्तव्यौ। तथा चोक्तमा-चार्येण वमनविरेचनविधौ—

"स्नेहस्वेदावनभ्यस्य कुर्यात् संशोधनन्तु यः।
दारु शुष्कमिवानामे शरीरं तस्य दीर्यते" ॥ इति ॥

अतो हेतोः स्नेहस्वेदविधानयोरपि सम्यगभ्यासोऽप्याविष्क्रियताम् ॥

ननु शरीररक्षार्थं स्नेहस्वेदौ वमनादिकर्मणामग्रे कार्यावित्युक्तम्। तर्हि स्नेहस्वेदौ वमनाद्यन्तरेणापि पृथगेव शीलयितुं यज्येत वा न वेति चेत् अत्रोच्यते—

यत्र शमनप्रयोगमिच्छति तत्र स्नेहस्वेदौ तु वमनादिप्रयोगमन्तरेणैव करणीयौ। तथाकृते सति सम्यक्फलाप्राप्तिरनर्थकारित्वं च न सम्पद्येते। यदुक्तम्—

"कर्मणां वमनादीनां पुनरप्यन्तरेऽन्तरे।
स्नेहस्वेदौ प्रयुञ्जीत स्नेहमन्ते बलाय च" ॥ इति ॥

प्राचीनाचार्याणां मते वमनविरेचनास्थापनानुवासननस्यानि पञ्चकर्माणि पञ्चकर्मसंज्ञया व्यवह्रियन्ते॥

केचित्तु निरूहो वमनं विरेचनं नस्यं रक्तस्रावश्चेति पञ्च शोधनाख्यानि पंचकर्माणीत्याहुः—

"यदीरयेत् बहिर्दोषान् पंचधा शोधनं च तत्।
निरूहो वमनं कायशिरोरेकोऽस्रविस्रुतिः" ॥

इति वाहटे द्विविधोपक्रमणीयाध्याये पठितत्वात्॥

एतत् समादिष्टमपि शास्त्रकृद्भिः शोणितमोक्षस्य पंचकर्मांतर्भूतत्वं न प्रपंच्यते॥

"स्नेहपीते प्रयुक्तेषु तथा पंचसु कर्मसु।
नायन्त्रितां सिरां विध्येन्न तिर्यङ्नाप्यनुत्थिताम्॥

इति वाहटन सिरावेधविधावुक्तं भवति। तथा मदात्ययचिकित्सिते—

"पंचकर्माणि चेष्टानि सेचनं शोणितस्य च" ॥ इति

प्रतिपादितं दृश्यते॥

हेमाद्रिणापि—

"पंचकर्मसु वमनविरेचननिरूहानुवासननस्येषु" इति व्याख्यायते, स्नेहेत्यादिपद्यस्य टीकायाम्॥

अरुणदत्तेनापि पंचकर्मागीत्यादिपद्यस्य व्याख्यानावसरे "पंचकर्माणि वमनविरेकास्थापनान्वासननस्याख्यानि चेष्टानि रक्तमोक्षश्च" इति सुन्दर्यामुक्तम्॥

इतः पूर्वं प्रतिपादितैः कारणैः प्रमाणैश्च वमनविरेचनास्थापनानुवासननस्यान्येव पंचकर्माणीति वक्तुं युक्तम्॥

"पंचकर्मविशुद्धस्य पुरुषस्यापि चेन्द्रियम्।
परीक्ष्य वर्णैर्दोषाणां दुष्टं तद्घ्नैरुपाचरेत्" ॥ इत्यादि

वचनमवलंब्य केचन भिषग्वराः सर्वेषां वमनविरेचनास्थापनानुवासननस्याख्यानामुपलभ्यानां शोधनक्रियाणां पंचकर्मणामुपयोगं रोगवति पुरुषे कर्तुमिच्छन्ति यौगपद्येन। वचनमिदं न समीचीनं प्रतिभाति॥

कथं न युज्यत इति चेत्, ब्रूमः-सर्वेषां वमनाद्यानां पंचकर्मणामेककालमुपयोगमेकस्मिन् रोगिणि कर्तुमशक्यम्, सर्वे वमनार्हा न विरेचनादेरर्हा इति शास्त्रदृष्टत्वात्। कस्मैचिद्रोगिणे

रोगाद्यनुरूपेण दूष्यदेशादीन् वीक्ष्य योग्यतामुपपन्नानां सिद्धानां वमनादीनामन्यतमानामेवोप्रयोगो न्याय्यः ॥

सत्सु बहुषु वक्तव्येषु प्रयोगप्रकारादिषु एतावन्मात्रमुक्तवैव भवतामस्मत्परमसुहृदां भिषजामनल्पकरुणाविशेषं सामोदमनुस्मरन्, मयि कृतानामनुग्रहाणां स्वीकृतिं कुर्वन्, स्वापराधाभिमर्षणं निरन्तरं भिक्षमाणो विरमामि, एतस्याः परिषदः कार्यान्तरविचारावसरदानाय ॥

नारायणात्मजेनैवं वयस्करनिवासिना ।
शर्मणा शङ्कराख्येन मया दिङ्मात्रमीरितम् ॥
पिण्डस्वेदादिकं मुख्यं केरलीयं चिकित्सितम् ।
दाक्ष्यादिगुणसम्पन्नैः शोध्यतां भिषगुत्तमैः ॥
भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम् ।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम् ॥

उत्तरप्रदेशीय कार्यवाहक वैद्यसम्मेलन

आवश्यक सूचनायें

१. सदस्य भर्ती करने की अंतिम तिथी १० मई १९५४ सायंकाल ४ वजे तक निश्चित की गई है।

२. कार्यालय से दि० १५-५-५४ को सायं ४ बजे तक प्रधान एवं प्रधानमंत्री के निर्वाचन के लिए मतपत्रक भेजे जायेंगे।

३. मतपत्रकों के लौटने की अंतिम तिथि २५ मई सायं ४ बजे तक होगी।

४. मतपत्रक द्वारा सदस्यों को दोनों स्थानों के लिए एक एक नाम प्रस्तावित करना होगा। किन्तु जिनका नाम वे प्रस्तावित करें उनकी स्वीकृति वे स्वयं लेलें। सम्भव हो तो उनकी लिखित स्वीकृति मतपत्रक के साथ कार्यालय में भेज दें। प्रस्तावित महानुभाव की ओर से एक ही स्वीकृति पत्र आना पर्याप्त है और कोई भी सदस्य उस स्वीकृति पत्र को उनका नाम प्रस्तावित करते समय भेज सकता है।

५ दि० २६-५-५४ को मध्याह्नोत्तर २ बजे कार्यालय में मत गणना की जायगी और प्रधान तथा प्रधान मंत्री पद के लिए प्रस्तावित नामों की सूची प्राप्त मतों की संख्या के साथ बनायी जायगी। सब से अधिक मत प्राप्त करने वालों की यद्धि उस पद पर कार्य करने की स्वीकृति हुई तो उन का नाम घोषित कर दिया जायगा अन्यथा उन से लिखकर पत्र द्वारा स्वीकृति मंगवाने का यत्न किया जायगा। यदि ५ जून तक उनकी स्वीकृति नहीं आई तो उन से कम मत प्राप्त करने वाले महानुभावों के नाम, जिनकी कि स्वीकृति आ चुकी होगी घोषित कर दिए जायेंगे।

६. मत देने का अधिकार केवल उन वैद्य महानुभावों को होगा जो कि उपरिनिर्दिष्ट तिथि एवं समय से पूर्व उ० प्र० कार्यवाहक वैद्य सम्मेलन के सदस्य बन चुके होंगे। परन्तु प्रधान तथा प्रधान मंत्री पद के लिए उत्तर प्रदेशीय देशी चिकित्सा बोर्ड द्वारा रजिस्टर्ड किसी भी वैद्य महानुभाव का नाम प्रस्तावित किया जा सकता है। यदि वे उ० प्र० कार्यवाहक वैद्य सम्मेलन के सदस्य न बने हों तो उन कें निर्वाचित होने एवं तदर्थ उनकी स्वीकृति प्राप्त होने के पश्चात् भी उन को सदस्य बनाया जा सकेगा।

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय,
महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक,
देहली ६।

गुरुदत्त
निर्वाचनाध्यक्ष
उत्तरप्रदेशीय कार्यवाहक वैद्यसम्मेलन

आयुर्वेद विश्वविद्यालय

(पृष्ठ २१६ का शेष)

चिकित्सा के फलस्वरूप हुआ है। इस लिये यदि मैं आयुर्वेद की कुछ सेवा कर सकूं और इसका महत्व बढ़ा सकूं तो मुझे यह सन्तोष होगा कि भगवान् चरक जैसे महर्षियों के ऋण को उतारने के लिये मैंने कुछ कार्य किया है। केवल इस सन्तोष प्राप्ति के लिये मैं यह कार्य करने के लिये उद्यत हुआ हूं।

मैं यह जानता हूं कि विश्वविद्यालय का यह कार्य कोई आसान नहीं है। यह सब कुछ समझते हुए वैद्य महानुभावों तथा आयुर्वेद के हितैषियों के भरोसे पर ही यह जिम्मेवारी मैंने ली है। अन्यथा ६५ वर्ष की इस आयु में मैं इस उद्योग में नहीं पड़ता। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारतवर्ष के वैद्यसमाज में बहुत बड़ा वल है, यदि वह उसका संगठित रूप से प्रयोग करे तो यह आयुर्वेद विश्वविद्यालय आयुर्वेद का विश्व भर में एक चमकता हुआ केन्द्र वन जायगा जो वैद्यसमाज के लिये एक गौरव का विषय होगा। ढाई हजार वर्ष पूर्व के विश्वविख्यात आयुर्वेद के तक्षशिला विश्वविद्यालय के रूप में पुनरुज्जीवित करने का वैद्यसमाज दृढ़ संकल्प करे और एतदर्थ वे तन, मन, तथा धन से सहयोग दें, यही मेरी उनसे विनम्र प्रार्थना है।

मैं जानता हूँ कि आयुर्वेद विद्यापीठ का कार्यालय दिल्ली से ऋषिकेश लाना एक भारी उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना है, परन्तु यह इस लिये किया गया है कि ऋषिकेश में विश्वविद्यालय स्थापना सम्बन्धी विविध सुविधायें प्राप्त हैं। ऋषिकेश में बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र बड़ी प्रभावशाली संस्था है। काली कमली वाला आयुर्वेद सेवा समिति ४० वर्ष से आयुर्वेद शिक्षा तथा चिकित्सालय आदि का कार्य चला रही हैं। इन दोनों के पास पर्याप्त धन, चलाचल सम्पत्ति तथा भूमि है जो आयुर्वेद विश्वविद्यालय के स्थापन कार्य में प्रयुक्त होगी। जमनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ बद्रीनाथ, और कैलाश आदि उत्तराखण्ड के तीर्थों को जाने वाले भारत के कोने कोने से लाखों यात्री प्रतिवर्ष ऋषिकेश से होकर आगे जाते हैं और वापिस आते हैं, इससे हमारे विश्वविद्यालय के प्रचार में बड़ी सुविधा मिलेगी। इन सब कारणों से प्रेरित हो कर मैंने आयुर्वेद विश्वविद्यालय की योजना आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ, श्रीबाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र तथा आयुर्वेद सेवा समिति के समक्ष प्रस्तुत की और सभी संस्थाओं ने इसे सहर्ष स्वीकार किया। इसी कार्य को प्रगति देने के लिये ही विद्यापीठ के कार्यालय को यहां लाया गया है और विश्वविद्यालय योजना को कार्य रूप में परिणित करने के लिये सूत्रपात किया गया है।

३९ वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ के कोट्टकल अधिवेशन में अपील के फलस्वरूप तथा इससे पूर्व भी विश्वविद्यालय के नाम जो धन एकत्रित हुआ है उसकी सूची निम्नांकित है, अब आप सभी महानुभावों का यह कर्तव्य है कि विश्वविद्यालय

रूपी इस वृक्ष को अपने तन, मन और धन के सहयोग से सिंचित करते हुए इसे फलदायक बनाय और समय-समय पर अपने अमूल्य सुझाव मुझे भेजने की कृपा करते रहें।

आत्म विज्ञान भवन,
ऋषिकेश.
चैत्र शुक्ल १, सम्वत् २०११.

श्रीदत्त शर्मा,
आयुर्वेद मार्तण्ड, रायबहादुर,
मंत्री, नि० भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ।

नि० भा० आयुर्वेद विश्वविद्यालय कोष में जिन महानुभावों की ओर से तारीख २१ मार्च १९५४ तक दान प्राप्त हुआ है उनकी सूची निम्नांकित है—

वैद्य श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य, बम्बई	११००)
,, ,, नन्दकिशोर जी राजवैद्य, जयपुर	११००)
,, ,, स्वामी जयरामदास जी, जयपुर	११००)
,, ,, रामप्रसाद जी राजवैद्य, पटियाला	११००)
,, ,, श्रीदत्त जी शर्मा, ऋषिकेश	११००)
,, ,, दत्तात्रेय कृष्ण, साण्डु ब्रदर्स चेम्बुर लि०, बम्बई	१००१)
,, ,, मणिराम जी शर्मा, रतनगढ़	५००)
,, ,, जगन्नाथराव जी माणे, नागपुर	१०१)
,, ,, आर०एस० वेदपाठक, बम्बई	१०१)
,, ,, जनार्दन शर्मा, रायगढ़	१०१)
,, ,, मधुकर कृष्ण पटवर्धन, बड़ौदा	१०१)
,, ,, भीकाजी विनायक डेग्वेकर, जबलपुर	१००)
,, ,, शिवशर्मा द्विवेदी, अजमेर	५१)
,, ,, रणछोड़ प्रसाद व्यास, जावरा	५१)
,, ,, ए० विजयसार्थी, मसूलीपट्टम	५०)
,, ,, मुकन्दलाल भण्डारी, मुक्तसर	५०)
,, ,, गणेशदत्त, मेरठ	३०)
,, ,, निरंजनानन्द, अबोहर	२५)
,, ,, ब्रजनाथ शर्मा, कलकत्ता	२५)
,, ,, पी०एच० चन्द्रभान, मैसूर	२१)
,, ,, विश्वेश्वर प्रसाद शर्मा, बाघावास	२१)
,, ,, हरिश्चन्द्र सत्यव्रादी,	२०)
,, ,, मुन्नालाल, कटनी	११)
,, ,, भरद्वाज शास्त्री, अवन्तीपुर बड़ौदिया	११)
,, ,, कृष्णदत्त शर्मा, अलीगढ़	११)
,, ,, शिवशंकर पाण्डे, सागर	११)
,, ,, राधेलाल गुप्त, देहली	१०)
	७९०३)
अन्य मिश्रित धनराशियां तथा ब्याज	१२२९।।।–)।।।
योग	९१३२।।।–)।।।

निखिल भारतीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय ऋषिकेश का उद्घाटन तथा शिलान्यास

निखिल भारतीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जिसकी स्थापना निकट भविष्य में ही ऋषिकेश में होने जा रही है, के उद्घाटन तथा शिलान्यास के विषय पर निश्चय करने के लिए मैं ता० १६-४-५४ को सायकाल ५ बजे राष्ट्रपति श्री डा० राजेन्द्रप्रसाद जी से मिला। लगभग एक घन्टे तक बड़े अच्छे वातावरण में नि०भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के पूर्वेतिहास तथा भावि कार्यक्रम के विषय में वार्तालाप के अनन्तर श्री राष्ट्रपति जी ने नि० भा० आयुर्वेद विश्वविद्यालय का उद्घाटन तथा शिलान्यास करना सहर्ष स्वीकार कर लिया है। उद्घाटन तथा शिलान्यास की तिथि की सूचना आगामी मास की पत्रिका में प्रकाशित की जायेगी।

निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यालय देहली से ऋषिकेश को परिवर्तित किया जा चुका है। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप यदि किन्हीं महानुभावों को कष्ट पहुंचा हो तो उसके लिए हम क्षमा चाहते हैं।

श्रीदत्त शर्मा
मंत्री
नि०भा० आयुर्वेद विद्यापीठ।

आत्म विज्ञान भवन,
ऋषिकेश, देहरादून।

विद्यापीठ सहायक मंत्री की नियुक्ति

३९ वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, कोट्टकल, के अवसर पर विद्यापीठ विभाग में एक सहायक मंत्री का स्थान रिक्त रखा गया था जिसकी पूर्ति अब विद्यापीठ अध्यक्ष राजवैद्य श्री नन्दकिशोर जी शास्त्री की अनुमत्यानुसार वैद्य श्री नारायण दत्त जी (बिड़ला लाईन्स, कमला नगर, देहली) द्वारा की गई है।

श्रीदत्त शर्मा
विद्यापीठ मंत्री।

डाबर अशोकारिष्ट

प्रदर तथा ऋतु सम्बन्धी दोषोंको मिटानेकी बहु परीक्षित दवा



अनुरोध—
प्रदर, ऋतुविकार
दूषित गर्भाशय इत्यादि
रोगोंसे जकड़ी हुई महिलाओंसे
डाबर अशोकारिष्ट
सेवन करनेका हमारा
अनुरोध है



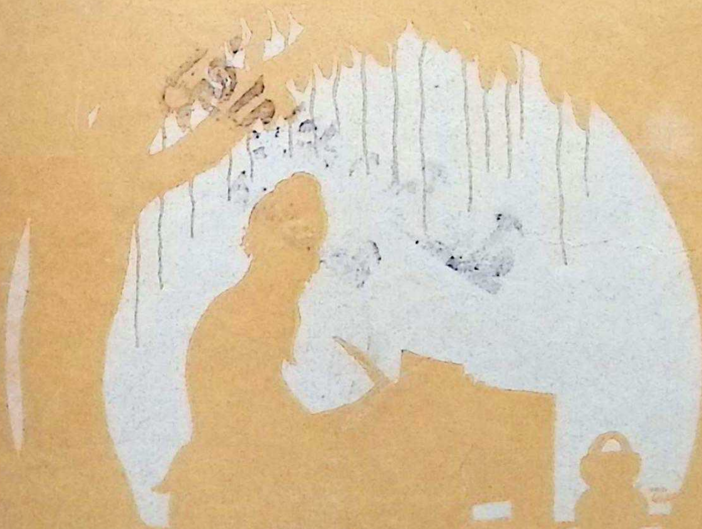
डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०
कलकत्ता

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—कैक्स्टन प्रेस, नई दिल्ली ।

मई
१९५४

वैसाख
२०११

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका



प्रधान सम्पादक
कविराज कैलाशचंद्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि

सम्पादक संस्कृत-विभाग
वी. वी. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

विषय-सूची

।। श्री धन्वन्तरये नमः ।।

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ।।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक—कविराज कैलाशचंद्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि ।
सम्पादक संस्कृत विभाग—वी. बी. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य,
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४० अंक ५ | दिल्ली, बैशाख २०११, मई १९५४ | वार्षिक ५) एक प्रति ।।)

सौराष्ट्र के राजप्रमुख की शुभ कामना

आयुर्वेद दर्शन शास्त्र, नीति शास्त्र और व्यवहारिक विज्ञान से ओत-प्रोत है। साधारण चिकित्सा ज्ञान की निपुणता से उन्नत होकर आयुर्वेद जीवन-शास्त्र में परिणित हो गया है। आयुर्वेद का ध्येय मानव की शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं आध्यात्मिक उन्नति करके उसे उसके पूर्ण स्वरूप का बोध कराना है।

आयुर्वेद शास्त्र एक सम्पन्न चिकित्सा प्रणाली है जिसके द्वारा मनुष्य शारीरिक शुद्धि और पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करके आध्यात्मिक मार्ग की ओर अग्रसर हो सकता है। आयुर्वेद का प्रादुर्भाव ही उच्च-उद्देश्यों और दयालुता की भावनाओं को लेकर हुआ है।

आज के युग में, जबकि स्वास्थ्य और रोग की परिभाषा और रोगी और चिकित्सक के सम्बन्धों के बारे में नया दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ है, आयुर्वेद सरीखे एक मानव रक्षक और सम्पूर्ण विज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है। आयुर्वेद के पुनरुत्थान के लिए आपके प्रयत्न एकदम उचित और अत्यन्त सराहनीय हैं।

जब आप सरीखे महारथियों ने इस शुभ कार्य को अपने कन्धों पर उठा लिया है तो मुझे पूर्ण आशा है कि इस पुण्य कार्य की सफलता से विश्व का कल्याण होगा। मैं आपकी और आपकी संस्था की इस पुण्य कार्य में पूर्ण सफलता के लिए भगवान से प्रार्थना करता हूं।

—दिग्विजय सिंह

(३९ वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, कोट्टकल के अवसर पर प्राप्त)

सम्पादकीय

राजनीतिक षडयंत्र

गत १२ अप्रैल को पार्लियामैण्ट में स्वास्थ्य मंत्रिणी राजकुमारी अमृतकौर ने बजट पर चल रही बहस के सिलसिले में आयुर्वेद के विषय में ऐसी अनर्गल बातें कह डालीं जिनको पढ़कर आश्चर्य ही होता है और यह आश्चर्य तब और भी बढ़ जाता है जब यह मालूम हो कि वक्ता महोदया ऐसे विषय पर आरोप लगा रहीं हैं जिसके विषय में उनका निजी ज्ञान शून्य है। शायद जीवन भर उन्होंने कभी भी आयुर्वेद के विषय का एक भी अक्षर न पढ़ा हो, और बड़ी शान के साथ एक उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर बैठकर यह कह डालना कि आयुर्वेद अवैज्ञानिक है और यदि उसे मान्यता दी जाय तो वह हमें २००० वर्ष पीछे घसीट ले जायगा एक ऐसा अशोभायुक्त कार्य है जिसकी प्रत्येक समझदार व्यक्ति निन्दा किए बिना नहीं रह सकता। ऐसा सुनने पर हमें यही सोचना पड़ता है कि राजकुमारी जी में कुछ निजी प्रतिभा भी है या केवल किसी का सहारा प्राप्त कर ही उनका जीवन आज की स्थिति में पहुंचा है।

सामाजिक क्षेत्र हो अथवा राजनीतिक इन सभी के द्वारा समय समय पर नये-नये नेता जनता को मिलते आए हैं जिनके अपने भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व होते हैं। किसी का वह अपना व्यक्तित्व अपना ही होता है, किसी का व्यक्तित्व किसी का सहारा प्राप्त कर पनपता है अथवा जो अन्यों की प्रतिभा से प्रतिभावान बनते हैं और अपना अस्तित्व बना ले जाते हैं। एक तीसरी श्रेणि के व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो दूसरों का आधार प्राप्त कर अपने को प्रदर्शित करते हैं और जैसे ही वह आधार छूटे उनकी अपनी प्रतिभा ऐसी लुप्त हो जाती है जैसे दिये के बुझते ही रात्रि का प्रकाश।

हमारे देश की केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रिणी भी तीसरी श्रेणि की प्रतिभावान व्यक्तित्व में गिनी जा सकती हैं—क्यों? इसलिए कि राष्ट्रपिता जब तक जीवित रहे—उनका तेज भारतभूमि पर कार्य करता रहा तब तक अनगिनतों की भांति हमारी स्वास्थ्य मंत्रिणी भी उनकी छाया से प्रतिबिम्बित होती रहीं। कभी-कभी लोगों को ऐसा भ्रम भी हुआ है कि राजकुमारी जी गांधी जी के विचारों की सजीव मूर्ति हैं। परन्तु जैसे ही बापू की प्रतिभा भारत-भूमि से लोप हुई वैसे ही राजकुमारी जी का वह तेज और बुद्धि-प्राबल्य अपना बनकर न रह सका। राष्ट्रपिता की छाप लगी थी तथा उनके श्री चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त था और नारित्व का प्रतिनिधित्व करती थीं इसलिए स्वतन्त्र भारत की प्रथम राष्ट्रीय सरकार में उन्हें स्वास्थ्य मन्त्रिणी का पद प्राप्त हुआ। जनता ने संतोष की सांस ली

और उनसे आशा की कि यह भारतीयता की साक्षात् प्रतिमूर्ति जिसने भारत के महान् सपूत के सम्पर्क में रह कर भारतीयता का अध्ययन किया है और उसकी महानता तथा महत्व को स्वीकार किया है अवश्य ही भारत की जनता के स्वास्थ्य और चिकित्सा जैसे महत्वपूर्ण विषय को बढावा देगी। परन्तु हमें अत्यन्त दुख के साथ यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि विदेशी आधिपत्य के समय में जिस प्रकार स्वास्थ्य विभाग दूसरे देशों की औषध कम्पनियों की ऐजेन्सी का काम करता था आज सात वर्ष की स्वतंत्रता के पश्चात् भी ठीक वैसे ही कार्य कर रहा है और भारतीयता की ओर इंच का दसवां भाग भी बढ़ा हुआ दिखाई नहीं देता। विदेशी सत्ताकाल में हमें किसी धोखे में नहीं रहना होता था-जो बात होती थी साफ होती थी, किन्तु आज तो हमें अनर्गल असम्बद्ध बातों के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। वही पुरानी लाल फीताशाही तो है ही-साथ ही सुन्दर सुन्दर अलंकृत शब्दों में लिपटे हुए धूर्ततापूर्ण मिथ्या भाषणों का रसास्वादन भी करना पड़ता है जो राजनीतिक दवा-पेंचों से दूर भोली भाली जनता के मस्तिष्क में विषैला प्रभाव छोड़ते हैं। भारतीय संसद् के बजट अधिवेशन में स्वास्थ्य विभाग की मांगों पर बहस का उत्तर देते हुए आपने फर्माया कि "भारत की जनता आयुर्वेद को पसंद नहीं करती और ग्रामीण जनता भी इसे नहीं चाहती।" जब उनसे इस जानकारी को प्राप्त करने का आधार पूछा गया तो आपने एक प्रमुख प्रान्त के स्वास्थ्य मंत्री का नाम ले दिया। अब आगे सुनिये जब किसी आयुर्वेद के दीवाने ने यह बात उन प्रान्तीय स्वास्थ्य मंत्री से पूछी कि "साहब" आपने यह बात केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रिणी से किस आधार पर कही तो वह प्रान्तीय स्वास्थ्य मंत्री एक दम बोल उठे "यह मिथ्या प्रापेगेन्डा है मैंने ऐसी बात न तो किसी सभा में कही और न ही निजी तौर पर किसी व्यक्ति विशेष से"। उसके एक सप्ताह के अन्दर ही अन्दर हमने समाचार पत्रों में पढा कि उन प्रान्तीय मंत्री महोदय ने एक महत्वपूर्ण आयुर्वेदिक उत्सव में स्पष्ट शब्दों में कहा कि "जनता आयुर्वेद को पसन्द करती है और हमें उसे देना चाहिए"। इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि हमारी स्वास्थ्य मंत्रिणी महोदया कितने गहरे पानी में हैं।

दूसरी बात और सुनिए संसद् में आपने कहा कि "मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि राष्ट्र के व्यक्ति की औसत आयु २७ वर्ष से बढ़ कर ३२ वर्ष हो गई है"। हमें यह पढ़ कर प्रसन्नता तो हुई किन्तु हम यह नहीं समझ सके कि आयु में यह वृद्धि हुई कैसे! क्योंकि राजकुमारी के शब्दों में ही देश की केवल १५ प्रतिशत जनता को ही आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान से लाभ उठाने का सौभाग्य प्राप्त होता है, जिसे कि वह सर्वश्रेष्ठ मानती हैं। शेष ८५ प्रतिशत जनता आयुर्वेद विज्ञान के सहारे रहती है जिसके अपनाने से उनके कथनानुसार देश का स्वास्थ्य खतरे में पड़ जाएगा। राजकुमारीजी के इस मत के अनुसार तो आयुष्मान में यह कथित वृद्धि केवल डाक्टरी सहायता प्राप्त उन १५ प्रतिशत

व्यक्तियों में ही हुई। यदि ऐसा है तो यह आयु राष्ट्र की नहीं कुछ लोगों की बढ़ी। परन्तु वास्तविकता यह है कि सत्य कहीं न कहीं से मार्ग ढूंढ कर बाहर आ ही जाता है भले ही राजकुमारी अपने मुंह से इस बात को स्वीकार न करें, आयुर्वेद सरकारी उपेक्षा के बावजूद भी देश की जनता के स्वास्थ्य को थामें हुए है और उसे उन्नत कर रहा है। जब राष्ट्र की औसत आयु बढ़ती है तो वह चिकित्सा प्रणाली ही इसका श्रेय प्राप्त करने की अधिकारिणी है जो बहुसंख्यक जनता को राहत पहुंचाती है। राजकुमारी जी यदि अपने बताए हुए आंकड़ों के सहारे ही आयुर्वेद की महत्ता को स्वीकार कर लें तो सारा झगड़ा ही मिट जाए किन्तु हम तो पहले ही कह चुके हैं कि यह हमारा दुर्भाग्य है कि वे निजी प्रतिभा से शून्य हैं और उनके चारों ओर आधुनिक महान् वैज्ञानिक कहे जाने वालों का ऐसा चक्रव्यूह बना हुआ है जिनके कहे हुए शब्दों के अतिरिक्त राजकुमारी न तो कुछ कह ही सकती हैं और न कुछ सोच ही सकती हैं।

हम राजकुमारी जी से कहेंगे कि वे आधुनिक को ही सर्वश्रेष्ठ मानने की भ्रांत धारणा को त्याग दें और आयुर्वेद को समझने का प्रयत्न करें अन्यथा आयुर्वेद के प्रति किया गया उनका अन्याय देश के प्रति एक बड़ा विश्वासघात समझा जायगा और आने वाली पीढियां उनको इस दुष्कृत्य के लिए कभी क्षमा नहीं करेंगी। आयुर्वेद को मिटाने के स्वप्न देखना वह त्याग दें, उसे वे मिटा नहीं सकेंगी। ऐलोपैथी के प्रसिद्ध डाक्टर जयसूर्य के इस कथन की सत्यता को कि--"आप और मैं भले ही आयुर्वेद पद्धति को न जानें, जनता जानती है। आप आयुर्वेदिक पद्धति से ही चिकित्सा क्षेत्र में गांव की जनता की जल्द से जल्द सहायता कर सकते हैं। यदि आप यह काम नहीं करेंगे तो लोग कर लेंगे" उन्हें समय से पूर्व ही पहिचान लेना चाहिये।

अन्त में हम चै० शु० १३ गुरुवार सं० २०११ के हिन्दुस्तान के सम्पादकीय के निम्न महत्वपूर्ण शब्दों की ओर भी राजकुमारी जी का ध्यान दिलाना अपना कर्त्तव्य समझते हैं:-

"यह उन्हें किसने बता दिया कि आयुर्वेद की चिकित्सा प्रणाली वैज्ञानिक नहीं है। क्या कोई प्रणाली पुरानी होने के कारण ही विज्ञान-विरुद्ध मानी जा सकती है, और जिस ऐलोपैथी के लिए विज्ञान-सम्मत होने का दावा किया जाता है, उसकी वैज्ञानिकता को स्वयं राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने चुनौती दी थी, जिनके चरणों में बैठ कर श्रीमती अमृतकौर को कुछ सीखने का अवसर प्राप्त हुआ था।

"हम को इतना अन्धा नहीं होना चाहिए कि बाहर की आई प्रत्येक वस्तु को हम चमकता सोना मानते चले जायं और हमारी अपनी वस्तु हमको हीन और निकृष्ट प्रतीत हो; कारण, जो चमकता है वह सब सोना नहीं हुआ करता।" (हिन्दुस्तान का सम्पादकीय)

निवेदनं प्रार्थना च

ले०—वा बा० नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः, संस्कृत विभाग सम्पादकः

प्रिय पाठक महोदयाः,

सविनयमिदं निवेद्यते यद्-आयुर्वेदस्य अभ्युदयाय पत्रिकाणां परमावश्यकता भवति इति सर्वाभ्युपगतोऽयं विषयः। आयुर्वेद पत्रिकाः कस्यां भाषायां प्रकाशनीया इति विषये पत्रिकाया वक्तव्यं विषयं लक्ष्यं च अभिसमीक्ष्य उचिता भाषा अवलम्बनीया। शास्त्रविचारो लोकप्रचारश्चेति आयुर्वेद पत्रिकाणां कार्यं प्राधान्येन द्विप्रकारकं भवति। तत्र प्रचारार्थं प्रवृत्ताभिः पत्रिकाभिः—श्रावयितव्यानां जनानां प्रभेदानुसारेण भिन्नभिन्ना भाषा समवलंबनीया भवति। राज्यशासकवर्गकर्णं प्रवेष्टुं आंग्लभाषैव अद्यापि प्रभवति। न केवलं शासकवर्गः। भूयांसः अग्निमधुरीणाः देशव्यापकाः प्रतिष्ठिताः सज्जना अपि आंग्लभाषोक्तमेव अवदधति अवगच्छन्ति चेति, शासकानां लौकिकप्रधानपुरुषाणां च आवर्जनाय आंग्लभाषैव अधुनाऽपि प्रयोक्तव्या भवति। अथ साधारण जनतामध्ये आयुर्वेदोपदेशानां प्रचारे कर्त्तव्ये सति, तत्तज्जनवाणी प्रयोक्तव्या। अखिल भारतवर्षव्यापिकाया एकस्या भाषाया इदानीमभावात् तत्तत्प्रान्तीया भाषैव लोके प्रचारार्थं स्वीकर्त्तव्या, सैव फलप्रदा भवितुमर्हति। एवं आयुर्वेदस्य प्रचारार्थं आंग्लभाषा, प्रान्तीया भाषाश्च बहवो यथोचितं अवलम्बनीया भवन्ति।

अथायुर्वेदस्य शास्त्रविचारकार्ये प्रवृत्ते सति संस्कृतमेव शरणीकर्त्तव्यम्। न भाषान्तरेण किञ्चिदपि प्रयोजनम्। (यथाचैवमेतत् तदूर्ध्वं अन्यत्र प्रतिपादयिष्यामः)।

एवं आयुर्वेद पत्रिकाणां भाषाविषये वस्तुतत्वमिदं प्रेक्षावद्भिः सर्वैरभ्युपगमनीयमेव।

प्रकृते—निखिल भारतायुर्वेदमहासम्मेलनस्य शास्त्रविचारः लोके प्रचारश्चेत्युभयमपि प्रधानं कर्त्तव्यं भवति। परमस्य मुखपत्रिकायां सांप्रतं भूयिष्ठं समादृतया हिन्दीभाषया आयुर्वेदविज्ञानाभिवृद्धये परमावश्यकः शास्त्रार्थ विचारो नैव शक्यते सफलतया कर्त्तुम्। विज्ञानाभिवर्धनमुपेक्ष्य केवलं प्रचारणं, न शुभोदर्कं भवितुमर्हति। आयुर्वेदस्य तात्विकी वैज्ञानिकी अभ्युन्नतिः संस्कृतैकसाध्या। अतः, निखिल भारतवर्षीयायुर्वेदमहासम्मेलनात् सम्पूर्ण संस्कृतमयी मासिकी एका पृथक् पत्रिका शास्त्रविचारैककार्या सद्यः सम्पादनीया—

इति अचिराद् वृत्ते एकोनचत्वारिंशत्तमे महासम्मेलनाधिवेशने प्रस्तूय, तथा कर्त्तुं प्रार्थितवानहम्। सदसि समवेताः सर्वेच भिषजो मत्प्रस्तावस्य औचितीं साभिनन्दनमङ्गचकुर्वन्।

किन्तु, "महासम्मेलनस्य आर्थिकी शक्तिः पृथक् संस्कृतपत्रिकायाः सद्यः प्रकाशनक्षमा न भवतीति हेतोः, विद्यमान पत्रिकायां अनूनाष्ट पृष्ठात्मको विभागः संस्कृते शास्त्रविचारार्थं अनुपदमेव प्रकल्पयितव्यः। उत्तरतः प्रयतितव्यं पृष्ठानामाधिक्ये पृथक् संस्कृत पत्रिका

सम्पादने च" इति कर्मकुशलाः सभाध्यक्षाः श्रीशिवशर्ममहोदयाः मत्प्रस्तावं परिवर्त्य सर्वं समञ्जसमकुर्वन्। नैतावत्, पत्रिकाया नूतन संस्कृतविभागस्य सम्पादकत्वभारमपि सहसा ममैव शिरसि न्यक्षिपन्।

अल्पश्रुतः अल्पतरनिबन्धनपरिचयःअल्पतमावकाशश्चाहं बहुश्रुत बहुनिबन्धक बह्ववकाशविपश्चित्साध्ये शास्त्रविचारपर-संस्कृत विभागसम्पादने आत्मनः सर्वथा अनर्हतामशक्तिं च जानन्नप्यहं, आयुर्वेदसेवार्यैसन्दर्भलाभोद्भिन्न संहर्षेण, सहृदय प्रौढ़ विद्वद्भिषजां स्वतः प्रसन्नं साहाय्यं ममास्मिन् सत्कार्ये सर्वदा भवेदेवेति सुदृढ़प्रत्ययेन च संस्कृतविभागस्य सम्पादकत्वमहं सपदि स्वीकृतवान्।

अयि भोः आयुर्वेद मार्मिकाः, निबन्धृमहाशयाः, आयुर्वेद विज्ञानसम्पदभि वृद्ध्यै परमावश्यकानां अधीति बोधाचरण प्रचारणानां कृते सस्कृतमेव सर्वोत्तमं साधनमिति भवत्सु स्मारणमनपेक्षितम्। संस्कृतवाण्या स्वाशयं निबद्धुं सर्वे वैद्या न शक्ता भवेयुः, किन्तु वैद्यलोके गीर्वाणवाणीकथितं आयुर्वेदविषयं बोद्धुंशक्ता एव सर्वेऽपि, इति च भवतां विदितम्। संस्कृतोक्तं विषयमवगन्तुमप्यक्षमस्य जनस्य आयुर्वेदाध्ययनप्रवेशाधिकारो नास्तीति च भवतामभिमतम्। अतो देववाणीनिबन्धः पत्रिकापाठकानां सुबोधः स्याद्वानवेति माभूद भवतां शङ्का। सर्वे सम्यग् विद्युः। अतो भवतः सानुनयं प्रार्थये—आयुर्वेद शास्त्रीय निबंधान् संस्कृत भाषायामेव विलिख्योपकुर्वन्तु। भवतामयमुपकारः शास्त्रज्ञानाभिवृद्ध्यै क्षिप्रं ध्रुवं महाफलावहः स्यादिति।

इत्यं भवतामनुग्राह्यः,
वा० बा० नटराजशास्त्री।

सूचनं—सम्मेलनपत्रिकायां प्रकाशनीयानां संस्कृतमय निबन्धानां प्रेषणीयः स्थान-संकेतः—

वा० बा० नटराजशास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः,
आत्रेयाश्रमः, तेन्नोरू रोड, तिरूचिरापली, मद्रास।

विशेषः—दक्षिणापथे पत्रवाहकानां नागरीलिपिज्ञानाभावात् पत्रोपदि बहिः स्थान संकेतमात्रं निम्नलिखितवत् आंग्ललिप्यां विलिख्यताम्—

V. B. NATARAJA SHASTRI, Ayurvedacharya,
Atreya Ashram, Tennur Road,
Tiruchirappalli, (Madras).

आयुर्वेद का संकीर्ण काल

[प्रस्तुत लेख के लेखक ने आयुर्वेद की वर्तमान दयनीय स्थिति का विस्तृत विवेचन किया है। यह सम्भव है कि उसकी लेखनी की धार किसी को कुछ पैनी लगे और कुछ बातों में उससे सहमत न हों किन्तु लेखक के हृदय में विद्यमान आयुर्वेद के प्रति आस्था और प्रेम एवं उसे उन्नत देखने की तड़प से हम इन्कार नहीं कर सकते। लेखक पग-पग पर आयुर्वेद की उन्नति चाहता है और यही इस लेख का मूल उद्देश्य है। पाठक इसका ध्यानपूर्वक मनन कर आयुर्वेद के विकास में सहयोगी बने। —प्र० सम्पादक]

आज आयुर्वेद की बहुमुखी उन्नति के क्रम को ध्यानपूर्वक विचारें तो ज्ञात होता है कि दर्शन में जो प्रगतिशील दिखाई दे रहा है वास्तव में संकीर्णता के मार्ग का अनुगमन कर रहा है। इस पर हम विभिन्न दृष्टिकोण से विचार उपस्थित करते हैं।

१. शिक्षा–शुद्ध व मिश्रित। २. साहित्य- मूल व आधुनिक प्रकाशन। ३. चिकित्सा- आतुरालयों की व स्फुट ४. सामाजिक व राजनीतिक प्रभाव ५. प्रचार व प्रभाव- संस्थायें व वैद्यसम्मेलन ६. अन्वेषण- आधुनिकअन्वेषण। ७. कर्त्तव्य व त्रुटि

शिक्षा—आज आयुर्वेद की शिक्षा दो प्रकार की प्रचलित है शुद्ध, व मिश्रित। शुद्ध शिक्षा से उस शिक्षा का अभिप्राय है जो अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ के पाठ्य क्रमानुसार विभिन्न विद्यालयों, पाठशालाओं, गुरुओं की शिक्षा पाकर विद्यार्थी विद्यापीठ की परीक्षायें देते हैं अथवा हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षायें (आयुर्वेद विषय की) प्राइवेट रूप में देते हैं। विद्यापीठ में गुरु शिष्य का क्रम अधिकांश परिचालित है सम्मेलन की परीक्षा में यह नगण्य सा ही है। इन दोनों की सामान्य परीक्षायें भिषक्, विशारद व, उच्च आयुर्वेदाचार्य व आयुर्वेद रत्न की हैं। यह दोनों संस्थायें परीक्षाओं का प्रबंध करती हैं। हरवर्ष सैकड़ों की संख्या में परीक्षार्थी उत्तीर्ण होते हैं।

आयुर्वेदकी शिक्षा—इस के सम्बन्ध में यदि ध्यान दें तो गिने चुने विद्यालयों को छोड़कर कहीं भी गुरुशिष्य परंपरा की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं है, उत्तीर्ण वैद्य पुस्तकीय योग्यता भले ही रखते हों, उन्हें क्रियात्मक ज्ञान, द्रव्यसम्बन्धी या औषधिसम्बन्धी बिल्कुल नहीं होता। अतः जो वृद्धि इस प्रकार आयुर्वेद के स्नातकों की इन संस्थाओं से की जा रही है वह आयुर्वेद के यशः काय को प्रकाशमान बनाने के बदले धूमिल बना रहे हैं। इसमें प्रावेशिक योग्यता का कोई निर्दिष्ट स्तर नहीं है। इन्हें कर्म क्षेत्र में जानें पर बड़ी कठिनाई होती है और इनकी क्रिया पर ही आयुर्वेद की शिक्षा का स्तर माप्य जाता है।

मिश्रित—मिश्रित शिक्षायें कई प्रान्तीय राज्यों के द्वारा स्थापित (इंडियन मेडिसिन)

बोर्डों द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रमों द्वारा दी जाती है। इनमें आयुर्वेद के साथ आधुनिक चिकित्सा विषयक साहित्य की भी शिक्षा दी जाती है। इनमें भी आयुर्वेद व आधुनिक चिकित्सा सिद्धान्तों की शिक्षा ही अधिक दी जाती है। क्रियात्मक शिक्षायें भी दी जाती हैं। पूर्वापेक्षा इसके स्नातक क्रियात्मक शिक्षा में कई गुना ज्ञान लाभ करते हैं। साधनों के अभाव में यह पूर्ण क्रियाभ्यास नहीं करवाते। इन को पाश्चात्य गुरु अधिक स्पष्ट क्रियात्मक शिक्षा देते हैं, वैद्य गुरु क्रियात्मक ज्ञान देने की तरफ ध्यान नहीं देते। वास्तव में उन्हें ज्ञान भी कम होता है। जितना देखे रहते हैं बतलाते हैं। इनमें आधुनिक गुरु अपना प्रभाव स्पष्ट दिखा कर छात्रों को आधुनिकता की तरफ अधिक आकर्षित कर लेते हैं। अतः स्नातक आयुर्वेद प्रेमी होने के बदले ऐलोपैथिक प्रेमी अधिक हो जाता है। क्रियाक्षेत्र में वह डाक्टरों की स्पर्धार्थ अनुगमन करता है और आयुर्वेद का निन्दक बन जाता है। वैद्य लिखने का साहस नहीं करता डाक्टर लिखने की तृष्णा का अभियोगी बनता है।

इन दोनों प्रकार की पद्धतियों से आयुर्वेद का मानदण्ड बराबर गिरता जा रहा है और यदि इन मिश्रित शिक्षा प्राप्त स्नातकों का बाहुल्य हुवा तो एक दिन इन आयुर्वेद के पुजारियों द्वारा ही आयुर्वेद का विनाश होगा। शुद्ध स्नातक कभी भी आयुर्वेद के मानस्तर को बना नहीं सकेंगे क्योंकि चिकित्सा में प्रविष्ट होकर वह जब तक स्वतः अनुभव प्राप्त करेंगे ख्यात व कुशल चिकित्सक होंगे शिक्षा न दे सकेंगे। प्रैक्टिस के सामने पढ़ाना न हो सकेगा और आयुर्वेद के ये गिने चुने प्रेमी आयुर्वेद के शिक्षास्तर को बढ़ा न सकेंगे।

अतः द्विविध शिक्षा आयुर्वेद के मान की रक्षा कर सकेगी या नहीं संदेहास्पद है। अब आयुर्वेद गगन में श्री यादव जी, श्री गणनाथ सेन जी, श्री यामिनी भूषण जी, श्री मनोहर लाल जी, श्री राम प्रसाद जी, श्रीहरिदत्त जी, श्री घनानन्दजी, श्री सत्यनारायण शास्त्री जैसे तारक शिक्षार्थ पुनः प्राप्त होते नहीं दिखाई पड़ते। फिर भविष्य के विषय में पाठक विचार करें कि आयुर्वेद की उन्नति का मार्ग संकीर्ण है या विप्रकीर्ण।

साहित्य—आज आयुर्वेद का मूल साहित्य वृहत्त्रयी के अतिरिक्त कुछ नहीं है संगृहीत ग्रंथ संख्या में शतक त्रय भी हों तो मूलाधार यही दृष्ट हैं। रसग्रंथ भले ही पचास साठ उपलब्ध हैं किन्तु उनका स्थान दो तीन संगृहीत रस पुस्तकों ने अवरुद्ध कर अनुपादेय बना दिया है। रसरत्न समुच्चय, रसेन्द्र सार, आयुर्वेद प्रकाश ने सार संग्रह कर उनके मर्मों का संकलन कर दिया है। अष्टांग आयुर्वेद का साहित्य आज उपलब्ध नहीं है। मेरा अभिप्राय सामान्य अर्थ में न हो कर विशिष्ट अर्थ में है अतः सारा क्रियात्मक साहित्य, आधुनिक शरीर रचना, क्रिया विज्ञान, शल्यशालाक्य, काय चिकित्सा, भूतविद्या, अगद तंत्रका साहित्य, कौमार भृत्य, धातुविज्ञान का साहित्य आयुर्वेदग्रंथों में ढूंढ़कर निकालना दुःसाध्य कार्य बनपाया है और आयुर्वेद के साथ आधुनिक शिक्षा में इसके इस विरूप को और नग्न रूप में रखनें में सहयोग दिया है।

अतः आधुनिक प्रकाशन जो भी हो रहे हैं वह सब के सब आधुनिक साहित्य के

आलवाल में या अनुवाद के रूप में चल रहे हैं। इधर दस वर्षों में जो भी साहित्य प्रकाशित हुआ है, जिन की संख्या सौ से कम न होगी, वह ध्यानपूर्वक देखिए तो उसमें आयुर्वेद के प्रकाशन शुद्ध चार पांच से अधिक नहीं हैं। यहां नाम लेकर विश्लेषण संभवतः द्वेषबुद्धि का परिचायक समझा जाय अतः गोलशब्दों में लिखा गया है।

आज के प्रकाशक शुद्ध साहित्य की पुस्तकें भी नहीं छापते और मिश्रित धड़ाधड़ छाप रहे हैं। ये प्रकाशन क्या आयुर्वेद के पोषक हैं ? यह तो स्पष्ट निर्देश करते है कि बिना आधुनिक साहित्य संकलन के, सहयोग के अच्छा साहित्य आयुर्वेद का बन नहीं सकता।

पत्र-पत्रिका—आधुनिक लेखों को पत्रिकाओं में देखिए, आप ध्यान दें तो स्पष्ट हिन्दी भाषा में या संस्कृत में अनुवाद किया हुआ लेख पढ़ने को मिलता ह।

विदेशों की तरह न तो कोई संस्था है जो कि आयुर्वेद के साहित्य की प्रौढ़ता का अन्वेषण करती न कोई एसोसियेशन या समिति है जो आयुर्वेद के विद्वानों के सहयोग से चल रही हो। आज के संपादक आयुर्वेद ज्ञान विरहित, व्यापारिक संस्थाओं के अधिपति हैं जिन्हें व्यापार से पैसे चाहिए पत्रिका साहित्य कुछ भी हो। संपादकीय लेख जिन में लेखकों की कला पर कुछ संशोधन या पथप्रदर्शन किया गया हो ऐसा एक भी दृष्टिगोचर नहीं होता। ऐलोपैथी का अनुवाद हिन्दी में कर के भले ही आयुर्वेद आयुर्वेद कहें, आयुर्वेद साहित्य बढ़ने के बदले क्षीणकाय हो रहा है।

साहित्यकार लेखक चरक सुश्रुत की टीकाएं कर रहे हैं इन में जो प्रसिद्ध हैं उन्हें उठाइये, वह क्या हैं ? एकार्थवाची श्लोकों का संग्रह हैं, कहीं पाश्चात्य पुट है यह उत्तम टीकायें कहीं जाती हैं। किन्तु उनके ऊपर कोई ध्यान नहीं देता, उन संस्कृत की टीकाओं का अनुवाद कोई नहीं कराता जिनके वस्तुसंग्रह को लेकर ये टीकाकार विद्वान कहे जाते हैं। अतः टीकाओं व स्वतंत्र ग्रंथ सब में पाश्चात्य साहित्यानुवाद की भावना दी जा रही है और कुछ को छोड़ कर अधिकांश आयुर्वेद की साहित्य सामग्री कहलाने की अधिकारी नहीं है। अतः आयुर्वेद का साहित्य भी कृशता का शिकार हो रहा है।

आतुरालय—आतुरालय आयुर्वेद के गिनें चुने हैं इन्हें अंगुलियों पर गिना जा सकता है। आतुरालय से अन्तरंग बहिरंग संयुक्त चिकित्सालय से अभिप्राय है।

इनमें क्रियात्मक अनुसंधान कुछ भी नहीं है ज्वर के रोगी में ज्वरघ्न सब दवायें लिखी जाती हैं। निश्चित रोग लक्षण पर निश्चित औषधि का निर्णय विराट वैद्यसमुदाय, व आयुर्वेद महामण्डल न कर सका, जो इस की प्रधान आधारशिला है। काय चिकित्सा को निकाल कर आयुर्वेद में क्या रहेगा।

आधुनिक आतुरालयों की तरह समृद्ध एक भी आतुरालय आयुर्वेद का नहीं है जिन

में पूर्ण आयुर्वेद पद्धति व शास्त्री पद्धति की चिकित्सा पंचकर्म के साथ की जाती हो। आयुर्वेद नामधार आतुरालय बहुत हैं और इनमें रोगी किसी प्रकार चिकित्सा आयुर्वेदिक पा रहे हैं। उसके चिकित्सक भी इंजेकशन लगाते हैं और सर्वकर्म पाश्चात्य करते हैं। अस्पताल का नाम आयुर्वेदिक है। यदि है भी तो उनकी औषधियों का निर्दिष्ट विधान तैयार नहीं है।

अन्य राजकीय व छोटी छोटी डिस्पैंसरियों को औषधालय नहीं कहा जा सकता जो साल भर में दो चार सौ की दवायें बांटती हैं, बाकी समय बैठ कर चिकित्सक काटते हैं और इसका बुरा लाभ उठाते हैं। इन से न होना ही ठीक है। चिकित्सक फर्जी नाम भरते हैं ताकि रोजी बनी रहे। इनके द्वारा आयुर्वेदिक चिकित्सा की बड़ी बदनामी हुई है। उत्तर प्रदेश में ५४५ के करीब राजकीय औषधालय हैं किन्तु किसी का अपना समुचित भवन नहीं। चिकित्सक व कम्पांउडर के रहने का उचित प्रबंध नहीं। इन्हें हम औषधालय नहीं कह सकते। यह तो आयुर्वेद का उपहास है।

ये आतुरालय भी हमारे आयुर्वेद के स्तंभ व स्तर को दृढ़ करने में सहायक नहीं हैं। जनता की देशी भावना व देश प्रेम को दबाने और उन का मुखबंद करने मात्र के लिये ही यह क्रियायें हैं। कई प्रान्तों में प्रबंध है कई जिला बोर्डों में भी प्रबंध है किन्तु लिखते खेद होता है कि कई जिला बोर्डों के चिकित्सक ३५-४० मासिक पर हैं और १०० रुपये की दवायें वर्ष भर में दी जाती हैं। यह औषधालय क्या होगा और चिकित्सक क्या करता होगा, सोचिये तो। यह आयुर्वेद का उपहास, उपेक्षा नहीं है तो क्या है! आयुर्वेद के नाम पर प्रदर्शन, आयुर्वेद के नाम पर दाने बिखेरना आज की जनता की सरकार व जनता के बोर्डों का कर्त्तव्य है और ये जीवित हैं इसलिये कि वोट लिये जाने जो होंगे।

सामाजिक व राजनीतिक प्रभाव—

समाज में वैद्यों का बहुत प्रभाव है, वैद्य की सेवा, प्रेरणा, प्रेम व सम्पर्क से वह जनसमाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता है। किन्तु यह वैद्य आयुर्वेद के लिये कुछ नहीं करते, सामान्य जनसमाज को तो छोड़िये वैद्यगोष्ठी में जाना भी पसन्द नहीं करते; फिर बतलाइये सामाजिक लाभ आयुर्वेद क्या उठा पाये ? ये चिकित्सक अपने पुण्य पर्व धन्वन्तरि त्रयोदशी या भारद्वाज व आत्रेय की स्मरण की कोई सरणी नहीं बनाते, इन अवसरों पर कोई उत्सव करके जनता को सम्पर्क स्थापन का अवसर नहीं प्रदान करते। राजनीति में हिस्सा लेना तो दूर की बात है। तो किस प्रकार यह राजनीतिक अवसरों पर लाभ उठा सकें। परिणाम यह होता है कि वोट के इच्छुक व्यक्ति जो कुछ कर देते हैं आयुर्वेद के नाम पर नगण्य अंशमात्र मिलता है।

प्रचार, प्रभाव व संस्थायें—वैद्यसम्मेलनों के नाम से सर्वत्र हर एक प्रान्त में प्रान्तीय

सम्मेलन हैं किन्तु कोई भी प्रान्त जनता में अपना प्रभाव उत्पन्न करने के लिये जनोपयोगी साहित्य कभी भी नहीं बांटता या उपदेश देता। वैद्यसमाज की दशा को सुधारने के लिए उनके मानस्तर को उन्नत करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं होता। सम्मेलन व सभाओं से पत्र नहीं निकलते, दैनिक साप्ताहिक की तो चर्चा ही छोड़िये, मासिक पत्र भी सब नहीं निकालते, यही नहीं जहां, निकलते भी हैं तो उनका स्टैंडर्ड व्यापारिक संस्थाओं के पत्रों से घिरा हुआ, नगण्य साहित्य है जिससे वैद्यसमाज को कोई लाभ नहीं होता। कोई एक प्रयोग एक रोगी के रोग आराम करने में पूरे समय भी नहीं करता और अनुभूत योग लिख भेजता है और पत्र भी छाप देते हैं जरा भी पूर्वापर विचार नहीं करते। प्रचार नहीं किया जाता तो प्रभाव नहीं होता और प्रभाव नहीं होता तो फिर आयुर्वेद का विकास होने के बदले आपस में द्वेष बोया जाता है। किसी वैद्य सम्मेलन के मंत्री एक जिला में एक जिला सभा बनाने के बदले तीन बना देते हैं और साल भर यह सभायें पार्टी बनाकर लड़ती रहती हैं, तो न प्रचार है न प्रभाव है न कोई पूछता न सम्मान करता है। तो जनता में आयुर्वेद का प्रभाव क्या पड़े और कौन समझे कि आप योग्य व विद्वान चिकित्सक हैं। इंडियन मेडिकल कौंसिल की आज्ञा के बिना प्रान्तीय व केन्द्रीय गवर्नमेन्ट कोई शिक्षा व सर्विस का अपना आधार नहीं बना पाती और आयुर्वेद के कार्य में सब विशेषज्ञ अपने को समझते हैं। तीन-तीन चार-चार बार अखिल भारतीय महामण्डल के सभापति महोदय एक्सपर्ट आयुर्वेद के नहीं माने जाते और कोई डाक्टर, कोई एम० एस-सी०, कोई बी० ए० आयुर्वेद के ऊपर एक लेख लिख कर आयुर्वेदाचार्य की क्रीत डिग्री लगाकर डाइरेक्टर बनता है, डिप्टी डाइरेक्टर बन जाता है और उन सब बड़ी कमेटियों का सदस्य बन जाता है। ये छद्म वैद्य आयुर्वेद के नाम पर ऐलोपैथी का प्रचार करते हैं आयुर्वेद की उन्नति के मार्ग पर तिलांजलि अर्पित करते हैं और बड़े से बड़े आचार्य व एक्सपर्ट आयुर्वेद चिकित्सक को मूर्ख घोषित करते हैं और पार्षद ऐसे व्यक्ति रखते हैं जिससे उनकी पोल न खुले। तो कोई भी प्रचार न तो अपने पक्ष से न परपक्ष से आयुर्वेद का हो रहा है। इसे ह्रास न कहें तो क्या कहें ?

अन्वेषण—आयुर्वेद देशी चिकित्सा के नाम पर सुना है केन्द्रीय गवर्नमेन्ट कुछ रुपये खर्च करने लगी है किन्तु इनके प्रधान अधिकारी डाक्टर हैं। डाक्टर होना बुरा नहीं यदि अन्वेषण उचित हो किन्तु वहां एक भी वैद्य सलाहकार के रूप में नहीं रखा जाता। अखिल भारतीय ड्रग रिसर्च सेन्टर लखनऊ में ही देखिये कोई वैद्य नहीं है और डाक्टर व वैज्ञानिक भरे हैं। तो क्या अन्वेषण होवे।

घोर पतन है, आयुर्वेद का सत्यानाश होने का महाकाल आ रहा है ; वैद्यसमाज तन्द्रा में पड़ा है। अतः प्रश्न उठता है कि यह आयुर्वेद का उन्नति काल है या संकटापन्न दशा है? आयुर्वेद का नामोनिशान क्या आयुर्वेदज्ञों द्वारा ही मिटाये जाने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ है ? अब क्या कर्तव्य है ? बम्बई गवर्नमेंट शुद्ध पाठचक्रम तैयार कर रही है

उत्तर प्रदेश मिश्रण के मार्ग में सबसे आगे हैं और प्रान्त अनुकरण रत हैं तब कर्तव्य क्या हैं ? यदि आपने निदान न किया और हाथ पर हाथ धरे रहे तो फिर आयुर्वेद का भविष्य क्या होगा ?

कर्तव्य त्रुटि—अतः अपनी त्रुटि को समझना, उसके परिमार्जन का प्रबन्ध करना समय के भीतर ही उचित है। वैद्यसमाज दलगत भावना को तिलांजलि दे करके आयुर्वेद के उत्थानार्थ कटिबद्ध हो। महामण्डल अपने कर्तव्य को समझ कर हर एक प्रान्त के कार्य का निरीक्षण करके सुधारने व प्रचार बढ़ाने का प्रयत्न करे। वैद्यों की विषमता जो शिक्षा के आधार पर स्थित है वह दूर करने को कोई परीक्षा या शिक्षण योजना बनावे। अपढ़ अल्पज्ञ वैद्यों के ज्ञानस्तर को बढ़ाने की तरफ ट्रेनिंग सेंटर खोले। आयुर्वेदाचार्य व विशारद के स्नातकों को डिग्रियां तब दे जब किसी अच्छे औषधालय में वे छः मास क्रियात्मक शिक्षा लें। इस निमित्त हर एक प्रान्त में जाकर अच्छे औषधालयों में जिनमें शैय्या व वहिरंग का प्रबन्ध हो शिक्षणार्थ निर्णय करे। भ्रमभावना छोड़ कर विद्यापीठ हर एक प्रान्त में एक-एक विद्यापीठ का विद्यालय नियत कर शिक्षा का स्तर कायम करे और अपनें एक विद्यालय के वदले प्रान्त में एक-एक विद्यालय स्वीकृत कर उसको सहायता देकर शिक्षा क्रियात्मक व सिद्धान्तात्मक दिलाये। समग्र भारत के शिक्षा के स्तर को एक मानदण्ड पर लावे। जनसंपर्क बढ़ाकर आयुर्वेद के प्रति उनकी भावना पुनः जाग्रत करे ताकि जनता स्वयं आयुर्वेद की इच्छा करे। अपना विद्यालय, अपना आतुरालय हो तो हम अपना अन्वेषण भी करेंगे। सर्व प्रकार के साहित्य भी बना सकेंगे। हमें भी गवर्नमेन्ट पूछेगी और योग्य चिकित्सक बन सकेंगे। गवर्नमेंट से प्रार्थना है कि वह पाश्चात्यों की पदधूलि सिर लगाना छोड़े और भारतीयता का व भारतीय संस्कृति का कवच धारण करे। खद्दर व देशी कपड़े पहिनने से भारत भारत नहीं बनेगा बल्कि भारतीय आत्मा बनाने, भारतीय मन बनने पर भारत सत्य भारत बन सकेगा।

(यह लेख किसी की आलोचनार्थ नहीं है, हर प्रकार के विचारों को उपस्थित कर सत्य पक्ष रखने की चेष्टा है। संभव है कि इसमें त्रुटि हों किन्तु शुद्ध आयर्वेदोन्नति भावना का आधार उपस्थित करने की चेष्टा की गई है।)

स्वास्थ्य और प्रकृति का सम्बन्ध

ले०—आयुर्वेदाचार्य, पं० रामगोपाल मिश्र, राजवैद्य-गोंदिया

"सत्वरजतमसाम्यावस्थाप्रकृतिः" (सांख्य)

सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण की साम्यावस्था का नाम ही प्रकृति है। वही प्रकृति—माया, नेचर, कुदरत आदि नामों से लोक में प्रसिद्ध है। वह उत्पन्न न होने वाली होकर भी जगत यावन्मात्र, स्थावर, जंगम की जननी है। उसी से महत्तत्व, अहंकार, पञ्च तन्मात्रायें प्रगट हुई हैं। तत्पश्चाद् अनुक्रम से आकाशादि पंच स्थूल महाभूतों अथवा परमाणुओं की उत्पत्ति हुई है कि जिनके द्वारा जड़ और जंगम जगत की यह दृश्यमान रचना प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है। "स्वेदजाण्डजोद्भिज जरायु संज्ञः चतुर्विधोभूतग्रामः" और जिसकी अनुकम्पा से ही स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, जरायुज इन चारों प्रकार के चेतन प्राणियों के शरीर, आंख, कान, नाक आदि इन्द्रियों और अन्यान्य प्रकार के बाह्य और आभ्यन्तरिक अंगावयवों का हुआ निर्माण भी हम देख रहे हैं।

मूलभूत महत्ब्रह्मस्वरूपिणी (या-नहीं, या-जो) जानने न में आनेवाली अनिर्वचनीय जो माया अथवा अनादि प्रकृति है, उस अष्टधा प्रकार के भेदों वाली दैवीगुणमयी प्रकृति से ही संसार की उत्पत्ति अथवा सर्गरचना हुई है।

अतएव संसार के यावन्मात्र शरीरधारी जीवों में मूल माया (प्रकृति) के गुणों का विद्यमान रहना अनिवार्य हो जाता है, एवम् उन ही के अनुसार उन जीवों के अन्तःकरणों के प्रकार भी। और वह इसलिये कि मूल प्रकृति का स्वरूप ही त्रिगुणात्मक है।

कथित अन्तःकरणों के प्रकार भेदों में से प्रथम प्रकार का अन्तःकरण सात्विक निर्दोष और धर्म प्रधान होता है। द्वितीय और तृतीय प्रकार वाले अन्तःकरण राजस और तामस गुण प्रधान होने से उनमें रोष और मोह की प्रधानता होती है इसलिये वे सदोष होते हैं।

इन कथित प्रकार वाले अन्तःकरण त्रयों के अतिरिक्त प्रत्येक गुणों के पारस्परिक अंशांशी मिश्रणों की तारतम्यतानुसार जीवधारियों के अन्तःकरणों के और भी अनेक भेद हो जाते हैं, जिनका गिनना, समझना भी सम्भव नहीं है।

और वह इसलिये कि कथित भेदों युक्त अन्तःकरण वाले प्राणियों के स्वभावों, मानसिक प्रवृत्तियों, आहार और विहारों में तथा शारीरिक रचनाओं एवम् प्रभावों में भी गुणत्रयों के मिश्रणों की अंशांशी- तारतम्यतानुसार अगणित भेद होते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी तो मानना ही पड़ेगा कि "शरीरमपि सत्वमनुविधीयते सत्वंच शरीरम्" (च० सं०

शा० स्था० अ० ४) प्रत्येक जीवधारी के शरीर के अनुसार उसका अन्तःकरण होता है, और अन्तःकरण के अनुसार उसका मन और शरीर। तबतो ऐसी स्थिति में बालक, युवा, वृद्ध, और मनुष्य पशु पक्षी आदिकों के शरीर का विचार करने पर और भी असंख्यों भेद हो जाते हैं।

और फिर इनका समझना तो और भी टेढ़ी खीर हो जाता है; किन्तु हां! फिर भी कोई समझना चाहे तो गुणत्रयों में से जिस किसी एक गुण की प्रधानता वाला शरीर-धारी का अन्तःकरण होगा वैसी ही गुणपूर्ण रुचि का उसमें होना अनिवार्यतः देखने में आ सकता है; और इस प्रकार से समझने में अवश्य बहुत कुछ सरलता हो सकती है, अन्यथा बहुत कठिन विषय हैं।

कारण संसार की समस्त वस्तुयें इन्हीं कथित गुणत्रयों का परिणाम मात्र हैं, ये गुण-त्रय इतने व्यापक स्वरूप वाले हैं कि संसार की ऐसी कोई वस्तु नहीं जो इनकी व्यापकता से बची हो। मानव हो, दानव हो, पशु हो, पक्षी हो अथवा कीट पतंग कोई हो सबके अन्तःकरणों और शरीरों में एवं वृक्ष, लता गुल्मों और पत्थरों, रत्नोपरत्नों, धात्वोपधातुओं अन्नादि के प्रकार भेदों में इन्हीं गुणत्रयों का व्यापक चमत्कार दिखाई देता है।

इन सबकी रचना में गुणत्रयों का जिस अनुपात से अंशांशी प्रकार वाला मेल हुआ होगा उसी हिसाब के प्रमाण वाला प्रत्येक में प्रत्येक गुण का प्रभाव भी अवश्य विद्यमान होगा। पृथ्वी की समस्त वस्तुओं से लगाकर स्वर्ग के देवताओं तक में परमाणुओं से लेकर सूर्यादि ग्रह और तारीकाओं में इन गुणत्रयों का ही प्रभाव है। यह हमारे ब्रह्माण्ड का ही गोला नहीं अपितु अश्वत्थ वृक्ष में लगी उन पीपली फलों के गुच्छों की समान उस उर्ध्वमूल और अनन्तों शाखा से उर्ध्वाधः भाग में फैले व्यापक अश्वत्थ की जड़ से लेकर फुनगी तक फलरूप में लगे और जिनमें बीज रूप अनन्तों लोक और जीवों की कोटि भरी पड़ी है ऐसे अगणित ब्रह्माण्ड के गोलों में भी कथित गुणत्रयों का व्यापक प्रभाव है। इसे स्थूल विज्ञान नहीं जान सकता। क्योंकि, इन गुणत्रयों के जटिल प्रकार वाले मिश्रणों से जगत के स्थूल पदार्थ ही व्याप्त हों ऐसा नहीं है; प्रत्युत समस्त ब्रह्माण्ड ही इन गुणत्रयों के अन्तर्गत है। जिसका समझना बड़ा दुरूह है, और यह है भी स्वाभाविक ही, क्योंकि ये गौरीशंकर की चोटी अथवा चन्द्रलोक के समान स्थूल नहीं है, जोकि कल्पना मात्र से अथवा भौतिक विज्ञान के सहारे इन्हें कोई जान सके अथवा आर्ष ऋषियोंके समान गवेषणात्मक बुद्धि के द्वारा ज्ञान के नेत्रों से देख या समझ सके, अन्त पानातो बहुत दूर है। कारण यह कि ये गुणत्रय प्रथम तो सूक्ष्म हैं ही तिस पर फिर समस्त स्थूल पदार्थों में घुल-मिलकर अनेकों परिणामों में परिणित हो चुके हैं। ऐसी दशा में स्थूल दृष्टि से उनको पहिचान लेना असंभव नहीं तो दुरूह है कहना प्रमाद नहीं कहा जा सकता। वह इसलिये कि यावन्मात्र द्रव्यों और पदार्थों में रस, गुण, वीर्य, विपाक, और प्रभाव रूप पंचावस्था अनिवार्यतः विद्यमान होती है जोकि इन ही गुणत्रयों की तारतम्यतानुरूप, घुले हुये मिश्रणों के आधार पर अवलम्बित रहते हैं।

इसलिये प्रत्येक पदार्थ और द्रव्यों की प्रकृति तथा अवस्थाओं में भी स्वभावतः भिन्नत्व होना निश्चित हो जाता है। ऐसी स्थिति में जब कि खान-पान की वस्तुयें तक भी इनकी व्यापकता से अछूती नहीं बच पाई हैं, तब कैसे कहा जा सकता है कि कथित् गुणत्रयों की व्यापक तारतम्यता को सहज में जाना जा सकता है।

उदाहरण के लिये—यावन्मात्र जीवधारियों को समान रूप से तृप्ति प्रदान करने वाला जल है; वह उन भिन्न-भिन्न स्वभाव की प्रकृति वाले जीवधारियों के पीने पर उनके रस रक्तादि धातुओं में मिल-घुल जाता है और उन समस्त धातुओं को तृप्त करता हुआ उन जीवों की स्वाभाविकी प्रकृति वाले रक्त मांसादिकों के रस, गुण, वीर्य, विपाकादि अवस्थाओं के साथ उन्हीं प्रकार के रस, गुण वाला बन जाता है। यही नहीं उनके भिन्नत्व-पूर्ण मलमूत्रों में भी उन जीवों की प्रकृत्यनुकूल प्रत्यक्ष जानने समझने में आने वाले रसगुणों के साथ तद्रूप हो जाता है और जानने समझने का विषय नहीं रह जाता। यथा—मृगमद।

नीम, नीबू और गन्ने का परिपोषण समान रूप से, जल और पृथ्वी के द्वारा उन्हें प्राप्त होने वाले पोषणीय खाद्य तत्वों से होता है। उक्त खाद्य तत्वों में गुणत्रयों के भिन्न-भिन्न मात्राओं वाले अंशांशों का तारतम्यतारूप मिश्रण का होना अनिवार्य रहता है। आप देखेंगे कि जल और खाद के तत्व एकदम नीम, नीबू और गन्ने के रसगुण वाले स्वरूप में बदल गयी उनकी इस प्रकार वाली एकता जानने में परेकी हो गई। जल और पृथ्वीतत्व नीम, नीबू, गन्ना इनके तद्रूप और तद्गुण वाले बन गये। वायु और आकाश के गुणों की आधिक्यता प्राप्त कर नीम का रस कड़वा, रूक्ष, वात बढाने वाला, पृथ्वी और अग्नि के गुणों की आधिक्यता प्राप्त कर नीबू का रस (खट्टा) अम्ल, पित्त बढाने वाला, पृथ्वी और जल के गुणों की उत्कृष्टता प्राप्त कर गन्ने का रस मधुर (मीठा) कफ बढाने वाला प्रत्यक्ष में अनुभव से दिखाई देने लगा। जल और खाद के तत्वों का कहीं पता भी नहीं लगता। यदि कुछ पता लगता है तो यह इतना ही कि क्रमशः एक रजोगुण की, दूसरा सतोगुण की, तीसरा तमोगुण की प्रधानता से अनुस्युत हैं, तो भी यह जानना तो फिर भी असंभव सा बना रह गया कि वह प्रधानता कितने मिश्रितांश की मात्रा वाली है फिर भी—

वृक्षत्रयों के रस सेवन करने वाले मानवों के रक्तादि धातुओं में मिल कहीं क्षय हुई धातुओं को पूरण कर रहे हैं, कहीं वातादि धातुओं में वृद्धि कर उनका साम्यत्व नष्ट कर उनमें विषमता ला रहे हैं, अर्थात् कहीं व्याधि का हरण कर रहे हैं, कहीं व्याधियों को उत्पन्न करने का उपक्रम आरम्भ कर रहे हैं। तात्पर्य कहने का यह कि "गुणाय उक्ता द्रव्येषु शरीरेष्वपि ते तथा।" स्थान वृद्धि क्षया स्तस्माद्देहिनां द्रव्य हेतुकाः (सु० सू० स्था० अ० ४२ सू० २०) अपने रूक्ष उष्णादि गुणों के उत्कर्ष और अपकर्ष के द्वारा मानवी शरीर में विद्यमान रहने वाले उन्हीं गुणों की कहीं वृद्धि कर रहे हैं और कहीं ह्रास।

अब एक सर्प को गोदुग्ध नित्य पिलाकर उसका पोषण करके देखिये। और उस पर विचार भी करिये। पता लगेगा कि दूध का अमृतमय गुण और उसका स्वाद, वीर्य

सर्प विष के साथ मिलकर विष के गुण धर्मों वाला बन गया। उसके दूधपने का नाम, रूप, उपादानीय घटकों और लक्षणादिकों का कहीं पता भी नहीं रह गया। यदि वह सर्प किसी शरीरधारी को दंश कर ले तो, उस शरीरधारी में दूध का प्रभाव नहीं अपितु दोषाधिक्यता के सम्बन्ध वाले सर्प विषका प्रभाव हुआ ही दिखाई देगा। एवं उस विषमें जिन दोषों की प्रधानता होगी वैसे विषैले विषधरों के विषों में उन्हीं दोषों के लक्षण उस शरीरधारी में प्रगट होते दिखाई देंगे और उसके प्राणों को हर लेंगे। (शेष आगामी अंक में)

मधुर ज्वर में सन्निपात की सफल चिकित्सा

लेखक—वैद्यराज रमेशचन्द्र शर्मा, अजमेर

रोगी का नाम—नरेशचन्द्र भार्गव, आयु १३ वर्ष

ता० २-११-५३ को दोपहर में ३ बजे इस रोगी के अभिभावक आए और दिखाने ले गए, उस समय रोगी को ज्वर १०४ था कुछ बड़-बड़ा रहा था। नाड़ी तेज़ थी, गति ११५ थी, पैरों को इधर उधर फैंकता था, ओढाए हुए वस्त्र को फैंकता था। नब्ज से वायु बढ़ी प्रतीत हो रही थी। ज्वर ६ दिन पहले मामूली ठंड लग कर चढ़ा था, जो उतरा नहीं था। १ या १/२ डिग्री कम हो जाता था, स्वेद नहीं आता था। कब्जी थी। जीभ मैली सफेदी लिए थी, हाथों से मधुर ज्वर में आने वाली गंध थी। अंधेरा होने से दाने नहीं देख सका पर स्पर्श से गले पर प्रतीत हुए इन सब लक्षणों से मधुर ज्वर ही निश्चय किया, साथ में सन्निपात के लक्षण स्पष्ट थे। रोगी के पिता स्थानीय एक बीमा कंपनी में कार्य करते हैं। उस कंपनी के दो डाक्टर भी देख गए थे, तथा अन्य हितचिन्तकों ने रोगी को क्लोरोमाईसिटीन नामक प्रख्यात दवा आरम्भ करने की जोरदार सम्मति दी थी पर रोगी के पिता आयुर्वेदिक चिकित्सा के पक्ष में थे, इसलिए मुझे दवा शुरू करने को कहा; मैंने उसी समय

बृहत कस्तूरी भैरव रस २ रत्ती,
संजीवनी वटी ६ गोली,
फात्जहर २ रत्ती,
दरियाई नारियल ३ रत्ती,
लूंग चूर्ण ३ रत्ती,
मात्र ३
ग्रन्थ्यादि क्वाथ ३ तोला,

पीपला मूल, इन्द्र यव, देवदारु, चित्रक, बाय विडंग भांड़गी, जल भांगरा, सूंठ, मिर्च, पीपल, कायफल, पोखर मूल, हरड़ की छाल, चिरायता, कटेली द्वय, बालछड, रास्ना, बच, चव्य, अडूसा, अजवान, भैंसा गूगल समभाग,

बालछड़ ६ माशा,
ब्राह्मी ६ माशा,
शंखावली ६ माशा,
मात्रा ३

यह दवाएं दी। क्वाथ को १ पाव जल में औंटा कर २ छटांक भर शेष रख

छान कर बृ० कस्तूरी भैरव आदि की १ पुड़िया उस में मिला कर ४-४ घंटे से देने को कहा।

पथ्य-जब से ज्वर हुआ पहले तो दलिया, बिस्कुट, दाल, दूध देते थे, पर गत दो दिन से केवल चाय दूध दे रहे थे, मैंने पथ्य में केवल मुनक्का का पानी तथा हलकी चाय ही रक्खी दूध भी बन्द कर दिया।

इस दवा से रोगी को कोई लाभ नहीं हुआ रात भर नींद नहीं आयी। बड़-बड़ा-हट तथा हाथ पैर फेंकना जारी था। प्रातः ७ बजे ता० ४-११-५३ को मैं देखने गया तब वही हाल था। रोगी को होश बहुत कम था। दस्त गत ३ दिन से नहीं आई थी। पेशाब रात भर में नहीं हुआ था, क्वाथ में गोखरु प्रति मात्रा २-२ माशा और बढ़ा दिया। और वही दवा पुनः ३ मात्रा ४-४ घंटे से देने को कह आया। शाम को ५ बजे मुझे पुनः बुलाया गया। उस समय ४ आदमी रोगी को रोके बैठे थे, रोगी उठ उठ कर भागने की चेष्टा में था, प्रलाप विशेष कर रहा था। दस्त नहीं हुआ था, पेशाब एक दफे बिस्तर में ही किया था। होश बिलकुल नहीं था, ज्वर १०३ था, हालत चिन्ताजनक देख कर दवा में परिवर्तन उचित समझा और निम्न औषधियां दीः—

प्रलापे-तगरादि क्वाथ १ तोला, बाल छड़ ३ माशा, मात्रा १, ऐंसी ३ मात्रा।

बृहत कस्तूरी भैरव १ टिकिया १।। रत्ती की, ऐसी ३ टिकिया। कस्तूर्यादि वटी ३ गोली, ३।।-३।। रत्ती की, मात्रा ३।

कस्तूर्यादि वटी योग

कस्तूरी ४ रत्ती, बरास १ माशा, हींग भुनी हुई १ माशा, अफीम शुद्ध १ माशा, खुरासानी अजवायन ४ माशा सब को मिला कर करीब ३।। रत्ती की गोली बनवा ली गईं।

क्वाथ की १ पुड़ी पूर्ववत औंटा कर १ टिकिया बृहत कस्तूरी भैरव और एक गोली कस्तूर्यादि वटी के साथ ४-४ घंटे से एक एक मात्रा देने को कहा गया, सायंकाल ५ बजे पहली मात्रा दी गई, रोगी होश में नहीं था। दवा जबरदस्ती दी गई, क्वाथ की आधी मात्रा उलट दी और गोली का कुछ हिस्सा भी बाहर आ गया। क्योंकि पहले दफे गोली क्वाथ में मिला कर दी गई थी। रात्रि में १२ बजे फिर दूसरी मात्रा दी तब क्वाथ अलग और गोलिऐं पानी के साथ साबुत ही गले में डाल कर ऊपर से जल डाल दिया गया—इस मात्रा के पहुंचने के बाद ४ घंटे रोगी को कुछ शान्ति रही हाथ पैर फेंकना बकना उठना रुपये में ।।) कम रहा।

ता० ५-११-५३ को प्रातः ३।। बजे और यही मात्रा दी गई। मैं ७।। बजे देखने गया, उस समय रोगी पैर तो कभी कभी पटकता था पर बोलना बन्द था, अगली मात्रा

१२ बजे दी गई तब कस्तूर्यादि वटी नहीं दी, इसके स्थान पर महावात विध्वंस रस १ गोली दी गई, यह योग रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड का है। सायंकाल ४ बजे में पुनः देखने गया हालत कुछ ठीक थी, बोलना बन्द था। पैर पटकना कम था। उठना बन्द था। रात्रि में ७ बजे पुनः क्वाथ, बृ० कस्तूरी भैरव, महावात विध्वंस १-१ गोली देने को कह आया। और प्रलाप विशेष हो तो कस्तूर्यादि वटी १ गोली देने को कह दिया। रात्रि में १२ बजे फिर क्वाथ आदि दिया, पर कस्तूर्यादि वटी नहीं दी गई।

ता० ६-११-५३ को प्रातः ७ बजे मैंने देखा ज्वर १०१ था, बकना उठना बन्द था। पैर थोड़ा पटकता था, पेशाब रात में एक दफे आया था। दस्त नहीं आया, दवा क्वाथ तथा बृ० कस्तूरी भैरव, महावात विध्वंस १ गोली दी गई, तथा प्रातः ६ बजे २ औंस ग्लीसरीन पिचकारी द्वारा दिया गया, इस से बदबूदार मल, काला, गांठे आईं, पेशाब खुल कर आया, पर रोगी का ज्वर ९९ हो गया। स्वेद आने लगे। उस हालत में दवाउलमिष्क २ माशा गर्म चाय में मिला कर पिलाई गई इससे ज्वर डेढ़ हो गया, स्वेद भी बन्द हो गया। दिन में १ बजे पुनः क्वाथ तथा गोली दी गई। सायंकाल ५ बजे मैंने देखा सन्निपात रुपये में ।।।) मिट चुका था, यही दवा देने को कह आया।

ता० ७-११-५३ को प्रातः रोगी शान्ति से पड़ा था पैर कभी कभी पटकता था। कभी कभी १-२ बात बेमतलब की कर देता, पर पुकारने पर जवाब देता था। कमजोरी विशेष प्रतीत हुई, ज्वर १०० था। क्वाथ तथा गोली पुनः दी गई, और १ घंटे बाद जवाहर मोहरा १ रत्ती, खमीरा गावज़बान ६ माशे दिलवाया। दिन में २ बजे पुनः क्वाथ तथा गोली दी गई, सायंकाल ७ बजे फिर यही मात्रा दी गई। दिन भर रोगी चुप रहा।

ता० ८-११-५३ पूर्ववत् क्वाथ गोली दी गई दिन में ३ दफे। रोगी चुप रहा, पैर कभी पटकता था। ज्वर प्रातः १०१, दुपहर में १०१, रात्रि में आधी डिग्री बढ़ा। रात्रि में रोगी ३ घंटे सोया। शेष रात्रि में बेचेनी रही।

ता० ९-११-५३—दवा पूर्ववत्। अवस्था पूर्ववत्। कोई नई बात नहीं।

ता० १०-११-५३ प्रातः ७।। बजे देखा, रोगी पूरे होश में था, चुप चाप सो रहा था। पैर पटकना आदि कोई उपद्रव नहीं थे, ज्वर १०० था, सन्निपात पूर्णरूपेण हट चुका था। रोगी खाने को मांगता रहा। पथ्य में दूध, चाय, मुनक्का ओवलटीन बताया गया, दवा निम्न प्रकार शुरू की गई:—

नागरादि पाचन क्वाथ	१ तोला,
दशमूल क्वाथ	६ माशा,
गोखरू	२ माशा,
	मात्रा १

साथ में संजीवनी वटी २ गोली,
फात्जहर 1/2 रत्ती,
जवाहर मोहरा 1/2 रत्ती,
श्रृंग भस्म २ रत्ती,
प्रवाल भस्म १ रत्ती,
लूंग चूर्ण १ रत्ती,
मात्रा १

खांसी सूखी थी इसके लिए,

लउक सपिस्ता १।। तोला,
सफूफ शकरतगार १।। माशा,
चन्द्रामृत रस ६ रत्ती,
टंकण शुद्ध ६ रत्ती,
कपूर ४ रत्ती,

मिला कर दिया गया, थोड़ा थोड़ा बार बार चटाने को कहा।

इसके बाद करीब ५ दिन तक उपरोक्त क्वाथ चूर्ण तथा चाटने की दवा दी गई, उस से ज्वर उतर गया, खांसी बहुत कम रह गई तब ता० १६-११-५३ को क्वाथ बन्द कर दिया। चूर्ण के स्थान पर

नवजीवन रस १ रत्ती,
अमृता सत्व १ रत्ती,
पीपल ६४पु० १ रत्ती,
सितोपलादि चूर्ण १ माशा,
मात्रा १
ऐसी २ मात्रा

तथा प्रातः सायं खमीरा मखारीदी (मोती) ६-६ माशे के साथ देना आरम्भ किया गया। ता० २२-११-५३ को मूँग की दाल का यूष ३ तोला पंचकोल डाल कर दिया गया। पथ्य के बाद शंखवटी १-१ गोली, द्राक्षासव १।।-१।। तो० समान भाग जल के साथ देते हुए शनै शनैः सामान्य भोजन पर ले आया गया। २-१२-५३ को दवा बन्द कर दी।

निदान-पंचक

ले०—कविराज श्री धीरेन्द्र मोहन भट्ट शास्त्री, G.A.M.S. (Pat), आयुर्वेदाचार्य

खेद के साथ लिखना पड़ता है कि वर्तमानकालीन आयुर्वेद के विद्यार्थी पंचनिदान के समझने में इतना समय देना नहीं चाहते जितना देना आवश्यक है। जिसका नतीजा यह होता है कि छात्र जीवन के बाद सार्वजनिक जीवन (चिकित्सा के मैदान) में आने पर उन्हें 'किकर्त्तव्य विमूढ' होना पड़ता है। आश्चर्य तो तब होता है जब कि आधुनिक सरकारी आयुर्वेद महाविद्यालयों की पाठ्य नियमावलि में इसका उचित स्थान नहीं पाया जाता। नीचे के लेख में निदान-पंचक पर विभिन्न विद्वानों की राय देखने को मिलेगी।

निदान-पंचक के लक्षण का सामान्य विवेचन करते हुये विजय रक्षित ने लिखा है—"निदानमितिकरणेल्यूट; तेनव्याधिनिश्चयकरणं निदानम् इति निदानादि पंचसामान्यलक्षणम्"। महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन जी ने सिद्धांत निदान की टिप्पणी में इस मत का विरोध करते हुये लिखा है—विज्ञान शब्द के भाव में ल्यूट हुआ है न कि करण में। अतः निदानादि ज्ञान के विषय हैं न कि ज्ञान के साधन। जैसा कि मधुकोषकार ने स्वयं लिखा है—"व्याधेर्ज्ञातिव्यस्य पंच ज्ञानोपाया भवन्तीति।" इसके पक्ष में उन्होंने दो कारण दिये हैं जिसमें पहला आर्षमत विरोध और दूसरा युक्ति विरोध है। इस विषय पर चरक और सुश्रुत का निम्नाशय सामने है—

"षड्विधो हि रोगाणां विज्ञानोपायः,
तद्यथा—पंचभिः श्रोत्रादिभिः प्रश्नेन चेति॥" (सु०सू०अ० १०)

"त्रिविधं खलु रोगविशेषविज्ञानम् भवति तद्यथा-आप्तोपदेशः प्रत्यक्षमनुमानञ्चेति। प्रत्यक्षतस्तु खलु रोगतत्वं वुभुत्सः सर्वैरिन्द्रियैः सर्वानिन्द्रियार्थान् आतुरशरीरगतान् परीक्षेतान्यत्र रसज्ञानात्॥" (च० वि० अ० ४)

ऊपर के वाक्यों में यह दर्शाया गया है कि षड्विध एवं त्रिविध प्रमाण ही रोग ज्ञान के उपाय हैं न कि निदान पंचक। वस्तुतः देखा जाय तो यह मालूम होगा कि महर्षि चरक एवं सुश्रुत के शब्दों में रोगी परीक्षा के साधन का उल्लेख किया गया है न कि रोग परीक्षा के। जैसा कि प्रसंग पर ध्यान देने से साफ मालूम होता है और रोगी परीक्षा तथा रोग परीक्षा के साधनों का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया गया है—

"दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेताय रोगिणम्।
रोगं निदानप्रागरूप लक्षणोपशयादिभिः॥"

इन प्रमाणों से यह साफ होता है कि उपर्युक्त साधन रोगी परीक्षा के ही बतलाये गये हैं न कि रोग परीक्षा के। वस्तुतः सुश्रुत और चरक में वर्णित षड्विध और त्रिविध रोग ज्ञान के साधन में कोई विभिन्नता नहीं है, प्रत्युत यह दोनों प्रकार के साधन रोग ज्ञान के लिये आवश्यक हैं। जैसे सबसे पहले धूम का प्रत्यक्ष के द्वारा ग्रहण होता है उसी तरह रोगज्ञान में भी प्रथम षड्विध और त्रिविध साधनों के द्वारा निदान पंचक रूप लिङ्ग का ज्ञान होता है और उसके बाद व्याधिरूप लिंगी का बोध होता है। इस तरह निदान पंचक की व्याधि ज्ञान साधनता स्पष्ट रूप से सिद्ध होती है, जिसे आर्षमत की अनुकूलता भी प्राप्त है। निदान पंचक की ज्ञान साधनता का निर्देश महर्षि चरक ने निम्न शब्दों में किया है—

"तस्योपलब्धिः निदानपूर्वरूपलिंगोपशयसम्प्राप्तितः।"

अर्थात् व्याधि का ज्ञान निदान, पूर्वरूप, उपशय, सम्प्राप्ति के द्वारा होता है। अतः इसमें स्पष्टतः व्याधि बोध्य तथा निदान पंचक बोधक स्वीकार किये गये हैं। चक्रपाणि ने भी लिखा है— "अविज्ञाते हि व्याधौ चिकित्सा न प्रवर्त्तते।
अतः सामान्येन व्याधि ज्ञानोपाय निदान पंचकाभिधानम् ॥"

इस शब्द के द्वारा यहां पर भी निदान पंचक व्याधि ज्ञान के ही उपाय बतलाये गये हैं। 'युक्ति विरोधात् च' ऐसा कह कर उन्होंने दूसरा कारण युक्ति विरोध दिया है। इस प्रसंग में यह दिखाया गया है कि व्यापारवान कारण को करण कहते हैं। जब कि निदानादि कोई व्यापार नहीं है। अतः यह युक्ति भी असंगत प्रतीत होती हैं। निदान में रोगोत्यादकत्व रूप, पूर्व रूप तथा उपशय और सम्प्राप्ति उत्पन्नान उत्पन्न व्याधि बोधकत्व रूप व्यापार अवश्य प्रतीत होते हैं। वैय्याकरणों ने करण की व्याख्या निम्नलिखित रूप में की है— "क्रियायाः फल निष्पत्तिः यद् व्यापारात् अनन्तरम्।
पिवक्षेते यदा यत्र करणम् तत् तदा स्मृतम् ॥"

अर्थात् जिसके व्यापार के अनन्तर क्रिया की फल निष्पत्ति हो उसे करण कहते हैं। इसके अनुसार पंचनिदान के बोधकत्व रूप व्यापार के अनन्तरीय रोग ज्ञानरूप क्रिया की फल निरूपति होती है। अतः पंच निदानादि व्याधि ज्ञान के कारण हैं। इसके पश्चात वह लिखते हैं यदि यह कहा जाय कि लिंग ज्ञान से लिंगी का बोध होता है तो वह भी युक्ति संगत नहीं है। यथा वह्नि का लिंग धूम वह्नि ज्ञान के प्रति करण नहीं है प्रत्युत व्याधि ज्ञान ही करण है। जैसा कि तार्किकों का कथन है "व्यापारस्तु परामर्शः करणम् व्याप्तिधीर्भवेत्। अनुमतां ज्ञायमानम् लिंगंतु करणम् न ही ॥" (का०व०अनुमान खण्ड श्लो० १)

व्याख्या के लिये इस विषय को अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता है। अतः 'पर्वतो वह्निमान् धूमवत्वात्' इस तरह के अनुमान में सर्वप्रथम पक्ष में धूम का प्रत्यक्ष के द्वारा ग्रहण होता है और पूर्व अनुभवजना व्याप्ति का स्मरण होता है। उसके पश्चात् "वह्नि व्याप्त धूमवान् अयम् पर्वतः" यह परामर्श होता है और इससे अनुमीति होती है। इसी प्रकार "ज्वरवान् पुरुषः एवं निदानवत्वात्" इस तरह के अनुमान ज्ञान में ज्वर के निदान पंचक का त्रिविध या षड्विध साधनों से प्रत्यक्ष होने पर उससे "यत्र यत्र एवम् निदानम् तत्र तत्र ज्वरः" इस व्याप्ति का स्मरण होता है और इस प्रकार "एवं निदान व्याप्य ज्वरवान् अयम् पुरुषः" यह परामर्श होता है और अंत में अनुमीति होती है। इस प्रक्रिया में धूमरूप लिंग से सर्वप्रथम वह्निरूप लिंगी का बोध होता है और इसीलिये "धूम व्याप्यो वह्निः" (इस व्याप्ति का स्मरण होता है) और इस व्याप्ति के द्वारा परामर्श होता है फलस्वरूप अनुमीति होती है। 'व्यापारस्तु परामर्शः' इसका अर्थ यह है कि गृह्यमान लिंग अनुमान ज्ञान में करण नहीं है। किंतु इसका अभिप्राय यह भी नहीं कि लिंग से लिंगी का ज्ञान नहीं होता। वस्तुतः गृह्यमान लिंग से लिंगी का ही बोध होता है पश्चात् दोनों के नियत साहचर्य भाव से ही साह्य की सत्ता का परिज्ञान होता है।

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर लिंग और लिंगी के साहचर्य भाव को ही व्याप्ति कहते हैं। इस लिये यद्यपि अनुमान ज्ञान में व्याप्ति करण है फिर भी लिंगी के ग्रहण में लिंग ही साधन होता है। इसी हेतु प्राचीन नैयायिकों ने अनुमीति को करण माना है। यथा—"व्याप्य......ज्ञायमानम् लिंगम् अनुमीति करणम्।"

नैयायिकों का कथन है कि अनुमीति में परामर्श मात्र हेतु नहीं है बल्कि लिंग का परामर्श है। अतःएव लिंग ही करण हो सकता है। मिमांसकों का भी यही मत है और इससे वे सहमत हैं। आधुनिक तार्किकों ने निम्न आधार पर इसका खण्डन किया है। इनका कहना है कि—"यदि अनुमीति को करण माना जाय तो अनागत या विनष्ट लिंग से करण के अभाव में अनुमीति नहीं हो सकेगी।" अस्तु, उन लोगों ने व्याप्ति विशिष्टि लिंग के पक्ष वृत्तित्व ज्ञान को ही अनुमीति का करण माना है। नवीन मतानुसार यद्यपि व्याप्ति अनुमीति का करण है तथापि लिंगी के ग्रहण के लिये लिंग की साधनता स्पष्ट है, लिंग ज्ञान के बिना व्याप्ति ज्ञान असम्भव है। अस्तु, व्याप्ति ज्ञान का आधार भी लिंग ज्ञान ही है और इस दृष्टि से लिंग ही अनुमीति का मूल है। 'व्यक्ति विवेक' के रचियता तार्किक शिरोमणि महिम भट्ट ने इसी प्रकार लिंग की प्रधानता देते हुए अनुमान का लक्षण लिखा है। यथा—"पक्ष सत्व सपक्ष सत्व विपक्षव्यावृत्तत्व विशेषात्।

लिंगात् लिंगिनो ज्ञानम् अनुमानम् ॥"

अर्थात्—विशिष्ट लिंग से लिंगी का ज्ञान ही अनुमान कहलाता है। इससे भी लिंग की करणता स्पष्ट है। पाश्चात्य तर्क शास्त्र ने भी लिंग की साधनता एवम् उसकी महत्ता को स्वीकार किया है; जो निम्न वाक्यों से प्रयुक्त है।

अर्थात्—लिंग के कार्य का अवलोकन अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि पक्ष और साध्यका पारस्परिक सम्बन्ध लिंग की सहायता से ही हो सकता है। इस तरह पाश्चात्य तर्क शास्त्रियों ने भी लिंग की करणता का ही समर्थन किया है। स्वयं कविराज जी की भी इसी युक्ति में अभिरुचि प्रतीत होती है जैसा कि उन्होंनें स्पष्ट किया है—"न च निदानादिनाम् सर्वेषाम् लिंगत्वमऽपि निदानादि पञ्चकान्तर्भूतानां सम्प्राप्ति व्याप्ति लिंग भावात् ॥"

(सिद्धान्त निदान)

अतः कविराज जी का यह कथन है कि—"धूम वह्नि ज्ञान के प्रतिकरण नहीं है" कहां तक युक्तियुक्त है ? या भ्रम वद्ध है ? यह निर्णय विद्वद् मण्डली को करना है।

उन पुस्तकों एवं विद्वानों की सूची जिन से लेख में सहायता ली गई है—चरक, सुश्रुत, माधव निदान, सिद्धान्त निदान, कारिकावलि व्याकरण, आदि पुस्तकों के अतिरिक्त मिमांसक, तार्किक, नैयायिकों के मतों को भी दिया गया है। इस लेख के तैयार करने में सबसे मुख्य सहायता प्रातः स्मरणीय पूज्य गुरुवर साहित्यायुर्वेदाचार्य श्री पं० प्रियव्रत शर्मा एम०ए० (द्वय), ए०एम०एस द्वारा तृतीय वर्ष में 'निदान पंचक' पर कराये गये नोट से ली गई है।

आयुर्वेद विद्वत् परिषद्, बम्बई

भिषगाचार्य श्री भी० वी० डेग्वेकर का अध्यक्षीय भाषण

(गत फरवरी अंक पृष्ठ ६६ से आगे)

रजिस्ट्रेशन

(१) इस पाठ्यक्रम के अनुसार उत्तीर्ण विद्यार्थी आयुर्वेदीय व्यवसाय कर सकेंगे, यह सुविधा उन्हें सरकार द्वारा दी गयी है, परंतु उनका रजिस्ट्रेशन अथवा एन्लिस्टमेन्ट न हो सकेगा, ऐसा क्यों ? जिस आयुर्वेदशास्त्र संबंधी ये ज्ञान संपादन करते हैं उसमें इनका रजिस्ट्रेशन होने में कौनसी बाधा होती है ? इन वैद्यों का एक अलग रजिस्टर खोल कर, 'शुद्ध आयुर्वेदिक वैद्य' अथवा अन्य इसी अर्थ को द्योतित करनेवाला हेडिंग दे कर, उस प्रकार का इनका रजिस्ट्रेशन किया जाय, परन्तु **उसे सरकार की मान्यता है** यह बात तो जनता को अवश्य विज्ञात करानी होगी, **नहीं तो यह समग्र प्रयत्न निष्फल होगा,** जिस प्रकार सरकार डेंटिस्ट को, आप्थेलिमस्ट को मान्यता देती है---अब तो होमियापेथ भी रजिस्टर होंगे---उसी प्रकार इन्हें भी मान्यता अवश्य होनी चाहिये, इस विषय में सरकार की विचारधारा निश्चित कराये बिना हम लोग एक कदम भी आगे न बढ़ सकेंगे, और जिस पाठ्यक्रम के लिये आज सरकार को हम कोटिशः धन्यवाद देते हैं, **उनके संचालन में हमें तनिक भी उत्साह न रहेगा-** सर्वसाधारण जनता सरकार की मान्यता को ही अत्यधिक महत्व देती है, और वह योग्य भी है, उसके अभाव में सर्व प्रयत्न व्यर्थ होगा, अतएव प्रधानमंत्री तथा स्वास्थ्यमंत्री जी को हमारी विनम्र प्रार्थना है कि इस संबंध में अपनी नीति का शीघ्रातिशीघ्र निर्धारण करें, और उसे प्रसिद्ध करें ।

औषधि-करण की सुविधा

(२) उपरिनिर्दिष्ट रजिस्ट्रेशन होने लगते ही, इन वैद्यों को आसवारिष्ट बनाने की, तथा अफीम, गांजा, भांग इत्यादि एक्साइज ड्यूटीवाले द्रव्य प्राप्त करने की व उपयोग में लाने की सुविधा हो सकेगी, इन द्रव्यों के अभाव में वैद्यक व्यवसाय चल नहीं सकता, शुद्धायुर्वेदीय वैद्यको अपने औषधालय में हर एक प्रकारकी औषधियां बनानी पड़ती हैं, प्राचीन परंपरा में स्वावलंबन का बड़ा महत्व है । औषधि बनानेवाला व्यक्ति एक, और काम में लानेवाला दूसरा, यह परावलंबन प्राचीन परंपरा को मान्य नहीं है । नात्मार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयांप्रति' यह आयुर्वेद का ध्येय है । यह भूतदया तब ही सफल होती है जब औषधि अपनी बनाई हुई अर्थात् निश्चित द्रव्ययुक्त हो । व्यवसायी लोग स्वार्थ की ओर अधिक ध्यान देंगे यह स्वाभाविक है । उन पर सरकार का नियंत्रण जब तक नहीं है तब तक केवल उनके सुबुद्धि पर ही जनता और वैद्यों को अवलंबित रहना

पड़ता है। यह बुद्धि कब भ्रष्ट होगी इसका कोई नियम नहीं है, जैसा कि अभी सरकार को कलकत्ते के कई ऐलोपैथिक कारखानेदारों के संबंध में अनुभव में आया है। अतएव यह आसवारिष्ट बनाने की और अफीम आदि विषोपविष पर्याप्त मात्रा में रखने की सुविधा इन शुद्धायुर्वेदीय वैद्यों को अवश्यमेव प्राप्त होनी चाहिये।

वैद्यक विषयक प्रमाणपत्र की मान्यता

(३) शुद्धायुर्वेदीय वैद्यों का **केवल चिकित्साविषयक प्रमाणपत्र भी** सरकार मान्य होना चाहिये। ऐसा न होगा तो उससे चिकित्सा कराने के लिये कोई भी सरकारी या जनपद, कार्पोरेशन आदि संस्थाओं में कर्मचारी तैयार न होंगे। देहातों में भी इन संस्थाओं का संबंध रहता है। अतः इस सुविधा की नितांत आवश्यकता है। प्रदीर्घ काल रहने वाले (क्रांनिक) व्याधिओं में आयुर्वेदीय चिकित्सा अत्यंत लाभदायक होती है, इस बात का विश्वास सर्व सुशिक्षित लोगों में अस्तित्व में है। सुशिक्षितों को ही दीर्घ व्याधि अधिक प्रमाण में होती हैं, ऐसा अनुभव है। ऐसे दीर्घ व्याधियों में प्रमाणपत्र की अधिक आवश्यकता होती है। यदि यह सुविधा शुद्धायुर्वेदीय वैद्यों को प्राप्त न हो सकी तो जनता एवं वैद्य दोनों को हानिकारक होगी। अतएव इन वैद्यों के इस संबंध के प्रमाणपत्र अवश्य मान्य किये जाने चाहिएं।

शुद्ध पाठ्यक्रम का सातत्य कैसे टिकेगा ?

(४) जनतंत्र राज्य में एक शासनसंस्था के हाथ में सब सत्ता रहती है, तथा एक प्रकार के विचार वाले मंत्रियों के विचारानुसार कार्य चलता है। उन मंत्रियों के प्रारंभ किये हुए कार्यों को परिवर्तित मंत्री भी बहुधा चलाते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध का कोई निश्चय नहीं होता। श्री गिल्डर मंत्री महोदय के कार्यकाल में मिश्र शिक्षण का अधिष्ठान जमाया गया। अनुभव से सिद्ध हुआ कि इस शिक्षण से आयुर्वेद का परिपोष तो दूर ही रहा, सर्वनाश अत्यन्त निकट भविष्य में होगा। अतएव अनुभव से सचेत होकर शुद्ध पाठ्यक्रम आज मान्य किया जा रहा है। यह एक बार का अनुभव पुनः परिवर्तन नहीं होने देगा, ऐसा हमें विश्वास है। परन्तु केवल उस विश्वास पर अवलंबित न रह कर यदि कोई ऐसो वैधानिक योजना हो सके, जिससे शुद्ध वैद्यों को मिली हुई यह सुविधा, सदैव के लिये कायम रहे तो वह योजना बड़ी ही उत्साहवर्धक होगी। दोनों प्रकार के पाठ्यक्रम, पालकों व विद्यार्थियों के सामने रहेंगे। जिसे जो स्वीकार करना हो वह किया जाय। परन्तु गुरुपरम्परा फिर से चालू हो रही है वह अबाधित रहे, उस में सरकार हस्तक्षेप न कर सके यही एक अभिलाषा है। इस सम्वन्ध में श्री मुरारजीभाई की मिनिस्ट्री विधान की किसी धारा की योजना कर सके, तो वैद्यसमाज पर बड़े ही उपकार होंगे। इस कार्य के लिये डेप्युटेशन की योजना करने की विनंति, अभ्यासक्रम समिति के अध्यक्ष महोदय से करता हूँ।

सरकारसे अनेक सुविधाओं की याचना

(५) इस शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम को सफल करने के लिये हमें सरकार से अनेक सुविधाओं की याचना करनी होगी। जिसमें सबसे बड़ी बात है रुग्णालयों की। हर एक सरकारी रुग्णालय में कुछ रुग्णशय्याएं केवल शुद्धायुर्वेदीय चिकित्सा के लिये अलग से निर्धारित की जानी चाहियें। इन पर स्थानीय शुद्धायुर्वेदीय चिकित्सातज्ञों का नियंत्रण रहे। विद्यार्थियों को, जो स्थानीय गुरु पढावेंगे, उन्हीं के नियंत्रण में ये शय्याएं रहें। उन रुग्णों के पथ्य की व्यवस्था गुरु व्यक्तियों के निर्देशानुसार की जाय। जिस प्रकार पंचकर्म, औषधियोजना, परिचर्यादि का लिखित निर्देश गुरु-वैद्य करें, उसी प्रकार परिचारक द्वारा वहां का कार्य संचालित हो। रुग्णों के पत्रक गुरु जिस प्रकार कहें, उसी प्रकार लिखे जायं। आवश्यक आयुर्वेदीय औषधियों का प्रबंध सरकार द्वारा किया जाय। अन्य आवश्यकताएं गुरु के आदेशानुसार पूर्ण की जावें, वहां के ऐलोपैथिक अधिकारी रुग्ण को देखें, अपने पत्रक अलग लिखें, रुग्ण की परिस्थिति में जो परिवर्तन होता जाय उसे इच्छानुसार अपने शास्त्र की भाषा में लिखें परन्तु चिकित्सा के क्रम में कोई भी गडवडी न करें। इस प्रकार सुविधा मिलने से चिकित्सक गुरु, अपने शिष्योंको प्रात्यक्षिक चिकित्सा का अनुभव दिला सकेगा। इसके अभाव में विद्यार्थियों को प्रात्यक्षिक शिक्षण की अभी अन्य कोई सुविधा दिखती नहीं है।

सर्जन जनरल का हस्तक्षेप वांछित नहीं

ऐसे रुग्णालय के अलग किये हुए विभागपर सर्जन जनरल का किसी भी प्रकारका हस्तक्षेप न हो सके, तथा चिकित्साविषयक आधिपत्य न रहे, इस बात की व्यवस्था मिनिस्टर द्वारा ही होनी चाहिये। चिकित्सा संबंधी सर्व जबाबदारी वैद्यों की ही होना आवश्यक है।

उत्तीर्ण विद्यार्थिओंका सरकारी संस्था में स्थान

(६) शुद्धायुर्वेद का शिक्षण संपादित किये हुए वैद्यों को सरकारी आयुर्वेदीय रुग्णालयों में, औषधालयों में तथा औषधि बनाने के कारखाने आदि संस्थाओं में अवश्य ही स्थान दिया जाना चाहिये। ऐसे औषधालयों में शुद्ध आयुर्वेदीय पाठों के अनुसार बनाई हुई औषधियां ही चिकित्सा कार्य में उपयोग में लाई जायं। व्रणशोधन, लेप, व्रणपूरण, बंध आदि सब व्रणोपचार सुश्रुतोक्त द्रव्यों द्वारा ही करायें जायं। ये सब द्रव्य स्थानीय जंगलों में सहज उपलब्ध हो सकते है। इस निर्बंध के कारण आयुर्वेद शास्त्रीय ज्ञान की भी उन्नति होगी और स्वल्प द्रव्य-व्यय करने से कार्य होने लगेगा। वनस्पतियों में जो अचिंत्य गुण हैं उनसे प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा, हम लाभ उठा सकेंगे। अतएव शहरों तथा ग्रामीण शुद्धायुर्वेदीय संस्थाओं में इसी पाठ्यक्रम में उत्तीर्ण वैद्यों की योजना की जानी चाहिये। आज तक परदेश से तैयार आये हुए मलहम, आईडोफार्म आदि व्रणपूरण करने के द्रव्यों तथा अन्य औषधियों

में, देश का करोड़ों रुपया परतंत्रावस्था में बरवाद हुआ। अब समय आया है कि स्वतंत्रता के काल में उनको बचा कर ऐसे अनुभवसिद्ध द्रव्य हम तैयार करें जिनको सस्ते कीमत में परदेश में भेज सकें। परदेश से द्रव्य का ओघ अपने देश के तरफ लौटाने का एक बड़ा भारी साधन यह भी हो सकता है।

सरकार द्वारा शुद्ध आयुर्वेदीय विद्यालय का प्रारंभ

(७) जिस उदात्त और अर्थपूर्ण विचारधारा का आश्रय लेकर बंबई सरकार ने इस शुद्धायुर्वेदीय पाठ्यक्रम को मान्यता देने का निश्चय किया है, उसीके फलस्वरूप एक शुद्धायुर्वेदीय विद्यालय भी सरकार द्वारा प्रारंभ किया जाना चाहिये। स्वतंत्र कार्य करने वाले गुरुजनों के लिये वह एक नमूना होगा तथा उस विद्यालय कार्य प्रणाली को आदर्शभूत मान कर शिक्षा देनेका कार्य इन्हें भी करते बनेगा। इस विद्यालय से दूसरा लाभ यह होगा कि शुद्धायुर्वेद के संबंध में जनता की भी रुचि दिन प्रतिदिन वृद्धिगत होगी। जनता सदैव ही राजशासन की ओर अपनी दृष्टि लगाये रहती है। 'राजा बोले दल हाले' वह उक्ति अक्षरशः सत्य है। शासन संस्था के संबंध में जनता का इतना आदर रहता है कि उससे किया हुआ कार्य मानो ईश्वर का ही कार्य है, ऐसा समझा जाता है। बंबई सरकार के शुद्धायुर्वेद को मान्यता देते ही सारे हिन्दुस्थान में मानो झंझावात के समान हलचल मच गई है। कई मिश्र शिक्षण देनेवाली संस्थाओं को यह कुठाराघात सा प्रतीत हो कर, कृष्ण के जन्म से पूर्व ही जिस प्रकार कंस को दुःस्वप्नों ने ग्रस्त कर लिया था, उसी प्रकार इन्हें अपना अस्तित्व ही नष्ट हो जाने का डर प्रतीत होने लगा है। परन्तु इतना व्यथित होने का कोई कारण नहीं है। जनता के सामने ऐलोपेथी तथा मिश्र शिक्षण की संस्थाएं कई वर्षों से अपना कार्य कर रही हैं। सरकार ने उन दोनों को शक्त्यनुसार हर प्रकार की मदद दी हुई है। मिश्रशिक्षा का अनुभव निदान गत २५ वर्ष से सरकार ले रही है। उससे उत्तीर्ण विद्यार्थी किस पेथी का अवलंबन करते हैं यह भी सरकार जानती है। ऐसी अवस्था में शुद्धायुर्वेद को भी, अधिक नहीं तो निदान मिश्रशिक्षण प्राप्त संस्थाओं के बराबर मदत करना सरकार का क्या कर्तव्य नहीं होता? सब पहिलवानों को बराबर खुराक खिलाने के पश्चात् उन्हें मैदान में युद्ध के लिये खडा करना चाहिये। यही समान दृष्टि सरकार की होनी चाहिये। वही अपना कर्तव्य शासनसंस्था करते हुए, उस संबंध में उसे धन्यवाद देना तो एक तरफ रहा, शुद्ध शिक्षणप्रणाली को शाप देना तथा सरकार पर दोषारोपण करना असभ्यता का अतिरेक करना है। अस्तु।

सरकारसे हमारी विनंति

हमारी सरकार से विनंति यही है कि जिस प्रकार बम्बई तथा अन्य स्थानों में अपने खर्चे से अनेक मिश्र शिक्षण के विद्यालय सरकार चला रही है; तथा पूना नगर, सतारा आदि स्थानों के मिश्रशिक्षण देनेवाले विद्यालयों को पर्याप्त ग्रांट दे रही है, उसी प्रकार-नमूने के लिये केवल एक शुद्ध शिक्षण देनेवाला विद्यालय खोलकर उसका स्वयं

संचालन करे, जिससे प्रांत भर के गुरु उसे देखकर, उसी प्रकार का शिक्षण-क्रम घर-घर देने का प्रयत्न कर सकें, आवश्यकतानुसार इसी विद्यालय में एक छह महिने का ट्रेनिंग-कोर्स प्रारम्भ कर दिया जा सकेगा, जिससे शिक्षा की दिशा प्राप्त करते हुए समग्र प्रांत में एक ही पद्धति की शुद्ध शिक्षा की प्रणाली चालू हो सके।

एक ही नमूनें का तथा सर्वमान्य शिक्षण

नमूने के लिये एक उदाहरण पर्याप्त होगा। अष्टांगहृदय का प्रथम अध्याय पढ़ाना प्रारम्भ करते ही वातदोष के गुण 'तत्र रूक्षो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोनिलः।' ऐसे दिये हुये हैं। यहां सूक्ष्म शब्द का अर्थ सूक्ष्मः स्रोतः संचारि ऐसा टीकाकारों ने स्पष्ट दिया है। परन्तु, प्रकांड आधुनिक विद्वान् उसे 'अतींद्रिय' कह कर विद्यार्थियों के अन्तःकरण में संशयोच्छेद न करते हुये उस संशय को द्विगुणित करते हैं। यह उदाहरण पीछे भी दिया गया है। जब उपरिनिर्दिष्ट एक प्रकार के ट्रेनिंग विद्यालय में इन सब शंकाओं का निरास होकर, वह गुरु-समाज विद्यार्थियों को शिक्षण देगा तब सब शिक्षण एक ही नमूने का तथा सर्व-मान्य हो सकेगा। इस प्रकार के विद्यालय की आवश्यकता सिद्ध कराने वाले और भी अनेक कारण हैं, जिनका समयाभाव के कारण यहां उल्लेख नहीं किया जा रहा है, परन्तु विद्यालय की आवश्यकता अत्यन्त अधिक है। सरकार जब इस प्रकार का विद्यालय खोलेगी तब जनता को इस शुद्ध पाठ्यक्रम पर अधिक विश्वास होने लगेगा।

अन्य प्रांतों को इस पाठ्यक्रम से लाभ कैसे हो सके ?

(८) इस पाठ्यक्रम से अन्य प्रांतस्थ वैद्य भी अभी से लाभ उठा सकें, इसकी भी सुविधा सरकार द्वारा करा लेना आवश्यक है। यदि अन्य प्रांतों में इसी प्रकार का शुद्धायुर्वेदीय पाठ्यक्रम मान्य कराने का प्रयत्न किया जाय तो सम्भवतः उस प्रांतीय सरकार का उत्तर यही मिलेगा कि, बम्बई में इसका प्रचार कहां तक होता है, उसे वर्ष दो वर्ष देखकर, तत्पश्चात् तद्विषयक कानून यहां भी स्वीकृत किया जायगा। अतएव जिन अन्य प्रांतीय वैद्यों को इस प्रांत में नियुक्त की हुई वैद्यों की कमेटी योग्य समझे उन्हें भी 'योग्य' गुरुओं के रजिस्टर में अन्तर्भूत कर सके ऐसी कानून की धारा बन जाना आवश्यक है। मैं एक परप्रांतस्थ वैद्य हूं। परन्तु आपके अनन्य प्रेम के कारण इस प्रान्त के वैद्यक विषयक हरएक कार्य से मेरा घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। १९४७ में आपके प्रांत के तृतीय सम्मेलन का कार्यभार मुझे ही सौंपा गया था। उस समय के भाषण को यदि आप पढ़ें, तो देखेंगे कि जिस प्रकार का शिक्षणक्रम आपकी सरकार ने आज स्वीकृत किया है वही मैंने निर्दिष्ट किया था। ३० वर्ष से गुरुपरंपरा के अनुसार कई विद्यार्थियों को अपने घर रख कर यह विद्या पढ़ाई है और अभी भी पढ़ा रहा हूं। विद्यापीठ की परीक्षाएं दिलाता हूं। प्रतिदिन प्रातःकाल ६ बजे से दो घंटे मेरा यह पढ़ाने का कार्यक्रम चलता है। मैं इस प्रांत का सेवक हूं और अन्तःकरण से चाहता हूं कि मेरे विद्यार्थियों को इस शुद्ध पाठ्यक्रम की परीक्षाओं में उत्तीर्ण कराकर अपनी चिर वांछित

पिपासा तृप्त करने के सुख का अनुभव लूं। अब मेरे सामने 'कृतांतकटकामलध्वजजरा' दिखने लगी है। अतः यदि इस प्रकार की कानूनी कार्यवाही अभी की जा सके तो बड़ा ही उपकार अन्य प्रान्तों पर होगा।

परप्रांतस्थ वैद्यों को मान्यता मिलने पर नियमानुसार शिक्षण-संपादन करने वाले विद्यार्थी परीक्षार्ह समझे जाकर, उनकी परीक्षा इसी प्रांत में ली जावे।

शुद्ध आयुर्वेदरूपी अमृत का पान करने की अभिलाषा

बंधुओं, इस प्रकार शुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम यशस्वी होने के लिये, जो जो आवश्यक विचार मुझे सूझे वे आपके सामने रखे हैं। मैंने एक विस्तृत शुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम अपने प्रांत के बोर्ड के लिये बनाया था। वो भी मैं यहां लाया हूं। उसके अधिकांश को अब मध्यप्रांत बोर्ड ने स्वीकार किया है, ऐसा सुन रहा हूं। कारण अब यह शुद्धायुर्वेदरूपी अमृत का पान कराने की अभिलाषा—गत बीस पच्चीस वर्ष के मिश्र-शिक्षण सम्बन्धी कटु अनुभव के पश्चात्—सब वैद्यों में दिन प्रतिदिन प्रबल होती जा रही है जिनका चरितार्थ मिश्रशिक्षण पर चल रहा है, उनमें उस अभिलाषा का होना असंभव नहीं तो निदान अनपेक्षित है। मैं यह भी अनुभव कर रहा हूं कि कई मिश्रशिक्षण प्राप्त वैद्य भी (जो अपने को सदैव डाक्टर कहलाना ही पसन्द करते हैं) कह रहे हैं कि जिस प्रकार डेंटिस्ट, आय्-स्पेशालिस्ट आदि विशेषज्ञ हुआ करते हैं, उसी प्रकार शुद्धायुर्वेद के पाठ्यक्रमोत्तीर्ण विद्यार्थी आयुर्वेद विशेषज्ञ माने जा कर, अन्य स्पेशालिस्टों के समान एक स्पेशालिस्ट के नाते रजिस्टर किये जायं। ये सब बातें शासनसंस्था के आधीन हैं। परन्तु सब ही मिश्र शिक्षणप्राप्त चिकित्सक उतने विरोधी नहीं हैं, जितने की आपके प्रांत के मिश्रशिक्षण-देने वाले संस्थाध्यक्ष किर्डमिडा कर चिल्ला रहे हैं। हमें इन सब बातों से जरा भी चिंता का कारण नहीं है।

आयुर्वेद ऋषिमुनियों की देन है

आयुर्वेद इस देश के ऋषिमुनियों की तथा आप्तों की देन है। उसके अनुसार चिकित्सा करने वाले यशस्वी वैद्य निर्माण करना हमारा क़र्तव्य है। विचारवान् अन्य देशीय तज्ञों को भी इस ऋषिप्रणीत कला का महत्व अभी भी प्रतीत हो रहा है, और शुद्ध चिकित्साकला की प्राप्ति इसी देश में हो सकेगी ऐसा सर ई० कॅरेल जैसे प्रसिद्ध विद्वान् कह रहे हैं। अतः हमारा कर्तव्य है कि इस कला को जीवित रखने का हम पूरा प्रयत्न करें। उसके विरोध में कोई कितना भी चिल्लावें, हमें उसकी चिंता नहीं। परन्तु उसे जीवित रखने के प्रयत्न में पाश्चिमात्य देशों के तथा उनका अनुकरण करने वाले एतद्देशीय एॅलोपैथिक चिकित्सकों के समान इस विद्या को केवल द्रव्योपार्जन का व्यवसाय न समझते हुए, व्यक्तिमात्र, निर्धन से निर्धन, रोगपीडित व्यक्ति, जो हमारे शास्त्र की

शरण आवे, उसकी शुद्ध बुद्धि से सशास्त्र चिकित्सा करना, उससे सुयोग्य पथ्य कराना, इत्यादि आयुर्वेदशास्त्र के जो प्रधान नियम हैं, उनका उल्लंघन स्वप्न में भी न करने का हमें संकल्प करना चाहिये ।

नात्मार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति ॥ पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणम् ॥

आदि सूत्रों का शब्दशः पालन करना चाहिये ।

मैंने आपका अधिक समय लिया इसके लिये क्षमा प्रार्थी हूं । शुद्धायुर्वेद को परमेश्वर अजरामर करे यही अभिलाषा है ।

भूल-सुधार

(पत्रिका के फरवरी १९५४ के अंक में 'मस्तिष्क ज्वर की सफल चिकित्सा' शीर्षक लेख में प्रकाशित कई अशुद्धियों की ओर लेखक महोदय ने हमारा ध्यान खींचा है। इन अशुद्धियों के लिये हमें खेद है । गतांकों में महासम्मेलन के मैटर की अधिकता से हम उन्हें प्रकाशित नहीं कर सके । पाठक महानुभाव उक्त लेख में कृपया निम्नलिखित संशोधन नोट कर लेंगे । —स० सम्पादक)

शीर्षक—Tubercular के स्थान पर Tuberculous पढ़ेंगे ।

पृष्ठ ७६—(पूर्व इतिवृत्त) ३सरी ४थी पंक्ति में 'क्लोरोमाईस्टीन Chloromystine के स्थान पर 'क्लोरोमाईसिटीन Chloromycetine' पढ़ेंगे ।

९ वीं १० वीं पंक्ति में Tubercular meningococus के स्थान पर Tubercle Bacilli पढ़ेंगे ।

१० वीं पंक्ति Tubercular meningitis के स्थान पर Tuberculous meningitis पढ़ेंगे ।

११ वीं पंक्ति में 'क्लोरोमाईस्टीन' के स्थान पर 'स्ट्रेप्टोमाईसीन' पढ़ेंगे।

पृष्ठ ७७—शारीर परीक्षा में ५ वीं पंक्ति में Kerning's के स्थान पर Kernig's पढ़ेंगे ।

७ वीं पंक्ति में Bindzinsk के स्थान पर Brudzinski's पढ़ेंगे ।

पृष्ठ ७८—सुषुम्नाद्रव व रक्त परीक्षा की रिपोर्ट फुटनोट के रूप में पढ़ेंगे।

सम्पादक के नाम पत्र

श्रीमान् संपादक जी,
'आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका' दिल्ली,

सादर प्रणाम,

१. डिसेम्बर सन् १९४३ की पत्रिका के मेरे एक लेख के उत्तर में पं०हरिनारायण-शर्मा वैद्य काव्यतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य जी का लेख प्रकाशित हुआ है। उसे पढकर बड़ी प्रसन्नता हुई। दोषों की वृद्धि अथवा क्षय दोष के समग्रगुणों की अर्थात् दोष द्रव्य की होती है अथवा दोष के केवल एक, दो या अधिक गुणों की, यह एक विचारणीय विषय है। पं० शर्मा जी ने अपना पक्ष—केवल एक, दो या अधिक गुणों की भी वृद्धि हो सकती है, सर्वगुणों की होनी ही चाहिये ऐसा कोई नियम नहीं—सिद्ध करने के लिये जो शास्त्रीय आधार दिये हैं उनकी समालोचना करें। आपने जिस संधाय संभाषा के रूप में अपने विचार प्रगट किये हैं, उसी का अनुकरण करना यही मेरा भी ध्येय है।

२. किसी भी दोष के प्रकोपके लिये केवल एक ही वृद्ध भाव कारणीभूत हो कर पर्याप्त भी होता है इस में कोई संदेह नहीं है, परन्तु उस एक भाव की वृद्धि के कारण, दोष द्रव्य में जो वृद्धि होती है, वह द्रव्य में—अर्थात् द्रव्य के समग्र भावों में—गुणों में होती है, न केवल द्रव्य के उस एक वृद्ध भाव में।

सीधु केवल रौक्ष्य भाव के कारण वात वृद्धि करेगी। कांडेक्षु, रौक्ष्य और शैत्य इन दो भावों के कारण बात वृद्धि करेगा, तंडुलीयक रौक्ष्य, शैत्य और लाघव इन तीनों भावों के कारण वात वृद्धि करेगा, और कलाय रौक्ष्य, शैत्य, लाघव, और वैशद्य इन चारों भावों के कारण वात वृद्धि करेगी। इसका परिणाम यह होगा कि सीधु के कारण जितनी शारीर वात द्रव्य में वृद्धि होगी उस से कांडेक्षु के कारण परिमाण में अधिक वात द्रव्य वृद्धि होगी तंडुलीयक से उस से भी अधिक होगी, और कलाय से सब से अधिक परिमाण (quantity) में होगी, परन्तु हर एक अवस्था में वात द्रव्य एक ही प्रकार का रहेगा जिस का गुण समुदाय

तत्र रूक्षो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः अ०हृ०सू०१—

इस सूत्र में निर्दिष्ट है।

अर्थात् सीधु आदि चारों द्रव्यों से वात संज्ञक विशिष्ट शारीर द्रव्य ही (भिन्न भिन्न परिमाण quantity) में बढ़ेगा। इस परिमाण वृद्धि के कारण उस वात द्रव्य के प्रत्येक गुण—जो छह हैं—की वृद्धि होगी, केवल रौक्ष्य, शैत्य, लाघव, वैशद्य की ही नहीं।

एवं प्रकोप का कारणीभूत द्रव्य, दोष के गुणों से केवल एक गुण से समान होते हुए भी,—दोष की प्रकुपितावस्था में दोष द्रव्य की परिमाण (measure) में वृद्धि होने के कारण, उस दोष के समग्रगुणों में से हुए एक गुण की वृद्धि करता है।

'रोगस्तु दोष वैषम्यम्' (अ० हृ० सू० १–२०) की टीका में 'वैषम्यं स्वप्रमाणा देकस्यद्वयोस्त्रयाणां वा वृद्धिः क्षयो वा' ऐसा अरुणदत्त कहते हैं।

एवं द्रव्य में रहने वाला केवल एकही—रूक्ष-गुण वात द्रव्य के प्रकोप का कारणीभूत हो सकता है। परन्तु प्रकुपित दोष द्रव्य में–उस समूचे वात द्रव्य की परिमाण में वृद्धि होने के कारण—समग्र छह ही वातगुण वृद्ध होंगे, न केवल एक रूक्षगुण।

तात्पर्य सीधु द्रव्य रूक्षगुणप्रधान होने के कारण शारीर रौक्ष्य गुण में वृद्धि होती है। वात, रूक्षगुण वाला शारीर द्रव्य होने के कारण वात के परिमाण में वृद्धि होती है। और वात का परिमाण बढ़ने के कारण वात के रूक्ष, लघु, शीत, खर, सूक्ष्म और चल इन छहों गुणों में वृद्धि होती है। इस प्रकार संपूर्ण प्रक्रिया होती है।

केवल एक भाव वर्धक सीधु जिस परिमाण में वात, द्रव्य की वृद्धि करेगा, उससे दो भाव वर्धक कांडेक्षु अधिक परिमाण में वात वृद्धि करता है। तीन भाव वर्धक तंडुलीयक उससे भी अधिक और चार भाव वर्धक कलाय अत्यधिक वृद्धि करता है जैसा कि हमें प्रत्यक्षानुभव होता है। परन्तु इन चार द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य षड्गुण युक्त समूचे वात द्रव्य की ही भिन्न प्रमाण में वृद्धि करता है।

३. इस विवेचन के पश्चात्, आर्षग्रंथ जो सुश्रुत उसके—

सर्वैर्भावैस्त्रिभिर्वाऽपि द्वाभ्यामेकेन वा पुनः।
संसर्गे कुपितः क्रुद्धं दोषं दोषोऽनुधावति॥ सु० सू० २१-६७

इस सूत्र के विवेचन की आवश्यकता नहीं रहती। कारण विजय रक्षित के उपरि-निर्दिष्ट टीका में वही विषय विविक्षित है। इतना अवश्य कहना होगा कि शास्त्री जी ने जो उसका भाषांतर पृष्ठ (९ पर किया है उसमें (अ) दोष......कुपित हुए या अकुपित अन्य दोष से मिलता है' ऐसा कहा है। परन्तु ऊपर के सूत्र में 'संसर्गे' शब्द है जिसका अर्थ 'दोनों कुपित दोषों का परस्पर संसर्ग होने पर' ऐसा होता है नतु एक कुपित और दूसरा अकुपित। कारण संसर्ग शब्द की व्याख्या ऐसी है।

'संसर्ग, सन्निपातश्च तद् द्वित्रिक्षयकोपतः। अ० हृ० सू० १-१२

(ब) दूसरे, भाषांतर में 'और उसकी संसर्ग संज्ञा होती है' ऐसा विधान किया है, जिससे ऐसी प्रतीति होती है कि 'संसर्ग' शब्द की, व्याख्या करने के उद्देश से ही यह सुश्रुत वाक्य लिखा गया है। परन्तु 'संसर्गे' सतिसप्तमी है।

अन्वय इस प्रकार होता है—

संसर्गे, कुपितः दोषः सर्वैर्भावैः वाऽपि त्रिभिः, द्वाभ्याम् एकेन वा पुनः क्रुद्धं दोषमनुधावति ॥

(पं० मुर्लीधर शर्मा कृत भाषांतर पृ० १७४)

अतएव भाषांतर ऐसा होना चाहिये।

जब (दो कुपित) दोषों का संसर्ग हो, तब उनमें से एक दोष अपने सम्पूर्ण, तीन, दो अथवा एक भाव से कुपित होता है और उसी अवस्था में कुपित हुए अन्य दोष से मिलता है।

अस्तु, यह प्रस्तुत विषय नहीं है। भाषांतर में उद्दिष्ट विचारों से भिन्न विचार न आने पावें इसकी आवश्यकता होती है।

तात्पर्य

४. जितने द्रव्य हम आहार अथवा औषधिरूप में शरीर में उपयुक्त करते हैं उन सब में तीनों दोषसंज्ञक द्रव्यों के गुणों में से एक, दो अथवा अधिक गुण अवश्य ही रहा करते हैं। इनमें से जब हम किसी एक औषधि द्रव्य का शरीर में उपयोग करते हैं, तब उस औषधि द्रव्य में रहने वाले दोषगुणों के समान एक, दो या अधिक गुणों के कारण समूचे दोषों की वृद्धि होती है न कि केवल दोष के तत्तद्विशिष्ट गुणों की। कारण गुण सदैव द्रव्याश्रित वस्तु हैं।

'रोगस्तु दोषवैषम्यम्' ऐसा शास्त्र है ना कि रोगस्तु गुणवैषम्यम्। जब मनुष्य कहता है कि मुझे अधिक गरमी लग रही है, तब उसके शरीर में वास्तविक उष्ण गुण की वृद्धि नहीं हैं किंतु जिस एकमात्र पित्त द्रव्य का आश्रय लेकर उष्ण गुण रहा करता है उस पित्त दोष की वृद्धि होती है। यद्यपि व्यवहार में गरमी बढ़ी है ऐसा 'गुणगुणिनोरभेदात्' न्याय से कहा जाता है। शरीर (पंचमहाभूत विकारसमुदायात्मक) द्रव्यों का समुदाय है न कि गुणों का। गुणकर्म तो द्रव्याश्रित हैं। अतएव शरीर में गुणकर्मों की वृद्धि वा क्षय तब ही होंगे जब द्रव्यों के वृद्धि या क्षय होंगे। अर्थात् द्रव्यों के वृद्धि क्षय प्रधान हैं गुणों के आनुषंगिक। एवं शास्त्री जी के दिये हुए सब आधार, दोष द्रव्यों के वृद्धि के परिचायक होते हैं, न कि दोषों के एक या अधिक गुणों के। द्रव्य की जब परिमाण में वृद्धि होती है तब उसके हर एक गुण की होती है न कि केवल एक या दो गुणों की। यह विचारधारा आधुनिक तथा प्राचीन पदार्थ विज्ञान शास्त्र से सहमत होती है।

केवल एक गुण के क्षय वा वृद्धि के कारण समूचे दोष द्रव्य का क्षय वा वृद्धि होती है इसके अनेक उदाहरण ग्रंथों में पाये जाते हैं। विस्तार भय से यहां उद्धृत नहीं किये जा रहे हैं, सूज्ञ पाठक उन्हें पद-पद पर पा सकते हैं। —वैद्य भी० वि० डेग्वेकर, जबलपुर।

॥ पञ्चकर्माणि ॥

(पि० वासुदेवन् नम्पीशन्, "आयुर्वेदाश्रमः" तृश्शिवपुरम्)

ब्रह्मदक्षाश्विमघवदात्रेयादीन् नतोऽस्म्यहम् ।
आयुर्वेदविदो वैद्यान् लोकत्रयहितैषिणः ॥

लम्बश्मश्रुकलापमम्बुजदलच्छायाकृतिं वैद्यका-
नन्तेवासिन इन्दुजज्जडमुखानध्यापयन्तं सदा ।
आगुतफामलकञ्चुकाञ्चितदरालक्ष्योपवीतोज्ज्वलं
कण्ठस्थागुरुसारमञ्जितदृशं वन्दे गुरुं वाग्भटम् ॥

तन्वा वाचा धिया वा गुणनिलय ! मया यद्यदागः कृतं ते
तत्सर्वं चारुकीर्ते ! बुधवर ! करुणावारिराशे सहेथाः ।
लोकस्याभीष्टदाता भवति हि गुरुरेवेश्वरो दृश्यमूर्ति-
स्तस्मान्नान्याश्रयोऽहं गुरुवर ! शरणं यामि ते पादपद्मम् ॥

सन्तु प्रणामा विनयावनम्रमूर्ध्नो ममैते शतशस्सदस्याः !
युष्मभ्यमश्वीन्द्रगुरूपमाग्र्यविज्ञानवद्भ्यस्सुगुणाकरेभ्यः ॥

अत्र तु—आयुर्वेदप्रथितपञ्चकर्मस्वरूपमुपवर्ण्यते ।

मर्त्यानां विचित्ररूपमस्वास्थ्यमावहन्तो ये केचिदपरिमेया बहुविधाश्चामया जायन्ते, जातमात्राणामेव तेषामुन्मूलनाय द्रागेवोपक्रमः प्रयोक्तव्य ॥

अन्यथा तु साध्यानामपि तेषामसाध्यता समापतेदिति खलु सिद्धान्तः ॥

तस्मान्नैवोपक्रमे कदाप्युपेक्षा विधेया । स चोपक्रमस्सर्वोऽपि प्रायस्तत्तद्रोगाणामत्यन्तसन्निकृष्टपरममुख्यतमहेतुभूतदोषवैषम्यापेक्षो भवति ॥

'चिकित्सा धातुसाम्यार्था' इत्ययमायुर्वेदीयः समयः । अत्र हि धातुशब्दो दोषवाची, न दूष्यार्थकः । एवमन्यत्रापि धातुशब्दप्रयोगः ॥

यथा—प्रकृतिस्वरूपकथने—'समधातुस्समस्तासु श्रेष्ठा' इत्यादिकः ॥

सा च चिकित्सा बृंहण-लङ्घनात्मकभेदाद्द्विविधा । तत्र बृंहणं वातस्य वातपित्तयोश्च वृद्धौ, तत्कृतेष्वामयेषु च प्रयोज्यम् । इतरत्तु श्लेष्मवृद्धौ, श्लेष्माधिकसंसर्गसन्निपातेषु, पित्तस्य केवलस्य वृद्धौ तज्जन्येषु व्याधिविशेषेषु च प्रयोक्तव्यं भवति ॥

तच्च लङ्घनं शोधन-शमनभेदाद्द्विविधम् । तत्र यद्यद्दोषान् बहिर्निरस्यति, तत्सर्वं शोधनम् । शमनं पुनः यद्यद्वृद्धांस्तथा क्षीणांश्च दोषान् समीकुर्वत्समांश्च तदवस्थानेवानुविदधत् बहिरनिरस्यच्च स्वास्थ्यमादधाति तत्तत् भवति ॥

एवं शमनस्य लङ्घनात्मकत्वेऽपि, वायोस्तत्संसृष्टपित्तस्य च शमनं बृंहणात्मकमेव भवति ॥

तत्र यद्यद्देहस्य बृहत्त्वाय तत्तत् बृंहणं, तत्सर्वं प्रायो भौमापम् । लङ्घनं तु तत्, यद्यद्देहस्य लाघवाय, तत् प्रायस्तैजस, वायव्य, नाभसात्मकं च ॥

एवंविधेषूपक्रमविशेषेष्वन्तर्गतान्येवायुर्वेदशास्त्रे 'पञ्चकर्म'संज्ञया प्रथितानि वमनविरेचनानुवासनास्थापननावनाख्यानि कर्माणि ॥

तत्र वमनं वृद्धस्य श्लेष्मणोऽग्रयं संशोधनं भवति । श्लेष्मोत्तरसंसर्गसन्निपातयोश्च ॥

एतत्तु तत्र तत्राङ्गेष्ववस्थितं प्रागुपयुक्तेन स्नेहेन क्लिन्नं स्वेदेन च द्रवीकृतं महास्रोतःकोष्ठं, कुल्यावाहि वारि निकटनिस्सरन्तीं निम्नगां यथा, तथोपगतं च श्लेष्माणं निश्शेषतः कण्ठ मार्गतो बहिर्निरस्यति ॥

अग्नेरूर्ध्वगतिमत्वाद्वायोश्चोर्ध्वगत्यनुकूललघुत्ववत्वाच्चानलानिलोत्कटं मदनादिकं द्रव्यं प्रायो वमनं भवति ॥

शोध्यस्य पुनरधिकमध्यातपभेदाच्छोधनमेतद्वमनमपि प्रवरमध्यावरभेदतस्त्रिविधम् ॥

त्रिविधेऽप्यस्मिन् क्रमादष्टौ, षट्, चत्वारश्च वेगा वमनस्य सम्यग्योगमापादयन्ति । पीतौषधोद्वमनकृतो वेगानपहायैवैते प्रसङ्ख्येयाः ॥

वमनस्य सम्यग्योगे, कफ-पित्ता-निलाः क्रमाद्विबन्धमन्तरा प्रवर्तन्ते । विशुद्धवायोरुत्गारस्य प्रवृत्तौ वेगानां प्रशमश्चोपजायते ॥

तच्च वमनं केवले कफे तीक्ष्णोष्णकटुकैस्सपित्ते स्वादुशीतैस्सानिले स्निग्धाम्ललवणैश्चौषधैस्संविधेयम् ॥

तद्वमनौषधं सर्वमपि मधुसैन्धवाभ्यां संयुतमेवोपयोज्यम् । ताभ्यां क्रमान्निर्हार्यस्य दोषस्य विच्छेद-विक्लेदौ सञ्जायेते ॥

एतच्च वमनमामाशयसंश्रितान्मलानाशु सुनिर्हरेदासन्नत्वात् कण्ठस्रोतसः ।

एवं विधमेतद्वमनं केषाञ्चिद्रोगविशेषाणामपि वरतम उपक्रमो भवति ॥

तेषु विशिष्टलक्षणोपलक्षितः श्लेष्मप्रायः सद्योभुक्तसमुत्पन्नश्चाभिनवो ज्वरो मुख्यः ॥

तत्रोपयुक्तं वमनं द्रागेवामाशयसंस्थं मुख्यतया ज्वरस्य कारणीभूतमामं कफं विदग्धमन्नं च मूलत एवोन्मूल्य बहिर्निर्हृत्य च ज्वरस्योपशममादधाति । आमातीसारेऽप्येवमेव वमनमुपशमाय प्रभवति । अधोभागिके पुना रक्तपित्तेऽप्येतन्मुख्यतममेव । तत्र तत्प्रवृत्तिनिमित्तस्यानिलस्योर्ध्वप्रवर्तनायोपकरोति । तथा च शोणितस्याप्रवृत्तिश्च सञ्जायते ॥

एवं च राजयक्ष्म--कुष्ठा-पची-मेह-ग्रन्थि-श्लीपद-कासोन्माद-श्वास-वीसर्प-हृल्लासमन्यदोषादिषु, तथोर्ध्वाङ्गाश्रयेष्वन्येष्वप्यामयेषु स्रोतः पिधानादिकृतः श्लेष्मादिकस्य निर्हरणायातितरां प्रयोज्यं भवति ॥

अपि च—सर्वेषामपि दोषाणां युगपच्छोध्यतायां समापतितायां, कफस्य संशोधनमेतद्वमनमेवादौ विधातव्यम् । अन्यथा पित्तानिलसंशोधनयोर्विरेचनास्थापनयोस्संप्रयुक्तयोस्तत्प्रवर्तनसमुद्युक्तो मारुतः पित्ताशयादप्यूर्ध्वभागसंश्रितं श्लेष्माणं बलादाकृष्याग्निधामादावुपक्षिपति। ततश्च ग्रहणीदोषा-ग्निमान्द्या-विपाका-तीसार-ज्वराद्या व्याधयश्च सञ्जायन्ते। अतस्सर्वेषामपि

संशोधनानामग्रत एव वमनसंविधानवर्णनं समेष्वपि ग्रन्थेषु दृश्यते च ॥

वमनाय पीतमौषधमपक्वं सदैव मलान् निर्हरतीत्यत्र पाककालो न प्रतिपालनीयः ॥

एतच्च वमनं लङ्घनात्मकमेव ॥

तथा हि—शोधनात्मकलङ्घनविवरणप्रस्तावे—वाग्भटाचार्यपादैः 'निरूहो, वमनं कायशिरोरेकोऽस्रविस्रुतिः' इति प्रतिपादितमास्ते । एतत्तु केवलं शोधनात्मकं पञ्चविधं लङ्घनमेव। इत्थं—"पाचनं, दीपनं, क्षुत्तृ-ड्व्यायामा-तप-मारुताः" इति सप्तधा शमनात्मकं लङ्घनमप्युपवर्ण्यते ॥

अपिच—सर्वेषामपि शोधनानां कर्मणामादौ स्नेहस्वेदाववश्यमुपयोक्तव्यौ । अन्यथा तस्य पुंसः शरीरं, शुष्कं दार्वनामे यथा, तथा दीर्यते । इति **वमनम्** ॥

अथ विरेचनमुच्यते—तत्तु पित्तसंशोधनेषु परं मुख्यतममतः केवले पित्ते तदुत्तरे संयोगे च प्रयोज्यं भवति ॥

पृथिव्यास्त्वधः पतनानुकूलगुरुत्ववत्त्वात्तथापां निम्नवाहिस्वरूपत्वाच्च पृथिवीजलात्मकं त्रिवृद्दन्त्यादिकं द्रव्यं प्रायो विरेचनं सम्पद्यते ॥

तत्र केवले पित्ते कषायमधुरैः, सश्लेष्मणि कटुकैः, सवाते तु स्निग्धाम्ललवणैश्च भेषजैर्विरेचनं योज्यम् ॥

तानि च विरेचनानि त्वक्केसराम्रातकैः, डाडिमैलासितोपलाभिर्माक्षिक-मातुलुङ्गाभ्यां, तथा मनस्सम्प्रीणनैर्विविधैर्मद्यैश्च यथायथं युक्तान्येवोपयोज्यानि । तानि तु निर्हार्यस्य मलस्य संक्षोभणविद्रावणादिकरणान्निर्हरणे साह्यं कुर्वन्ति ॥

तच्च विरेचनाय पीतमौषधं पच्यमानं सद्दोषान् निर्हरति ॥

तदेतद्विरेचनं तु पक्वाशयसंश्रयान्मलान् गुदमार्गस्यात्यन्तसन्निकृष्टत्वाद्द्रागेव निश्शेषं विनिर्हरेत् ॥

रक्तस्य पित्तस्य चान्योन्यमाश्रयाश्रयिभावात्समानयोगक्षेमत्वात् पित्तवद्रक्तस्यापि वृद्धौ, तदुत्पन्नेषु विकारेषु चैतद्विरेचनं वरतममेव । अपिचैतत् केषुचिद्रोगविशेषेष्वपि मुख्य उपक्रमो भवति ॥

ते तु-गुल्मोऽर्शांसि विस्फोटाः-व्यङ्गः-कामिला-जीर्णज्वरो-गर-उदरं-छर्दिस्तथा प्लीहोदरं हलीमकस्तिमिरं, विद्रधिः, काचः, स्यन्दः, पक्वाशयोपाश्रिता व्यथा तथा योनिशुक्रसंश्रया व्याधयो व्रणाश्च कोष्ठसंश्रयास्तथा क्रिमयः पुरीषग्रहो मूत्राघातो, वातशोणितमूर्ध्वमार्गप्रवृत्तं रक्तपित्तमन्ये च वमनोक्ताः कुष्ठ-मेहप्रमुखा व्याधयः ॥

एषु तु गुल्मस्य मुख्यतो वातप्रकृतित्वेऽपि तत्र स्रोतःपिधानादिकृतः पक्वाशयादिगुदमार्गासन्नदेशवर्तिनः पित्त-श्लेष्मादिकान्निर्हरस्य विरेचनं व्याधिसात्म्यं भवति ॥

एवमन्यत्रापि कुशाग्रधिषणैस्स्वमनीषया साधु विमृश्यम् ॥

वमनवदेतद्विरेचनमपि त्रिविधमेव । एतस्य हीन-मध्योत्तमासु मात्रासु दश-विंशति-

त्रिचत्वारिंशच्च वेगाः क्रमात् सम्यग्योगयोग्या भवन्ति । तद्वन्मानतः एकः प्रस्थो द्वि-चतुर्गुणाश्च प्रस्थास्तथाविधा भवन्ति ॥

सम्यग्योगे तु—हृत्कुक्ष्योश्शुद्धिरन्नाभिलाषः, श्लेष्मपित्तयोस्स्वस्वस्थानेषु निरुत्क्लेशमवस्थितिरनिलपुरीषयोरविबन्धः कण्ड्वाद्यसंभवश्च लिङ्गानि ॥

विरेचनस्य वेगादिपरिगणनायां तु सपुरीषाः द्वित्रा वेगाः परिहेयाः ॥

भवति चात्र—

"पित्तान्तं वमनं कार्यं विरेकार्धं च तन्मतम् ।
तद्वच्छ्लेष्मावसानं स्यात् सम्यग्योगे विरेचनम् ।" इति ॥

एतद्विरेचनं च वमनवल्लङ्घनान्तर्गतमेव ॥

वस्तिर्नामापरं कर्मातितरामग्रणीरुपक्रमः । सर्वेष्वपि कर्मसु मुख्यतमत्वं चास्येतरयोरपि दोषयोर्नेतृपदमधितिष्ठतोऽनिलस्याग्रयोपक्रमत्वात् ॥

समीरणस्तु सर्वेषामप्यन्येषां च 'दोष-धातु-मलमूलो देहः' इति सिद्धान्तितत्वात् शरीरोत्पत्ति-स्थिति-विनाशनिमित्तानां पित्तादीनां दोषधातुमलानां नेता योगक्षेमकृदनुग्राहकस्त्वाविकृतौ । इति तदुपक्रमेष्वग्रिमस्यास्य वस्तेः निश्शेषदोषदूष्यमलोपक्रमत्वमथवा निखिलामयोपक्रमत्वमेव वा वाच्यम् ॥

प्राचुर्येण वस्तिना प्रणीयमानत्वादेवैतस्य कर्मणो वस्तिरिति संज्ञोपसङ्गता । एतज्जन्यानां फलानामूहितुमप्यशक्यत्वान्निरूह इति च । प्राधान्यतो निरूहोऽनुवासनमिति वस्तिर्द्विविधः ॥

तत्र-तत्र योग्यानां क्वाथ-कल्क-स्नेहानां माक्षिकलवणाम्लानां च यथायथं कल्पिताया मात्रायाः माक्षिक-लवण-स्नेह-कल्क-क्वाथानानुक्रमश एकतः कृताया उष्णजलादिवाष्पेणोष्णीकृताया यथोक्तेन विधिना गुदमार्गेण पक्वाशयप्रणयनमास्थापनापरपर्यायो निरूहः । शरीरारोहणदोषनिर्हरणादिभिः कर्मविशेषैरचिन्त्यप्रभावश्चायं निरूहः ॥

सोऽयं निरूहः पक्वाशयसंस्थ एव पूर्वमुपयुक्ताभ्यां स्नेहस्वेदाभ्यां विक्लिन्नविलीनं च मलमाशु सुखं बहिर्निर्हरति । अपि च पक्वाशयाधिष्ठित एवैष आकाशसंस्थोऽर्को यथा भूरसान्, देहमभितो व्यापिनोऽपि विकृतान्मलानचिन्त्यप्रभावतया द्रुततरं समाकर्षति, पुनर्निस्रोतसो गुदमार्गेणैव बहिर्निर्हरति च ॥

अस्य च मात्रा वयोभेदेन बहुविधा । सा तु प्रथमे वयसि प्रकुञ्चः, पुनष्षट् प्रसृता यावत्तावत् प्रतिवत्सरं प्रकुञ्चमानतो विवर्धनीया । अतः परं यावद्द्वादश प्रसृतास्स्युस्तावत् प्रत्यब्दं प्रसृतप्रमाणतो विवर्धनीया भवति । एवमष्ठादशवयस्कस्य द्वादशप्रसृतात्मिका मात्रा निरूहस्य । आसप्ततेः पुनरेषा द्वादशप्रसृतिकैव मात्रास्थापनस्य । ततः परं तु दशप्रसृतिका भवति मात्रैतस्य । अन्ये तु द्वादशप्रसृतिकास्थानेऽप्यष्टप्रसृतिकामिच्छन्ति ॥

यद्यप्येष निरूहो वातस्यैवाग्रणीरुपक्रमः, तथाप्यन्यदोषानुबन्धेऽप्यवश्यं प्रयोज्यः, तदा केवलेऽनिले पित्त-श्लेष्मानुबन्धे च क्रमात् क्वाथाच्चतुर्थं षष्ठमष्टमं चांशं योजयेत् स्नेहस्य ।

स्वस्थे तु पित्तवत् षष्ठांशमेव। कल्कस्य तु सर्वत्राप्यष्टमांशमेव। वस्तेर्नात्यच्छसान्द्रता वा कल्कमात्रा। गुडोपयोगयोग्ये तु तस्य पलमात्रं योज्यम्। मधुपट्वादीनां तु मात्रा सर्वत्रापि युक्त्या विकल्प्य कल्पनीया॥

एष निरूहो वातकृतानामशेषाणामप्यामयानामग्रणीरुपक्रम इति प्रागुपन्यस्तम्। तथा केषाञ्चिन्नियतानामप्यामयविशेषाणाञ्चैष मुख्यतम एव॥

ते तु—गुल्म, आनाहो, वातशोणितं, प्लीहोदरं, पक्वातीसारो, वृद्धि-रश्मरी-प्रतिश्याय-श्शूलं, तथा शुक्रानिलमलानां विबन्धो रजोविनाशश्च॥

तच्चास्थापनमुत्क्लेशनादिभेदतो नानात्मकम्॥

दोषाणामुत्क्लेशनं संशोधनं संशमनं तथा लेखनं, बृंहणं, वाजीकरणमित्येते तस्य भेदाः॥

तत्रोत्क्लेशनं तद्यत्तत्रतत्राङ्गेषु लीनं स्त्यानं स्तब्धं च मलमुत्क्लिद्य द्रवीकृत्य चालयित्वा च गमनोन्मुखमादधाति। संशोधनसंशमनयोस्स्वरूपं तु पूर्वं प्रतिपादितं बृंहणस्य च॥

यत्तु दुष्टं, शुष्कं, घनं चाङ्गेषु सक्तं श्लेष्मादिकं विलिख्य विलिख्योन्मूलयति तल्लेखनं भवति॥

तथा प्रक्षीणरेतसां शुक्रस्याप्यायनेन ग्राम्यधर्मातिप्रसक्तिं, प्रमदानां चातिप्रियत्वं यत् करोति, यच्चातिमात्रमूर्जस्करं भवति तद्वाजीकरणम्॥

अपि च केषाञ्चिद्राजयापनमाधुतैलीकादीनान्निरूहविशेषाणां प्रशस्तरसादिधातूपलब्धि-प्रयोजकत्वाद्रसायनत्वं च विद्यते॥

अनेन च विभाजकधर्मकथनेन निरूहस्य संशोधन-संशमनात्मकत्वं, लङ्घनबृंहणात्मकत्वं च सुबोधम्। अतः शास्त्रकृतां शोधनात्मकलङ्घनेषु निरूहस्य परिगणना केवलं प्राधान्यप्रति-पादिकैवेत्यवगन्तव्यम्॥

अवस्थावशाच्चास्य वस्तेस्तीक्ष्णोष्णगोमूत्रसर्षपकल्कादिसंयोजनेन तीक्ष्णत्वं, तथा क्षीर-घृतादिसंयोजनेन मार्दवं च यथायथं दोषभेदवशाच्च संविधातव्यम्॥

किञ्च—केवले वाते, पित्तसंसृष्टे कफसंसृष्टे च क्रमादेक-द्वि-त्रीन् निरूहान् युञ्ज्यात्। सन्निपातेऽपि त्रीनेव। इति केचिदाचक्षते॥

वातघ्नत्वेऽप्यस्य प्राचुर्येण संशोधनात्मकतया किञ्चिल्लङ्घनत्वस्यापरिहार्यत्वात्तस्य तु लङ्घनस्य नियमेनानिलकोपनात्मकतया चैकमेवास्थापनं क्षीरादिकल्पितमपि केवलेऽनिले योजयेत्। पित्त-श्लेष्मणोस्तु लङ्घनस्य दोषसात्म्यत्वाद्द्वित्राण्यास्थापनानि योजयेदिति च तेषामभिसन्धिः। नास्ति चतुर्थः कोपि दोषः, पुनः कमुद्दिश्य प्रयोज्य इति च॥

दोषाणमुत्क्लेशनं. संशोधनं, संशमनं चैकैकं निरूहं योजयेदित्यन्येऽपि समाचक्षते। सर्वथापि त्रिभ्यः परं वस्तिं नोपयुञ्ज्यादित्येवोभयमतावलम्बिनामेतेषामाशयः॥

सर्वत्राप्यस्मिन् दोषौषधादिबलमेव नियामकं भवति॥

सर्वथा सम्यङ्निरूढलिङ्गानुत्पत्तौ निरूहान्नैव विरमेदित्येष एव नियमस्साधीयानिति प्रतिभाति॥

सम्यङ्निरूढलिङ्गं तु सम्यग्विरिक्तवद्विज्ञेयम् ॥

अस्य च निरूहस्य कोपि प्रभावातिशयश्चेत्थम् । स तु देहे सर्वतः प्रसृतं रसादिभिर्मिश्रमप्यखिलं मलं, शुद्धः पटो यथा लाक्षादिरसाद्रागं, तथा द्राक्स्वायत्तीकृत्य तेन सह स्वयं बहिर्विनिर्गच्छति । अन्यानि तु संशोधनानि स्नेहस्वेदैर्यथासंख्यं विक्लिन्नविलीनं रसादिभ्यः प्रच्युतं च मलमेव विनिर्हरन्ते ॥

एतस्यैवास्थापनस्य मात्राप्रयुक्तो भेदो माधुतैलिकः । अयमेव यापनसंज्ञितोऽपि व-स्तिविशेषः । अस्य मात्रा तु पूर्वोक्तात् पादहीना ॥

नास्त्यस्य पूर्ववद्यन्त्रणा च । निष्परीहारत्वाच्च क्लेशासहिष्णुभिर्बालवृद्धादिभिस्सदा प्रयोक्तव्यार्यं यापनाख्यो निरूहविशेषः । इत्यास्थापनम् ॥

अथ पञ्चकर्मस्वतितरां मुख्यत्वादपश्चिमं चतुर्थमनुवासनं प्रस्तौमि ॥

तत्तु दोषविशेषापेक्षमौषधैस्संस्कृतानां स्नेहानां यथोक्तेन विधिना निरूहवत् गुदमार्गतः पक्वाशयप्रणयनम् । अन्नमनुवसन्नपि न दुष्यत्यनुवासरमपि वा दीयत इत्यनुवासनशब्दस्सा-र्थो भवति ॥

तस्य तु मात्रा यथायथं वयोभेदसापेक्षं निरूहस्य पादप्रमाणा भवति । तस्मात् प्रथमव-यस्य प्रकुञ्चपरिमितास्थापनयोग्यत्वात्तस्यानुवासनमात्रा कर्षप्रमाणा भवति एवमन्यत्रापि यथायमूह्यम् ॥

स च प्रणिहितः स्नेहः पक्वाशयमुपगम्य कञ्चित् कालमवस्थाय स्वस्थानसंस्थमितरधा-तुस्थितं चातिमात्रप्रवृद्धमनिलं प्रशमं नीत्वा तत्समीरणसम्मिलितस्सपुरीषश्च स्वयं सम्यग्योगे निर्निसरति ॥

तस्याप्ययमुपयोगे कोपि नियमः । यद्यपि वातस्यैवैष मुख्यतमः उपक्रमः, (तथा हि—'वातस्योपक्रमः स्नेहः', 'शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधं वस्ति-विरेको-वमनं' इति च आचार्यपादानां, वैद्यविद्यानामस्माकमनुभवसाक्षिकमनुशासनं) तथापि वातोत्तरसंसर्ग-सन्निपातेष्वप्येतदनुवासनमवश्यमुपयोक्तव्यम् ॥

तदा श्लेष्मसंसृष्टे वायावेकं त्रीणि वानुवासनानि योज्यानि । तथा सपित्ते पञ्च-सप्त वा। केवले निरुपस्तंभे चानिले नवैकादश वावस्थानुरोधतः प्रयोज्यानि । सर्वथा सम्यक्स्निग्ध-त्वोत्पत्तिरेवात्र सङ्ख्यानियामिका । अतो माङ्गल्यापादकान्ययुग्मान्यधिकान्यप्यनुवासनानि प्रयुञ्ज्यात् ॥

सम्यक्स्निग्धलक्षणं तु—अनिलस्यानुलोम्यमनलसंदीप्तिः, सुस्निग्धवर्चस्त्वं, तथा गात्रे काठिन्याभावः, क्लमः, स्नेहे विरक्तिश्चेति ॥

एवं वाते तदुल्वणसंसर्ग-सन्निपातेष्वप्येतद्यथा परमं प्रधानं, तथा केषुचिन्नियतेष्वाम-येष्वपि वरतम उपक्रमो भवति ॥

आस्थापनस्य नियमेनानुवासनानन्तरप्रयोक्तव्यत्वात्तत्साध्या व्याधयस्सर्वेऽप्यनुवासन साध्या भवन्ति । विशेषतोऽत्यग्नयो, रूक्षाश्चानुवासनार्हाः । प्रायोऽनुवासनं बृंहणात्मकमेव ॥

एतयोस्तु निरूहानुवासनयोर्दीर्घकालानुबन्धिव्याधिवशात् बहुशः प्रयोज्यत्वे नैकमेवानिशीलयेत् ॥

अतिशीलिते तु निरूहे अतिसंशोधनप्रयुक्तलङ्घनेनानिलकोपात्तथानुवासनेऽतिसंशीलिते दोषाणामुत्क्लेशतोऽनलविनाशाच्च भयं संभवति ॥

ततस्तद्विधेष्वामयेषूपयोगाय मिश्रितयोस्तयोः कर्म-काल-योगसंज्ञितस्त्रिविध उपयोगो नियमित आस्ते ॥

तत्र कर्माख्यस्तु त्रिंशद्वस्तयः। अत्रादिम एकोऽन्त्याः पञ्च च स्नेहाः। मध्ये पृथक् द्वादश स्नेहा निरूहाश्चान्तरिताः ॥

पञ्चदश वस्तयः कालसंज्ञित। तत्र चाद्य एकोऽन्त्यास्त्रयश्च स्नेहाः। मध्ये पञ्चभिरास्थापनैरन्तरिताश्च षट् स्नेहाः ॥

योगाख्यस्त्वष्टौ वस्तयः। तत्राद्यान्त्यौ स्नेहौ। मध्ये चान्तरितास्त्रयः स्नेहा निरूहाश्च। त्रिविधा अप्येते वस्तयो व्याधीनां बलाबलमवेक्ष्य यथायोग्यं विकल्प्य कल्पनीयाः ॥

प्रस्तुतस्य स्नेहवस्तेरेव मात्राप्रयुक्तो 'मात्रावस्ति' संज्ञः क्वोपि विशेषो विद्यते। स तु बल्यो, दोषघ्नो, निष्परीहारश्च। अतस्सैष वस्तिः क्लेशासहिष्णुभी राजतन्मात्रैरन्यैश्च सुखात्मभिर्बालवृद्धादिभिर्नित्यं परिशीलनीयो भवति। अनेन च मात्रावस्तिना सुखं मलोत्सर्गश्चोपजायते। अस्य मात्रा स्वच्छपेयस्य स्नेहस्य यामद्वितयजरणलक्षणया ह्रस्वया मात्रयाऽभिन्ना भवति ॥

वस्तियोन्याद्याश्रयेष्वामयेष्वपानापेक्षयोतरेण मूत्रशुक्रादीनां बहिरन्तर्निर्गमनमार्गेण प्रणीयमानत्वा 'दुत्तरवस्ति' संज्ञितः कश्चित्स्नेहवस्तिविशेषोऽपि विद्यते। [तस्य मध्यमा मात्रा त्वष्टिमिका। दोषबलाद्यपेक्षं विकल्प्य कल्पिता वा। एतस्योपयोगस्तु यद्यङ्गनानां तर्हि योन्यपावृतेः योनिविभ्रंशाद्यत्ययवर्ज्यमार्तवकाल एव विधेयः। अन्यथा स्नेहमाशयसम्यङ्नोपगृह्णाति। सैष वस्तिः पूर्वमुपशुक्तैर्द्वित्रैरास्थापनैर्विशुद्धानां शलाकया संशोधितस्रोतसामेवोपयोज्यः अन्यस्सर्वोऽपि विधिरनुवासनवद्विज्ञेयः ॥

इति चिकित्साकार्त्स्न्यभूतो वस्तिः ॥

अथ पञ्चमं नस्यमुच्यते—जत्रूर्ध्वं ये केचिच्छिरस्तापाद्या व्याधय उत्पद्यन्ते, तत्र हेतुभूतानां पूर्वोक्तानां विषमाणां त्रयाणामपि दोषाणां संशोधनसंशमनात्मको योऽग्रणीरुपक्रमस्तन्नस्यम् अस्यैव पर्यायो नावनमिति। नसा नासया प्रयुज्यत इति नस्यशब्दस्सार्थको भवति। तच्च प्रयुक्तमौषधं शिरोद्वारभूतेन नासास्रोतसा मूर्धानमनुप्रविश्य तत्संश्रितानां दोषाणां संशोधनं संशमनं च संविधाय तत्संश्रयानामयानुन्मूलयति ॥

तच्च नस्यं विरेचन-बृंहण-शमनभेदात्त्रिविधम्। तत्र विरेचनं श्लेष्मोत्भवेषु शिरस्तापगौरवजाड्यप्रसेकारोचकास्यवैरस्यपीनसस्वरभेदगलरोगेष्वन्येष्वप्यभिन्याससन्यासापस्मारोन्मादादिषु च श्लेष्मविशुद्धये स्रोतस्संशोधनाय च तीक्ष्णैस्सर्षपादितैलैर्वेल्लादिशिरोविरेचनद्रव्यसाधितेन च तैलेन तथा वेल्लादीनामेव क्वाथचूर्णस्वरसकल्कैर्मधुसैन्धवासवपित्तमूत्रैश्च यथायथं प्रयोक्तव्यम् ॥

बृंहणं पुनरनिलसमुद्भवेषु शिरस्तापसूर्यावर्तस्वरभेदापबाहुकनिद्राप्रणाशाक्षिसङ्कोच-कुञ्चोन्मीलदन्तकर्णशूलकर्णनादादिष्वन्येष्वप्येवंविधेष्वामयेषु स्निग्धमधुरैरोषधैस्तत्सिद्धैश्च यथायथं स्नेहैस्तथा जाङ्गलपललरसेनासृजा, तत्तद्द्रव्यानिर्यासैश्च यथास्वमुपयोज्यम् ॥

शमनं तु खलति-वली-दारुणकाकालपलितनीलिका-व्यङ्ग-रक्तराजी-रक्तपित्तप्रभृतिषु व्याधिविशेषेषु यथोपदिष्टैः स्नेहैस्तथा क्षीरेणोदकेन तत्तदौषधस्वरसादिना च योज्यम् ॥

समदोषेण (नीरोगेण) च स्वास्थ्यानुवृत्तयेऽणुतैलेन तत्तुल्येनान्येन च स्नेहेन नित्यमेव संशीलनीयमिदं नस्यम्। तदपि संशमनान्तर्गतमेव ॥

स्वस्थस्य तु तैलमेव तत्सात्म्यत्वान्नस्ये वरतमं भवति। तस्य श्लेष्मविनाशकत्वाच्छिरसस्तु श्लेष्मधामत्वाच्च ॥

अत्र तु स्नेहस्य मात्राप्रयुक्तो भेदो मर्शः प्रतिमर्शश्च। तत्र मर्शस्य क्रमेण दशाष्टौ षट् च बिन्दव उत्कृष्टमध्योना मात्रा भवन्ति। तास्तु दोषाणामाधिक्यमध्यन्यूनत्वानुरोधतस्सम्प्रयोज्याः ॥

बिन्दुस्तु मग्नोद्धृतात् प्रदेशिन्यंगुलीपर्वद्वितयाद्द्रवस्य यावन्मात्रं स्वयमेव निपतति, तावन्मात्रो भवति ॥

प्रतिमर्शस्तु द्विबिन्दुमात्र एव। स तु सुखात्मस्वकालपलिते तथा बालेषु वृद्धेषु क्षतक्षीणेष्वन्येष्वप्येवंविधेषूपयोज्यः ॥

अल्पमात्रत्वाच्चायं दुष्टपीनसे, मद्यपीते, तथा अबलश्रोत्रे कृमिदूषितमूर्धन्युत्कृष्टोत्क्लिष्टदोषेषु च नोपयोज्यः ॥

स च द्विबिन्दुकः प्रतिमर्शो निशादीनां पञ्चदशसंख्याकानां कालक्रियाविशेषाणामन्ते प्रयोज्यो विशिष्टाभीष्टफलाधायकत्वात् ॥

तत्र निशाया भक्तस्य चान्त उपयोगेन स्रोतोविशुद्धिर्मूर्धलाघवं मनःप्रसादश्च भवति। तथा पुरीषमोचनस्य मूत्रोत्सर्गस्य शिरोभ्यङ्गस्य गण्डूषस्याञ्जनस्य चान्त उपयोगेन दृष्टिप्रसादस्स्यात्। दन्तपवनस्यान्त उपयोगेन दन्तानां दार्ढ्यं वक्त्रसौगन्ध्यं च भवति। अध्वगमनस्य व्यायामस्य व्यवायस्य चावसान उपयोगेन श्रमक्लमस्वेदानां स्तम्भस्य च प्रणाशः स्यात्। दिवास्वापान्तोपयोगेन निद्राशेषस्याङ्गगौरवस्य च विनाशो मनःप्रसादश्च संभवति। अतिहसितान्तोपयोगेन तदुदीरितसमीरणोपशमः प्रजायते। छर्दितस्यान्त उपयोगेन तच्चलितस्थानत्वात्स्रोतस्सु विलीनस्य च श्लेष्मणो व्यपोहस्स्यात्। दिनान्तसमासेवनेन स्रोतस्संशुद्धिसुखनिद्राप्रबोधश्चोपजायते ॥

केचिदस्य प्रतिमर्शस्य बिन्दुं मात्रामिच्छन्ति। यावन्मात्रेणानुक्लिष्टस्य दोषस्योत्क्लेशो न संभविता, तावन्मात्रञ्चेच्छन्ति प्रतिमर्शम्। सर्वथापि तन्नस्यान्तनिष्ठ्यूतौ प्रत्यक्षतः स्नेहस्य पृथगुपलब्धिर्नेष्टा। एतदेव परमं सिद्धांतितं मतम् ॥

सुखोपचारान्निष्परीहाराद्यापच्छङ्काया अप्यविषयादमुष्मात् प्रतिमर्शादाशुकृत्त्वबहु-

गुणत्वादिरूपो नैकमुखस्समुत्कर्षो यदि न विद्यते, तर्हि विवेकी को वा मर्शाख्यं नस्यं प्रयोजयेत् । एवमेव मात्रावस्त्यनुवासनयोरन्यत्र चैवंविधेषु विषयेष्वप्यवधेयम् ॥

कल्कादिभिः पुनर्विरेचनार्थं यन्नस्यमुपयुज्यते, तदिदमवपीडकसंज्ञितम् । तस्य च यथास्वं बिन्दुद्वितयोना मर्शस्यैव मात्राः । अतिमात्रप्रवृद्धे तु दोषे विरेचनार्थं यन्मरिचादि-तीक्ष्णद्रव्यचूर्णकृतं नस्यं, तद्ध्मानसंज्ञितम् । तत्तु चूर्णत्वाद्द्रागेव बहुतरं दोषमपकर्षति ॥

नस्योपयोगाच्च पूर्वं दोषस्य विक्लेदविलयनार्थं स्नेहस्वेदाववश्यमुपयोक्तव्यौ ॥

तत्र चूर्णं नाल्या मुखवायुना प्रयुञ्ज्यादितरन्नाल्या पिचुना वा निषेचयेत् । तच्चैकैकं नासापुटं, किञ्चिदभ्युन्नतपादस्येषन्नामितमस्तकस्य चोत्तानशायिनः पुरुषस्य, संपिधाय पर्यायेण प्रयोजयेत् । इत्थं यथोक्तमात्रामितभैषज्यक्षयो यावत्तावद्द्विस्त्रिर्वा नस्यमाचरेच्च ॥

तत्र च श्लेष्मणि प्रातः पित्ते तु मध्यंदिने पवने सायंनिशोश्च नस्य प्रयोजयेत् । तथा स्वस्थवृत्ते, शरदि वसन्ते च पूर्वाह्णे हेमन्ते शिशिरे च शीतसंज्ञिते काले मध्यंदिने, घर्मे सायं, प्रावृषि सातपे चानेहसि नस्यमुपयुञ्ज्यात । विशिष्यापबाहुकाख्ये वातविकारे भुक्तस्योपरि स्नैहिकं नस्यं संप्रयुञ्ज्यात् । तच्च नस्यमवस्थावशात् प्रतिदिनं सायंप्रातरेकाहमन्तरीकृत्य वोपयुञ्ज्यात् । इत्थं सप्ताहमासम्यक्स्निग्धसुविरिक्तलिङ्गदर्शनं वोपयुञ्ज्यात् ॥

तत्र सम्यक्स्निग्धस्य सुखसमुच्छ्वासस्वप्नप्रबोधास्तथाक्ष्णोः पाटवं च स्युः । सुविरिक्त-स्याक्षिलाघवमास्यस्वरविशुद्धिश्च ॥

अस्य च नस्यस्य बृंहण-लङ्घन-संशमन-संशोधनरूपोभयात्मकत्वं विभाजकधर्मप्रतिपाद-नेनैवोक्तप्रायम् ॥

तच्च नस्यमूनसप्तहायने पुरुषे नोपयुञ्ज्यात्तथातीताशीतिवत्सरे च । तथोनदशमेऽतीत सप्ततौ च वमनविरेचने नैवोपयुञ्ज्यात् । अन्वासननिरूहौ तु प्रतिमर्श इवाजन्ममरणं शस्तौ भवतः ॥

अपि च नस्यसंशीलिनः पुरुषाः घनोन्नतप्रसन्नत्वक्स्कन्धग्रीवास्यवक्षसो, दृढेन्द्रियाः पली-तवर्जिताश्च सुखमशेषमपि पुरुषायुषं जीवन्ति ॥

किञ्च—यथाकालं (श्रावणादिषु) यथाविधि सम्यगासेव्यमानेन संशोधनकर्मणा यच्छ्रेयश्शरीरस्य, तत्प्रतिपादकमिदं दृश्यतामाचार्यपादवचनम् ॥

यथा वा—

"बुद्धिप्रसादं बलमिन्द्रियाणां धातुस्थिरत्वं ज्वलनस्य दीप्तिम् ।
चिराच्च पाकं वयसः करोति संशोधनं सम्यगुपास्यमानम्" । इति ॥

एवं प्रदुष्टकुपितदोषत्रयसंशोधनानाममीषां वमनादीनां नस्यान्तानां पञ्चानां कर्मणा-मेवायुर्वेदशास्त्रे सर्वथाऽबाधिता 'पञ्चकर्म' संज्ञा । नैव त्रिदोषानन्तर्भूतदुष्टरक्तनिर्हरणोपाये-ष्वन्तर्गतस्य सिराव्यधादेः पञ्चकर्मस्वन्तर्भावः । एतद्दृढीकारकमेवेदमाचार्यपादवचनम्—

शिराव्यधनिषेधप्रस्तावे—"प्रयुक्तेषु तथा पञ्चसु कर्मसु" इति ॥

अपिचाचार्यपादैरेवास्त्रविस्रावणस्यायुर्वेदशास्त्रसिद्धान्तितपञ्चकर्मान्तर्भावस्स्वमुखेन सुस्पष्टं विशदीक्रियते ॥

यथा वा—मदमूर्छायामयचिकित्साप्रतिपादनप्रस्तावे "पञ्चकर्माणि चेष्टानि, सेचनं शोणितस्य च" इति ॥

अतोऽस्मिन् विषयेऽतीन्द्रियविज्ञानसम्पन्नानामात्रेयप्रमुखानां त्रिकालाभिज्ञानामृषीश्वराणामनुशासनादणुमात्रमप्यव्यतिचलद्भ्य एतेभ्यः पूज्यपादेभ्योऽभ्युन्नतः को वापरः प्राड्विवाकोऽस्माभिः परिमार्गणीयः ॥

अथापि ममायमविनीतस्य वाचारंभो महात्मनां विद्वत्सार्वभौमानां च भवतामनर्घानेहोदुर्व्ययाधायकोऽपि बालिशेऽमुष्मिन् बाढमापतेत्सदयावलोक इत्यतिसुदृढप्रत्ययादेवानुद्विग्नान्तरङ्गेणेदमप्यन्तिमत्वेन प्रस्तूयते ॥

सर्वेषामपि संशोधनानां कर्मणामादावुपाङ्गत्वेनावश्यं प्रयोक्तव्यौ स्नेहः स्वेदश्चेति प्रागुपन्यस्तम् । तयोरितरजानपदीनैरगदङ्काराग्रिमैरप्यद्यावध्यप्रयुज्यमानाः केवलं केरलदेशीयानां कुशाग्रधिषणानां पुरातनानां भिषग्वर्याणामेवोपज्ञामात्रविषयाश्च केपि विविधाः प्रयोगविशेषा विद्यन्ते ॥

तत्र द्रोण्यां यथाविध्युपकल्पितायां शयानस्य शरीरमासमन्तात्स्नेहपरीषेकः (पिलिच्चल्) षष्टिकपिण्डस्वेदः (नवरक्किलि) चतुष्प्रकारमूर्धतैलान्तर्गतपरीषेकपिचुसंधारणशिरोवस्तीनां यथामयं संप्रयोगास्तथैतदन्तर्गतस्यैव परीषेकस्य प्रतिनिधित्वेन दोषदूष्यादिप्रयुक्तविशेषसापेक्षं तैलस्थाने सम्मिलिताभ्यां धात्रीक्वाथतक्राभ्यां, तरुणतरकेरनीरक्षीराभ्यां यथायोग्यमन्यैरपि वरीकुमार्यादिनिर्यासाद्यैस्सम्मिलिताभ्यां च प्रयुज्यमानो विशेषः (धारा) इत्येते परमग्रण्यो भवन्ति सुकृच्छ्राणामपि केषाञ्चिदामयविशेषाणां द्रुततरमत्भुतरूपोपशमप्रदायका उपक्रमविशेषाः॥ तथेतरदेशापेक्षयात्र केरलेषु प्रचुरतया अच्छपेयः, निरूहः, अनुवासनं, दुष्टशोणितस्य निर्हरणाय जलौकसां निपातस्तथान्ये च धात्रीकल्केन शिरसोऽवगुण्ठनमित्याद्याश्चर्यरूपफलप्रदायकाः प्रयुज्यन्तेऽत्र केरलेषु सुनिपुणं नैके चिकित्साविशेषाः ॥

परमपि वक्तव्यत्वेऽप्यस्य प्रसङ्गस्यातिपूर्वकत्वापातभयादशेषातिशेषसूरिजनप्रणतिपुरस्सरमतो विरमामः ॥



AYURVEDA AND ANDHRA STATE

Scheme for Advancement

by

Dr. A. Lakshmipathi

Superiority of Ayurveda

(1) It is admitted by all that, at the Present time. Ayurveda ministers to the needs of more than 80 per cent of the population of the Andhra State. It is the only kind of medical aid available in some rural areas. The popularity of Ayureda is not confined to the poor and illiterate. The patrons of Ayurveda are found not only among the intelligentia and the rich of the cities, but also among the practitioners of modern medicine. But, we must realise, that the Science and the Practice of Ayurveda should be *brought uptodate*, so that the Ayurvedic physician may make use of the modern advances of science, just as the village farmer now uses certain chemical manures. which have been tested and definitely found to yield better crops.

(2) Ayurveda, however, is more comprehensive as its objective, which is not merely the cure of disease, but is the development of the peace of mind, through knowledge of the soul leading to self realisation-moksha. The comprehensiveness of Ayurveda is illustrated by the rules of Dinacharya (the rules of hygiene in the daily conduct promoting self control (Indriya Jayam) and rules of diet (Pathya) and habits suitable to the season (Ritucharya) with special reference to the conditions prevailing in the country and climate.

(3) Ayurveda deals with the whole man giving special improtance to the temperament and constitution of each individual (Prakriti). Ayurveda recognises that the food of an individual influences not only the body, but also the mental activities and prescribe diet according to the various avocations which are classified as Saatwika (for intellectual workers), Raajasa (for soldiers) and Taamass (for manual workers).

(4) Ayurveda is essentially an Adhyaatmika Science (i. e.) the Science of the Soul or Spirit the Aatma, who is the dweller and the director of the body. By acquiring correct knowledge of Aatma and Anaatma, man is able to get rid of the fear of the disease, old age and death, which are the foremost of all miseries. (Duhkha Dhwamsa).

(5) The philosophy of Ayurveda is entirely different from that of modern medicine, which has a narrow materialistic outlook. As long as the superiority of Ayurveda in these respects is not accepted by the followers of modern medicine, Ayurveda should be free from the shackles imposed upon its progress by the mastership and guidance of doctors of modern medicine under whom all State Ayurvedic Institutions are now compelled to work. The Independence of India is achieved, but the independence of Ayurveda is still to be fought out. Ayurveda should be allowed to progress on its own lines and according to its own genius. Ayurveda is the mirror of the great Indian Culture. The study of Ayurveda is necessary in order to promote this culture.

(6) Ayurveda must no doubt take the aid of modern sciences and modern medicine in a large measure, particularly to improve the practice of surgery and midwifery and in the improved methods of sanitation and prevention of Infectious Diseases. Even the medicines and methods of treatment of acknowledged merit are quite welcome.

(7) The state cannot maintain two sets of Medical Officers rivalling each other. In times of emergencies such as an outbreak of epidemics, natural calamities and wars, all medical men must follow one descipline and work in a team under one leadership for the relief of distress. It is therefore essential that there should be a basic training for all medical practitioners, either Ayurvedic or otherwise, so that they may understand each other and work together not only in emergencies, but also in day today administration. Integration (Samanvaya) of all systems of medicine should therefore be brought about as quickly as possible.

(8) Although it is good to have a uniform standard for all medical practitioners, it can only remain as an ideal for the present in this country, The caste system must disappear from the hearts of all the medical practitioners, who should really feel that all of them are working with the one and only goal of service, each man doing his best according to his own capacity. Even men possessing the same degree or diploma cannot all have equal capacity. Their capacity depends upon their inherent qualities and deeds. (Guna and Karma),

(9) **Ayurvedic Education.** To meet our urgent needs of country-wide medical relief, we should organise to produce five kinds of Ayurvedic practitioners.

1. Fieldman at Village Level–Village Vaidya.
2. The products of Gurukula System–Vaidya Sastri.
3. Bachelors of Ayurveda–B.A.V.
4. Masters of Ayurveda–M.A.V.
5. Ayurveda Mahopadhyaya–D.A.V.

(1) **Fieldman at the Village Level.** They correspond to the Maistries in the Agricultural and Public works Departmant. They should have all essential practical knowledge of Ayurvedic Medicine, including a good working knowledge of

1. First Aid and Minor Surgery.
2. Maternity and Child Welfare.
3. Village Sanitation and prevention of Infectious Diseases.

The existing Village Vaidyas should be quickly trained in these subjects. This should be taken up as if it is a war measure, we should have atleast one training centre for them in each taluk, preferably attached to the Government taluk hospitals. The Commissioner for Government Examinations shall conduct an examination every six months for the Village Vaidyas trained under the scheme. The Village Vaidyas may also get themselves trained and coached up by qualified practitioners of modern medicine available in the neighbourhood, and appear for the examination.

(2) **The products of the Gurukula System.** There are at present several seats of learning in the Andhra State where reputed

scholars and practitioners of Ayurveda teach a few Ayurvedic Students attracted to them by their fame in certain Villages and Towns. Ayurveda is taught to them along with the Vedic and philosophic studies in the traditional manner. The Government of the Andhra State should prescribe a curriculum of studies for them covering a period of 4 years and the Commissioner for Government Examinations should conduct for them an examination for every half year. They shall be examined in the eight subjests of Ayurveda (Ashtaanga). They will be awarded the certificate of Vaidya Sastri after the passing of examination. The Government of undivided Madras State approved the scheme of Gurukula Education of Vaidyas and it is awaiting introduction.

(3) **Bachelors of Ayurveda (B.A.V.) Andhra University.** We should organise Ayurvedic Colleges to be affiliated by the Andhra University at the district level. We should have 12 to 15 Colleges in the Andhra State, one attached to every district or town hospital for providing more clinical and practical training for the students. The College should have attached to it one or more out-patient dispensaries and a hospital with 25 beds conducted on Ayurvedic lines. The curriculum of these Colleges, should be of the standard of graduate-Bachelor of Ayurveda–B.A.V. of the Andhra University. The scheme was already approved by the University. The eight subjects of Ayurveda and all the subjects of modern medicine should be systematically taught in these Colleges in an integrated manner. The regular College course shall be of $4\frac{1}{2}$ years with an intermentship of one year after the examination as a House Surgeon in one of the district, or taluk hospitals. The medium of instruction should be Telugu, freely borrowing English or Sanskrit words. There should be a condensed course of one and half years, to enable those who have passed the M.B.B.S. Examination to appear for the Bachelor of Ayurveda Examination.

(4) **The Central College of Ayurveda and the Research Institute.** A well equipped Central College of Ayurveda shall immediately be established at a place where a College of Modern Medicine

already existed. There should also be a special Ayurvedic Hospital with atleast 100 beds for clinical teaching in Ayurveda and for conducting Research.

There shall be 3 sections in this College,

(a) The Ayurveda Mahopadhyaya Section (D.A.V.)

(b) The Master of Ayurveda Section (M.A.V.)

(c) The Research and Ayurvedic Teachers Training Section.

Admission to this College should be restricted as follows to,

(1) Those who pass the B.A. Examination of any University with Sanskrit language or B.Sc. Examination with physics, Chemistry and Natural Science as optional.

(2) Those who pass the oriental title or degree examinations of the Andhra University or an examination considered equivalent thereto.

(3) Those who pass the L.I.M. Examination of the Govt College of Indigenous Medicine, Madras.

(4) Those who pass the examination of Bachelor of Ayurveda (B.A.V.) of the Andhra University.

(5) Those who pass the Ayurvedacharya Examination of the All-India Ayurveda Vidyapeetha or any examination considered equivalent thereto.

The medium of instructions in the College shall be Sanskrit, English or Telugu according to the convenience of the teacher. The course shall extend to 3 years including the interment period of one year as a house surgeon in a hospital before the final examination. There shall be 2 branches in this College.

(a) The Sanskrit Branch.

(b) The English Branch.

The examination for the 2 branches shall be conducted separately every year by the Andhra University. There may be some common classes, where certain basic subjects will be taught together. Special classes, will be held for each section in which the students have to make advanced studies in their respective subjects. The students of the Sanskrit section shall appear for the Ayurveda

Mahopadhyaya examination—D.A.V.—Doctor of Ayurveda and the student of English section shall appear for the Master of Ayurveda Examination—M.A.V.—Master of Ayurveda. Ayurveda shall be the main subject of study and modern medicine shall be the subsidiary subject for the Master of Ayurveda Examination. 33 per cent of the hours of the study shall be devoted to the common subjects and 66 per cent of the hours for the study of the special subjects of each branch.

There shall be a condensed course of 2 years to enable those who have passed the M.B.B.S. Examination to appear for Master of Ayurveda Examination. The Government of the Andhra State shall encourage graduates in the Modern Medicine who take post-graduate courses in Ayurveda by giving them preference in promotions and by appointing them as professors in Modern Medical Colleges and Ayurvedic Colleges.

The Research Section shall work in close collaboration with the two other sections collecting literary and clinical material and recording their statistics truthfully according to the observations made by them. The research section shall also condnct refresher courses for teachers who should be admitted specially for the purpose.

(10) **Registration of Ayurvedic Medical practitioners.** Although compulsary registration of all persons who practice medicine as a profession is an ideal to be attained, it should be made only optional for atleast the next 10 years in the Andhra State.

All Ayurvedic practitioners shall be registered in one register, in the alphabetical order, showing the qualification of the individual against his name. The First Central Board of Indian Medicine may be nominated and that board shall frame rules for the future elections to the board.

"Persons who have been allowed to Practice their profession for several years past should not at one stroke of legislative enactment be deprived of their livelihood and their individual right"–Chopra Committee Report Vol. I. Page 136. Those who are in practice for more than five years on the date of applying for registration as certi-

fied by the Collector of the district shall be allowed for registration in the register of medical practitioners to be maintained by the Central Board of Indian Medicine of the Andhra State. A period of 2 years shall be allowed during which the register may be left open for the registration of Ayurvedic Medical practitioners who have no special qualification recognised by the Government of the Andhra State, but are continuously in practice for a period of 5 years. However, those who do not possess any of the professional qualifications approved by the Government of the Andhra State, shall appear for atleast the Ayurveda part of the Village Vaidya Examination conducted by the Commissioner for Government Examinations and pass it within 3 years. Otherwise, their names will be removed from the register after 3 years just as the Village Officials who do not pass the required examinations will not be allowed to continue in their post. But, practitioners whose age is over 55 years at the time of their registration shall be exempted for the examination.

(11) **Registration of Vastaads, Masseurs and Daayis :**—The aim of Ayurveda is to promote positive health of the nation for the attainment of a happy and beneficial life (Sukham and Hitam) satisfying the four aspiration of Dharma, Ardha, Kaama and Moksha. The Ayurvedic physician should have supervision over the physical training activities in school and on Vastaads, Masseurs and Daayis, who should also be registered. Training centres shall also be organised for them in the Towns and Villages with co-operation of the Vaidya, who shall be an ex-officio member of the panchayats.

(12) **Preparation of Ayurvedic Medicines :**—It is good that every Ayurvedic Physician should make his own medicines, as he can generally get reliable crude drugs very cheap locally and the medicines so prepared will be most effective and to the satisfaction of the physician. But in accordance with the present tendency for easy going methods, factories for preparing the Ayurvedic medicines may be started at the places where the Ayurvedic Colleges are established, on the lines of the co-operative society now working at Adyar. But, the sale of the shares should not be restricted to a qualified Ayurvedic

physician, but they should be available for any one who applies for them. The factory will provide a good training ground for the students, who should be posted for practical training in small batches. The students should be prepared to engage themselves in manual labour whenever there is an opportunity for such work. The sales of these medicines to the public will be so considerable as to meet most of the expense of maintainance of free dispensaries and also supply the hospitals attached to the Colleges with the required medicines. To start with every district may have a factory on co-operative basis and manufacture enough medicines for the free dispensaries of the whole district.

CONCLUSION

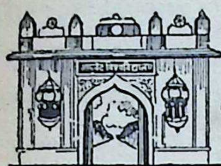
The suggestions are intended for the next 5 or 10 years. There will be cosiderable interchange of ideas between the practitioners of modern medicine and of Ayurveda, so that, before the end of 10 years, Ayurveda will be taught as a subject of special study in the Colleges of modern medicine, The Telugu language will be the medium of instruction in all Colleges including medical colleges and they have to borrow freely from the vocabulary of Ayurveda. The Ayurvedic Theories will then be understood and absorbed by medical practitioners and teachers of modern medicines. Till now, vested interests and foreign rule were great obstacles retarding the integration of both the sciences. Truth will always succeed. Ayurveda is very comprehensive as the Science of Life and it will, as stated by Charaka, ever grow and grow till it absorbs all that is useful in modern medicine. It is ancient but ever new (Puraanamcha Punarnavam)

Our main objectives are three :—

1. Rapid expansion of Rural Medical Service.
2. Improvement of Educational Faculties in Ayurveda.
3. Promotion of Intensive Research.

The Government have given the recognition that was long denied to them. The Vaidyas should exert themselves for their uplift. They should not depend upon the government for everything.

Madras.
25th March, 1954.



आयुर्वेद विश्वविद्यालय

श्री चन्द्रभानु गुप्त द्वारा कालीकमलीवाला क्षेत्र का निरीक्षण

आयुर्वेद विश्वविद्यालय को सहायता का आश्वासन

हरिद्वार—गत १४ अप्रैल को प्रातः साढ़े सात बजे श्री चन्द्रभानुजी गुप्त, मन्त्री, स्वास्थ्य तथा खाद्य विभाग, उत्तर प्रदेश, बाबा कालीकमलीवाले के 'आत्म विज्ञान भवन' ऋषिकेश में पधारे। क्षेत्र के संयुक्त मन्त्री राय बहादुर पं० श्रीदत्तजी ने अभिनन्दन पत्र भेंट किया, जिसमें बाबा कालीकमलीवाले पंचायती क्षेत्र, आयुर्वेद सेवा समिति, आयुर्वेद विद्यापीठ, आयुर्वेद महासम्मेलन चारों संस्थायें सम्मिलित होकर जो यहां आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना कर चुकी हैं, उसकी घोषणा करते हुए कहा कि देश के मुख्य ६० विद्यालय इससे सम्बन्धित हो चुके हैं। अन्त में पण्डित जी ने कहा कि विद्यापीठ का कार्यालय दिल्ली से यहां आ गया है। हमारी पांच वर्ष की योजना में ५० लाख रुपये की निधि बनाकर विश्वविद्यालय को स्थायी रूप दे देना है। विश्वविद्यालय का कार्य मई-जून से आरम्भ हो जायेगा। अन्त में पण्डित जी ने गुप्ताजी तथा आगन्तुक महानुभावों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा कि उक्त विद्यालय सर्वाङ्ग पूर्ण तभी हो सकता है, जब कि उसके साथ रुग्णालय, अस्पताल भी हो। चेष्टा की जायगी कि क्षय रोग का अस्पताल आगामी दिसम्बर तक हम यहां पर बना दें। श्री गुप्ता जी ने अभिनन्दन पत्र का उत्तर देते हुए आश्वासन दिया कि रुग्णालय होने पर सहायता दिलाने की चेष्टा करूंगा। आपने 'आत्म-विज्ञान भवन' में आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना होने का उद्देश्य बहुत उत्तम बतलाया। आपने आत्मविज्ञान भवन को घूमकर देखा और उस की रचना और स्थानों को देखकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की।

विश्वविद्यालय कोष में मुक्तहस्त से दान दीजिये।

आयुर्वेद लोक

१६ वें बिहार प्रांतीय वैद्य सम्मेलन का कार्य-विवरण

बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन का १६ वां अधिवेशन टाउनहाल, मुजफ्फरपुर में २१-२-१९५४ को श्री वैद्यनाथ मिश्र साहित्यायुर्वेदाचार्य, के सभापतित्व में बड़ी धूम-धाम और चहल-पहल के बीच सम्पन्न हुआ। सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष श्री पं० रामदेव ओझा, आयुर्वेदाचार्य थे और इसका उद्‌घाटन बिहार राज्य के यातायात, सूचना तथा उद्योगमन्त्री माननीय श्री महेशप्रसादसिंह ने किया।

२१ फरवरी १९५४ को ५॥ बजे अधिवेशन के उद्‌घाटन कर्त्ता पधारे। सम्मेलन का उद्‌घाटन करते हुए आपने कहा कि आयुर्वेद का सूर्य अब बादलों से अधिक दिनों तक घिरा न रह सकेगा। भूगर्भ में पड़े रत्न को निकालने में जिस प्रकार परिश्रम, लगन, धैर्य एवं अध्यवसाय की आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार आयुर्वेद रत्न को जो सदियों की गुलामी, विदेशी सभ्यता आदि के कारण छिपा पड़ा है, उसे निकालना वैद्यों का कर्त्तव्य है। जनता की मनोवृति को दवाओं के प्रयोग के समय, समय की गतिविधि, कार्यभार की व्यस्तता को ध्यान में रखते हुए कुछ सुविधा वैद्यों को ध्यान में रखनी चाहिएं। आज की जनता दीर्घ समय साध्य दवाओं के अनुपान को पसन्द नहीं करती इत्यादि बातें ध्यान में दिये बिना हम जनता के समीप पहुंचने में बाधा अनुभव करेंगे। आपने मुख्यमन्त्री की तथा निजी आयुर्वेद प्रियता बताते हुए देशी दवाओं के बराबर सेवन करते रहने के सम्बन्ध में अपने अनुभव व्यक्त किए।

तदनन्तर स्वागताध्यक्ष पं० श्री रामदेव ओझा, आयुर्वेदाचार्य, काव्य सांख्य पुराण तीर्थ ने अपने स्वागत भाषण में आयुर्वेद के मूल आधार, त्रिदोष, पथ्य विचार को बड़े वैज्ञानिक ढंग से रखा। विटामिन के सिद्धांतों को आयुर्वेद के अन्तर्गत बताते हुए उन्होंने आर्य सिद्धांत को वैज्ञानिक ढंग से उपस्थित किया।

सभापति का भाषण

इसके पश्चात् सभापति पं० श्री वैद्यनाथ मिश्र, साहित्यायुर्वेदाचार्य, ने अपना विस्तृत गम्भीर व्याख्यान प्रारम्भ करते हुए यह विचार व्यक्त किया कि इस समय आयुर्वेद

महाविद्यालयों में जो मिश्रायुर्वेद की शिक्षा दी जा रही है उससे आयुर्वेद और आयुर्वेद स्नातक किसी का भी हित साधन नहीं हो सकता।

आयुर्वेद में नवीन विज्ञान और ऐलोपैथी के समन्वय की अनुपयोगिता सिद्ध करते हुए आपने कहा कि आयुर्वेद की अपर्याप्तता दूर करने के लिए यदि नवीन विज्ञान और ऐलोपैथी की शिक्षा आयुर्वेद छात्रों को दी ही जानी चाहिए, तब तो सर्वप्रथम आयुर्वेद के अपर्याप्त स्वरूप तथा उसकी पूर्ति के प्रकार पर विचार होना आवश्यक है। नवीन विज्ञान तथा ऐलोपैथी का आयुर्वेद छात्रों को अध्ययन कराने से आयुर्वेद की न्यूनता दूर नहीं हो सकती। आयुर्वेद स्वतन्त्र अभिवृद्धि पाकर ही बढ़ सकता है।

वैद्यों का रजिस्ट्रेशन—श्री मिश्र जी ने वैद्यों के रजिस्ट्रेशन के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा कि राज्य के सभी वैद्यों को रजिस्ट्रेशन करा लेना चाहिए। रजिस्टर्ड वैद्यों को बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन में अपना प्रतिनिधि भेजने का और रोगियों की बीमारी, योग्यता तथा छुट्टी के सर्टिफिकेट देने का अधिकार होगा।

देशी चिकित्सा विकास बिल—श्री वैद्यनाथ मिश्र ने देशी चिकित्सा विकास बिल की आलोचना करते हुए कहा कि आयुर्वेदिक कौंसिल तथा आयुर्वेदिक फैकेल्टी में वैद्यमत की नितान्त उपेक्षा की गई है और उनमें सरकार द्वारा मनोनीत तथा पद से आये हुए व्यक्तियों की ही प्रधानता है। आयुर्वेद की संस्थाएं वैद्यों के हाथ में ही होनी चाहियें।

केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद्—केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् की आयुर्वेद विरोधी नीति पर खेद प्रकट करते हुए आपने कहा कि केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् में एक भी वैद्य नहीं है, फिर भी आयुर्वेद की शिक्षा प्रशिक्षा तथा चिकित्सा के सम्बन्ध में केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् की बैठकों में विचार किया जाता है।

वैद्य संगठन—पं० मिश्र जी ने वैद्य संगठन पर प्रकाश डालते हुए कहा कि गत पांच वर्षों के आपसी मतभेद के कारण प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन में जो गतिरोध हो गया था, वह मिट चुका है। हमको अब बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की छत्रछाया में बैठकर अपना निश्चय कर लेना चाहिए कि इस समय हमें क्या करना है।

आयुर्वेद और सरकार—अध्यक्ष पं० वैद्यनाथ मिश्र ने आयुर्वेद की उपयोगिता तथा सरकार की विमुखता का जिक्र करते हुए कहा कि भारतवर्ष का आयुर्वेद विज्ञान अत्यन्त उच्चकोटि का पहुंचा हुआ शास्त्र है, उसकी साधना महान् है। फिर भी हमारी सरकार इस आयुर्वेदीय विज्ञान के प्रति उतना ध्यान नहीं देती, जितना कि ऐलोपैथी के प्रति। उन्होंने कहा कि ग्रामीणों का अधिकाधिक लाभ आयुर्वेद से ही संभव है। अतः सरकार को इस प्रश्न पर परिवर्तित दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए।

सभापति के भाषण के बाद सम्भाषा परिषदें भी हुईं। द्रव्यगुण परिषद् का सभा-

पतित्व वेगूसराय के अयोध्या शिवकुमारी आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रिंसिपल पं० ब्रह्मदत्त जी शर्मा ने और चिकित्सा परिषद् तथा दर्शन परिषद् का सभापतित्व मुजफ्फरपुर के धर्म समाज संस्कृत कालेज के आयुर्वेदाध्यापक पं० श्री रामोदार मिश्र आयुर्वेदाचार्य ने किया।

सम्मेलन के सभापति पं० श्री वैद्यनाथ मिश्र शास्त्री ने १९५४-१९५५ के लिए पदाधिकारियों की निम्नलिखित नामावलि घोषित की।

पदाधिकारी

अध्यक्ष--पं० श्री वैद्यनाथ मिश्र शास्त्री, उपाध्यक्ष—पं० श्री रामदेव ओझा, पं० श्री कालिकाप्रसाद मिश्र, पं० श्री हरिनारायण चतुर्वेदी, पं० श्री गंगाधर शर्मा, पं० श्री सुरेन्द्रमोहन भट्ट, पं० श्री श्रीकृष्ण मिश्र, पं० श्री गोस्वामी भैरवगिरि, प्रधान मंत्री--पं० जगदीश नारायण शर्मा, संयुक्त मंत्री--पं० हरिशंकर प्रसाद पाठक, सहायक मंत्री—पं० सुरेन्द्र नाथ ओझा, कोषाध्यक्ष—पं० रामोदार मिश्र।

प्रस्ताव

सम्मेलन में लगभग १७ महत्वपूर्ण तथा उपयोगी प्रस्ताव पास किये गए जिनमें बिहार सरकार से स्वास्थ्य परिषद् में प्रधानतया वैद्यों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने, बोर्डों द्वारा संचालित ऐलोपैथिक अस्पतालों में आयुर्वेदिक विभाग खोलने, बिहार राज्य के विभिन्न भागों में अधिकाधिक आयुर्वेदीय औषधालय स्थापित करने, राजयक्ष्मा की चिकित्सा के लिये आयुर्वेद का उपयोग करने तथा १०० शैयाओं के एक आयुर्वेदिक सैनिटोरियम स्थापित करने, राज्य में आयुर्वेदीय एक सुसम्पन्न अनुसंधानशाला खोलने, प्रस्तावित संस्कृत कालेजों के प्रिंसिपलपदों पर एम०ए० पास अंग्रेजी विद्वानों के बजाय संस्कृत के विशेषज्ञों को ही नियुक्त करने का अनुरोध किया गया। इनके अतिरिक्त एक प्रस्ताव द्वारा सम्मेलन ने बम्बई राज्य द्वारा अपने राज्य में शुद्ध आयुर्वेदिक पाठचक्रम चालू करने पर धन्यवाद दिया तथा एक अन्य प्रस्ताव द्वारा बिहार राज्य सरकार से बम्बई सरकार की शुद्धायुर्वेद की योजना की तरह योजना को स्वीकृत करने का अनुरोध किया गया।

राजवैद्य श्री नन्दकिशोरजी तथा स्वामी श्री जयरामदासजी भिषगाचार्य का अभिनन्दन

आयुर्वेद महासम्मेलन के कोट्टकल अधिवेशन से लौटते हुए बम्बई के वैद्यबन्धुओं के आग्रह से विद्यापीठ के सभापति जी ने ३ दिन बम्बई में रहकर वहां की आयुर्वेदिक संस्थाओं का निरीक्षण किया। बम्बई स्टेशन पर आपके स्वागतार्थ बहुत से प्रमुख वैद्य एकत्रित थे। सेठ श्री रामरिखदास जी परमुरामपुरिया के बंगले में वालकेश्वर रोड पर आपका आतिथ्य सत्कार किया गया। प्रमुख संस्थाओं में पोद्दार आयुर्वेदिक कालेज व हास्पिटल तथा यूनिवर्सल हेल्थ इंस्टीच्यूट का आपने ध्यान से परिचय प्राप्त किया।

ता० १७ मार्च सन् ५४ को सायं ५ बजे बम्बई वैद्य सभा, आयुर्वेद हितैषिणी सभा,

श्री राजस्थान आयुर्वेदिक सोसायटी, बम्बई आयुर्वेदिक सोसायटी तथा अन्यान्य संस्थाओं की ओर से यूनिवर्सल हेल्थ इंस्टीच्यूट, बुद्ध भवन में आपका तथा स्वामी श्री जयराम दास जी का स्वागत समारोह किया गया। इसमें बम्बई के सभी प्रमुख वैद्य उपस्थित थे। आयुर्वेद मार्तण्ड श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य के सभापतित्व में सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा जी, वैद्य श्री कन्हैया लाल जी भेड़ा, वैद्य वामनराव दीनानाथ, वैद्य गजानन जी, वैद्य रामस्वरूप जी आदि महानुभावों ने आप दोनों का प्रशस्त परिचय एवं व्यक्तित्व का दिग्दर्शन कराया। वैद्य महावीर प्रसाद जी, श्रीराम जी, घीसालाल जी आदि ने स्वागतपद्य पढ़कर सुनाये। अभिनन्दन पत्र समर्पित करते हुए श्री यादव जी महाराज ने भी आपकी विद्वत्ता एवं गुणगरिमा की बहुत प्रशंसा की।

मान पत्र के उत्तर में श्री राजवैद्यजी ने अपने भाषण में कहा कि आज मैं सौभाग्य वश इस पत्र के रूप में श्री यादव जी महाराज का आशीर्वाद ग्रहण करने में समर्थ हो सका हूँ। इसे आप मेरा अभिनन्दन नहीं—श्री यादव जी का दिया हुआ सर्टिफिकेट समझिये। आपने श्री यादव जी महाराज के आदर्श चरितों की अतीव प्रशंसा की। राजस्थान में आयुर्वेद के विकास परम्परा पर पर्याप्त प्रकाश डालते हुये वर्तमान में जो स्थिति है उसे वतलाया और अपने को स्व० स्वामी लक्ष्मीराम जी के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सचेष्ट एक आयुर्वेद सेवक के रूप में कार्य करने का उदाहरण दिया। राजस्थान में आयुर्वेद का शुद्ध मूर्त स्वरूप सुरक्षित रखने में कितना प्रयास हो सका है और भविष्य में राजपुताना यूनिवर्सिटी में आयुर्वेद फेकल्टी की स्थापना तथा आपके अधीनस्थ राजस्थान राज्य के आयुर्वेद विभाग को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है यह भी संकेत किया। आपका यह निर्भ्रान्त मत रहा है कि आयुर्वेद की सुरक्षा अब वैद्यों द्वारा ही हो सकती है। चिकित्सा-चातुर्य से जन साधारण को प्रभावित कर एवं अध्यापन श्रमकला से सुनिष्णात अभिमानी स्नातक बना कर ही हम इस शास्त्र का उद्धार कर सकते हैं।

स्वामी श्री जयराम दास जी ने भी संक्षिप्त सारगर्भित भाषण दिया अन्त में समस्त सभाओं के मन्त्रियों द्वारा अभिनन्दन, धन्यवाद, पुष्पहार, समर्पण आदि के अनन्तर कार्यवाही समाप्त हुयी।

परशुरामपुरिया आ० कालेज--सीकर

इस वर्ष राजस्थान-शिक्षा विभाग की ओर से इस कालेज को ६१५०) वार्षिक सहायता के रूप में प्रदान किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि कुछ दिन पूर्व राजस्थान सरकार के शिक्षामन्त्री श्रीयुत भोलानाथ मास्टर कालेज में पधार कर कालेज का निरीक्षण करके बहुत प्रभावित हुए और उपरोक्त सहायता प्रदान की।

श्वास चिकित्सा शिवर, सीकर

झुंझनू जिले के मंडावा नगर में तारीख ५ से ७ अप्रैल तक वहां की श्री नवयुवक

सभा के तत्वावधान में श्वास रोग की चिकित्सार्थ एक शिविर लगाया गया। इसमें २०० रोगियों की सफल चिकित्सा की गई।

रोगियों के निवास, भोजन और परिचर्या की व्यवस्था श्री नवयुवक सभा की ओर से निःशुल्क की गई थी।

दमा जैसे कठिन रोग की अचूक चिकित्सा के शिविर का यह चौथा आयोजन मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी की ओर से किया गया था। इससे पूर्व बीकानेर, श्री महावीर जी और धोबलाई में बड़े-बड़े शिविर किये जा चुके हैं। इन चिकित्सा शिविरों की सफलता का एकमात्र कारण सीकर की माधव सेवा समिति के प्रधान चिकित्सक वैद्य श्रीप्रह्लादरायजी शर्मा की श्वास रोग के लिये निकाली गई एक विशेष दवा है। दवा केवल ३ दिवस दी जाती है और हरेक प्रकार का नया या पुराना दमा दूर हो जाता है। वैद्य जी दवा निःशुल्क वितरण करते हैं।

हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन शमशेरगंज, नाहन

२४-२५ अप्रैल को हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन की कार्यकारिणी का विशेषाधिवेशन सिरमौरीताल श्री यशमन्तराय हकीम की अध्यक्षता में हुआ। यह सम्मेलन विशेषकर वनस्पतियों की खोज के लिए रखा गया था। यह स्थान गिरि नदी जमना के संगम पर है बड़ा सुरम्य और वनस्पति प्रधान इलाका है। प्रथम दिवस पर प्रातः १० बजे सदस्यगण पहुंच गए थे। कार्यकारिणी के सदस्यों के अतिरिक्त श्री शिवानन्द एम. एल. ए., श्री कल्याणसिंह, स्थानीय वैद्य व डाक्टर महकमा जंगलात के कर्मचारी भी सम्मिलित थे। प्रथम दिन जलक्रीड़ा भ्रमण किया। रात्रि को कार्याकारिणी की बैठक हुई। इसमें सम्मेलन कार्य के अतिरिक्त हिमाचल सरकार से यह मांग की गई कि आयुर्वेद को ऐलोपैथी से पृथक् किया जावे। एक विस्तृत योजना वनस्पतियों के विषय में प्रस्तुत की गई। दूसरे दिन ९ मील की यात्रा की इसमें स्थानीय वनस्पतियां देखीं वा उन पर अपने-अपने अनुभव बताए। प्रीति भोजन के साथ सभा विर्सजित हुई।

Committee on Ayurveda meets

Bezwada April 30, A meeting of the Committee on Ayurveda, constituted by the Government of Andhra was held at Bezwada this afternoon at the residence of Sri Nori Rama Sastri Guru.

Seven out of eleven members were present, and Dr. Lakshmipathi of Madras, Chairman, presided.

Subjects relating to Ayurvedic Education, Registration of Vaidyas, Village Vaidya Training and Research in Ayurveda were discussed and tentative resolutions were adopted.

The committee will meet again after receiving the regular Government Order giving the terms of reference to the committee.

A. Lakshmipathi
Chairman

उत्तरप्रदेशीय कार्यवाहक वैद्यसम्मेलन

आवश्यक सूचना

समस्त वैद्यसमाज को विशेषतया उत्तरप्रदेश के वैद्य महानुभावों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि कई वर्ष से उत्तरप्रदेश आयुर्वेद सम्मेलन पर चल रहा अभियोग समाप्त हो गया है। यह भी अति हर्ष का विषय है कि पिछले मास बरेली में उत्तरप्रदेश के प्रमुख वैद्य बन्धुओं ने मिलकर सम्मेलन को पुनः संगठित करने का प्रयास किया है। महासम्मेलन की नीति सदैव यह रही है कि वह राज्य आयुर्वेद सम्मेलनों के मामलों में न्यूनातिन्यून हस्तक्षेप करे—इस कारण वह कार्यक्रम जो अप्रैल मास की पत्रिका में उत्तरप्रदेशीय कार्यवाहक वैद्य सम्मेलन के लिये घोषित किया गया था जुलाई मास के अन्त तक स्थगित किया जाता है।

कार्यवाहक वैद्य सम्मेलन के अब तक बनें सभी सदस्य महानुभाव बरेली सम्मेलन के निश्चयानुसार उसी नवीन संगठन, जिसको चलानें के लिए श्री अमरनाथ जी वैद्य, देहरादून, संयोजक नियुक्त हुए हैं, के सदस्य माने जायेंगे। इन सदस्यों की सूची इनके पते सहित संयोजक महोदय के पास भेज दी गई है। सदस्य शुल्क स्वरूप प्राप्त उनके दो रुपये में से एक एक रुपया नवीन योजना के अन्तर्गत देय शुल्क के रूप में संयोजक महोदय को भेज दिया जायगा। शेष धन जो कार्यवाहक सम्मेलन के सदस्यों का महासम्मेलन के पास रहेगा, वह स्थायी समिति की अनुमति लेकर उनको लौटा दिया जायगा अथवा जैसा स्थायी समिति निश्चय करेगी वैसा किया जायगा।

महासम्मेलन की हार्दिक इच्छा है कि बरेली सम्मेलन से आयोजित संगठन का कार्य सफल हो। एतदर्थ कार्यवाहक वैद्य सम्मेलन का कार्य अभी स्थगित किया जाता है किन्तु यदि किसी कारणवश उत्तरप्रदेशीय वैद्य सम्मेलन का संगठन सम्पन्न न होसका तो कार्यवाहक वैद्य सम्मेलन का कार्य अगस्त मास से पुनः प्रारम्भ कर दिया जायगा। इस समय हमारा उत्तरप्रदेश वैद्य समाज से यह आग्रह है कि अपने राज्य में आयुर्वेदिक सम्मेलन के संगठन का पुनरुद्धार करने के लिए श्री अमरनाथ जी वैद्य, देहरादून, को पूर्ण सहयोग दें।

गुरुदत्त
निर्वाचनाध्यक्ष,
उत्तरप्रदेशीय कार्यवाहक वैद्य सम्मेलन

कार्यालय,
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन,
चांदनी चौक, देहली।

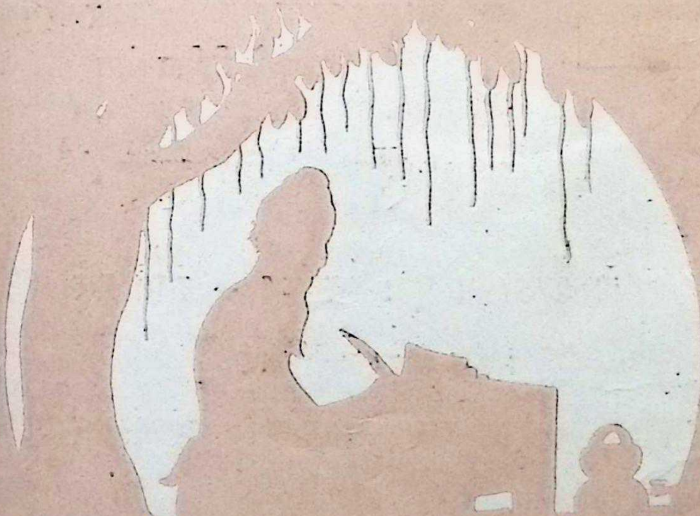
———





अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—कैक्स्टन प्रेस, नई दिल्ली।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका



प्रधान सम्पादक

कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि

संस्कृत-विभाग सम्पादक

बी. बी. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः

विषय-सूची

विषय-सूची

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक—कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि ।
संस्कृत विभागसम्पादकः— वा. बा. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४० अंक ६ | **दिल्ली, ज्येष्ठ २०११, जून १९५४** | वार्षिक ५) एकप्रति ॥)

सम्पादकीय—

वैद्यसमाज से निवेदन

राजनीतिक दृष्टि से किसी भी संस्था की शक्ति उसके संगठन से आंकी जाती है और उस संगठन का मूलाधार होता है उसका सदस्य । जिस संस्था की सदस्यता जितनी अधिक होगी और दूर दूर तक जिसकी शाखाएं समाज में उतरी होंगी उतनी ही उस संस्था को अपने उद्देश्य की प्राप्ति में राजनीतिक दृष्टि से सफलता मिलेगी । निस्सन्देह आयुर्वेदिक संगठन शुद्ध वैज्ञानिक संगठन है जिसका कार्य मानव मात्र की सेवा करना और उसके कल्याण के हेतु नई नई खोज करना है । परन्तु आज दुर्भाग्यवश आयुर्वेद को नष्ट भ्रष्ट करने के लिए राजनीतिक प्लेटफार्म और सत्ता का उपयोग किया जाने लगा है । आज के युग मे जो कि प्रचार का युग है, कभी २ प्रचार द्वारा सत्य को भी असत्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है । साधारणतः जनता इस प्रचारवाद के धोखे में फँस जाती है और उसे सत्य को सत्य समझने में बहुत कठिनाई उठानी पड़ती है । तात्पर्य यह है कि आयुर्वेद उतना ही सत्य है जितना कि सत्य अपने आप में सत्य है । उसे किसी प्रचारवाद की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए थी । परन्तु प्रजातन्त्र के युग में हर वस्तु को राजनीतिक स्टेज पर आकर सुसंगठित प्रदर्शन करना होता है । तब ही जाकर वह अपने अस्तित्व को स्थिर रख पाती है । आयुर्वेद को भी आज उस प्रकार के सुदृढ़ संगठन की आवश्यकता है । हमें कोई नया संगठन नहीं बनाना है । हमारा संगठन पुराना है । **अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन** जिसे सारा भारतवर्ष और भारत के बाहर के देश भी जानते हैं । अभी इस वर्ष के मार्च मास में शंकराचार्य की पवित्र भूमि दक्षिण भारत के मालाबार प्रान्तस्थ कोट्टकल नगर में इसका ३६

वां अधिवेशन श्री पं० शिवशर्मा जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। गत वर्ष से सम्मेलनाध्यक्ष के उत्तरदायित्वपूर्ण भार को अपने कंधों पर संभाले हुए इस वीर सैनानी ने इस वर्ष दक्षिण में शंखनाद फूंका और सभी को सामयिक चेतावनी दी और आने वाले खतरों से आगाह किया। उसी आधार पर आज हम भी आपसे कहना चाहते हैं कि अपने इस सम्मेलन को और शक्तिशाली बनायें—दृढ़ता प्रदान करें। ऐसा आप इसकी सदस्य संख्या बढ़ाकर कर सकते हैं। हमारी सदस्य संख्या जितनी अधिक होगी उतनी ही हमारी शक्ति संगठित होगी और दूर दूर तक हम अपनी आवाज पहुंचा सकेंगे। इस प्रजातंत्र के युग में शक्ति का मुख्य स्रोत प्रजा ही में सन्निहित है और प्रजा को प्रभाहित करने के लिए आवश्यकता होती है अनुकूल वातावरण बनाने की। इस अनुकूल वातावरण की सृष्टि एक सुदृढ़ और सुव्यवस्थित संगठन द्वारा ही सम्भव है जो प्रजा की शक्ति द्वारा अपने ध्येय को प्राप्त करने में सफलता पा सके। अतएव हमें अधिक से अधिक शक्तिसम्पन्न बनने के लिए महासम्मेलन के अधिक से अधिक सदस्य बनाने चाहियें। यह कार्य कोई कठिन नहीं है, आइये हम अपने पड़ौसी वैद्य से मालूम करें कि वे अपनी एक मात्र अखिल भारतीय संस्था के सदस्य हैं अथवा नहीं। यदि नहीं तो आज ही उन्हें प्रेरणा दीजिए कि वे इसके सदस्य स्वयं बनें और नये सदस्य बनाते जायं। वर्तमान सदस्यों में से प्रत्येक सदस्य यदि प्रतिवर्ष पांच सदस्य नये बनाने की प्रतिज्ञा करले तो यह कार्य सहज ही सम्पन्न हो जायेगा और संगठन को शक्ति मिलेगी तथा आयुर्वेद को उसके उचित स्थान पर प्रतिष्ठित कराने में हायक होंगे। इसमें ही हमारा भला है और भारत की जनता का भला है।

महासम्मेलन के सदस्य बनाने में आज ही से जुट जाइये।

—कैलाशचन्द्र अग्रवाल।



अभ्यर्थना

आयुर्वेदे तन्मूलाधारदर्शनेषु च मर्मावगाहिनो निष्कृष्टज्ञानस्य प्राप्तिः तद्व्‌योऽभिवृद्धिश्च संकृतेनैव सर्वोत्तमतया कर्त्तुं शक्यते न भाषान्तरेण इति स्थिरो निश्चयः। अतो विबुधाः सर्वे भिषजः अस्यां पत्रिकायां प्रतिमासं प्रकाशार्थं आयुर्वेद शास्त्रीयविषयान् सरलसंस्कृतभाषायां निबद्ध्य, निम्ननिर्दिष्ट-संकेताय कृपया प्रेषयन्तु इति सानुनयमभ्यर्थ्यते।

V. B. Nataraja Shastri, Ayurvedacharaya.
Atreyashrama,
Tennur Road,
Trichinopoly, (Madras).

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक—कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि ।

संस्कृत विभागसम्पादकः— वा. बा. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः.

पत्रिका कार्यालय— महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४० अंक ६ | दिल्ली, ज्येष्ठ २०११, जून १९५४ | वार्षिक ५) एकप्रति ॥)

सम्पादकीय—

वैद्यसमाज से निवेदन

राजनीतिक दृष्टि से किसी भी संस्था की शक्ति उसके संगठन से आंकी जाती है और उस संगठन का मूलाधार होता है उसका सदस्य। जिस संस्था की सदस्यता जितनी अधिक होगी और दूर दूर तक जिसकी शाखाएं समाज में उतरी होंगी उतनी ही उस संस्था को अपने उद्देश्य की प्राप्ति में राजनीतिक दृष्टि से सफलता मिलेगी। निस्सन्देह आयुर्वदिक संगठन शुद्ध वैज्ञानिक संगटन है जिसका कार्य मानव मात्र की सेवा करना और उसके कल्याण के हेतु नई नई खोज करना है। परन्तु आज दुर्भाग्यवश आयुर्वेद को नष्ट भ्रष्ट करने के लिए राजनीतिक प्लेटफार्म और सत्ता का उपयोग किया जाने लगा है। आज के युग म जो कि प्रचार का युग है, कभी २ प्रचार द्वारा सत्य को भी असत्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है। साधारणतः जनता इस प्रचारवाद के धोखे में फँस जाती है और उसे सत्य को सत्य समझने में वहुत कठिनाई उठानी पड़ती है। तात्पर्य यह है कि आयुर्वेद उतना ही सत्य है जितना कि सत्य अपने आप में सत्य है। उसे किसी प्रचारवाद की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए थी। परन्तु प्रजातन्त्र के युग में हर वस्तु को राजनीतिक स्टेज पर आकर सुसंगठित प्रदर्शन करना होता है। तब ही जाकर वह अपने अस्तित्व को स्थिर रख पाती है। आयुर्वेद को भी आज उस प्रकार के सुदृढ़ संगठन की आवश्यकता है। हमें कोई नया संगठन नहीं बनाना है। हमारा संगठन पुराना है। **अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन** जिसे सारा भारतवर्ष और भारत के वाहर के देश भी जानते हैं। अभी इस वर्ष के मार्च मास में शंकराचार्य की पवित्र भूमि दक्षिण भारत के मालाबार प्रान्तस्थ कोट्टकल नगर में इसका ३९

वां अधिवेशन श्री पं० शिवशर्मा जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। गत वर्ष से सम्मेलनाध्यक्ष के उत्तरदायित्वपूर्ण भार को अपने कंधों पर संभाले हुए इस वीर सैनानी ने इस वर्ष दक्षिण में शंखनाद फूंका और सभी को सामयिक चेतावनी दी और आने वाले खतरों से आगाह किया। उसी आधार पर आज हम भी आपसे कहना चाहते हैं कि अपने इस सम्मेलन को और शक्तिशाली बनायें—दृढ़ता प्रदान करें। ऐसा आप इसकी सदस्य संख्या बढ़ाकर कर सकते हैं। हमारी सदस्य संख्या जितनी अधिक होगी उतनी ही हमारी शक्ति संगठित होगी और दूर दूर तक हम अपनी आवाज पहुंचा सकेंगे। इस प्रजातंत्र के युग में शक्ति का मुख्य स्रोत प्रजा ही में सन्निहित है और प्रजा को प्रभाहित करने के लिए आवश्यकता होती है अनुकूल वातावरण बनाने की। इस अनुकूल वातावरण की सृष्टि एक सुदृढ़ और सुव्यवस्थित संगठन द्वारा ही सम्भव है जो प्रजा की शक्ति द्वारा अपने ध्येय को प्राप्त करने में सफलता पा सके। अतएव हमें अधिक से अधिक शक्तिसम्पन्न बनने के लिए महासम्मेलन के अधिक से अधिक सदस्य बनाने चाहियें। यह कार्य कोई कठिंन नहीं है, आइये हम अपने पड़ौसी वैद्य से मालूम करें कि वे अपनी एक मात्र अखिल भारतीय संस्था के सदस्य हैं अथवा नहीं। यदि नहीं तो आज ही उन्हें प्रेरणा दीजिए कि वे इसके सदस्य स्वयं बनें और नये सदस्य बनाते जायं। वर्तमान सदस्यों में से प्रत्येक सदस्य यदि प्रतिवर्ष पांच सदस्य नये बनानें की प्रतिज्ञा करले तो यह कार्य सहज ही सम्पन्न हो जायेगा और संगठन को शक्ति मिलेगी तथा आयुर्वेद को उसके उचित स्थान पर प्रतिष्ठित कराने में हायक होंगे। इसमें ही हमारा भला है और भारत की जनता का भला है।

महासम्मेलन के सदस्य बनानें में आज ही से जुट जाइये।

—कैलाशचन्द्र अग्रवाल।

अभ्यर्थना

आयुर्वेदे तन्मूलाधारदर्शनेषु च मर्मावगाहिनो निष्कृष्टज्ञानस्य प्राप्तिः तद्भूयोऽभिवृद्धिश्च संकृतेनैव सर्वोत्तमतया कर्त्तुं शक्यते न भाषान्तरेण इति स्थिरो निश्चयः। अतो विबुधाः सर्वे भिषजः अस्यां पत्रिकायां प्रतिमासं प्रकाशार्थं आयुर्वेद शास्त्रीयविषयान् सरलसंस्कृतभाषायां निबद्धय्, निम्ननिर्दिष्ट-संकेताय कृपया प्रेषयन्तु इति सानुनयमभ्यर्थ्यते।

V. B. Nataraja Shastri, Ayurvedacharaya.
Atreyashrama,
Tennur Road,
Trichinopoly, (Madras).

मस्तिष्क सुषुम्नाज्वर (कण्ठ-कुब्ज-ज्वर)×

(Cerebro-Spinal-Fever)

कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी, आयुर्वेदालंकार

प्रधान-चिकित्सक, राजकीय आयुर्वेद-चिकित्सालय, हैदराबाद दक्षिण

शरीर या मस्तिष्क में कफ़-प्रकोप या त्रिदोष का प्रकोप हो और एक विशेष प्रकार के जीवाणु (मेनिंजोकोकस) का यदि शरीर में या मस्तिष्क में प्रवेश हो जाय, तो मस्तिष्क के सारे आवरण में शोथ हो जाने से यह रोग हो जाता है , यह रोग प्रायः सर्दी या बसंत ऋतु में होता है । इस रोग के प्रारम्भ में सदा इन्फ्लुएंजा के लक्षण होने से, बहुत से लोग इसे 'मस्तिष्क का इन्फ्लुएंजा' भी कहते हैं ।

कारण—यह रोग संक्रामक है, किन्तु इसका संक्रमण इन्फ्लुएंजा की तरह तीव्र नहीं होता । कई वार देखा गया है कि एक परिवार के एक सदस्य को होने पर दूसरों को भी हो जाता है । जिस स्थान में पहले कभी नहीं हुआ, वहां भी इसका संक्रमण हुआ है । कइयों में इस रोग के प्रति प्रतिरोध-शक्ति उत्पन्न होती देखी गई है । स्पष्ट व निश्चयात्मक शब्दों में यह कहना कठिन है कि यह रोग संक्रामक ही है । किन्तु, इतना स्पष्ट है कि इस का संक्रमण 'मेनिंजोकोकस' जीवाणु के द्वारा होता है, जो प्रायः नाक के पिछले भाग में तथा गले के अगले स्थान में पाये जाते हैं । मेनिंजोकोकस जीवाणु एक ही प्रकार का नहीं है, इसकी भिन्न-भिन्न श्रेणियां हैं । प्रत्येक रोगी में भिन्न-भिन्न प्रकार का संमक्रण होता है* ।

× लेखक की शीघ्र प्रकाशित होने वाली वैद्यक चिकित्सा रहस्य नामक पुस्तक का एक अंश ।

*टिप्पणी—इसकी श्रेणी की (Type) परीक्षा के लिए इस रोग के रोगी के रक्त-रस (Blood serum) में 'मेनिंजोकोकस' डालने पर वह मर जाता है । दूसरे रोगी में नहीं मरता । इसे Aglutinin (एग्ल्युटेनीन परीक्षण) कहते हैं । इसमें कृमि परीक्षण-नली में गुच्छा बनाकर बैठ जाते हैं । यदि यह एक ही प्रकार का होता, तो दोनों प्रकार के जीवाणुओं को मार देना । इसलिये सब प्रकार के भिन्न-भिन्न सीरम बनाए गए हैं । किन्तु, समय पड़ने पर भिन्न-भिन्न को काम में लाना कठिन है, इसलिए सबके सम्मिलित सीरम तैयार किए गए हैं । इस रोग के होते ही इस रोग के सीरम का सूचीवेध दिया जाता है । आजकल पाश्चात्य चिकित्सक सुषुम्ना दण्ड में कटिवेध करके सूचीवेध से स्ट्रेप्टोमाइसीन का सूचीवेध देते हैं ।

सम्प्राप्ति—इस जीवाणु को शरीर में रोहण करने में ४१५ दिन लगते हैं। इसके बाद तीव्र ज्वर (१०२°-१०४°), तीव्र शिरःशूल तथा वमन होती है। टाइफायड तथा इन्फ्लुएंजा में इतनी वमन भी नहीं होती और सिर के अगले भाग में शिरःशूल इतनी तीव्र नहीं होती, और वह 'एस्पिरिन' देने से शान्त हो जाती है। साधारणतः युवकों में ज्वर वमन के साथ और बच्चों में ज्वर, आक्षेप व वमन के साथ अधिकतर होता है। सर्वांग मे पीड़ा, प्रलाप (जुकाम में या एन्फ्लुएंजा में प्रलाप कभी नहीं होता) इस रोग के पूर्व रूप हैं। इसलिए कभी-कभी 'आमवातिक ज्वर' का भी सन्देह होता है।

इसके बाद वमन बनी रहती है। नाड़ी विषम तथा उभरी (Rhythm) स्पन्दन ठीक नहीं होती—ज्वर के तापमान के अनुपात से नाड़ी की संख्या न्यून होती है। इसलिए कई बार टाइफायड का सन्देह होता है। चेहरे पर लाल-लाल धब्बे होने से Eruptive fever का भी सन्देह होता है।

रोगी परीक्षा—रोगी की परीक्षा के समय निम्न लक्षण दिखाई देते हैं। रोगी एक पार्श्व पर लेटा रहता है। टांगें पेट की ओर मोड़े रहता है, आंख की पुतली फैली हुई होती है। प्रकाश से पुतली में बहुत कम प्रक्रिया होती है। रोगी को प्रकाश व शोक असह्य होता है। बाहर के सब Stimuli बुरे लगते हैं—बोलना, हिलना, डुलना आदि। गर्दन देखने में अकड़ी हुई तथा हिलाने में आगे पीछे नहीं होती। उसके पीछे की मांस पेशियां अकड़ी रहती हैं। यदि हम रोगी के उरु को उसके पेट पर संकुचित करें और फिर जंघा को सीधा करना चाहें, तो नहीं होता। इसे करनिग चिन्ह (Kerning's Sign) कहते हैं। पैर पकड़ कर यदि टांगों को झुकाना चाहें, तो पीठ पर से पेट ऊपर उठ जाता है, लेकिन टांगों को मोड़ने नहीं देता। इसे 'बुड जिन्स्क्स चिन्ह' (Brud Zinsk's Sign) कहते हैं। पेट की त्वचा पर स्पर्श करने से प्रतिक्रिया नहीं होती। मानसिक तौर पर रोगी को बेचैनी होती है। शिरःशूल असह्य होता है। सम्पूर्ण शरीर का अवलोकन करने पर धड़ शाखाओं पर लाल धब्बे दिखायी देते हैं। रक्त परीक्षा करने पर श्वेताणुओं की संख्या २०-३०००० हो जाती है। एक सप्ताह तक रोगी की अवस्था ऐसी ही रहती है।

द्वितीय सप्ताह—में इतना अन्तर कि रोगी अधिक निद्रालु होता जाता है और उठता ही नहीं। उठाने पर वह गुस्सा करता है। वह किसी भी हालत में उठना नहीं चाहता और बिस्तरे पर लिपटा हुआ पड़ा रहता है। टांग ऊपर कर छोड़ता है। सिर दर्द तथा बेचैनी के कारण नींद नहीं आती। ग्रीवा का स्तम्भ बहुत अधिक बढ़ता जाता है। यहां तक कि सिर पीछे की ओर मुड़ जाता है और बिस्तरे पर सिर औंधा पड़ जाता है। ग्रीवा के साथ-साथ रीढ़ की हड्डी (सुषुम्ना काण्ड) का भी स्तम्भ (कटि स्तम्भ) हो जाता है। अधिकतर कटि स्तम्भ होकर रोगी बाह्यायाम हो जाता है। ज्वर निरन्तर ऊँचा (Remitent Fever) बना रहता है।

तृतीय सप्ताह—रोगी की अवस्था वैसी ही रहती है, किन्तु अधिकाधिक कृश होता जाता है। ज्वर उतरता चढ़ता रहता है।

चतुर्थ सप्ताह - धीरे-धीरे उतरता है। एक दिन उतरकर अगले दिन या उसी दिन शाम को फिर चढ़ जाता है। बाद में धीरे-धीरे बिल्कुल नहीं रहता। सिर दर्द, निद्रानाश आदि लक्षण धीरे-धीरे शान्त हो जाते हैं।

साध्यासाध्यता—जब एक बार रोगी निश्चित रूपेण अच्छा होने लग जाय, तापमान, नाड़ी आदि १०-१२ दिन तक अच्छे रहें, तो इस रोग के पुनः होने की सम्भावना नहीं, लेकिन गर्दन आदि की अकड़ांद कई सप्ताह में ठीक होती है। यदि मृत्यु होती हो, तो यह दो सप्ताह में ही घातक हो जाता है और निद्रा मोह निद्रा में परिवर्तित हो जाती है। उस अवस्था में हालत खराब होती जाननी चाहिए। यदि श्वास और नाड़ी की संख्या प्रति मिनट बढ़ती जा रही हो, तापमान कभी कम न हो रहा हो, तो समझना चाहिए कि रोगी अच्छा नहीं हो रहा है। ऐसा भी सम्भव है कि यह रोग चिरस्थायी रूप धारण करले। चिरस्थायी होने पर यह घातक होता है अर्थात् तापमान तो कम हो जाता है, लेकिन रोगी की साधारण अवस्था में कोई अन्तर नहीं आता, अपितु रोगी कृश हो जाता है। उसकी पीठ पर शय्या व्रण तथा ज्वर हो जाता है। स्तम्भ स्पष्ट, वाह्यायाम, गले की अकड़ांद से दूध के पिलाने में कठिनता, मलमूत्र का स्वयं विस्तरे पर निकल जाना (अर्थात् मल द्वार मस्तिष्क के आधीन न रह कर स्वतंत्र हो जाता है) आदि लक्षण इस बात के द्योतक होते हैं कि यह अवस्था उसे मृत्यु के सन्निकट ले जा रही है। ऐसा भी सम्भव है कि यह अवस्था १-२ मास तक रहे, लेकिन इसके बाद प्रायः मृत्यु हो जाती है। यदि रोगी बच भी जाय, तो कोई मानसिक रोग का प्रभाव उस पर अवश्य शेष रहता है। बधिरता, दृष्टि मान्द्य, एकांगघात आदि कोई न कोई उपद्रव होकर सदा के लिए कुछ न कुछ विकृति रह ही जाती है।

यह इस रोग का सामान्य स्वरूप है। इसके थोड़े विभिन्न रूपों में भी यह रोग हो सकता है।

(१) **तीव्रतम रूप**—उपर्युक्त लक्षणों में रोग तीव्रतम रूप में प्रकट हो, रोग हुआ और प्रारम्भ से ही लक्षण अति भयंकर हों, अर्थात् प्रलाप, निद्रानाश, सिरदर्द अत्यन्त तीव्र हो और रोगी पागल-सा हो जाय, (मानो ज्वरोन्माद हो गया हो) ज्वर १०५°-१०६° तक हो जाय, दो चार दिन बाद उन्माद आदि शान्त होकर निद्रा हो जाती है। निद्रा के बाद मोहनिद्रा आ जाती है। नाड़ी, श्वास, तापमान-ये तीनों ऊँचे चढ़ जाते हैं। रोगी में Corneal and pupil Reflex भी नहीं होता। यह घातक स्वरूप है। इसमें मृत्यु निश्चित है।

(२) **मन्द रूप**--इस रोग की शान्ति के समय इसके मन्द-मन्द वेग होते हैं। कई बार जब यह संक्रामक रूप में नहीं फैलता, तब भी इसके वेग मन्द होते हैं। कई बार मन्द वेग का सादृश्य इन्फ्लुएंजा से कर दिया जाता है। (शिरःशूल, सर्वांगपीड़ा आदि के कारण) इसके वेग का समय तो २०-२२ दिन है। किन्तु, कई बार अति मन्द होने से दो दिन में भी समाप्त हो जाता हे। ऐसी अवस्था में भेद करना कठिन है। किन्तु निम्न, लक्षणों के होने पर इसी रोग का शक करना चाहिए।

(i) यदि 'करनिग चिह्न विद्यमान हैं।

(ii) नाक के पिछले तथा गले के अगले भाग की श्लेष्मकला में मैनिन्जोकोकस जीवाणु मिलें।

(iii) कटिस्तम्भ, तथा ग्रीवा स्तम्भ हो।

(iv) सुषुम्ना द्रव की परीक्षा में इस रोग के चिन्ह हों।

१. **उपद्रव**–मस्तिष्क श्वयथु (Hydrocepalus)–साधारण तथा इस रोग के मस्तिष्कावरण में कफ पित्तात्मक शोथ होकर बहुत सी श्लेष्मा निकलने लगती है, जिसमें लाली होती है। जैसे नाक में शोथ होकर बहुत-सा स्राव निकलने लगता है, इसे मस्तिष्क का जुकाम भी कह सकते हैं। इस शोथ के उपद्रव स्वरूप मस्तिष्क कोष्ठों में जल भर कर श्वयथु हो जाती है।

इस रोग के भेदक लक्षण निम्न होते हैं—

(i) रोगी का रंग पाण्डुता होने से फीका पड़ता जाता है।

(ii) चेहरे पर पीलापन आ जाता है।

(iii) नाड़ी तेज हो जाती है, परन्तु उसका तनाव और फैलाव (Volume) कम होते जाते हैं। नाड़ी की तेजी निर्बलता का चिन्ह है।

(iv) श्वास तीव्रगति से व छोटे हो जाते हैं तथा गले से नाक तक आते हैं। (स्वस्थ पुरुष के श्वास नाभि से आते हैं) रोगी निद्रालु हो जाता है। ये लक्षण रोगी की असाध्यावस्था के द्योतक हैं। यदि रोगी एक दिन पूर्व बिल्कुल ठीक था और अचानक ये सब लक्षण हो रहे हों, तो 'मस्तिष्क श्वयथु' का शक करना चाहिए। कई बार रोगी मस्तिष्क सुषुम्नाज्वर से ठीक हो रहा होता है, लेकिन बीच में ये उपद्रव हो जाते हैं। शिरःशूल तथा वमन जो पहले हुए थे पुनः प्रारम्भ हो जाते हैं।

२. **मानसिक उपद्रव**–कुछ मानसिक लक्षण भी होते हैं। यथा प्रलाप तथा उन्माद। कभी कभी ऐसा होता है कि जब रोगी अच्छा हो रहा होता है, उस समय रोगी का स्वभाव कुछ बालकों का-सा या भावपूर्ण हो जाता है, जो थोड़े दिनों में ठीक हो जाता है।

३. गति सम्बन्धी उपद्रव—एकांगघात हो जाता है, लेकिन यह अस्थायी होता है। एकांगघात शिथिल हो या अकड़ा हुआ हो, यह दोनों अवस्था में हो सकता है। स्तम्भपूर्ण आघात भी होता है।

४. संज्ञा सम्बन्धी उपद्रव—नेत्र में शोथ होकर दृष्टि विहीन या नेत्र का कोई अन्य रोग हो जाय। रात में बधिरता भी हो सकती है। यह उपद्रव सदा के लिए स्थायी होता है।

५. श्वास सम्बन्धी उपद्रव—न्यूमोनिया, इन्फलुएंजा आदि हो सकता है।

भेदक लक्षण—इस रोग का निदान करते समय निम्नरोगों से भेद करना चाहिए।

(१) मैनिन्जिज्म (Meningism)—इस रोग में मस्तिष्क में किसी विष का प्रभाव हो, मस्तिष्क सम्बन्धी लक्षण, प्रलाप आदि हो जाते हैं। लेकिन इसमें मस्तिष्क में शोथ नहीं होता। सुषुम्न द्रव भी बिल्कुल स्पष्ट होता है।

(२) तीव्र ज्वर—अर्थात् जिन तीव्र ज्वरों में मस्तिष्क सम्बन्धी लक्षण होते हैं, उनसे भेद करें।

(क) सिरदर्द और प्रलाप एक साथ जिस ज्वर में हों, तो इसी रोग का निश्चय करें। मन्थर ज्वर या आंत्रिक ज्वर में जब शिरःशूल हो, तो प्रलाप नहीं होता और जब प्रलाप होता है, तो शिरःशूल नहीं होता।

(ख) वमन से यह रोग आरम्भ हो और वमन जारी रहे, तब भी इसी रोग का शक करें। अन्य रोगों में वमन जारी न रहकर बीच में ही समाप्त हो जाती है।

(ग) नाड़ी और श्वास विषम हों और ज्वर की अपेक्षा नाड़ी गति न्यून हो।

(घ) ग्रीवा स्तम्भ हो। यदि गले में अन्य कोई विकार न हो और ग्रीवा स्तम्भ अधिक बढ़ता जा रहा हो, तो इसी रोग का निदान करें।

(ङ०) 'करनिग चिन्ह' इस रोग का निश्चयात्मक चिन्ह है।

(च) आंख की पुतलियों में शोथ होता है। आंख में एट्रोपीन डालकर चक्षु यंत्र से देखें, तो सब धुंधला-धुंधला अर्थात् उसमें श्वयथु हो जाती है। ये इस रोग के प्रधान भेदक चिन्ह हैं।

गौण चिन्ह निम्न हैं—

(क) पुतलियां साधारण तौर पर फैली हुई होती हैं। यह लक्षण गौण इसलिए है कि अफीम खाने पर भी ये फैली हुई होती हैं। लेकिन तब ग्रीवा स्तम्भ नहीं होता।

(ख) चेहरा लाल तथा कई स्थानों पर लाल-लाल रेखाएँ भी पड़ जाती हैं।

(ग) पेट पर हाथ रखने से संज्ञा प्रतीति या प्रतिक्रिया नहीं होती।

(घ) रोगी प्रत्येक बात में जिद्द तथा चिड़चिड़ापन प्रकट करता है जैसे दूध पिलाएं तो नहीं पीता है आदि।

(ङ०) निद्रा नाश होती है तथा रोगी मोह निद्रा में रहता है। अन्य रोगों से भेद करने के लिये यह लक्षण प्रसिद्ध हैं।

३ इन्फ्लुएंजा–इस रोग से भेद करना कठिन है। प्रायः इस रोग को इन्फ्लुएंजा मानकर उसकी चिकित्सा की जाती है। यदि वह उतरता नहीं तथा दूसरे लक्षण उपर्युक्त होते हैं, तो इसी रोग का निदान करें। अन्यथा, कई बार कास, न्यूमोनिया, पार्श्वशूल होकर इन्फ्लुएंजा भी प्रायः लम्बा हो जाता है।

४ आन्त्र ज्वर-(i) यह ज्वर अधिकतर क्रमिक है पर मस्तिष्क ज्वर क्रमिक नहीं होता।

(ii) श्वेताणुओं की गिनती करने पर आंत्र ज्वर में २०००-४००० हों, तो मस्तिष्क ज्वर में १५००० होते हैं। अर्थात् आन्त्र ज्वर में श्वेताणु न्यूनता होती है।

(iii) लाल-लाल चकत्ते आंत्र ज्वर में शीघ्र ही निकल आते हैं।

(iv) प्लीहा आंत्र ज्वर में देर से बढ़ती है और मस्तिष्क ज्वर में शीघ्र ही बढ़ जाती है।

(v) प्रलाप व शिरःशूल आंत्र ज्वर में एक साथ नहीं होते। इस रोग में एक ही साथ होते हैं।

(vi) शिरःशूल दस दिन के बाद आन्त्र ज्वर में नहीं रहता, किन्तु इस रोग में सर्वदा रहता है।

५. न्यूमोनिया के कारण (न्यूमोकोकल, मेनिन्जायटिस) से भेद करना चाहिए। यद्यपि, इसका भेद करना कठिन है। सुषुम्ना भेदन करके सुषुम्ना द्रव की परीक्षा करने पर ही इसकी जांच ठीक होती है।

६. अन्य मस्तिष्क रोग–विशेषतः शिशु एकांग घात से इस रोग का भेद करें। हल्का सा ज्वर होकर बालक में एकांगघात हो जाता है। इन दोनों में मस्तिष्क ज्वर में ज्वर अधिक चिरस्थायी होता है। किन्तु, शिशुरोग में ज्वर इतना चिरस्थायी नहीं होता।

७. अन्य मस्तिष्कावरण शोथ–यह रोग तो मैनिन्जोकोकस जीवाणु के कारण ही होता है। इस के अतिरिक्त अन्य निम्न जीवाणुओं के निम्न भेद होते हैं।

(क) श्वासज्वर के उपद्रव स्वरूप मस्तिष्कशोथ अर्थात् श्वास ज्वर होने के बाद 'मस्तिष्क-शोथ' होगी। इस रोग में प्रारम्भ में ही यह होती है।

(ख) पूय कृमिजन्य मस्तिष्क शोथ--जैसे किसी ने कान की शल्य क्रिया करायी। वहां से पूयकृमि मस्तिष्क में ज्वर करने से मस्तिष्कशोथ हो गयी।

(ग) ज्वर होकर मस्तिष्कशोथ हो गयी। आन्त्र ज्वर के भेदक लक्षणों से भेद करें।

(घ) क्षयरोगजन्य मस्तिष्कशोथ--यह अति प्रसिद्ध रोग है। यह मन्द तथा दीर्घकालीन रोग है। इस में ज्वर मामूली होता है। ग्रीवास्तम्भ स्थायी रूप में और बहुत स्पष्ट नहीं। कभी होता, कभी नहीं होता। आन्त्र फेफड़े या किसी अन्य अंग में भी क्षय रोग के लक्षण होते हैं। केवल मस्तिष्क में नहीं।

आयुर्वेदीय मत--बहुत प्राचीन काल में इस रोग का क्या नाम था, यह कहना कठिन है। किन्तु; मध्यकाल में कण्ठकुब्ज ज्वर तथा सन्निपात ज्वर में इस की गणना होती थी।

शिरोऽर्ति कण्ठग्रह दाह मोह कम्पज्वराः रक्तसमीरणार्तिः।
हनुग्रहः तापविलापमूर्छा स्यात्कण्ठकुब्जः कष्टसाध्यः। (योगरत्नाकरः)

शिरःशूल, गलग्रह तथा गले के पीछे मुड़ने से इसे 'कण्ठकुब्जज्वर' कहते हैं।

सुषुम्ना भेदन--मस्तिष्क सुषुम्ना ज्वर की परीक्षा के लिये सुषुम्ना प्रणाली का भेदन किया जाता है। इस के लिये सुषुम्ना काण्ड में नोवोकेन या कोकेन का सूचिवेध करें। यदि रोगी मोह निद्रा में हो तो इसकी आवश्यकता नहीं। भेदन के लिये बारकर की सुई (Barker's needle) कृमिहर करके प्रयोग करें। रोगी को उल्टा लिटा दें। उस के दायीं ओर चिकित्सक को बैठना चाहिए और उसकी पीठ को अच्छे प्रकाश में रखना चाहिए। सिर के नीचे तकिया आदि नहीं होना चाहिए। अब रोगी के घुटने तथा सिर को आगे की ओर झुकावें। अर्थात् सुषुम्ना काण्ड को अन्दर की ओर मोड़ने का प्रयत्न करें। जिससे सुषुम्ना काण्ड के जोड़ दूर-दूर होने से भेदन के लिये पर्याप्त जगह मिल जायगी। अब सुषुम्ना काण्ड पर स्पिरिट लगादें। तृतीय या चतुर्थ Lumber Vertebra ढूंढने का यत्न करें। चतुर्थ की नोक अधिक स्पष्ट होती है। इसलिए; चतुर्थ को ही ढूंढ़कर उसके ठीक ऊपर $1\frac{1}{2}''$ या $\frac{3}{4}''$ के लगभग दोनों के बीच (तृतीय व चतुर्थ) का अन्तर होता है। जब स्थान का अन्तिम निर्णय करलें, तो इन दोनों कशेरुकाओं के बीच के स्थान पर अपनी सुई की नोक को रखकर उसे बिल्कुल अन्दर पेट की ओर अन्दर धंसाते हैं। प्रारम्भ में अन्तः-कशेरुका-रज्जु के कारण रुकावट मालूम पड़ती है। उस रुकावट को पार करने के बाद किसी प्रकार की अड़चन न होनी चाहिए। यदि है तो सुई को जरा सा पीछे करलें और इसकी दिशा में अन्दर धंसाएँ तो आसानी से अन्दर चली जायगी। वापिसी पर सुई इतनी बाहर की मस्तुलुंक-तन्तु तक आजाय। आगे ढकेलने पर वह सुषुम्नाकाण्ड के शिरोजाल में जा

पहुंचेगी और रक्त आने लगेगा। इसलिए ज्योंहि रक्त आता दिखायी दे, तो आप अपनी सुई खींचलें। उस समय सुषुम्ना द्रव आता दिखायी देगा। यदि द्रव न आये तो समझें कि सुई ठीक तरह अन्दर नहीं गयी है। द्रव आने पर शुद्ध परीक्षण-नलिका में लेलें। द्रव यदि धुंधला है, तो मस्तिष्क ज्वर का सूचक है—अन्यथा नहीं। इस द्रव के निकालने मात्र से ही रोगी को आराम मालूम होता है। इसलिए यह भेदन, निदान व चिकित्सा दोनों दृष्टि से सहायक है।

चिकित्सा—इस रोग में लंघन,नस्य, निष्ठीवन और अंजन का प्रयोग करना चाहिए। सब से पूर्व आम तथा कफनाशक क्रिया करनी चाहिए। कफ क्षीण होजाने पर पित्त और वायुनाशक क्रिया करें।

जब तक रोगी लंघन सह सकता है, उसके बलाबल का विचार करके ३, ५, १० दिन तक लंघन कराएँ। अर्थात् जब तक आम आदि दोषों का परिपाक न हो पिप्पलीयावित दुग्ध दें। निष्ठीवन के लिये गरम अदरक रस में उचित मात्रा में सोंठ, काली मिरच और पिप्पली के चूर्ण को डालकर मुख में धारण करें। इससे हृदय, मस्तिष्क एवं गले आदि की प्रदुष्ट श्लेष्मा बाहर निकल आती है, जिससे सन्धि प्रदेश में वेदना, मूर्छा, खाँसी, गलरोग, मुख गौरव, गुरुता व जड़ता नष्ट होती है। नस्य के लिए सैन्धा नमक श्वेत मिर्च सफेद सरसों तथा कूट—इन सब औषधियों को समान परिमाण में लेकर बकरी के मूत्र में पीसकर नस्य लेवें। इसके प्रयोग से सन्निपात तन्द्रा दूर होती है। अंजन के लिये सिरीषबीज, पीपल, काली मिर्च, सैंधा नमक, लहसुन, मनशिल और वच कों सम परिमाण में लेकर यथाविधि चूर्ण बना गो मूत्र में पीस कर सुखा दें। फिर बारीक पीसकर शलाका से अंजन का भांति आंखों में लगावें। इससे चेतनता आती है। चक्रदत्तोक्त पित्त श्लेष्महर, अष्टादशांग कशाय (चिरायता, देवदारू, गज पीपल और दशमूल) तथा मुस्तादिऽष्टादशांग कषाय (नागरमोथा, पित्तपापड़ा खस, देवदारू, सोंठ, हरड़, बहेड़ा, आंवला, धमासा, नीली, कमला, निशोथ, चिरायता, पाठा, बलामूल, कुटकी, मुलहठी तथा पिप्पली) पित्तोलवण सन्निपात में पीने के लिए देने से विशेष लाभ होता है। तन्द्रा, प्रलाप, दाह, मोह, उरोग्रह, शिरोग्रह शीघ्र ही नष्ट होता है।

तीव्र विरेचन (इच्छा भेदी रस) देने से तथा मस्तिष्क के आस-पास की शिरा में **रक्तावसेचन** करने अर्थात् कान के पीछे जोंकें लगवाने से भी लाभ होता है।

रोगी के सिर पर बाल रखाकर शतधौत घृत रखें। सैन्धवाद तैल, महानारायण की मेरूदण्ड पर मालिश करें।

अवस्थानुसार वृ० वात चिन्तामणि, महालक्ष्मी विलास, चतुर्मुख तथा राजरस का सेवन भी लाभप्रद है। आमावस्था दूर होने पर मुद्गयूष, मांस रस, सूजी की खीर और धीमे-धीमे रोटी भी दे सकते हैं। ज्वर उतरने के बाद १ मास तक रोगी का पथ्य कराना आवश्यक है, क्योंकि कई बार रोगी के बिल्कुल ठीक हो जाने पर भी अचानक हृदयगति बन्द हो जाने से मृत्यु हो जाती है।

—:०:—

त्रिदोषका दार्शनिक स्वरूप

आयुर्वेदाचार्य मदनगोपाल वैद्य, ए. एम. एस., एम. एल. ए.

इस प्रश्न को आपने बहुत दिनों से सुना होगा। अनेक विद्वानों ने इस पर अपने-अपने विचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किए हैं। अनेक सम्मेलनों में इसकी चर्चा हुई है। सन् ३५ में काशी विश्वविद्यालय में होने वाले पंचमहाभूत त्रिदोष सम्भाषा परिषद् में भी इस प्रश्न की बड़ी धूम थी। वास्तव में है भी यह प्रश्न बड़े महत्व का। इसके सम्बन्ध में तो श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी ने अपनी त्रिदोष मीमांसा नामक पुस्तक में निम्न शब्दों में यहां तक कह डाला है कि इस पर आजतक किसी शास्त्रकार या विद्वान ने विचार ही नहीं किया।

"शास्त्र कहता है कि सृष्टि में कारण स्वरूप पंचभूत है। इन्हीं ५ भूतों से शरीर के तीन दोष तथा सप्त धातुएं बनती हैं। वायु तत्व से वात नामक दोष बना। और अग्नि से पित्त नामक दोष की रचना हुई..........आगे जल से श्लेष्म भी बना ऐसा माना है। तीन दोष तो तीन भूतों से बने, **पर आकाश और पृथ्वी से दोष उत्पन्न हुए या नहीं? इसका वर्णन किसी ने नहीं किया।** क्योंकि बनता तो पंचभूतों से सब कुछ है, फिर तीन दोष तीन ही भूतों से क्यों बने? उन दोनों भूतों से दोष क्यों नहीं बने? इसमें क्या त्रुटि आ गई? क्यों यहां पंचभूतों के पंचीकरण में अन्तर आ गया? जब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पांचों के पांच गुण बने, तन्मात्रायें बनी, उनके चिन्ह तक बने तो पृथ्वी आकाश क्यों निःसन्तान रह गए? इस पर आज तक किसी ने विचार नहीं किया।

१. आकाश तत्व से	१. कर्म दोष
२. वायु ,,	२. वात दोष
३. अग्नि ,,	३. पित्त दोष
४. जल ,,	४. रक्त दोष
५. पृथ्वी ,,	५. कफ दोष

इस प्रकार आपके मत से ५ भूतों से ५ दोष होने चाहिएं और उसी के अनुसार आपने उपरोक्त ५ दोषों की कल्पना भी की है।

बम्बई के डा० श्री नारायण श्रीधर वाटवे ने भी पंचभूतों से तीन दोषों के सिद्धांत को गलत ठहराया है और उन्होंने निम्न प्रकार पांच भूतों से ५ दोषों की कल्पना की है।

प्राचीन रेखाटन	नवीन रेखाटन
१. मानस रजो दोष	आकाश तत्व दोष
२. शरीर वायु दोष	वायु तत्व दोष
३. शरीर पित्त दोष	अग्नि तत्व दोष
४. शरीर कफ दोष	जल तत्व दोष
५. मानस तम दोष	पृथ्वी तत्व दोष

आपके मत से शरीर की रचना, क्षय व वृद्धि अर्थात् शरीर का भरण पोषण व प्रत्येक कार्य पंचमहाभूतों की सहायता से सम्पन्न होते हैं पर रोगोत्पत्ति व रोगशमन अर्थात् निदान, चिकित्सा में हम केवल तीन ही भूतों पर विचार करते हैं, यह शास्त्र की एक बड़ी भारी भूल है। यद्यपि रोग कारणों का उल्लेख करते समय 'असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग' शब्द से पांच भूतों के प्रतिनिधिस्वरूप पांच इन्द्रियों के मिथ्या उपयोग को रोग का कारण माना है, पर निदान एवं चिकित्सा में केवल तीन ही भूतों का विचार करते हैं। इस प्रकार शास्त्रकारों की यह एक भद्दी भूल है।

उपर्युक्त दलील में मुझे सार प्रतीत हुआ और मैंने उस पर चिन्तन करना शुरू किया। यह विश्वास पहिले ही से दृढ़ था कि त्रिदोषवाद का आधार दर्शनवाद है। अतः मैंने दर्शनों के आधार पर चिन्तन शुरू किया और अन्त में इस परिणाम पर पहुंचा कि पांच भूतों में से तीन ही भूतों को दोष कह सकते हैं और आकाश तथा पृथ्वी की दोष संज्ञा नहीं हो सकती। पांच भूतों से तीन ही दोष क्यों उत्पन्न हुए? आकाश, पृथ्वी भूतों से कोई दोष क्यों नहीं माना गया? इन्हीं बातों का विवेचन, जो कुछ भी मैंने सोचा है और जिस परिणाम पर पहुंचा हूं, वह पाठकों के सम्मुख रख रहा हूं। आशा है कि विद्वान लोग इस पर विचार करेंगे और अपनी सम्मति भी प्रकाशित करेंगे।

दोष किसे कहते हैं ?

पांच भूतों से तीन ही दोष क्यों बने हैं? आकाश पृथ्वी से कोई दोष क्यों नहीं उत्पन्न हुआ? इन पर विचार करने के पूर्व, दोष क्या है? दोष किसे कहते हैं? अर्थात् दोष की परिभाषा क्या है? इसे निश्चित करना अत्यावश्यक है। क्योंकि इसके सम्बन्ध में भी बड़ा भ्रम है। कोई दोष को द्रव्य मानते हैं कोई शक्ति। शास्त्र में भी इसकी कई परिभाषाएं उपलब्ध हैं— यथा "प्रकृत्यारम्भकत्वे सति दुषकत्वं दोषत्वम्" तथा "स्वातन्त्रेण दूषकत्वं दोषत्वम्" यद्यपि लेख का मुख्य अंश आगे आवेगा, पर फिर भी यहां संक्षेप में दोष क्या है? यह जानना नितान्त आवश्यक है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के अतिरिक्त 'दूषणात् दोषाः' यह भी सर्वमान्य तथा सर्व-सरल दोष-परिभाषा है क्योंकि शरीर तथा मानस सब दोषों में व्याप्त होता है। इन्हीं

तीनों वातादिकों की 'धातु' तथा 'मल' संज्ञा भी होती है और इन शब्दों से वातादिकों के कर्म प्रकट होते हैं। संसार के जितने भी कर्म होते हैं वे द्रव्यों के गुण कर्म द्वारा ही होते हैं। दर्शनों के अनुसार जगत में सामान्य विशेषादि ६ प्रकार के ही पदार्थ होते हैं। इनमें भी सत्तावान द्रव्य गुण कर्महीन ही माने जाते हैं। सत्तावान पदार्थों में गुण कर्म का भी कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता। ये भी द्रव्य के आश्रित रहते हैं। इस प्रकार दोषों के गुण कर्मों का भी कोई स्वतन्त्र अस्तित्व न होकर वे वातादि द्रव्यों के ही आश्रित रहते हैं। इसी कारण आयुर्वेद में सर्वत्र दोषों को द्रव्य माना है। यद्यपि वातादि द्रव्य हैं फिर भी चिकित्सा शास्त्र में इनके गुण कर्मों का ही विवेचन सर्वत्र है। द्रव्य के इन गुण कर्मों द्वारा या द्रव्यों की शक्ति के द्वारा ही शरीर में विकार या परिवर्तन होते हैं, इसी कारण कुछ लोग दोषों को शक्ति मानते हैं। पर जो लोग वातादि को शक्ति मानते हैं वे यह नहीं बतला सकते कि इस शक्ति का आधार क्या है? यह तो पाश्चात्य वैज्ञानिक भी मानते हैं कि शक्ति का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता। वह हमेशा द्रव्य के आश्रित रहती है। इस प्रकार वातादि दोष द्रव्य सिद्ध होते हैं और शरीर तथा मन को स्वतन्त्रता पूर्वक बिना दूसरे भूत या दोष की सहायता के दूषण करने की शक्ति के कारण ही इनकी दोष संज्ञा होती है।

मधुकोषकार ने दोष की 'स्वातन्त्रेण दूषकत्वं दोषत्वम्' इस परिभाषा का खण्डन करके 'प्रकृत्यारम्भकत्वे सति दूषकत्वं दोषत्वम्' इस परिभाषा को स्वीकार किया है। पर मेरी समझ में यह दूसरी परिभाषा बिल्कुल अशुद्ध है। क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि दोष न केवल प्रकृति के आरम्भ में बल्कि हमेशा प्रकृति निर्माण के पूर्व, मध्य, तथा अवसान में भी शरीर व मन को दूषित किया करते हैं। इतना ही नहीं वे ही तीन भूत, लोक तथा शरीर में भी विकार या दूषण करते हैं।

'स्वातन्त्रेण दूषकत्वं दोषत्वम्' मेरी समझ में यह परिभाषा बिल्कुल निर्दोष है। मधुकोषकार ने 'स्वातन्त्रेण' का अर्थ 'दोषान्तर निरपेक्षित्व' तथा 'हेत्वन्तर निरपेक्षित्व' कर के इसका खण्डन किया है। इनके मत से यदि स्वतन्त्रता का अर्थ दोषान्तर निरपेक्षिता हो तो पित्त तथा कफ दोष नहीं हो सकते यथा "पित्तः पंगु कफः पंगु पंगवो मलधातवः। वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥" पर मेरे मत से यह तर्क अशुद्ध है, क्योंकि अग्नि के उर्ध्व ज्वलन कर्म तथा जल के निम्न गमन कर्म में वायु की बिल्कुल अपेक्षा नहीं होती। "अग्नेरूर्ध्वं ज्वलनं, निम्नगमनं चापां कर्म।" अग्नि की ज्वाला वायु की निरपेक्षिता में हमेशा ऊपर उठती है। इस तरह अग्नि का कार्य ऊर्ध्व ज्वलन वात की अपेक्षा नहीं करता। इसी प्रकार जल का कर्म अधोगमन है। इस में भी वायु की अपेक्षा नहीं होती। आप कहीं भी पानी गिरावें वह नीचे की ओर बह जायगा। इस तरह जल के कर्म अधोगमन में वायु की आवश्यकता नहीं होती। अग्नि व जल

जहाँ कहीं भी होंगे अपना कर्म अवश्य करेंगे। यह अवश्य सत्य है कि वायु अग्नि की ऊर्ध्व गति तथा जल की निम्न गति को अपनी शक्ति से बदल सकता है। इसका यह अर्थ नहीं कि अग्नि व जल स्वतन्त्रता पूर्वक कुछ भी नहीं कर सकते। दोनों के स्वतन्त्र कर्म शास्त्रों में वर्णित हैं तथा प्रत्यक्ष भी देखा जाता है कि अग्नि व जल स्वतन्त्र होकर अर्थात् अन्यभूत निरपेक्ष होकर कार्य कर सकते हैं। इस प्रकार स्वतन्त्र का यह अर्थ ठीक है और इसी अर्थ में वातादि त्रय पृथक् २ बिना दूसरे भूत की सहायता के शरीर व मन को दूषित करने में समर्थ हैं।

स्वतन्त्रता का दूसरा अर्थ हेत्वन्तर निरपेक्ष करके मधुकोषकार कहते हैं कि इस अर्थ में भी वातादि दोष नहीं हो सकते। क्योंकि तब दोषों को शरीर तथा मन को दूषित करने के लिए निदानान्तर की आवश्यकता होती। बिना कारणान्तर के दोष दूषण नहीं कर सकते। अतः इस अर्थ में भी वातादि दोष नहीं हो सकते।

मेरी समझ में स्वतन्त्रता का यह अर्थ अशुद्ध है, क्योंकि संसार का कोई भी कार्य हेत्वन्तर निरपेक्ष नहीं हो सकता—अर्थात् संसार में कोई भी कार्य एक ही कारण से नहीं हो सकता। हर कार्य के लिए दो कारण तो अवश्य होते हैं, १—समवायि २—निमित्त; फिर दोष अकेले कैसे कोई कार्य कर सकते हैं। न अकेला समवायि कारण कोई कार्य कर सकता है, न अकेले निमित्त कारण ही कर सकता है। अतः स्वतन्त्रता का अर्थ हेत्वन्तर निरपेक्षिता करना गलत है, क्योंकि संसार के सभी कार्य हेत्वन्तर सापेक्ष होते हैं। दोषों के सम्बन्ध में भी यही बात है। अकेले दोष रोगोत्पत्ति नहीं कर सकते। उनको अन्य निमित्त कारणों की आवश्यकता होती है। (मैं दोषों को समवायि कारण मानता हूं। मधुकोषकार ने निमित्त स्थायी कारण माना है। उस पर मैं अपने विचार फिर कभी प्रकट करूँगा।)

गंगाधर ने भी चरक की टीका में 'दोषान्तर निरपेक्षित्व' स्वीकार करके आग मधुकोष के मत का निम्न शब्दों में खण्डन किया है। 'पित्त कफयोः दूष्य दूषणे वातस्य न प्रयोजकत्वं तयोरपि पाञ्चभौतिकत्वेन सक्रियत्वात् परन्तु पंगुत्वं वातापेक्षया' पर आगे वे अपने मत पर दृढ़ न रह सके और मधुकोष के मत को मान लिया है जो कि बिल्कुल अशुद्ध है।

अब मैं लेख के मुख्य विषय पर आता हूं अनेक विद्वानों ने त्रिदोष पर प्रकाश डालने का यत्न किया है। उन में दो प्रकार के लोग हैं। एक तो वे जो उसे पाश्चात्य वैद्यक के आधार पर सिद्ध करना चाहते हैं अथवा पाश्चात्य वैद्यक से सम्बन्ध करना चाहते हैं। यद्यपि ये लोग इस कार्य में सफल हो सकते हैं, पर यह निश्चित है कि उनकी युक्ति उस युक्ति से भिन्न होगी जिसके आधार पर ऋषियों ने उसको स्थापित किया है। ऋषियों ने अवश्य ही त्रिदोष को दर्शनवाद के आधार पर स्थापित

किया है और उसी के आधार पर यदि यह सिद्ध किया जाय तो यह सबसे अधिक प्रमाणित युक्ति होगी। दूसरे वे लोग हैं जो अन्य शास्त्रीय युक्तियों, जैसे तीन विपाक होने के कारण ही तीन दोष हैं—का आश्रय लेते हैं पर वे दोष की परिभाषा 'स्वातन्त्र्येण दूषकत्वं दोषत्वम्' को भूल जाते हैं। सुश्रुत मत से विपाक दो ही प्रकार का होता है। दो दोष न मान कर तीन ही दोष माने हैं क्योंकि, त्रिदोष संज्ञा होने का कारण विपाकादि न होकर केवल उनकी स्वतन्त्र दूषकत्व शक्ति है जो इन तीन के अतिरिक्त और किसी में नहीं है।

दार्शनिक तत्वों का त्रिदोष से सम्बन्ध चरक संहिता में तीन स्थलों पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किया गया है।

(१) विश्व के सम्पूर्ण पदार्थों की दृष्टि से

दर्शनवाद के अनुसार विश्व में सामान्य विशेषादि ६ प्रकार के पदार्थ है। इन विश्व के पदार्थों में से केवल वायु, अग्नि तथा जल में ही स्वतन्त्र दूषकत्व शक्ति है। अथवा जगत् में पंचमहाभूत तथा आत्मा ये ही ६ धातुयें हैं और इन में से तीन ही भूतों में स्वतन्त्र दूषकत्व है।

(२) शरीर रचना की दृष्टि से

शरीर की रचना २४, २५, या ६ तत्वों से बतलाई गई है। और उनकी वृद्धि या ह्रास से ही शरीर व मन दूषित होता है और यह दूषण शक्ति वातादि त्रय में ही स्वतन्त्र रूप से है।

(३) रोगोत्पत्ति की दृष्टि से

येषामेव हि भावानां सम्पत् संजनयेन्नरम् ।
तेषामेव विपद्व्याधीन् विविधान् समुदीरयेत् ॥

इस सम्बन्ध में आत्मा, मन, रस, षड्धातु, माता पिता, कर्म स्वभाव, प्रजापति तथा कालादि भावों का उल्लेख किया है। पर तात्विक दृष्टि से शरीर २४, २५ धातुओं से निर्मित होता है, और उन्हीं के सम्पद् से आरोग्य तथा विपद से रोग की उत्पत्ति होती है। इन धातुओं में केवल तीन ही वातादि धातुओं में स्वतन्त्र रूप से दूषकत्व शक्ति है। अतः इन्हें ही दोष संज्ञा दी गई है। अन्य भाव या धातु गौण रूप से या परतन्त्र रूप से या निमित्त रूप से दूषण में भाग लेते हैं।

अब आगे हमें दर्शन की उन सार्वभौम युक्तियों से यह सिद्ध करना है कि विश्व के इन षड्पदार्थों में या २४, २५, या ६ षड्धातुओं में से केवल तीन ही महाभूतों में स्वतन्त्र दूषकत्व है और आकाश तथा पृथ्वी में स्वतन्त्र दूषकत्व नहीं है।

सम्पूर्ण जगत का मन्थन करके ऋषियों ने यह निश्चय किया है कि विश्व में

केवल ६ प्रकार के पदार्थ हैं । १. सामान्य २. विशेष ३. द्रव्य ४. गुण ५. कर्म ६. समवाय, इन ६ पदार्थों से सम्पूर्ण विश्वका संचालन द्रव्य गुण तथा कर्म के सामान्य विशेष तथा समवाय के कारण होता है । अर्थात् इन ६ प्रकार के पदार्थों में द्रव्य गुण तथा कर्म का प्रमुख भाग जगत् के प्रत्येक कार्यों में होता है । शास्त्रों में भी द्रव्य, गुण तथा कर्म को ही सत्तावान् माना है । इन तीन सत्तावान् द्रव्य, गुण तथा कर्म में भी गुण व कर्म का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता । ये भी द्रव्य के आश्रित रहते हैं। अब यदि हम यह कहें कि सम्पूर्ण विश्व का संचालन केवल द्रव्य जातीय पदार्थ से होता है तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी । द्रव्य के ही सामान्य, विशेष, गुण, कर्म तथा समवाय द्वारा ही विश्व का संचालन होता है । इन षड्पदार्थों में द्रव्य का ही प्रमुख स्थान है, जिससे कि जगत् के प्रत्येक कार्य होते हैं ।

शास्त्रों में कुल ९ द्रव्य माने गये हैं और इन्हीं ९ द्रव्यों से सम्पूर्ण विश्व का संचालन होता है । अब हमें इन ९ द्रव्यों का पृथक् २ विवेचन करके देखना है कि इन सब में स्वतन्त्र कर्तृत्व या दूषकत्व है या नहीं ?

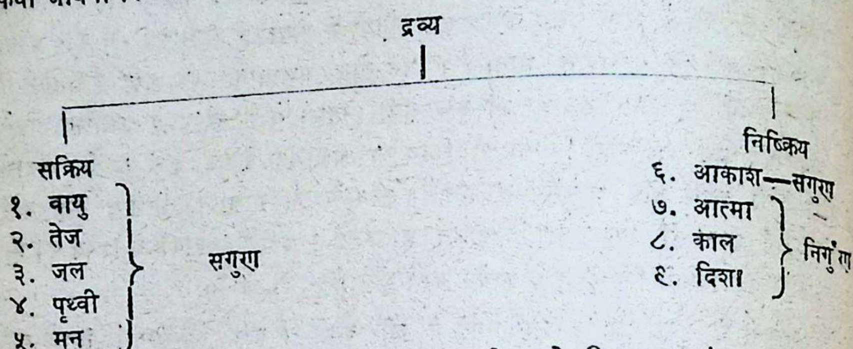
ऊपर यह सिद्ध किया गया है कि इन ९ द्रव्यों द्वारा ही विश्व का संचालन होता है, अर्थात् इन ९ द्रव्यों में ही जगत् में विकार, वृद्धि,ह्रास व दूषण करने की शक्ति है । अतः इन द्रव्यों के अनुसार ९ से अधिक दोष नहीं हो सकते । (१) आकाश (२) वायु (३) तेज (४) जल (५) पृथ्वी (६) मन (७) आत्मा (८) काल (९) दिशायें- इन ९ द्रव्यों में से दर्शनों के अनुसार ५ द्रव्य सक्रिय हैं और ४ निष्क्रिय । यथा

"सक्रियाणि वायुतेजोऽम्बु पृथ्वीमनांसि स्वभावसिद्धानि, खात्मकालदिशश्च निष्क्रिय स्वभावसिद्धाः ।।"

इस प्रकार इन ९ द्रव्यों में से भी ५ द्रव्य वाय्वादि ४ भूत तथा मन में ही कर्तृत्व है । शेष ४ आकाशात्माकालदिशायें निष्क्रिय हैं । इस प्रकार अब अधिक से अधिक ५ सक्रिय द्रव्यों के अनुसार ५ ही दोष हो सकते हैं । ४ निष्क्रिय द्रव्यों में कर्तृत्व न होने के कारण उन में दूषकत्व नहीं हो सकता ।

आकाश, आत्मा, काल तथा दिशायें--इन को स्वभाव सिद्ध निष्क्रिय माना है। आत्मा की निष्क्रियता के सम्बन्ध में किसी को सन्देह नहीं है और जो आत्मा को मानते ही नहीं उनके लिए तो पूर्ण निष्क्रिय है । काल (समय) तथा दिशाएँ भी निष्क्रिय हैं पर जगत् के सब कार्यों में नियमित रूप से भाग लेते हैं । दार्शनिक इनको जगत् के प्रत्येक कार्य में निमित्त कारण मानते हैं । आकाश निष्क्रिय है या नहीं । इसके सम्बन्ध में कुछ लोगों में मत भेद है क्योंकि इस में गुण है पर कर्म नहीं । अन्य निष्क्रिय द्रव्यों--आत्मा, काल तथा दिशाओं में कोई भी गुण शास्त्रों में नहीं माना गया है ।

यथा "खादीनि पंचभूतानि सगुणानि मनश्च सगुणम्। आत्मकालदिशो निर्गुणाः। इति कणादः॥" इस प्रकार आकाश की निष्क्रियता में सन्देह होने के कारण आगे यह सिद्ध किया जायगा कि आकाश भी निष्क्रिय है।



अब ९ द्रव्यों में ५ सक्रिय द्रव्य ही बचे। जिन से विश्व का संचालन होता है। अतः इन ५ सक्रिय भूतों से ५ ही दोष उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु वायु, तेज, जल, पृथ्वी तथा मन—इन ५ सक्रिय द्रव्यों में भी वायु, तेज तथा जल को ही दोष संज्ञा प्राप्त हुई या इन्हें ही दोष माना है। अब हमें यह देखना है कि यदि इन सक्रिय ५ द्रव्यों में स्वतन्त्र दूषकत्व है तब तो इनकी दोष संज्ञा हो सकती है अन्यथा नहीं। इस प्रकार यदि हम यह सिद्ध करदें कि इन द्रव्यों में से वायु, तेज तथा जल में ही स्वतन्त्र दूषण शक्ति है और आकाश, पृथ्वी तथा मन में स्वतन्त्र दूषकत्व नहीं है तो शास्त्र में तीन ही दोष क्यों माने हैं?—५ भूतों से ५ दोष क्यों नहीं उत्पन्न हुये? ये प्रश्न हल हो जाते हैं।

यद्यपि प्रारम्भिक प्रसंग से आकाश व पृथ्वी में स्वतन्त्र दूषकत्व नहीं है यही सिद्ध करना है, पर शास्त्रीय विधि के अनुसार उसमें मन को भी सम्मिलित करना है क्योंकि मन को सक्रिय मानते हुए भी उस को दोष संज्ञा नहीं प्राप्त हुई है।

आकाश—

आकाश को शास्त्रकारों ने निष्क्रिय माना है इसमें किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। न्याय दर्शन में भी आकाश का कोई कर्म नहीं माना है।

"चलनात्मकं कर्म। पृथ्व्याद्यचतुष्टय मनोमात्रवृत्तिः।" अर्थात् आकाश को छोड़ अन्य ४ भूतों में ही कर्तृत्व है। इस प्रकार आकाश में कर्म गुण न होने से इसमें किसी प्रकार का विकार नहीं होता है। कृत्रिम रूप से भी इसमें कोई विकार नहीं किया जा सकता। आकाश का एक स्थान से दूसरे स्थान में गमन भी नहीं होता, यथा— "भूतैः चतुर्भिः सहितैः ससूक्ष्मै मनोजवो वेगमुपैति देहात्॥" अन्य भूतों का स्थानान्तर गमन होता है पर आकाश का स्थानान्तर गमन भी नहीं होता। आकाश तो विभु माना

जाता है। "सर्वभूतद्रव्य संयोगित्वं विभुत्वम्" भूर्तत्वं च क्रियावत्वम्। (तर्क संग्रह न्याय बोधनी)

प्रत्यक्ष देखने में भी आकाश सर्वदा एकसा रहता है उसमें कोई परिवर्तन या विकार स्वतन्त्र रूप से नहीं होता। जैसे घर के आकाश को यदि हम चाहें कि छोटा या बड़ा करदें तो नहीं कर सकते। यदि इसको गोल से आयताकार बनाना चाहें तो नहीं बना सकते। पूर्व घट से यदि किसी दूसरे छोटे घट को लेलें और यह कहें कि अब आकाश छोटा हो गया तो यह समझना ठीक न होगा। वास्तव में घर ही बड़ा या छोटा हो गया है, आकाश में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। उसे हम घट परिवर्तन या पार्थिव तत्व—परिवर्तन कह सकते हैं न कि आकाश परिवर्तन। घट में मिट्टी का प्रलेप कर देने से घटगत आकाश छोटा हो जायगा। पर यह भी आकाश-विकार न होकर पार्थिव-विकार होगा। इस प्रकार संसार के सम्पूर्ण कार्यों से आकाश में कोई स्वतन्त्र परिवर्तन नहीं होता वरन् अन्य तत्वों के विकार या आकार परिवर्तन से आकाश में परिवर्तन मालूम होता है। इस परिवर्तन का मुख्य कारण पृथिव्यादि ४ भूत ही होते हैं।

न्याय मत से सब महाभूतों के दो भेद होते हैं। १. 'परमाणु रूप' जो नित्य होता है। २. 'कार्य रूप' जो अनित्य होता है। पर आकाश के दो भेद नहीं होते। वह केवल परमाणु रूप नित्य ही होता है। आकाश महाभूत का 'कार्य रूप' भेद न होने से यह निष्क्रिय है।

आकाश इतना बड़ा निष्क्रिय पदार्थ है कि बिना अन्य भूतों या द्रव्यों की सहायता के वह अपने गुणों को भी अभिव्यक्त नहीं कर सकता। शब्द आकाश का सब से बड़ा या प्रधान गुण है। पर यह निष्क्रिय होने से शब्द को व्यक्त नहीं कर सकता। इसकी परीक्षा आप वायु विहीन डिब्बे के अन्दर बिजली की घंटी बजाकर कर सकते हैं। घंटी बजेगी परन्तु शब्द न सुनाई देगा। पर यदि उसमें एक तार लगा दिया जाय तो उसके द्वारा शब्द बाहर सुनाई देगा। इस प्रकार आकाश के शब्द गुण की अभिव्यक्ति भी अन्य द्रव्यों के द्वारा होती है।

आकाश सत्वगुण प्रधान भूत माना गया है। 'सत्वबहुलमाकाशम्' सु० शा० अ० १। सत्वगुण स्वयं निर्विकार होता है। अतः आकाश भी निर्विकार, निष्क्रिय सिद्ध हुआ।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि आकाश में निज की कोई कर्तृत्व दूषकत्व शक्ति नहीं है। आकाश में जो कुछ भी विकार होता है वह सक्रिय द्रव्यों द्वारा ही होता है अथवा यों कहिये कि निष्क्रिय- द्रव्यों का कर्म सक्रिय द्रव्यों के संयोग से होता है। जिस जड़ एक्के में कर्त्ता-चैतन्य घोड़े के संयोग से एक्के में कर्म होने लगता है उसी प्रकार

सक्रिय द्रव्यों के संयोग से निष्क्रिय द्रव्यों में भी कर्म होने लगता है।

अगर कोई कहे कि दर्शनों में तो आकाश से वायु की उत्पत्ति लिखी है—तो बिना कर्म के यह उत्पत्ति कैसे हुई ? इस प्रकार आकाश सक्रिय सिद्ध होता है।

"तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथ्वी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधिभ्योऽन्नम्, अन्नाद्रेतः, रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।" तैत्तिरीयोपनिषद्

पर वास्तव में आकाश सक्रिय नहीं है। उपर्युक्त शब्दों में सृष्टि की उत्पत्ति का आदि कर्म बतलाया है। सृष्टि के आदि नियमों का प्रयोग सृष्टि हो जाने पर दुबारा नहीं होता। पहिले अमैथुनी सृष्टि आदि में हुई। पर बाद में मैथुनी सृष्टि उत्पन्न हुई। जैसे रुपये ढालने के लिए प्रथम साँचा बनाया जाता है पर हर रुपये के लिए साँचा नहीं बनाया जाता।

ऊपर के तर्क से आत्मा भी सक्रिय हो जायगा। क्योंकि आत्मा से ही आकाशादि उत्तर भूतों की सृष्टि हुई है। पर हम आत्मा को सक्रिय नहीं कहते। क्योंकि आकाश उत्पन्न करने के बाद आत्मा में स्वयं कोई विकार नहीं होता। उत्पन्न करने के बाद आत्मा में पुनः उत्पन्न करने का कोई विषय भी नहीं रह जाता। यद्यपि आत्मा चैतन्य है पर निष्क्रियता के कारण स्वयं अपनी चैतन्यता को व्यक्त नहीं कर सकता। शास्त्रों में साफ कहा है कि आत्मा की चैतन्यता मन, भूत तथा इन्द्रियों के विषयों से ही प्रकट होती है।

"निर्विकारः परस्त्वात्मा सत्वभूत गुणेन्द्रियैः। चैतन्ये कारण........।"

इसी प्रकार आकाश से वायु उत्पन्न होने पर भी आकाश में कोई विकार नहीं होता, वह स्वयं अविकृत रहता है। पर यही बात जब वायु से अग्नि की उत्पत्ति होती है तब वायु की मात्रा तथा गुण धर्म में परिवर्तन हो जाता है। इसी प्रकार वात अग्नि तथा जल शरीर में जब कोई विकार करते हैं तो स्वयं भी विकृत हो जाते हैं। पर आकाश में यह विकृति शरीर विकृत होने पर भी नहीं होती। आकाश न स्वयं विकृत होता है न दूसरे को विकृत करता है। इसीलिए इसको निष्क्रिय माना है और इसी से इसको दोष संज्ञा नहीं प्राप्त हुई।

यदि कोई कहे कि प्रत्येक शास्त्र कहता है कि संसार का प्रत्येक कार्य पंच महाभूतों से होता है और आप आकाश को निष्क्रिय बतलाकर दर्शनवाद के विरुद्ध कह रहे हैं तो इसमें भूल होगी। क्योंकि ऊपर हमने इस बात का उल्लेख किया है कि सक्रिय द्रव्यों के संयोग से निष्क्रिय द्रव्यों में भी परतन्त्र क्रिया होती है। जैसे चैतन्य के संयोग से जड़ में क्रिया होती है वैसे ही सक्रिय के संयोग से निष्क्रिय में भी क्रिया होती है।

इस मत को दर्शनकारों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है।

अब हम समझते हैं कि यह बिल्कुल स्पष्ट होगया है कि यद्यपि ५ भूतों से सब कुछ होता है पर स्वतन्त्र रूप से आकाश कुछ नहीं कर सकता है। अतः आकाश को दोष संज्ञा नहीं प्राप्त हुई। और अब वह स्वतन्त्र रूप से कोई कार्य नहीं करता तो रोगोत्पत्तिशमन के सम्बन्ध में भी उस पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

पृथ्वी—अब पृथ्वी को लीजिये। पृथ्वी की गणना यद्यपि शास्त्रकारों ने सक्रिय द्रव्यों में की है पर फिर भी इसको दोष संज्ञा नहीं प्राप्त हुई। इससे प्रकट होता है कि पृथ्वी की सक्रियता में भी कुछ रहस्य है।

सृष्टि की आद्युत्पत्ति का वर्णन करते समय यह बतलाया गया है कि—

"आकाशाद्वायुः। वायोरग्नेः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथ्वी, पृथिव्या ओषधयः ...." आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार जलोत्पादन से पृथ्वी उपादेय भूत की उत्पत्ति हुई अर्थात् पृथ्वी जल का विकार है। पर उपादन रूप पृथ्वी से उपादेय भूत किसी अन्य भूत की उत्पत्ति नहीं हुई है। उपादान रूप पृथ्वी के परमाणुओं से किसी षष्ठ महाभूत की उत्पत्ति नहीं होती है। क्योंकि उसका कोई अस्तित्व नहीं है। और न उसके ज्ञान या ग्रहण के लिए कोई छठी ज्ञानेन्द्रिय ही शरीर में है। इस प्रकार परमाणु रूप पृथ्वी में कोई विकार नहीं होता है। अतः परमाणु रूप पृथ्वी की दोष संज्ञा नहीं हो सकती।

अब कार्य रूप अनित्य पृथ्वी की ओर ध्यान दीजिए। नैयायिकों के मत से कार्य रूप पृथ्वी में जो कुछ गुण धर्म होते हैं वे अग्नि के परिपाक से आते हैं। उनके मत से पृथ्वी में स्वतन्त्र कोई गुणकर्म नहीं होता। यहाँ तक कि पृथ्वी के एक मात्र गन्ध गुण को भी वे पाक जन्य बतलाते हैं। पीलुपाकवाद या गुणपरिणामवाद के मत से पृथ्वी के गुण धर्म परिपाक से ही उत्पन्न होते हैं। यथा "रूपादि चतुष्टयं पृथिव्यां पाकजमनित्यं च। अन्यत्र पाकजमित्यमनित्यं च। तर्क संग्रह।" अर्थात् पृथ्वी के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श गुण अग्नि के परिपाक से उत्पन्न होते हैं। अन्य भूतों के रूप रसादि गुण बिना परिपाक के स्वतन्त्र रूप से रहते हैं। इस प्रकार गुणपरिणामवाद के मत से कार्यरूप पृथ्वी में कोई भी स्वतन्त्र गुण धर्म नहीं है। अतः पृथ्वी की दोष संज्ञा नहीं हो सकती।

यही हाल पृथ्वी के कर्म का है। वैशेषिक दर्शन में यद्यपि पृथ्वी को सक्रिय माना है पर पृथ्वी का कर्म बतलाया है 'स्थिरगति पृथिव्याः कर्म' पर वास्तव में 'स्थिरगति' कर्म नहीं हो सकता। क्योंकि कर्म की परिभाषा है 'चलनात्मकं कर्म' अतः स्थिर गति वाले को सक्रिय कहने की अपेक्षा निष्क्रिय कहना ही अच्छा है।

यद्यपि कणाद ऋषि ने उसको सक्रिय माना है पर वे स्वयं कहते हैं कि—

"नोदनादभिघातात् संयुक्त संयोगाच्च पथिव्या कर्म" अर्थात् पृथ्वी में स्वतन्त्र रूप से कोई कर्म नहीं होता। वरन् १. नोदन २. अभिघात तथा ३. संयुक्त के संयोग से ही पृथ्वी की क्रियाएँ होती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पृथ्वी में कोई कर्म स्वतन्त्र रूप से नहीं होता। पृथ्वी के कर्म दूसरे द्रव्यों की प्रेरणा से ही होते हैं, अतः पृथ्वी को दोष संज्ञा नहीं दी जा सकती।

मन

यही हाल मन का है। मन में जो कुछ भी कर्म या विकार होता है वह इन्द्रियों द्वारा होता है। बिना इन्द्रियों की सहायता के मन का कोई कार्य नहीं हो सकता, और इन्द्रियाँ पंचभूतों की प्रतिनिधि होने से इनका समावेश पंचभूतों में ही होता है। शरीर के दूषण में मन का कोई महत्व नहीं है। क्योंकि वह इन्द्रियों के अधीन है। अतः इसकी दोष संज्ञा नहीं हो सकती।

आप पूछेंगे कि जब यह स्वतन्त्र कोई कार्य नहीं करता तो आकाश की तरह इसको निष्क्रिय क्यों न मान लिया जाय? इसको सक्रिय मानने का कारण यह है कि जब अन्य द्रव्यों द्वारा पृथ्वी व मन में विकार होता है तब यह स्वयं भी विकृत हो जाता है पर आकाश विकृत नहीं होता।

इस प्रकार संसार के सम्पूर्ण पदार्थों का विवेचन करने से मालूम हुआ कि संसार में केवल तीन द्रव्य, वायु, अग्नि तथा जल ही ऐसे हैं जो स्वतन्त्रता पूर्वक अपना कार्य कर सकते हैं। आकाश, पृथ्वी तथा मन ये द्रव्य - यद्यपि इनमें दो द्रव्य सक्रिय माने जाते हैं स्वतन्त्र रूप से बिना दूसरे द्रव्यों की सहायता के कोई कार्य नहीं कर सकते। अतएव इनको दोष संज्ञा नहीं प्राप्त हुई। तीन ही दोष मानने के ये दार्शनिक कारण हैं। इस व्याख्या में पाश्चात्यों की जरा भी सहायता नहीं ली गई है। और इसमें जितने भी भावों या उद्धरणों की सहायता ली गई है वे कोई भी ऐसे नहीं हैं जिनको कि एक दर्शनकार माने और दूसरे न मानते हों।

अब हमें यह सिद्ध करना है कि वातादि त्रय में स्वतन्त्र कर्तृत्व है। पर इसे सिद्ध करने से लेख बहुत बढ़ जायगा। इन तीनों की सक्रियता के सम्बन्ध में पाश्चात्यों को भी कोई सन्देह नहीं है अतः उन को मैं यों ही स्वतन्त्र क्रियावान मान लेता हूँ।

उस प्रकार संसार के सम्पूर्ण पदार्थों की दृष्टि से यह सिद्ध हुआ कि तीन ही द्रव्यों में स्वतन्त्र कर्तृत्व है जिनसे कि विश्व का संचालन होता है और इन्हीं की क्रिया से अन्य द्रव्य भी कर्म करते हैं। अतः किसी भी कर्म या रोगोत्पत्तिशमन में इनका विचार कर लेने से सबका विचार हो जाता है—क्योंकि इनकी क्रिया से ही सबों की क्रिया होती है।

इसी प्रकार हम शरीर रचना व रोगोत्पत्ति की दृष्टि से भी यह सिद्ध कर सकते हैं कि सब धातुओं (२४, २५, ६) या भावसम्पद् में केवल वातादि त्रय ही सर्व कार्यों के मूल कारण हैं। अर्थात् इन्हीं से सर्व विकार होते हैं। पर लेख बढ़ने के भय से तथा कुछ पुनरावृति होने से नहीं लिख रहा हूँ।

इस लेख को मुझे संक्षिप्त करना है—यहाँ तक कि शास्त्रीय प्रमाण भी बहुत कम उद्धृत किये गये हैं। इससे सम्भव है कि कहीं कहीं भाव समझने में कठिनाई हो। पर आशा है कि जिन विद्वानों को त्रिदोष के अन्वेषण में अभिरुचि है वे हमारे भावों को अवश्य समझ जायेंगे और अपनी सम्मति भी प्रकट करेंगे।

वातादि त्रय दोष क्यों हैं।	आकाश, पृथ्वी दोष क्यों नहीं माने गये ?
१. वातादि सक्रिय हैं।	१. आकाश निष्क्रिय है पृथ्वी की स्थिरगति भी वास्तव में निष्क्रिय है।
(i) वात, अग्नि, जल के परमाणु विकृत होकर क्रम से अग्नि, जल व पृथ्वी के परमाणु उत्पन्न करते हैं।	(i) पृथ्वी के परमाणुओं में कोई विकार होकर षष्ठभूत नहीं उत्पन्न होते।
(ii) इनके गुण स्वतन्त्र होते हैं। अग्नि परिपाक से नहीं उत्पन्न होते।	(ii) पृथ्वी के गन्धादि गुण निज के गुण न होकर गुणपरिणामवाद से अग्नि परिपाक से उत्पन्न होते हैं।
(iii) सर्वतोगति, ऊर्ध्वज्वलन तथा निम्न गमन इनके स्वतन्त्र कर्म हैं।	(iii) स्थिर गति पृथ्वी का कर्म कहा गया है पर वास्तव में जिसमें गति नहीं उसको सक्रिय नहीं कह सकते।
(iv) इनमें से प्रत्येक स्वतन्त्र रूप से बिना दूसरे की सहायता के कर्म कर सकते हैं।	(iv) भौतिक कार्यों को करने का पृथ्वी में कोई निज का गुण नहीं है पृथ्वी के कार्य नोदन, अभिघात तथा संयुक्त संयोग से होते हैं, और आकाश तो कर्म-हीन है।
(v) जब ये कोई विकार करते हैं तो स्वयं भी विकृत हो जाते हैं।	(v) सक्रिय द्रव्यों के संयोग से जब कोई कार्य होता है तब आकाश विकृत नहीं होता, पर पृथ्वी विकृत हो जाती है।
(vi) वातादित्रय प्रत्येक पृथक् पृथक् विकार करने में समर्थ हैं।	(vi) आकाश व पृथ्वी पृथक् पृथक् बिना दूसरे द्रव्य की सहायता के कोई विकार नहीं कर सकते!

प्रमेह भेद विमर्शः

(ले०—वैद्यविशारद एस्० वी० राधाकृष्ण शास्त्री)
आयुर्वेदशिरोमणिः, तिरुचिरापल्ली (मदरास)

१९५२ वर्षे द्रविडप्रान्तीयायुर्वेद महामण्डलवार्षिकोत्सवे प्रमेहस्पर्धा निबन्धेषु स्वर्णमुद्रा पारितोषिकेण संभावितोऽयं निबन्धः। विषय—विमर्शक-परीक्षकाणां प्रमोदावहः, उत्तर श्रेणिक छात्राणां उपकारकश्च स्यात्।

संपादकः, वा. बा. न.

उपोद्घातः।

त्रिविधा हि मूत्ररोगाः स्मर्यन्त आचार्यैः-मूत्रकृच्छ्, मूत्राघातो मेहश्चेति। मूत्रकृच्छ्रे, मूत्रस्य कृच्छ्रेण सवेदनं क्षरणम्, मूत्रस्य स्वाभाविकान्मानादल्पता दुष्टिश्च; मूत्राघाते वातादिनाऽऽशयदुष्टिः मार्गरोधो मूत्रविसर्गे प्रतीघातश्च; प्रमेहे तु मूत्रस्य स्वाभाविकान्मानात् वृद्धि, दुष्टि, अतिप्रवृत्तिश्च। इत्यादीनि तेषां परस्परं भेदकानि लिङ्गानि। मूत्रकृच्छ् मूत्राघातश्च मूत्राप्रवृत्तिजौ (मूत्राल्पप्रवृत्तिजौ) रोगाविति, प्रमेहस्तु मूत्राति प्रवृत्तिजः इति च विशेषः। यदेतत्स्पष्टीकरोति वृद्धवाग्भटवचनं—

"इति विस्तरतः प्रोक्ता रोगा मूत्राप्रवृत्तिजाः।
निदानलक्षणैरूर्ध्वं वक्ष्यन्तेऽति प्रवृत्तिजाः॥"
(अ० सं० मूत्राघातनिदाने)

कैश्चिच्च नव्यैर्विभाग एवं क्रियते, यत्—येषु रोगेषु रासायनिकस्वरूपपरिवर्तनं (Pathological chemical composition) दूषकं दृश्यते, ते मेहा इति, येषु रोगेषु मूत्रक्षरणे निर्गमनसम्बन्धिविक्रियाविघातो (Mechanical Obstruction) लक्ष्यते, ते मूत्राघाता इति च। परमेष भेदकोपाधिः—रासायनिकस्वरूपपरिवर्तन—निर्गमनविहति रूपविक्रियात्मको—न निर्दोषो भवितुमर्हति; उभयत्रोभयोः भेदकयोः लक्ष्यमाणत्वात्। यथा—मूत्रशुक्रमूत्रसादोष्णवातादिषु मूत्राघातभेदेषु रासायनिकस्वरूप परिवर्तनस्य, हस्तिमेहशनैर्मेहादौ मूत्रसंगात्मक निर्गमनविहननस्य दृश्यमानत्वात्। मूत्रशुक्र मूत्रक्षयादौ निर्गमनविहतेः अदृश्यमानत्वाच्च। अतो मूत्रातिप्रवृत्तिजा मेहाः, मूत्राल्पप्रवृत्तिजा मूत्राघाता इति तु प्रायः संभवति।

प्रमेह स्वरूपम्-प्रमेहेषु तु विशेष एषः—यन्मूत्रं शरीरे स्वभावादधिकतया उत्पद्यते क्षरति दुष्यति च। उत्पत्तिकाले क्षरणकाले च संभाव्यमानं स्वरूपपरिवर्तनमनुसृत्य बहुधा नाम

प्नोति। पुंसां मूत्रं प्राकृतदशायां--स्वभावतः तनु स्वच्छं ईषत्पीतं लवणाम्लरसं प्रायः षोडशपलमितं (१२८ तोलमितं) च भवति। स्त्रीणां तु माने ईषत् ऊनं भवति। वयःपरिणामाकृत्यादिभेदात्, क्वचित् कदाचित् न्यूनता अधिकता वा संभाव्यते तु। ज्वरातिसारादि विकृत्यवस्थाविशेषेषु वर्णस्वरूपमानभेदश्च लक्ष्यते। प्रमेहेषु पुनः स्वरूपमेतत् वाग्भटेन दीयते—

"सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता"

(अ० हृ० प्रमेहनिदाने)

इति। तत्र च कारणं धातुसंपर्कमभिमनुते वृद्धवाग्भटः—

"धातुसंपर्कात्पुन सर्वमेहेषु मूत्रमाविलं भूरि च भवति"

(अ० सं० प्रमेहे)

तदर्थममुं माधवनिदानगतं व्याख्यातवान्, श्रीकण्ठदत्तः,

"प्रभूतमूत्रत्वं धातुसंबन्धात् आविलत्वं च दोषदूष्यसंपर्कात्"

इति। तथा च मूत्रस्य प्रभूतता आविलता चेत्युभयमपि प्रमेहसामान्यलक्षणं भवति। आविलशब्दश्च कलुषः अनच्छ इत्यर्थकः।

नव्यास्तु आचार्य गणनाथ सेन प्रमुखाः—

उभयमपि न मेहसामान्यलिङ्गं भवितुमर्हति, क्वचिदच्छमूत्रलक्षणदर्शनात्, हस्तिमेहादौ प्रभूतताया अदर्शनाच्च। अतः क्वचित् प्रभूतता, क्वचिदाविलता, क्वचित् प्रभूताविलतेति' युक्तिमाद्रियन्ते। वस्तुतस्त्वत्र आविलशब्दो दोषदूष्यसंपर्कवशात् विकृतत्वार्थे शक्तः। आविलं विकृतं दुष्ट[1]न तु स्वरूपस्थं इति यावत्. यच्च श्रीकण्ठदत्तोऽभिप्रैतीव। गयादासश्च सौश्रुतं

"तत्राविलप्रभूतलक्षणाः सर्व एव प्रमेहा भवन्ति" इति वाक्यं व्याचक्षाणः।

तत्राविलत्वं मूत्रस्य प्रमेहदूष्याणां मेदोरक्तमांस-
मज्जाशुक्रोदकवसालसीकौजसां क्वचिदेव प्रमेहे
कस्यचिदेव दूष्यस्यावयवमिश्रीभावात्। तेषामेव
च दूष्याणां द्रवैरेकी भूतत्वान्मूत्रप्रभूतत्वं"

इतिदूष्यावयवमिश्रणेन दूषितत्वमेवाविलत्वं इति मतं दृढीकरोति। तत्र च स्वच्छधातुमिश्रणे क्वचिदच्छं, क्वचिदन्यथा च अन्यथाभावे इत्ययं साधीयान्मार्गः। अतः प्रभूतमूत्रता आविलमूत्रता चेत्युभयमपि सामान्यं मेहलक्षणं भवति।

सेचनार्थकात् मिह धातोरुत्पन्नो मेहशब्दः। प्रकृष्टो मेहः प्रमेहः। मधुमेहशब्दस्तु वातिके मेहविशेषे नियतार्थोऽपि क्वचिन्मेहसामान्यवाचितयाऽप्युपयुज्यते, परस्मिल्लेखे परिभाषाव्याकुलीकरणभिया मधुमेहशब्दो वातिके मेहविशेष एव नियम्यते।

[1] आविलं—Impure, spoiled.=Aple's Dictionary.

प्रमेह भेदाः— प्रमेहो द्विविधः सहजोऽसहजश्च। सहजश्च कुलक्रमागतः 'जातः प्रमेही मधुमेहिनो वा' इत्यादिलक्ष्यः। असहजश्चापथ्यनिमित्तो दोषदूष्यसंमूर्च्छनाविशेषादुत्पन्नो व्याधिः, यथा ज्वरः। सहजमेहपीडितश्च प्रायः कशो रूक्षोऽल्पभोजी अतिपिपासुः परिभ्रमणशीलश्च भवेत्। असहजमेहातुरश्च स्थूलो बहुभोजी स्निग्धः शय्यासनस्वप्नसुखाभिलाषी निद्रालुश्च। तत्रासहजा भूयसा ग्रन्थेषु प्रतिपाद्यन्ते, तत्रैव निदानदोषदूष्यसंमूर्च्छना प्रतिपादनस्य संभवात्। कुलजानां तु चिकित्सया यापनायातिदेशः कत एव।

प्रमेहा अपि रोगान्तरवत् त्रिविधा भवन्ति कफप्रमेहाः, पित्तप्रमेहाः, वातप्रमेहाः इति च। तत्र कफजाः दश, पित्तजाः षट्, वातजाः चत्वारः। इति विंशतिस्ते।

कफप्रमेहाः—तत्र कफप्रमेहा प्रथममुपादीयन्ते। ते च दश कथ्यन्ते चरकेण। उदक —इक्षुवालिकारससान्द्र सान्द्रप्रसादः —शुक्ल —शुक्र— शीत – सिकताशनैः— आलाल मेहाख्यया। शुक्लमेहः सुश्रुते पिष्टमेह इति, सान्द्रप्रसादमेहः सुरामेह इति च व्यपदिश्यते। वाग्भटे माधवे च आलालमेहः लालामेह इत्यभिधीयते। चरकोक्तौ आलाल शीतमेहौ सुश्रुते न स्तः, सुश्रुतोक्तौ फेनलवणमेहौ चरके वाग्भटे माधवे च न स्तः। अतः साकल्ये, फेनलवणमेहौ पृथक् लक्षितलक्षणाविति तयोः संकलने द्वादश कफजा मेहा भवन्ति।

संख्यासमन्वयः— चिन्त्यमत्र किञ्चिदस्ति। किमुपाधिकोऽयं भेदव्यवहारः? किमु स तथ्य उत काल्पनिकः? यदि तथ्यः, किमु सर्वे इदानीं परिचाय्यन्ते? यदि काल्पनिकः, यथा च दोषदूष्यनिदानसमवायविशेषात्, देशकालशरीरावस्थादि बहुविध साधनाश्रितत्वाच्च उत्पद्यमाना मेहा अनन्ता नानाविधाः, परं गतिकल्पनाय चिकित्सायुक्तिनिर्देशाय कल्पनैषा क्रियत इति,—तर्हि किमु उक्तेषु सर्वेऽद्य नोपलभ्यन्ते? नूतना अपि मेहविशेषा अद्य उत्पन्ना वा? येषां परिचय आयुर्वेदग्रन्थेषु नोपलभ्येत? किमु सर्वे मेहाः स्वतन्त्रा अप्युपलभ्यन्ते? अथवा केचित्परतन्त्रा एवोपलभ्यन्ते? स्वतन्त्रा रोगान्तरावस्थोपद्रवलिंगाद्यात्मिकाः?

विमर्शः। काल्पनिकत्वादानन्त्यं प्रत्याख्यातं चक्रपाणिना। संख्या च व्यवस्थापिता। यथा— "न चेह वाच्यं यत् श्लेष्मगुणा दश प्रमेहान्जनयन्ति, तथा किमित्यपरानपि गुणसंसर्गात् विकल्पान्तरेण न कुर्वन्ति इति। यतो भावस्वभावोऽयं, यथा दृष्ट एव परं कल्प्यते ना दृष्टः। न हि सत्यपि भूतसंसर्गभूयस्त्वे रसभूयस्त्वं भवति इति व्यवस्थितमेव'। (च० सं प्रमेहनिदाने)

इति। अनेनोपदिष्टमेहवर्गान्तर्भूतो मेहोनास्ति न वा भविष्यतीति प्रतिज्ञातमिवाचार्येण चक्रपाणिना।

आचार्यगणनाथसेनस्तु विप्रतिपत्तिमत्र ख्यापयति स्वीये सिद्धान्तनिदाने, समन्व-

पद्धतिं चान्यामभिनिर्दिशति । यथा—

"विंशतिर्विंशतिर्मेहाः प्राचां, न च समन्वयः ।
समुच्चये तु त्र्यधिका, तथाप्युक्ता न केचन ॥
सन्दिग्धार्थाश्च बहवः, शिष्यबोधसुखाय तत् ।
उक्तानुक्तान्प्रवक्ष्यामः मेहानिह तु षोडश" ॥

इति । व्याख्याते च ते पद्ये तेनैवं—

"प्राचां चरकसुश्रुतवाग्भटादि प्राचीनाचार्याणां संमता विंशतिर्मेहाः प्रतितन्त्रम् न च समन्वयः । तत्तन्मतानां सर्वथा परस्पर सामञ्जस्यं च नास्ति । बहुधा नाम लक्षणभेददर्शनात् । तथा हि चरकोक्ताः केचिन्मेहाः सुश्रुते न दृष्यन्ते । यथाऽऽलालमेहसान्द्रप्रसादकालमेहाः सुश्रुतोक्ताश्च केचिन्न चरके यथा सुरामेहफेनमेहलवणमेहाः । वाग्भटस्य पुनस्ततीयः पन्थाः । चरकसुश्रुतोक्तानां यदृच्छया मेलनेन विंशतिसंख्या पूरणात् । माधवस्तु वाग्भटमतमनुसृत्य तत्पाठानेवोद्दधार । श्रीकण्ठः पुनस्तद्व्याख्यानप्रसंगे प्राह— "सामञ्जस्यं पुनर्नास्त्येव । परस्पर लक्षणसंवादाभावत् । स्मृतिद्वैधवत्सर्वं प्रमाणम्" । इति । एवं च मास्तु समन्वयः, समुच्चयः क्रियतामिति प्रसंगे दर्शयति—समुच्चयेत्विति—समुच्चये समष्टिग्रहणे तु संख्या त्र्यधिका, साकल्येनत्रयोविंशतिः स्यात् । अस्तु नाम तथा । सर्वसंग्रहस्तु करणीय इति संभावनायामाह, तथापीति । तथापि संख्यागौरवस्वीकारेऽपि केचन नोक्ताः पूयमेह–भेषजमेहाद्याः । ते- चावश्यवक्तव्याः । अद्यत्वे प्रत्यक्षदृष्टत्वात् । तस्मान्न सर्वमेहसंग्रहः । बहवो मेहाः प्राचां मताः सन्दिग्धार्थश्च । यथा सान्द्र मेह—सान्द्रप्रसादमेह—शीतमेहाः । तथा हि "तथाहि पर्युषितं मूत्रं सान्द्री भवति चेत्तदा सान्द्रमेहमाहुः । उपर्यच्छतमधो घनं च सान्द्रप्रसाद मेहमाहुः । तत्र सन्देहः—स्वस्थानामपि मूत्रं पर्युषितं सान्द्री भवति प्रायः । उपर्यच्छमधो घनञ्च काल इति । एवमिक्षूदकमेहेषु मूत्रस्य शीतता वर्णिता । सा च शीतांगानां मुमूर्षूणामेव भवति । नान्येषाम् । स्वाभाविकशरीरतापस्य नियतजागरुकत्वात् । इति । एवं शनैर्मेहो मूत्राघात सदृशलिंगः । तत्र प्रभूताविलमूत्रताऽपिनास्ति । तस्मादव्याप्तिर्लक्षणस्य । इक्षुमेह-शीतमेह-क्षौद्रमेहेषु च तुल्ये मूत्रमाधुर्ये तन्त्रोक्त त्रिविधविभागकरणे प्रत्यक्षानुगः पुष्कलो हेतुः नोपलभ्यते इति दिक् ।"

इति ।

अत्रावधेयमेतत्—संख्याधिक्यं पुनरनिवारणीयं स्मृतिद्वैधवदुभयोः संहितयोः प्रामाणिकता बुद्ध्या । अन्ये पुनर्दोषाः उद्भाविताः समाधातुं शक्यन्त एव । तत्रैषत्प्रयते, येन प्रमेहस्वरूपविचारोऽपि परिष्कृतो भवेत् । पूर्वमेवाध्यवासितं 'मूत्रातिप्रवृत्तिजा मेहा' इति । नरस्य एकस्मिन्नहनि स्वाभाविकं यन्मूत्रक्षरणं, ततोऽप्यधिका यदि मूत्रप्रवृत्तिः लक्ष्यते तदा मेहसंज्ञा । अधिकमूत्रता च द्वेधाभवितुमर्हति । सकृद्गमनेनानल्पमूत्र-

विसर्गः, असकृच्छनैः शनैरल्पं अल्पं मूत्रणेन वाराधिक्यात् मानाधिक्यमिति । अतः सर्वेषु मेहेषु मूत्रप्रवृत्तिरधिका मुख्यलिङ्गम् । शनैर्मेह-हस्तिमेहादावपि यत्र मूत्रस्य प्रवृत्तिरत्यल्पा मन्दमन्दाविविहता च वर्ण्यते, तत्राप्यसकृदमनेन गजमदस्येवानारतं क्षरणेन च मूत्रविसर्गोऽधिको जायते । अतः 'शनैर्मेहो मूत्राघातसदृशलिङ्गः तत्र प्रभूताविलमूत्रतानास्तीति यो दोष उद्भावितः स चिन्त्य एव ।

अन्यच्च, अकस्माद्भुक्ते द्रव्यविशेषे मूत्रात्मना परिणते जाताया आशय विकृतेः दोषधातुमलविकृतेर्वा उत्पन्नो मूत्रणे विशेषो विकारो वाऽत्यल्पकालस्थायी – प्रभूताविललक्षणोऽपि न मेहेष्वन्तर्गणनीयः । यथा च यः किल गणनाथोपज्ञः भेषजमेहाख्यः—

"विविधैर्नीलरक्तादि भेषजैरुपसेवितैः ।
तत्तत्सवर्णता मूत्रे स मेहो भेषजोद्भवः ॥

इति, यश्च तेनैव

"तादृशमेहाश्च प्रायो द्वित्रिचतुर्दिनानि तिष्ठन्ति' इति विप्रकृष्टनिदानापगमने स्वयमेवोपशाम्यन्तीति वर्ण्यते, स न मेहेषु गणनामर्हति, गणनाथेन गणितोऽपि, यतो मेहहेतु भूतदोषदूष्यसंमूर्च्छनाया व्याध्युत्पत्तौ कारणत्वेन, मेहचिकित्सायाः तद्व्याध्यपगमने समर्थत्वेन चादृश्यमानत्वात्, प्रभूतमूत्रताया अनियमाच्च । एवमेव यः किल NUTRITIONAL DIABETES इति, मधुरभूयिष्ठाहारोपसेवनाच्छरीरगतं मधुरीभूतमन्नमपरिणतं (धात्वात्मना) वृक्कौ बहिरपगमयतः, यदुत्थं मूत्रगतं माधुर्यं, सोऽप्यचिरकालस्थायी मधुरवर्जाहारोपसेवने तथा मधुरजारकाहारौषधादि सेवनेऽपयातीति न सोऽपि मेहाख्यां भजते, तत्र व्याधिसंप्राप्तेरेवाभावात् । यथा वा शीतेष्वहस्सु व्यायामोद्वर्तनादीनभजतः भूयान्मूत्रविसर्ग उपलभ्यते, स्वेदमार्गेण शरीरक्लेदस्यानपनीत्वात्, सत्यपि तयोर्मूत्रविकारकत्वे, मेहपर्यवसायित्वे च आकस्मिकत्वेन, रोगतया अचिरस्थायित्वेन, मेहचिकित्सानपेक्षित्वेन यथोक्तविकारानारंभकत्वान्न मेहेषु गणना युज्यते ।

अथ च पर्युषिते मूत्रे कदाचिद्द्रवतायां ईषद्घनीभाव उपलभ्यते, आविलता अधः किण्वद्द्रव्यसंचयश्च । परं स्त्यानीभावपर्यन्तं संहतिः, घृतवद्घनता वा न संपद्यते यच्चोद्दिश्यते सान्द्र—सान्द्रप्रसादमेहयोः । अतो न तत्र सन्दिग्धार्थता ।

एवं मूत्रस्य स्वाभाविकशारीरसन्तापानुरूपता – तथा च—कोष्णता नियतं जागर्त्येव । मुमूर्षूणां तु स्वाभाविके शारीरे तापे क्षीणे तदपि शीतं भवति । ज्वरादौ च यत्र तापः शारीरोऽधिकः, तत्र मूत्रेऽपि तत् प्रतिफलति । इदं तु स्वभावसिद्धं लक्षणानुरूप्यम् । अत्र तु व्याधौ विशेष एष एवमभिधीयते । मूत्रं तु इक्षु-शीतमेहादौ शीतं भवति, कफधातोर्द्रव्याणां आप्यधातूनामत्र संपर्कात्, पित्तस्य च मूत्रगततापनियामकस्य कफेन प्रभावित्वात् । भूयसा कफांशमिश्रितत्वेन मूत्रस्य वृद्धौ, स्वाभाविकस्य पित्तस्य तत्र

अल्पत्वाच्च। अतः स्वाभाविकशारीरतापानुसारं अत्र औष्ण्यं न नियम्यते पित्तेन, इति सुकरः समाधिः। यद्येतादृशं मूत्रतापस्य वैसादृश्यं कफादिसंसर्गेण संभवति, तत्र का नामानुपपत्तिः, अयुक्तता वा? संदिग्धार्थता वा? न च विषमज्वरादौ शीतोष्णयोः विषमता, स्वाभाविकशारीरतापाधिक्येऽपि संदिग्धार्थकतया अयुक्ततया वा विचिकित्स्यते!

अपरं च इक्षुमेह-शीतमेह-क्षौद्रमेहेषु तुल्ये मूत्रमाधुर्ये तन्त्रोक्तविविधविभाग-करणे पुष्कलो हेतुर्नोपलभ्यत इति वादोऽप्यकिंचित्करः। संप्राप्तिः, तदंगो विधाक्रमश्च न हि व्याधिविभजनमात्रे पर्यवतिष्ठेते। चिकित्सा हि निदानस्य संप्राप्तेर्वि ज्ञानस्य फलं लक्ष्यं च। अत्र पश्यामः। तुल्यं मूत्रमाधुर्यं इति केन परीक्षितं पर्यवस्थापितं च? किं इक्षौ मधुनि जले च माधुर्यमेकविधम्? कृत्वा चिन्तया व्यवहरामः। सत्यपि तुल्ये मूत्रमाधुर्ये, किमु माधुर्यापोहनाय चिकित्सा उपदिश्यते? न। परं दोषदूष्यदुष्टि-निवारणपूर्वकं समधातुकत्वसमर्थनाय। इक्षुमेहः शीतमेहश्च कफजौ। मधुमेहस्तु वातिकः कफजवातिकयोः, तत्रापि प्रत्येकं संप्राप्तिर्भिन्ना, तदनुसारिणी चिकित्साऽपि भिन्ना। न व्यवहारमात्रोपयोगी पृथङ् नामनिर्देशः। साध्यासाध्यतायां पुनः समुद्रमेर्वोरिव महदन्तरम्। यदेतदाचार्यगणनाथस्य विमर्शजातं, तदापाततः।

अन्यच्चोच्यते प्रायः सर्वैर्नव्यैः। यन्मेहेषु कतिचिद्व्याध्यन्तराणां लिङ्गानि। न तु स्वयं व्याधयः। तद्यथा—वृक्करोगस्य लिङ्गं लसिकामेहः, श्लीपदस्योपद्रवो वसामेहः, कामलाया लिङ्गं हारिद्रमेहः, अश्मरीरोगस्य सिकतामेहः, वृक्कवस्त्यादौ शोणितस्रवा-द्रक्तमेहः इत्यादि। तथा च नैते पृथग्व्याधयः इति। अत्रावधेयमेतत्। प्रायः सर्वे रोगा रोगान्तरस्यानुबन्धा भवितुमर्हन्ति। क्वचित्स्वतन्त्राः क्वचिदनुबन्धा अपि। आचार्यैरभि-मतमेवैतत्। अत उपर्युद्दिष्टानां मेहानां उद्दिष्टरोगानुबन्धत्वं—परतन्त्रत्वं सर्वैरभ्युपेयत एव। परं स्वतन्त्रता तेषां न तेन प्रतिहन्यते। प्रमेहनान्तरीयके दोषदूष्यसंमूर्च्छना विशेषे स्थिते एतेषां मेहभेदानां उत्पत्तिः कथं वाऽपलपितुं शक्यते। अतो न तु स्वतन्त्रा व्याधय इति प्रतिज्ञा निर्मूला।

(क्रमशः)

क्षीणा दोषा रोगोत्पादने असमर्थाः

(लेखकः--वैद्य श्रीराम शर्मा 'आयुर्वेदाचार्यः' बम्बई)

(श्रीवैद्यनाथायुर्वेदभवनीये सचित्रायुर्वेदाख्ये पत्रे १९५४ फरवरीमासीयांके वैद्य श्री नृसिंहाचार्य वागेवाडीकरमहाशयैः अयं 'क्षीणदोष रोगकारणतावादः' जिज्ञासारूपेण प्रथमं प्रकाशितो दृष्टोऽस्माभिः। अस्योत्तरं च द्वाभ्यां विद्वद्भ्यां लिखितं प्रकाशितं अप्रेलमासीये सचित्रायुर्वेदे। अस्यामायुर्वेदमहासम्मेलन- पत्रिकायां यद्यप्ययं श्री-वागेवाडीकर महाशयोत्थापितो वादो न प्रकाशितचरः, तथाऽपि सचित्रायुर्वेद प्रकाशितं भूयांसो भिषजो दृष्टवन्तः स्युरितिमत्या वैद्यैः श्रीरामशर्मभिः दत्तमुत्तरमिह प्रथमं प्रकाश्यते। समीचीनो महांश्चासौ वादः श्रीवागेवाडीकर परीक्षकैः समुपस्थापितः परीक्षकाणां पूर्वापरविरुद्धवाक्यसमन्वयकुशलानां लेखिनीर्व्यापारयितुमा-कारयति। दयन्तां पण्डिता भिषजः। संपादकः, वा० बा० न०)

किंचित् समयपूर्वं पुण्यपत्तनस्थैः श्री वैद्यवर वागेवाडीकरमहोदयैः 'आयुर्वेद विद्वद्भ्यः निवेदनम्' इति लेखः परिपत्रद्वारा प्रसारितः। तत्र महोदयैस्तैः "उपलभ्यमान चरकसुश्रुतवाग्भटमाधवनिदानादिग्रन्थेषु रोगाणां निदानानि दोषवृद्धिविषयकाण्येव न पुनर्दोषक्षयविषयकाणि,दोषवृद्धिक्षयविषयकाणि वा, अतस्तेऽपूर्णाङ्गाः, यतो 'रोगस्तु-दोषवैषम्यम्' इति आयुर्वेदाचार्याणां सिद्धान्तः, वैषम्यञ्च तद्दोषवृद्धिनिमित्तं दोषक्षयनिमि-त्तंच भवति, अतो दोषक्षयजन्यरोगाणामपि वर्णनं तत्रावश्यकम्" इति विचारः प्रदर्शितः।

अत्र निवेदनं यत् वृद्धा एव वातादयो रोगमुत्पादयन्ति न तु क्षीणाः, जाताल्प-बलत्वात्। अतो यद्यपि दोषक्षयावस्थायां दोषवैषम्यन्तु भवत्येव किन्तु न तत्र क्षीणो-दोषो व्याधिं करोति किन्तु तस्य प्राकृत लक्षणानां ह्रासो भवति तद्विरुद्धलक्षणानां वृद्धिश्च। भवति च तत्र यो व्याधिः स तु शेष दोषजनित एव।

न पूर्वाचार्यैविषयस्यास्य विचारो न कृत इति, किन्तु तैः स्पष्टमुल्लिखितं यत् क्षीणा जहति लिङ्गं स्वं ....'- (चरकः) तत्रैव च टीकायां श्री चक्रपाणिः— 'लिङ्गं स्वं जहतीत्यनेन क्षीणानां प्रकृतिलिङ्गक्षयव्यतिरिक्तं विकारकर्तृत्वं नास्तीति दर्शयति; यतो वृद्धा उन्मार्गगामिनोदोषा दूष्यं दूषयन्तो ज्वरादीन् कुर्वन्ति न क्षीणाः, स्वयमेव दुःस्थितत्वात्।' अन्यच्च—'स्वमानक्षीणादोषाः किंचद्विकारं न जनयन्ति,

क्षीणलक्षणं वैषम्यमे परं यान्ति' (चक्रपाणिः) किंच 'क्षीणाश्च दोषानान्य दुष्टिं कुर्वन्ति किन्तु स्वयमेव क्षीण स्वलिङ्गाः भवन्तीत्यादि वेदितव्यम्' (चक्रपाणिः) तथा च तेषां सर्वेषामेव वातपित्तश्लेष्माणो दुष्टा दूषयितारो भवन्ति दोष स्वभावात्" (चरकः) 'तेषामिति पुरीषादीनां रसादीनांच, दुष्टा इति स्वहेतूपचिताः, क्षीणास्तु नान्य दुष्टिं दोषाः कुर्वन्ति, इति (चक्रपाणिः)।

एतेन स्पष्टमेतद्यत् क्षीणावातादयो न रोगोत्पादन समर्था इति।

द्विविधागतिर्निर्दिष्टा दोषाणायुर्वेदशास्त्र प्राकृति वैकृति च 'गतिश्च द्विविधादृष्टा प्राकृति वैकृती तथा' (चरकः) प्राकृति समावस्था तत्रस्था दोषाः किमपि विकारमनुत्पादयन्तः प्रकृतिं नियत स्वकर्माणि कुर्वन्ति। वैकृति विषमावस्था। वैषम्यंच तद्द्विविधं वृद्धिक्षय भेदेन। वृद्धिश्च पुनर्द्विविधा चयप्रकोपभेदेन तत्रस्वस्वहेतुपचिता दोषा विभिन्न रोगान् जनयन्ति। क्षीणेषु च दोषेषु तेषां प्राकृत कर्मणां उत्साहादीनां ह्रासस्तद्विरुद्ध कर्मणां विषादादीनां वृद्धिश्च। यथाहि 'वाते पित्ते कफे चैव क्षीणे लक्षणमुच्यते, कर्मणः प्राकृताद्धानिर्वृद्धिर्वापि विरोधिनाम्' इति। अतो दोषक्षये तद्विरोधिगुणकर्मणां वृद्धित्वात्तत्समानगुणानां दोषधात्वादीनां वृद्धिरेव दोषकारणमिति।

यद्यपि व्याधीनां द्विषष्टि भेदेषु दोषक्षयजनिता अपि पंचविंशति प्रकारा उक्ताः, किन्तु तत्रापि एकस्य द्वयोर्वा दोषयोः क्षये सति शेषदोषजनिता एव रोगा सम्भवन्ति। यथा च चरकः—'प्रकृतिस्थं यदापित्तं मारुतः श्लेष्मणः क्षये, स्थानादादाय गात्रेषु यत्र यत्र विसर्पति' 'प्रकृतिस्थं कफं वायुः क्षीणेपित्ते यदा बली' 'वातपित्तक्षये श्लेष्मा स्रोतांस्यपिदधद्भृशम्' इत्यादि।

दोषाणामंशांशकल्पनार्थन्तु क्षय लक्षणान्यपि ज्ञातव्यान्येव तानि च स्पष्टमुक्तानि लिङ्गं क्षीणेऽनिलेऽङ्गस्यसादोऽल्पं भाषिते हितम्' इत्यादिना पूर्वाचार्यैः, चिकित्सा च तत्र तत्समानगुणैरोषधाऽऽहारादिभिस्तद्वर्धनरूपाकर्तव्या, यथा च—'वृद्धा ह्रासयितव्याः क्षीणा वर्द्धयितव्याः' इति 'वृद्धिः समानैः सर्वेषा' मिति च।

अतः सुनिश्चितमेतद्यत् क्षयजन्यरोगाणां विस्तृतवर्णनाऽभावान्न संहिताग्रन्था अपूर्णाङ्गाः, किन्तु पूर्णाङ्गा एव। चिकित्सायामावश्यकानि दोषक्षयकारणलक्षणचिकित्सितानि तु संक्षेपेण वर्णितान्येव तत्र स्पष्टम्। विस्तरस्त्वनावश्यकत्वान्न कृतः। इति अन्यैरपि विद्वद्वर्यैर्विषयेऽस्मिन्स्वविचाराः प्रकटयितव्याः।

हा ! शोक !!

महासम्मेलन सदस्यों तथा भारतीय वैद्यसमाज को यह सूचित करते हुए हम अत्यन्त दुःख का अनुभव कर रहे हैं कि नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के सम्माननीय अध्यक्ष तथा भारत के सुप्रसिद्ध चिकित्सक भिषक्-चूड़ामणि स्वनामधन्य राजवैद्य श्री पं० नन्दकिशोर जी शास्त्री भिषगाचार्य का गत ६ जून की सायं-काल देहावसान हो गया है। राजवैद्य जी की विद्वत्ता, कर्मकौशल तथा चिकित्सालाघव से पत्रिका के पाठक तथा समस्त वैद्य समाज भली भांति परिचित हैं, हम उनका विस्तृत जीवन-परिचय पत्रिका के फरवरी मासीय अंक में प्रकाशित कर चुके हैं।



राजवैद्य जी राजस्थान आयुर्वेद विभाग के डायरेक्टर तथा महाराजा आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल थे और इस वर्ष अ० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के निर्विरोध सभापति निर्वाचित हुए थे। आपके इस आकस्मिक तथा असामयिक निधन से आयुर्वेद कीं जो महान् क्षति हुई है उसकी पूर्ति सहज ही सम्भव नहीं। हा ! शोक आयुर्वेद का एक उद्भट विद्वान् हमारे बीच में से उठ गया है।

हम समस्त वैद्य समाज की ओर से राजवैद्य जी के शोक सन्तप्त परिवार, मित्रों तथा सम्बन्धियों के प्रति हार्दिक संवेदना तथा सहानुभूति प्रकट करते हुए वियुक्त आत्मा की चिरशान्ति की कामना करते हैं तथा श्री भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वह उनके शोकाकुल परिजनों को इस महान् आघात को सहने की सामर्थ्य प्रदान करें।

स्वास्थ्य और प्रकृति का सम्बन्ध

ले०—आयुर्वेदाचार्य, पं० रामगोपाल मिश्र, राजवैद्य-गोंदिया

तात्पर्य यह कि गुणत्रयात्मक प्रकृति ही सम्पूर्ण विश्वरचना म सर्वाग्र और प्रधान है। और उसके रचे भिन्न-भिन्न प्रकार वाले जीवों में उन्हीं गुणों के मात्रा की अंशांशी तारतम्यता के भी भिन्न भिन्न प्रकार वाली प्रकृति अनिवार्यतः दिखाई देगी। अथवा ऐसा भी कहा जा सकता है कि यावन्मात्र शरीर धारी जीवों की भिन्न भिन्न प्रकार वाली प्रकृति भिन्न भिन्न गुणमय होती है।

तब फिर गुणों के प्रभाव, उनकी व्यापकता, उनकी परिवर्तित और अपरिवर्तित दशा, अविकृत या विकृतावस्था जो एक प्रकृति से दूसरी सम अथवा असम प्रकृति के मेल पर उत्पन्न होना अनिवार्य है, कैसे जानने में आ सकता है।

फिर भी यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि, गुणत्रयों की सूक्ष्मता को समझने का विषय जितना जटिल है, उतना ही सरल भी है। तो भी गवेषणात्मक प्रकार से विचार करने वाली सूक्ष्म बुद्धिका पास में होना आवश्यक है। केवल वाचालता अथवा तोता रटन्ती से काम नहीं चलता, प्रत्युत गुणत्रयों के सूक्ष्म विषय तो दूर रहे उनका वह स्थूल प्रकार वाला विषय भी जटिल बन जा सकता है।

अतएव ध्यान पूर्वक समझने का प्रयास करें वह भी इस प्रकार से कि कथित गुणत्रय ही शरीरधारियों के शरीर में सम्बन्धित कार्यवाहक रूप में विद्यमान हैं। क्रमशः रजोगुण शारीरिक वायु तत्व के सूक्ष्म और स्थूल स्वरूप में सूक्ष्म रूप से, सतोगुण आग्नेय (पित्त) सूक्ष्म और स्थूल तत्व में सूक्ष्म रूप से, तमोगुण सोमात्मक (कफ) जल तत्व के सूक्ष्म और स्थूल स्वरूप में सूक्ष्म रूप से विलीन हुये इन्हीं तत्वत्रयों से मध्यस्थ बने शारीरिक स्थिति स्थापकता वाली धारण पोषण की क्रिया का यथावत संचालन कराते हैं। गुणत्रयाश्रित् धातुत्रय भोज्य, भक्ष्य, लेह्य, चोष्य और पेयादिकों के सार को ग्रहण कर उसे रक्तादि धातुओं के पोषणार्थ दे देते हैं। और बचा हुआ मल बाहर निकाल कर फेंक देते हैं। ऐसी सम्पूर्ण शरीर को स्वस्थ रखने वाली क्रिया वे जब तक उस शरीर को प्रकृत्यनुकूल सात्म्यकर आहार विहार प्राप्त होता रहता है बराबर संचालित करते रहते हैं, और इसी कारण गुणत्रयों का जिनमें सूक्ष्म प्रकार

से विलय है ऐसे उन सूक्ष्म और स्थूल भेद वाले तत्वत्रयों को धातु[1] संज्ञा दी गई हैं। आर्थात्-वात, पित्त, कफ को कार्य भेद से यह नाम दिया गया है। इनकी ही विद्यमानतायुक्त शरीरधारी की प्रकृति को न पटने योग्य असात्म्य आहार, विहार का योग, अयोग अथवा अतियोग हुआ तो शारीरिक धातुओं और मलों को यही दूषित और मलिन करके शरीर को अस्वस्थ कर देते हैं। यही कारण है इन तत्वत्रयों को दोष[2] और मल[3] भी कहा गया है।

यही दोषत्रय उन मूलभूत गुणत्रयों की सूक्ष्म शक्ति वाली प्रभाव पूर्ण भूमिका पर उनही गुणों से पूर्ण रूपेण अनस्युत हुये निज शक्ति के प्रभाव को प्रगट करने का सामर्थ्य लिये शरीरधारियों की प्रकृतियों को उन गुणों के ही अनुगामी बने भिन्न-भिन्न प्रकार वाले भेदों में विभाजित करने के आधार स्तंभ बने हुये हैं। सारांश यह कि इनही उपर्युक्त कथित गुण और दोषों की तारतम्यता पर प्रकृतियों की निर्माण स्थिति आधारित होने से किसी शरीरधारी की एक दोष वाली, किसी की द्विदोषज और किसी की दोषत्रय के अंशांशी मिश्रित मात्रा की तारतम्यता वाली शारीरिक और मानसिक प्रकृति देखने में आती है।

प्रकृति का निर्माण यद्यपि गुण और दोषत्रयों की नीव पर ही आधारित है, फिर भी उस निर्माणविधि में जीवधारियों के प्रारब्ध कर्म की पूंजी का प्रधानत्व उनके शरीरारम्भक काल से ही रहता हैं। अर्थात उस पूंजी की ही तारतम्यतानुसार गुण और दोषों के तारतम्य वाले परमाणुओं के यौगिक मिश्रणों के आधार पर उनकी शरीररचना निसर्गतः हुआ करती है। फिर वह किसी भी योनि का जीवधारी हो।

उन जीवधारियों को उनके कर्म भोग सहने योग्य प्रकृति के अनुकूल शरीर भी प्राप्त हुआ रहता है। और उनका स्वभाव भी उसी तारतम्यता वाला होता है। फिर चाहे वह जीवधारी पशु, पक्षी, कीट पतंगादि योनि वाला हो अथवा मनुष्य योनि वाला उदाहरणार्थ-गधा-भैंसा-बैल अडियलपन करके डण्डे, लकड़ी और सांट की मार खा सकते और सह भी सकते हैं। मनुष्य शरीरधारियों में भी कइयों को फिर चाहे वे कुलीनों में से हों या अकुलीनों में से, विद्वानों में से हों या मूर्खों मे सें, रूपवानों में से हों अथवा कुरूपों में से, धनाढ्यों में से हों या निर्धनों में से, ऐसे देखेंगे कि जिन्हें व्यभिचार चोरी, हिंसा और झूंठ की आदत है, और उसके बदले में उनमें लात, घूंसे, डंडे, चपत के पुरस्कार को सहने योग्य शारीरिक और थू, थू, छी: छी: धिक्कार फटकार सहने योग्य मानसिक शक्ति भी है।

---

(१) त्रिधातुशर्म-वात, पित्त, श्लेष्मधातुत्रय-शमनविषयम्" (शायणभाष्य-ऋग्वेद)।
(२) दूषणात्दोषा: (३) मलिनीकरणान्मला: (शरीर दूषणाद्दोषधातवो देहधारणात् वातपित्तकफाज्ञेयं मलिनीकरणान्मल:)

चिड़ियों, चूहों का शरीर डंडे चपत नहीं सह सकता। मानवों में कई कोमल शरीर और मन के होते हैं किन्तु उनकी प्रकृति में वीरता के गुण हुये तो वे समय पड़ने पर मारने और मरने की शक्ति रखने वाले होते हैं, किन्तु गुण्डापन करके उसके मुवावजे में डंडे जूते, का पुरस्कार सहने की शक्ति वाला उनका शरीर नहीं होता और न दुत्कार फटकार, गाली गलोज, सहने की सामर्थ्य वाला उनका मानसिक स्वभाव ही।

तात्पर्य यह कि स्थूल जगत के आरंभक अणुओं की जननी पंचतन्मात्राओं में ही सत्व, रज, तम इन गुणत्रयों की तारतम्यतानुसार उपर्युक्त कथित वात, पित्त, कफरूप तत्वत्रय उत्पन्न हुये हैं और उनही के प्रकृतगुणों के अनुबन्ध्य की तारतम्यतानुसार समस्त जगत का प्रत्येक परमाणु उनके किसी न किसी गुण से अनस्युत हैं। यही कारण है कि प्रत्येक जीवधारियों के शरीर, खान, पानादि की नाना वस्तुयें, ऋतुओं के प्रत्येक अंग दिन और रात्रि के प्रत्येक निमेष अपने साथ किसी न किसी गुणों और दोषों का सम्बन्ध (लगाव) अवश्य रखते हैं।

इस स्थिति में प्रत्येक शरीरधारी के स्वास्थ्य का उनकी प्रकृति के साथ क्या सम्बन्ध है, आहार विहारों का शरीरधारी की प्रकृति पर कैसा प्रभाव पड़ सकता है यह जानना सरल हो जाता है। और इस बात को भी समझ सकते हैं कि "समपित्तानिलकफाः केचिद्गर्भादि मानवाः। दृश्यन्तेवातलाः केचित्पित्तलाः श्वेष्मलास्तथा। तेषामनातुराः पूर्वे वातलाद्यासदातुराः। दोषानुशयिता ह्येषांदेह प्रकृतिरुच्यते। (च० सू० स्था० अ० ७ सू० ३७-३८) कई मनुष्य देहधारी पूर्व में कहे अनुसार गर्भ से ही वात, पित्त, कफ के समानता की तारतम्यता वाले जन्मते हैं और उनकी समान प्रकृति होने से उनमें सतोगुण का प्रधान होना अनिवार्य हो जाता है। यही कारण है समान दोषों वाली प्रकृति के मनुष्यों को छहों रसवले पदार्थ सात्म्य (सुखावह-अनुकूल पटने योग्य) होते हैं "समसर्व रसं सात्म्यं समधातोपशस्यते" (च० सु० स्था० ७ सू० ३६) और वे कभी रोगी नहीं होते।

कई मानव केवल वात, केवल पित्त और केवल कफदोष की प्रकृति वाले गर्भ से ही जन्मे होते हैं और कई द्विदोषज प्रकृति वाले भी जन्मते हैं। उनकी प्रकृतियों में रजोगुण और तमोगुण का प्राधान्य अनिवार्यतः रहता है। उनकी प्रकृति को सम समान गुणों वाले आहार विहार सात्म्य नहीं होते। उनकी प्रकृति में विषमता आजाती है और वे सदा रोगी रहते हैं "विपरीत गुणस्तेषां स्वस्थवृत्तेर्विधिर्हितः" उनकी दोषानुसारिणी प्रकृति को दोषों के विपरीत गुणों वाले आहार विहार होने पर ही वे स्वस्थ रह सकते है। अन्यथा नहीं। स्वास्थ्य और प्रकृति का इस प्रकार से ऐसा प्रगाढ़ सम्बन्ध है।

रोगी वृत्त

रोगी नाम	शशिकला ॥	स्वभाव	क्रोधी ।
आयु	६ वर्ष ॥	प्रकृति	कोमल ।
शरीर का वर्ण	गौर ॥	मस्तिष्क	विक्षिप्त सा ।

इसे बाल्यावस्था प्रथम वर्ष से ही आक्षेप (Convalsions) आते रहे इसका मूल कारण जो कि अनुभव में आया कोष्ठ बद्धता ही रहा। अपान वायु विगुणित होकर ऊर्ध्वगामी बन मस्तिष्क में विकृति करती है। दौरे के समय साबुन की वत्ती बनाकर गुदा में लगाने से दस्त साफ हो जाता तथा शिर पर शीतजलधारा के डालने पर होश (ज्ञान) आ जाता था। अभी भी मुख्यतया यही उपचार लाभ ही करता है। पाचन शक्ति विकृत रहा करती है। क्षुधा लगती है। कभी पाखाने में श्वेत आम निकलती है। गंभीर निद्रा आती है कुछ विशेष जोर से बुलाने तथा हिलाने पर निद्रा भंग होती है। मीठा खाने की ज्यादा इच्छा होती है।

दौरे की पूर्व स्थिति (रूप):—

दौरा आने के समय गले में वारम्बार कुछ निगलने घुटकने सी लगती है और हाथ की अंगुलियों में कम्पन होना प्रारम्भ हो जाता है। ओष्ठों का रंग श्वेताभ हो जाता है लालिमा नष्ट हो जाती है होश आ जाने पर यथापूर्व लाली आने लग जाती है। शरीर का रंग फीका सा लगता है। दौरा शयनावस्था में ही होता है जागृत अवस्था में नहीं होता परन्तु अन्यमनस्क विपन्न सी रहा करती है। सोते समय वारम्वार जग जाना।

दौरे के समय लक्षण (आक्रान्त होने पर)—

आंखों की पुतलियां स्थिर तथा कुछ चढ़ी हुई। श्वेतभाग रक्ताभ हो जाता है। पलकें खुली रह जाती हैं। निमेष कार्य बंद हो जाता है। ओष्ठों का रंग श्वेताभ। शरीर का रंग श्वेतपीताभ। उदर में वायु (आध्मान) रहता है। शरीर शिथिल प्राय। ज्यादा जोर का दौरा होने से कुछ अकड़न तनाव सा रहना। नाडी की गति कुछ ठोकरें देकर एक दो ठोकर रुककर फिर चलती तथा क्षीण रहती है।

दौरे के बाद-थक सी जाती है सोती है शरीर का रंग फीका हो जाता है। मालूम पड़ता है मानों १०–१५ दिन से बीमार थी।

कुछ आवश्यक ज्ञातव्य—

रुग्णा को दो वर्ष की आयु तक दौरे प्रायः नित्य ही एक आध बार आ जाते रहे। फिर २ वर्ष तक हालत ठीक रही। पश्चात् एक बार आमातिसार २ माह तक रहा, श्वेत आंव जाती थी तथा कई बार। हताश हो अवरोधक औषधि देकर रोक दिया गया। उसीके १५ दिन पश्चात् दौरा आया वह ६ ७ माह में एक बार आता रहा। इधर इसे गतवर्ष में ३–४ बार जोर का दौरा आया, यों खतरा सदैव ही बना रहता है।

अपनी राय-मुंह से फेनोद्गम नहीं होने से अपस्मार (मृगी) नहीं कहा जा सकता। छोटी बच्ची होने से योषापस्मार भी नहीं हैं। मेरे विचार में यह मूर्च्छा रोग है इसे अपतन्त्रक कहना अभीष्ट होगा। कृपया आप अपना निर्णय सूचित करें।

औषधि कई सेवन कराई जा चुकी हैं। मुख्य ये हैं। वृ० ब्राह्मी वटी। अपतन्त्रकारि वटी। स्मृतिसागर रस। विरेचन चूर्ण सदैव दिया जाता है।

कृपया औषधि निश्चय कर सूचित करें। यदि आपत्ति न हो तो पूरी निर्माण विधि योग सहित अन्यथा मूल्य। रोगी का रोग निर्मूल होने पर एक साल प्रतीक्षा के बाद ५०) पचास रुपये का पुरस्कार दिया जावेगा। आशा है कृपालु वैद्यबन्धु इस छोटी कन्या को कष्ट मुक्तकर पुण्य तथा यशभाजन बनेंगे।

विनीत

शान्तिस्वरूप मिश्र वैद्यशास्त्री

कुकदुर पोस्ट पंडरिया, जिला—विलासपुर (म० प्र०)

साहित्य-सत्कार

रसादि परिज्ञान—ले० श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल वैद्य। प्रकाशक—चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस १। मूल्य २) पृष्ठ संख्या १६५।

यह पुस्तक का दूसरा संस्करण है। इस पुस्तक के लेखक आयुर्वेद जगत के लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति हैं, इसलिए पुस्तक के साथ उनका नाम आ जाते ही विषय की गम्भीरता भी सामने आजाती हैं। इस पुस्तक में आयुर्वेद विज्ञान के परम आवश्यक विषय पदार्थों और द्रव्यों की उत्पत्ति से लेकर उन के गुण कर्म और रसों की उत्पत्ति, वीर्य, विपाक, प्रभाव, भेद, कल्पना, पहिचान, गुण, अवगुण, कार्यशक्ति आदि की विशद् व्याख्या की गई है। लेखक प्रारम्भ से ही आयुर्वेद की वैज्ञानिकता को सम्मुख रख कर इस प्रकार के गहन और गम्भीर विषय पर पुस्तक लिखने में बहुत सफल रहे और उन्होंने राष्ट्र भाषा हिन्दी को गौरवान्वित किया। भारत की अन्य भाषाओं में भी इस प्रकार की पुस्तक कदाचित ही होगी। लेखक की शैली इतनी सरल और सुलझी हुई है कि इतना गूढ़ विषय भी शीघ्र ही पाठक को बुद्धिगम्य हो जाता है। बिल्कुल सीधी सादी भाषा में लेखक ने एक बात कही और वह पाठक की बुद्धि में समा गई। पुस्तक अपने विषय के अनुसार उतनी ही कठिन भी है परन्तु फिर भी लेखक का प्रयास धन्यवाद की सीमा से भी परे है।

प्रस्तुत पुस्तक आयुर्वेद की अपनी बहुमूल्य निधि है जिसपर आयुर्वेद को गौरव करने का अधिकार है। पुस्तक आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए तो परमोपयोगी है ही साथ ही वैद्यों के लिए भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। आहार ही शरीर का पोषक है वह रसों के द्वारा ही शरीर पर अपना सही या गलत प्रभाव उत्पन्न करता है, इसलिए जन साधारण भी इस पुस्तक से बहुत लाभ उठा सकते हैं।

अगद तंत्र—ले०—आयुर्वेद वृहस्पति श्री रसानाथ द्विवेदी। प्रकाशक—चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस १। मूल्य १२ आने। पृष्ठ संख्या ६७।

प्रस्तुत पुस्तक आयुर्वेद के आठ अंगों में से एक अंग अगदतंत्र को लेकर लिखी गई है। भिन्न भिन्न आयुर्वेद शास्त्रों से आयुर्वेदिक दृष्टि से सर्व प्रकार के विष साहित्य को संगृहीत कर प्रस्तुत किया गया है। लेखक के शब्दों में 'विषय को सरल

उपयोगी, व्यवहारिक और बोधगम्य बनाने का प्रयास किया गया है। अगद तंत्र जैसे विस्तृत विषय को संक्षिप्त करने पर भी उसकी उपादेयता को बनाये रखने का लेखक का प्रयास निस्संदेह सराहनीय है। साथ ही प्राचीन के साथ निजी अनुभव और अर्वाचीन दृष्टि से की जाने वाली चिकित्सा को साथ देकर लेखक ने पुस्तक की उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है। पुस्तक आयुर्वेद के छात्रों के लिए विशेष सहायक है और चिकित्सकों को भी चिकित्सा क्षेत्र में विशेष लाभप्रद रहेगी।

योग चिकित्सा—प्रस्तुत कर्ता—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार । प्रकाशक—चौखम्बा संस्कृत सीरीज' बनारस १। मूल्य ३॥ रु०। पृष्ठ संख्या २६०।

पुस्तक किस उद्देश्य को लेकर लिखी गई है इसको लेखक के ही सुन्दर शब्दों में पढ़िये "एक ऐसी पुस्तक हो जिसकी सहायता से नये विद्यार्थी और चिकित्सक दोनों ही रोग के अनुसार औषध का चुनाव सरलता से कर सकें। औषध का चुनाव करने के साथ साथ उसके अनुपान एवं मात्रा का भी निर्णय सुगमता से करलें।" इससे अधिक पुस्तक का और परिचय नहीं दिया जा सकता। लेखक ने हिन्दी आयुर्वेद में इस पुस्तक को लिखकर एक कमी को पूरा किया है। लेखक ने क्रमशः एक एक रोग और उस से पैदा होने वाले उवद्रवों को लेकर उनकी चिकित्सा के लिए योग बताए हैं। योग बताते समय केवल रस चिकित्सा का ही ध्यान नहीं रखा अपितु चूर्ण क्वाथ तेल घृत और लेपादि जो योग जिस रोग में उपयुक्त रहा है उसको इस पुस्तक में स्थान दिया गया है। उसकी एक और विशेषता यह भी है कि औषधि अनुपान का बहुत बारीकी से विवेचन किया है। योगों को चुनते समय केवल एक ही बात का ध्यान रखा गया है कि रोगी को लाभ हो। वास्तव में योग भी वही सही है जिससे बिगड़ा स्वास्थ्य मिले। पुस्तक के पहिले २० पृष्ठ भी नये नये कार्य क्षेत्र में उतरे चिकित्सक के बहुत उपयोगी हैं। पुस्तक विद्यार्थी के लिए मार्गदर्शक और चिकित्सक के लिए परम सहायक सिद्ध होगी। मुद्रण आदि सुन्दर हैं।

अन्त में इसके लेखक और प्रकाशक दोनों से निवेदन कर देना चाहते हैं कि पुस्तक के "योग-चिकित्सा" नाम से भ्रम हो जाता है यदि इसके स्थान पर अन्य कोई उपयुक्त नाम दे दिया जाता तो अच्छा रहता।

पाश्चात्यद्र व्यगुण विज्ञान (मेटीरिया मेडिका) प्रथम भाग-लेखक-आयुर्वेदाचार्य कविराज रामसुशीलसिंह शास्त्री, ए. एम. एस.। प्रकाश—श्री दलजातसिंह, बेलबीर, चुनार, जिला मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश। मूल्य १२ रु० पृष्ठ संख्या ६१२।

यह पुस्तक ऐलोपैथी का द्रव्यगुण है—हिन्दी में इस प्रकार की प्रमाणित पुस्तकें बहुत कम हैं। प्रस्तुत में पाश्चात्य द्रव्यगुण की विस्तृत व्याख्या की गई है। ग्रंथ पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध ऐसे दो भागों में बंटा हुआ है भेषज विज्ञान अर्थात् फार्मस्युटिकल

साईंस के लगभग सभी अंगों की अच्छी विवेचना की गई है तथा भेषज क्रियाज्ञान अर्थात् फार्मेकोलोजी की भी सुन्दर व्याख्या इस पुस्तक में है।

लेखक ने विषय का पूर्णतया गम्भीरता से अध्ययन किया है और फिर अपने ज्ञान को लेकर पुस्तक का निर्माण किया है।। हिन्दी में अब तक जितनी भी पुस्तकें देखने को मिलीं वे अधिकतर अनूदित या संक्षिप्त रूप में मिलती रही हैं। लेखक को भाषा पर भी पूरा अधिकार है इसलिए पुस्तक की भाषा सरल और सुबोध है।

पुस्तक को उपयोगी बनाने के लिये बहुत से चित्र, आकृतियां और सारणियां दी हुई हैं साथ ही आयुर्वेद और यूनानी के साथ तुलनात्मक टिप्पणियां भी दी हैं इससे पाठक को अन्य पैथियों के समझने में सुविधा होगी।

पाश्चात्य ज्ञान को प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के लिए पुस्तक विशेष उपयोगी है। आयुर्वेद और अर्वाचीन पद्धति की मिश्रित चिकित्सा करने वालों के लिए तो यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। केवल अन्य पद्धतियों का ज्ञान प्राप्त करने वालों के लिए भी यह ज्ञान बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगी।

—कैलाशचन्द्र अग्रवाल।

भारतीय नाड़ी विज्ञानम् मूल्य ३॥) रसचिकित्सा च मूल्य ६)

ले० कविराज श्री प्रभाकर चट्टोपाध्याय एम० ए० डी० एस्० सी० (आयुर्वेद)
प्राप्तिस्थानम्—१७२ बहू बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

मद्रास पुस्तकभण्डारे विद्यते एको नाड़ीशास्त्रससंग्रहाख्यो महान् हस्तलिखितो-ग्रन्थः। तस्यावसाने—काश्यप, कौशिक, व्यास, वसिष्ठ, कुम्भसम्भव=अगस्त्य, पराशर भरद्वाज, मार्कण्डेयादि संहिता समाश्रित्य लिखितोयं ग्रन्थः—इति लिखितमस्ति आयुर्वेदस्येतिहासात् (प्रष्ठ २२६)। कणादकृतं रावणकृतं च नाड़ी विज्ञानं सुप्रसिद्धम्।

अतो ज्ञायते नाड़ी परीक्षाविधौ आर्षकाले बहवः संहिता समासन्। शार्ङ्गधरादिष्वपि नाड़ी परीक्षा श्लोकाः कासुचिद्भ्यः पुराणसंहिताभ्यः, एव उद्धृतां परम्परागता वा भवेयुरित्यतोपि नाड़ी ज्ञानस्य प्राचां संहितासु विद्यमानतानुमीयते।

प्रकृतपुस्तकस्य प्रारम्भे—इङ्गलिशभाषायां चत्वारिंशत् पृष्ठात्मक उपोद्घाते-त्रिदोषे प्रामाण्यं नाड़ीदर्शन प्रकारश्च प्रदर्शितः। तदनु संस्कृत श्लोकानां इङ्गलिश भाषायाऽनुवादो नाड़ीज्ञान जिज्ञासूनां संस्कृतानभिज्ञानां कृते सुगम पन्था कृतः।

नाड़ी ज्ञान विषये च—सद्गुरोरुपदेशाच्च······नाड़ीपरिचयः सम्यक् प्रायः पुण्येन जायते।

शास्त्रेण सम्प्रदायेन तथा स्वानुभवेन च।
परीक्षेद् रत्नवच्चासावभ्यासादेव जायते॥ इत्युच्यते।

अत्र च प्रत्येकं रोगे पृथक् २ कुत्र कीदृशी नाड़ी भवतीति सम्यक् प्रतिपादितम्। नाड़ीज्ञानाभ्यासिनां कृते, अतीवोपयोगी निबन्धोऽयम्। धन्यवादार्हश्च संग्रहकारः। इदमपि लेखकैरवधेयम्––यानि वाक्यानि स्वग्रन्थे ग्रन्थान्तरेभ्यः, उद्धियन्ते तत्र मूल-ग्रन्थानां संकेतः, स्वकपोल कल्पना निरासाय प्रामाण्यता स्थापनाय च भवति।

रस चिकित्सा—वङ्ग भाषायां वङ्गाक्षरैः खण्डत्रये परिसमाप्ता। अस्यां च पारदस्य संस्कारातारभ्य प्रत्येकं धातोः शोधन, जारण मारणादिकं यन्त्राणां पुटादिनां च तदुपयोगिनां अन्येषां च विषयाणां विषदतया निरूपणमस्ति। द्वितीये तृतीये ज्वर चिकित्सामारभ्य रसायन वाजीकरणान्तं हेमाद्रि परिगणित दिशा तत्तद्रोगाणां उपद्रवायां तदनुसङ्गि पथ्यानुपानादीनां च यथायथं चिकित्सा विशेषश्चात्र केचन वङ्गदेशे कुल परम्परागता गुरुपरम्परागताः सद्यः फलदा रसयोगाः तदनुपानादिकं च नूतनतया प्रतिनिवेशितं दृश्यते। अन्ते च केषांचित् बेरी बेरी, रोहिणी=डिपथीरिया प्रभृति नवीन रोगाणां चिकित्सकानां व्यवसाये समागतानां संक्षेपेण निदानं चिकित्सा च विवृत्तास्ति।

वैद्य घनानन्द पन्त, देहली।

—:o:—

आयुर्वेद लोक

आयुर्विज्ञान परिषद् मुजफ्फरपुर

मुजफ्फरपुर ११ मई। स्थानीय जालानदातव्य औषधालय के भवन में "आयुर्विज्ञान-परिषद्" की एक सभा आयुर्वेदोपाध्याय पं० श्री रामदेवजी वैद्य के सभापतित्व में हुई। जिसमें आयुर्वेद पंचानन पं० श्री जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल साहित्य-वाचस्पति, प्रयाग को परिषद् की ओर से मान-पत्र दिया गया।

परिषद् के संयोजक वैद्य सीताराम शास्त्री ने मान्य अतिथि का परिचय कराते हुए उनके जीवन की मुख्य २ घटनाओं पर प्रकाश डाला। तदनन्तर कवि जवाहर ने अपने सुमधुर कण्ठ स्वर से मान-पत्र को गा कर सुनाया।

मान-पत्र का उत्तर देते हुए श्री शुक्ल जी ने कहा कि हम लोगों को यह पूर्ण आशा थी कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विदेशियों द्वारा विध्वस्त आयुर्वेद के पुरातन किले का जीर्णोद्धार करने के लिये हमारे देश नायकों की सरकार भरपूर प्रयत्न करेगी स्वतन्त्रता संग्राम के सिलसिले में हमारे नेताओं ने विदेशी वस्त्र, विदेशी दवा और विदेशी वस्तुओं को त्याग कर खादी, आयुर्वेदीय दवा वस्तुओं को अपनाने की बड़ी जोरदार सिफारशें की थीं। आज के दर्जनों पदारूढ नेताओ के भाषणों के उद्धरण हमारे पास हैं। पर आज केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग के द्वारा आयुर्वेद के साथ सौतेला डाह पूर्ण व्यवहार होता है। यह कितने दुःख की बात है।

सरकार ने इस वर्ष एलोपैथिक संस्थाओं को सोलह करोड़ छत्तीस लाख एकतीस हज्जार रुपये दिये हैं पर आयुर्वेद के नाम पर केवल पाँच लाख रुपये। यह कहां तक न्याय संगत है?

सरकारी पैसे में भी अधिकांश भाग गरीब जनता का है पर सरकार गरीब जनता की देशी चिकित्सा प्रणाली के अभ्युत्थान के लिये पर्याप्त पैसा खर्च करना नहीं चाहती। बजट बनाते समय गरीबों की सुख सुविधा को भूलना एक महान अपराध है।

ऐसा बोध होता है कि हमारी स्वास्थ्य मंत्रिणीजी, आयुर्वेदीय चिकित्सा विज्ञान को

बराबर अवैज्ञानिक बतला कर इस विज्ञान से अपनी अनभिज्ञता का परिचय देता हैं। उन्हें विधिवत् आयुर्वेद के वैज्ञानिक पहलुओं का गंभीर अध्ययन करना चाहिये। विश्व की समस्त चिकित्सा प्रणालियों के उद्गम स्रोत आयुर्वेद को यूनानी, होम्योपैथी नेचरोपैथी आदि की कतार में खड़ा करना तो इसका उपहास करना मात्र है। आयुर्वेद की प्राचीनता, भारतीयता, स्थायीगुणकारिता, सौम्यता और सुलभता जैसी खूबियों पर तो प्रत्येक संस्कृति पूजक को गर्व करना चाहिये।

सरकार ने आयुर्वेदिक अन्वेषण कार्य के लिये कुछ संस्थायें खोली हैं पर उनके उच्चाधिकारी एलोपैथ लोगों को बनाया है। मेरी राय में उन के द्वारा आयुर्वेद की किंचिन् मात्र भी सेवा नहीं हो सकती और यही कारण है कि अन्वेषण कार्य में अपेक्षित प्रगति नहीं आ रही हैं।

आयुर्वेद के त्रिदोषवाद 'पंच महाभूत' जैसे गूढ सिद्धान्तों की जांच वांच की परखनली में नहीं की जा सकती। उनका सही मूल्यांकण तो आतुरालयों में रोगियों की चिकित्सा करते हुए ही देखा जा सकता है।

वर्त्तमान काल में हम भारतीय चिकित्सा विज्ञान के उपासकों का उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया है। हम लोगों को अखिल भारतीय पैमाने पर ग्राम पंचायतों की सहायता से ग्रामीण जनता स्वास्थ्य रक्षा के हेतु निःस्वार्थ भाव से ग्राम २ में जा कर आयुर्वेद का प्रचार करना चाहिये।

गुजरात में आयुर्वेदिक फैकल्टी

बम्बई के स्वास्थ्य सचिव श्री शान्तिलाल शाह ने विद्यापीठ अधिकारियों के साथ गुजरात युनिवर्सिटी में आयुर्वेदिक फैकल्टी प्रारम्भ करने के विषय पर विचार विमर्श किया। गुजरात युनिवर्सिटी के सिन्डीकेट और एकेडेमिक काउंसिल ने तो पहिले ही शुद्ध आयुर्वेद को मंजूर किया है और सीनेट इस फैकल्टी का पाठ्यक्रम जून में निश्चित् करने जा रही है।

पटियाला राज्य संघ आयुर्वेद सम्मेलन

पैप्सु के वैद्यों के लिए सूचना—पैप्सु के प्रत्येक वैद्य महानुभाव को सूचित किया जाता है कि श्री महेशदत्त शर्मा, प्रधान मन्त्री, प० रा० सं० आयुर्वेद सम्मेलन, के अस्वस्थ होने के कारण श्री ओमप्रकाश जी, इन्दु फार्मेसी, फगवाड़ा कार्य वाहक मन्त्री के रूप में कार्य कर रहे थे, अब श्री महेशदत्त शर्मा स्वस्थ हैं और ९-५-५४ से आपने अपना प्रधान मन्त्री पद का कार्य भार सम्भाल लिया है। इस लिए प० रा० सं० आयुर्वेद सम्मेलन के सम्बन्ध में हर प्रकार का पत्र व्यवहार निम्न पते (Address) पर किया करें।

महेशदत्त, शर्मा, प्रधान मन्त्री
पटियाला राज्य संघ आयुर्वेद सम्मेलन, कार्यालय सरहिन्द—(पैप्सु)

राजस्थान व्यापी शोक

राजस्थान आयुर्वेद विभाग के डायरेक्टर, अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ के सभापति राजवैद्य पं० नन्दकिशोर जी भिषगाचार्य का असामयिक निधन ६-६-५४ को जयपुर में होगया। दुःखद संवाद मिलते ही स्थानीय वैद्य समाज एवं आयुर्वेद प्रेमियों ने एकत्रित होकर एक शोक प्रस्ताव पास किया।

राजवैद्य जी न केवल चिकित्सक व सुशिक्षक थे किन्तु आयुर्वेद के प्रकांड विद्वान् व तत्वज्ञ थे। आज उनके विना भारतीय वैद्य अनाथ हो रहे हैं। भगवान् उन्हें सद्गति और उनके संतप्त परिवार को धैर्य धारण करने की शक्ति प्रदान करें।

मंत्री तहसील वैद्य सभा
सरदार शहर।

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ

शोक प्रस्ताव

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यालय के कर्मचारीवर्ग तथा स्थानीय पदाधिकारियों की यह असाधारण सभा विद्यापीठ के सम्माननीय अध्यक्ष, राजस्थान सरकार के आयुर्वेद विभाग के डायरेक्टर, महाराजा आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल, भारत के सुप्रसिद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सक, भिषक चूड़ामणि, स्वनाम धन्य राजवैद्य श्री पं० नन्दकिशोर जी शर्मा शास्त्री के असामयिक देहावसान पर हार्दिक शोक तथा उनके शोकाकुल परिवार से सम्वेदना प्रकट करती है और परमात्मा से प्रार्थना करती है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति सद्गति तथा श्री राजवैद्य जी के सम्बन्धियों को इस महान् शोक और कष्ट को सहन करने की शक्ति एवं धैर्य प्रदान करें।

—:०:—

A PROPOSAL

To present a Commemoration Volume to Dr. A. Lakshmi pathi, Bhishagratna, Madras, ex-President All India Ayurvedic Congress.

It is proposed to celebrate the 75th birthday of Dr. A. Lakshmipathi, Expresident of All India Ayurvedic Congress which falls on 3rd March 1955 by presenting him a commemoration volume containing 75 selected articles on Ayurveda contributed by eminent Ayurvedic Scholars and Doctors of Modern Medicine interested in the advancement of Ayurveda. I propose that at the next meeting of the standing committee of Mahamandal and Vidyapeetha, a committee of Editors of the Commemoration Volume for Hindi, English articles and any other special articles in any other language may be selected.

An appeal for donations may be made through the columns of Sammelana Patrika and a donations list may be opened in the Ayurveda Sammelana Patrika. The Commemoration Volume may be published on behalf of the celebration committee by the Vidyapeetha and the sale proceeds of the commemoration volume when published shall be credited to the funds of the Vidyapeetha.

I suggest the names of,

1. Shri Ayurvedacharya R. R. Pathak of Jamnagar, as Editor for articles in Sanskrit.
2. Shri Badri Vishal Tripathi of Cawnpore, as Editor for articles in Hindi.
3. Shri Ayurvedacharya Pandit Shiv Sharma, as Editor for articles in English.

I shall be glad to take up editing of articles in Telugu.

Mukkamala Venkata Sastry Ayurvedacharya,
Member, Standing Committee A. I. Ayurvedic Congress.

श्री डा० ए० लक्ष्मीपति भिषग्रत्न. मद्रास
को अभिनन्दनग्रन्थ भेंट करने की योजना
एक सुझाव

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान, श्री डा० ए० लक्ष्मीपति, मद्रास, के आगामी ७५ वें जन्मदिवस पर जो कि ३ मार्च १९५५ को मनाया जायेगा, उन्हें सुप्रसिद्ध आयुर्वेदिक तथा आधुनिक चिकित्सा के विद्वानों द्वारा लिखित आयुर्वेद सम्बन्धी ७५ चुने हुए लेखों से सम्पन्न एक स्मृतिग्रन्थ भेंट करने की योजना है । मेरा प्रस्ताव है कि महासम्मेलन तथा विद्यापीठ की आगामी स्थायी समिति में उक्त स्मरणोत्सव ग्रंथ के लिए प्राप्त हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के विशिष्ट लेखों के सम्पादनार्थ सम्पादकों का चुनाव कर लिया जाये।

कार्य सम्पादनार्थ आवश्यक धन प्राप्ति के लिए महासम्मेलन पत्रिका द्वारा अपील प्रसारित की जावे तथा पत्रिका में ही दानदाताओं की सूची प्रकाशनार्थ पृथक् स्तम्भ खोल दिया जावे। स्मृतिग्रंथ का प्रकाशन स्मरणोत्सव समिति की ओर से विद्यापीठ द्वारा किया जाए और प्रकाशन के पश्चात् ग्रन्थ से होने वाली आय को विद्यापीठ कोष में ही जमा कर दिया जाए।

विभिन्न भाषाओं के लेखों के सम्पादन के लिए मैं निम्न महानुभावों के नाम प्रस्तावित करता हूं—

संस्कृत—आयुर्वेदाचार्य श्री पं० रामरक्ष पाठक, जामनगर।

हिन्दी – वैद्य श्री बद्रीविशाल त्रिपाठी, कानपुर।

अंग्रेजी—आयुर्वेदाचार्य वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा, बम्बई।

तेलगू भाषा के लेखों का सम्पादन मैं स्वयं कर सकूंगा।

निवेदक:—

मुक्कामल वेंकट शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

सदस्य कार्यकारणी समिति

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

वैद्य बन्धुओं को विशेष सुविधा

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा प्रस्तुत औषधियां छोटे परिमाण (पैकिंग) में बिकती थीं, जो चिकित्सकों के लिये मंहगी पड़ती थीं; जैसे संजीवनी वटी १ तो०, ½ तो०, ¼ तो० सीलबन्द बिकती थी, अब ५ तो० और १० तो० में पैक होकर बिकती हैं। इसी प्रकार भस्म, रस, आवश्यक दवाएं हैं। आसव अरिष्ट ५ सेर और २० सेर में प्राप्त होने सम्भव हैं।

इस से निजी उपयोग के लिए औषधि लेने वालों को मूल्य में विशेष सुविधा हुई है। जो वैद्यबन्धु हमारे बिक्री केन्द्र के १ रु० शुल्क देकर सदस्य बनते हैं उनको विशेष निश्चित कमीशन और मिलता है।

निवेदक—पं० रामदयाल रामनारायण वैद्य

प्रधान निर्देशक—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

निर्माण केन्द्र—कलकत्ता, पटना, झांसी और नागपुर

बिक्री केन्द्र—देहली, आगरा, मेरठ, अलीगढ़, कानपुर इलाहबाद, जब्बलपुर, इन्दौर, आदि ५० से अधिक।

विक्रेता—१५००० हजार से अधिक हैं।

सर्वत्र एक मूल्य सिर्फ बिक्री कर अधिक।

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल द्वारा प्रकाशित
मुद्रक —दीपक प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली ।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका



प्रधान सम्पादक

कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि

संस्कृत-विभाग सम्पादकः

बा. बा. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः

विषय-सूची

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक—कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि ।
संस्कृत विभागसम्पादकः—वा. बा. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४० अंक ९ | दिल्ली, भाद्रपद २०११, सितम्बर १९५४ | वार्षिक ५) एकप्रति ॥)

सम्पादकीय—

रजिस्ट्रेशन रिन्युअल फीस—

दिल्ली राज्य में सरकार द्वारा स्थापित रजिस्ट्रेशन बोर्ड (बोर्ड आफ आयुर्वेदिक और यूनानी सिस्टम्ज आफ मैडिसन दिल्ली राज्य) ने अपने यहां रजिस्टर्ड वैद्य और हकीमों से पिछले मास रिन्युअल फीस की मांग की थी। ऐसे ही भारत के कुछ प्रान्तों में रिन्युअल फीस ली जाती है और कुछ प्रान्तों में नहीं ली जाती। जिन प्रान्तों में रिन्युअल फीस ली जा रही है उनकी सरकारों से कहना है कि वे इस प्रकार की अनुचित कार्यवाही को जारी रख दोष के भागी न बनें। देशी चिकित्सा पद्धति के चिकित्सक अन्य लाइसेन्स प्राप्त वस्तु विक्रेताओं की भांति व्यापार नहीं करते—उनके हाथों में मानव जीवन की रक्षा का उत्तरदायित्व है जो समाज की नीव है। ऐसे प्रतिष्ठित पदों पर रहने वालों पर इस प्रकार का टैक्स लगाना अन्यायपूर्ण है। सरकार की दृष्टि में सब एक समान होने चाहियें—जब पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति से चिकित्सा करने वाले चिकित्सकों से मैडिकल कौंसिल द्वारा किसी प्रकार की रिन्युअल फीस नहीं ली जाती, एक बार रजिस्टर हो जाने पर एक डाक्टर को आयु भर रजिस्ट्रेशन फीस नहीं देनी होती और भारत के किसी भी क्षेत्र में वह चिकित्सा कर सकता है, तब देशी चिकित्सा पद्धति के चिकित्सकों पर यह पाबन्दी क्यों लगाई जा रही है? प्रजातन्त्र के युग में तो सब का अधिकार समान है फिर यह भेद- भाव किस लिए?

जब कभी इसके विरोध में संस्थाओं ने आवाज उठाई तो सरकार की ओर से यह

कह कर टाल दिया गया कि पैसे की कमी है। इस विभाग को चलाने के लिए पैसा कहाँ से आयेगा ? हम नहीं समझ सके कि मैडिकल कौंसिल के 'डिपार्टमैन्ट' चलाने के लिए यदि सरकार के खज़ाने से पैसा खर्च किया जा सकता है तो हमारे लिए क्यों नहीं ? यह बताना हमारा काम नहीं है कि पैसा कहाँ से आयेगा। राजसत्ता की बाग-डोर सम्भालने वालों का यह कर्तव्य है कि सब के साथ न्यायपूर्ण प्रणाली व्यवहार में लायें। जब जन स्वास्थ्य के नाम पर लाखों रुपया विदेशी चिकित्सा पर व्यय किया जा सकता है तब क्या इस विभाग को चलाने के लिए धन नहीं मिल सकता। यह तो एक असम्भव सी बात है। हमें तो इसके मूल में दूसरी ही बात दृष्टिगोचर होती है और वह है देशी चिकित्सा पद्धति के प्रति सरकार की उपेक्षा की नीति। हम इसे अन्यायपूर्ण मानते हैं। सब ही प्रान्तों के बोर्डों के सदस्य चाहे वे निर्वाचित हों या नामीनेटिड उनका कर्तव्य हो जाता है कि वे इस अपमानजनक स्थिति के विरुद्ध हर सम्भव उपाय को व्यवहार में लायें। इस टैक्स को रद्द कराने का पूरा प्रयत्न करें। प्रान्तीय संस्थाओं को भी चाहिए कि वे सब सामूहिक रूप में इसके विरोध में गतिशील हों और अपने यहाँ के अधिकारी वर्ग से मिलकर उन्हें वस्तुस्थिति का ज्ञान करायें तथा अपनी अपनी संस्थाओं के प्रस्ताव आदि पास करके भेजें और जब तक यह टैक्स रद्द न हो जाये तब तक चैन से न बैठें। यही हमारा कर्तव्य है।

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय आयुर्वेद को समाप्त करने में प्रयत्नशील --

२० अगस्त १९५४ को केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् की कार्य समिति की प्रथम बैठक केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रिणी राजकुमारी अमृतकौर की अध्यक्षता में हुई जिसमें देशी चिकित्सा पद्धति की उन्नति कैसे की जाये, इस विषय पर भी विचार किया गया, ऐसी समाचार पत्रों से हमें जानकारी मिलती है। परन्तु जब हम इस बैठक की कार्यवाही देखते हैं तो अनायास ही मन में यह धारणा बन जाती है कि यह तो आयुर्वेद और यूनानी को पूर्णतया नष्ट करने के लिये व्यवहारिक मार्ग ढूंढने का षडयन्त्र मात्र है।

इस बैठक में सब से पहले उस विधान पर विचार हुआ जिसके द्वारा रजिस्टर्ड न हुये हुये देशी चिकित्सक को चिकित्सा क्षेत्र से हटाया जायेगा। इस विधान की पूर्व कापी पहले ही प्रान्तीय सरकारों को भेज दी गईं थीं। उनसे प्राप्त सुझावों के साथ इन पर विचार किया गया। आयुर्वेदिक यूनानी चिकित्सकों को विषाक्त औषधियां व्यवहार में लाने के अधिकार देने तथा आयुर्वेद में खोज के काम को किन-किन उपायों द्वारा आगे बढ़ाया जाय इस पर भी विचार हुआ। और प्रान्तीय सरकारों से आये हुये सुझावों के साथ यह विषय भी एक विशेष समिति को जांच पड़ताल के लिये सौंप दिये गये। उस समिति को यह भी अधिकार दिया गया कि वह चाहे

तो आयुर्वेद और यूनानी के विद्वानों से परामर्श ले सकती है। साथ ही देशी पद्धति के चिकित्सकों को औषधियों की उनके शिक्षा केन्द्रों में किस प्रकार जानकारी कराई जाती है, शिक्षण पद्धति कैसी है इसकी भी जांच करने के लिये विशेषज्ञों की एक समिति को अधिकार दिया गया। उस जांच के वाद फिर केन्द्रीय परिषद निश्चय करेगी कि देशी चिकित्सा पद्धति के चिकित्सकों को अपने प्रतिदिन के व्यवहार में आने वाली विपाक्त औषधियों को व्यवहार में लाने का अधिकार दिया जाय या नहीं।

इस सारी कार्यवाही को पढ़ जाने के वाद हमारी पूर्वधारणा और दृढ़ हो जाती है कि सरकार आयुर्वेद को समाप्त करने के मार्ग ढूंढने में सतत प्रयत्नशील है। खोज एक ऐसा शब्द है जिसके घेरे में कोई भी मन चाही करने को स्वतन्त्र हो जाता है।

आयुर्वेद में विषाक्त औषधियों को उपयोग में लाने का अपना एक ढंग है। उसकी शोधन आदि क्रियायें आज के डाक्टर को बुद्धिगम्य कैसे होंगी जिसने कि आयुर्वेद विज्ञान के मूल सिद्धान्तों का क, ख, भी नहीं पढ़ा है। प्रारम्भ से ही आयुर्वेद में विषैली औषधियों का प्रयोग होता आया है और पूर्ण सफलता के साथ मानव की रक्षा हेतु यह योग आज तक प्रयोग में आ रहे हैं। साधारण वुद्धि में समा जाने वाली छोटी सी एक वात से स्पष्ट हो जाता है कि उपदेश रोग के प्रादुर्भाव से ही आयुर्वेदज्ञ उसकी चिकित्सा के लिये सोमल के योग व्यवहार में लाते हैं। आज का डाक्टर भी संखिया के योगों द्वारा ही प्रधानतः इस रोग की चिकित्सा करता है। देखने की वात यह है कि उस समय में वैद्य को आज की टैस्टिंग-रीति से संखिया को टैस्ट करके यह किसी ने नहीं वताया था कि इसके यह गुण धर्म हैं। आयुर्वेदज्ञों ने सदैव ही हर वस्तु को आयुर्वेद के मूल सिद्धान्तों की कसौटी पर कस कर ही प्रयोग में लिया है। आज से पहले तो किसी को सन्देह नहीं हुआ कि आयुर्वेदज्ञ विषाक्त औषधियों का ज्ञान भी रखता है या नहीं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उन्नति का बहाना ढूंढ कर देशी चिकित्सा पद्धति के चिकित्सकों से सरकार इस अधिकार को भी छीनना चाहती है।

आयुर्वेदिक शिक्षा केन्द्रों में सरकार द्वारा निर्मित विशेषज्ञों की समिति जाकर यह भी देखें की वहां पर शिक्षा किस प्रकार दी जाती है और औषधियों का ज्ञान किस प्रकार कराया जाता है। इन विशेषज्ञों की समिति के सदस्य होंगे डाक्टर और उन्हीं की रिपोर्ट पर केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् निश्चय करेगी कि वैद्य और हकीमों को विपाक्त औषधियों को प्रयोग में लाने का अधिकार दिया जाय या नहीं। यह सीधी समझ में आने वाली वात है कि जो व्यक्ति आयुर्वेद विज्ञान को जानता ही नहीं वह उसके साथ न्याय कैसे कर सकेगा। इसका परिणाम होगा कि वह अपनी पूर्व निर्धारित नीति पर स्थिर रहता हुआ वही पुराना नारा लगायेगा कि आयुर्वेद अवैज्ञानिक है। इसे इस पृथ्वी पर रहने का अधिकार नहीं।

इस प्रकार आयुर्वेदिक औषधियों की खोज का परिणाम निकलेगा कि इसमें से अपने दृष्टिकोण से उपयोगी औषधियों का चयन कर शेष को अनुपयुक्त घोषित कर देंगे और उनकी खोज से प्राप्त औषधियां एलोपैथिक, मैटीरिया मैडिका में जोड़ दी जायेंगी जिसका मतलब आयुर्वेद के अस्तित्व को ही नष्ट करना है। हमें खोज से परहेज नहीं हम तो स्वयं चाहते हैं कि जो सही है वह रहे शेष को छोड़ दिया जाय परन्तु वह खोज हम आयुर्वेदज्ञों की समिति द्वारा, देश काल आदि की स्थिति को दृष्टिकोण में रखते हुये कराना ही श्रेयस्कर समझते हैं।

यदि राजकुमारी जी सचमुच ही आयुर्वेद में खोज और उसकी उन्नति चाहती हैं तो वह उन्हें केवल अर्वाचीन विज्ञानवेत्ताओं के द्वारा प्राप्त नहीं होगी। उन्हें उसके लिये डाक्टरों के जाल से बाहर आना ही होगा। पूर्णतया भारतीय वातावरण में ही रह कर वह आयुर्वेद के सम्बन्ध में सही धारणा निर्धारित कर सकती हैं। यदि उन्हें डाक्टरों से ही मोह है और उन्हीं के द्वारा वह आयुर्वेद में खोज कराना चाहती हैं तो हमारा सुझाव है कि वह ऐसे डाक्टरों से सम्बन्ध स्थापित करें जिन्होंने अर्वाचीन विज्ञान के साथ आयुर्वेद का भी आद्योपान्त अध्ययन किया है तब वह देखेंगी कि आयुर्वेद एक जीवित विज्ञान है क्योंकि हमने देखा कि आयुर्वेद का बारीकी से अध्ययन करने वाला डाक्टर उसका पूर्णतया भक्त बन जाता है । उपरोक्त सुझाव हमारी नीति नहीं है, वह तो केवल मात्र एक बीच का रास्ता है। हम तो आयुर्वेद में खोज आयुर्वेदज्ञों द्वारा ही पसन्द करेंगे। आयुर्वेद पुराना है इसीलिये उसे छोड़ देना चाहिये और इसी कारण उसे इस योग्य न माना जाय कि उसके हाथों में राष्ट्र के स्वास्थ्य को सौंपा जा सके, यह कोई सही बात नहीं है। हजारों वर्षों से इस पुनीत भारत भूमि पर पैदा होने वाले मानव तो आयुर्वेद की छत्र छाया में संसार को अनेकों अमर सन्देश दे गये जो आज संसार व्यापी सभ्यता की थाती बन गये हैं। और उसी युग छाया में बनी संस्कृति पर हम गर्व करते हैं। प्रयत्न करने पर भी हम नहीं समझ पाते कि हजारों वर्षों का इतिहास जिस विज्ञान के काल में लिखा गया है वह अवैज्ञानिक कैसे हो सकता है और इस पृथ्वी पर से उसे कैसे मिटाया जा सकता है !

केवल पाश्चात्य विज्ञान की चकाचौंध से प्रभावित राजकुमारी जी से हमारा निवेदन है कि वे आयुर्वेद को इस प्रकार नष्ट करने के प्रयत्न में भागीदार न बनें क्योंकि वह प्राचीन या अर्वाचीन दोनों में से किसी भी विज्ञान की पंडित नहीं हैं। यदि वे आयुर्वेद की सहायता नहीं कर सकतीं तो उसे उसके हाल पर छोड़ दें। आज की भारत की जनता जागरूक है, वह स्वयमेव ही अपने लिये चिकित्सा पद्धति को चुन लेगी।

—कैलाशचन्द्र अग्रवाल

———

बम्बई वैद्य सभा का कार्य-विवरण

बम्बई वैद्य सभा के तत्वावधान में बम्बई के वैद्यों की एक सार्वजनिक सभा ता० १६-७-५४ को श्री प्रभुराम आयुर्वैदिक हाल में श्री वैद्यराज वामनराव दीनानाथ के सभापतित्व में हुई। आज की सभा के दो विचार्य विषयों में से सर्वप्रथम "अ० भा० वैद्य हकीम कान्ग्रेस" सम्बन्धी विषय पर चर्चा प्रारम्भ की गई।

सर्वप्रथम वैद्यरत्न श्री शिवशर्मा जी ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि वहुत समय पूर्व स्व० हकीम अजमल खां जी ने, अ० भा० आयुर्वेद यूनानी तिब्बी कांग्रेस नामक संस्था की स्थापना की थी जिसके साथ मेरा, मेरे पूज्य पिता जी का तथा अन्य कई विद्वानों का सम्पर्क था किन्तु वह संस्था श्री हकीम जी के स्वर्गस्थ होने के साथ ही समाप्त हो गई, और तब से मैं अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन में रह कर कार्य करने लगा और उक्त संस्था के साथ मेरा ज़रा भी सम्बन्ध न रहा। वर्त्तमान नई संस्था के संस्थापकों ने उस पुरानी संस्था के अन्तिम संचालकों से बिना किसी प्रकार का सम्पर्क किये तथा वैधानिक कार्यवाही किये, यह नई संस्था स्थापित करली है एवं अब उस संस्था के साथ इसके नाम को जोड़ते हैं। प्राचीन इतिहास को देखते हुए यूनानी आयुर्वेद का ही रूपान्तर है एवं जब हमें देश में एक ही राष्ट्रीय चिकित्सा "आयुर्वेद" अभीष्ट है तब इस प्रकार अन्य चिकित्सा पद्धतियों को साथ लेकर अखिल भारतीय संस्थायें बनाना हितकर नहीं है। इसके पश्चात् अन्य आवश्यक कार्य होने के कारण श्री शिवशर्मा जी चले गए। तत्पश्चात् श्री मूल जी ठाकर ने कहा कि यह जो नई संस्था बनाई गई है उस पर पूर्णतया विचार किया जाये तो इससे आयुर्वेद को हानि होने वाली नहीं है। बम्बई वैद्यसभा को इस पर विचार करने का अधिकार नहीं है। इसके पश्चात् श्री प्रतापकुमार ज ने कहा कि एक से अधिक संस्थायें स्थापित करना कुछ बुरा नहीं है, यदि किसी को अपने ध्येय की शीघ्र पूर्ति की तमन्ना अलग संस्था बना कर हो तो वे ऐसा कर सकते हैं किन्तु उन बन्धुओं को नई संस्था की स्थापना के पूर्व पुरानी संस्था से अलग हो जाना चाहिये। वर्तमान अ० भा० वैद्य हकीम कांग्रेस के संस्थापकों ने दोनों संस्थाओं में रहते हुए 'दूध दही दोनों समान' की नीति अपनाई है यह खतरनाक तथा अप्रामाणिक है। इस बीच श्री मूल जी भाई ने कहा कि श्री प्रताप कुमार का भाषण असंगत है। बम्बई वैद्य सभा में अखिल भारतीय प्रश्नों की चर्चा नहीं की जा सकती। सभापति जी

ने कहा कि आप बैठ जाइये श्री प्रताप कुमार जी के भाषण के पश्चात् आप बोल सकेंगे। इस पर मूल जी भाई ने कहा कि यह लोकशाही नहीं है आप दूसरों को बोलने नहीं देते अपनी मनमानी करते हैं। श्री सभापति जी ने कहा कि मैं जो कह रहा हूं वह लोकशाही के नियमानुकूल है। किसी के चालू भाषण में नहीं बोलना चाहिये। श्री प्रताप कुमार जी ने अपना भाषण चालू रखते हुए कहा कि हमारी संस्था अ० भा० आयुर्वेदिक कांग्रेस से सम्बद्ध है। इसके पश्चात् श्री गजानन जी शर्मा ने कहा कि अ० भा० महामण्डल की वर्तमान नीति के प्रति गत कई वर्षों से कुछ बन्धुओं में गुप्त असन्तोष फैला हुआ है। एवं इस असन्तोष को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये किन्तु अखिल भारतीय दृष्टि से एक ही संस्था का होना अभीष्ठ है। महामण्डल सम्बन्धी जो शिकायतें हैं उन्हें लोक सभा प्रणाली के अनुसार दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। नई संस्था के संस्थापकों के कार्यों को देखते हुए हमें इसमें सन्देह है कि वे आयुर्वेद का हित कर सकेंगे।

इस के पश्चात् श्री कन्हैया लाल जी भेड़ा ने कहा कि आज के सभापति मेरे मित्र श्री वामनराव जी का आभार मानता हूँ कि जिन्होंने आज की सभा बुलाकर तथा इस विषय को प्राथमिकता देकर अपनी सांख्योक्त सात्विक बुद्धि का परिचय दिया है। मैं आप लोगों को यह बता देना चाहता हूँ कि हमारी इस संस्था का अ. भा. आ. महासम्मेलन के साथ कुछ विरोध नहीं है। इसी समय श्री हेमचन्द्र बरसी ने तथा अन्य कुछ महानुभावों ने उनसे पूछा कि आप उस संस्था के प्रतिनिधि की हैसियत से बोलते हैं या व्यक्तिगत रूप से। इस पर श्री कन्हैयालाल जी ने कहा कि मैं व्यक्तिगत रूप से बोलता हूँ। यह नई संस्था कई दिन पूर्व "बम्बई और उपनगर जिला वैद्य परिषद्" द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार स्थापित की गई है। गत दो वर्ष से इसकी स्थापना का विचार चल रहा था। हकीम अजगल खां जी द्वारा स्थापित संस्था को हम ने फिर से चालू किया है। उस संस्था के अन्तिम पदाधिकारी कौन थे तथा उसका रेकर्ड कहां है उसका पता लगाने का प्रयत्न पत्र द्वारा चालू है। इस संस्था के द्वारा अ. भा. आ. महासम्मेलन का कुछ भी अहित न होगा। आयुर्वेद के विकास के लिये ही मेरा तथा मेरे साथियों का यह प्रयत्न है। भारत के प्रत्येक प्रान्त में वैद्यों तथा हकीमों को बोर्डों में एक साथ ही कार्य करना पड़ता है तथा श्री पं० शिवशर्मा जी के कथनानुसार यूनानी आयुर्वेद का ही रूपान्तर है। अतएव इस प्रकार की संस्था की स्थापना में किसी प्रकार का दोष नहीं है। अ. भा. आ. महासम्मेलन में कुछ दिन से बहुत गड़बड़ चल रही है, बहुत ही अन्धेर चलता है। एक ही व्यक्ति कई वर्षों तक सभापति बना रहता है। मैं आप से यह पूछता हूँ कि क्या महाराष्ट्र या गुजरात में एक भी ऐसा वैद्य नहीं है जिसे सभापति बनाया जाये? मेरा बोलने का समय आता है उसके पहिले ही श्री शिवशर्मा जी

(शेष पृष्ठ ५३० पर देखो)

भारत में चिकित्सा व्यवसाय

(ले०-डा० ए० लक्ष्मीपति बी० ए०, एम० बी० और सी० एम०, भिषग्रत्न)

इस विषय के जो प्रश्न उठते हैं वह निम्न हैं:—

(१) डाक्टर बहुत थोड़े हैं, ६००० की जन-संख्या पीछे १ भी नहीं आता।

(२) जो विद्यमान डाक्टर हैं उनका वैद्यों से काफी मुकाबला है।

(३) डाक्टर सब नौकरी में नहीं हैं। उनकी सेवाएं अधिक रकम देने पर ही प्राप्त की जा सकती हैं अर्थात् ३५०) से ६००) रुपये वार्षिक आई-ए० एस० आफिसर की तरह और राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (National Health Insurance Scheme) द्वारा उनसे पूरा काम लिया जा सकता है।

चिकित्सकों की परिभाषा (Definitions)

मैं इस मतलब के लिए डाक्टर, वैद्य तथा छद्म (Quack) वैद्य या नीम हकीम की निम्न प्रकार से परिभाषा करता हूँ।

(क) डाक्टर से अभिप्राय उस चिकित्सक से है जो शिक्षित प्रामाणिक आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा चिकित्सा करता हो।

(ख) वैद्य से अभिप्राय एक आयुर्वेदिक चिकित्सक से है जिसने सविधि आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की हो।

(ग) छद्म वैद्य या नीम हकीम (Quack) वह है जो शास्त्र ज्ञान विहीन किसी औषधि का समुचित प्रयोग जाने बिना उसे प्रयुक्त करता हो।

यह कहना मिथ्या है कि सब आयुर्वेदिक चिकित्सक छद्म वैद्य या नीम हकीम (Quack) हैं। वैद्यों के अपने सिद्धान्त हैं, जिनके अनुसार उनकी चिकित्सा तथा औषधियों के तरीके युक्तियुक्त हैं और देखा जाता है कि कई बार वह मंहगे डाक्टरों से अधिक सफल होते हैं और मैं समझता हूँ कि उनकी सफलता अपने सिद्धान्तों पर पूर्णरूप से चलने से ही है। वह सिद्धान्त आधुनिक विज्ञान के डाक्टरों द्वारा अयुक्ति युक्त तथा अवैज्ञानिक कह कर त्याग दिये गए हैं।

वास्तव में डाक्टरों में भी कुछ 'नीम हकीम' हैं क्योंकि कई डाक्टर ऐसी दवाईयों को जो कि प्रायः खतरनाक होती हैं, बिना विज्ञानशाला में रक्त परीक्षा आदि टैस्ट के चिकित्सा में सफलता को दृष्टि सन्मुख रखकर प्रयोग करते रहते हैं।

बुनियादी गलती

जैसा कि न्यायाधीश वर्दाचार्यार ने मद्रास के अपने एक भाषण में ठीक ही कहा है कि वास्तविक भूल यह कि गत शताब्दि के शिक्षा शास्त्रियों ने इस बात को बिल्कुल भुला दिया कि भारत भी अपनी एक पुरानी संस्कृति रखता है जो कि पाश्चात्यों के भारत में आने से पहिले की है। यह एक सभ्य देश है जिसकी अपनी शिक्षा, चिकित्सा, न्याय, धर्म तथा शिल्पसम्बन्धी संस्थाएं हजारों वर्षों से सम्पन्न तथा शान्तिप्रिय मानवसमाज बनाने के लिए कार्य कर रही हैं। भौतिकवाद (Materialism) जैसा कि आज पाश्चात्य जगत् में विद्यमान है भारत में भी था परन्तु भारत ने इसको सफलतापूर्वक निकाल बाहर किया, यह स्वीकार किया गया कि मनुष्य का ध्येय केवल यह नहीं है कि उसके पास प्रचुर धन सम्पत्ति हो और वह भौतिक सुखों का उपभोग करे। व्यक्ति की उन्नति, आचार तथा आध्यात्मिक मार्प दण्ड से आंकी जाती थी, न कि भौतिक पदार्थों से अथवा वैज्ञानिक उच्चता से।

धर्म (समाज की ओर शुद्ध व्यवहार) अर्थ (धन, अथवा सत्ता की प्राप्ति), काम (इच्छाओं क उपभोग) तथा मोक्ष (पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्ति)–यह चार ध्येय हैं जिनकी सन्तोष-जनक तथा शान्तिमय प्राप्ति के लिए एक व्यक्ति को सदैव लालसा करनी चाहिए। झगड़ा अस्तित्व का नहीं है अपितु उस ज्योति को प्राप्त करने का है जो मनुष्य को सब दुःखों से-जिसमें रोग, भय, वृद्धावस्था तथा मृत्यु भी सम्मिलित हैं--मुक्ति दिलाती है। काम तथा अर्थ केवल हीन प्रकार के लक्ष हैं।

विद्या दो प्रकार की है

भारत में ज्ञान और विज्ञान यह दो रूप विद्या के माने गए हैं। ज्ञान अथवा अध्यात्मिक विद्या वह है जो यह शिक्षा देती है कि केवल एक नित्य तथा अनन्त सत्ता है जो विश्व भर में फैली है। इस दिशा में अध्ययन समष्टि--अनेकता में एकता की ओर ले जाता है। यह दृष्टिकोण काल्पनिक (Syn) है ?

जो विद्या व्यष्टि की ओर ले जाती है अर्थात् विज्ञान में भेद मालूम करती है। विज्ञान का अर्थ वैज्ञानिक या भौतिक ज्ञान जो कि विद्या के विकास को लेकर चलता है, जो कि विभिन्न नामों तथा रूपों द्वारा सब नाशवान वस्तुओं में परिवर्तित होता है। वैज्ञानिक अध्ययन में मोक्ष के लिए कोई स्थान नहीं है। विज्ञान का लक्ष्य भौतिक सुख तथा वैभव (ऐश्वर्य) है। यह दृष्टिकोण परीक्षणात्मक है।

अधिकारियों में अज्ञान

उक्त भारतीय संस्कृति का विद्यमान अधिकारियों को कोई ज्ञान नहीं। बहुत सी भूलें आवश्यकीय रूप से की गई हैं। यह मान लिया जाना चाहिये कि ७ लाख—अच्छे

या बुरे वैद्य- -भारत के सात लाख गांवों में विद्यमान हैं। आन्ध्र राज्य में एक कहावत है कि कोई व्यक्ति को उस गांव में प्रवेश नहीं करना चाहिये—रहने की बात तो दूर रही—जहां कोई वैद्य, साहुकार, शुद्ध जल की प्राप्ति के साधन, तथा द्विज न हो।

हमें अपनी चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा वैद्यों के ज्ञान की वृद्धि के साथ आरम्भ करनी चाहिये थी। भवन को नीचे से बनाना आरम्भ करने के स्थान पर हमने शिखर से (ऊपर से) बनाना आरम्भ कर दिया है।

अंग्रेज भारत छोड़ गए हैं, अब हमें अपनी गल्ती का अनुभव करना चाहिए और उसे सुधारने का यत्न करना चाहिए।

व्यय अधिक लाभ कम

एलोपैथिक चिकित्सक अपने को बहुत महत्ता देता है (अहंकार) वह यह नहीं अनुभव करता कि वह बहुत बड़ी अज्ञानता में है। लम्बी तथा प्रयत्नशील शिक्षा के बावजूद उसने निष्काम सेवा नहीं सीखी है जिसका कि अपना फल है। वह अपनी शिक्षा समाप्ति कर जब वापिस अपनी जन्म भूमि में जाता है तो वह अपने को विदेशी अनुभव करता है। वैद्य का दयालु स्वभाव होने के कारण समाज में विशेष स्थान है। किसी श्रेणि से वह सम्बन्ध रखता हो परन्तु वैद्य बनते ही द्विज बन जाता है। एक वैद्य जो चिकित्सा को धन के बदले में बेचता है उसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वह स्वर्ण के ढेर फेंक कर मट्टी के ढेर इकट्ठे करता है। वह कौन सी मट्टी इकट्ठी करता है ? (पांशु राशि मुपासते) भावना यह है कि धन के लिए आकर्षण पैदा करने पर वह अपने आपको "राग" में फंसाता है जो कि उसे मार्ग से दूर ले जाता है।

नात्मार्थं नापि कामार्थम्,
अथ भूत दयाम् प्रति।
(चरक)

आर्य जाति की त्यागमय सेवा की भावना (लोक संग्रहः) वैद्यों के हृदय में उसके अध्ययन काल में ही अंकुरित की जाती है। यदि आज कुछ वैद्य डाक्टरों की नकल करते हैं उनको केवल उनके कर्तव्य-धर्म की (धर्म की) याद करानी होती है। अपने पैत्रिक गुण-कर्मों के अनुसार समाज में सदैव धनी और निर्धन, बड़े और छोटे होते हैं।

अधो अधःपश्यतः—कस्य महिमा नोपचीयते।
उपर्युपरि पश्यन्तः सर्वएव दरिद्रति॥

कोई व्यक्ति जो अपना अन्यों से जो सन्मुख आते हैं मुकाबला करता है-और प्रसन्न होता है कि उसकी स्थिति दूसरों से अच्छी है, सदैव बड़ा है। इसके विपरीत कोई

व्यक्ति जो अपने से ऊंचे से मुकाबला करता है पर उसकी उच्च प्रतिष्ठा अथवा स्थिति से ईर्षा करता है सदैव दुखी रहता है क्योंकि कोई न कोई उससे अवश्य बड़ा होता है। आजके डाक्टर समाज में जिसमें कि वह पैदा हुए हैं और बड़े हुए हैं अन्यों से कम नहीं हैं। यदि बहुत बड़ी रकम उनकी शिक्षा पर व्यय की जाती है तो उन्हें अनुभव करना चाहिए कि उसे समाज को किसी न किसी तरह सेवा के रूप में चुकाना है। वास्तव में डाक्टर को अपने उच्च विद्या का उपयोग-वैद्यों तथा अन्य लोगों का–अध्यापक गुरु बन कर करना चाहिए। अन्य व्यक्ति यदि यह जानेंगे कि वह सहायक हैं तो उनके स्थान पर सब इकट्ठे होंगे। वैद्य सीखने के इच्छुक हैं क्योंकि उन्हें परम्परागत नम्र होना सिखाया जाता है। डाक्टर इस प्रकार जल्दी ही प्रसिद्ध हो जाएंगे और इससे उनकी आमदनी भी बढ़ेगी।

क्वचिद्धर्मः क्वचिन्मैत्री, क्वचित् अर्थ क्वचितयशः, ।
क्वचित्कर्मफलाभ्यासाश्चिकित्सानास्ति निष्फलः ॥

योग रत्नाकर

चिकित्सा कई दशाओं में धर्म के लिए की जाती है कईयों में मित्रता फैलाती है। कुछ में चिकित्सा यश प्राप्त कराती है जबकि दूसरी अवस्था में वह अभ्यास तथा कार्य कुशलता प्राप्त कराती है चिकित्सा निष्प्रयोजन नहीं जाती।

डाक्टर—पूरे नियुक्त नहीं हैं।

भारत में—वैद्य प्रायः पूरे समय का व्यवसायी नहीं समझा जाता, चिकित्सा बहुत दशाओं में गौण व्यवसाय होता है। आयुर्वेद न केवल वैद्यों को पढ़ाया जाता है अपितु एक अनिवार्य विषय के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को पढ़ाया जाता है ताकि वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी फल प्राप्त कर सके। वैद्य केवल दिन का कुछ भाग रोगियों की परीक्षण करने में व्यतीत करता है जबकि उसका अधिकतर समय अन्य धनोपार्जन के कृषि, पुरोहिताई अथवा अन्य पैत्रिक कामों में व्यतीत होता है। आधुनिक डाक्टरों को भी चाहिए कि वह अपने जीविका के लिए इस व्यवसाय पर पूरा निर्भर न होकर जनता पर अथवा राज्य पर बोझ न बने। कुछ आंशिक समय के लिए आतुरालयों तथा विद्यालयों में नौकर रखे जा सकते हैं जबकि दूसरे व्यापारिक फर्मों में अपनी योग्यतानुसार डायरेक्टर अथवा कार्यकता के रूप में काम कर सकते हैं। ग्रामों में भी वह अपने पैत्रिक कार्य कर सकते हैं वह अपना फालतू समय पाठशाला में अध्यापकों के रूप में व्यतीत कर सकते हैं। या उत्पादक कार्यों में लगा सकते हैं अथवा वह सामाजिक अथवा राजनैतिक कार्यकर्ता भी बन सकते हैं।

आज की आर्थिक विकटावस्था में भारत पूरे समय के लिए डाक्टर अथवा वैद्यों को बरदाश्त नहीं कर सकता और न ही उनके लिए पर्याप्त काम है, हाँ सेना में या

विद्यालयों, आतुरालयों में विशेषज्ञ अथवा अनुसन्धान संस्थाओं में रखे जा सकते हैं।

राष्ट्रीय बीमा योजना

राष्ट्रीय बीमा योजना वैद्यों के सहयोग के बिना भारत में चल नहीं सकेगी। यह महसूस किया जाना चाहिए कि वैद्य जन-संख्या की ८० प्रतिशत की चिकित्सा-सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। वास्तव में जब डाक्टर युद्ध सेवाओं में नियुक्त किये गए थे और भारत प्राय: डाक्टरों से रहित था और नगरों में बहुत से आतुरालय बन्द रहते थे उस समय के तथ्य बताते हैं कि डाक्टरों की कमी को महसूस भी नहीं किया गया था, क्योंकि उस स्थान (दरार) की पूर्ति के लिए वैद्य विद्यमान थे। आज भी उन उद्योगिक क्षेत्रों में जहां राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना चालू की गई है, सरकार किसी कार्यकर्ता को चिकित्सा के लिए डाक्टर के पास जाने के लिए बाधित नहीं कर सकती और उसे यह नहीं कह सकती कि वह वैद्य की चिकित्सा छोड़ दे जिसमें कि उसे पूर्ण विश्वास है।

भारत में हम विदेशों की नकल नहीं कर सकते, उनकी सभ्यता ३ या४ शताब्दी पुरानी है। इधर हमारा आयुर्वेदिक चिकित्सा क्रम परम्परा से प्रत्येक के घर में भीतर धंसा हुआ है। अंग्रेजी शासन के २०० वर्ष के बावजूद भी इसे नहीं निकाला जा सका। डाक्टर और वैद्य के लिए केवल एक ही समाधान (हल) है कि वह एक दूसरे के साथ सहयोग करें, एक दूसरे के गुणों से लाभ उठायें और जनता जनार्दन की जो राज्य के वास्तविक मालिक है सेवा करें।

आयुर्वेद मन सम्बन्धी शिक्षा के तरीकों को तथा रोग निदान सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान की ओर ले जाने में समर्थ है और आधुनिक डाक्टर शल्य-क्रिया और यंत्र परीक्षाओं की ओर बढ़ाता है।

ज्ञानबुद्धिप्रदीपेन योनाविशति तत्त्ववित्।
आतुरस्यान्तरात्मानं न स रोगांश्चिकित्सति॥

चरक विमान ४ अ०।

एक चिकित्सक जो अपनी बुद्धि तथा ज्ञान की ज्योति से रोगी के अन्तर आत्मा में प्रविष्ट नहीं करता वह रोग का निदान नहीं कर सकता और सफलता पूर्वक रोगी की चिकित्सा नहीं कर सकता। यह वैद्य का आदर्श है।

चिकित्सा पद्धति के गुणगान के समय बहुत पहले लिखा जा चुका है कि हमारा केवल एक ध्येय है कि हम वर्तमान निर्धनता की परिस्थिति में किस प्रकार लोगों की भली प्रकार सहायता कर सकते हैं।

चरक लिखते हैं—

तदेव युक्तं भेषज्यं यदारोग्याय कल्पते।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्॥

वह चिकित्सा जो कि रोगी को दु:ख से छुड़ाए सबसे उत्तम चिकित्सा है और जो चिकित्सक रोग से मुक्ति दिलाता है वह सबसे श्रेष्ठ चिकित्सक है।

यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक चिकित्सक शल्य विशेषज्ञ भी हो। यह पर्याप्त है कि शोथ, दूषित व्रण व अदूषित व्रणों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी रखता हो। जब कि कुछ चिकित्सक शल्य कर्म में विशेषता प्राप्त कर सकते हैं और कुछ किसी विशेष रोग में विशेषज्ञ बन सकते हैं। आयुर्वैदिक, एलोपैथिक अथवा अन्य सब चिकित्सकों को चाहिए कि वह रोगी निरीक्षण की शक्ति को बढ़ावें और ठीक रोग निदान की ओर ध्यान केन्द्रित करें।

जैसा कि मैंने दूसरे अवसर पर कहा था, मुझे भय है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के घटिया चिकित्सक (Third Rate Practitioners) दूर ग्रामों में फैल रहे हैं वह अपने साथ पश्चिमी शिक्षा की बुरी आदतें और परम्पराएं ले जा रहे हैं। वह आधुनिक विज्ञान की अच्छी बात नहीं ले जाते, क्योंकि उनके पास बहुत अल्प तथा अपर्याप्त सामान और यन्त्र आदि होते हैं जो कि वैद्यों पर उसके गर्व तथा महत्ता का कारण होते हैं। उनकी भौतिक लालसाएं आचार तथा आध्यात्मिक स्तर जो प्राचीन सभ्यता का कोष रही है उससे गिरा सकती है। इससे बचने के लिए हमें शिक्षितों को पुन: शिक्षा देनी होती है ताकि भारतीयता के अनुसार वह चल सकें।

सही रास्ता

रोग अप्राकृतिक हैं और बहुत से रोगों को प्रकृति ठीक कर देती है। डाक्टर और वैद्य प्रकृति की सहायता के लिए हैं। कई बार वह रोग को अपनी असावधानी, अज्ञान और अदूरदर्शिता से बढ़ा भी देते हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक सभ्यता कई रोगों को बढ़ाने का कारण भी है। डाक्टरों और वैद्यों को चाहिए कि वह लोगों को शुद्ध आहार व्यवहार और शुद्ध आचार की शिक्षा दें ताकि स्वास्थ्य नियमित रूप से ठीक रखा जा सके और इस प्रकार आतुरालयों को खाली करने में सहायता देनी चाहिए। इस दशा में बहुत काम करने को पड़ा है।

डाक्टर का वेतन ३५०) से ९००) रुपये तक बढ़ा देना (जैसा कि आई. ए. एस. अफिसरों में होता है) और उनसे पूरा काम लेना ही काफी नहीं है और यह समस्या

...ा हल नहीं है। समस्या का हल यह है कि डाक्टर के दृष्टिकोण को वदलें और यह ...तों और समझें कि भारतीय तरीके के अनुसार परोपकार पूर्वक सेवा करना ही उसकी उत्तम शिक्षा का बड़ा फल है।

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

दोषवृद्धचैव रोगोत्पत्तिः

(आयुर्वेदाचार्यः पाण्डुरङ्ग हरि देशपाण्डे, पूना–२)

क्षीणदोषकारणतावादे प्राप्तौ तृतीय तुरीयौ निबन्धौ निम्नतः प्रकाश्येते। अस्मत् प्रार्थनानुरोधं निबन्धेन आयुर्वेदजिज्ञासुलोकमुपकर्त्तु सप्रमोदं समागतेभ्य एभ्यो निबन्धृभ्यो धन्यवादान् समर्पयामः। भूयः प्रार्थयामश्च महत आयुर्वेदविद्वद्वरेण्यान् सर्वान् – आयुर्वेद-मार्मिके विषयेऽस्मिन् स्वाभिप्रायान् भूयः प्रमाणन्यायसञ्चारैः साकमुपनिबद्धच, पत्रिकायां प्रकाशाय संप्रेष्य, जिज्ञासुजनोत्साहमभिवर्धयन्तु इति।

सं. वा. बा. न

मन्मित्रैः श्रीमद्भिर्भिषग्वरैर्बागेवाडीकरमहोदयैर्नूत्नः शोधः प्रकटीक्रियते यद्, क्षीणै-रपि दोषैर्वृद्धैरिव रोगोत्पत्तिः सम्भवत्याऽऽयुर्वेदाचार्यैरपि प्राक्तनै "रोगस्तु दोषवैषम्यं" इत्यनेन सूत्रेण सा निर्दिश्यते। किन्तु वृद्धैरिव क्षीणैर्दोषैर्यथा स्याद्रोगोत्पत्तिरेवं न विस्तरशो विव्रियत इति।

श्रीमद्बागेवाडीकराणां स्वमतप्रचारे प्रबलं प्रयासः

प्रथमं तावत्तैर्माहाराष्ट्रीयेण पत्रकेण स्वीयः पक्षो जनस्थानीयाऽऽयुर्वेदपत्रिकाख्ये पाक्षिके प्रसिद्धिमानीतः (१–१–५४)। तस्यामेव पत्रिकायां मया तेषां मतस्यासीत्कृतं खण्डनम् (१६–२–५४)। किन्तु बागेवाडीकरमहोदयानां स्वीये पक्षे एतावान्वर्ततेऽभिनिवेशो यत्तैः पुनस्तस्यां पत्रिकायां स्वपक्षसमर्थनार्थं मत्कृतविरोधपरिहारार्थं च सबह्वासीद्लिखितम् (१–५–५४)। नेत्थम्। पुण्यपत्तने वैद्यकमण्डले तैरेकं व्याख्यानमप्यासीत्कृतम् (३–६–५४)। तदेव सविस्तरं (लिखितं) व्याख्यानं तैः पुनस्तस्यामेवायुर्वेदपत्रिकायामङ्कद्वयाभ्यां प्रसिद्धि-मानीतम् (१६–६–५४। १–७–५४)। उपर्युल्लिखितव्याख्यानप्रसङ्गे मया स्वयमुपस्थीय खण्डित आसीत्तेषां पक्षः। परन्तु तेषां स्वपक्षसमर्थने प्रबलं वर्तत आग्रहः। माहाराष्ट्रीय-पत्रकसममेव तैर्हिन्दीसंस्कृतभाषाभ्यामपि तेषु तेषु नियतकालिकेषु स्वपक्षप्रस्थापने कृतो दृश्यत आयासः। अन्ततो महासम्मेलनपत्रिकापर्यन्तं स आयासीत्। अथ मयैव प्रथमं श्रीमतां बागेवाडीकराणां पक्षः खण्डितो माहाराष्ट्रीयया। मयैवास्यामपि पत्रिकायां संस्कृतेन खण्डनमावश्यकम्। संस्कृतविभागसम्पादकैरपि..याच्यतेऽमु विषयमाश्रित्य लेखनम्। अतो विस्तारं यावच्छक्यं परिहृत्य मन्निवेदनं मयाऽत्र प्रकटयते।

श्रीमद्बागेवाडीकराणां प्रधानौ द्वावंशौ

श्रीमतां बागेवाडीकराणां द्वावेव प्राधान्येन वर्तेते अंशौ। (१) "रोगस्तु दोषवैषम्यं"

इत्यनेन क्षीणवृद्धयोरुभयोरपि दोषयो रोगकारणता, (२) सा च वृद्धदोषाणामिव क्षीणानामायुर्वेदीयतन्त्रेषु न स्पष्टतया वर्णितेति ।

असाधारणं रोगलक्षणम्

आदौ तावद्रोगलक्षणं निरूप्यते । नानाविधानि हि वर्तन्ते रोगलक्षणान्यायुर्वेदे । तेषु "रुजन्तीति रोगा" इत्येव निरुक्तरूपं साधारणत्वेनाभिगण्यते, निजागन्तुषु शारीरमानसेषु सर्वेष्वपि व्याधिषु व्यापकत्वात् । "तद्दुःखसंयोगा व्याधयः" "विकारो दुःखमेव" इत्यादि कानि तद्वाचकान्येव । यच्चोद्धर्यते "रोगस्तु दोषवैषम्यं" इति रोगलक्षणं, तत्तु खलु हेतुनिदर्शकमेव । दोषवैषम्येण हि हेतुभूतेन सता रोगोत्पत्तिरिति । "रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ" "सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः" इत्यादिनाऽपि हेतुत्वमेव प्रतिपाद्यते ।

का नाम रुजा ?

अथ का नाम रुजेति चेच्छूल एव । शूलस्तु प्रकुपितस्य वायोरेव कर्म । यथोक्तं सुश्रुतेन "शूलं नर्तेऽनिलात्" इति । वायुस्तावद् द्वेधा कुप्यतिधातुक्षयान्मार्गावरणेन च । यथोच्यते—"वायोर्धातुक्षयात्कोपो मार्गस्यावरणेन चेति"। अत्राऽवरणं पित्तस्य कफस्य चेति ज्ञातचरम् । तदपि वृद्धस्यैव, नान्यथाऽऽवरणसम्भवात् । वायोरन्यत्र कफपित्तजन्यविकारेष्वपि शूलो वायोरेव । तत्र तावत्कफपित्तयोः प्राधान्येऽपि तस्मिन्स्तस्मिन्रोगस्थाने वैकृतकफपित्तयोर्गमनं वायोरेव व्यापारः, प्राकृतवैकृतशारीरक्रियासु वायोरेव गतिमतः प्राधान्यात् ।

यथोक्तं शार्ङ्गधरेण—"पित्तं पङ्गुः कफः पंगुः पङ्गवो मलधातवः ! वायुना यत्र नीयन्ते तत्र वर्षन्ति मेघवत्" इति । अथ वातादिदोषाणां प्रत्येकं विद्यन्ते तानि तानि स्थानानि, अपितु प्रत्येकं विद्यते मुख्यमेकैकं स्थानम् । यथा वायोः पक्वाशयः, पित्तस्य नाभिः, कफस्य चोरः (आमाशयो वा) । यतश्च "एषु सञ्चीयन्ते दोषाः" । अत्र सञ्चित्य तदनन्तरमेव कोपः, कोपात्प्रसरः, प्रसरतां दोषाणां स्थानवैगुण्यं समासाद्य समाश्रयस्तत्रैव च रोगाभिव्यक्तिरिति सुश्रुतोद्दिष्टः क्रमः । उक्तं च तेन 'सञ्चयं च प्रकोपं च प्रसरं स्थानसंश्रयम् । व्यक्तिं भेदं च यो वेत्ति दोषाणां स भवेद्भिषक्" इति । अथ मन्यसे नैष रोगक्रमः किन्तु सञ्चितस्य दोषस्यैव मार्गक्रमस्तदप्यसाधु । यथोक्तमन्यत्रापि सुश्रुतेन । यथा—"कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम् । यत्र संङ्गः स्ववैगुण्याद्व्याधिस्तत्रोपजायते" इति । चरकेणाप्येवमेवावोचि । यथा—"क्षिप्यमाणः स्ववैगुण्याद्रसः सज्जति यत्र सः । तस्मिन्विकारं कुरुते खे वर्षमिव तोयदः ।।" इति । अयं रसो वाग्भटमाधवाभ्यामादिष्ट आम एव । वाग्भटेनाऽऽमलक्षणेषु दुष्ट आमाशयगतो रसो नामाऽऽम इत्याचक्षिष्टे । यथा—"उष्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाचितम् । दुष्टमामाशयगतं रसमामं प्रचक्षते" इति । रोगशब्द आमयपर्यायवाचक आममूलत्वादेव,

आममयमेव हि व्याधिस्वरूपमामाश्रय एव च व्याधिरिति । यथोक्तं माधवेन—"यत्रस्थमामं विरुजेत्तमेव देशं विशेषेण विकारजातैः । दोषेण येनावततं शरीरं तल्लक्षणैरामसमुद्भवैश्च ॥" इति । 'सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मला' इति तदुद्दिष्टेन रोगनिदानेन मलानां नाम दोषाणां कोपः, स च कोपः सञ्चयेनैवेति प्रागेवाहमवोचम् । अतः सर्वाधारैरिदमेव सिध्यति यत्सर्व एव रोगा दोषवृद्धिजन्याः, स एव ऽऽयुर्वेदस्य राद्धान्तः इति ।

दोषक्षयनिर्देशस्यविमर्शः

ननु "रोगस्तु दोषवैषम्यं" इत्यनेन हेतुभूतेनापि लक्षणेन वृद्धिवत्क्षयोऽपि दोषाणां कथं न रोगाय कल्पेतेति चेद्वक्ष्यामि । क्षीणेनापि दोषेण तत्प्रत्यनीकदोषस्य वृद्धेरेव लक्षणानि समुत्पद्यन्ते । यथोक्तं वाग्भटेन "लिङ्गं क्षीणेऽनिलेऽङ्गस्य सादोल्पं भाषितेहितम् । संज्ञामोहस्तथा श्लेष्मवृध्द्युक्तामयसम्भवः" इति । पित्तकफयोः क्षीणावस्थामप्येवमेवोह्यम् । मा भवेदत्र श्लेष्मादिवृद्धिः प्राकृतादधिका, अपि तु वाताद्यपेक्षया वृद्धिरेव सा । केषांचिन्मतेन प्राकृताद्वृद्धिरेव सा । यः खलु क्षीणोदोषः स विकारकरणे सर्वथाऽसमर्थ एव । तेन हेतुना केवलं रोगोत्पादकपरिस्थितेरानुकूल्यमेव । अतो दोषाणां क्षीणतापरिहाराय बृंहणोपायाः । त एव सुश्रुतेन "तत्र स्वयोनिवर्धनं प्रतीकारः" इति संक्षेपेण "वातक्षये कटुतिक्तकषायरूक्षलघुशीतानां" इत्यादिना चरकेणोक्ताः (च. शा. ६।११) केवला हि क्षीणता न साक्षाद्रोग इति ।

द्विविधचिकित्सायाः का गतिः ?

ननु योच्यते द्विविधा चिकित्सा सन्तर्पणापतर्पणरूपा बृंहणलंघनापरपर्याया तत्र को विचार इति चेद्ब्रवीमि । उभयोश्चिकित्सयोराद्याऽपेक्षयाऽन्त्यैव रोगविनाशिनीति । शोधनशमनभेदेन द्विधा भिन्नं लङ्घनं वृद्धावेवोपयुज्यते । उक्तं च वाग्भटेन "लंघनं लाघवाय यत्" इति । बृंहणं तु क्षीणावस्थायामेव, न रोगेषु । यथोक्तं वाग्भटेनैव "बृंहयेद्व्याधिभैषज्यमद्यस्त्रीशोककर्शितान् । भाराध्वोरः क्षतक्षीणरूक्षदुर्बलवातलान् । गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धान्ग्रीष्मेऽपरानपि ॥" (अ. हृ. सू. १४–७।९) अताचिकित्सयाऽपि वृद्धानामेव दोषाणां रोगकर्तृत्वमिति सिध्यति ।

दोषाणां क्षयवृद्धि विवेचनम्

(वैद्य महावीरप्रसाद मिश्रः, बम्बई)

सम्प्रति सचित्र आयुर्वेदपत्रे फरवरीमासतो दोषाणां क्षयवृद्धिविषये यद् विवेचनं प्रचलति, तस्मिन् द्वौ पक्षौ । क्षीणा अपि दोषाः रोगकराः भवन्तीति पूर्वपक्षः । उत्तर पक्षस्तु वृद्धा एव दोषाः रोगकराः भवन्ति नहि क्षीणाः दोषाः । अस्मिन् विषये युक्तिवाद पुरःसरं स्व स्व विचारान् प्रसारयन्ति भिषजः । तत्तु विदुषां सम्मतमेव । चरकोक्ता हि एषा संभाषा । सम्भाषायामेव गूढार्थ विषयाणां विनिश्चयो भवति ।

इदमत्रावधेयम्-उत्तरपक्षावलम्बिभिः टीकाकाराणां मतं संगृह्य युक्तिवादेनयत् स्वाभिमतं प्रकटीकृतं तेन मूलपाठस्य हानिर्भवत्येव । यदि चेन्मूलपाठमवलम्ब्यात्मानं टीकाकारं मन्यमानाविवेचनं विदध्युस्तदातेऽपि स्वीकुर्युर्यत् दोषाणां क्षयोवृद्धिश्च, रोगोत्पादने हेतुः, नहि तावत् दोषवृद्धिरेव रोगोत्पादने हेतुरिति ।

"रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता" इति वाग्भट्टमतानुसारेण क्षयं गताः वृद्धि गताश्च दोषाः विषमगाः भवन्ति । विषमस्य भावो वैषम्यं दोषाणां वैषम्यमिति दोषवैषम्यमिति व्युत्पत्त्या क्षयत्वेनापि दोषाणां वैषम्यं वृद्धत्वेनापि दोषाणां वैषम्यं यद् वैषम्यं तद् रोगः । एतेन दोषाणां क्षयेनापि रुजाकरत्वाद्देह मनांसि पीडनात् रोगाः भवन्ति तथैव वृद्धत्वेनापि रोगाः भवन्ति ।

यदि नाम वृद्धिगता एव दोषाः रोगकराः भवन्ति तदा क्षीणानां दोषाणां वर्धने को हेतुः तेषामकिञ्चित् करत्वात्तेतूपेक्षणीया एव । सर्वायुर्वेद सारभूता द्विविधा एव चिकित्सा बृंहणीया क्षपणीया च । यदि चेत् क्षीणानां दोषाणामरोगकर्तृत्वं तदा बृंहणीयायां चिकित्सायां व्यर्थापत्ति दोषः । तेनेदं तु निश्चितं मतमाचार्याणां क्षयं गता अपि दोषाः रोगकराः वृद्धिगताश्च रोगकरा इति ।

अत्रोत्तरपक्षीयाणामेषायुक्तिः—यथा क्षीणबलाः रिपवः नैवाक्रमितुं समर्थास्तथैव क्षीणाः दोषाः । असमीचीनेयं युक्तिः । यथा बलवन्तः वृद्धाः रिपवः आक्रम्य पीडयन्ति, तथैव क्षीणबलाः रिपवः अन्तर्दूषितात्मानो मैत्रीं संधाय हृदन्तं प्रविश्य नहि तावत् पीडयन्ति किन्तु घ्नन्त्येव । यथा पक्षाघाते कालान्तरेण क्षीयमाणो वायुः पक्षस्य वधमेव करोति, तथा च वृद्धिं गतो वायुरुन्मादादीन् करोति ।

एतादृशिशास्त्रार्थवादविषये वैद्यविदुषां सदसि यदि विवेचनं भवेत्तदतीव समीचीनं

स्यात् । लेख प्रकाशनेन एतादृशस्य विषयस्य निष्कर्षं ज्ञातुं नैव शक्यते । द्रव्यगुणविज्ञाने यथापूर्वं सदसि विवेचनमभवत् पश्चात्तस्य पत्रिकासु प्रकाशनमभवत् । तथैवास्मिन् विषये विवेचनपूर्वकं प्रकाशनं भवेत् । इत्यभ्यर्थ्य विद्वांसो वैद्याः निवेद्यन्ते मया यदस्मिन् विषये शास्त्रसंगत्या कया रीत्या क्षीणाः दोषाः कया रीत्या वृद्धाश्च दोषाः रोगोत्पादने समर्थाः भवेयुरिति समाधेयम् ।

हृद्रोगास्तच्चिकित्सा च

ले०—वैद्यवाचस्पतिः पण्डित पि० एस्० राम शर्मा, करूर, तिरुचिरापल्लि ।

अगस्त अंकादनुवर्ति

हृदयजाड्यं (Bradicardia) यन्त्रस्य क्रियामान्द्यमनेन बोध्यते । हृदयप्रमोहादिवन्नायं यन्त्रस्वरूपविकारः परन्तु क्रियाविकारः । इदं च जाड्यं केषाञ्चित् जन्मसिद्धम् ।

विज्ञानोपायः—(Diagnosis) सुलभः नाड़ीगतया अवगन्तुं, सुखसाध्यश्च नैसर्गिकं विना ।

चिकित्सा—शिलाजतु तत्संयुक्तमौषधं च गुणकृत् ।

हृदयशोषः- (Atrophy of the Heart) यन्त्रस्य नैसर्गिकाकृतेः क्रशिमानेन बोध्यते । वार्द्धक्ये पाण्डुरोगादिष्वयं क्रशिमा जायते, अन्यत्रोपद्रवरूपतया । रोगोऽयं निसर्गतो याप्यः ।

चिकित्साः— पूर्वोक्तान्यौषधानि हृद्यानि रसायनानि च

हृदयस्तम्भः—(Heart failure) पूर्वोक्तविधमनवरतक्रियाशालियन्त्रं सद्यो वा क्रमशः क्षीणक्रियं भवति । सद्यश्च मरणं जायते ।

प्राग्ज्ञानं चिकित्सा चः—हृदयस्तम्भः द्विविधो भवति । एकश्चिरकारी, अन्यः आशुकारी इति । पूर्वत्र रसायनानि, उत्तरत्र मरणमेव ।

हृदयशून्यताः—रक्तग्रहणोन्मुखेऽपि यन्त्रे (यन्त्रसौष्ठवेऽपि) मुख्यरक्तवाहिस्रोतोमुखप्रतिबन्धेन यथापुरा रसो न पूर्यते । एकदेशह्रासः, आत्यन्तिकह्रासश्च सर्वं संगृह्यते इति गुरुचरणाः । हृदयशून्यता सर्वदा दुश्चिकित्स्या । स्रोतोरोधप्रशमनाय बलातैलादिकं योज्यम् ।

हृदयद्रवः (Peri-cardial effusion) यन्त्रकोशयोरवकाशे जलोदरवत् द्रवः सञ्चितो भवति ।

चिकित्साः—तीक्ष्णविरेचनान्येकाहान्तरितानियोज्यानि । लक्ष्मीविलासाख्यो रसः, सुकुमारघृतानुपाना कस्तूरी च हितावहा । अग्नितुण्ड रसश्च । **हृदयकम्पः**—पाश्चात्यैरनुक्तोऽयं । अस्मिंश्च वातावधूयमानाश्वत्थपत्रवत् हृदयमनवरतं कम्पते । रोगोयं अस्माभिरद्धयुक्षितः एकदा । यन्त्रप्रदेशे बहिरनवरत कम्पः प्रत्यक्षदृश्यः, सर्वाङ्गस्वेदः जागरः भ्रमः यन्त्रप्रदेशेऽसह्यावेदना इति लक्षणान्यन्वदृश्यन्त । पाश्चात्यचिकित्सारीत्या तन्निपुणैः

चिकित्सित: Digitalis, Strychnine, कोयिना. glucose इत्येतानि सूचीमुखेन योजितानि । रोगी पञ्चषड्दिनैः पञ्चत्वं आपन्नः ।

हृदयग्रहः—Tightness of the chest. चिकित्सा:—वातहरा क्रिया ।

हृदयशूलः—सुखप्रशमो रोगः, पूर्ववत् क्रिया ।

हृदयस्तिमितं—(Intermission of Heart beat) किञ्चित् विरम्य-विरम्य हृदयव्यावृतिरनेनोच्यते । "स्थित्वास्थित्वा प्रहरति या" नाड़ीविज्ञाने इदमेव विवृतं। अयमपि यन्त्रस्य क्रियाविकृतिरूप एव । कुत्रचित् यन्त्रस्य सर्वथोपरमरूपे दशाविशेषे हृदयस्तिमितं मरणाय भवति । चिकित्सा:—दशमूलारिष्टं, बलारिष्टं, शिलाजतुप्रयोगश्च ।

हृद्योद्वेष्टनं:—(Angina Pectoris) इत्याङ्गलभिषजः । यन्त्रप्रदेशे असह्यं शूलं, मूर्च्छा, आनाहः इत्यस्य लक्षणानि । प्राग्ज्ञानं:—केषुचित्क्षणेषु शूलं निवर्तते, पुनश्च प्रवर्तते, भैषज्येन सुखं शाम्यति, केषाञ्चित् आशु मरणप्रदं भवति । चिकित्सा:—हरिण-शृङ्गभस्म घृतानुपानेन सद्यः सुखावहं भवति, धान्वन्तर वटी च जीरककषायेण ।

हृदयस्पन्दनं:—(Palpitation of the heart) यन्त्रप्रदेशे प्रत्यक्षदृश्यं स्फुरण-बाहुल्यमनेनोच्यते । चिकित्सा:—शिलाजतु संयुक्तं वियुक्तं वा मुख्यं भेषजं पुष्करमूलासवः। शमश्च सुलभः इति निरूपितो वातहृद्रोगः ।

अथ पैत्तिकः—तृष्णा, भ्रमः, मूर्च्छा, दाहः, स्वेदः, ज्वरः, यन्त्रप्रदेशे च वेदना चास्य रूपाणि । उपद्रवः—हृदयपाकः, हृदयपाकोनाम गुदपाकादिवत् यन्त्रे जायमानः । पैत्तिको रोगविशेषः Inflammation इति पाश्चात्याः । अयं च रोगः त्रिधा विभक्तस्तैः Endocarditis (अन्तर्हृदयं), Myocarditis (मध्यहृदयं), Pericarditis परिहृदयञ्चेति । वस्तुतस्तु चिकित्सा भेदराहित्येनैक एवेति महर्षयः । यन्त्रस्य अन्तस्त्वचि, बाह्यत्वचित्वचोरन्तरा मांसपेश्यां च पित्तपाको जायते । ज्वरः, यन्त्रप्रदेशशूलञ्च मुख्य-लक्षणं । श्वासरोधः, कासः, अल्पमूत्रता च लक्षणानि भवन्ति । नाड़ी च त्वरिता, पूर्णा क्रमशो दुर्बला च शब्दस्पर्शादिभिश्च निर्णयोपयोगी परीक्षा ज्ञातव्यैव । प्राग्ज्ञानं:—अयं रोगः आशुमारको न भवति । अल्पलिंगः सुखसाध्यः । आमवातादौ सम्भवन् प्रायशः प्रधानरोगोपशमे स्वयमेव शाम्यति । वृक्करोगादिषु उपद्रवरूपेण सम्भवन् मरणप्रदः । किञ्चपाकः पूयमुत्पादयन् दुश्चिकित्स्यो भवति ।

चिकित्सा:—द्राक्षेक्षुपरूषकान्यतमकषायेण सितया क्षौद्रेण वा सहितो विरेकः प्रथमं देयः । पित्तज्वरे उरःक्षते च प्रोक्तो विधिः सेवनीयः । अगस्त्यहरीतकी, ब्राह्मरसायनं, आमलकलेहश्च सेवनीयाः । रोगेऽस्मिन् द्रव सञ्चयः पूयपरिणामश्च विशेषतो निरीक्षणीयौ । सञ्चितोद्रवः चिकित्सया क्रमशः क्षीणो भवति । पूयपरिणामस्त्वसाध्यः । एवमत्र निर्णयः केवलपाकः पूर्वोक्त भैषज्यनिषेवणेन साध्यः । सद्रवस्तु शिलाजतुपुनर्नवादिमूत्रलौ-

पर्यं: एकाहान्तरित विरेकैश्च कृच्छ्रसाध्यः। पूयपरिणामस्त्वसाध्यः ज्वरप्रशमने चावधानं कार्यं। पित्त ज्वरकषायाः जयमङ्गलरसश्च हिताः।

अथ कफहृद्रोगाः- यन्त्रप्रदेशे अश्मवत् गर्भवत् भारप्रतीतिः, कासः, अग्निसादः, आलस्यं, अरोचकः, ज्वरः इति तस्य लक्षणानि। अस्योपद्रवः-हृदयगौरवं, हृदयामः इति द्वौ।

तत्र हृदयगौरवं : Hypertrophy of heart इति पाश्चात्याः। दृढ़ज्ञानः हृदयप्रदेशवेदनया सह गुरुता भवति। मांसपेश्यां जायमाना तुन्दिलतातुल्या वृद्धिः गौरवमिति इहोच्यते। यन्त्रगतानि सर्वाण्यपि सुषिराणि वर्द्धन्ते। ततश्चाकृतिमहत्ता असाध्य रोगसंपृक्तोयं असाध्यो भवति। अनुपद्रवश्च चिकित्स्यः हृदयामः। अयं च रोगः प्रायशः संयुक्तौ संपद्यते अतश्चिकित्सायामपि पार्थक्यं न सम्भवति।

अथ हृदयामः—यन्त्रान्तः सञ्चीयमानेनामेनायमुत्पद्यते। तेन च पूर्वोक्ताः हृदयजाड्यादयः प्रादुर्भवन्ति। अयञ्चोपेक्षितः कृमीन् जनयेत्। प्रथममभिहितः कषायः वरुणादिगण क्वाथश्च सेवनीयः।

अथ सन्निपात हृद्रोगश्चिन्त्यते। पूर्वोक्त लिंग सांकर्येण रोगोयं विज्ञेयः। सन्निपात हृद्रोगोपद्रवः हृदयग्रन्थिः (Newgrowths of Heart) इति पाश्चात्याः। चरकसूत्रस्थानसप्तदशाध्याये, "त्रिदोषजे तु हृद्रोगे योदुरात्मा निषेवते। तिलक्षीरगुडादीनि ग्रन्थिस्तस्योपजायते।" इति सन्निपातकोपद्रवोग्रन्थिरभिहितः। यन्त्रगतसुषिरभित्तिषु बहिः प्रदेशेषु च मुद्गाद्याकृतयो गोलाः ग्रन्थिः। तेच बहुविधाः भण्यन्ते पाश्चात्यैः। याप्योयं रोगः। चिकित्साः—हृद्यान्यन्नपानानि रसायनानि च सेव्यानि।

अथ कृमि हृद्रोगाः—विषपरिणामेन, रसक्लेदेन च मर्मैकदेशे सञ्जाताः कृमयः हृदयादनामानः मर्म भक्षयन्तः तीव्रां रुजमतितरां जनयन्ति मूर्च्छां च। चिकित्साः—कृमिहराण्यौषधानि। अयं रोगः न अस्माभिरीक्षितः इति विवेचिताः पञ्च हृद्रोगाः।

अथ हृदयगुल्मः। अयं च गदः गुल्माधिकारे निरुपितः चिकित्सा च गुल्मतुल्या।

हृदयविद्रधिः—अयं च विद्रध्यधिकारे वर्णितः। Cancer of the heart इति पाश्चात्याः। अयं च दुःसाध्यः. वरुणादिगणकल्पित भेषजानि सेव्यानि। एवमत्र संक्षेपेण विचारितः हृदयरोगः। अत्र किञ्चिदवधेयं भवति। प्रायशः सर्वेष्वपि हृद्रोगेषु धान्वन्तर घटी अनुपमं भेषजं, एवमेव दशमूलं, तथैव अर्जुनत्वक् इत्येतानि भेषजान्यायुर्वेदीनां अस्मिन् रोगे यशस्कराणि बहुशो दृष्टफलानि निरूपितानि। विस्तरभयाददानीं विरम्यते इति विदुषां अनुचरः पि. एस्. राम शर्मा।

नारायणगुरूक्तं सपाद कल्पद्रु सेवनात्।
प्राप्तार्थाः सर्वलोकानां हितार्था इति कीर्तिताः॥

मधुमेह

ले०—आयुर्वेद बृहस्पति साहित्याचार्य वैद्य घनानन्द पन्त विद्यार्णव, देहली।

विदित होता है कि मधुमेह का प्रथम वर्णन आत्रेय संहिता (लुप्त) में होगा। आत्रेय के व्याख्यानों का संग्रह उनके शिष्य अग्निवेश की संहिता (लुप्त) है। इसके कुछ उद्धरण यत्र-तत्र मिलते हैं। यथा—आयुर्वेद प्रकाश शिलाजतु शोधन प्रकरण में—

उष्णेऽथकाले रवितापयुक्ते व्यभ्रे निवाते समभूमिभागे।
चत्वारि पात्राण्यसितायसानि न्यस्यातपे तत्र कृतावधानः॥
शिलाजतु श्रेष्ठमवाप्य पात्रे प्रक्षिप्य तस्माद्द्विगुणं च तोयम्।
उष्णं तदर्धं क्वथितं च दत्त्वा विशोधयेत्तन्मृदितं यथावत्॥
सुवस्त्रपूतं प्रविधाय तत्तु संस्थापनीयं पुनरेव तत्र।
ततस्तु यत्कृष्णमुपैति चोर्ध्वं संतानिकावद्रविरश्मितप्तम्॥
पात्रे तदन्यत्र ततो विदध्यात्तस्यान्तरे कोष्ण जलं निधाय।
ततश्च तस्मादपरत्र पात्रे तस्माच्च पात्रादपरत्र भूयः॥
पुनस्ततोऽन्यत्र निधाय कृष्णं यत्संहृतं तत्पुनराहरेच्च।
यदाविशुद्धं जलमच्छमूर्ध्वं प्रसन्नभावान्मलमेत्यधस्तात्॥
तदा त्यजेत्तत्सलिलं मलं च शिलाजतुस्याज्जलशुद्धमेवम्।
चतुर्थपात्राद्गलितं हि सर्वं परीक्षणं तस्य वदामि भूयः॥

उक्त श्लोक चरक के शिलाजितु शोधन प्रकरण में नहीं मिलते। शोधन प्रक्रिया में भी दोनों में कुछ भेद है। सम्भवतः चरक को उक्त अग्निवेश के श्लोक न मिले हों, किसी ग्रन्थान्तर से पूर्ति की गई हो, अस्तु। जब कालान्तर में अग्निवेश संहिता भी छिन्न-भिन्न लुप्तप्राय हो गई, तब चरक ने अग्निवेश संहिता का पुनरुद्धार किया। कल्पादि में ब्रह्माजी ने वेद के स्मरण की भाँति आयुर्वेद का भी स्मरण किया—

इह खलु आयुर्वेदोनाम यदुपांगमथर्ववेदस्य, अनुत्पाद्यैव प्रजाः—
श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयम्भूः। सु. सू. १।

यहाँ 'अनुत्पाद्यैव प्रजाः' यह वाक्य विचारणीय है कि प्रजा की सृष्टि के पूर्व ही प्रजाहितार्थ आयुर्वेद की रचना ब्रह्माजी ने की। एक लाख श्लोक और एक हजार अध्यायों की ब्रह्म संहिता बनाई। काश्यप संहिता में भी—

स्वयम्भूर्ब्रह्माप्रजाः सिसृक्षुः प्रजानां परिपालनार्थमायुर्वेदमेवाग्रेऽसृजत् सर्ववित्

ततो विश्वानि भूतानि । काश्यप संहिता विमान।

ब्रह्मसंहिता के लुप्त हो जाने से भी ब्रह्म संहिता के कुछ उद्धरण चरक- करप्रचितीय रसायनपाद में–इत्यामलकायस ब्राह्मरसायनम्–इस नाम से मिलते हैं यथा––भवन्तिचात्र—

एतद्रसायनंपूर्वं वसिष्ट: कश्यपोंगिराजमदग्निर्भरद्वाजोभृगुरन्ये च तद्विधा। प्रयुज्य प्रयतामुक्ता: श्रमव्याधिजराभयात्।

यावदैच्छं तपस्ते पुस्तत्प्रभावान्महावला: इदं रसायनं चक्रे ब्रह्मा वार्षसहस्त्रिकम् । जराव्याधिप्रशमनं बुद्धीन्द्रियवलप्रदम् । चरक करप्रचितीय (३) रसायनपाद ।

भवन्ति चात्र से––अभिप्राय यह है कि अपने वाक्य के समर्थन के लिये पूर्वाचार्यों के वचनों को जहाँ उद्धृत किया जाता है वहां––भवन्तिचात्र पद देने की आर्ष शैली है। इसी प्रकार'''प्रयोज्यमिच्छद्भिरिदंयथावत् रसायनं ब्राह्ममुदारवीर्यम् । इतीन्द्रोक्तंरसायनमपरम्। च. सू. रसायन ४ पा. श्लो. २६। पूर्व रसायन तो ब्रह्म संहिता का परम्परा प्राप्त प्रतीत होता है। यह इन्द्रोक्तरसायन ब्रह्मा जी से परम्परया इन्द्र को मिला फिर चरक में उद्धृत है। ब्रह्मास्मृत्वायुषोवेंदं प्रजापतिमजिग्रहत् सोश्विनौ तौ सहस्राक्षं। सहस्राक्ष = इन्द्र । इससे प्रतीत होता है कि मधुमेह का वर्णन भी चरकादि में मूल ब्रह्मसंहिता से ही परम्परा प्राप्त है। न कि नवीन रचना। इससे आयुर्वेद का अनादित्व सिद्ध होता है। स्यादेतत्–इससे यह विदित होता है कि मधुमेह का इतिहास भी आयुर्वेद में ब्रह्मसंहिता के समय से होना चाहिये। जैसा कि—

ब्रह्मास्मृत्वायुषोवेंदं प्रजापतिमजिग्रहत्।
सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान्मुनीन ॥

यह आयुर्वेद की उत्पत्ति की परम्परा है। चरक में जो मधुमेह के निदान चिकित्सादि हैं, वे परम्परा प्राप्त (ब्रह्मसंहिता से) हैं।

मूत्र में मीठा स्वाद होने से इसका नाम मधुमेह या इक्षुमेह दिया गया। इधर योरोपीय लेखकों को १६७० ई० में मूत्र में मधुर स्वाद का ज्ञान हुआ। फिर १७७६ ई० में डा० मैथ्यू ने मूत्र में मधुरता का प्रदर्शन उत्सेचन प्रक्रिया से सिद्ध किया। अस्तु। पर केवल इन्सूलीन के मधुमेह की चिकित्सा पाश्चात्य मत में दूसरी नहीं। हां, आजकल इन्सूलीन के प्रभाव को अधिक काल तक स्थाई बनाने के लिए (२४ घण्टे से ३६ घण्टे तक) प्रोटामिन जिंक इन्सूलीन नवीन प्रयोग में आया है। केवल इन्सूलीन का असर ८ घण्टे ही रहता है। यद्यपि मधुमेह की शस्त्र क्रियादि में उक्त इन्सूलीन के प्रयोगों से बड़ा उपकार होता है, तथापि इन्सूलीन चिकित्सा मधुमेही के लिए कोई सिद्ध (स्थाई) चिकित्सा नहीं है। इधर सुश्रुत ने बहुकाल पूर्व मधुमेह को असाध्य रोग मान कर सालसारादिगण के

सहयोग से शिलाजीत का प्रयोग कर मधुमेह की चिकित्सा में लिखा है कि—

उपयुज्य तुलामेवं गिरिजादमृतोपमात् ।
वपुर्वर्ण वलोपेतो मधुमेह विवर्जित: ॥
जीवेद्वर्षशतं पूर्णं पूर्णमजरोमरसन्निभ: ॥सु. चि. १३-११॥

यह प्रतिज्ञा सुश्रुत की है ।

यद्यपि कर्नल चोपड़ा ने अपनी जांच के बाद लिखा है Shilajeet has no effect either on the blood sugar or the urine sugar in diabetes. P. 439. Indigenous drugs.

सुश्रुत ने शालसारादिगण के सहयोग से शिलाजीत का प्रयोग किया है चोपड़ा ने केवल शिलाजीत का ही परीक्षण किया है । चोपड़ा के परीक्षण के बाद अनेक विज्ञ चिकित्सकों ने शिलाजतु का प्रयोग मधुमेह में किया है । उनकी सम्मति है कि शिलाजीत सेवन से कुछ समय बाद शरीर में ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि इन्सूलीन सेवन की आवश्यकता नहीं रहती । साक्षात् चाहे इन्सूलीन की तरह शिलाजीत में रक्तगत शर्करा दूर करने की सामर्थ्य न हो पर अधिक दिन सेवन करने से मधुमेह में लाभ होता है। शालसारादि गण के सहयोग से करे तो विशेष लाभ होता है । आगे भी परीक्षणीय है ।

मैं भी कुछ समय से मधुमेह पर कुछ अभ्यास कर रहा हूं । अर्थात् शालसारादि गण की दवाओं के यथामिलित दवाओं से भी विना शिलाजतु की सहायता से भी कुछ सोपद्रव मधुमेह के रोगी (एलव्युमेन, विचर्चिका, प्रमेह पिडका तथा अति तृषा ६-७ सेर प्रतिदिन जल पीना और इतना ही मूत्र होना, अनिद्रा, ज्वर, कासादि उपद्रव) अच्छे होते हैं । तोल भी बढ़ जाता है । पुनः परीक्षा करने पर मूत्र में मधु का भाग लेश मात्र भी नहीं मिलता है । यदि इसके बाद भी रोगी नियमपूर्वक रहता है, तो रोग याप्यावस्था में रहता है और रोगी अपना सब कारोबार कर सकता है । शालसारादि गण नीचे लिखते है :—

१ शालसार—इसको भाषा में साल कहते हैं, इसकी लकड़ी मकानों में काम आती है । २. अजकर्ण-यह भी जिस जंगल में साल का पेड़ होता है उसके साथ ही साल के समान बड़ा वृक्ष होता है । ३. खदिर प्रसिद्ध है । ४. कदर खदिर भेद दुर्गन्धि खदिर कहलाता है । ५. काल स्कन्ध=तमाल ? ६. क्रमुक=सुपारी का पेड़ । ७. भूर्ज=जिसके भोजपत्र मिलते हैं, चकरौता आदि पर्वतीय स्थानों में बड़ा ऊंचा वृक्ष होता है । ८. मेषशृङ्ग ? ९. तिनिश=सांधन । १०. श्वेतचन्दन । ११. कुचन्दन=लाल चन्दन । १२. शिंसपा=शीसम । १३. सिरीश=सिरस । १४. असन=विजयसार । १५. धव=धायवृक्ष । १६. अर्जुन । १७. ताल प्रसिद्ध । १८. शाक=सागवान । १९. नक्तमाल । २०. पूतीक करंज भेद । २१. अश्वकर्ण ? २२. कालीयक=पीतचन्दन । प्रश्न चिन्ह वाले द्रव्य

हमें अभी तक ठीक नहीं मिले हैं। इनके अलावा मधुमेह चिकित्सा में काम आने वाले द्रव्य गुड़मार, बेलपत्र, गूलर, बट, जम्बु, जयन्ती, नीम और ढाक के पत्ते इन दो का वर्णन डा० महस्कर ने अपने रिसर्च में मधुमेह के लिए किया है। सालसारादि गण के प्रश्न चिन्हित द्रव्य किसी को निश्चित विदित हों तो हमें लिखने की कृपा करें। कीकर का पञ्चाङ्ग, जामुन की गुठली का योग विशेष लाभ करता है।

बच्चों की रहस्यमय बीमारी आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से

अभी पिछले दिनों से एक विचित्र और रहस्यमय कहे जाने वाले बालरोग का लखनऊ, इलाहाबाद, बम्बई आदि नगरों में बड़ी तेजी से प्रसार हुआ है। समाचार पत्रों में इससे होने वाली मृत्यु के समाचार प्रतिदिन देखने को मिल रहे हैं। इस रोग से आक्रान्त बालक की मृत्यु २४ से ४८ घन्टों के भीतर हो जाती है। ऐसे घातक रोग के प्रसार से सब का चिन्तित होना स्वाभाविक ही है। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों की ओर से तथा निजी तौर पर भी ऐलोपैथिक विद्वानों द्वारा ऐलोपैथी के अनुसार इस रोग के कारण निदान चिकित्सा आदि पर खोज करने के प्रयत्न यद्यपि जारी हैं किन्तु अभी तक कोई निश्चित परिणाम नहीं निकला है।

देश की अधिकांश जनता की स्वास्थ्य रक्षा का भार क्योंकि आयुर्वेद के कन्धों पर है अत: इस प्रकार की तथा अन्य संक्रामक व्याधियों के प्रसार के समय आयुर्वेदिक चिकित्सक समुदाय तथा अनुसंधानशालाओं का निष्क्रिय होकर बैठ रहना एक ऐसी कर्तव्यच्युति है कि जिससे राष्ट्र तथा राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति दोनों का ही महान् अहित होता है। अत: वैद्य समाज को ऐसे अवसरों पर अपने कर्तव्य को समझ कर जागरूकता से कार्य लेना चाहिए।

आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से यह तथाकथित रहस्यमय रोग क्या बला है और इसका निदान एवं चिकित्सा क्या है ? निम्न लक्षणों के प्रकाश में विज्ञ वैद्य विचार करें तथा उन्हें लेखबद्ध कर प्रकाशनार्थ भेजें। प्रान्तीय, जिला, नगर व तहसील वैद्य मंडल आदि अपने अपने क्षेत्र में वैद्यों की गोष्ठियों का आयोजन कर इस रोग के विषय में निर्णय करें-कुछ स्थानों पर ऐसा प्रयास किया भी गया है। समाचार पत्रों एवं चिकित्सकों के कथनानुसार इस रोग के जो प्रमुख लक्षण मिले हैं वे इस प्रकार हैं :—

एकाएक तीव्र ज्वर (१०५ से १०७ डिग्री तक कुछ केसों में कम भी पाया गया है), प्रलाप, बेहोशी, शिर में जकड़न, तीव्र पीड़ा, मान्या नाड़ी में पीड़ा, वमन, आक्षेपण, प्रमोह किसी किसी रोगी को पीले दस्त होते हैं–किसी के शरीर में कम्पन भी होता है। हृदय का डूबना या एकदम से उसके स्पन्दन का बन्द हो जाना इस रोग का एक भयानक लक्षण है। समाचार पत्रों के अनुसार इस रोग का संक्रमण प्राय: १०-१२ वर्ष तक के बच्चों में ही पाया गया है।

इस रोग पर अभी तक आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से जो मत हमें प्राप्त हुए है उन्हें हम सधन्यवाद प्रकाशित कर रहे हैं। —प्र० सम्पादक।

: १ :

पाकल सन्निपात

(श्री ताराशंकर मिश्र वैद्य)

सदस्य इण्डियन मेडिसन बोर्ड, उत्तर प्रदेश।

आयुर्वेद के दृष्टिकोण से यह बीमारी नई नहीं है, त्रिदोष सिद्धांत का जानकार वैद्य यह भलीभांति जान सकता है कि ये लक्षण पित्त, वात एवं कफ (विपत्त प्रवृद्ध, वात मध्य, कफ हीन) के हैं। कौमारभृत्य (बच्चों की रक्षा के लिए निर्धारित आयुर्वेद का एक तंत्र) के उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ काश्यप-संहिता या वृद्धजीवकीय तन्त्र (यह पुस्तक नेपाल के राजगुरु को ताड़पत्र पर लिखित मिली है और अब इसका प्रकाशन भी हो गया है) में इस बीमारी के ये लक्षण स्पष्ट हैं—

मध्य प्रवृद्ध हीनैस्तु वात पित्त कफैश्च यः।
तेन रोगास्तथैत्रोक्ता यथादोष बलाश्रयाः॥

मोह प्रलाप मूर्छास्यु र्मन्यास्तम्भः शिरोग्रहः।
कासश्वासो भ्रमस्तन्द्रा संज्ञानाशो हृदिव्यथा॥

सरक्त पित्त निष्ठीवं सरक्त स्तब्ध नेत्रता।
तत्राप्येते विशेषाः स्यु मृत्युर्भवति त्रिवासरात्॥

भिषग्भिः सन्निपातोऽयं कथितः पाकलाभिधम्।

अतिशय बढ़े हुए पित्त, मध्य वात एवं हीन कफ से होने वाले पाकल सन्निपात में कथित लक्षणों का सामञ्जस्य तथोक्त रहस्यमय बीमारी के लक्षणों से भली भांति हो रहा है। प्रवृद्ध पित्त के जानकार वैद्य से ज्वर के तीक्ष्ण वेग (१०५-१०७ डिग्री) एवं अन्यान्य लक्षणों के सम्बन्ध में कहना अनावश्यक है। इस सन्निपात की ही एक अवस्था क्रकच सन्निपात का उल्लेख भी वहीं है जिसमें कम्प एवं मन्यास्तम्भ से मृत्यु होना विशिष्ठ चिन्ह है। यह प्रवृद्ध वात, हीन पित्त एवं मध्य कफ से होता है।

इन दोनों सन्निपातों का मुख्य अधिष्ठान मस्तिष्क है। इसके आवरण में प्रदाह हो जाता है जो गर्दनतोड़ बुखार (मेनिञ्जाइटिस या सेरिब्रो स्पाइनल फीवर) का व्यञ्जन है। इन्हीं कारणों से आज के चिकित्सक इसे इसी के निकट मानते हैं। कुछ इसे सेरिब्रियल टाइप के मलेरिया के निकट मानते हैं। पर इसमें क्विनीन से लाभ नहीं होते देखा जा रहा है।

ऊपर के लक्षणों से यह स्पष्ट है कि इस रोग में हृदय अत्यन्त दुर्बल होता है। अतः उसकी सुरक्षा प्रथम कर्तव्य है। इसके लिए प्रत्येक चिकित्सक एवं परिवार को पहले से तैयार रहना चाहिए।

इसके लिए—

मुक्ता (मोती) पिष्टी या भस्म	१।२ रत्ती
वृहद्वात चिन्तामणि	१।२ ,,
मकरध्वज	१।२ ,,
स्वर्णभस्म	१।४ ,,

इस प्रकार ४-५ पुड़िया सर्वदा चिकित्सक या परिवार को अपने पास तैयार रखनी चाहियें। रोग का जरा भी लक्षण प्रकट हो, तुरन्त एक पुड़िया मां के दूध या सादा पानी या ग्लूकोज जल के साथ रोगी को पिला दीजिए। तनिक भी विलम्ब न कीजिए। नाड़ी कुछ मजबूत न हो रही हो (रोग में नाड़ी अत्यन्त क्षीण चलती है) तो ताबड़ तोड़ २-३ पुड़िया १०-१५ मिनट के भीतर दे दीजिए। नाड़ी की अति क्षीणता में इससे भी कम समय में २-३ पुड़िया दे सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी मूल्य पर शीघ्र से शीघ्र हृदय को सुरक्षित कर लीजिए। इस योग में यदि चारों वस्तुएं न मिल सकें तो मुक्ता और मकरध्वज अवश्य लीजिए।

हृदय कुछ सुरक्षित हो जाने पर उपर्युक्त योग में १।२ रत्ती या १ रत्ती संजीवनी वटी मिला लें। प्रति पांच घण्टे पर ब्राह्मी और पान के स्वरस में दें। ब्राह्मी के स्थान पर शंखपुष्पी भी ले सकते हैं। उपर्युक्त मात्रा ४ से १२ वर्ष तक के बच्चे के लिए है। रोग और रोगी के अवस्थानुसार इसमें न्युनाधिक्य कर लें। रोगी के हृदय से सतर्क रहें। इसका पता हाथ की नाड़ी से भी आपको चल जायगा। उसकी क्षीणता में हृदय दुर्बल एवं मजबूती में हृदय को मजबूत समझिए। ज्यों ही क्षीण मालूम पड़े तुरन्त १ मात्रा संजीवनी मिश्रित या इससे रहित योग को अवश्य दे दीजिए।

अष्टांग आयुर्वेद कालेज कलकत्ता के अस्पताल में ब्रह्मरन्ध्र रस चतुर्भुजरस (भैषज्य रत्नावली) चतुर्मुख रस (भैषज्य रत्नावली वात व्याधि) का सफल प्रयोग इस प्रकार के रोग में हो चुका है।

प्रलाप के लिए सिर पर कुछ गरम पुरातन घृत की मालिश तुरन्त उत्तम लाभ करती है।

ज्वर के बड़े वेग को कम करने के लिए सिर पर हिमट्टति (बरफ की थैली) का प्रयोग कर सकते हैं। हिमट्टति का प्रयोग आधुनिक नहीं बल्कि चरक सुश्रुत के समय से आयुर्वेद में वर्णित है। पर याद रखिए इससे या सिर पर किसी भी शीतोपचार से वायु का भी प्रकोप होता है। यदि इसके साथ पुरातन घृत की मालिश सिर पर चलती रहेगी तो वात प्रकोप का भय नहीं रहेगा। १०२ डिग्री से कम ज्वर में बरफ की थैली का प्रयोग मत कीजिए। पर प्रत्येक अवस्था में पुरातन घृत की मालिश सिर पर चलती रहेगी। खांसी श्वांस हो तो छाती पर भी इसे मल दीजिए।

यदि रोगी को अधिक दस्त हो रहे हों तो उसे तुरन्त रोकिए, नहीं तो हृदय और अधिक दुर्बल होगा। दस्त रोकने के लिए उपर्युक्त योग में गान्धार रस की १।२ या एक रत्ती मात्रा मिला दीजिए। अनुपान में जायफल भी घिस दें। गांधार रस के अभाव में कर्पूरवटी या कोई अहिफेन घटित योग उचित मात्रा में मिला दें। आवश्यकतानुसार योग के अतिरिक्त भी इसका प्रयोग कर सकते हैं पर इस में प्रत्येक अवस्था में मुक्तापिष्टी मिलाना होगा। इसलिए कि अहिफेन के योग से हृदय दुर्बल न होने पाये। इसके साथ मीठे अनार का रस अपूर्व लाभदायक होता है। दस्त, हृदय की दुर्बलता और अहिफेन के विकार तीनों पर यह लाभदायी है।

अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय के औषधालय में इसका रोगी एक बच्चा आया, जिसका मुंह टेढ़ा सा विभत्स हो गया। अपतानक के लक्षण भी मिले। हाथ-पैर ऐंठ गये। उसे लोहभस्म, जटामासी चूर्ण मधु के साथ खिलाया गया। एक ही मात्रा में उसे अद्‌भुत लाभ हुआ।

पथ्य

इस योग में मीठे अनार का रस, मौसम्बी का रस, मां का दूध, छेना, जल और मधु मिलाकर दीजिए। पीने के लिए ग्लूकोज जल अत्यधिक हितकारी है। वैद्यजन शुण्ठी-रहित षडंगपानीय या पित्तपापड़े से सिद्ध जल दे सकते हैं। यह समझ लीजिए कि रोगी को अधिक पेशाव होना चाहिए। जिससे शरीर में उत्पन्न विष बाहर निकले। उपर्युक्त पथ्य इस दृष्टिकोण एवं हृदय तथा रोग के दृष्टिकोण से अतीव लाभप्रद है। हम पुनः स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि ग्लूकोज (फलशर्करा) जल प्रत्येक अवस्था में देना चाहिए।

अपथ्य

रोगी को सीलयुक्त गन्दे स्थान से हटाइये। गर्म,गर्म वस्तुओं और खट्टी-तीती चीजों से बिल्कुल बचाइये। उसके शरीर में बरसाती या सीधी हवा न लगने पाये, पर कमरे में एक ओर हवा का यातायात रहना चाहिए। उधर रोगी की शय्या नहीं रहेगी। मां को और बच्चे को अस्वच्छ वस्त्र नहीं पहनना चाहिए। कमरे को धूप आदि से सुगंधित रखिये।

यह क्रम चिकित्सक की सलाह से करना चाहिए। इससे मंगल होगा।

ओजस्कर (प्रिफ्लेक्टिव) चिकित्सा-सम्पन्न लोग रोग का प्रसार होने पर अपने बच्चों को मुक्तापिष्टी और स्वर्ण-भस्म की मात्रा चिकित्सक से बनवा कर प्रतिदिन मधु, मक्खन या दूध से अवश्य दें। प्रतिदिन बच्चों को दूध और अनार, मौसम्बी, अंगूर आदि धान फल देते रहें। असमर्थ लोग प्रवाल भस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म की पुड़िया

चिकित्सक से बनवा कर प्रयोग करायें।

अन्ततः चिकित्सकों से निवेदन है कि हमने तो अपनी जानकारी आपसे निवेदन की है, जिसका उद्देश्य निदान और चिकित्सा की ओर संकेत करना मात्र है। आप इसके औचित्यानौचित्य पर कार्य करने के लिए स्वतः भी विचार करें।

: २ :

सन्निपातिक वातपित्तोल्वरण-विषमज्वर

पंचपुरी वैद्य-सभा, हरिद्वार का महत्वपूर्ण निर्णय

पञ्चपुरी वैद्य-सभा, हरिद्वार ने विद्यावयोवृद्ध श्री कविराज ज्ञानेन्द्र नाथ सेन जी कविरत्न (भूतपूर्व प्रिंसिपल ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज, हरिद्वार) के तत्वाधान में अपनी विशेष बैठक में जन कल्याण की भावना से इस रोग के कारण एवं चिकित्सा आदि के सम्बन्ध में विचार किया और उसमें जो निर्णय हुवा वह निम्नलिखित है—

कारण—

आयुर्वेद के सिद्धान्त के अनुसार इस रोग के निदान के सम्बन्ध में विचार विमर्श करने पर निश्चय होता है कि यह सान्निपातिक-वातपित्तोल्वण-विषमज्वर है, जिसके विप्रकृष्ट कारण १. ऋतु दोष २. अन्न दोष ३. गरविष प्रमुख हैं शिशुओं की प्रकृति सुकुमार एवं आधुनिक युग में पोषण की कमी होने से तथा देश दोष (घनी व गन्दी बस्ती) के सहयोग के कारण तथा उनकी क्षमता शक्ति (Immunity) न्यून होने से प्रायः उनमें और विशेषकर शहरी बच्चों में ही इसका प्रकोप देखा गया है।

वर्षा ऋतु में वात दोष का स्वाभाविक प्रकोप होता है और प्राकृत वातज्वर प्राकृत होने पर भी दुःखकर माना गया है। फिर उपर्युक्त कारणों से त्रिदोष कुपित हो जाने पर रोग 'वातोल्वण सन्निपात' बन कर वाताधिक ऋतु में सांघातिक रूप धारण कर लेता है। विशेषकर वात प्रकृति के शिशुओं में सर्वाधिक सांघातिक होता है।

घातकता—

रोग के विष जो ऋतु, अन्न और गर दोष के मिश्री भाव से दुर्बल शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं विशेषकर आमाशय में सञ्चित होकर दोष प्रकोप करते हैं, वही रसवह स्रोतसों के द्वारा समग्र शरीर में दूषित रस के साथ पहुंचते हैं। दोषों का प्रभाव मस्तिष्क के तापकेन्द्र पर होने से वह उत्तेजित होकर अतितीव्र ताप (Hyper Pyrexia) उत्पन्न करता है, विष प्रभाव से वात प्रकोप विशेष होता है, दूसरे शब्दों में मस्तिष्क व सुषुम्ना के नाड़ी केन्द्र अतिशय उत्तेजित होकर आक्षेपण (Convulsions) पैदा करते हैं।

विषजुष्ट दोष प्रकोप से मस्तिष्कावसाद के कारण तन्द्रा या प्रमीलक (Drowsiness) उत्पन्न होते हैं। दोषों द्वारा आमाशय क्षोभ के कारण वमन होता है और अन्ततः तीव्र धातुपाक होकर रोगी प्रमोह (Coma) को प्राप्त हो कर मर जाता है।

इस में वात दोष अधिक, पित्तदोष मध्य एवं कफदोष हीन होता है। प्रकृति भेद व देश भेदानुसार दोषों के तारतम्य से लक्षणों में तारतम्य हो सकता है।

चिकित्सा—

शिशुओं की प्रकृति एवं रोग की प्रकृति का विचार करते हुए निम्नलिखित चिकित्सा उपयोगी होगी—

सामान्य चिकित्सा तथा परिचर्या--

१. रोगी को समशीतोष्ण वातावरण में, तीव्र वायु-संचार रहित स्थान में पूर्ण सुखप्रद शय्या पर रखें।

२. ताप उग्र न होने दें। हो जावे तो शीघ्र घटाने का यत्न करें। एतदर्थ शिर पर शतधौत, सहस्रधौत घृत रक्खें। हिमपोटली या सिरके की पट्टी रक्खें, आमला क्वाथ से अथवा बकरी के दूध को बर्फ में शीतल कर परिषेक करें। सावधानीपूर्वक उपर्युक्त द्रव्यों से अङ्ग-प्रोच्छन या अवगाहन भी करा सकते हैं।

औषध चिकित्सा--

वात प्रकोप को न्यून करें, पित्त को बढ़ने न दें तथा हीन कफ को स्वाभाविक अवस्था में लाने का यत्न करें। एतदर्थ निम्न औषध अनुभूत और गुणकारी हैं—

१. अभ्रक भस्म
मुक्ता भस्म
प्रवाल भस्म }

आयु के अनुसार मात्रा निश्चित करके उपयुक्त अनुपान के साथ प्रयोग करायें। औषधि ६–६ घन्टे के अन्तर से दें।

अभ्रक त्रिदोष शामक योगवाही है। मुक्ता के साथ मिला कर वायु व पित्त का शमन करेगी। प्रवाल भी वातशामक है। वात पित्त के शमन के साथ २ हीन कफ को समावस्था में लाकर रोग मुक्त करेगी। शरीर में उत्पन्न सेन्द्रिय विष भी उक्त औषधों से नष्ट होगा तथा रोगी के बल की भी रक्षा व वृद्धि होगी।

२. मुक्ता पंचामृत
३. लघुवसंत मालती
४. तथा चन्द्रशेखर रस भी उपयोगी औषध हैं।

रोगियों को पृथक् रख कर चिकित्सा व उपचार की व्यवस्था होना उत्तम है क्योंकि ज्वर प्राय: संक्रामक होते हैं।

प्रतिरोधक चिकित्सा--

ऋतु प्रदोष प्राय: अपरिहार्य माना गया है, फिर भी निम्नलिखित उपायों का अवलम्बन करने से स्वस्थ रहने में सहायता मिलती है।

स्वच्छता परमावश्यक है। शीतोष्ण सपरिवर्तन सहसा नहीं करना चाहिए--तेज झंझावत से बचना चाहिए। आहार सदा शुद्ध लघु व पौष्टिक होना चाहिये। आजकल जिन विषैले रासायनिक औषधि द्रव्यों का अत्यधिक प्रचलन तथा विवेकहीन प्रयोग हो रहा है उससे गरविष उत्पन्न होता है। शिशुओं को ऐसी विषैली दवाओं से बचाना चाहिये।

---मदनमोहन शर्मा, वैद्य शास्त्री

THE GERMS THEORY IN THE VEDAS

By

Shri Vishva Nath Dwivedi Shastri, Ayurveda Shastra Charya B A.

In this age of all round awakening, scientific research and enlightenment the sphere of Ayurveda is no exception. Learned Vaidyas and Ayurvedic scholars are busy throwing search-lights on the hidden corners of this ancient Ayurvedic Science. As a result more and more of this science is coming into light and becoming non-misty with its true and realistic shape appearing unveildly brighter everytime with the speed and progress of research works and laboriously discovered theories of men of this field of learning. In other words behind the works of Ayurvedic scholars Ayurveda is resurging again its old majestic stature and gradually gaining back its ancient place of importance. This booklet, here, desires to attract the attention of my readers towards the subject of "Germs theory in the Vedas". Vedas, the fountain head of Ayurveda and Vedic therapy throw more than sufficient lights on bacteriology. They describe not only visible krimis but also do theorize on microscopic germs like bacteria and protozoa. Vedic therapeutics and sound knowledge of visible and unvisible germs and various germetic diseases are vividly described in Vedas. There are two types of germs according to the Vedic literature :

(i) VISIBLE or microscopic-organisms.
(ii) INVISIBLE or Ultra microscopic.

1. Micro-organism or (Drista Krimi) :

The germs perceivable through the senses of our eyes are named as VISIBLE ones. As for example Trishirsha krimi, germs of ear and eyes and those found in sores and ulcers.

2. Ultra-microscopic or (Adrista krimi).

These germs cannot be perceived by ovur ordinary eyes though there infectiousness is known ; e. g. germs of Tuberculosis Visible germs are seen creeping and in this sense they are called "SARPA" i. e. creepers. Using this name, descriptions are found at more than one places in Riguveda, Yjurveda and Atharvaveda. The meaning of this word 'SARPA'. This word has been used for Reptiles, germs and

insects. 'Yatudhan' meaning multi-pain causing insects is another word which is found used for Reptiles, germs and insects in the Vedas. Rudra is still another word which is used for these germs.

The writer of Nirukta has written the word as 'Rodana drudrah' which means 'that which makes one weep of acute pain.'

Some people interpret the word 'SARPA' in the meaning of apparition and Evils. But this is a misunderstanding. Their interpretation dashes to the ground when we quote the places of their use. Vedic Mantras speak of these germs in the following manners :

The Abode of the germs

YEAWANI ROCHNE DEVO YE WA SURYASYA RASMISU.
YESAMPSU SADASKRITAM TEBHIYAH SARPEBHIYOH NAMH

That is—'Due our salutations (Namaskaras) to the SARPAS whose abode is in the sky, in the light of the Sun and in the world's life essence water. Again in another two shlokas it is said that—

'Our salutations are due to the germs who live under earth, in atmosphere and in the heaven.' The reason of this salutation or Namaskar is that in all the vegetable life of the Universe (medicinal or cereal) and in the life protector the light, that is in everything under the Sun, the germs dwell. These germs are the generators of dangerous diseases and therefore in order to be protected from them they are saluted with apprehension. And it is extremely natural to think so for the ancient Old Rishis of this Land in whose view the whole world was but a living portion of one Supreme Soul and all animated and examinate things on the earth had one Atma.

In 7A. 3-1-24 of Shatpath Brahman these shlokas are found in some special forms. The existance and omnipresence of germs in the whole of the Universe (the three LOKAS) has been accepted in the line—"Ya aweshu trisu lokesu Sarpostebhyio namo namah." In Vedic Literature whole of the world has been said to be pervaded by the germs.
As—Aote megha prithivi Aota Devi Saraswati.

Aotoam Indraschagnim Krimi Jambhayata miti.

That is—'the earth, the sky, the air and the fire all are permeate with germs. O, Vaidya, combat and destroy them.' We find these germs even today everywhere—in the earth, in the sky, and under the water. In the earth the germs of various diseases and in compost and manures

congenital to flora their various types, are found. In the atmosphere also, many kinds of germs are found as for example germs of T. B.

These days germs are ascribed as most potent factors of different maladies so much so that a section of medical men in the west hold the germs as the only cause of all diseases. These medical men are working days and nights for the furtherance of this thesis of theirs.

But it should be noted that Western medical men could think of germs only in 19th Century. Bassi—the Italian medical specialist had announced that many diseases are caused by germs. And it was only after him that the germs theory came into light and now it has gathered such a momentum around itself that it is also almost impossible today to be indifferent to this theory. Microscope has facilitated the preception of these germs to a very great extent of success in this field. We Indians should be proud of the fact that thousands of years before any of the modern medical men of the West were born our Vedic physicians possessed wonderful knowledge about the existence of these germs who occupy a place of immence importance in the modern theories of Bacteriology. In the Shanti-Parva of Mahabharat on the basis of these very shlokas, the followig statement is found made in the abode of these visible and invisible germs :

Udake vahvah pranah prithivi yam cha phalesuwai
Sukshma yonine Bhutani tarka gamyani Bharat
Pakshmanopi nipaten yesham Syat Skand paryayah
15-20-22
Shanti Parva

The last line deserves some special attention—in which it is evident that they knew of such invisible germs who were killed even by the pressure of the continuous natural falling of the eyelids. This evidently exhibits their knowledge about the minute and instantaneous death of numerous invisible germs and also of the circumstances governing these germs. The observance of 'Balivaishwa yagya' in their diurnal rites and rituals is itself an authentic corroborator of this subject This debonair and religious 'yagna' was prescribed for the pacification of those sins which were inadvertent and unavoidable for every living person and which were committed unknowingly by killing many invisible germs in course of our daily duties like—walking, moving, cooking and rotating the pasting stone wheels. This fact denotes the existence of invisible beings.

Dristamdristam matri hamatho Kurir Matriham

Algandun Sarvasnchhalunan Krimin Vachsa Jambha Yamasi.

That is—'Germs visible and invisible to the eyes and those present in the blood with their bands are hereby destroyed by us. We destroy the germs named as Algandu and Shalun by Shlokas. Here 'Algandu' stands for major or larger germs where as 'Gandupad' or Shalun have been used to denote minor or minute germs. For example—

Un purstat suryeti vishwa drista Adrista ha

Dristanch hanann dristansch sarvansh Pramrinan Krimin.

—Atharvaveda—

Again another shloka reads—

Drista-sch Hanyatam Krimiruta dristasch hanyatam.

—Atharvaveda—

And

Adrista hanmayetyayatho hanti parayati

Atho Avadrighnati hantyatho pinasti pinshati

—Riguveda—

These three shlokas cited from the Atharva and Riga Vedas clearly show a line of demarkation between visible and invisible germs. In another words we can call these as microscopic and ultramicroscopic respectively.

Drista and Adrista : Known types of germs and their names.

There are various types of parasite germs. Those germs who feed themselves on the persons of other beings are called Parasite germs. These are of two kinds : 1. They who live on the persons of dead ones i. e., Saprophyte, 2. They who live on that of living ones. In the first category come those germs who feed on vegetable plants and persons of other beings and creat troubles through begetting multifareous diseases.

1. Germs found on vegetable plants.

Sarasch kusaraso darbhasch saryant

Monja adrista barinah sarve sakanyalipsayat

That is—Visible and invisible germs who beget diseases for human beings and feed on (Saccharum spontaneum) Sarash, (Poa ciliaris) Kush and (Poa cynosuroides) Darbh and Munj etc.

2. Evening—The germs who have their access on the bodies of animals while going back to their domestic homes in the evening and thereby cause pain, are quite invisible ones yet they pin into the bodies of the animals. In

Rigveda we do get descriptions of such germs and of germs who appear after twilight or whose power is accelerated in twilight and who cast bad effects on our body. Atharvaveda throws adequate light on the subject of visible germs. It vividly describes those germs who are visible to the eyes, are found in the sores of nose, ear and teeth and create diseases, are with three suckers on their heads, have three scales over them and are black, footed, footless, disfigured or good figured. This description is found in chapter V, Sukta 23 of Atharvaveda in thirteen mantras and we shall see them later in the following pages of this booklet. These germs are the sources of dangerous/diseases. In my opinion the following is the classification of all visible and invisible germs described in the Vedas. And though it is just possible that there might be some cross divisions yet the numbers and names are approximately thus much.

Synoptic description of visible and invisible germs of the Vedas :

VISIBLE GERMS SECTION

1. Trishirshan —Tinialeta type germs.
2. Trikakuda —T. solium type germs.
3. Sarag —White worms
4. Arjun —Nimble footed and white worms (Ankylostama, Duodenale) and lice type.
5. Nadmima —Noisy flies, sworms, harnets and mosquitoes.
6. Shitikakaha —Black eyed insects (Magot and its kinds type.)
7. Krishna —Black coloured ones.
8. Krishna Vahava —Insects of black feet and hands e. g. lice type.
9. Vishvarupa —Various insects who keep changing their forms.
10. Suchika or Sharkotak —Priking insects like Scorpion, harnets and bed bug. In Riguveda this name has been adopted for invisible germs also.
11. Prakankata —Reptiles of very strong poision as snakes.
12. Rohit —Reddish germs—they are of two types.
13. Vabhru —Brown insects.
14. Gridh —Insects which stick to the body.
15. Kanka —Insect of the colour of Lotus flower.

16. Kusula —Sticky round insects.
17. Kukshila —Large bellied insects.
18. Kakubha —Oblique bodied insects.
19. Karuma —Insects who irritate the mind.
20. Strima —Moving and those who cause Rickets in babies.
21. Visuchinan —Germs who cause acute pain as cholera Bibrio.
22. Kukumdha —Insects causing unpleasing noise like flies, mosquitoes etc.
23. Kukurma —Illuminating insects.
24. Mikakan —Insects of curving movement.
25. Shroni Pratodin —Germs who effect the Shroni.
26. Dwasya —Double mouthed.
27. Panchpada —Five footed ones.
28. Algandu —Round worms.
29. Chaturaksham —Four eyed ones.
30. Naktachar —Insects who are offensive in the might mainly, of the type of Enterobius Venticularis thread worms and ankilostome 'curve',
31. Nilgreva —Blue necked.
32. Sarup —Insects of some definite form.
33. Virup —Disfigured curved or bent.
34. Prithvichar —Those who creep on earth.
35. Gochar —Those who live on cows and buffaloes.
36. Tryambak —Triple headed.
37. Amiba. —Pinching insects etc. according to some physicians.
38. Kikata —Producing chirping noises.
39. Harikesh —Of the colour of the hair of a lion.
40. Nat. —Those who dance in water as leech.
41. Vashistha —Germs who penetrate into body.

Vedas describe these insects and germs not only creators of diseases into human body as well as in animal body.

INVISIBLE GERMS SECTION.

1. Yevash	—Germs of leprosy and blood diseases of microscopic form and speedy movement.
2. Kaskshas	—Invisible beings who cause acute pain
3. Shalulan	—Germs causing mild pain.
4. Kshullaka	—Very very minute germs.
5. Ajaska	—Germs of the type of Fungus and Virus.
6. Shitivitnuka	—Furious natured germs
7. Kankat	—Mildly poisonous germs.
8. Akankat	—Non-poisonous ones.
9. Satin	—Germs of the form of Nivar which lives in water.
10. Prakankat	—Strongly poisonous germs who poison the body in a very short time as Cholera Bibrio.
11. Ansya	—Invisible germs who spread diseases in Ansa countries.
12. Angaya	—Germs who affect the different parts of the body and produce diseases as the germs of (ring worm) 'Dadru'.
13. Atri	—Germs who affect the intestines living therein.
14. Yamdagin	—Firish by birth and infectious of poison
15. Kashyap	—Blood sucking germs among the invisible ones and among visible bed bugs.
16. Krimidan	—Germs of the kind of Bacteria Phage.
17. Nabhachar	—Invisible germs of the sky.
18. Kapardi	--
19. Sharva	—Pain causing invisible germs.
20. Bhava	—Rapidly growing germs.
21. Pansavya	—Germs born in dust.
22. Rajsya	—Germs as minute as the particles of dust and prone to spread with the fly of dust and dirt.
23. Harivya	—Green germs.
24. Vatya	—Germs born in the air.
25. Munikesh	—Of the type of Fungus and mould

26.	Asur	—Deadening Germs.
27.	Rudra	—Germs who make us weep of acute pain.
28.	Bhuṭ	—Multiplying germs.
29.	Pisach	—Those who live on flesh and blood.
30.	Rakshas	—Those who consume up our vitality.

A lengthy description of these germs insects and worms is found in many shlokas in the 23rd Sukta of Kand V of the Atharvaveda, in 191 Sukta of Parthamashtak of Rigveda and in 16th and 17th chapters of Yajurveda. It is also found in the 7—9—11—12 Chapters (kands) of the Atharvaveda. Readers may please see them there.

Besides these in the Atharvaveda, there are descriptions of many other insects who destroo the grainary. A brief account of these insects is bein given below:—

1.	Tard	—Non-violent insects.
2.	Patang	—Winged insects; pests etc.
3.	Shalabh	—Lamp—Insects.
4.	Upakkas	—Creeping insects.
5.	Bangha	—Locusts.
6.	Tusta Jumbha	—Thristy mouthed as white and red ants.
7.	Samankam	—Those who dwell in the earth, as white ants.

(*To be Continued*)

आयुर्वेद लोक

(इस स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित समाचार-सूचनाओं में व्यक्त विचारों से हमारी सहमति होना आवश्यक नहीं है —सम्पादक)

औषधि क्षेत्र में आयुर्वेद का स्थान सर्वोच्च—

नागपुर में गत २ अगस्त को नगर वैद्य सभा द्वारा आयोजित स्वागत समारोह में भाषण देते हुए प्रान्त के स्वास्थ्य मन्त्री श्री कन्नमवार ने आयुर्वेदोन्नति में अधिकाधिक सहयोग का आश्वासन देते हुए कहा कि प्रदेश में आयुर्वेदिक औषधालयों की संख्या बढ़ा दी गई है सौर इस समय ५०० से अधिक आयुर्वेदिक औषधालय चल रहे हैं जबकि एलोपैथिक औषधालय केवल ४०० ही हैं। आपने कहा कि आयुर्वेद की मान्यता के सम्बन्ध में अब शासन में कोई विरोध नहीं रहा है।

आयुर्वेदिक औषधालयों की चर्चा करते हुए श्री कन्नमवार ने कहा कि किसी विषय में किसी चिकित्सा पद्धति का चाहे कितना ही उत्कर्ष क्यों न हो गया हो औषधि क्षेत्र में आज भी आयुर्वेद का सर्वोच्च स्थान है। आयुर्वेदोन्नति के लिए प्राप्त सुझावों पर अवश्य ध्यान दिया जाएगा, यह आश्वासन देते हुए आपने समस्त वैद्यों को संगठन-सूत्र में बंध कर कर्तव्य-पथ पर डट जाने की सलाह दी।

सभा के अध्यक्ष श्री गोवर्धन जी शर्मा छांगाणी ने अपने भाषण में केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रिणी की आयुर्वेद विरोधी नीति की आलोचना करते हुए प्रान्त की आयुर्वेद नीति को सराहनीय बताया। वैद्यों मे संगठन के अभाव पर दुख प्रगट करते हुए आपने कहा कि यदि वैद्य समाज एक सूत्र में बंध जाय तो शासन द्वारा उसकी मांगों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

इससे पूर्व सभा के मंत्री श्री गं० बा० वझे तथा सभापति श्री गुलराज शर्मा, श्री शिवकरण शर्मा, श्री स्वामी कृष्णानन्द सोख्ता प्रभृति महानुभावों के भाषण हुए जिनमें प्रान्त में आयुर्वेद की स्थिति पर प्रकाश डाला गया तथा उन्नत्यर्थ सुझाव प्रस्तुत किए गए।

आयुर्वेद राष्ट्र की महान् सम्पत्ति भटिण्डा जिला वैद्य सम्मेलन में सरदार हरचरण सिंह, रेवेन्यू मंत्री के उद्गार—

ता० ८ अगस्त को जिला वैद्य सम्मेलन भटिण्डा का अधिवेशन प्रान्त के स्वास्थ्य

मंत्री जनरल श्री शिवदेव सिंह की अध्यक्षता में धूमधाम से सम्पन्न हुआ। अधिवेशन का उद्घाटन सरदार श्री हरचरण सिंह रेवेन्यु मंत्री द्वारा किया गया। आपने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि हमारी प्राचीन चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद ही है जो हमारी स्वास्थ्य रक्षा के लिए सर्वथा उपयुक्त है। आयुर्वेद राष्ट्र की महान सम्पत्ति है और हम इसे उन्नत करने का पूर्ण यत्न करेंगे।

श्री सभापति महोदय ने अपने भाषण में बताया कि २३ लाख की लागत से पैप्सु में एक आयुर्वेदीय कालेज खोला जा रहा है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में लगभग २०० आयुर्वेद औषधालय खोले जायेंगे। एक आयुर्वेदिक बोर्ड की स्थापना भी शीघ्र होगी जिससे पटियाला राज्य संघ में आयुर्वेद उन्नति के शिखर पर पहुंच सके।

अधिवेशन में पांच महत्वपूर्ण प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए।

विद्यापीठ स्नातकों के रजिस्ट्रेशन की मांग— जिला वैद्यमण्डल भटिण्डा का प्रस्ताव—

"आज का जिला वैद्य सम्मेलन भटिण्डा दिल्ली प्रान्तीय बोर्ड आफ आयुर्वेदिक तथा यूनानी रजिस्ट्रेशन बोर्ड से सानुरोध माँग करता है कि अखिल भारतीय विद्यापीठ के स्नातकों को अन्य संस्थाओं के स्नातकों की भांति स्थान दिया जाय जैसे कि अन्य प्रदेशों में अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ की परीक्षाओं को मान्यता दी है।"

धार जिला आयुर्वेद मण्डल—

गत १५ अगस्त को राष्ट्रीय स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष्य पर धार जिला आयुर्वेद मण्डल कार्यालय में नगर वैद्य मण्डल की सभा द्वारा केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग की मलेरिया प्रतिरोधक योजना पर विचार किया गया तथा हर वर्ष के समान इस वर्ष भी जिले भर में मलेरिया प्रतिरोधक उपायों को निःशुल्क करने का निश्चय किया गया। जिले के प्रमुख आयुर्वेद सेवियों की एक समिति इस रचनात्मक कार्य के लिए बना दी गई है। राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं तथा मण्डल के आयुर्वेद प्रेमी उत्साही कार्यकर्ताओं से भी सहयोग मांगा गया है। तहसील सभाओं के कार्यकर्ताओं से अपने अपने क्षेत्र में पृथक् पृथक् समिति इस कार्य के लिए नियुक्त करने के लिए कहा गया है।

स्वामी लक्ष्मीराम स्मृति दिवस—

श्री मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारणी सभा जोधपुर द्वारा गत श्रावण कृष्णा ८ वि० सं० २०११ को श्री चाणोंद गुरां साहब भवन में श्री स्वामी लक्ष्मीराम स्मृति दिवस राजवैद्य श्री उदयचन्द्र जी भट्टारक चाणोंद गुरां साहब की अध्यक्षता में मनाया गया जिसमें श्री जसराज जोशी, श्री माधवलाल जोशी, श्री मुनी देवेन्द्रचन्द्र तथा श्री मोहनलाल जी गोटेचा आदि ने स्वर्गीय स्वामी जी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए वैद्य समाज से

उनकी अभिलाषाओं को पूर्ण करने की प्रार्थना की। श्री सभापति जी ने अपने भाषण में वैद्यों को जागरूकता से कार्य करने का निर्देश करते हुए कहा कि वैद्यों ने यदि इस संक्रमण काल में अपने उत्तरदायित्व को यथाविधि नहीं सम्भाला तो आयुर्वेद नष्ट हो जाएगा क्योंकि हमारा शासन ऐसी उपयोगी विद्याओं की ओर से विमुख है। हमें संगठित हो कर अपनी आवाज उठानी और निस्वार्थ भाव से जनता की सेवा करनी चाहिए।

आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रसारक संघ—

अ० भा० आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रसारक संघ की कार्यकारिणी की बैठक रसानयशाला, अमीनाबाद, लखनऊ में आयुर्वेदाचार्य पं० शिवराम जी द्विवेदी की अध्यक्षता में हुई जिसमें उत्तर प्रदेशीय इण्डियन मेडिसिन बोर्ड का चुनाव लड़ने के लिए ७ व्यक्तियों का एक पार्लियामेन्ट्री बोर्ड स्थापित किया गया। संघ ने एक प्रस्ताव द्वारा उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा खुलने वाले आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल पद पर वैद्य को ही नियुक्त करने की मांग की है। एक अन्य प्रस्ताव द्वारा आयुर्वेद विज्ञान के प्रति अपमानजनक बातें कहकर उसे अवैज्ञानिक बताकर जनता में भ्रम तथा घृणा उत्पन्न कराने वाले इण्डियन मैडिकल कौंसिल के सदस्यों तथा स्वास्थ्य तथा चिकित्सा विभाग के अधिकारियों पर हाईकोर्ट में अभियोग चलाने के लिए २१ व्यक्तियों की एक समिति का निर्माण किया गया। संघ ने चन्द्रशेखर आयुर्वेदिक ट्रस्ट सीतापुर द्वारा आयुर्वेद जगत का कोई लाभ न होते देख कर उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद करने का निश्चय किया। संघ की कार्यकारिणी में भी कुछ आवश्यक परिवर्तन किए गए और वार्षिक अधिवेशन दिसम्बर में लखनऊ में करने का निश्चय किया गया।

राज्यपाल श्री मुन्शी का अभिनन्दन—

रानीखेत के वैद्यों द्वारा हिमालय आयुर्वेद सम्मेलन के मनोनीत संरक्षक श्री के. एम. मुंशी, राज्यपाल उत्तरप्रदेश को गत ४ जून को अभिनन्दन पत्र समर्पित किया गया। राज्यपाल ने अपने भाषण में कहा कि इधर ३०–४० वर्षों से आयुर्वेद को जितना प्रगतिशील होना चाहिए था उतना नहीं हुआ। जहां शासन का धर्म है कि विद्याओं को प्रोत्साहन दे वहां आपका भी धर्म है कि उनकी उन्नति करें। बारहवीं सदी के पश्चात् आयुर्वेद में अन्वेषण कार्य बन्द हो गया। हमें आयुर्वेद में अन्वेषण करना चाहिए। हिमालय प्रदेश में ऐसा वनौषधि उद्यान होना चाहिए जहां संग्रह तथा अन्वेपण कार्य हो। सम्मेलन ऐसा कार्य करे कि प्रत्येक चिकित्सक शास्त्रज्ञ हों, उनके कार्यों द्वारा आयुर्वेद का उपालम्भ न हो।

श्री नित्यानन्द शर्मा का त्यागपत्र—

जयपुर के एक दैनिक पत्र राष्ट्रदूत में प्रकाशित एक समाचार से ज्ञात हुआ है कि राजस्थान आयुर्वेद विभाग के स्थानापन्न संचालक श्री नित्यानन्द शर्मा ने गत ४ सितम्बर

को अपने पद से त्याग पत्र दे दिया है तथा उनके स्थान पर चिकित्सा विभाग के सचिव एम० एल० कक्कड़ को अस्थायी रूप से आयुर्वेद विभाग के संचालक का कार्य भार सौंपा गया है।

स्मरण रहे श्री नित्यानन्द शर्मा ने गत ८ जून को स्व० राज्यवैद्य नन्दकिशोर जी के उत्तराधिकारी के रूप में यह पद ग्रहण किया था। आपने किन कारणों से त्यागपत्र दिया है इसका पता नहीं चला।

उत्तरप्रदेशीय वैद्यसम्मेलन—

उत्तरप्रदेशीय वैद्य सम्मेलन कार्यवाहक समिति की कार्यकारिणी की बैठक दि० २८-८-५४ को मेरठ में आयुर्वेद महाविद्यालय में हुई जिसमें यह निश्चय हुए १—मूल सदस्य बनाने की अवधि ३० सितम्बर १९५४ तक बढ़ा दी गई, २—कार्यवाहक समिति का बड़ा अधिवेशन २६ सितम्बर को देहरादून में होना निश्चित हुआ, ३—श्री दयानिधि शर्मा, मेरठ निवासी पर बरेली विशेषाधिवेशन के निश्चयानुसार शीघ्र वैधानिक अभियोग चलाये जाने का निश्चय किया गया क्योंकि उन्होंने कार्यालय की वस्तुयें, पुस्तक, पत्र, लेखा, कोषादि कार्यवाहक समिति कार्यालय देहरादून को नहीं दिया है और दो बार रजिस्ट्री पत्र देने पर भी कोई ध्यान नहीं दिया।

श्री दयानिधि शर्मा की अवैधानिकता, अनुशासनहीनता, मान्य प्रधान जी के आदेश की अवहेलना अवज्ञादि अपराधों के कारण ३ वर्ष के लिए सम्मेलन के पृथकता का दंड विधान बरेली सम्मेलन ने किया था अतएव उनको कोई वैद्य बन्धु, वैद्य सभा शुल्क धन-राशि आदि न भेजें, किसी प्रकार का सम्मेलन सम्बन्धी सम्पर्क भी न रखें अन्यथा उत्तर-प्रदेश वैद्यसम्मेलन इसका उत्तरदायी न होगा। वैद्य सज्जन सदस्यपत्र परिपत्रादि निम्न पते से मंगवा लेवें: —

अमरनाथ वैद्य शास्त्री,
संयोजक, कार्यवाहक समिति,
उत्तरप्रदेश वैद्य सम्मेलन,
बनस्पति भवन, ११, कचहरी मार्ग,
देहरादून।

आयुर्वेद मण्डल शिमला—

आयुर्वेद मण्डल शिमला की एक विशेष सभा २९ अगस्त, १९५४ को शिमला में हुई जिसमें एक प्रस्ताव द्वारा पंजाब रैड क्रास सोसाइटी से प्रार्थना की गई कि वह आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति को अपने विभिन्न क्षेत्रों में वही स्थान दे जोकि एलोपैथी को प्राप्त है। क्योंकि पंजाब राज्य सरकार ने पंजाब आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी प्रैक्टीशनर्ज एक्ट, १९४९ में आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति को ऐलोपैथी के समान स्वीकार किया है।

राजस्थान इण्डियन मेडिसिन बोर्ड में बीकानेर डिवीजन की उपेक्षा पर असन्तोष—

राजस्थान इण्डियन मेडिसन बोर्ड में बीकानेर डिवीजन के वैद्य समाज की सर्वथा उपेक्षा को लेकर पिछले दिनों से बीकानेर जिला वैद्य सभा जो प्रयास कर रही थी उसने अब डिवीजन के तीनों जिलों (बीकानेर श्री गंगानगर व चूरू) के संगठन का रूप ले लिया है।

स्मरण रहे कि इस विषय को लेकर पिछली ६ अगस्त को जिला वैद्य सभा बीकानेर के प्रतिनिधि सर्व श्री शंकरदत्त जी शर्मा, ठाकुर प्रसाद शर्मा, प्रेमनारायण जी शास्त्री व विद्याधर जी शर्मा का एक शिष्ट मण्डल राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री से जयपुर में मिला था। मगर उसका कोई सन्तोषजनक हल नहीं निकला। फलतः पिछली ५ सितम्बर को तीनों जिलों का एक संयुक्त सम्मेलन बीकानेर की सुप्रसिद्ध शिक्षण संस्था श्री सनातन धर्म आयुर्वेद कालेज में गंगानगर के वैद्य श्री रामप्रताप जी शास्त्री की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ, जिसमें डिवीजन भर के संगठन को सुदृढ़ बनाने के लिए श्री ठाकुर प्रसाद शर्मा के संयोजकत्व में बीकानेर प्रादेशिक वैद्य समिति का निर्माण किया गया।

ध्यान रहे कि राजस्थान इण्डियन मेडिसन बोर्ड के ११ सदस्यों में से ८ वैद्य हैं जिनमें से बीकानेर डिवीजन का एक भी नहीं। सरकार द्वारा किये गये इस पक्षपात के विरोध में वहां पर्याप्त क्षोभ है।

स्व० नन्दकिशोर जी को श्रद्धांजलि :—

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के कार्यकर्ताओं और बुन्देलखण्ड वैद्य हकीम परिषद् झांसी की एक सम्मिलित सभा गत ५ जुलाई को स्व० राजवैद्य पं० नन्दकिशोर जी शास्त्री भिषगाचार्य, जयपुर के असामयिक निधन पर शोक प्रदर्शन के निमित्त हुई। उपस्थित सभी लोगों ने मौन खड़े होकर शोक प्रकट किया। तदनन्तर वैद्य पं० रामनारायण जी शर्मा ने उनके गुणों की चर्चा करते हुए कहा कि स्वर्गीय वैद्यराज जी ने अपने जीवन काल में आयुर्वेद की निरन्तर सेवायें की हैं। आप अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ के सभापति, राजस्थान आयुर्वेद विभाग के डायरेक्टर तथा महाराजा आयुर्वेदिक कालेज जयपुर के प्रिंसिपल थे। आप आयुर्वेद शास्त्र के मर्मज्ञ, उद्भट विद्वान्, जयपुर नगरी के सुप्रसिद्ध पीयूषपाणि कुशल चिकित्सक थे। आप जैसे भारत प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ के असामयिक निधन से आयुर्वेद जगत की जो महान क्षति हुई है उससे समस्त वैद्य समाज उत्पीड़ित हुआ है।

अन्त में यह सभा दिवंगत राजवैद्य जी के योग्य सुपुत्र श्री रामदयाल जी से सहानुभूति प्रकट करती है तथा श्री परमात्मा से प्रार्थना करती है कि उनको तथा उनके

शोक सन्तप्त परिवार को शान्ति प्रदान करें।

वैद्य मंडल अम्बाला शहर द्वारा शोक प्रस्ताव—

वैद्य मंडल अम्बाला नगर ता० २७–७–५४ का यह साधारण अधिवेशन श्रीमान् पं० नन्दकिशोर जी शास्त्री भिषगाचार्य के देहावसान पर हार्दिक शोक प्रकट करता है और ईश्वर से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा उनके परिवार को इस असह्य कष्ट को सहने की शक्ति प्रदान करे।

मुकेरियां प्रादेशिक वैद्यमण्डल द्वारा शोक

आज ता० १६–८–५४ को मुकेरियां प्रादेशिक वैद्य मंडल की मीटिंग हुई जिसमें श्री पं० नन्दकिशोर जी भिषगाचार्य की अकाल मृत्यु पर अत्यन्त शोक प्रकट किया गया और प्रभु से प्रार्थना की गई कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

सिरसा आयुर्वेद मण्डल द्वारा शोक सभा –

सिरसा आयुर्वेद मण्डल की सभा २५–८–५४ को वैद्य हरिदत्त शास्त्री की अध्यक्षता में की गई जिसमें निम्न शोक प्रस्ताव पास किया गया तथा ५ मिनट मौन रह कर ईश्वर से दिवंगत आत्मा की शान्ति तथा उनके परिवार को धैर्य प्रदान करने के लिए प्रार्थना की गई।

वैद्यमण्डल अमृतसर की ओर से शोक प्रकाश—

वैद्य मण्डल अमृतसर ता० १५–८–५४ का यह अधिवेशन महाराजा आयुर्वेदिक कालेज जयपुर के प्रिंसिपल श्री नन्दकिशोर जी शास्त्री के देहावसान पर महान् दुख अनुभव करता हुआ अत्यन्त शोक प्रकट करता है और उनके परिवार के साथ सहानुभूति रखता हुआ ईश्वर से प्रार्थना करता है कि स्वर्गीय आत्मा को सद्गति तथा शान्ति प्रदान करे।

बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन कार्यकारिणी के निश्चय—

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की प्रान्तीय शाखा, बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की कार्यकारिणी का एक अधिवेशन ता० २० जून १९५४ को श्री वैद्यनाथ मिश्र, आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में, भारतहितचिन्तक औषधालय जुरनछपरा, मुजफ्फरपुर में हुआ जिसमें निम्नलिखित निश्चय किए गए–३९वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन कोट्टकल में पास नवीन संगठनात्मक विधान को स्वीकार कर महासम्मेलन के अंगभूत शाखा के रूप में कार्य करने का निश्चय किया गया तथा सम्मेलन के प्रधान द्वारा महासम्मेलन के प्रधानमंत्री को इस सम्बन्ध में भेजे गए प्रार्थनापत्र को समर्थित किया गया। सन् १९५४-५५ में बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के कम से कम ५००० सदस्य बनाने का निश्चय किया गया और कार्यकारिणी के प्रत्येक सदस्य पर कम से कम १०० सदस्य बनाने का भार सौंपा गया। निश्चय हुआ कि भविष्य में सम्मेलन के सदस्य केवल वैद्य ही बनाये

जायें। सरकार से यह अनुरोध करने का निश्चय किया गया कि स्वास्थ्य विभाग के अन्तर्गत आयुर्वेद विभाग का पृथक् अस्तित्व स्वीकार किया जाय और उसके पृथक् डायरेक्टर की नियुक्ति की जाय। एक योजना समिति भी बनाई जाय जो डायरेक्टर को परामर्श दे। ९ सदस्यों का एक शिष्टमंडल प्रान्त के मुख्य तथा स्वास्थ्य सचिव के पास भेजे जाने का निश्चय किया गया जो उन्हें आयुर्वेद के सम्बन्ध में अधिक जानकारी कराये। महासम्मेलन के संगठनात्मक विधान के अनुसार प्रत्येक जिले, नगर, थाने और ग्राम में आयुर्वेद संगठन को सुदृढ़ करने के लिए तत्तत् स्थानों के प्रमुख वैद्यों को प्रेरणा देने का निश्चय किया गया कि वे अपने अपने स्थानों में केवल मात्र वैद्यों की सदस्यता से वैद्य सम्मेलनों की स्थापना करें। अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का मूल सदस्य अधिक से अधिक संख्या में बनाने के लिए बिहार राज्य में प्रचार प्रारम्भ किए जाने का निश्चय किया गया।

(पृष्ठ ४८८ का शेषांश)

चले जाते हैं—मैं उनके कान खोलना चाहता हूं। मैं भगवान से प्रार्थना करता हूं कि वह मुझे ऐसा मौका दे कि जब मैं श्री शिवशर्मा जी को सब कुछ सुना सकूँ। सन् १९३८ में श्री शिवशर्माजी को जब चुना तब श्रीं हिर्लेकर जी के नाम के चुनाव में गड़बड़ हुई थी। इस पर श्री सभापति जी ने कहा कि आपका यह कथन सत्य नहीं है। जिस चुनाव का आप जिक्र करते हैं उसमें कोई अनियमितता नही हुई थी। श्री कन्हैयालाल जी ने कहा कि कुछ दिन पूर्व महाराष्ट्र आदि ४ वैद्यसम्मेलनों के सभापतियों ने जो परिपत्र निकाला हैं उससे हम को कुछ भय नहीं है। जिन लोगों को यह लगे कि हमारे पैसे गैरसमझ से दिये गये हैं तो मैं उनसे कहता हूँ कि पैसे पैसे क्या करते हैं? पैसे तो हमारे पास वहुत हैं। पैसों की कुछ कमी नहीं है। वे अपने पैसे वापस ले लें–हमें उनके पैसों की कुछ जरूरत नहीं है। वैद्य सभा द्वारा यह सार्वजनिक सभा बुलाई गई। इसके पूर्व अ. भा. वैद्य हकीम कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं से विचार-विनिमय कर लिया जाता तो अच्छा रहता। इसके पश्चात् श्री सोमेश्वर जी ने कहा कि आज जबकि समग्र वैद्यकीय संस्थायें आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा के रूप में स्वीकार कराने के लिये जोरदार आन्दोलन कर रही हैं तब ऐसे समय में श्री कन्हैयालाल जी ने वैद्य हकीमों की संयुक्त संस्था खड़ी की है। श्री प्रताप कुमार जी ने कहा है कि अलग अलग संस्थायें स्थापित करना दोष नहीं है किन्तु लोकशासनवाद के इस युग में अखिल भारतीय स्तर पर समानान्तर संस्थायें स्थापित करना आयुर्वेद के लिये हितकर नहीं है। सरकार तथा जनता के समक्ष आयुर्वेद का गौरव कम होगा। श्री कन्हैयालाल जी अ. भा. आ. महामण्डल की वर्तमान नीति को बुरा बतलाते हैं एवं इसके लिये उसके विरुद्ध अखिल भारतीय संस्था स्थापित कर उसका विकास करने की आशा रखते हैं- इसकी अपेक्षा यदि वे अपने संघ बल के साथ महामंडल में रहकर उसकी उन्नति करें तो हम सब साथ देंगे। श्री कन्हैयालाल जी का यह कहना है कि सभी प्रान्तों में वैद्य और हकीम बोर्डों में एक साथ ही काम करते हैं। अतः हमें भी संयुक्त संस्थायें चलानी चाहियें, उचित नहीं है। यहां बम्बई राज्य में बोर्ड के अधिकांश हकीम भाइयों के द्वारा आयुर्वेद का अहित ही हुआ है। हकीमों ने सरकारी व्यक्तियों के पीछे रहकर आयुर्वेद का अहित करने में सहयोग दिया है। अतः मैं श्री कन्हैयालाल जी एवं उनके मित्रों से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस घृणित कार्य द्वारा आयुर्वेद एवं वैद्य समाज का अहित करने में सहायक न हों।

इसके पश्चात् श्री नारायण हरि जोशी ने कहा कि—श्री कन्हैयालाल जी का भाषण केवल दिखावटी है। उसमें तथ्य का अंश बहुत कम है। कुछ दिन पूर्व ही बम्बई के मुख्य मंत्री श्री मुरारजी भाई ने अपने एक भाषण में कहा था कि राज्य के वैद्यों को अपना एक संगठन बनाना चाहिए, एवं उसके अनुसार बम्बई के वैद्यों का एक संगठन बनाने के लिए स्थानीय वैद्यों की दो सार्वजनिक सभायें हुईं, एवं उनमें सभी वैद्यकीय संस्थाओं

एवं वैद्यों का एक संगठन हो यह निर्णय सर्वानुमति से किया गया, एवं इस कार्य में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो इसलिये श्री कन्हैयालाल जी एवं उनके मित्रों की सब सूचनायें मान्य की गईं। उक्त सभा में वैद्यकीय संस्थाओं एवं वैद्यों का सम्पर्क कर एक वैद्य संगठन निर्माण करने का कार्य इनके द्वारा ही सूचित एक समिति को सौंपा गया, जिस समिति में श्री कन्हैयालालजी एवं उनके अन्य मित्र थे। उस समिति को ता. ३१ मई १९५४ तक अपने कार्य की रूपरेखा वैद्य समाज के समक्ष रखनी चाहिये थी, किन्तु उक्त समिति के संयोजक श्री कन्हैयालालजी एवं श्री सीताराम जी तथा समिति के अन्य सदस्य उनके मित्रों ने ऐसा कुछ भी न कर, 'अखिल भारतीय वैद्य हकीम कांग्रेस नामक' नई संस्था की स्थापना कर 'मनस्यन्यद्, वचस्यन्यद्' वाली अपनी भावना का परिचय दिया है। श्री कन्हैयालालजी 'मुंबई और उपनगर जिला वैद्य परिषद् के जिस अधिवेशन का जिक्र करते हैं, उस प्रस्ताव में श्री हकीम अजमलखां द्वारा स्थापित प्राचीन संस्था का कहीं भी उल्लेख नहीं है, तथा न ही उस समय प्रस्ताव पास करने वालों को यह याद ही था। यही नहीं अभी कुछ दिन पूर्व जब बम्बई में इस नई संस्था की स्थापना की गई तब भी उस पुरानीं संस्था के नाम का कहीं जिक्र नहीं किया गया। अब पीछे से जब इनको याद आया तो अपनी संस्था को प्राचीन प्रमाणित करने के लिए उस प्राचीन एवं समाप्त संस्था के साथ इसका कुछ सम्बन्ध न होते हुये भी उस संस्था के नाम के साथ इसको जोड़ना प्रारम्भ कर दिया। किसी प्राचीन संस्था को फिर से चालू करने के पूर्व उस संस्था सम्बन्धी पूर्ण जानकारी, पुरानी नियमावली, रेकार्ड आदि प्राप्त कर तथा उस संस्था के प्राचीन पदाधिकारियों तथा कार्यकर्ताओं से विचार विनिमय कर सार्वजनिक सूचना देकर उसका प्रारम्भ करना चाहिये। इस नई संस्था की स्थापना के समय ऐसा कुछ नहीं किया गया। केवल कुछ वैद्यों ने मिलकर सम्मेलन भरने के लिये स्वागत समिति की रचना की और कार्य प्रारम्भ किया। कुछ दिन पश्चात् एकाएक स्वागत समिति ही सम्मेलन होने से पूर्व ही संस्था के रूप में परिवर्तित हो गई एवं स्वागत समिति के उपाध्यक्ष संस्था के अध्यक्ष हो गये। इस कार्य को वैधानिक एवं उचित नहीं कहा जा सकता। इससे संस्थापकों की पद लिप्सा एवं व्यक्तिगत द्वेष की भावना स्पष्ट प्रतीत होती है। श्री कन्हैयालाल जी ने जो यह कहा कि—अ० भा० आ० महासम्मेलन में गुजराती एवं महाराष्ट्रियनों को स्थान नहीं दिया जाता तो मैं उन से यह पूछता हूं कि आप जिन गुजराती एवं महाराष्ट्रियनों की चिन्ता कर अपना हितैषित्व प्रदर्शन करते हैं, उनसे अपनी इस नई संस्था की स्थापना के समय पूछा तक नहीं, उस समय आपका यह प्रेम कहां चला गया था। आपका यह कहना भी कि सार्वजनिक सभा बुलाने से पूर्व अ० भा० वैद्य हकीम कांग्रेस के पदाधिकारियों से विचार विनिमय करना चाहिये था, ठीक नहीं है, जिन लोगों ने नगर में एक अखिल भारतीय संस्था स्थापित करने से पूर्व यहां के वैद्य समाज को सूचना तक नहीं दी

उनसे हम क्या विचार विनिमय करें। संस्था स्थापन से पूर्व उनका यह कर्तव्य था कि वे स्थानीय प्रमुख वैद्यकीय संस्थाओं एवं वैद्य समाज से विचार विनिमय करते। ऐसे भाषणों से हम उत्तेजित नहीं होने वाले। श्री कन्हैयालालजी एवं उनके मित्र अन्य लोगों से जैसे व्यवहार की अपेक्षा रखते हैं वैसा उन्हें भी दूसरों के प्रति रखना चाहिए। बम्बई वैद्य सभा नगर की ६० वर्ष प्राचीन प्रमुख संस्था है, एवं आज तक प्रत्येक महत्त्वपूर्ण आयुर्वेदीय प्रश्नों पर इसने कार्य किया है। नगर के वैद्यों की यह एक वास्तविक प्रतिनिधि संस्था है एवं इस विषय पर चर्चा करने का इसे पूर्ण अधिकार है। आपने अपने पास प्रचुर धनराशि होने की बात कही इस पर मैं तो यही कहूंगा कि किसी भी संस्था का कार्य केवल पैसों से नहीं चल सकता। उसमें उत्साही, सत्यप्रिय, निःस्वार्थी कार्यकर्ता ही मुख्यतः चाहियें।

इसके पश्चात् श्री मूलजी भाई ने पुनः बोलना चाहा। इस पर श्री नारायण हरि जोशी ने क्लोजर की माँग की कि इस विषय पर बहुत चर्चा हो चुकी है एवं समय भी बहुत हो गया है अतः और चर्चा न की जाय। सभा के मत लेने पर ५ विरुद्ध बहुमति से चर्चा वन्द कर दी गई एवं निम्नलिखित प्रस्ताव ५ विरुद्ध बहुमति से स्वीकृत किया गया:-

प्रस्ताव—"बम्बई वैद्य सभा के तत्त्वावधान में मिली हुई बम्बई के वैद्यों की यह सार्वजनिक सभा निश्चय करती है कि—नगर में कुछ दिन पूर्व ही कतिपय वैद्य हकीम बन्धुओं द्वारा संस्थापित 'अखिल भारतीय वैद्य हकीम कांग्रेस' नामक संस्था वैद्य समाज में विद्वेष फैलाने वाली है एवं इसके द्वारा आयुर्वेद का हित होने की अपेक्षा अहित ही होना सम्भव है, अतः यह सभा सभी वैद्य हकीम बन्धुओं तथा जनता से निवेदन करती है कि वे इस संस्था को किसी प्रकार का सहयोग न दें। यह सभा इस नई संस्था के स्थापकों से भी प्रार्थना करती है कि वे इस प्रकार के कुत्सित कार्य को बन्द कर समाज में संगठन करने के प्रयत्नों में अपना सहयोग दें।"

इसके पश्चात् आरोग्य बीमा योजना संबन्धी विषय पर चर्चा प्रारम्भ होने पर श्री प्रताप कुमार जी, श्री भुरे एवं श्री ना० ह० जोशी ने इस पर प्रकाश डाला। श्री प्रतापकुमार जी ने इस विषय में पूछे गये प्रश्नों के सविस्तार उत्तर दिये तथा योजना के नियमादि का स्पष्टीकरण किया। इसके पश्चात् सभापति जी को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

श्रीराम शर्मा
मंत्री—बम्बई वैद्य सभा।

———

डाबर
अशोकारिष्ट
प्रदर तथा ऋतु सम्बन्धी दोषोंको मिटानेकी
बहु परीक्षित दवा







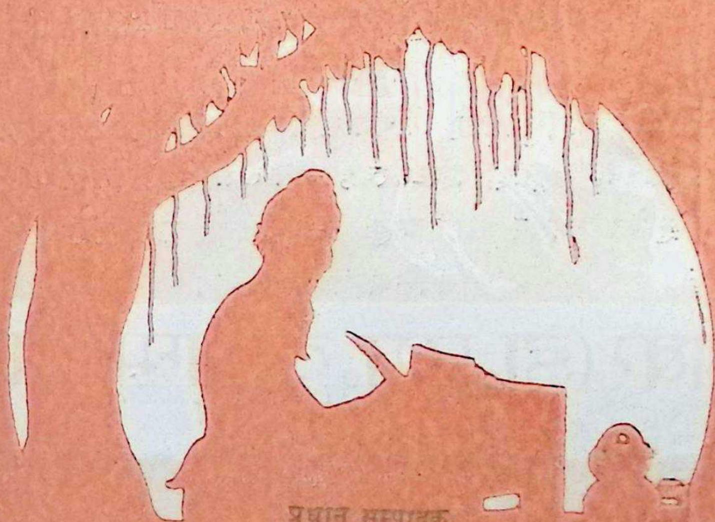
डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०
कलकत्ता

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—दीपक प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली।

आश्विन २०१४

ॐ

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका



प्रधान सम्पादक

कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि

संस्कृत-विभाग सम्पादकः

बा. बा. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ

आत्मविज्ञान भवन, ऋषिकेश, जिला देहरादून ।

सन् १९५५ वर्षीय परीक्षा सम्बन्धी सूचनायें

(१) परीक्षायें २८ मार्च १९५५ से प्रारम्भ होंगी ।

(२) (क) परीक्षा शुल्क प्रतिखण्ड-आयुर्वेदाचार्य तथा वैद्याचार्य १५) रु०, आयुर्वेद विशारद तथा वैद्य विशारद १०) रु०, आयुर्वेद भिषक् ७) रु०, प्रजावैद्य सम्पूर्ण ६) रु० ।

(ख) जो परीक्षार्थी १९५४ की परीक्षा में सम्मिलित न हुआ हो, उसे २) दो रुपया रजिस्ट्रेशन शुल्क उपर्युक्त शुल्क के अतिरिक्त देना होगा ।

(ग) शुल्क प्राप्ति की अन्तिम तिथि १५ दिसम्बर १९५४ है, इसके पश्चात् ता. ३१ दिसम्बर १९५४ तक १) रु० तथा १५ जनवरी १९५५ तक २) रु० विलम्ब शुल्क सहित ही शुल्क स्वीकार किया जा सकेगा ।

(३) परीक्षा सम्बन्धी आवेदन पत्र प्राप्त करने के लिये परीक्षा शुल्क अग्रिम कार्यालय में भेजना होगा । शुल्क भेजते समय इसका विवरण तथा प्रेषक का पूरा पता (Address) मनिआर्डर कूपन पर स्पष्टतया लिखा होना चाहिये ताकि उसी अनुपात से आवेदन पत्र भेजे जा सकें । इससे अतिरिक्त प्रति आवेदन पत्र का मूल्य =) आना होगा ।

(४) कार्यालय शुल्क प्राप्ति रसीद संख्या (Receipt number) मनिआर्डर की वापसी रसीद पर लिखी होगी । यही संख्या कार्यालय से भेजे जाने वाले आवेदन पत्र पर लिखित होगी । उक्त रसीद का सुरक्षित रखा जाना तथा पत्र-व्यवहार में उसका उल्लेख आवश्यक है ।

(५) आवेदन पत्र की कार्यालय में प्राप्ति की अन्तिम तिथि ३१ दिसम्बर १९५४ होगी, तत्पश्चात् ता. २५ जनवरी १९५५ तक १) रु० दण्ड शुल्क सहित ही आवेदन पत्र स्वीकार हो सकेगा ।

(६) विद्यापीठ सम्बद्ध संस्थाओं तथा स्वीकृत अध्यापक महानुभावों को चाहिये कि वे (क) क्रमशः अपना सम्बद्धता शुल्क १५ रु० अथवा मान्य सदस्यता शुल्क ५) रु० ३१ दिसम्बर १९५४ तक अवश्य भेज दें तथा (ख) परीक्षार्थियों के आवेदन पत्रों को प्रत्येक अंश में भली प्रकार देखभाल कर उन पर हस्ताक्षर करें क्योंकि आवेदन पत्रों के भरने में की गई असावधानता और उससे होने वाली हानि के उत्तरदायी सर्वथा वे ही होंगे ।

(७) इस वर्ष से जामनगर, जगन्नाथ पुरी, गोहाटी, झांसी तथा काठमण्डू में परीक्षा केन्द्र स्थापित किये गये हैं ।

(८) अभी तक जयपुर, धमदा, महेमदाबाद तथा राजुला के परीक्षा केन्द्रों का विषय केन्द्र समिति के विचारधीन है। जब तक इनका अन्तिम निश्चय नहीं हो जाता कोई परीक्षार्थी इन केन्द्रों का नाम अपने आवेदन पत्र में न भरे ।

श्रीदत्त शर्मा

(आयुर्वेद मार्तण्ड, रायबहादुर)

मन्त्री—नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ

निखिल-भारतवर्षीयायुर्वेदविद्यापीठम्

आत्मविज्ञानभवन, ऋषिकेश, जि०-देहरादून

सन् १९५५ वर्षीय-परीक्षा-सम्बन्धिन्याः सूचनाः

१—२८ मार्च १९५५ तः परीक्षा आरप्स्यन्ते।

२—(क) प्रतिखण्डं परीक्षाशुल्कम्—

आयुर्वेदाचार्य–वैद्याचार्ययोः –१५ रूप्यकाणि।

आयुर्वेदविशारद-वैद्यविशारदयोः–१० रूप्यकाणि।

आयुर्वेदभिषजः–७ रूप्यकाणि।

सम्पूर्ण-प्रजावैद्यस्य–६ रूप्यकाणि।

(ख) यैः परीक्षार्थिभिः सन् १९५४ तमे वर्षे परीक्षावेदनपत्राणि न पूरितानि स्युस् तै रूप्यकद्वयं रजिस्ट्रेशनात्मकं शुल्कं पृथक् प्रहेतव्यं भविष्यति।

(ग) शुल्कप्राप्तेरन्तिमा तिथिः १५ दिसम्बर १९५४ वर्त्तते। तदनन्तरं ३१ दिसम्बर इति यावत्, सैकं रूप्यकं, अथ च १५ जनवरी १९५५ इति यावत् रूप्यकद्वयं २) विलम्ब-शुल्कसहितं परीक्षाशुल्कं स्वीकृतं भविष्यति।

३—परीक्षावेदनपत्राणि प्राप्तुं परीक्षाशुल्कं कार्यालयेऽग्रिमं प्रहेतव्यम्। शुल्क प्रेषण-समये शुल्कविवरणं तथा च प्रेषकस्य पूर्णं स्थानसंकेतनं मनीआर्डर-कूपने स्पष्टाक्षरैः विन्य-सनीयम्, यतो हि आवेदनपत्राणि तत्प्रयोजनमनुसृत्यैव प्रहीयेरन्, पृथगत आवेदनपत्रस्य मूल्यं आणकद्वयं भविष्यति।

४—कार्यालय शुल्क-प्राप्ति-रसीद-संख्या (Receipt number) धनादेशस्य M.O. प्रत्यागच्छता रसीदोपर्यंकितं भविष्यति। इयमेव संख्या कार्यालयतः प्रेषित आवेदन-पत्रे न्यस्तं भविष्यति। उक्त–संख्यांकितं रसीदपत्रं संरक्षितव्यं, यतो ही पत्र व्यवहारे तस्यो-पयोगो नूनं संख्या निर्देशार्थं कर्तव्यो भवति।

५—आवेदनपत्रं कार्यालये ३१ दिसम्बर १९५४ इति यावत् विलम्बशुलकमन्तरा स्वीकृतं भविष्यति। तदनन्तरं २५ जनवरी १९५५ इति यावत् दण्डरूपात्मकेनैकेन रूप्यकेण सह स्वीकृतं भविष्यति।

६—विद्यापीठसम्बद्ध-संस्थाभिरथ च स्वीकृताध्यापकमहानुभावैः क्रमशः संबद्धता-शुल्कं १५ रू०. अथवा मान्यसदस्या शुल्कं ५ रू०, ३१ दिसम्बर ५४ इति यावत् नूनं प्रहे-तव्यम्।

(ख) परीक्षार्थिनामावेदनपत्राणि सर्वभावेन सम्यक् समालोक्य हस्ताक्षरैरलंकर्त्त-व्यानि, यतो हि आवेदनपत्रापूरणे कृतासावधानतायाः, तथा च तस्मादुत्पन्नहानेरुत्तरदायी आवेदनपूरक एव भविष्यति।

७—अस्मिन् वर्षे जामनगर, जगन्नाथपुरी, गोहाटी, झान्सी, काठमण्डू स्थानेषु परीक्षाकेन्द्राणि स्थापितानि सन्ति।

इदानीं पर्यन्तं जयपुर, धमदा, महेमदाबाद, राजुला, स्थानानां परीक्षाकेन्द्राणां विषयः केन्द्रसमिते विचाराधीनमस्ति, तस्मादनिर्णयं यावत् परीक्षार्थिभिरेषां केन्द्राणां नाम स्वकीयावेदनपत्रेषु नांकनीयम्।

श्रीदत्त शर्मा

(आयुर्वेद मार्तण्ड, रायबहादुर)

मंत्री नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ।

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि।
संस्कृत विभागसम्पादकः—वा. बा. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः।
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली।

वर्ष ४० | दिल्ली, आश्विन २०११, अक्तूबर १९५४ | वार्षिक ५)
अंक १० | | एकप्रति ॥)

विषय-सूची

सम्पादकीय—

धन्वन्तरि त्रयोदशी

अपने को स्वस्थ और रोगों से मुक्त रखने की इच्छा मानव में आदिकाल से ही रहती आई है। इसलिए यह माना जा सकता है कि मानव जीवन के प्रारम्भ के साथ ही ओषधि विज्ञान की भी संसार में उत्पत्ति हुई। यद्यपि आयुर्वेद का सर्वसम्मत प्रामाणिक इतिहास आसानी से निश्चित नहीं किया जा सकता परन्तु फिर भी कुछ ऐतिहासिक परम्परायें ऐसी हैं जिन्हें हम मानते आये हैं। उनमें से एक भगवान धन्वन्तरि का जन्म-दिन भी है। इसे हम कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को मनाते हैं। इस दिन समुद्र मन्थन के पश्चात् हाथ में अमृतकलश लिए हुए भगवान् धन्वन्तरि इस पृथ्वी पर अवतरित हुए और उन्होंने आयुर्वेद द्वारा मानव को स्वस्थ रहने और रोगों से मुक्ति पाने का सन्देश दिया।

सम्पूर्ण भारतवर्ष में यह दिन धन्वन्तरि जयन्ती के नाम से मनाया जाता है और इस तिथि को आयुर्वेद का प्रतीक मानकर भारतवासी आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में अपनी आस्था प्रकट करते हैं तथा आयुर्वेद विज्ञान के आदि पण्डितों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। हमारा भारत के आयुर्वेदिक विद्वानों से निवेदन है कि पिछले वर्षों की भांति इस वर्ष भी इस दिवस को उत्साह के साथ मनायें और आज के दिन रोगियों की निःशुल्क सेवा करें तो और भी सुन्दर रहे।

भारतीय संस्कृति के आधारभूत सिद्धांत "त्याग और सेवा" का अनुसरण करते हुए पुनः निश्चय करें कि हम मानव-कल्याण के हेतु कार्य करते रहेंगे, जैसा कि सदैव ही करते रहे हैं तथा आयुर्वेद की मर्यादा और प्रतिष्ठा को बनाए रखकर देश के स्वास्थ्य को स्वस्थ और उन्नत बनाए रखने में शक्ति भर प्रयत्न करते रहेंगे। यह ठीक है कि आयुर्वेद पर अनेकों ओर से गम्भीर प्रहार हो रहे हैं, जनता को भरमाया जा रहा है और हम एक भयंकर संकटापन्न स्थिति में से गुजर रहे हैं। परन्तु यदि हम संगठित और सुदृढ़ रहकर अपने उद्देश्यों का प्रतिपादन करते रहेंगे तो यह निश्चित है कि आयुर्वेद अपने वांछित स्थान पर अवश्य आरूढ़ होगा और भारत सरकार को उसे मान्यता देनी होगी। इसके लिए आवश्यकता है एकता की, एक स्वर की और सबसे बढ़कर आयुर्वेद विज्ञान की उन्नति के हेतु उस चिरस्थायी सतत खोजपूर्ण कार्य की जो इसकी स्थिरता और उपयोगिता के लिए प्रमाण बन कर रहे। हम इस ओर निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

अन्त में धन्वन्तरि-दिवस के इस पुनीत पर्व पर समग्र वैद्य समाज का हार्दिक अभिनन्दन करते हुए हम मानव मात्र के स्वास्थ्य की कामना करते हैं।

—कैलाशचन्द्र अग्रवाल।

आयुर्वेद-विश्वविद्यालय शिलान्यास कैसे स्थगित हुआ ?

(श्री राष्ट्रपति जी की सद्भावना)

(श्री पं० श्रीदत्त शर्मा, विद्यापीठ-मन्त्री का वक्तव्य)

वैद्य समाज बड़ी उत्सुकता से देख रहा था कि १३ अक्तूबर को माननीय श्री डाक्टर राजेंद्रप्रसाद जी निखिल भारतीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय का शिलान्यास ऋषिकेश में करेंगे। इस शिलान्यास के सम्बन्ध में कुछ विवरण पाठकों की स्मृति के लिये लिखना आवश्यक प्रतीत होता है।

३८वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन इन्दौर में यह प्रस्ताव हुआ था कि काली कमली वाला आयुर्वेद सेवा समिति ऋषिकेश का आयुर्वेद विद्यालय सन् १९१७ से आयुर्वेद विद्यापीठ से सम्बन्धित है और तभी से विद्यापीठ की ही परीक्षायें दिलाता है। इस लिये यह विद्यालय विशेष तौर से आयुर्वेद विद्यापीठ को मान्य है। इस प्रस्ताव की कापी आयुर्वेद सेवा समिति तथा काली कमली क्षेत्र को उसी समय भेज दी गई थी।

३८वें महासम्मेलन पर यह भी निश्चय हुआ था कि आयुर्वेद-विश्वविद्यालय के लिये योजना तैयार की जाय और उसके श्री पं० शिवशर्मा जी, वैद्य हरिदत्त जी शास्त्री, कविराज प्रतापसिंह जी, स्वामी दयानिधि और पं० श्रीदत्त शर्मा, विद्यापीठ-मन्त्री—ये पांच सदस्य निर्वाचित हुए थे। इन सदस्यों ने अपनी विस्तृत योजना महासम्मेलन स्थायी समिति एवं विद्यापीठ कार्यकारिणी के सम्मिलित अधिवेशन बंगलौर में उपस्थित की, जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुई। यह योजना आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के मई १९५३ के अंक में निकल चुकी है।

वह स्वीकृत योजना बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र कार्यालय कलकत्ता में भेजी गई। उसके आधार पर बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र की कार्यकारिणी समिति ने १ अगस्त १९५३ को निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया जो अक्षरशः नीचे उद्धृत किया जाता है—

बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र प्रबन्धकारिणी समिति के दिनांक १-८-५३ के अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव की यथार्थ प्रतिलिपि—

"अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, इन्दौर, अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति, बंगलौर के प्रस्ताव व तत्सम्बन्धी पत्रों पर विचार विमर्श होकर सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि क्षेत्र कमेटी प्रस्ताव को स्वीकार करती है और निश्चय

करती है कि रामनगर स्थित कालेपानी (रम्भा नदी) के नाले के पश्चिम भाग स्थित जमीन पर एवं रेलवे लाईन के पूर्वी सड़क के दरम्यान में भूमि कूप मकानादि में बाबा काली कमली वाला अखिल भारतीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना का शीघ्र से शीघ्र कार्यारम्भ कराया जावे।

क—आयुर्वेद सेवा समिति द्वारा संचालित आयुर्वेद विद्यालय को उनके 'सेवा समिति द्वारा' स्वीकृत प्रस्ताव नं० ६ ता० २२–१०–५० व १४–६–५१ के प्रस्तावानुसार शीघ्रातिशीघ्र रामनगर में ले जाकर विश्वविद्यालय में योजित कर कार्यारम्भ किया जावे।

ख—उपरोक्त चारों संस्थाएं, बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र, बाबा काली कमली वाला आयुर्वेद सेवा समिति, अखिल भारती आयुर्वेद विद्यापीठ, अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के चार चार सदस्यों को लेकर एक समिति बनाई जावे जो विश्वविद्यालय के नियम, उपनियम, संचालन आदि के नियम बनाकर समस्त कार्य संचालन करेगी और उसी कमेटी द्वारा एग्रीमेंट बनाकर नियमानुकूल रजिस्ट्री कराई जावेगी।

उक्त विश्वविद्यालय का नाम सर्वदा "बाबा काली कमली वाला अखिल भारतीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय" रहेगा। नाम में कोई परिवर्त्तन न होगा।

साथ में यह भी निश्चय हुआ कि उक्त प्रस्ताव की प्रतिलिपि तीनों संस्थाओं के सभापति महोदयों के पास भेजी जावे और इस सम्बन्ध में पत्रव्यवहारादि का काम रायबहादुर पं० श्रीदत्त जी, सहकारी मन्त्री क्षेत्र, पर छोड़ा गया।"

इसी प्रस्ताव को बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र की जनरल समिति ने २ सितम्बर १९५३ को ज्यों का त्यों स्वीकार किया।

तदुपरान्त यही प्रस्ताव बाबा काली कमली वाला आयुर्वेद सेवा समिति के पास भेजा गया और उक्त समिति की स्थगित मीटिंग ने ता० २१ फर्वरी १९५४ को इसे स्वीकार किया। बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र तथा आयुर्वेद सेवा समिति के उपर्युक्त प्रस्तावों के आधार पर ३९वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किये गये—

१—निश्चय हुआ कि श्री बाबा काली कमली वाला नि० भा० आयुर्वेद विश्वविद्यालय की योजना 'जो एतदर्थ गत इन्दौर महासम्मेलन पर निर्मित एक विशेष उपसमिति द्वारा निश्चित हो चुकी है तथा जिसे बंगलौर की स्थायी समिति के अधिवेशन में प्रस्ताव के रूप में स्वीकृत किया जा चुका है' के अनुसार विश्वविद्यालय का कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ करने के लिये नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ का कार्यालय दिल्ली से तुरन्त ही ऋषिकेश विश्वविद्यालय के लिये निर्धारित स्थान आत्मविज्ञान भवन में भेज दिया जाय ताकि ६०० रुपये के करीब मासिक बचत होकर वह रुपया विद्यालय की परि-

वर्धित रूप-रेखा के लिये व्यय हो सके ।

प्रस्तावक पं० दरिदत्त शास्त्री, बम्बई ।
अनुमोदक—पं० वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर ।

२—यद्यपि बंगलौर स्थायी समिति में प्रस्ताव स्वीकृत था तथापि क्षेत्र ट्रस्ट के अनुरोध से अब नये रूप में यह पुनः

(क) निश्चय हुआ कि उक्त विश्वविद्यालय की योजना को कार्यान्वित करने के लिये निम्नलिखित महानुभावों की कार्य समिति बनाई जाय जिसमें योजना के अनुसार चार नाम महासम्मेलन की ओर से -

१—श्री पं० शिवशर्मा जी, बम्बई ।
२—वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह जी, इन्दौर ।
३—श्री डा० वाई० पार्थ नारायण पण्डित, बंगलौर ।
४—वैद्यरत्न श्री परमानन्द जी, देहली ।

और चार नाम विद्यापीठ की ओर से—

१—श्री विद्यापीठाध्यक्ष महानुभाव जो भी हों ।
२—श्री पं० श्रीदत्त शर्मा, ऋषिकेश ।
३—श्री वी० बी० नटराज शास्त्री, तिरुचिरापल्ली ।
४—श्री पं० हरिदत्त शास्त्री, बम्बई ।

और चार नाम आयुर्वेद सेवा समिति, ऋषिकेश की ओर से—

१—श्री महन्त इन्द्रेश चरण जी महाराज, देहरादून ।
२—रायबहादुर लाला उग्रसेन जी, बार-एट-ला, देहरादून ।
३—श्री बाबू ज्ञान स्वरूप जी, देहरादून ।
४—श्री स्वामी दयानिधि जी, ऋषिकेश ।

तथा श्री बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र ट्रस्ट समिति को अपनी ओर से ४ नाम शीघ्र भेजने को लिखा जाय ।

इस प्रकार चारों संस्थाओं के चार-चार सदस्यों द्वारा बनाई गई उक्त विश्वविद्यालय कार्यसमिति में १७वां एक सदस्य विश्वविद्यालय का कुलपति "चान्सलर" रहेगा ।

(ख) निश्चय हुआ कि विश्वविद्यालय कार्य समिति के ये सदस्य प्रथम पांच वर्ष के लिये निर्वाचित किये जाते हैं, परन्तु इस बीच में यदि कोई स्थान किसी कारणवश रिक्त हो जाय तो उसकी पूर्ति उस उस संस्था द्वारा की जाय जिस संस्था की ओर से वह सदस्य नियुक्त हुआ हो ।

प्रस्तावक–श्री वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर।
अनुमोदक—स्वामी चेतनानन्द जी, देहली।

५— क) निश्चित हुआ कि श्री बाबा काली कमली वाला निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ विश्वविद्यालय योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए आयुर्वेद सेवा समिति का जो ९५ हजार रुपया श्री बाबा काली कमली वाला क्षेत्र के पास जमा है वह तथा जो १ लाख रुपया आयुर्वेद सेवासमिति के पास जमा है, वह और जो १ लाख रुपया नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के पास जमा है वह, सब करीब ३ लाख रुपया इकट्ठा करके किसी सुरक्षित जगह पर विश्वविद्यालय के नाम पर जमा किया जाये।

(ख) उपरोक्त रुपये में से वर्तमान में अढ़ाई लाख रुपया स्थायी कोष के रूप में किसी सुरक्षित स्थान में रखा जाय तथा ५० हजार रुपया विश्वविद्यालय के प्रारम्भिक कार्य संचालन में व्यय करने का अधिकार उपरोक्त समिति को दिया जाता है।

(ग) जहां तक स्थायी कोष का सम्बन्ध है उसको अधिक से अधिक बढ़ाने के लिये श्री बाबा काली कमली वाला क्षेत्र तथा आयुर्वेद सेवा समिति, आयुर्वेद महासम्मेलन तथा आयुर्वेद विद्यापीठ–ये चारों संस्थाएं मिलकर निरन्तर प्रयत्न करती रहें जिस से स्थायी कोष की वृद्धि होती रहे और कार्य संचालन के लिए जो व्यय की आवश्यकता हो उसे दूसरे मार्गों से आय करके पूरा करें।

प्रस्तावक–श्री डा० वाई० पार्थनारायण पण्डित, बंगलौर,
अनुमोदक–रसवैद्य वामनाचार्य, कोल्हापुर।
समर्थक–श्री बद्री विशाल त्रिपाठी, कानपुर।
समर्थक–श्री एम० वैंकट शास्त्री, बेजवाड़ा।

६—निश्चय हुआ कि आयुर्वेद विश्वविद्यालय का शिलान्यास आदरणीय श्री डा० राजेन्द्र प्रसाद जी द्वारा कराया जाय और इस सम्बन्ध में श्री विद्यापीठ मन्त्री राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन जी के सहयोग से श्री राष्ट्रपति जी की सुविधानुसार शिलान्यास का समय निश्चित करायें।

इन प्रस्तावों के आधार पर निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यालय ता० ३१ मार्च १९५४ को आत्मविज्ञानभवन ऋषिकेश में लाया गया।

इन्हीं प्रस्तावों के आधार पर मैं ने माननीय श्री राजर्षि पुरुषोत्तम दास जी टण्डन से प्रार्थना की कि वे श्री राष्ट्रपति जी द्वारा शिलान्यास कराने में हमारी सहायता करें। श्री राजर्षि टण्डन जी ने श्री राष्ट्रपति जी से ता० १६ अप्रैल १९५४ का समय लिया और

मेरे को दिल्ली बुलाया और मुझे अपने साथ श्री राष्ट्रपति जी के पास ले गये, और श्री टण्डन जी के सहयोग से श्री राष्ट्रपति जी ने आयुर्वेद विश्वविद्यालय के शिलान्यास के लिए ऋषिकेश पधारना स्वीकार किया। सम्पूर्ण वैद्य समाज ने श्री टण्डन जी की इस कृपा का बड़ा आभार माना और राष्ट्रपति जी की स्वीकृति पर सभी ने प्रसन्नता प्रकट की।

श्री राष्ट्रपति जी की स्वीकृति की सूचना बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र तथा आयुर्वेद सेवा समिति को दी गई। बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र की कार्यकारिणी ने ३० अप्रैल १९५४ को इस प्रकार का प्रस्ताव स्वीकार किया कि आयुर्वेदविश्वविद्यालय की स्थापना करने वाली सम्बन्धित संस्थाओं के प्रतिनिधियों को कलकत्ता बुलाया जाय और उनसे विचार विमर्श होने के बाद शिलान्यास सम्बन्धी कार्यवाही की जाय और विचार विनिमय के लिए २४ जून सन् १९५४ को कलकत्ता में क्षेत्र की कार्यकारिणी समिति की मीटिंग की जाय, इसकी सूचना हमें मिली।

२४–६–५४ की मीटिंग में सम्मिलित होने लिये श्री पं० शिवशर्मा जी, अध्यक्ष आयुर्वेद महासम्मेलन, बम्बई से और राजवैद्य श्री पं० नन्दकिशोर जी के स्वर्गवास होने के कारण विद्यापीठ के उपाध्यक्ष श्री स्वामी दयानिधि जी ऋषिकेश से तथा श्री पं० श्रीदत्त जी, विद्यापीठ मन्त्री, कलकत्ता गये। परन्तु वह मीटिंग २४–६–५४ को स्थगित होकर २६–६–५४ को हुई। उसमें काली कमली क्षेत्र के कुछ सदस्यों ने वैधानिक आपत्ति की और कुछ अन्य आपत्तियां भी कीं। तब यह विषय एक उपसमिति के सुपुर्द किया गया। काली कमली क्षेत्र की उपसमिति के निम्न लिखित सदस्य थे—

१—श्री सर विजय प्रसाद सिंह राय, के. टी.,
२—आनरेबल मिस्टर जस्टिस रामाप्रसाद मुखर्जी,
३—सेठ श्री ईश्वरी प्रसाद जी गोयनका,
४—सेठ श्री बैजनाथ जी बाजोरिया, तथा
५—लाला बाबू श्री दामोदर दास जी खन्ना।

उपर्युक्त समिति ने आवश्यक विषयों पर कलकत्ता के प्रमुख बैरिस्टर से कानूनी समति ली। बैरिस्टर महोदय की सम्मति आयुर्वेद विश्वविद्यालय के निर्माण के पक्ष में थी और उसने बताया कि इस कार्य में कोई वैधानिक अड़चन नहीं है। इस सम्मति के साथ उपर्युक्त उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र की कार्यकारिणी के २६–९–५४ के अधिवेशन में उपस्थित की। उस अधिवेशन में मैं स्वयं भी उपस्थित था। इस मीटिंग में और कई प्रकार की वैधानिक तथा अन्य आपत्तियां उठायी गईं और कोई निर्णय शिलान्यास सम्बन्धी न हो सका।

गत्यवरोध की सूचना श्री राष्ट्रपति जी को दी गई और आयुर्वेद विश्वविद्यालय के न बनाने के पक्ष वालों ने भी श्री राष्ट्रपति जी को प्रार्थना पत्र दिये, तारें भी दीं। यह

स्वाभाविक बात है कि श्री राष्ट्रपति जी विवादास्पद विषय में अपना हाथ कैसे डालें। इस पर यह विषय श्री राष्ट्रपति जी ने श्री पं० गोबिन्द बल्लभ जी पन्त, प्रधान मन्त्री, उत्तर प्रदेश को भेज दिया। जहां तक मालूम हुआ है यह विषय उत्तर प्रदेश की कैबिनिट में रक्खा गया।

इधर आयुर्वेद सेवा समिति के मन्त्री श्री पं० श्रीदत्त शर्मा ने आयुर्वेद सेवा समिति की बैठक ता. ६–१०–५४ की बुलाई, उसमें निम्न लिखित जो प्रस्ताव पास हुआ उसे अविकल रूप में नीचे दिया जाता है—

७—"सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि आयुर्वेद सेवा समिति बाबा काली कमली वाले की यह बैठक यह चाहती है कि ऋषिकेश में आयुर्वेद विश्वविद्यालय बनाया जावे, किन्तु इस कार्य को पूर्ण करने में यह आवश्यक है कि काली कमली क्षेत्र कमेटी भी इस कार्य में पूरा पूरा सहयोग देवे, किन्तु दुर्भाग्यवश अभी तक काली कमली क्षेत्र मीटिंग का सहयोग प्राप्त नहीं हो सका अत: वर्त्तमान में यह कार्य स्थगित किया जावे और पं० श्रीदत्त जी इस सम्बन्ध में पत्र व्यवहार करें और काली कमली क्षेत्र से पत्र व्यवहार द्वारा प्रार्थना की जावे।"

उपर्युक्त अवस्था में राष्ट्रपति जी ने विश्वविद्यालय शिलान्यास की कार्यवाही स्थगित कर दी। परन्तु वैद्य समाज और काली कमली क्षेत्र की मान रक्षा के लिये एवं सब विषय को समझने के लिये श्री राष्ट्रपति जी ने १३ ता. को आत्मविज्ञान भवन में पधारने की सूचना भी साथ ही भेजी।

तदुपरान्त १३ अक्तूबर को श्री राष्ट्रपति जी उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री के. एम. मुंशी के साथ पधारे। श्री पं० गोबिन्द बल्लभ जी पन्त भी इस अवसर पर आने वाले थे, परन्तु अस्वस्थता के कारण वे न आ सके। काली कमली क्षेत्र ने उनका स्वागत किया तथा श्री सेठ गुजरमल जी मोदी ने हार पहिनाये और उनका स्वागत किया। बाहर से आये वैद्यों ने जय ध्वनि से आकाश गुंजा दिया। श्री राष्ट्रपति जी, राज्यपाल श्री के. एम. मुंशी एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती लीलावती मुंशी ने मन्दिर में जाकर दर्शन किये और चरणामृत लिया। आत्म विज्ञान भवन सम्बन्धी तथा काली कमली क्षेत्र के कार्य सम्बन्धी सभी बातें पं० श्रीदत्त जी ने बताईं। तदुपरान्त वे सत्संग भवन में पधारे जहां पर उनके भोजन की व्यवस्था थी। वहां पर भोजन के समय श्री स्वामी दयानिधि जी, श्री पं० मुंशीराम शर्मा, भटिण्डा, तथा श्री पं० ब्रह्मदत्त शास्त्री, भूसावल ने संस्कृत पद्यों में श्री राष्ट्रपति जी का अभिनन्दन किया। भोजन के उपरान्त महासम्मेलनाध्यक्ष, वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी ने श्री राष्ट्रपति जी का स्वागत करते हुए आयुर्वेद की विगत और वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला। पाश्चात्य वैज्ञानिकों पर इसके प्रभाव के उदाहरण देते हुए इसकी अनश्वरता का प्रतिपादन किया

(शेष अन्तिम पृष्ठ पर)

संशय निरासः

हुबलीनगरस्थ शुद्धायुर्वेदविद्यालयगतेन श्रीमता वे. ना. जोशी महाशयेन शास्त्रतात्पर्यजिज्ञासुना कतिपय प्रश्नावलिस्तदुत्तरप्रार्थिना प्रहिता अ. भा. आ. महासम्मेलनाध्यक्षस्य पं० श्री शिवशर्ममहोदयस्य सविधे। नि. भा. आ. विद्यापीठभूतपूर्वाध्यक्ष महापण्डितहरिदत्तशास्त्रिसंपादितसमाधाना सा प्रश्नावलिः सर्वेषां पत्रिकापठितॄणां प्रीत्यै इहेदानीं प्रकाश्यते। अत्रायं रुचिरो विशेषोऽवधीयेत— कृतेऽपि भूयसि संशोधने, प्रश्न भाषाया अबद्धबाहुल्यात् क्वचिद्दुरवगाहं प्रष्टुर्हृदयं उत्तरयितृमहापण्डितेन शास्त्रप्रक्रियया कृतेन प्रश्नानुवादेनैव स्पष्टतरं बोध्यं भवति। अति समुचितशैलीशोभना पण्डित श्री हरिदत्त शास्त्रिमहोदयस्य समाधानपद्धतिः भूयः प्रोत्साहयेच्छास्त्र जिज्ञासून् शास्त्रेषु सन्देहनिराकरणाय जिज्ञासा प्रश्नपत्राणि सम्मेलन पत्रिकायां प्रकाशयितुम्।

(सं. वा. बा. न.)

संशय स्थलानि

१-प्रत्यक्ष शरीरज्ञानक्रमः

"प्रत्यक्षशरीरज्ञानक्रमे, छेदनादिभिः प्रात्यक्षिकक्रियाकरणादिकम्, श्रीसुश्रुताचार्यैरुक्तं। तस्मिन् सविशेषेण तर्केण विमर्शिते, यस्मिन् कस्मिन् विकल्पाः दृश्यन्ते। ते तु प्राक्तन (शवच्छेदरूपात्मकं) कर्माभ्यासाद्यभावेनैवस्पष्टः परंतु क्रियाऽभावेऽपि, शास्त्रीयार्थापत्या, निश्चयात्मकनिर्णयो, ग्रंथविषयेऽपिपठिषूणां आवश्यक इति मत्वा भवताम् सन्निधौ निश्चयात्मिकांशब्दार्थप्रतिपत्ति अभिलषामि॥

अधुनास्पष्टतयाविकल्पान् (सन्देहान् ?), प्रत्यक्षशरीरज्ञानविषये आगतान् प्रदर्शयामि। तेषामुपंक्रमस्तु इत्थम्, आदौग्रांथिकसूत्रम्। तस्मात् समस्तगात्रं अविषोपहतं, अदीर्घव्याधिपीडितं, अवर्षशतिकं, निःसृष्टांत्रपुरीषम्" "पुरुषम्" ?

इदानीम्, प्रत्यक्षज्ञानाय, योग्यदेहं (पुरुषं) उक्त्वा, तस्मिन् क्रियमाणाः क्रमादय उच्यंते। ते इत्थम्—

आवहंत्याम्, आपगायाम्, निबद्धम्, पंजरस्थम्, मुंज-वल्कल-कुश-शणादीनाम्, अन्यतमेनावेष्टितांगम्, अप्रकाशेदेशे, कोथयेत्, सम्यक् प्रकुथितं च उद्धृत्य, ततो देहम्, "सप्तरात्रात्" उशीर-बालवेणु-बल्वज-कूर्चानाम्, अन्यतमेन, शनैः शनैः अवघर्षयन्, त्वगादीन्, बाह्याभ्यंतरान्, अंगप्रत्यंगविशेषान्, यथोक्तान्, लक्षयेत् चक्षुषा।

१—प्रथमोविकल्पः, **"निःसृष्टांत्रपुरीषम्"** । महाराष्ट्र, हिन्दीटीकायां च उक्तोऽभिप्रायः । मृतदेहात्-द्वेअंत्रे, पुरीषं च आदौ, बहिः निष्कृष्य, पश्चात् जले स्थापनम्, उक्तम् । सुश्रुतडल्हणसंस्कृतटीकायां, न विवरितम् । (ममाभिप्रायस्तु, अंत्र निष्कर्षेण नैव, अंत्रस्थमलं बहिरागच्छत्येव,—पुनः मलापहरणं कस्मात्, एतत्तु कथने गौरवम् स्यात्, अथवा सिद्धसाधनम् ? शास्त्रीयग्रंथे एतादृशं न वर्तते, अतोध्वन्यते, अंत्रस्थं, पुरीषम् अंत्रपुरीषं, यस्मात् (मृतदेहात् मरणपूर्व-काले, स्वाभाविकतयागतं) गतं एतादृशं देहम् । मलनिष्कर्षणं मृतदेहे, शस्त्रक्रमेणंवसाध्यं, निःसृष्टमिति शब्दे, स्वाभाविकरूपेण गतं मलं, शब्दार्थेन, भवति, न तु अन्येन निष्कर्षितम् ।)

२—द्वितीयो **विकल्पः** । (सन्देहः ?) **"पुरुषम्"** इतिपदेन, शरीरज्ञानविषये, शस्त्रकर्मणि, पुरुषदेहस्य, स्वीकारः, उत, स्त्रीदेहस्याऽपीति । पुरुषदेहे गृहीते, स्त्री-देहस्य विशेषो, न, ज्ञायते एव ।

३—**"सप्तरात्रात्"** इति तृतीयः । देहं जलादुद्धृत्य, अनंतरं "सप्तरात्रात्" इत्युक्तम्, अतः जलोद्धरणानंतरम्, सप्तरात्रेव्यतीते, छेदनादिकं वा, अथवा, जले सप्तरात्र-पर्यंतम्, स्थापयित्वा, उद्धृत्य छेदनादिकं वा इति संदेहः ।

शरीरविषये इत्थम् प्रदर्शिताः संशयाः ।

२—द्रव्यादिविज्ञाने

विभागत्वेन, १ द्रव्य, २ रस, ३ गुण, ४ वीर्य, ५ विपाक, ६ (विभागत्वेन अगृहीतं प्रभावोऽचिंत्यम्) ।

अस्मिन् विषये अवलोकितेडल्हणटीकायामपि, अषेषविमर्शपूर्वक न प्रतिपादिता प्रभा । रसादिविशेषेण, द्रव्यस्यैव विभागो व्यज्यते, एभिरेवद्रव्यविभागः, इदम् शास्त्रीयम् । पुनः "द्रव्यमिति" प्रत्येकविभागोऽनर्हः इति मममतम् ।

उदाः—मानुषे, गुणकर्मंशः—ब्रह्मणादयो विभागाः, स तु विभागः मनुष्यस्यैवास्ति, गुणकर्मादिभिरेव मनुष्यस्य, विभागे सिद्धे पुनः मनुष्यग्रहणेन विभागोऽनुनोपपद्यते अप्रा-संगिकः,- तथा, रसगुणादिभिरेव द्रव्यस्य विभागो, न पुनः द्रव्येणेति ।

गुणविषये—विंशतिगुणेषु वीर्यमुक्तं । तैर्युक्तानि तानिद्रव्याणि वीर्य, गुणाभिधे-यानि, वा वीर्याभिधानानि इति ।

द्रव्यत्वं तु, क्रियागुणवत् समवायिकारणं वर्तते ।। क्रिया, च गुणाश्च ते वर्तंते यस्मिन् इति । तत् क्रियागुणवत् । इति भवति, क्रिया, गुणैभिन्नत्वेन उक्तौ, परंतु । सुश्रुते, गुणानामेव कर्म इति वदति । एवंकृते गुणकर्म विभागो न भवेत् । (सुश्रुते । सूत्रस्थान ४६ अध्याये श्लोकः ५१४) ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि गुणानां कर्म विस्तरम् ।
कर्मभिस्त्वनुमीयंते नानाद्रव्याश्रयागुणाः ॥५१४॥

॥ गवेधुकम् ॥

(अष्टांग हृदये, उत्तरतंत्रे, अध्याये ४० श्लो. ६८)

कर्षणं गवेधुकमित्युक्तम् ॥ स्थौल्यापकर्षणम् ॥

महाराष्ट्रभाषायाम्, कसोडा, इत्युच्यते, संस्कृतभाषायां, उक्तं गवेधुकम् ॥ "युगंधर सदृशं आकृतौ वर्तते" एतस्य बीजेषु न कोऽपि विशेषो वर्तते ॥ केवलं बहिरावरणं वर्तते अंतः मज्जा न वर्तते अतो, "गवेधुकम्" अन्यद्वर्तते इति संदेहः, गवेधुकस्य, तरुः महाराष्ट्र भाषायाम् जोंधष्ठा चाधाट इति सदृशं वर्तते ॥

—श्री वे. ना. जोशी, शुद्धायुर्वेदविद्यालय, हुबली ।

अथ संशयस्थल विवरण प्रक्रमः—

१—मृतकस्य=शवस्य=अंत्रपुरीषयोः निःसारणाभावे तज्जन्यकोथप्रावल्यात् सप्तरात्रं यावत् जले निमज्जनोत्तरं कोथकीटाणुभक्षितशरीरावयवस्य सम्यक् प्रत्यक्षीकरण न सुकरं स्यात् अतएव मृतकस्य आंत्रनिःसारणाभावे पुरीषनिःसारणस्य कठिनत्वात् जले कोथनात् प्रागेव अंत्राणि बहिरुद्धृत्य तत्रत्यं पुरीषमपि परिहृत्य (शस्त्रछेदादिना) एवं च आंत्रगतविशेषताज्ञानं ततएव सम्पाद्य अनन्तरं किंचित् प्रवहमाणजले आसप्तरात्रं निमग्न शवशरीरं विगलितावयवं कूर्चघर्षणादिना विधाय तद्गत त्वक्सिरास्नायुधमनीप्रभृ विशेषानवलोकयेदिति प्रघट्टकाशयः । एतेन जलेसप्तरात्रपर्यन्तं स्थापयित्वा ततोऽनन्त कूर्चाद्यवघर्षणेन शवावयवज्ञानमित्यत्रापि संशयो निरस्तः ।

२—पुरुषशब्दश्च सुश्रुततन्त्रे मानवमात्रवाची 'स एव कर्मपुरुषश्चिकित्साधिकृत इति सुश्रुतोक्तत्वात् । तस्मात् स्त्रीपुरुषयोः बालानां च शरीरावयवज्ञानायोपलक्षणमेतत विशेष विस्तरस्तु सुश्रुतशारीरस्य घाणेकरकृते हिन्दीभाषाविवरणे कणेहत्यावलोकनं इत्यलमधिकाम्रेडितेन ।

अथ द्रव्यादिविज्ञाने समुत्थसंशयनिरासः :—

"द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च
पदार्थाः पञ्च तिष्ठन्ति" इति प्राचीनोक्तेः—

पदार्थ पञ्चकं द्रव्यातिरिक्तमस्ति नवेति पक्षद्वये, नास्तिद्रव्यातिरिक्तं पद पञ्चकमिति पक्षो न श्रेयान्—एवं सति द्रव्यातिरिक्तानां गुणकर्मणामभावात् चलति दे इत्यादि व्यवहार लोपापत्तेः क्रियायाः द्रव्यमन्तराऽनुपलब्धेः, तथाच व्यवहार सत्यत्वे क्रिया द्रव्यस्यापि (द्रव्यमन्तराऽनुपलब्धापि) भिन्नत्वेन गृह्यते तथैव रूपादयो गुणा अ

तेऽपि भिन्नाएव द्रव्यादिति। एतेन "द्रव्यमिति प्रत्येक विभागोऽनर्हः" इति मतम् सुदूरापास्तम्।

गुणविषये सन्देहनिरासः--

यद्यपि वीर्यं समधिक शक्तिशालिगुणविशेषएव तथापि विशेषवक्तव्यत्वात्तस्य पृथङ् निर्देशः।

क्रियागुणवत् समवायिकारणं द्रव्यम् इति सुश्रुतोक्तेः क्रियागुणाश्च द्रव्येवर्तन्ते इति सम्यगेव। एतेन द्रव्यनिष्ठो गुणः कटुकादिः स्वाश्रय द्रव्यस्य मरिचादेः जिह्वा संयोगानन्तरम् तत्र लालास्रावाद्युत्पादने समवायिकारणम् "समवायी तु निश्चेष्टः कारणं गुणः" इति चरकोक्तेः। एतेन "कर्मभिस्त्वनुमीयन्ते नाना द्रव्याश्रया गुणाः" इति सुश्रुतपद्ये = द्रव्यगताः गुणाः कर्मणां नाना प्रकारणाम् असमवायिकारणानि इत्यर्थोपलब्धौ सुश्रुते गुणानामेव कर्मोक्तिरिति संशयो दूरनिरस्तः।

"गवेधुकं" तु आरण्य गोधूम इति प्रसिद्धमेव। "गवेधुकयवाग्वा जुहुयात्" इति श्रुति ब्राह्मणवचनात्।

क्षीणदोषाणां रोगाकर्तृत्वं न वा?

लेखक—कविराज महेन्द्रकुमार शास्त्री, बी. ए., बी. एम. एस., वैद्यवाचस्पति, आयुर्वेदाचार्य ।

"क्षीणाःदोषा रोगान् कुर्वन्ति न वा, कुर्वन्ति चेत्तेषां वर्णनं न कृतमाचार्यैः" इति विषयममुमवलम्ब्य प्रचलति संवादो महासम्मेलनपत्रिकायामायुर्वेदाचार्याणां मध्ये । शास्त्र-चर्चा परिचाल्यते पत्रिकायामिति प्रसाद विषयोऽस्माकम् । यतो भवतिहि शास्त्रचर्चा ज्ञान-वृद्धिकरी ।यथा चोक्तमाचार्येण अग्रचाणां शतेषु चरके "तद्विद्य संभाषा बुद्धिवर्धनानाम् ।" विमानेऽपि "भिषक भिषजां सह संभाषेत । तद्विद्य संभाषा हि ज्ञानाभियोग संहर्षकरी भवति" इति । केनापि कविनाप्युक्तम्:—

काव्यशास्त्र प्रसंगेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलहेन च ॥

शास्त्रत्परिशीलनेन विदुषामायुर्वेदाचार्याणां संसर्गेण च यत् किञ्चित् ज्ञातमस्माभि-स्तदनुसारेण किंचित् विवेच्यते ।

आयुर्वेदे सर्वैरपिराचार्यैः स्वस्थातुरपरिभाषाविषये एकएव मार्गो गृहीतः । दोषाणां वैषम्यमेव व्याधिः । समता च प्रकृतिः । यथाचोक्तमाचार्येण :—

"विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते ।

एतदनुसारेण क्षीणेष्वपि दोषेषु धातुवैषम्यं जायत एव अतः क्षीणतापि दोषाणां धातूनां च रोगकरीति—अस्माकं मतम् । एतस्मिन् विषये चरकसंहितायाः सप्तविंशतितमः अध्यायः परिशीलनीयो विद्वद्भिः । तत्र आचार्यचक्रपाणिदत्तस्य टीकाऽपि ।

तत्र कियन्तःशिरसीयेऽध्याये हुताशवेशस्य "कतिचाप्यनिलादीनां रोगा मान-विकल्पजाः" इति प्रश्नममुमुद्दिश्य भगवताऽत्रेयेण क्षीण वृद्ध दोषेभ्यः जायमानानां रोगाणां दोषसंसर्गाणां च वर्णनं कृतम् । तत्र यथा वृद्धैर्दोषैः रोगप्रादुर्भावस्तथैव क्षीणैरपीति सिद्धान्तः स्पष्टतया प्रतिपादितः । तद्यथा :—

.........तैर्वृद्धैर्व्याधयः पंचविंशतिः ।
यथा वृद्धैस्तथा क्षीणैर्दोषैः स्युः पंचविंशतिः ।
वृद्धिक्षय कृतश्चान्यो विकल्प उपदेक्ष्यते" ॥ इति

सुस्पष्टमेवोक्तमाचार्येणाग्निवेशेण । एतयोः पद्ययोर्व्याख्यानं कुर्वताऽत्रभवताचार्य चक्रपाणिदत्तेनोक्तम् ।

"वृद्ध्या पंचविंशतिमुक्त्वा क्षयेऽपि पंचविंशतिं दर्शयति यथेति--यथा वृद्धैः दो पंचविंशतिः तथा क्षीणैरपि पंचविंशति विकाराः स्युः । इति ।

न केवलमग्निवेशसंहितायामेव क्षीणदोषाणां रोगकर्तृत्वं प्रतिपादितमपितु सुश्रु नापि-तद्यथाः—

त्रय एव पृथग्दोषा द्विशो न वा समाधिकैः ।
त्रयोदशाधिकैकद्विसममध्योल्वणैस्त्रिशः ।
पंचाशदेवं तु सह भवन्ति क्षयमागतैः ।
क्षीणमध्याधिक क्षीणाक्षीणवृद्धैस्तथापरैः ।
द्वादशैवं समाख्यातास्त्रयो दोषा द्विषष्टिधा ।

(सु. उ. अ. ६६)

अतः क्षीणा अपि दोषा रोगोत्पादनहेतवः । आधुनिकैस्तु क्षीणतया जायमा रोगाणां पृथक्तः एव एको वर्गो कृतः । ते च Deficiency Disease (अपतर्पणजाः व्या इति नाम्ना तान् व्यवहरन्ति ।

साम्प्रतं द्वितीयः प्रश्नो, यदि क्षीणदोषाणां रोगकर्तृत्वमस्ति तर्हि कथं न ते प्र पादिताः ? अस्याप्युत्तरं कियन्तः शिरसीये भगवताचरकेण-चक्रपाणिदत्तेन च प्रत तद्यथाः--

दोषाः प्रवृद्धाः स्वं लिंगं दर्शयन्ति यथाबलम् ।
क्षीणा जहति लिंगं स्वं समाः स्वं कर्म कुर्वते ।

अत्र चक्रपाणिः—"लिङ्गं स्वं जहति" इत्यनेन क्षीणानां प्रकृति लिंगक्ष रिक्तं विकारकर्तृत्वं नास्तीति दर्शयति । यतः वृद्धाः उन्मार्गगामिनो दोषा दूष्यं ज्वरादीन् कुर्वन्ति, न क्षीणाः । स्वयमेव दुःस्थितत्वात् ।" सुस्पष्टमेतत् । एतस्यायम यत् यदा दोषाणां क्षयो भवति तदा तेषां प्राकृत लक्षणानां कर्माणामपि च ह्रासो तद् ह्रास जन्यानि चिन्हानि स्वल्पानि सुनिश्चितानि च । तेषामेव परिलक्षणं रोगि पुरुषेषु पश्यन्ति विपश्चितः । नवीन लक्षणोत्पादस्तु नास्त्येव । यतस्तत् कृते वृद्धैर्दोषैर्दूषणमावश्यकम् । तस्यात्राभावात् न ज्वरादीनि लक्षणानि परिलक्ष्यन्ते दोषेषु । किंच एकस्य दोषस्य क्षयेऽन्यस्य सापेक्ष वृद्धिर्भवत्येवातो वृद्धस्य दोषस्य लक्ष मुत्पादस्तत्र संभवति । अतः तानि (वृद्ध दोषं) लक्षणान्येव परिलक्षयन्ते क्षीणेष्वपि अस्माकं मनोवृत्तिरपि हेतुरत्र । सामान्यतश्चिकित्सकानां मनसि व्याधि शब्देन

ग्नान्येव लक्षणानि परिचितानि भवन्ति। अतः सर्वत्र ते किमपि नवमेवान्विषन्ति। क्षीणदोषलक्षणानां तेषां मनसि प्रायः परिचयाभाव एव भवति।

क्षीणदोषाणां लक्षणानि च कियन्ताशिरसीये वन्हिवेशेन पठितानि नात्रोद्धृतानि स्थानाभावात्। तत्रैव दृष्टव्यानि विद्वद्भिः इत्यलम्।

क्षीणादोषा रोगोत्पादनेऽसमर्थाः

लेखकः—वै० शंकरलाल शर्मा, फतेहपुरम्

जेष्ठमासीयपत्रिकायां केनचिद् वैद्यवरेण लिखितं यत् क्षीणाः दोषा रोगोत्पादनेऽसमर्था इति । आषाढमासीयपत्रिकायाञ्चापरेण वैद्यमहानुभावेन लिखितं यत् क्षीणा दोषा अपि रोगोत्पादने समर्था इति । विषयेऽस्मिन् विभिन्नमतान्यवलोक्य मन्मानसेऽपि समुत्पन्नोऽयमभिलाषो यदहमपि अस्मिन् विषये किञ्चिल्लिखामि । तत्र क्षीणाः दोषा रोगोत्पादनेऽसमर्था इति मामकीना मतिः । प्रमाणत्वेन चात्र चरकीयसूत्रमुद्धरामि "विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते" इति । अत्र धातुवैषम्यं विकार इत्युक्तम् , वैषम्यञ्च वृद्धिक्षयभेदाद् द्विविधम् भवति । तत्र वृद्धिस्वरूपं वैषम्यमेव रोगोत्पादने समर्थम् न च क्षीणस्वरूपम् । तथा च सुश्रुते व्रणप्रश्नाध्याये पूर्वं वातादिदोषाणां संचयमुक्त्वा पुनः क्रमेण प्रकोपप्रसरस्थानसंश्रयाण्यभिधाय अनन्तरं व्याधिप्रादुर्भाव इत्युक्तम् । अतो ज्ञायते संचयादिक्रमेण यदा दोषा स्वमानादधिकाभवन्ति तदैव ते रोगोत्पादने समर्थाःभवन्ति न च क्षीणा अपि। तथाहि चरके—

दोषाः प्रवृद्धाः स्वं लिङ्गं दर्शयन्ति यथाबलम् ।
क्षीणा जहति लिङ्गं स्वं समाः स्वं कर्म कुर्वते ।। इति ।

यदि हि क्षीणाः दोषा अपि रोगोत्पादने समर्था स्युस्तदा "क्षीणाः जहति लिङ्गं स्वम्" इत्यचार्यस्योक्ति व्याहन्येत ।

यद्यपि दोषभेदीयाध्याये दोषाणां द्विषष्ठिभेदेषु यथावृद्धदोषाणां पञ्चविंशतिर्भेदाः प्रतिपादितास्तथा क्षीणानामपि प्रतिपादिता एव तथापि न ते रोगोत्पादने समर्थाः सन्ति। यथा हि बलवानेव पुरुषः स्वशक्त्या विविधानि कार्याणि कर्तुं शक्नोति न च क्षीणबलोऽपि तथैव स्वमानाद् अधिकवृद्धा एव दोषा विविधान् व्याधीन् समुत्पादयन्ति । तथाच वाग्भटे—

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिताः मलाः ।

अत्राऽपि कुपिताः मलाः सर्वेषां रोगाणां निदानमित्युक्तम् न च क्षीणा अपि। कोपश्च दोषाणां संचयादृते नैव भवितुं शक्यते । तथाचाश्मरीसंप्राप्तौ चरके—

विशोषयेद्वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा
यदा तदाऽश्मर्युपजायते.....................

इत्यादौ वृद्धो वात एव शुक्रादीन् शोषयित्वा अश्मरीमुत्पादयितुं समर्थो न च कथमपि

क्षीणः स्वयमेव क्षीणशक्तिकत्वात् ।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः इति स्वस्थलक्षणे समवातपित्तकफ एव पुरुष स्वस्थो भवति इत्युक्तम् । एषु दोषेषु यदि कस्यचित्पुरुषस्य एकः द्वौ वा दोषौ क्षीणौ स्तस्तदा न तस्य स्वास्थ्यमिति उक्तदिशा क्षीणदोषेण दोषाभ्यां वाऽस्वास्थ्यमेव । परमत्र एतद्विचारणीयं यद् दोष दोषौ वा केन कारणेक्षीणौ स्तस्तथाहि केनचित्पुरुषेण पित्तवर्धक-द्रव्याणि बाहुल्येन सेवितानि तैस्तस्य वृद्धं पित्तं श्लेष्माणं वायुञ्च क्षययित्वा दाहादिकं करोति न च क्षीणौ वातकफौ, तौ च स्वलक्षणान्येव जहतः । अत्र च क्षीणाः वर्धयितव्याः वृद्धाः ह्रासयितव्याः समा पालयितव्याः इति सूत्रोपदेशेन वृद्धः वृद्धौ वा दोषौ विपरीतद्रव्य-सेवनेन क्षयणीयौ समानद्रव्योपयोगेन च क्षीणो दोषो वर्धनीय एवं दोषाणां साम्यं भवति । अत एव ऋतुचर्यायामुक्तम्—

नित्यं सर्वरसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतामृतौ इति ।

एवं हि क्षीणो दोषो न व्याधि हेतु अपि तु "क्षीणाः जहति लिङ्गं स्वमिति" प्रमा-णेन स्वलक्षणान्येव जहति । यश्च रोगो भवति स वृद्ध दोषजनित एव । तथाहि वाग्भट—

लिङ्गं क्षीणेऽनिलेऽङ्गस्य सादोऽल्पं भाषितेहितम्
संज्ञामोहस्तथाश्लेष्मवृद्ध्युक्तामयसंभव इति

चरकाचार्येण न कुत्राऽपि दोषक्षय रोगहेतुत्वेनाङ्गीकृत इति पूर्वं प्रतिपादितमेव । सन्निपातज्वरे च त्रयोदशविधे द्व्युल्बणैकोल्बणै दोषै षड्भेदा एतेषु उल्वणदोषभेदेन लक्षणानि भवन्त्येव ये हीनमध्याधिकदोषै षड्भेदा भवन्ति तत्र मध्याधिकदोषैरेव लक्षणानि भवन्ति न हीनदोषस्य हीनदोषयोर्वा किमपि लक्षणं भवति तथा च

हीनवातस्य तु कफः पित्तेन सहितश्चरन्

करोत्यरोचकापाकौ सदनं गौरवं तथा इत्यादौ हीनवाते मध्यवृद्धाधिकवृद्धयो पित्त-कफयोरेव लक्षणानि भवन्ति नतु क्षीण वातस्याऽपि । एवं शेषेष्वपि पञ्चभेदेषु दोषानुसारं लक्षणानि भवन्ति चरके तानि सविस्तरं लिखितानि विस्तरभिया अत्र न लिखितानि एवञ्च क्षीणा दोषा सन्निपातज्वरमुत्पादयितुं समर्था इति प्रतिपादिन उक्तिःपरास्ता ।

प्रतिपादिभिः क्षयजशिरोरोगे शिरोगतवायोः श्लेष्मणश्च क्षयः हेतुः प्रतिपादितः सोऽपि असंगत एव—तथाहि—सुश्रुते "वसावलासक्षतसंभवानां शिरोगतानामिह संक्षयेण क्षयप्रवृत्तः शिरसोऽभितापः कष्टोभवेत् उग्ररुजोऽतिमात्रम्" इति लक्षणे शिरोगतवसादीनां क्षयेण क्षयजशिरोरोगो भवति । अत्रेदं विचारणीयं यद् वसादीनां क्षये किं कारणम् । "सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्, ह्रासहेतुर्विशेषश्च" इति नियमेन वसादीनां विपरीतगुणानि रूक्षोष्णतीक्ष्णानि द्रव्याणि सन्ति तैश्च वायोः पित्तस्य च वृद्धिर्भवति अत एव क्षयजशिरोरोगोऽपि वातपित्त एव कारणे भवतः न च केवलं वसादीनां क्षय एव कारणं

भवितुं शक्यते। वातपित्तलक्षणान्येव क्षयजशिरोरोगे भवन्ति तथा च केनचिदाचार्येणोक्तम्—

स्त्रीप्रसंगादभिघातात् अथवा देहकर्मणा
क्षिप्रं संजायते कृच्छ्रः शिरोरोगः क्षयात्मकः ॥
वातपित्तात्मकं लिंगं व्यामिश्रं तत्र लक्षयेत्

वाग्भटोक्तिश्च "रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता" अत्र कीदृशं दोषवैषम्यं रोगोत्पादकमिति तु पूर्वं प्रतिपादितमेव। अतः सुनिश्चितमेतद् यत् क्षीणा दोषा रोगोत्पादने नितान्तमसमर्था इति विस्तरेणालम्।

———

फुफ्फुस का कैन्सर

ले०–प्राणाचार्य राजवैद्य कविराज प्रभाकर चटर्जी आयुर्वेद बृहस्पति, एम.ए. डी.एस.सी.

फुफ्फुस का कैन्सर सब प्रकार के कैन्सर की अपेक्षा भयावह है। लेकिन आनन्द का विषय यह है कि रोग कदाचिद् हुआ रहता है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष ही इस रोग से अधिक आक्रान्त होते हैं। एक सौ फुफ्फुस के कैन्सर रोगियों में अस्सी भाग पुरुष रोगी ही देखने में आते हैं। स्त्रियों में यह रोग बहुत कम ही होता है।

आगे अनेक बार कहा गया है कि कैन्सर रोग सहज में पकड़ा नहीं जा सकता। जब यह पहचाना जाता है तब यह चिकित्सा की सीमा से बाहर चला जाता है। फुफ्फुस के कैन्सर के सम्बन्ध में यह कथन विशेष रूप से लागू होता है।

फुफ्फुस का कैन्सर रोग अति क्षुद्र अर्बुद के आकार में आविर्भूत होकर धीरे धीरे बढ़ने लगता है एवं रोगी उसका कुछ भी आभास नहीं पाता। क्रमशः अर्बुद की आकृति बढ़ने पर, जब रोगी छाती के भीतर भारीपन अनुभव करने लगता है, श्वास-प्रश्वास में कष्टबोध एवं छाती के भीतर पीड़ा जान पड़ती है तब रोग के निर्णय की चेष्टा होती है। किन्तु इस अवस्था में भी असल रोग की पहचान नहीं होती। चिकित्सक इसे ठण्ड लगने का कारण समझकर साधारण सर्दी खांसी एवं ठण्ड लगने की दवाई दे देते हैं। इस प्रकार रोग की चिकित्सा का समय नष्ट होता जाता है एवं रोग चिकित्सक और रोगी की अज्ञानता में अपनी चाल के अनुसार बढ़ता रहता है।

फुफ्फुस में साधारणतः दो प्रकार के अर्बुदों की उत्पत्ति होती है। एक बिनायिन अर्थात् साधारण मांसार्बुद और दूसरा मेलिग्नेन्ट अर्थात् त्रिदोषयुक्त मांसार्बुद। साधारण मांसार्बुद प्रायः फुफ्फुस में नहीं होता। फुफ्फुस में अधिकतर त्रिदोषयुक्त अर्बुद ही होता है। पूर्वाभिज्ञता न रहने पर एवं रोग की अतिशय वृद्धि की अवस्था प्रत्यक्ष न करने पर फुफ्फुस के भीतर स्थित अर्बुद को प्रथम बार देखने मात्र से ही फुफ्फुस के भीतर स्थित मेलिग्नेन्ट ट्यूमर (त्रिदोषयुक्त अर्बुद) को पहचानने की शक्ति अत्यन्त विचक्षण चिकित्सक को भी नहीं रहती। छाती के भीतर ब्रोंकाइटिस, ब्रोंकियाक्टेसिस, प्लूरिसि, ट्यूबरकुलोसिस, एजमा, गैन्ग्रीन, साधारण क्षत, पालमोनारी फाइब्रोसिस, सिफिलीटिक गामा, लोबार-निमोनिया, ब्रोंको-निमोनिया, ट्यूबरकुलर ब्रोंको-निमोनिया, विद्रधि आदि अनेक प्रकार के रोग हुआ करते हैं। इतने प्रकार के रोगों के विषय की तुलनात्मक आलोचना

करके चिकित्सक को यह निर्धारित करना होगा कि यह क्या फुफ्फुस का गैन्ग्रीन या फुफ्फुस का यक्ष्मा या फुफ्फुस का कैन्सर है ?

फुफ्फुस के गैन्ग्रीन और फुफ्फुस के कैन्सर में भेद ज्ञानः

फुफ्फुस का गैन्ग्रीनः—इसमें सब समय के लिये रोगी को ज्वर रहता है, तीव्र खांसी होती है एवं अत्यधिक कफ का उद्गम होता है और कभी कभी रक्त मिला हुआ कफ दिखाई देता है। किन्तु रोगी की नाड़ी में क्षयज चांचल्य नहीं रहता है या कैन्सरजनित शरीर की निदारुण दुर्बलता या शुष्कता (Cachexia) नहीं रहती है। फुफ्फुस के कैन्सर की प्रथम अवस्था में विशेष कोई यन्त्रणा नहीं रहती है, बीच बीच में कुछ कफ उठता है एवं फुफ्फुस के भीतर सामान्य भार का बोध होता है। क्रमशः रोग की वृद्धि के साथ साथ भारबोध की अनुभूति भी बढ़ती है, लसदार कफ निकलता है एवं अर्बुद की वृद्धि अधिक मात्रा में होने पर फुफ्फुस का कोई शब्द नहीं मिलता है और फुफ्फुस जैसे निष्क्रिय हो गया है ऐसा मालूम होता है। प्रथमावस्था में ज्वर नहीं रहता है किन्तु बढ़ने वाली अवस्था में ज्वर होने लगता है। क्रम से रोगी दुर्बल होता जाता है एवं बाद में द्रुत दुर्बलता (Cachexia) उपस्थित होती है।

फुफ्फुस के यक्ष्मा और फुफ्फुस के कैन्सर में भेदज्ञानः—

फुफ्फुस के यक्ष्मा में ज्वर, खांसी, रक्तपित्त, शिर का भारी रहना, पार्श्ववेदना आदि उपसर्ग दिखाई देते हैं। रोगी को प्रत्येक दिन तीसरे पहर ज्वर आता है एवं सवेरे ज्वर नहीं रहता है। क्रमशः अविच्छेदीय ज्वर एवं पेट में गड़बड़ी आरम्भ होती है। अन्तिम अवस्था में शोथ उत्पन्न होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

किन्तु फुफ्फुस के कैन्सर में पहले पहल जो अर्बुद होता है उसके कारण छाती में केवल कुछ भार ही मालूम पड़ता है, ज्वरादि उपसर्ग आगे नहीं रहते हैं, रोग की वृद्धि साथ साथ आखिर में ज्वर उपसर्ग दिखलाई देता है।

प्लूरिसि और फुफ्फुस के कैन्सर में भेदज्ञानः—

शुष्क और आर्द्र भेद से दो प्रकार की प्लूरिसि होती है। शुष्क प्लूरिसि में छाती पीठ तथा पांजरा के किसी भाग में चुभाने की तरह वेदना होती है, खाँसी और मृदु मृदु ज्वर होता है। आर्द्र प्लूरिसि में फुफ्फुस के भीतर जल एकत्रित हो जाता है एवं इसके कारण छाती भारी लगती है और सदा ज्वर रहता है। लेकिन फुफ्फुस के कैन्सर में जल नहीं जमता एवं प्रथम अवस्था में हर समय ज्वर नहीं रहता।

एक्यूट क्रणिक सापुरेटिभ ब्रङ्काइटस और फुफ्फुस के कैन्सर में भेद :—

एक्यूट सापुरेटिभ ब्रंकाइटिस में अचानक अधिक ठण्ड लगने के कारण श्लेष्मा बढ़ कर छाती में जम जाता है और निमोनिया की तरह छाती में खड़खड़ शब्द होता है।

छाती में दर्द और भारबोध, खाँसी ज्वर एवं श्वासकष्ट आदि उपसर्ग उपस्थित होते हैं और फुफ्फुस में जलन होती है। क्षणिक ब्रंकाइटिस में ये सब उपसर्ग अपेक्षाकृत मृदु-भाव से वर्तमान रहते हैं।

ब्रंकाइटिस में पीब के सदृश श्लेष्मा निकलता है, फुफ्फुस में चूड़-चूड़ घड़-घड़ शब्द होता है किन्तु फुफ्फुस के कैन्सर में पीब के समान श्लेष्मा निर्गमम और फेफड़े में चूड़-चूड़ घड़-घड़ शब्द नहीं होता एवं किसी भी प्रकार का शब्द विशेष रूप से नहीं पाया जाता और रोगी शीघ्र ही दुर्बल हो जाता है। फुफ्फुस के कैन्सर का प्रधान लक्षण यह है कि रोगी की बगल, गर्दन एवं बाहु में दर्द होता है। किसी किसी स्थल में वाहु अवश हो जाता हैं एवं बाहुसंधि (बगल) पक्षाघात से आक्रांत हुआ है ऐसा प्रतीत होता है।

सिफिलीटिक गामा, कोल्ड एबसेस, साधारण फोड़ा और फुफ्फुस के कैन्सर में भेद:—

फुफ्फुस में साधारण फोड़ा होने पर आक्रान्त भाग का ऊपरी वक्ष:स्थल फूल उठता है, लाल हो जाता है एवं पक जाता है। कोल्ड एबसेस एवं सिफिलीटिक गामा में वक्ष:स्थल के ऊपरी भाग में फोड़े की तरह उत्पत्ति होती है। किन्तु वे हमेशा कड़े रहते हैं, पकते भी नहीं, फटते भी नहीं हैं एवं यंत्रणा और ज्वर आदि कुछ भी नहीं होते हैं। एक भाव से बहुत दिन तक रहते हैं। ये सब वक्ष:स्थल के ऊपरी भाग में फूल उठते हैं। साधारण फोड़ा अस्त्रोपचार से अच्छा हो जाता है लेकिन कोल्ड एबसेस और सिफिलीटिक गामा में अस्त्रोपचार से कोई विशेष फायदा नहीं होता। बल्कि उनके कच्चे रहने के कारण अस्त्रोपचार का सुअवसर भी साधारणत: नहीं मिलता है।

किन्तु फुफ्फुस के कैन्सर में जो अर्बुद होता है उसका आभास बाहर से नहीं पाया जाता। जब यह बहुत बढ़ जाता है तब वक्ष:स्थल के ऊपर स्थित शिराएं तनी हुई सी दिखलाई देती हैं।

निमोनिया एवं फुफ्फुस के कैन्सर में भेदज्ञान:—

निमोनिया रोग में तीव्र ज्वर, खांसी, रक्तोत्कास, तीव्र वेदना, प्रलाप, मोह आदि वर्तमान रहते हैं। किन्तु फुफ्फुस के कैन्सर में यह सब तो रहते ही हैं और छाती में भारबोध शिराओं में खिंचाव, श्वासकष्ट और बीच बीच में वेदना ये सब लक्षण भी रहते हैं।

फुफ्फुस के कैन्सर में निमोनिया की तरह तीव्र ज्वर और साथ ही प्रलाप नहीं रहता है, थोड़ा थोड़ा ज्वर होता है।

फुफ्फुस कैन्सर में प्रथमावस्था का स्वरूप:—

फुफ्फुस के किसी भी अंश को आश्रय बनाकर छोटे छोटे अर्बुदों की उत्पत्ति होती है। क्रमश: ये बढ़ने लगते हैं। यह वृद्धि रोगी की पूरी अज्ञानता में ही होती है। यह चुपके चुपके इस प्रकार बढ़ता है कि इस रोग के विशेषज्ञ चिकित्सक भी स्वयं अपने शरीर

पर इसके आक्रमण का आभास नहीं कर पाते।

प्रथम अवस्था में खांसी और सर्दी लगने का कोई लक्षण न रहने पर भी कफ-निर्गमन, नींद की अवस्था में खांसी होना ये सब लक्षण दिखाई देते हैं।

द्वितीय अवस्था

फुफ्फुस के भीतरी अर्बुदों की वृद्धि के कारण थोड़ा तना हुआ भाव, भारबोध, श्वासकष्ट एवं बीच बीच में यंत्रणा इस अवस्था में अनुभूत होते हैं।

तृतीय अवस्था

दिनरात में किसी एक समय स्थायी भाव से बहुत समय तक दर्द होता है एवं मृदु मृदु ज्वर भाव होता है। रोगी का शरीर दुर्बल और भीतर की अर्बुदों की वृद्धि होती रहती है, रोगी की रक्त में रक्तकनिका (Red corpuscles) कम हो जाती है और सारे शरीर में विशेषरूप से मुंह, आँख और नख में पाण्डुता देखी जाती है। क्रमशः शरीर सूखता जाता है और अरुचि होती है, कुछ भी खा नहीं सकता है या कुछ खाने पर कै हो जाती है। वेदना की तीव्रता बढ़ने लगती है और यक्ष्मा रोगी की तरह तीसरे पहर ज्वर आकर सवेरे ज्वर छोड़ देता है और कुछ दिन बाद यह ज्वर अविच्छेदीय भाव से रहता है। कभी कभी कफ के साथ रक्त दिखलाई देता है, जिसे देखकर साधारण लोग यक्ष्मा होने का सन्देह करते हैं। जिस ओर के फुंफ्फुस पर आक्रमण होता है, वह फुफ्फुस निष्क्रिय हो जाता है। जिस तरफ के फुफ्फुस में कैन्सर होता है, उसी तरफ का हाथ पक्षाघातग्रस्त होता है। उभय फुफ्फुस आक्रान्त होने पर दोनों हाथ ही पक्षाघातग्रस्त होते हैं।

चतुर्थ अवस्था

इस अवस्था में रोगी शीघ्रतापूर्वक शीर्ण एवं दुर्बल (Cachexia) होता जाता है, रोगी को सब समय ज्वर लगा रहता है, बीच बीच में रक्तवमन होता है, खाने पर ही वमन होता है एवं कोष्ठकाठिन्य रोग दिखलाई देता है।

चिकित्सा

फुफ्फुस का कैन्सर यदि प्रथम अवस्था में पकड़ा जाय अर्थात् अर्बुद की दोषविहीन अवस्था (Benign) में पहचाना जाय तो अस्त्रोपचार ही सर्वोत्तम चिकित्सा है।

अर्बुद की प्रथम अवस्था में पकड़े जाने पर यदि अस्त्रोपचार करना सम्भव न हो तब आक्रान्त स्थान के ऊपरी भाग में "अर्बुदारि लेप" प्रयोग करना चाहिए। सेवन करने के लिये—

(१) बंशपत्र हरितालभस्म $\frac{१}{८}$ रत्ती की मात्रा में,—गरम गव्य घृत १ तोला के साथ।

(२) ताम्रभस्म १ रत्ती की मात्रा में, अदरक के रस और मधु के साथ।

(३) रौद्ररस २ रत्ती की मात्रा में,—श्वेत पुनर्नवा रस और मधु के साथ प्रयोग करना चाहिए।

वेदना निवारण के लिये भावप्रकाशोक्त 'वातारिरस', खांसी के लिये 'बसन्ततिलक-रस', वमन के लियें 'प्रवालभस्म', अर्बुद के आकार को कम करने के लिये 'नित्यानन्दरस', निर्दिष्ट समय में यंत्रणा को दूर करने के लिये 'सोमनाथताम्र', मानसिक चाञ्चल्य और हृत्पिण्ड की गति ठीक करने के लिये 'वृ: वातचिन्तामणि' प्रयोग करना चाहिए।

घोर यंत्रणा दूर करने के लिये 'सुवर्णसमीरपन्नगरस' अथवा 'मल्लसिन्दूर' अथवा 'रसतालक' अदरक के रस और मधु के साथ प्रयोग करना चाहिए।

कोष्ठबद्धता दूर करने के लिये 'अमृतभल्लातक', 'महाभल्लातक गुड़' सेवन करना चाहिए।

इस रोग में पंचतिक्तघृत गुग्गुल प्रथम अवस्था से सेवन कराने पर विशेष लाभ पाया जाता है।

खनिज आमलासा गन्धकघटित रसपर्पटी नमक जल सेवन बन्द कर पर्पटी-सेवन के विधि के अनुसार सेवन करने से अर्बुद की वृद्धि बन्द हो जाती है। अर्बुद की वृद्धि बन्द होने पर एवं वृद्धि सीमा के भीतर आ जाने पर देखा जाता है कि रोगी के बगल में, यकृत में एवं अन्ननाली मे अर्बुद की उत्पत्ति होती है। अर्बुद का यह पुनराविर्भाव (Secondary growth) अत्यन्त भयावह है। इस पुनरुद्भूत अर्बुद की चिकित्सा पुनराय नये तरीके से करनी होगी और रोगी के बल मांस जिससे क्षय न हो जांय उस ओर ध्यान रखना होगा।

रोग के इस प्रकार पुनराक्रमण को रोकने के लिये घी, दूध और मांसरस पथ्य के साथ ताम्रपर्पटी, लौहपर्पटी, विजयपर्पटी, बज्रपर्पटी आदि प्रयोग करना चाहिए। इससे रोग का पुनराक्रमण नहीं होता है एवं असल रोग भी दूर हो जाता है।

दोनों हाथों के पक्षाघात को दूर करने के लिये भावप्रकाशोक्त महाबला तैल, महामाष तैल, प्रसारणी तैल, महाराज प्रसारणी तैल एवं कुब्जप्रसारणी तैल मालिश करना आवश्यक है। और खाने के लिये वृ: वात चिन्तामणि, योगेन्द्ररस एवं शीतारिरस प्रयोग करना चाहिए।

आगे कहा गया है कि अर्बुद दोषविहीन अवस्था में रहते समय अस्त्रोपचार करने से निर्मूल हो जाते हैं। अर्बुद की शाखाप्रशाखाएँ मांसपेशी को भेदकर चारों ओर फैल जाने के बाद अस्त्रोपचार करने से कोई लाभ तो होता ही नहीं है बल्कि उससे हानि ही

होती हैं। जैसे फूल के वृक्ष को कतर देने के बाद उसकी शाखा-प्रशाखाएँ और प्रबलभाव से चारों ओर फैल जाती हैं। ऐसे क्षेत्र में अस्त्रोपचार को छोड़कर क्षार प्रयोग करना ही युक्तिसंगत है।

अर्बुद बाहर की ओर न निकलने पर क्षारप्रयोग सम्भव नहीं होता है। क्षारप्रयोग करने पर पहले उत्पन्न हुआ अर्बुद सड़ जाता है और साथ ही उसकी शाखाप्रशाखाएं नष्ट हो जाती हैं। प्रथमुत्पन्न अर्बुद के साथ उसकी शाखाप्रशाखाएँ भी निर्मूल होकर निकल जाती हैं। इससे शरीराभ्यन्तरस्थ मांसपेशी के साथ इनका सम्वन्ध विच्छिन्न हो जाता है।

जिस प्रकार अस्त्रप्रयोग और क्षारप्रयोग से शरीराभ्यन्तरस्थ अर्बुद लुप्त हो जाते हैं उसी प्रकार रेडियम और डीप-एक्सरे के प्रयोग से भी वह नष्ट हो जाते हैं। किन्तु क्षार और अस्त्रप्रयोग से जिस तरह अपौनर्भव रूप से नष्ट होते हैं, रेडियम और डीप-एक्सरे के प्रयोग से वैसा नहीं होता है। हम किसी किसी क्षेत्र में देखते हैं कि रेडियम और डीप-एक्सरे द्वारा अर्बुद का सामयिक लोप होने पर भी कुछ दिन बाद ये फिर उत्पन्न हो जाते हैं एवं अच्छी मांसपेशीयाँ भी अर्बुद द्वारा आक्रान्त होती हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि रेडियम और डीप-एक्सरे द्वारा एक ओर जहां अर्बुद विनष्ट होते हैं, दूसरी ओर वहाँ अर्बुद उत्पन्न भी होते हैं। कुनैन की जिस प्रकार ज्वर मिटाने और उत्पन्न करने की भी शक्ति है, इनकी भी उसी प्रकार शक्ति है। अतएव हम निश्चिन्त होकर सब क्षेत्रों में रेडियम और डीप-एक्सरे का प्रयोग नहीं कर सकते। हमने रेडियम प्रयोग का एक और कुपरिमाण देखा है कि प्रयोग के बाद ही रोगी के रक्त की श्वेतकनिका (White Corpuscles) अति द्रुतगति से घटने लगती है। और रोगी के शरीर में अतिद्रुत रक्तहीनता या पाण्डुता दीख पड़ती है। इसके परिणामस्वरूप कुछ दिन बाद रोगी के शरीर में सूजन दिखलाई पड़ती है। रक्तहीनता इतनी जल्दी बढ़ जाती है कि रोगी दूसरी कोई दवाई वर्दाश्त नहीं कर सक़ता है और कुछ भी खाने से इसे कै हो जाती है। अवश्य इसका मूल कारण धातुक्षय है। धातुक्षय से अग्निमान्द्य और अग्निमान्द्य से वायु की वृद्धि एवं पित्त का ह्रास होता है। इस ह्रास हुए पित्त को बढ़ाने का एक मात्र उपाय रोगी के रक्त को वर्द्धित करना है। किन्तु इस अवस्था में दवाई के द्वारा रक्त बढ़ाना सम्भव नहीं होता है। अतएव उसके लिये रोगी के शरीर में दूसरे स्वस्थ व्यक्ति का रक्त प्रवेश कराना होगा। महात्मा सुश्रुत का कथन है :—

"देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेनैव धार्य्यते।
तस्माद्यत्नेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थितिः।"

इस तरह रक्त प्रवेश कराकर रोगी का बल संचय होने पर नतिशीतल, लघु ईषदम्ल औषध एवं अन्नपानादि प्रयोग करके शरीरस्थ वायु की वृद्धि घटाकर यथाविधि

चिकित्सा करना कर्त्तव्य है। अर्बुदारि लेप की प्रस्तुत विधि :—कूँच, सोहागा, सैंजनमूल, हल्दी, सोन्दाल, भेला, आकन्द, मनसा सीज, चितामूल, करौंदा, सैन्धव, वच (कुलाञ्जन), कूठ (कुष्ठं), हर्रा, लाङ्गली विष, श्वेत पुनर्नवा, शरपुंखा, शिरीष, सैन्धव लवण, त्रिकटु (शोंठ, पीपल, मरिच), करवीर और मीठाविष, इन सब द्रव्यों को गोमूत्र के साथ पीस-कर प्रलेप करने से रोग शमन होता है।

———

द्रव्यगुणादि विवेचन

लेखक—आयुर्वेदाचार्य कविराज नानकचन्द्र, आ.धु.,आ.रत्न. वैद्यशास्त्री, देहली।

प्राक्कथन—यह विचार सर्वमान्य है कि आयुर्वेद का ज्ञान सर्वदा संशय रहित होता है, यतः यह वेद प्रतिपादित होने से शाश्वत तथा अनादि है, अतः इसका उपदेश आगम तथा आर्षेय स्वीकार किया है। इसमें जो वर्णन किया गया है वह सब जगह (पद्धतियों में) प्राप्त हो सकता है।

आधुनिक पाश्चात्यवेत्ताओं का विज्ञान सर्वदा परिवर्तनशील तथा संशयात्मक होता है। अतः यह नूतन विज्ञान अपूर्ण तथा पुरुष कल्पित होने से अग्राह्य है।

आयुर्वेदीय पद्धति में द्रव्यादियों का वर्णन करते हुए सुश्रुत में "द्रव्य रस गुण वीर्य विपाक आदि के विज्ञानार्थ "द्रव्यविज्ञानीयाध्याय" का वर्णन किया है जिसमें ओषधियों के वैद्यकीय उपयोगों की उपपत्ति (Rationale) का ज्ञान होने के लिये 'द्रव्यादि" के आवश्यक विचारों का विशेष वर्णन किया गया है। इस विभाग को पाश्चात्य परिभाषा में (Pharmacology) कहते हैं।

द्रव्यं—'पञ्चभूतात्मकन्तत्तु'—यह द्रव्य पञ्चभूतात्मक होते हैं। अर्थात्–औषधि की सोत्कर्षापकर्ष पञ्चभूतात्मक रचना है–"उक्तञ्च"–प्रमाणतः प्रभावतश्चावयवानामुत्कर्षापकर्ष सद्भावः"। इति।

आधुनिक परिभाषा के अनुसार ओषधियों के संगठन को Composition of drugs कह सकते हैं।

द्रव्यलक्षणं यथा—"क्रिया गुणवच्च समवायि कारणम्",–क्रियाश्च गुणाश्चसन्त्यस्मिन्निति क्रियागुणवत्। यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणमिति, यथा—तन्तवः पटस्य, घटस्य मृत्कपालादिः।

द्रव्यगुणानि यथा—"सर्वं द्रव्यं पाञ्चभौतिकमस्मिन्नर्थे"। वह द्रव्य चेतन तथा अचेतन होते हैं। उस द्रव्य के गुण "शब्दादयो गुर्वादयश्च द्रवान्ता" इति। कर्म "वमनादि" पांच प्रकार के होते हैं।

भौतिकद्रव्याणि यथा—गुरुखरकठिनमन्दस्थिरविशदसान्द्रस्थूलगन्धगुणबहुलानि पार्थिवानिः उनके कर्म—"उपचयसंघातगौरवस्थैर्यकराणि"।

द्रवस्निग्धशीतमन्दमृदुपिच्छिलरसगुणबहुलान्याप्यानि, तान्युपक्लेदस्नेहबन्धविष्मन्दमार्दवप्रह्लादकराणि ।

उष्णतीक्ष्णसूक्ष्मलघुरूक्षविशदरूपगुणबहुलान्याग्नेयानि, उनके कर्म--तानिदाहपाकप्रभाप्रकाशवर्णकराणि ।

लघुशीतरूक्षखरविशदसूक्ष्मस्पर्शगुणबहुलानि वायव्यानि । तानि रौक्ष्यग्लानिविचारवैशद्यलाघवकराणि ।

मृदुलघुसूक्ष्मश्लक्ष्णशब्दगुणबहुलान्याकाशात्मकानि । तानि मार्दवसौषिर्यलाघवकराणि ।

इस उक्त प्रकरण में द्रव्य को चेतन तथा अचेतन कहा है, और उसके गुणों को "शब्दादयो गुर्वादयश्च द्रवान्ताः" । बीस गुणों का वर्णन पार्थिवादि द्रव्यों में दर्शाया है । सर्व कार्य द्रव्यों के पाञ्चभौतिक होने पर भी पृथ्वि से उत्पत्ति होने से पार्थिव ही जानने चाहियें । ऐसा कहने से संसार में कोई पदार्थ भी हो ओषधि से भिन्न नहीं होता । यथा चोक्तम्--"नानौषधिभूतंजगति किञ्चिद् द्रव्यमुपलभ्यते, तां तां युक्तिमर्थ च तं तमभिप्रेत्य । यहां "युक्तिमित्युपायम्" अर्थमिति प्रयोजनम् , अभिप्रेत्येत्यधिकृत्य । इससे किसी उपाय से किसी प्रयोजन में, कोई द्रव्य ओषधरूप होता है सब जगह नहीं, यतः विरोधी द्रव्यों का सर्वदा अपथ्य होने से, "नानौषधं द्रव्यम्"--यह वाक्य विरोधी होगा; ऐसा नहीं विरोधी तो "संयोगसंस्कारदेशकालाद्यपेक्षाणि भवन्ति" । परञ्च विरोधी संयोगादिओं के अभाव में कहीं पथ्य होते हैं । जो सदा स्वभाव से ही "विषमन्दकादि" अपथ्य होते हैं वह भी उपाय से प्रयोग किये हुए कहीं पथ्य हो जाते हैं यथाचोक्तम्--उदरे विषस्य तिलं दद्यादिति चरकः ।

रस :--"रस्यते आस्वाद्यत इति रसः (चरकः) । औषधियों का रसनाग्राह्य अर्थ है, इस अर्थ के अनुसार सर्व ओषधि वर्ग मधुरादि छः रसों में विभक्त किया है । यद्यपि "जिह्वाग्राह्य", ऐसी रस की व्याख्या की गई है तथापि ओषधियों के रसों का ग्रहण जिह्वा से भिन्न अन्य अङ्गों से भी होता है; भेद इतना ही है कि जिह्वा पर रस का ज्ञान अन्य अङ्गों से अधिक होता है यथा कटु वा कषाय रस का ज्ञान जैसे जिह्वा पर होता है वैसे ही कण्ठ में, आमाशय में, त्वचा में भी होता है ।

देह में रस का कार्य निपातस्थान के साथ सम्बन्ध होते ही होता है; उसमें रूपान्तर की जरूरत नहीं होती--"रसो निपाते द्रव्याणाम्" (चरक) ।

"रसं विद्यान्निपातेन" (अष्टाङ्गहृदयः) । रस का यह कार्य प्रायः निपात स्थान के ऊपर स्पष्टतया होता है और उसी स्थान पर मर्यादित रहता है । जैसे फिटकरी जैसी कषाय रस वाली ओषधि का प्रयोग त्वचा पर करने से स्थानिक लसिका स्राव तथा रक्त-

स्राव बन्द होता है, नेत्रों में करने से पानी का स्राव बन्द हो जाता है और मुख द्वारा सेवन करने से आमाशय तथा आन्त्र का स्राव (अतिसार) न्यून होता है। कभी कभी रस स्थानिक वात नाड़ियों के अग्रभागों (Nerve terminals) द्वारा प्रत्यावर्तन (Reflex-action) से भीं कार्य करता है। "अम्लः क्षालयते मुखम्, लवणः स्पन्दयत्यास्यम्, कटुः स्रावयत्यक्षि मास्यम्"। यह सब दृष्टान्त प्रत्यावर्तन के हैं। पाश्चात्य पद्धति में इस प्रकार यद्यपि रस की कल्पना नहीं है तद्यपि सुविधा के लिये तिक्त (Bitters) कषाय (Astringents) अम्ल (Acids) को कहा है, ऐसे रसों के अनुसार द्रव्यों के कुछ वर्ग किये हैं। परञ्च उक्त मत में रस के लिये कोई उपयुक्त पर्याय नहीं दृष्टिगोचर होते जो रस के युक्त अर्थ का ज्ञान करा सकें, क्योंकि रुचि taste के सिवाय रस में आधुनिक परिभाषा के अनुसार औषधियों का स्थानिक प्रत्यक्ष तथा प्राथमिक क्रिया (Local, direct and primary actions) भी अन्तर्भूत होती है।

रस और अनुरस—उक्त मधुरादि रसों में व्यक्ताव्यक्त द्विविध रस उपस्थित रहते हैं, इन्हीं को क्रम से व्यक्त रस तथा अव्यक्त को अनुरस कहा है। द्रव्य का जो रस रसना से सम्बन्ध होते ही विशेष रूप से ज्ञात हो उसे "व्यक्तरस", और जो पश्चात् तथा अस्पष्ट ज्ञात हो उसे "अनुरस" कहा है—"तत्र व्यक्तो रसः स्मृतं", अव्यक्तोऽनुरसः किंचिदन्तेऽपि चेष्यते" (अष्टाङ्गहृदयः)। "व्यक्तः शुष्कस्य चादौ च रसो द्रव्यस्य लक्ष्यते। विपर्ययेणाऽनुरसः (चरकः)।

चक्रपाणि ने "अनुरस" को सदैव कार्यानुमेय माना है—"शुष्कस्य वाऽऽर्दस्य वा प्रथम जिह्वासम्बन्धे वाऽऽदावा स्वादन्ते वा यो व्यक्तत्वेन मधुरोऽयमम्लोऽयमित्यादिना विकल्पेन गृह्यते स"व्यक्तः"। यस्तूक्तावस्था चतुष्टयेऽपि व्यक्तो नोपलभ्यते, किं तर्हि—अव्यपदेशतया छायामात्रेण कार्यमात्रेण वा मीयते सोऽनुरस इति वाक्यार्थः (चक्रपाणि)।

इन रसों के त्रिषष्टि भेद द्रव्य देशकाल के प्रभाव से होते हैं। उक्तञ्च चरके—भेदश्चैषां त्रिषष्टिविधविकल्पो द्रव्यदेशकालप्रभावाद्भवति"।

द्रव्यप्रभावाद्यथा—"सोमगुणातिरेकान्मधुरः" इत्यादि। देशप्रभावाद्यथा—हिमवति द्राक्षादाडिमादीनि मधुराणि भवन्त्यन्यत्राम्लानि इत्यादि।

कालप्रभावाद्यथा—"बालाम्रं सकषायं तरुणमम्लं पक्वं मधुरं—"तथा—हेमन्ते ओषध्यो मधुरा वर्षास्वम्लाः" इत्यादि। अग्नि संयोगादयो येऽन्ये रसहेतवः तेऽपि काले द्रव्ये वान्तर्भावनीयाः। विस्तारभय से इनकी संख्या का वर्णन नहीं किया जा सकता।

गुण—द्रव्यों के कार्यों के द्योतक गुण होते हैं। इन्हें पाश्चात्यवेत्ता–Pharmacological actions) कहते हैं। यह गुण संख्या में बीस हैं परन्तु विकाशी व्यवायी आदि अन्य गुण भी हैं। उक्तञ्च—गुरुमन्दहिमस्निग्धश्लक्ष्णसान्द्रमृदुस्थिराः।

गुणाः सुसूक्ष्म विशदा विंशतिः सविपर्ययः (वाग्भट्टः)। उक्त बीस गुण भौतिक हैं तथा इन्हें कर्मानुमेय भी माना है इसलिये रस वीर्यादि द्वारा द्रव्य के कार्य जो देह होते हैं वह सब उनके गुण होते हैं। द्रव्यों के इन गुणों का उत्कर्षापकर्ष भी संस्कार भावनाओं द्वारा किया जाता है। यदाह चरकः—

गुरूणां लाघवं विद्यात्संस्कारात् सविपर्ययम्।
व्रीहेर्लाजा यथा च स्युः सक्तूनां सिद्धपिण्डकाः"। इति

इसमें सन्देह नहीं कि गुरु, लघु, द्रव, कठिन इत्यादि शब्द औषधियों की भौतिक ति (Physical State) प्रदर्शित करने के लिये भी प्रयुक्त होते हैं परन्तु ओषधिज्ञान की परिभाषा में गुण मुख्यतया शरीरगत विविध क्रियाओं के द्योतक होते हैं। चरक— "प्रकृतिविकृतिविचारदेशकालवशास्तेष्वाश्रयेषु द्रव्यसंज्ञकेषु गुणा लघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्याः"। यहां वश शब्द अधीनार्थ वाची है। यह प्रकृत्यादि से सम्बन्धित है। प्रकृतिवशा यथा—"मुद्गाः कषाया मधुराश्च" स्वभाव से लघु होते यह लाघवता रस के अधीन नहीं है ऐसा होने पर कषाय तथा मधुर होने से गुरु होते हैं।

विकृतिवशा—व्रीहेलाजानां लघुत्वं तथा सक्तु सिद्ध पिण्डकानां गुरुत्वं स्यात्—इसका जन ऊपर एक पद्य में कहा गया है यह "विकृतिमापन्नेव" है।

विचारणा—विचारो द्रव्यान्तर संयोगः—तेन विचारणा वशं यथा—मधुसर्पिणी युक्ते विषम्; तथा विषं चागद युक्तं स्वकार्य व्यतिरिक्त कार्यकारि। इति स्पष्टम्।

देशो यथा—देशो द्विविधः—भूमिरातुरश्च।

तत्रभूमौ—"श्वेत कपोती च वल्मीकाधिरूढ़ा विषहरी, तथा हिमवति भेषजानि गुणानि भवन्ति"।

शरीर देश यथा—"सार्क्ष्यमांसाद् गुरुतरं स्कन्ध क्रोड़ शिरस्पदाम्" इति।

कालवशं तु यथा—मूलकमधिकृत्योक्तं—"तद्वालं दोषहरं वृद्धं त्रिदोषम्"।—"यद्यतु फलमाददीत" इत्यादि। यहां एक प्रकरण में कहे हुए जिनका यहां वर्णन किया उनका स्वभाव आदि में ही अन्तर्भाव जानना।

यदुक्तं चरके— चरः शरीरावयवाः स्वभावोधातवः क्रियाः।
लिङ्गं प्रमाणं संस्कारो मात्रा चास्मिन्परीक्ष्यते"। इति

यहां चर शरीरावयव तथा धातुओं को देश में ग्रहण किया है, मात्रा का विचार में होता है। शेष का स्वभाव में अन्तर्भाव माना है। तथा रसविमानोक्त—"आहार पायतन" आदि का यथासम्भव इसी में ही अन्तर्भाव मानते हैं।

वीर्यमाह—"तद्वीर्यं द्विविधमुष्णं शीतं च"–अग्नीषोमीयत्वाज्जगतः"

"चरकस्त्वाह वीर्यं तद्येन या क्रियते क्रिया।
नावीर्यं कुरुते किंचित्सर्वा वीर्यकृता हि सा" ॥

वीर्य, शीत तथा उष्ण होने से दो प्रकार का होता है यतः जगत के अग्नि सोमा-त्मक होने से। वीर्य वह है जिससे द्रव्य क्रिया करता है जिस द्रव्य में वीर्य नहीं होता कर्म करने योग्य नहीं होता अतः द्रव्य की यावत् शमनादि क्रिया होती है वह वीर्य बिना नहीं होती। येन कुर्वन्ति तद्वीर्यम् (सुश्रुत) 'येन' कथन से रस से, विपाक से, प्रभाव से, गुर्वादि तथा परत्वादि गणों से जो क्रिया अर्थात् तर्पणाह्लादनशमनादि रूप कृत्य क्रिया सम्पादित होती हैं उस द्रव्य की क्रियायों में जो रसादि है वह वीर्य का ही कर्म है संक्षेप में जिसके द्वारा द्रव्य का कार्य निष्पन्न होता है वीर्य है। ओषधि तरुण होने पर अल्प वीर्य युक्त होती है और पक्व होने पर परिणत वीर्य होती है तथा पुरातन होने पर हीन वीर्य कही जाती है। उक्तंच सुश्रुते–"तत्रवर्षासु ओषधयस्तरुण्योल्पवीर्याः। ता ओषधयः कालपरिणामात् परिणत वीर्या भवन्ति। वर्षातीतं सर्वधान्यं परित्यजति गौरवम् नतु त्यजति तद्वीर्यं वीर्यं मुंचत्यतः क्रमात् ॥ यह वीर्य का साधारण भाव है। इसे पाश्चात्य भाषा में (Poteney) कह सकते हैं।

वीर्य का यह लक्षण भी होता है—"रसविपाकप्रभावातिरिक्ते प्रभूतकार्यकारि गुणे वीर्यम्"। इति संज्ञा। अर्थात् रस, विपाक, प्रभाव इनके गुणों के अतिरिक्त द्रव्य का जो विशेष कार्यकारी गुण होता है उसे वीर्य कहते हैं। यह शीत, उष्ण दो प्रकार का होता है इसलिये ओषधियों के वीर्य का सम्बन्ध शरीरगत Biochemical और Metabolic processes के साथ मालूम होता है। शीतोष्ण वीर्य के कर्म, यदाह वाग्भट्टः—

"तत्रोष्णं श्रमतृड्ग्लानि स्वेददाहाशुपाकिताः। शमं च वातकफयोः करोति शिशिरं पुनः। ल्हादनं जीवनं स्तम्भं प्रसादं रक्त पित्तयोः। इति स्पष्टम्।

अष्टविधवीर्यमाह— "वीर्यं पुनर्वदन्त्येके गुरुस्निग्ध हिमं मृदु।
लघुरूक्षोष्णतीक्ष्णं च तदेवं मतमष्टधा ॥ इति स्पष्टम्।

परंच सुश्रुत ने कहा है कि "केचिदष्टविधमाहु :—शीतमुष्णं स्निग्धं रूक्षं विशदं पिच्छिलं मृदु तीक्ष्णं चेति"। यह वीर्य अपने बल तथा गुणों के उत्कर्ष से रस के प्रभाव को तिरस्कृत करके अपने कर्म को करते हैं।

यदाह चरक :—न तु केवलं द्रव्याणि गुण प्रभावादेव कार्मुकाणि भवन्ति। द्रव्याणि हि द्रव्यप्रभावाद् गुणप्रभावाद् द्रव्यगुणप्रभावाच्च तस्मिंस्तस्मिन् काले तत्तदधिष्ठानमासाद्य तां तां च युक्तिमर्थं च तं तमभिप्रेत्य यत्कुर्वन्ति तत्कर्म। येन कुर्वन्ति तद्वीर्यम्। यत्र कुर्वन्ति स कालः। यथा कुर्वन्ति स उपायः। यत्साध्यन्ति तत्फलम्"।

द्रव्य प्रभावाद् यथा—दन्त्या शिरो विरेचकत्वं, तथा मणीनां विषादि हंतृत्वमित्यादि । प्रभावाद्यथा--ज्वरे तिक्तको रसः, शीतेऽग्निरित्यादि । द्रव्यगुण प्रभावाद्यथा-कृष्णाजित-रीति, अत्रापि कृष्णत्वं गुणोऽजिनं च द्रव्यमभिप्रेतम् । तथा मण्डलैर्जातरूपस्य तस्या पयःशृतम्," तत्र मण्डलगुण युक्तस्यैव जातरूपस्य कार्मुकत्वम् ।

कैसे करते हैं उस नियतकाल में उस युक्ति और अर्थ को ध्यान में रखकर, उस ता को प्राप्त करके जो शिरोविरेचनादि करते हैं वह **कर्म** है । जिन उष्णादि कारण ो करते हैं वह **वीर्य** है । यहां वीर्य से शक्ति का ग्रहण किया गया है । वह शक्ति द्रव्य अथवा गुण की ही हो । जहां शिरोविरेचन किया गया वहां **अधिकरण** शिर है क्योंकि स्थान में शिरोविरेचन नहीं होता । वसन्तादि काल में जब शिर गौरवादि युक्त हो काल में करना युक्त है । इससे अकाल में शीतादि से स्तब्ध होने से शिरोविरेचन करने योग्य नहीं होता किन्तु समय पर ही करना जिस प्रकार प्रधमन, अवपीडनादि ों को फैलाकर शैय्या पर सोये हुए तथा ईषत् प्रलम्ब शिरवाले व्यक्ति को नेत्र त करके नस्य का प्रयोग करना, यह **उपाय** है । जिससे शिरः शूलादि शान्त हो जाये फल है । कर्म— कार्य का करना, उद्देश्य फल या साध्य होता है यथा यज्ञादि धर्म योग्य कर्म है उससे उत्पन्न स्वर्गादि उद्देश्य है अर्थात् फल होता है इसी प्रकार ादि कर्म जानना ।

(क्रमशः)

आलोचक पित्त

लेखक—वैद्य कंवर प्रसाद शर्मा B.I.M.S , आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेदरत्न।

मैं यहां अलोचक पित्त का वर्णन कर रहा हूं। यह नेत्रों में रहता है जिसके द्वारा प्राणी वस्तुओं को देखता है। दर्शन का कार्य दृष्टिपटल(Retina) संपन्न करता है। यह कार्य इसके दो स्तरों द्वारा हुआ करता है। बाह्यस्तर के कोषाओं में वर्णकाणुओं की बड़ी संख्या में उपस्थित होने के कारण वह रंजित होता है और अन्तस्तर पुनः सात स्तरों से निर्मित होता है। हमारा प्रयोजन यहां केवल प्रथम स्तर से है जो Rods और Cone का स्तर है। यह दो प्रकार के कोषाओं Rods & Cones के द्वारा निर्मित है। Rods एक प्रकार के वर्णक को जिसे Visual Puarble कहते हैं प्रकट करती है। Cones में यह वर्णक अनुपस्थित होता है। मनुष्यों में Rods संख्या में अधिक होते हैं, जबकि पक्षियों में Cones अधिक होते हैं।

बाह्य वर्णयुक्त स्तर Retina का मुख्य ग्राहक संस्थान है। वर्णक का कार्य प्रतिबिम्ब को फैलने से रोकना है जो Retina के एक भाग से दूसरे भाग तक बनती है। जब Retina में Visual Purple (Rhodopsin) प्रकाश के संपर्क से झुलस जाता है तो वहां धीरे २ Purple का पुनर्निर्माण होने लगता है, जो नाड़ी सम्बन्ध से स्वतन्त्र है। इससे प्रकट होता है कि Rhodopsin दर्शन में मुख्य कार्यशील तत्व है और यह निस्संदेह पित्तात्मक है। इस प्रकार Retina के दो बाह्यस्तर–वर्णकस्तर और Rod का स्तर आलोचक-पित्त युक्त है।

अश्रुग्रंथियां, लालाग्रंथियों की सी रचना रखती हैं, अदिवगुहा के ऊपरि और बाह्य-भाग में स्थित होती हैं और अश्रुस्राव करती हैं। यह श्राव Conjuntiva, Cornia और Lids की सतह को धोकर आर्द्र रखता है और वाष्पीभूत होता रहता है। इसके वाष्पीभवन की मात्रानुसार ही इसका स्राव होता है, किन्तु जब स्राव अधिक होता है तो अश्रुनाड़ी से नीचे नासागुहा में आकर यह नासास्राव को बढ़ा देता है और जब और अधिक बढ़ जाता है तो Lids के ऊपर अश्रुओं के रूप में बह जाता है। चूंकि यह स्रावीग्रंथियां हैं अतः वह—आलोचक पित्त के सहायक पित्त के अन्तर्भूत हो सकती है।

सुश्रुत के कथन से अश्रुग्रंथियों का स्राव आलोचक पित्त समझा जा सकता है। नेत्र के वर्णन में चार पटलों का वर्णन करते हुए लिखता है कि—

तेजोजलाश्रितं वाह्य तेष्वन्यत् पिशिताश्रितम् ।
मेदस्तृतीयं पटलं चतुर्थस्त्वस्थि चाश्रितम् ॥

अश्रु ग्रंथियों के स्राव का कार्य नेत्र के श्वेत और कृष्णभाग का स्नेहन करता है और उसकी सूखने से रक्षा करता है। ये कार्य कफ के मालूम होते हैं। क्योंकि क्लेदन और तर्पण श्लेषण कफ के कार्य हैं अतएव यह तर्पक कफ के अन्तर्गत आ सकता है। शरीर के प्रत्येक परमाणु में वात पित्त कफ तीनों ही मौजूद हैं और प्रत्येक परमाणु का कार्य तीनों की सहायता से ही चलता है, अतएव नेत्रों में भी तीनों के द्वारा ही दर्शन कार्य होता है। Visual purple (पीत बिन्दु) आलोचक पित्तात्मक है, और दर्शन में मुख्यत: आलोचक पित्त ही काम करता है, किन्तु दर्शन के यांत्रिक व्यापार में वात और कफ भी भाग लेते हैं। दृष्टि नाड़ी का कार्य (optic nerve) वायु का व्यापार है जो मस्तिष्क को रूप का बोध कराता है। नेत्र गोलक में रहने वाले तरलद्रव जिनमें एक का वर्णन (अश्रु ग्रंथि-स्राव) ऊपर किया जा चुका है एवं तेजोजल (Aquous) तथा आंत्रिकद्रव (Vitreous humour) नेत्र का तर्पण करते हैं तथा उसके आयतन का अवलम्बन करते हैं। इसलिए ये तर्पक कफ या अवलम्बक कफ के अंश हैं। तर्पण अवलम्बन द्वारा कफ नेत्रगोलक की प्राकृतिक अवस्था को कायम रख कर उसे स्वस्थ रखता है जिससे वह आलोचक पित्त के कार्य को सम्यकतया संपन्न करने योग्य रहता है और दृष्टि नाड़ियां वायु आलोचक पित्त के कार्य को ग्रहण करके मस्तिष्क को दे देती हैं जो कि मन का कार्यस्थल है। और इस प्रकार मन सहित आत्मा को रूप का ज्ञान होता है।

जिस प्रकार पाचन का कार्य मुख्यत:—पाचकपित्त का है, किन्तु पाचकपित्त के कार्य के लिए बोधक कफ और क्लेदक कफ तथा प्राणवायु तथा समानवायु की सहायता अनिवार्य रूप से अपेक्षित है उसके बिना पाचककार्य पाचकपित्त द्वारा होना असाध्य है। उसी प्रकार रूप के आलोचन में भी कफ और वायु की सहायता से ही आलोचक पित्त कार्य करता है।

———

मन और बुद्धि से स्वास्थ्य का सम्बन्ध

(ले०— पं० रामगोपाल मिश्र राजवैद्य, आयुर्वेदाचार्य, गोंदिया)

यह तो कहने में आ चुका है कि, प्रत्येक शरीरधारी का शरीर उसके मन के अनुसार होता है, और मन शरीर के अनुसार। उस मन के प्रधानतः तीन भेद स्थूल प्रकार से जानने समझने में आ सकते हैं, जैसे सात्विक गुण की अधिकता वाले मन को प्रवर सत्व अर्थात् बलिष्ठ मन कहा जा सकता है। उसका शरीर कोमल होने पर भी दृढ़ विचारों वाला, पीड़ाओं और व्यथाओं से न घबराने वाला, किसी भी भयानक कष्ट में अपनी चेष्टाओं से कष्ट रहित दिखाई देने वाला होता है।

सात्विक गुण की अल्प प्रधानता वाले मन को मध्य सत्व अर्थात् मध्यम बलयुक्त कहा जाता है, उसका शरीर खूब मजबूत होने पर भी दूसरों की देखादेखी कष्ट सहने धैर्य बांधने का यत्न करता है। कुछ अपनी समझ और कुछ दूसरों की हिम्मत से हिम्मत वाला बनता है। सात्विक गुण की हीन प्रधानता वाले मन को हीन सत्व अर्थात् निर्बल मन कहा जाता है। उसका शरीर मोटा ताजा मजबूत होने पर भी वह न तो स्वयं धैर्य रख सकता है और न किसी के समझाने से समझ सकता है। छोटी सी आपत्ति या व्यथा से बेहिसाब घबराने लगता है, भय, चिन्ता, शोक और लोभमें तुरन्त ही फँस जाता है, भूत, प्रेतों की अथवा मारकाट की बातें सुनकर भयभीत हो उठता है, क्रोध तो जरा जरा बातों में करता रहता है। किसी के शरीर से रक्त निकलते देखकर मूर्च्छित होने लगता है अथवा कभी मूर्च्छा के साथ हृदय गति बन्द होकर मर भी जाता है।

ऊपर कहे गये सत्व (मन) के सतोगुण की प्रधानता से सम्बन्धित जैसे तीन प्रकार के भेद होते हैं, उसी प्रकार रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता (अधिकता) अल्प प्रधानता और हीन प्रधानता के भेद से एक ही मन के फिर और भी तीन तीन प्रकार के भेद बन जाते हैं। और इसके अतिरिक्त तीनों गुणों के अंशांशी न्यूनाधिक्य भागों के मेल से उस मन के अनन्तों भेद और भी बन जाते हैं। जिनकी गिनती करना भी असम्भव है।

फिर भी मोटे रूप में यह तो मानना ही पड़ेगा कि जिस शरीरधारी मानव का अन्तःकरण सतोगुण के अंशांशी भागों से युक्त होगा उसका मन धार्मिक भावना से पूर्ण अवश्य होगा। उसका स्वभाव अहिंसक, दयालु, दस को खिलाकर खाने की इच्छा रखने

वाला, किसी का अनिष्ट चिन्तन न करने वाला, दुराचरणों से दूर रहने वाला, निरोगी और जिसे सभी प्रकार वाले रस सात्म्य होते हैं ऐसी प्रकृति का होगा।

शेष सब गुण, दोषों की समानता से अथवा विषमता से या दोषों की प्रधानता से युक्त, रोगी शरीर वाले और जिनको निज प्रकृति को पटने वाले रस, गुण, वीर्य, विपाकादि युक्त आहार्य द्रव्य अथवा आहार और विहार सात्म्य हो सकते हैं ऐसी प्रकृति के शरीर वाले होते हैं।

कारण यह कि शुद्ध सतोगुण की प्रधानता वाले का अन्त:करण सात्विक भाव वाला होने से उसका मन सतोगुण प्रधान होता है और इसीलिये उसकी शारीरिक प्रकृति पित्त प्रधान होने से वह निर्दोष होती है। राजस और तामस गुणोंवाले शरीरधारी राजसी और तामसी अन्त:करण के होने से उनका मन भी राजसी और तामसी स्वभाव का हुआ करता है, उनकी शारीरिक प्रकृति वात और कफ रूप सत्व प्रधान होने से उनमें रोष (क्रोध) मोह (अज्ञान) की मात्रा अधिकता से होती है। वे दोषपूर्ण और रोगी होते हैं।

त्रिविधं खलु सत्वं शुद्धं राजसं तामसमिति, तत्रशुद्धमदोषमाख्यातं कल्याणांशत्वात्। राजसं सदोषमाख्यातं दोषांशत्वात्, तामसमपि सदोषमाख्यातं मोहांशत्वात्। तेषान्तु त्रयाणामपि सत्वानामेकैकस्य भेदाग्रमपरिसंख्येयं तरतमयोगाच्छरीरयोनिविशेषेभ्यश्चा न्योन्यात् विधानत्वाच्च शरीरमपि सत्वमनुविधीयते सत्वं च शरीरम्। तस्मात्कतिचित् सत्वभेदाननुकाभिनिर्देशेन निदर्शनार्थमनुव्याख्यास्यामः।"

कथित गुणों में से शान्ति, सन्तोष, प्रकाश, ज्ञान, आनन्द आदि सतोगुण के कार्य हैं। ऐश्वर्य भोग, तृष्णा, इच्छा, सुख, दुःख आदि रजोगुण के कार्य हैं। और मोह, निद्रा, आलस्य, भय आदि तमोगुण के कार्य हैं।

इन ही गुणत्रयों का आरम्भिक परिणाम बुद्धि है, कथित गुणों की भेदपूर्ण तारतम्यतानुसार दोषत्रय और अन्तःकरणों की ही समान शरीरधारियों की बुद्धि के भी अनन्तो भेद हैं। और उसी प्रमाण से उनमें विवेक बुद्धि, अविवेक बुद्धि, सत बुद्धि, असत् बुद्धि, स्थिर बुद्धि, अस्थिर बुद्धि, दृढ़ बुद्धि, अदृढ़ बुद्धि, तीव्र बुद्धि, मन्द बुद्धि, कुशाग्र बुद्धि, जड़ बुद्धि आदि अनन्तों संज्ञा वाली बुद्धि बन जाती हैं। बुद्धि और अन्तःकरण का बहुत बड़ा घनिष्टतम सम्बन्ध है।

जिसमें जैसी बुद्धि होगी उसका वैसा ही अन्त:करण होगा। और जैसा अन्त:करण होगा वैसी ही उसमें बुद्धि होगी। फिर चाहे वह मानव शरीरधारी प्राणी हो अथवा किसी भी योनि वाला शरीरधारी जीव हो। बुद्धि तो कर्मानुसारिणी प्राप्त होती है। अतएव उन कर्मभोगों को अर्थात् सुख दु:खादियों को भोगने के लिये प्रत्येक शरीरधारियों में बुद्धि अनुरूप अन्तःकरण, शारीरिक निर्माण, मन और शारीरिक शक्ति के प्राकृतिक-

रित्या नाना भेद किये गये हैं।

फिर भी मानव शरीरधारियों में बुद्धि पर अंकुश रखने वाला प्रकाश (ज्ञान) निसर्गतः प्राप्त है, इस प्रकाशमय ज्ञान के भी दो भेद हैं; एक व्यवहारिक दूसरा दिव्य। व्यवहारिक ज्ञान कीट, पतंगादि से लेकर पशुपक्षियों तक में भी न्यूनाधिक प्रकार से विद्यमान है। दिव्य ज्ञान का तो उनमें विलकुल अभाव है। मानव शरीरधारी प्राणियों में यह बात नहीं हैं।

पढ़ा लिखा या अपढ, नगर निवासी या ग्रामीण, पर्वतों या जंगल में रहने वाला अथवा गुफा, खोह में निवास करने वाला तथा किसी भूमि देश में रहने वाला मानव क्यों न हो, उसे अपनी जीवन रक्षा का व्यवहारिक ज्ञान इतर सभी योनियों की अपेक्षा बहुत अधिक है साथ ही उनमें दिव्य ज्ञान भी अनिवार्यतः किसी भी मिकदार में क्यों न हो अवश्य विद्यमान रहता है, हां ! फिर चाहे उस दिव्य ज्ञान का कि जिसके द्वारा वह अपने को मानव समझ सके और अपना कल्याण साध सके उसकी जानकारी को करने का कर्मवश अवसर ही न मिला हो। बुद्धि की जड़ता या हीनता में दवा होने के कारण लुप्त हुआ सा दिखाई देता हो यह बात दूसरी है। किन्तु मानव देहधारी में उस ज्ञान का अभाव निसर्गतः हो नहीं सकता। व्यवहारिक ज्ञान के अतिरिक्त वह भी विद्यमान रहता है। यह निश्चित है। बुद्धि और ज्ञान का पारस्परिक घतिष्टतम सम्बन्ध है, यही नहीं प्रत्युत बुद्धि की आंख ज्ञान ही है, बिना ज्ञान के बुद्धि अंध होती है। वह आंखें भी दो हैं—यथाः—बुद्धि की ज्ञानमयी एक आंख व्यवहार को दर्शाती है, अर्थात् मानव देह से सम्बन्ध रखने वाले जीवन के आधारभूत सम्पूर्ण स्थूल तत्वों का मानवी जगत के लिये क्या उपयोग हो सकता है इस बात का बुद्धि को निश्चय कराती है, दूसरी मानव को मानवता के अभिमुख कराने वाले सूक्ष्म तत्व आत्मा का बुद्धि को निदर्शन कराती है।

पहली व्यवहारिक ज्ञान की आंख अन्यान्य शरीरधारियों की बुद्धि को जैसी प्राप्त है, वैसी ही मानव शरीरधारियों की बुद्धि को भी प्राप्त है। किन्तु दोनों की व्यवहारिक दृष्टि में बहुत वड़ा भेद है। आकाश पाताल का अन्तर है। वह इसलिये कि अन्यान्य शरीरधारियों की व्यवहारिक ज्ञान की आंखें मर्यादित सीमा के भीतर का ही उनकी बुद्धि को ज्ञान करा सकती हैं, तो इसके विपरीत मानव शरीरधारी की बुद्धि को प्राप्त आंखें भौतिक निदर्शन में चरम सीमा तक मानवों को पहुंचाने की सामर्थ्य वाली होती हैं। दूसरी दिव्य ज्ञानमयी जो आंख है वह अन्यान्य शरीरधारियों की बुद्धि की बन्द हैं।

और मानव शरीरधारियों की बुद्धि की खुली हैं, फिर भी काम वासनाओं का जाला बहुतेक मानवी बुद्धि की ज्ञानमयी आंख में पड़ा हुआ होने से वे मानवोचित ढंग से किसी भी काम को करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। अपनी जीवन रक्षा को भी

मानवी ढंग से नहीं कर सकते। प्रज्ञापराध द्वारा ऐसे मानव नाना व्याधियों और कष्टों को भोगते हैं। वे मानवोचित योग्य प्रकार का सात्म्याहार भी प्रमाणपूर्ण मात्रा का करना नहीं जानते। उन्हें अच्छा संग, अच्छा व्यवहार करना भी रुचिकर नहीं लगता, तब फिर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति का मूल जो दिव्य स्वास्थ्य है उसका संरक्षण और व्याधि से पीड़ित होने की दशा में स्वास्थ्य लाभ करना इन बातों को जानना तो बहुत दूर की बात है।

ऐसा क्यों है? उनमें सात्विक गुण की तारतम्यता का निसर्गतः पापों को भोगने के लिये अभाव है। और वे जब तक अपने कर्मभोगों को भोग नहीं लेते अथवा जब तक उनके संचित भोगों का खजाना खाली नहीं हो जाता, उनकी व्यवहारिक ज्ञान की आंखों और दिव्य ज्ञान की आंखों से वे कुछ भी मानवोचित लाभ नहीं उठा सकते। ये मकड़ी की ममता वाली बुद्धि लिये जाल फैलाना और उसमें फंसे हुये जीवों को अपने जाल में गूंथ उनका रक्त चूंसना अथवा खूँखार जरख या भेड़िये की तरह किसी जीव पर एकाकी पाते ही टूट पड़ना और उस जीव का संहार कर डालना भर ही जानते हैं अथवा वैसा ही व्यवहार मानव होकर मी मानवों के साथ करना पसन्द करते हैं।

इसके विपरीत जिन मानव शरीरधारियों के अन्तःकरण मन और बुद्धि में सात्विक गुण के तारतम्यता वाले अंशांशों का कुछ भी भाग है, वे ज्ञान की दिव्य और व्यवहार की सत्यपूत आंखोंवाली बुद्धि से अपने मानवी जीवन को सफल बनाने वाले सद्व्यवहार और सदाचार को करते रहते हैं। वे अपनी मानवता को सफल करते हुये अपनी जीवन रक्षा के लिये निज की प्रकृति को पटने योग्य सुखावह आहार विहार संयम और नियम से करते रहते है। उनका स्वास्थ्य कभी नहीं बिगड़ता और न वे कभी रोगी ही होते हैं।

THE GERMS THEORY IN THE VEDAS

By
Shri Vishva Nath Dwivedi Shastri, Ayurveda Shastracharya, B. A.

(Continued from last issue)

These insects have nothing to do with diseases. They are mainly concerned with farms, fields and destruction of the foodgrains. That is why their detailed discussion is avoided here and suffice it to quote from the above places a few Mantras:—

Yo akshyo pari sarpati yo nase parisarpati.
Datam yo madhyam Gachchati tam Krimi Jambha yamasi
Sarupo dwo virupo dwo Krishno dwo rohito dwo
Vabhrusch vabhrukarnsch gridhah Kokashchate hatch.
Ye Krimayah Shiti Kaksha ye krishna shitivahvah
Ye Kech Vishwa rupadan Krimin jambhayamasi
Ye vashasah Kaskshas ajatkah shitivitmikah
Dristasch hanyatam Krimi hatadristasch hanyatam.
Hato ye vasah kriminam hato nadmitota
Sarvan ni masmsakaram drastadam Khalvamiva
Trishirsanam trikakudam krimin Sarang marjunam
Shrinbhyasya Pristi rapi vrischami yaschitah
Hatasho asya veshaso hata sah pariveshsch
Atha ye kshullaka iva sarve te Krimyo hatah
—Atharvaveda—5—23—13

Kankato na Kankato atho satin Kankatah
Dwaviti plusi itinya drista alipsat.
Ye ansya ye angya, Suchika ye prakankata
Adrista Kinchan hetyasarve nakam nijasyatu.
– Riguveda —1—193—17.

Infectivity of the germs:—Germs, having an unfortunate access through the different inlets of the body, happen to affect the intestines, the back, the sides, the head, the shoulders, the nose, the ears, the teeth and thereby all the whole human body. As:—

Anvatrayam Shirshanyamatho parstheyam Krimin
Avaskavam Vyadhwaram Krimin Vachasa jambhayamasi.

That is—We destroy the germs who originate in the intestines, in the head, in the back and thereafter dive into the interiors of the parts, or enter through different inlets of the body or who are not killed even by administration of many anti-biochic medicines.

It is unquestionably admitted that Typhoid fever and Pneumonia are only caused due to the germs who infect the intestines and the lungs. In the same way brain diseases and Rickets and Celebroseimaringitis were also completely familiar to the Vedic Physicians. Some germs are described with their definite shapes and size. And if these are kept in view we shall be highly enlightened and assisted in understanding the origin of many diseases. There are also some descriptions about the poison forming places in the germs. It should be noted that the above interpretations of the Shlokas are according to the Sayan Bhasya. About the abode and shelter of the Germs:—

Hataso Asya Vesato hatasah pariveshash
Atho Yekshullaka iva Sarve te Krimayo hatah.

Interpretation according to Sayan Bhasya—

We have destroyed all these germs together with their very abode and their ultra-microscopic formative eggs (which will bring forth living ones in due future). The thing to be carefully noted here is this that our Vedic physicians knew not only the minute germs but also their ultra-microscopic egg formations.

Again—

Ye Krimayah parvatesu vamshvovadhisu Pashusvapswantah
Ye asma Kantanva ma visuh tad haumijanim Kriminam.

That is—We destroy the germs who dwell in hills and mountains together with their places of origin themselves; does not matter whether they have got an access into us through sore or ulcers or our food.

The Vajsaneyi Sanhita tells us about the omnipresence of the germs who are found above and below the earth, in the light of the Sun ond everywhere in the water.

As:—

Ye awami rochane dewo ye wa Suryasya rasmisu
Yesampsu sadkritam tebhyah sarpebhyah namo namah.

This describes very clearly the germs who enter into us through various ways.

Even today food, water, air and sores and ulcers are accepted as the inlets for the germs. After giving a brief account of the nourishing elements to these germs we shall deal with their particular forms.—A relevant Shloka reads—

Dworva pita, prithivi mata somobhrata, diti swasa
Adristah vishwa drasta stistatclyata sukam.
—Riguveda—1·—191—6.

That is—O Germs : protect me from your rath. The Sun or the atmosphere is your father, the earth your suckling mother, the moon your brotherly assistant and darkness is your sister. You live in these places invisibly or visibly. In other words, having received adequate heat or dampness these germs are born in darkness whether above or under the ground.

Again—

In Chapter 2 Sukta 25 Mantra 5 of the Atharvaveda we are told of the places where these germs originate.

Tamausi yatra gachchanti,
tatkravyado ajigamat.

That is—These seeds of the diseases who feed on blood and flesh are found in dark places·

Multiplicity of the germs (RUDRAS) :—

Asankhayata Sahasrani ye rudra abhimumyam.
Asmin mahatyar neve antarikshe bhava adhi.
—Yajurveda—A. 11.

That is—In the atmosphere and on the earth there is an unreckonable number of 'Rudras' (Germs). About their colour and shape a Shloka speakes:—

Aso yashamro aruno uta vabhru Sumanglah.
Ye chainam rudra abhito dikshu shrita sahasraso avaishhedimahe.

That is—"We destroy these germs who are of copper red and other beautiful colours and are spread hither and thither and in all the four directions." In this way we are very definitely told of the habitation of

these germs.

It follows from the above 'Mantra' that earth, water, air, various living beings and vegetables are the chief nourishments of these germs. We find a verily satisfactory synthesis of all this with the modern theories of bacteriology on a critical study of the latter. Due to the fact that the germs are almost omnipresent in the Universe they are mostly found in the air, earth, water and the bodies of living beings. Now just compare it with modern thoughts on bacteriology.

The atmosphere—Germs and insects are always present in the atmosphere and their number depends more or less on the particular weather, place and the air waves amidst which they live. In the summer their number is greater than Sharad and Hemant i. e. the winter. After it has rained sufficiently there number in the atmosphere becomes few. In the atmosphere of the locality of men and animals the following germs are mostly found :—

Streptococus, Bacilas tuberculosis, Germs of Titanas or anthrax, Bacilas typhosis, plague Bacilas, Germs of influenza and Dyphtheria and the germs of Curebrospinal maningitis.

The Earth—In fact the earth is addressed as 'Mother' because it gives shelter to the insects. Insects are found in large numbers under the first layer of it and upto 5 or 5 feet underneath the ground we fiind the germs of aerobe and anerobe. Among these poisonous ones are the following:—

Strepococus, germs of Titanas, inflamation caused by 'Vat (Nervous disorder), oedema and germs of Anthrax.

The water—'Som and Jal' are thought to be brothers in the Sanskrit literature—suggesting to mean that they have one common source of origin. In the earth mostly aeral and atmospheric germs are found. Besides in the impure waters of urine etc. we find the germs of diarrhea, typhoid nnd cholera. Sometimes the eggs of other germs are also found. These germs are abundantly present in the waters of deep wells and tube wells to the highest degree of probability.

Living beings—In living beings on the skin in general and the nails hairy part of the body in particular, these germs are almost always present. Their number is sufficiently large in mouth, throat and intestines. This stage of the germs is called carrier stage and the place or living being con-

cerned is called the carrier.

According to their location these germs are of two kinds.

1. Jiwopjiwi (Parasite).

2. Mritopjiwi (Saprophyte)—These shelter on the person of living ones or on vegetables mostly and feed themselves by sucking nutritious juice from their body. These germs have already been described in earlier Mantras as those feeding on Poa Ciliaris, Saccharum Spontanum and Poa Cynosuroides.

Lurking germs cannot at all times cause ailment in the body. They keep inactively and secretly sitted in the body and getting favourable conditions become active and cause defect in the body. They are, therefore described as lurking or 'thief' germs.

In fact the Vedic physicians accept the origin of some diseases through germs. But all sorts of diseases are not caused by germs. They are active only when they get favourable situations in the body i. e., when the power of resistance becomes low. This favourable to diseases-condition of the body is nothing but disequilibrium or presence of disproportionate amount of famous Ayurvedic 'Trinity' (Tridosha) i. e. the Vat, Pitta and Shlesma. Therefore, the infectivity of these germs is never self potent but in truth is made potent by the unfortunate conditions of the body itself. That is their infectivity does not come from within but from without. Therefore, though the Vedic physicians accredited the origin of many diseases to these germs they never did attach undue importance to them. As the following Mantra evidences, the Vedic physicians no doubt accepted the acute and dangerous infectivity of the germs :—

Atrivadah wah Krimayo hanmi Kanvavajjam daginvat.

Agastasya brahmana sam pinasamaham Krimin.

That is—O germs, with the infallible use of the power of many Mantras, I hereby destroy completely thy acute infectivity like that done by Atri, Agasta and Kanva.

The holy saint Atri and his missionary is famous for uprooting diseases. Likewise Kanva and Jamdagin are famous for destroying their foes. The use of such a strong simile suggests the acceptance of high infectiveness of the germs. For showing the form of these germs the following two examples are enough :—

Sarupoa dwo virupoa dwo Krishno dwo rohito dwo
and
Trishirshanam trikakaudam Krimi Sarangamarjunam.

Again :—

Ye Krimayah shiti Kaksha ye Krishna shiti vahvah.
Ye ke ah vishwa rupastan Krimin jambhya masi.
Ksmullaka wa..

Likewise we know about the forms of these germs from few Mantras of Riguveda.

Aso yastamro Arun ut bhabhu Sumangalch.

These germs are of red, copper and brown colours. The green-necked one is of red colour. Small, Dwarfish, giant, sahashaksh, Rohit, 'Vishwarup', Grásta, 'master of grainary, field and herbs etc. are the other significant adjectives which have been used for these germs. It is evident from the use of these adjectives that all the germs are not necessarily destructive ones but some of them are positively constructive and help the production of grains, increase the fertility of land, assist the development of forests and being present in the herbs protect them. Modern science too endorses the constructiveness of some of the germs who are supposed to be the producers of fermentation in many yeast and mold type syrups etc.

Infection of these germs :—A full description of the prevelance of these germs is found in 16-17 Rudradhyaya of Yajurveda and 1-8-6 of Riguveda. Food and water are the main sources from which these germs spread. As the Mantra reads :—

Ye anneshu vividhyanti patresu pivato janan.

Yaju 16-22.

That is—These germs got into the body through food and drinking vessels while taking water or milk make the chemical composition of the body defective and thereby beget diseases. The instrument of attack of the painful germs who dwell in the atmosphere is the air, and that of the germs who attack after having got the rain water fallen from the sky is the eatables and the earth is the abode of the germs of those diseases which are caused due to luxuriant excesses and bad fooding.

(To be continued)

आयुर्वेद लोक

(इस स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित समाचार-सूचनाओं में व्यक्त विचारों से हमारी सहमति होना आवश्यक नहीं है —सम्पादक)

बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन कार्यकारिणी समिति के निश्चयः—

बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, मुजफ्फपुर, कार्यकारिणी समिति का एक अधिवेशन भारतहितचिन्तक औषधालय की रसायनशाला, जुरनछपरा (विजयग्राम) मुजफ्फरपुर में श्री वैद्यनाथ मिश्र उपाध्याय, आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में हुआ जिसमें सर्वसम्मति से निम्न निर्णय किए गए। १ उत्तर बिहार की इस वर्ष की भयानक बाढ़ से पीड़ित जनता की सेवा के लिए प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की ओर से ५१ आयुर्वेद औषध-दान क्षेत्र खोले जायें। २–निश्चय हुआ कि राज्य आयुर्वेद-यूनानी कौंसिल की विशेषज्ञ समिति द्वारा स्वीकृत इन्टरव्यु लेकर वैद्यों के रजिस्ट्रेशन सम्बन्धी आवेदन पत्र का इस संशोधन के साथ समर्थन किया जाय कि ५५ वर्ष से अधिक आयु वाले राज्य के सुप्रतिष्ठित चिकित्सा तथा पाण्डित्य के लिए सुप्रसिद्ध उपाधिहीन वैद्यों का रजिस्ट्रेशन उनकी मर्यादा का ख्याल रखते हुए बिना इन्टरव्यू के किया जाए। ऐसे वैद्यों की नामावलि तैयार करने के लिए ११ सदस्यों की एक उपसमिति का निर्माण किया गया। ३–निश्चय हुआ कि अवैद्यों का रजिस्ट्रेशन रोकने के लिए प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन द्वारा पूर्ण सतर्कता से काम लिया जाए। ४–आयुर्वेद विकास योजना पर विचार हुआ और निश्चय हुआ कि सरकार प्रारम्भ में १०० राजकीय औषधालयों की स्थापना करे और प्रतिवर्ष १० औषधालयों की वृद्धि करती जाए। प्रत्येक कमिश्नरी में एक आयुर्वेदिक इन्स्पैक्टर की नियुक्ति हो। केन्द्र में एक आयुर्वेदिक और यूनानी आदर्श आयुर्वेदिक कालेज हो जिसके साथ ३०० शैयाओं का आतुरालय हो। इन कार्यों के लिए सरकार कम से कम २० लाख रुपयों की बजट में स्वीकृति दे। ५–राज्य के सभी वैद्यों से अवैद्यों से सावधान रहने, आपसी एकता बनाए रखने तथा शीघ्रातिशीघ्र बिहार प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन का सदस्य बन जाने के लिए अनुरोध करने का भी निश्चय किया गया।

हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन नाहन का अपने सदस्यों से निवेदन:—

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन कोट्टकल अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा यह मांग की गई है कि आयुर्वेद के संगठन तथा प्रसार के विषय में कोई ठोस योजना प्रस्तुत करके रचनात्मक कार्य प्रारम्भ किया जावे। क्योंकि दुर्भाग्यवश देश में आयुर्वेद विरोधी वातावरण बड़ा प्रबल है। आज भी स्वतन्त्र राष्ट्र में इसका कोई सन्मान व स्थान नहीं। यदि हम अपने आप अपने पैर पर खड़े नहीं हो सकते तो सर्वदा उत्तरोत्तर इस जनोपयोगी आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति की अवहेलना ही होती जायेगी। हमें इस चिकित्सा को जनहित के लिए लोकप्रिय बनाना है। आयुर्वेद के गूढ़ तत्वों को सुलभ से सुलभ उपायों द्वारा सर्वसाधारण जनता के सामने लाना है। जब तक किसी काम का पक्का प्रचार न हो तब तक चाहे कितना भी अच्छा उपहार क्यों न हो लोकप्रिय नहीं बन सकता। पाश्चात्य औषधियों की मांग केवल मात्र प्रचार और सरकार की मान्यता पर निर्भर है।

अत: हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन आपकी सेवा में निम्न योजना प्रस्तुत करता है और पूर्ण आशा करता है कि आपका सहयोग और अमूल्य परामर्श इसे सफल करेगा।

१-प्रतिमाह एक विषय विचार विनिमय के लिए प्रसारित किया जाया करे और प्रत्येक सदस्य अपने निकटवर्ति चिकित्सकों से भी परामर्श करके इस कार्यालय में भेजा करें। फिर यहां से एक संयुक्त विज्ञप्ति सम्बन्धित पत्रों में प्रकाशनार्थ भेज दी जाया करेगी।

२-अग्रिम माह के लिए विवेच्य विषय का नाम दिया करें जो बहुमत व उपयोगी मान कर प्रसारित किया जाया करेगा।

विषय:—आयुर्वेद अनुसन्धान सम्बन्धी होने चाहिएं।

आशा है कि यह परस्पर का संबन्ध ज्ञानोपयोगी तथा लक्ष्योपयोगी होगा।

भीमदत्त, मन्त्री,
हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन।

कार्यवाहक समिति उत्तरप्रदेशीय वैद्यसम्मेलन का बृहद् अधिवेशन ऋषिकेश में:—

श्री पं० अमरनाथ वैद्यशास्त्री, संयोजक, कार्यवाहक समिति, उत्तरप्रदेशीय वैद्यसम्मेलन सूचित करते हैं कि कार्यवाहक समिति का जो अधिवेशन २३ सितम्बर को देहरादून में होनेवाल था वह अब १२ अक्टूबर १९५४ को आत्मविज्ञान भवन, ऋषिकेश, में होगा जिसमें गत ६ मास के कार्यविवरण, नियमावलि संशोधन, निर्वाचन व्यवस्था, वृहद् सम्मेलन का समय निर्द्धारण और अन्यान्य सामयिक आवश्यक विषयों पर विचार किया जाएगा।

RESOLUTIONS passed at the Joint session of the Tamilnad Ayurveda Mahamandalam and Ayurveda Sabha of Tiruchirapali

1. Resolved to request the Government of Madras to consider and carry out the following suggestions regarding Education and Development of Indian Medicine in Madras State, as they are the only methods, conducive to the promotion of Ayurveda on right lines.

(a) The Director of the Department of Indian Medicine, the Dean, the Principal and all such other heads of the department, should be pure Ayurvediste and not Allopaths.

(b) Curriculum of studies and syllabus:—

These two must be based on purely Ayurvedic lines. No Allopathic subject should be taught to the students as such. Any subject, not mentioned in Ayurveda and found to be necessary to be added, should, at first, be analysed on Ayurvedic lines in the Research Centre and the findings may be included afterwards in the syllabus of Ayurveda and not before, as now in practice.

The committee consisting of pure Ayurvedists and not Allopaths, should adopt a syllabus, on consideration of the syllabus of the All India Ayurveda Vidyapeeth and those of the Ayurveda Siromani and Ayurvedic degree course of Madras University,

The adopted scheme of Ayurvedic Education should come into force from the next academic year i. e. July 1955.

(c) As the three systems of Indian Medicine viz., Ayurveda, Siddha and Unani are identical with their fundamental principles, these three should be integrated into one. The paribhashas i. e., technical terms of Ayurveda should be retained as found in the original text books, so as to preserve their uniformity throughout India, Adopting these terms, text book may be written in regional languages according to the syllabus.

At least one College should be started in each regional centre with the common syllabus.

(d) The existing College of Indian Medicine, Madras may be upgraded with a central Research Institute. In this centre the research should immediately be started in the basic principles, curriculum of studies, preparation of text books etc.,

The drug analysis, on Allopathic lines, should be dropped at present, as they are quite useless.

2. Resolved to request the Central Government not to include Ayurvedic preparations such as Asvas and Aristas in the bill to provide for collection of excise duties; as they are not capable of being consumed as ordinary alcoholic beverages.

3. This organisation regrets to note that plans for the Development of Ayurveda have not found a place even in the Second Five Year plan of the Government of India. As the Mandal feels that the health of our country cannot be stabilised without an alround development of Ayurveda, it is resolved to request the Government of India to devise methods for the promotion of Ayurveda on right lines and include the same in the Second Five Year Plan.

धार जिला आयुर्वेद मण्डल-द्वारा आयुर्वेद ज्ञान प्रसार—

धार जिला आयुर्वेद मण्डल, मध्य भारत संघ बनने के पूव सन १९४० ई० से नगर तथा राज्य आयुर्वेद मण्डल के रूप में आयुर्वेद विज्ञान का प्रसार होवे उस विशुद्ध भावना से छात्रों के पठन पाठन की समुचित व्यवस्था करते हुए अपनी एक आयुर्वेद कक्षा कायम कर जनता में उस विज्ञान का प्रसार करता आ रहा है।

संस्था ने छात्रों को रोग एवं चिकित्सा का प्रत्यक्ष ज्ञान देने के हेतु नगर में एक दातव्य औषधालय स्थापित कर सतत पांच वर्ष उसका संचालन किया, किन्तु आर्थिक सहयोग के अभाव में उसे स्थगित कर देना पड़ा।

इस संस्था से आज तक जिन छात्रों ने सफलतापूर्वक अध्ययन कर लाभ उठाया है उनमें से आज कतिपय महानुभाव स्नातक बनकर मध्य भारत शासन आयुर्वेद विभाग के द्वारा जन सेवा का कार्य सफलतापूर्वक कर रहे हैं।

आज बम्बई राज्य सरकार में विशुद्ध आयुर्वेद अध्ययन कार्य को अपने राज्य में प्रोत्साहन प्रदान कर प्राचीन गुरु शिष्य परम्परा को पुनः जीवन प्रदान किया हुआ है। संस्था की कक्षा १० अगस्त से प्रति वर्षानुसार इस वर्ष भी प्रारम्भ की जा रही है।

संस्था का मध्यभारत शासन के स्वास्थ्य सचिव एवं आयुर्वेद विभाग से साग्रह निवेदन है कि इन्दौर, ग्वालियर, उज्जैन आदि नगरों की आयुर्वेद पाठशालाओं के समान इसे भी अपना प्रश्रय, नगर की संस्कृत पाठशाला को सम्बन्धित कर, प्रदान करने का यथाशीघ्र अनुग्रह करें, एवं प्रत्यक्ष कर्माभ्यास, प्रैक्टीकल ज्ञान के लिये नगर के राजकीय आयुर्वेद औषधालय या जिले के पाश्चात्य चिकित्सालय में व्यवस्था की जावे जिससे छात्रों में आधुनिक ज्ञान की न्यूनता न रहे। शासन के इस अनुग्रह से

जिले की जनता को आयुर्वेद अध्ययन की पूर्ण सुविधा स्वल्प द्रव्य व्यय में सफलतापूर्वक हो सकेगी।

अध्यक्ष – धार जिला आयुर्वेद मण्डल।

बम्बई के प्रमुख चिकित्सक—वैद्य पं० प्यारेलाल जी शर्म्मा का सम्मान समारोह—

बम्बई के प्रमुख पीयूषपाणि सिद्धचिकित्सक एवं आयुर्वेद विद्यालय के प्रिन्सिपल वैद्यराज पं० प्यारेलाल जी शर्म्मा आयुर्वेदाचार्य के स्व० वैद्य पं० हरिप्रपन्न जी स्मारक धर्मार्थ औषधालय में १५ वर्ष में क़रीब २५ लाख रोगियों की चिकित्सा कार्य करने के पश्चात् अवकाश ग्रहण करने के उपलक्ष्य में बम्बई के प्रमुख नागरिकों द्वारा मलाड म्युनिसिपैल्टी के प्रेसीडेण्ट श्री चिमनलाल जे० शाह की अध्यक्षता में अभिनन्दन पत्र समर्पण किया गया।

सर्वप्रथम प्रोफेसर पं० माधवाचार्य ने कहा कि स्व० वैद्य जी ने चिकित्सा क्षेत्र में जो अवर्णनीय स्थान कर लिया था उसको वैद्य जी के अभाव में जरा भी कम न होने दिया।

अखिल भारतीयायुर्वेद विद्यापीठ के भूतपूर्व अध्यक्ष वैद्यराज श्री हरिदत्त जी शास्त्री ने कहा कि वैद्यजी ने विद्वान्, सिद्धहस्त चिकित्सक की तरह महान् कार्य किया।

आयुर्वेद महासम्मेलन के मनोनीत अध्यक्ष वैद्यरत्न पण्डित शिवशर्मा जी, आयुर्वेद वृहस्पति ने वैद्यजी की सेवा एवं व्यक्तिगत दृढ़ सम्बन्ध का उल्लेख किया। आपने यह घोषणा भी की कि बम्बई सरकार द्वारा युनिवर्सल हेल्थ इन्स्टीट्यूट में २० बैड आयुर्वेद के लिये निःशुल्क रखे जायेंगे। वैद्य कन्हैयालाल जी भेड़ा आयुर्वेदाचार्य, वैद्य महाबीर प्रसाद जी मिश्र, सेठ नटवरलाल जी ने वैद्य प्यारेलाल जी शर्म्मा की चिकित्सा पद्धति, शिक्षापद्धति एवं औषध निर्माण कला एवं रिसर्च की प्रवृत्ति की अत्यन्त प्रशंसा की। औषधालय की ओर से वैद्य रामनारायण जी उपाध्यक्ष ने कहा कि जैसा स्व० वैद्य गुरुवर्य जो के लिये प्रसिद्ध था—

अकरोद खर्व गर्वान्डाक्तरवर्यांश्चिकित्सया निजया,
रोगान् बहूनसंख्यान् यो रोगवतां निराकृत्य।
ग्रन्थं व्यधान्महान्तं नाम्ना रसयोगसागरं यश्च,
सजयति हरिप्रपन्नो प्रथमो यो वैद्यवर्याणाम्॥

उसी प्रकार वैद्यजी ने औषधालय को सुचारु रूप से चलाया। अध्यक्ष श्री चिमनलाल जे० शाह ने वैद्यजी की चिकित्सा, उनकी अध्ययन एवं औषध निर्माण कला का विशेषता के साथ बताया कि वे इतने सरल सहृदय एवं उदार हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि

रोगी की आत्मा में पण्डित जी ने अपनी आत्मा डाल दी हो।

इसके बाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साहित्य मन्त्री श्री दाऊदत्त जी उपाध्याय ने अभिनन्दन पत्र पढ़कर सुनाया जिसे अध्यक्ष महोदय ने वैद्य जी को समर्पित किया। अपने सम्मान का उत्तर देते हुए वैद्य पं० प्यारेलाल जी ने कहा कि मैं इस महानगरी की जनता जनार्दन की सेवा के लिये सदैव तत्पर रहूंगा इसलिये गरीबों की बस्ती भायखाला में राहत आतुरालय स्थापित किया है। इस अवसर पर वैद्यरत्न पण्डित शिवशर्मा, वैद्य हरिदत्त जी शास्त्री, मथुरा के प्रमुख वैद्य एवं जिला वैद्य सभा के अध्यक्ष वैद्य श्री नन्दकिशोर जी पाठक वैद्य कन्हैयालाल भेड़ा, वैद्य रामगोपाल शास्त्री, वैद्य गजानन शर्मा, वैद्य वैद्यनाथ शर्मा, वैद्य महाबीर प्रसाद मिश्र, वैद्य अमोलकचन्द मिश्र, वैद्य प्रह्लादराम त्रिवेदी, वैद्य सीताराम जोशी, वैद्य श्रीराम शर्मा, वैद्य सोमेश्वर भट्ट, वैद्य लक्ष्मी कान्त जी, वैद्य एनापुरे जी, वैद्या चञ्चलबेन देशाई, सेठ नटवरलाल जी, प्रमुख कांग्रेसी नेता श्री राजाराम त्रिवेदी आदि बम्बई के प्रमुख वैद्य एवं नागरिक उपस्थित थे।

राम शास्त्री

भीलवाड़ा वैद्य सभा का चुनाव —

आज तारीख १३–६–१६५४ शनिवार को श्री नगर वैद्य सभा भीलवाड़ा का निर्वाचन वैद्यराज पं० श्री काशीनाथ जो वैद्यभूषण के सभापतित्व में निम्न प्रकार हुआ—

सभापति — वैद्य श्री काशीनाथ जी वैद्यभूषण, उपसभापति — वैद्य श्री रामचन्द्र जी ब्रह्मचारी, प्रधान मन्त्री—वैद्य श्री पं० परशुराम जी जोशी, उपमन्त्री—वैद्य भूरालाल जी महात्मा, प्रचार मन्त्री – वैद्य श्री गणपतिलाल जी, कोषाध्यक्ष—वैद्य श्री गुलाबचन्द जी, कार्यकारिणी के सदस्य—(१) वैद्य श्री जगन्नाथ जी शास्त्री, (२) वैद्य श्री नीलकण्ठ जी रसवैद्य, (३) वैद्य श्री कन्हैयालाल जी, (४) वैद्य श्री बिशनचन्द जी, (५) हकीम श्री गुलाम मोहम्मद जी।

ग्वालियर जिला वैद्य मण्डल का वार्षिक चुनाव—

लश्कर १३ सितम्बर—म० भा० वैद्य मण्डल जिला ग्वालियर व नगर कमेटी का वार्षिक अधिवेशन लश्कर में १२ सितम्बर को सफलता पूर्वक समाप्त हुआ। वार्षिक रिपोर्ट पास होने के पश्चात् जिले का चुनाव निर्विरोध निम्न प्रकार हुआ—श्री भगवान दास–अध्यक्ष, श्री लीलाधर शास्त्री–उपाध्यक्ष, श्री सुरेन्द्र बहादुर––मंत्री, श्रीकृष्ण सर्वटे—उपमन्त्री, श्री कृष्णदास–कोषाध्यक्ष। अन्य सदस्य––श्रीराम श्रीवास्तव, श्री गोविन्दप्रसाद दुबे, श्री चन्द्रचूड़ शास्त्री, श्री अशोक और श्री विद्यासागर पाण्डे। अधिवेशन के प्रस्ताव द्वारा शासन से मांग की है कि जिन वैद्यों के रजिस्ट्रेशन फार्म ३१ अगस्त के पश्चात् देवी

औषधि परिषद् के निर्वाचन सूची प्रकाशित होने तक रजिस्ट्रेशन कार्यालय में पहुंचें उनको भी निर्वाचन में मत देने का अधिकार दिया जाय।

श्री मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा का चुनाव--

श्री मा० आ० प्र० सभा का निर्वाचन ता० १५-८-५४ को निम्न प्रकार सम्पन्न किया गया—प्रधान-श्रीमान् मानचन्द्र जी भिषगरत्न L. A. M. S., उपप्रधान-श्रीमान् कविराज माधवप्रसाद जी आ० आचार्य D. Sc. A., मन्त्री-श्रीमान् गणेशलाल रंगा आ० रत्न, उपमन्त्री-श्रीमान् वै० टीकमदत्त जी व्यास आ० विशारद, कोषाध्यक्ष-श्रीमान् वैद्यराज अम्बालाल जी जोशी आ० रत्न, आडीटर-श्रीमान् वैद्यराज दाऊलाल जी शर्मा। सभासद-श्री राजवैद्य पं० उदयचन्द्रजी भट्टाचार्य (संरक्षक सदस्य), श्री राजवैद्य डा० भारतभूषण जी वर्मा आ० आ० D. Sc. A. (संरक्षक सदस्य), श्री पं० उत्साहराम जी प्राणाचार्य, श्री मेघराज जी शर्मा सारस्वत, श्री माधवलालजी जोशी, श्री मुनी देवेन्द्र जी, श्री ईश्वरलाल जी जोशी, श्री गौरीशंकर जी व्यास, श्री प्रेमसुन्दर जी यति, फलोदी, श्री श्यामजी, रेण, श्री नेमीचन्द्र जी, बलीतरा, श्री मुरलीधर जी, पीपाड़ सिटी।

शरीरावयव वाचक शब्द-संग्रह एक अत्यावश्यक कार्य है —

आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में नाड़ी, धमनी, सिरा शब्दों के प्रयोग में कोई सुव्यवस्था नहीं है। परिभाषाओं के अनुसार तो नाड़ी, धमनी, सिरा एक चीज नहीं है किन्तु धमनी के लिए नाड़ी और नाड़ी के लिए धमनी तथा सिरा के लिए धमनी और धमनी के लिए सिरा शब्दों का उलट-पलट प्रयोग देखकर बुद्धिमान विद्यार्थी को भी यह निश्चय नहीं होता कि किसे धमनी, किसे सिरा और किसे नाड़ी कहना चाहिए ? अंग्रेजी में जिसको किडनी कहते हैं अपने प्राचीन ग्रन्थों में उसका क्या नाम है ? इस प्रश्न के उत्तर में भी सब विद्वान एकमत नहीं है। कोई वृक्क कहता है तो कोई वक्षण कहता है। हृदय शब्द की भी ऐसी ही समस्या है। कोष्ठ और आशय शब्द की कुछ न पूछिये। इनका अकेला और उपपर सहित दोनों तरह से प्रयोग होता है। आमाशय, अग्न्याशय, पक्वाशय, मूत्राशय रुधिराशय, उणडूक, फुपफुस और हृदय सबके लिए कोष्ठ का प्रयोग होता है। यह गड़बड़-झाला आजकल के पढ़ने वालों को पसन्द नहीं है। आजकल के पढ़ने वाले एक शब्द के लिए एक अर्थ और एक अर्थ के लिए एक शब्द पसंद करते हैं। एक अर्थ के लिए अनेक शब्द और अनेक अर्थों के लिए एक शब्द का प्रयोग आजकल के पढ़ने वालों को नहीं चाहिए।

यदि आयुर्वेद का प्रचार वैद्य लोग आवश्यक समझते हैं तो आयुर्वेद के ग्रन्थों का आजकल के पढ़ने वालों के लिए उपयोगी बनाना होगा। ऐसे उपयोगी ग्रन्थों के बिना

आयुर्वेद का अध्ययन कौन करेगा ? इस ध्येय से श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य ने गत शास्त्रचर्चा परिषद् में एकत्रित विद्वान वैद्यों के समक्ष अपना विचार उपस्थित किया था कि आयुर्वेद में भी एक शब्द का एक ही निश्चित अर्थ हो यह सुव्यवस्था होनी चाहिए। आयुर्वेद में ऐसी सुव्यवस्था दो जगह देखने में नहीं आती जिनमें एक जगह का जिक्र उदाहरण सहित हम कर चुके हैं। दूसरी जगह वनौषधि की है। इस विषय में भी बहुत गड़बड़ी है। अच्छे से अच्छे टीकाकार वनौषधियों के विषय में बहुत जगह संदिग्ध हैं या अज्ञात हैं। टीका करते हुए अनेकार्थक शब्द का अर्थ करते समय या तो अथवा अथवा करते हैं या तो मौन साध लेते हैं। यह दशा शब्द का पर्याय लिखने में है। परिचय के बारे में इससे भी अधिक दयनीयता है। स्थान स्थान पर वृक्षविशेष, बनस्पतिविशेष, लताविशेष और क्षुप विशेष से काम चलाते हैं। मूल ग्रन्थों के ज्ञान में इतना अधूरापन न जाने कितने समय से चला आ रहा है। इस विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि जैसे कोई जन्मजात शारीरिक विकार सह्य हो जाता है अथवा असाध्य विकार जन्मजात न होने पर भी जैसे सह्य हो जाता है और उसको दूर करने की चिन्ता भी मनुष्य को नहीं होती इसी प्रकार प्राचीन ग्रन्थों के ये दोष वैद्यों को सह्य हो गए हैं इनको दूर करने की चिन्ता भी वैद्यों को नहीं होती, इसको वैद्यों ने या तो जन्मजात समझ लिया है या असाध्य समझ लिया है। परन्तु शतायु करें भगवान श्री यादव जी को जिन्हें इस कमी को दूर करने की न केवल चिन्ता ही हुई है परन्तु इसको दूर करने का उपाय भी बताया है। श्री यादव जी ने वैद्यों के सामने हरिद्वार की शास्त्रचर्चा परिषद् में यह प्रस्ताव रखा था कि पहले शरीरावयववाचक शब्दों की खोज करके उनका एक संग्रह सारे प्राचीन ग्रन्थों से किया जाय और विद्वान वैद्यों की एक समिति बनाई जाय जो इन शब्दों का अर्थ निश्चित करने का काम करे। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से शास्त्रचर्चा परिषद् ने स्वीकार किया था।

आयुर्वेद के समुद्धार में सदा सक्रिय भाग लेने में अग्रसर श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन ने अपने यहाँ वैद्य श्री चन्द्रभानु जी शास्त्री वैद्य वाचस्पति को इस काम में लगा रखा है। सब संहिता ग्रन्थों से इस प्रकार का संग्रह करने में समय और परिश्रम के अलावा अन्य वैद्यों का सहयोग भी नितान्त आवश्यक है। यदि देश के अन्य विद्वान वैद्य भी इस कार्य में सहयोग दें तो यह कार्य आयुर्वेद में विद्यमान एक भारी कमी को दूर करने वाला सिद्ध होगा इसमें सन्देह नहीं है। हमने सुना है कि अन्य वैद्यों ने भी इस महत्वपूर्ण विषय में परिश्रम किया था। यदि यह सत्य है तो हम उन परिश्रमी विद्वान वैद्यों को प्रार्थना करते हैं कि ऐसे वैद्य अपना अपना संग्रह श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० को इस प्रतिज्ञा पर दे दें कि उनका संग्रह उनको सुरक्षित हालत में जैसा का तैसा वापिस भेज दिया जायेगा। हम आशा करते हैं कि इस कार्य को सर्वजनसुखाय और सर्वजन हिताय समझ कर विद्वान वैद्य इसमें सहयोग प्रदान करेंगे।

आयुर्वेद पद्धति से सरकार काम ले

उत्तर बिहार के बाढ़ पीड़ितों के प्रश्न पर पं० श्री हरिनारायण चतुर्वेदी जी का सुझाव

मुजफ्फरपुर, ३० अगस्त। विहार राज्य के आयुर्वेदीय तथा यूनानी चिकित्सा के अध्यक्ष पं० श्री हरिनारायण जी चतुर्वेदी, आयुर्वेदाचार्य ने पटने में एक पत्र प्रतिनिधि सम्मेलन में बताया कि उन्होंने इस वर्ष में उत्तर बिहार में दो दो बार आई हुई भयानक बाढ़ से त्रस्त जनता को महामारियों से रक्षा के लिए आयुर्वेदीय औषधियों की उपयोगिता को प्रमाणित कर विहार सरकार से अनुरोध किया है कि बाढ़क्षेत्रों में रोगग्रस्त जनता की स्वास्थ्य रक्षा के लिए वैद्यों को सरकार प्रोत्साहन दे।

आपने इस सम्बन्ध में एक योजना सरकार के पास भेजी है और बताया है कि भारत को हमारी राष्ट्रीय सरकार जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में स्वावलम्बी बनाना चाहती है, अतएव चिकित्सा एवं औषधि के मामले में भी हमें विदेशी चिकित्सा प्रणाली योजना से मुक्त होना चाहिए, क्योंकि अर्थाभाव से पीड़ित भारत का कल्याण उसपर निर्भर रहने से नहीं हो सकता।

आपने बताया कि उत्तर बिहार के मुजफ्फरपुर, मोतीहारी, दरभंगा, मुंगेर, सहरसा, पूर्णियां जिलों में अप्रत्याशित भयानक बाढ़ दो दो बार आ जाने के कारण वहां की जनता नितांत दयनीय स्थिति में आ गई है। बाढ़ का पानी हटने के बाद ही मलेरिया, हैजा आदि संक्रामक रोगों का भयंकर प्रकोप होगा। वैसी स्थिति में आयुर्वेदीय औषधियों एवं जड़ी-बूटियों से जनवर्ग कम खर्च में ही लाभान्वित किया जा सकता है।

आपने देहातों में सभी जगह सुप्राप्य साधारण जड़ी-बूटियों से बिना किसी खर्च के सुगमता से आयुर्वेदीय चिकित्सा में परमोपकारी योगों का संग्रह किया है, जिसके द्वारा भारतवर्ष जनवर्ग नाम मात्र के खर्च से ही वैद्यों द्वारा अपना स्वास्थ्य सुरक्षित रख सकता है। आप इन योगों का भारतवर्ष के कोने-कोने में शीघ्रता से प्रचार चाहते हैं, ताकि आयुर्वेदीय जड़ी-बूटियों की महत्ता से जनता परिचित हो सके। जब कि अत्यल्प व्ययसाध्य भारतीय जड़ी-बूटियों से भारत की ग्रामीण जनता ९० प्रतिशत लाभ उठा सकती है तो यह उचित नहीं जान पड़ता कि विदेशीय दवाओं में भारत का धन अधिक से अधिक व्यर्थ व्यय किया जाये।

आपने बताया कि बाढ़ क्षेत्रों में वैद्यों के दल बनाकर भेजने की योजना मैंने सरकार के पास भेजी है, उसमें वैद्य बड़े काम के सिद्ध हो सकते हैं, क्योंकि दवाओं के अभाव में वे साधारण जड़ी-बूटियों से काम लेकर चिकित्सा कार्य चला सकते हैं, जो सस्ती भी होंगी। इस कार्य में सरकार सुशिक्षित वैद्यों को नियुक्त करे।

आपने समस्त बिहार के वैद्यों से उत्तर बिहार बाढ़ पीड़ितों के सहायता कार्य के

लिए अपनी सेवाएं प्रदान करने का आह्वान किया है और आयुर्वेदिक दवाओं से सहायता कार्य के निरीक्षण के लिए श्री पं० विनोदानन्द झा, एम० एल० ए०, की अध्यक्षता में १३ महानुभावों की एक समिति संघटित की है।

सुधानिधि के दो विषोद्गार—

जुलाई सन् १६५४ की सुधानिधि पत्रिका में उसके सम्पादक माननीय पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल जी ने दो विषोद्गार भी रखे हैं। पहिला तो 'वैद्यों पर टैक्स' नामक शीर्षक के अन्तर्गत है और दूसरा 'दिल्ली के चिकित्सा-बोर्ड' के सम्बन्ध में है। श्री शुक्ल जी ने लिखा है कि 'दिल्ली बोर्ड के रजिस्ट्रार श्री मजूमदार अधिक तेज तर्रार निकले। उन्होंने रजिस्टर्ड वैद्यों पर ११) रुपय साल का टैक्स ठोंक दिया।' इसपर मेरा यह निवेदन है कि मुझ पर तेज तर्रार होने का दोषारोपण श्री शुक्ल जी की सुरुचि का परिचायक नहीं हैं। मैं अवश्य ही दिल्ली बोर्ड में रजिस्ट्रार का कार्य सम्पादन कर रहा हूं। आदरणीय शुक्ल जी,जो युक्त प्रान्त इण्डियन मेडिसीन बोर्ड के सदस्य रह चुके हैं, को यह मालुम ही है कि रजिस्ट्रार के कार्यक्षेत्र की कुछ सीमाएं हैं। वह उनसे सीमित है। किसी भी संस्था का रजिस्ट्रार उसका एक अंग मात्र होता है, निर्देशक नहीं। बोर्ड के अधिवेशन की, उसकी गतिविधि की व्यवस्था लिपिवद्ध करना रजिस्ट्रार का कार्य है। ऐसी अवस्था में बोर्ड के गुण-दोषों का एक व्यक्ति पर आरोपण नितांत अनुचित है। यदि पूज्य शुक्ल जी को दिल्ली बोर्ड की कोई वात उचित नहीं जंची तो उन्हें चाहिये कि उस वात का दोष बोर्ड को दें, जिसके सदस्य महामण्डल के आजीवन और आश्रयदाता सदस्य हैं न कि रजिस्ट्रार को। और किसी व्यक्ति के नाम का उल्लेख करना तो उसको नितांत अपमानित करना है और व्यक्तिगत वैमनस्य प्रदर्शन करने के समान है। मै तो माननीय शुक्ल जी का, उनके विद्या-वृद्ध और वयोवृद्ध होने के नाते, बहुत आदर करता हूं और उनसे सौमनस्य बनाये रखने के निमित्त यह प्रार्थना करता हूं कि भविष्य में इस प्रकार नामोल्लेख करके व्यक्तिगत आक्षेप न करें तो अच्छा है।

दिल्ली का बोर्ड सरकारी है। अतएव यहाँ का सब कार्य वैधानिक रूप से हुआ करता है। फिर भी यदि किसी को मतभेद हो तो अपना सुझाव वैधानिक रूप से ही सरकार के समक्ष उपस्थित करना युक्तिसंगत है।

इसी सिलसिले में श्री शुक्ल जी की सूचना के लिए मैं यहां यह भी कह देना चाहता हूं कि बम्बई और पंजाब में वैद्यों से आजकल भी रिन्युअल फीस ली जा रही है।

दूसरा निवेदन मेरा श्री शुक्ल जी के उस आरोप पर है जिसमें उन्होंने यह कहा है कि 'दिल्ली का चिकित्सा बोर्ड गजब ढा रहा है'। माननीय श्री शुक्ल जी ने अपने इस वक्तव्य में भी मेरे नाम का उल्लेख किया है और मेरे पूज्य पिता जी का भी। लेख की

शैली ऐसी है कि पढ़ने वाले को ऐसा विदित होता है कि दिल्ली बोर्ड के द्वारा, श्री शुक्ल जी के कथनानुसार, जो अकार्य हो रहा है उसको हमलोग आगे बढ़ा रहे हैं। मेरा इस विषय में यह निवेदन है कि रजिस्ट्रार पर लांछन क्यों लगाया जाता है, जब कि यह पद अवैतनिक है। रही किसी संशोधन की चर्चा सो वह उसके सदस्यों का काम है। वे करें या न करें। पूज्य शुक्ल जी को रजिस्ट्रेशन के वर्ग त्रय से और वैद्य वृन्द से ११) रुपये वार्षिक चन्दा लिये जाने से क्षोभ हुआ है। और गजब की मार में उन्होंने कतिपय धुरन्धर विद्वानों के नामों का उल्लेख करके कहा है कि उनका नाम तृतीय वर्ग में रखा गया था। इस सम्बन्ध में मेरा नम्र निवेदन है कि विद्वान् वैद्यों को प्रथम वर्ग में रखा जाय एवं ११) रिन्युअल चन्दा न लिया जाय। ऐसी लिखा पढ़ी वैधानिक रूप से बोर्ड में चल रही हैं।

—आशुतोष मजुमदार

साहित्य-सत्कार

सचित्र आयुर्वेद राजयक्ष्मा विशेषांक--

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन औषधि क्षेत्र में तो प्रशंसनीय कार्य कर ही रहा है परन्तु आयुर्वेद के साहित्यिक क्षेत्र में तो विशेष उल्लेखनीय प्रयत्न किए हैं। पुस्तक साहित्य के साथ ही साथ प्रतिमास 'सचित्र आयुर्वेद के रूप में पठनीय सामग्री भी देते आ रहे हैं। आरम्भ से ही सचित्र आयुर्वेद ठोस और उत्तरदायित्वपूर्ण ज्ञानवर्धक सामग्री का सर्जन करता रहा है। प्रतिवर्ष एक विषय को लेकर अब तक वह कई विशेषांक हमें दे चुके हैं। इस वर्ष राजयक्ष्मा रोग पर जो विशेषांक हमारे हाथों में आया है--वह आयुर्वेद साहित्य में अद्वितीय है। यक्ष्मा विषय पर ऐसा सर्वाङ्गीण अंक पहिले कभी भी देखने में नहीं आया। सम्भवतः भारत की दूसरी भाषाओं में भी इस प्रकार का अंक प्रकाशित नहीं हुआ है। इस २४० पृष्ठ की पत्रिका में ठोस सामग्री भरी पड़ी है-- अनेक चित्र देकर विषय को और भी बुद्धिगम्य बना दिया गया है। मुख पृष्ठ का चित्र भी बहुत सुन्दर है जो स्वयं अपने विषय को प्रकट कर देता है।

पूरा अंक तीन भागों में विभक्त है जिसमें यक्ष्मा का इतिहास, वैज्ञानिक विवेचना और निदान, चिकित्सा और पथ्यापथ्य, प्रसार और प्रतिरोध सब ही के सम्बन्ध में सामग्री दी है। इस अंक में आयुर्वेद महारथियों और अर्वाचीन विज्ञानवेत्ताओं के लेख बहुत गम्भीरता के साथ अपने अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं। लेखों को छांटने में काफी सतर्कता बरती गई है।

यह अंक आयुर्वेद के विद्यार्थी और चिकित्सक के लिए जितना उपयोगी है उतना ही साधारण नागरिक के लिए भी उपयोगी है। प्रधानतया नगरों में रहनेवाले परिवारों में इसकी एक एक प्रति रखी जाये तो यक्ष्मा जैसे भयंकर रोग से बचाव करने में पर्याप्त सफलता मिल सकती है।

प्रान्तीय सरकारें, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, टाउन एरिया तथा जनपद संस्थायें इसकी प्रतियां मंगाकर अपने अपने यहां सार्वजनिक वाचनालयों, स्कूल तथा पंचायत घरों में रखें तो देश को यक्ष्मा के चंगुल से बचाने की ओर काफी बड़ा प्रयत्न होगा। जनसाधारण को यदि यक्ष्मा के प्रसार और प्रतिरोध के बारे में ज्ञान रहे तो बहुत अनर्थ होने से बच सकता है— जन और धन दोनों की ही रक्षा हो सकती है।

इस अंक को प्रकाशित कर श्री वैद्यनाथ औषधि भवन के संचालक महोदय ने निस्संदेह बहुत ही श्लाघनीय कार्य किया है। इसके लिए आयुर्वेद जगत उनका ऋणि रहेगा। इस अंक के सम्पादक मण्डल भी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने सामग्री के चयन में असाधारण योग्यता का परिचय दिया है।

—कैलाशचन्द्र अग्रवाल

वैद्यों का संगठन आवश्यक !

मैं पिछले २४ वर्षों से आयुर्वेद के लिये प्रयत्नशील हूं। जेल में वैद्य श्री बापालाल जी ने मुझे आयुर्वेद की कितनी ही महत्व पूर्ण बातें बतलाई हैं। डाक्टर गिल्डर और डाक्टर जीवराज मेहता सरीखे बड़े डाक्टरों की मैंने इतनी गालियां सुनी हैं, जिनका एक कोष ही बन जायगा। इन लोगों का कहना है कि 'आयुर्वेद माडर्न (अद्यावत) समयानुकूल नहीं है। आरोग्य विषयक आयुर्वेद का ज्ञान पांच-छः वर्ष के लड़के के समान अप्रबुद्ध है।' किन्तु इन लोगों से मेरा कहना है कि २८ करोड़ देहाती जनता की आरोग्यता का प्रश्न आयुर्वेद ही हल करेगा। शहर वाले लोगों के लिये ही सरकार के उद्योग विशेष रूप से होते हैं। कालेजों के पढ़े हुए लोग शहरों में रुपया कमाने में लगे रहते हैं; देहात की आवश्यकताओं की ओर उनका ध्यान नहीं रहता। आयुर्वेद की औषधियां सर्वत्र फैली हुई हैं। लोगों की आवश्यकता की ओषधियां गांवों के आसपास ही मिल सकती हैं। आयुर्वेद में त्रिदोष है; किन्तु वैद्यों में बहुत अधिक दोष हैं। उनमें सहकारिता की भावना नहीं है। वैद्य संगठित नहीं, अतः सरकार भी उन्हें नहीं पूछती। लोक संख्या के अनुसार चिकित्सकों की गणना करने में डाक्टरों का विचार होता है, वैद्यों का नहीं। यदि डाक्टरों के समान वैद्य भी कीमती दवाइयां बताने लगें तो उनका कोई उपयोग न होगा। बहुत-सी स्त्रियां डाक्टर बनती हैं; फिर वैद्य क्यों नहीं बनतीं? स्कालर्शिप देकर स्त्री वैद्य तैयार कीजिये। आयुर्वेद के रुग्णालय नहीं हैं। डाक्टर कहते हैं कि रोग होने दीजिये तब हम दवा करेंगे; किन्तु आयुर्वेद का कहना है कि अमुक प्रकार का पथ्यापथ्य और जीवन क्रम रखें तो बिमारी नहीं होगी। आयुर्वेद इसीलिये श्रेष्ठ है क्योंकि वह रोग न होने का मार्ग दिखाता है। केवल आयुर्वेद ही ऐसा आरोग्य शास्त्र है जो जन्म से लेकर मरण तक उपयोगी हो सकता है। अन्य पन्थ ऐसे नहीं। इसीलिये मैं आयुर्वेद का पुरस्कर्ता हूं। यदि वैद्य विश्वास के साथ आयुर्वेद के द्वारा जनता की सेवा करें तो अवश्य वे यशस्वी होंगे।

—श्री मंगलदास पक्वासा, भूतपूर्व राज्यपाल, मध्यप्रदेश।

(पृष्ठ ५४० का शेष)

और जो भाषण शिलान्यास के लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार कह कर राष्ट्रपति जी के विद्यापीठ में पधारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में श्री राष्ट्रपति जी ने वैद्य समाज के हित में एक ओजस्वी सारगर्भित और उत्साहवर्द्धक भाषण दिया। क्योंकि यह भाषण मुद्रित नहीं था अतएव उनके भाषण को लिपिबद्ध करके महासम्मेलनाध्यक्ष राष्ट्रपति जी की अनुमति लेकर पत्रिका के आगामी अंक में प्रकाशनार्थ भेजेंगे। उसी अंक में महासम्मेलनाध्यक्ष का भाषण भी प्रदर्शित कर दिया जायगा।

अब वैद्य समाज के सिर पर बहुत बड़ा भार आ गया है। वे अपने कार्य को आगे बढ़ाने के लिये भागीरथ प्रयत्न करें। हमें आशा है कि बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र तथा आयुर्वेद सेवासमिति उस कार्य में सहयोग देंगे।

आत्म विज्ञान भवन
ऋषिकेश, (देहरादून)।

—श्रीदत्त शर्मा, रायबहादुर, आयुर्वेद मार्तण्ड
मन्त्री—नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ।

[illegible] है।
[illegible] कहना है कि अमु[illegible]
[illegible] होगी। आयुर्वेद इसीलिये श्र[illegible]
[illegible]ल आयुर्वेद ही ऐसा आरोग्य शास[illegible]
[illegible] है। अन्य पन्थ ऐसे नहीं। इसीलि[illegible]
[illegible] आयुर्वेद के द्वारा जनता की सेवा[illegible]

—श्री मंगलदास पकवासा, [illegible]

(पृष्ठ ५४० का शेष)

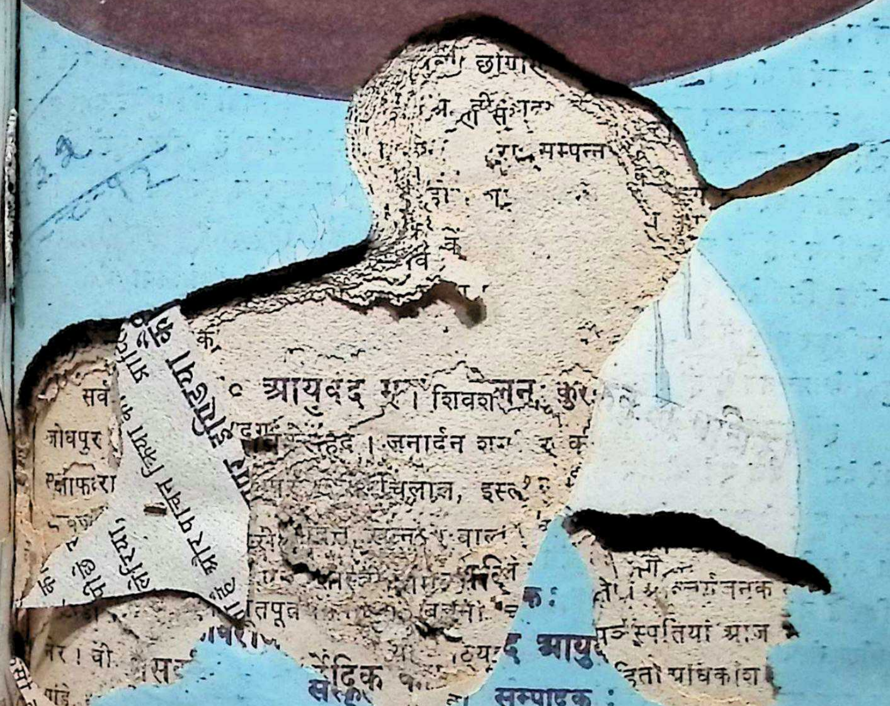
[illegible] लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार [illegible]
[illegible] पधारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में श्री राष्ट्[illegible]
[illegible] में एक ओजस्वी [illegible] और उत्साहवर्द्धक भाषण [illegible]
[illegible] नहीं था अत[illegible] को लिपिबद्ध करके [illegible]
[illegible] अनुमति [illegible]
[illegible] नाध्यक्ष [illegible]
[illegible] बहुत [illegible] प्रत[illegible]

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—दीपक प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली।

नवम्बर १९५५

कार्तिक २०१२

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका



सम्पादक :
वा० वा० नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य :

उप-सम्पादक
वैद्य श्री मोहनलाल शास्त्री

शुद्ध बंसलोचन



बंसलोचन अपने प्रभावकारी गुणों के कारण आयुर्वेद जगत में विशेष प्रचलित है तथा वृद्ध, बाल, युवा, स्त्री-पुरुष प्रायः इसका सेवन करते हैं। जावा, सुमात्रा के सघन जंगलों में बड़े कष्ट से बांस से निकाली जाने वाली यह औषधि तवासीर अथवा बांस कपूर के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसमें कैलशियम प्रचुर मात्रा में होती है। स्त्रियों में गर्भावस्था के कारण बहुधा कैलशियम की कमी होकर रक्त संचार धीमा पड़ जाता है जिससे रक्ताल्पता, मुखपर पीलापन, आलस्य, किसी कार्य में मन न लगना तथा क्षय आदि भयंकर रोग हो जाते हैं—ऐसी अवस्था में बंसलोचन का सेवन अनिवार्य रूप से क... ...हिये। यह कैलशियम की कमी का पूरक तथा बलवर्धक भी है। प्रसवके प... ... दोनों स्वस्थ और सुगठित रहते हैं।

बंसलाचन दूध अ... ...की अस्थियों को पुष्टि तथा बढ़ाव को प्रोत्स... देता है। ... वीर्यवर्धक है और वृद्धों को भी विशेष शक्ति प्रदान ... ह अद्भुत व अमूल्य देन है। किन्तु दुख का विषय है कि अ... ...का मिलना असम्भव ही हो गया है—सोडा सिलीकेट (जि... ...मोनिया जैसी अखाद्य एवं हानिकर वस्तुओं से बना... ...नकली वस्तुओं के प्रचलन से ही आयुर्वे...

हमें जनता का पूर्ण विश... हमारे देश के वैद्य एवं औषधि नि... त्यागकर पूर्ण विशुद्ध... हुआ बांस... ...बंस... है जिस... ...निकार... निर्माण संस्था... ...रोध है ... राय साध क... ...बांस मार्का अ... साध पान के पैकिंग में सर्वत्र प्राप्य है। जन... ...स० १८८७ ए... एकमात्र असली बंसलोचन का कारखा...

...सपतराय साध, क...

...कहना है कि अ...
...। आयुर्वेद इसीलिये श्र...
आयुर्वेद ही ऐसा आरोग्य शास्...
अन्य पन्थ ऐसे नहीं। इसील...
...युर्वेद के द्वारा जनता की सेवा...
—श्री मंगलदास पकवासा...

(पृष्ठ ५४० का शेष)

...लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार...
पधारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में श्री राष्ट्र...
...में एक ओजस्वी ... और उत्साहवर्द्धक भाषण...
...नहीं था अत... ...को लिपिबद्ध करके...
...अनुमति ले...
...नाध्यक्ष...
...बहुत ब...

महासम्मेलन सदस्य, सम्बद्ध संस्थाओं तथा पत्रिका ग्राहकों के लिये

विशेष सूचनाएं

१. अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के मान्य सदस्यों तथा सम्बद्ध संस्थाओं को यह विदित ही है कि प्रतिवर्ष सदस्यता तथा सम्बद्धता का शुल्क ३१ दिसम्बर को समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार पत्रिका का ग्राहकत्व शुल्क भी ३१ दिसम्बर को समाप्त हो जाता है। महासम्मेलन नियमावली के अनुसार महासम्मेलन-विद्यापीठ सभापतियों के निर्वाचन में मतदान का अधिकार प्राप्त करने तथा महासम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में प्रतिनिधिस्वरूप सम्मिलित होने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक मान्य सदस्य का सदस्यता शुल्क उस वर्ष की ता० ३० जून तक महासम्मेलन कार्यालय में अवश्य पहुंच जाये। मतदाता अथवा सदस्य सूची में भी उन्हीं सदस्यों के नाम पते प्रकाशित किये जाते हैं जिनका शुल्क ३० जून तक कार्यालय में पहुंच जाता है। ३० जून के पश्चात् बनने वाले सदस्यों को न तो सभापति निर्वाचन में मतदान का अधिकार रहता है न वार्षिक सम्मेलन में प्रतिनिधिस्वरूप सम्मिलित होने का—उन्हें केवल म[illegible]मेलन पत्रिका ही नियमानुसार निःशुल्क प्राप्त करने का अधिकार रहता है। [illegible] छा[illegible] महासम्मेलन के मान्य सदस्यों की सेवा में यह सानुरोध प्रार्थना करेंगे [illegible] शुल्क हर अवस्था में ३० जून से पूर्व ही भेजा करें ताकि [illegible] सम्पन्न [illegible] न रहें और [illegible] समय पर उनका उपयोग कर सकें।

२. महासम्मेलन के [illegible]
भेज, केवल उसी [illegible] कभी भी सदस्यता शुल्क
[illegible] कि उनका शुल्क प्राप्त होता
[illegible] पत्रिकायें प्राप्त करने का अधिकार
[illegible] के अंक भी यदि प्राप्त हों तो
[illegible] लये बाध्य नहीं है। ऐसी स्थिति में
[illegible] सदस्य प्रायः पत्रिका के पहिले कुछ
[illegible] रहती है। इस

[illegible] आयुर्वेद [illegible] शिवशंकर [illegible]
जोधपुर में [illegible] जनार्दन [illegible]
[illegible] चिलाल, इस [illegible]
[illegible] कुमार को [illegible] जनक [illegible] ीय है कि
[illegible] भूतपूर्व [illegible] वाली वनस्पतियां आज भी [illegible] १५
[illegible] सकीय आयुर्वेदिक [illegible] मौजूद हैं। अधिकांश वनस्पतियों का
[illegible] प्रयोग भी करते हैं किन्तु
प्रास्ता[illegible] आश्चर्यजनक लाभ नहीं
माननीय मुख्य मंत्रीजी, स्वास्थ्य [illegible] क्यों है? केवल इसलिए कि उनका [illegible]
यह देख कर भी अधिक प्रसन्नता हो रही है [illegible] और संचय के उस वैज्ञानि[illegible]

संस्थाओं ने बार २ लिखने पर ही वर्ष के अन्त में शुल्क भेजा है यह स्थिति वांछनीय नहीं। सभी संस्थाओं को अपना शुल्क समय पर भेज देना चाहिये।

४. नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ से सम्बद्ध शिक्षण संस्थायें तथा अध्यापक क्रमशः अपना सम्बद्धता एवं सदस्यता शुल्क तथा १५) तथा ५) ३१ दिसम्बर तक अवश्य कार्यालय में भेज दें, अन्यथा आगामी वर्ष की परीक्षाओं के लिये उनके छात्रों के आवेदन पत्रों की स्वीकृति में बाधा पहुंचेगी। कुछ संस्थाओं ने इस वर्ष भी अपना सम्बद्धता शुल्क नहीं भेजा। ऐसी संस्थाओं के लिये यह आवश्यक है कि वे १९५४-५५ तथा १९५५-५६ दोनों वर्षों के लिये अपना सम्बद्धता शुल्क भेजें अन्यथा उनके छात्रों के आवेदन-पत्र स्वीकृत नहीं होंगे।

५. जो महानुभाव इस वर्ष सदस्य न रहना चाहें उन्हें इसकी सूचना पत्र द्वारा ३१ दिसम्बर तक कार्यालय को दे देनी चाहिये।

६. सदस्यता शुल्क भेजते समय अपना नाम और पूरा पता शुद्ध तथा स्पष्ट अक्षरों में लिखें। यदि किसी सदस्य महानुभाव का पता परिवर्तन हुआ हो तो इसकी सूचना मनि-आर्डर कूपन में स्पष्टतया देनी चाहिये तथा साथ ही पुराना पता भी लिख देना चाहिये। पता बदलने के स्पष्ट आदेश के अ... कहना है कि अ... न नहीं किया जाता।

...र्गा। आयुर्वेद इसीलिये श्र...

अ० भा० आ... आयुर्वेद ही ऐसा आरोग्य शास्... चांदनी चौक, देहली-६

...। अन्य पन्थ ऐसे नहीं। इसीलि...

पायुर्वेद के द्वारा जनता की सेवा...

—श्री मंगलदास पकवासा, ...

(पृष्ठ ५४० का शेष)

लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार ... पधारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में श्री राष्ट्र... में एक ओजस्वी ... और उत्साहवर्द्धक भाषण ... नहीं था अत... को लिपिबद्ध करके ... अनुमति ले... नाध्यक्ष ... बहुत ब...

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ

सन् १९५६ वर्षीय-परीक्षा सम्बन्धिन्या सूचना

१—१९ मार्च १९५६ तः परीक्षा आरप्स्यन्ते।

२—(क) प्रतिखण्डम्-परीक्षाशुल्कम्:—आयुर्वेदाचार्य-वैद्याचार्ययोः १५) रूप्यकाणि। आयुर्वेद विशारद तथा वैद्यविशारदयोः १०) रूप्यकाणि। आयुर्वेद भिषजः ७) रूप्यकाणि।

(ख) यैः परीक्षार्थिभिः एतत्पूर्वं २) रूप्यकद्वयं विद्यापीठीय रजिस्ट्रेशन शुल्कं न प्रदत्तं तैः २) रूप्यकद्वयं रजिस्ट्रेशनात्मकं शुल्कं पृथक् प्रहेतव्यं भविष्यन्ति।

(ग) विद्यापीठकार्यालये परीक्षाशुल्कं प्राप्तेरन्तिमा तिथिः १५ दिसम्बर १९५५ वर्तते तदनन्तर ३१ दिसम्बर इति यावत् सैकं रूप्यकं, अथ च १५ जनवरी १९५६ इति यावत् रूप्यकद्वयं विलम्बशुल्कसहितं स्वीकृतं भविष्यति।

३—परीक्षा आवेदनपत्राणि प्राप्तुं परीक्षाशुल्कं कार्यालये अग्रिमं प्रहेतव्यम्। शुल्कप्रेषण समये शुल्कविवरणम् तथा च पूर्णस्थान संकेतनं मनीआर्डरकूपने स्पष्टाक्षरैः विन्यसनीयम्, यतोहि आवेदनपत्राणि [illegible] छात्रा [illegible]व प्रहीतेरन्, शुल्क मध्ये चैक्स तथा पोस्टल आर्डर्स स्वीकृतं न भ[illegible]

४—कार्यालये-शुल्क-प्राप्ति-रसी[illegible] सम्पन्न [illegible] देशस्य M. O. प्रत्यागच्छता रसीदोपर्यंकितं भवि[illegible] [illegible]पत आवेदनपत्रे पृथक् कोष्ठे न्यस्तं भविष्यति। [illegible] यथास्थाने परीक्षार्थिभिः उल्लेखनम[illegible] [illegible]तव्यम्, यतोहि पत्रव्यवहारे [illegible]

[illegible] यावत् विलम्बशुल्कमन्तरा स्वीकृतं [illegible] यावत् दण्डरूपात्मकेनेकेन रूप्यकेण [illegible] मन् वर्षे एव प्रकाशितानि प्रयोक्त- [illegible]

[illegible] आयुर्वेद [illegible] शिवश[illegible] जोधपुर [illegible] जनार्दन श[illegible] [illegible]चिलाल, इस्ल[illegible] [illegible] कुमार को [illegible] छात्र न्यून [illegible] भूतपूर्व [illegible] वाली वनस्पतियां आज भी भा[illegible]

[illegible]सकीय आयुर्वेदिक [illegible] मौजूद हैं। अधिकांश वनस्पतियों को [illegible] प्रयोग भी करते हैं किन्तु [illegible] आश्चर्यजनक लाभ नहीं

प्रास्ता[illegible]

माननीय मुख्य मंत्रीजी, स्वास्थ्य [illegible] क्यों है? केवल इसलिए कि उनके प्राप्ति यह देख कर भी अधिक प्रसन्नता हो रही है [illegible] और संचय के उस वैज्ञानिक [illegible]

८—त्रिवेन्द्रम्, वारंगल, पुरी, गौहाटी, श्रीनगर, जम्मू, काठमाण्डू स्थानेषु पराक्षाकेन्द्राणि स्थापितानि सन्ति।

९—आयुर्वेदाचार्य तथा आयुर्वेद विशारद परीक्षर्थिभिः प्रश्नोत्तराणि शूद्धसंस्कृतभाषायामेव लेख्यानिं। वैद्याचार्य, वैद्यविशारद तथा आयुर्वेद भिषक् परीक्षार्थिभिश्च हिन्दी अथवा स्वीकृत प्रादेशिक भाषायां प्रश्नोत्तराणि लेख्यानि।

१०—विद्यापीठसम्बद्धसंस्थाभिरथ च स्वीकृताध्यापकमहानुभावैः क्रमशः सम्बद्धता शुल्कं १५) रूप्यकाणि अथवा मान्यसदस्यता शुल्कं ५) रूप्यकाणि १५ दिसम्बर १९५५ इति यावत् नूनं प्रहेतव्यम्। परीक्षावेदनपत्राणि सर्वभावेन सम्यक् समाजोक्य हस्ताक्षरैरलंकर्त्तव्यानि, यतोहि आवेदनपत्रापूरणे कृतासावधानतयाः तथा च तस्मादुत्पन्ने हानेरुत्तरदायी आवेदनपत्रपूरक एव भविष्यति।

११—प्रजावैद्यपरीक्षा समस्तभारतवर्षे एव स्थगिता कृता, अतएव कोपि परीक्षार्थी प्रजावैद्य परीक्षायाः शुल्कं न प्रेषयेत्।

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ

सन् १९५६ वर्षीय परीक्षा सम्बन्धी सूचनायें

१—परीक्षाएं १९ मार्च से प्रारम्भ होंगी।

२—(क) परीक्षाशुल्क प्रति खण्ड आयुर्वेदा[illegible] वैद्याचार्य १५) आयुर्वेद विशारद तथा वैद्य विशारद १०) [illegible] भिषक् ७) रुपये।

(ख) जिस परीक्षार्थी [illegible] [illegible]य रजिस्ट्रेशन शुल्क न दिया हो[illegible] २) [illegible] शुल्क के अतिरिक्त देना होगा।

(ग) विद्यापीठ क[illegible] अन्तिम तिथि १५ दिसम्बर १९५५ है, इसके पश्चा[illegible] तथा १५ जनवरी १९५६ तक २) रुपए विलम्ब[illegible] [illegible]गा।

३—परीक्षा सम्वन्धी आवेदनपत्र[illegible] भेजना होगा। शुल्क भेजते सम[illegible] कूपन पर स्पष्टतया लिखा होन[illegible] सकें। चैक्स तथा पोस्टल आर्डर [illegible]

४—कार्यालय शुल्क प्रा[illegible] पर लिखी [illegible] में [illegible]

[illegible] कहना है कि अनु[illegible] [illegible]गा। आयुर्वेद इसीलिये श्र[illegible] [illegible] आयुर्वेद ही ऐसा आरोग्य शास[illegible] [illegible] अन्य पन्थ ऐसे नहीं। इसीलि[illegible] [illegible]पायुर्वेद के द्वारा जनता की सेवा [illegible]

—श्री मंगलदास पकवासा

(पृष्ठ ५४० का शेष)

लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार [illegible] पधारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में श्री राष्ट्[illegible] में एक ओजस्वी [illegible] और उत्साहवर्द्धक भाषण [illegible]त नहीं था अत[illegible] को लिपिबद्ध करके [illegible] अनुमति ले[illegible] [illegible]नाध्यक्ष [illegible] बहुत ब[illegible]

सन् १९५६ वर्षीय परीक्षा सम्बन्धी सूचनायें

६—नियम विरुद्ध अथवा असावधानता से भेजा हुआ शुल्क प्रति परीक्षार्थी २) रुपया दण्ड शुल्क काट कर ही वापस किया जा सकेगा।

७—किसी भी कारण से परीक्षा में अनुपस्थित छात्र का शुल्क वापस नहीं किया जा सकेगा। क्रमांक बनने के पूर्व यदि परीक्षार्थी अपनी अनुपस्थिति का विशिष्ट कारण प्रमाणित कर दे तो उसका शुल्क केवल अग्रिम वर्ष के लिये सुरक्षित किया जा सकता है, किन्तु क्रमांक बन जाने के पश्चात् वह भी नहीं हो सकेगा।

८—आयुर्वेद विशारद तथा आयुर्वेदाचार्य परीक्षा में प्रश्नोत्तर केवल संस्कृत भाषा में ही लिखे जा सकेंगे, अन्य परीक्षाओं में उत्तर हिन्दी अथवा स्वीकृत प्रादेशिक भाषा में लिखे जा सकते हैं।

९—विद्यापीठ सम्बद्ध संस्थाओं तथा स्वीकृत अध्यापक महानुभावों को चाहिये कि वे (क) क्रमशः अपना सम्बद्धता शुल्क १५) रुपया अथवा मान्य सदस्यता शुल्क ५) रुपया १५ दिसम्बर, १९५५ तक अवश्य भेज दें तथा (ख) परीक्षार्थियों के आवेदनपत्रों को प्रत्येक अंश में भली प्रकार देखभाल कर उनपर हस्ताक्षर करें। क्योंकि आवेदनपत्रों के भरने में की गई असावधानता और उससे होने वाली हानि के उत्तरदायी सर्वथा वे ही होंगे।

१०—त्रिवेन्द्रम, वारंगल, गोहाटी, पुरी, श्रीनगर, जम्मू तथा काठमाँडू में भी परीक्षा केन्द्र स्थापित किये गये हैं।

११—प्रजा वैद्य परीक्षा सम्पूर्ण भारत में बन्द कर दी गई है अतः कोई परीक्षार्थी प्रजा-वैद्य परीक्षा के लिये शुल्क भेजने [illegible] न करें।

महालक्ष्मी मार्केट, [illegible] छांगारा [illegible]
चांदनी चौक, देहली। [illegible]

नानकचन्द्र
[illegible] विद्यापीठ मन्त्री।

॥ श्री धन्वन्तरयेनमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द आयुर्वेदालंकार
संस्कृतविभाग सम्पादकः—श्री वा० बा० नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः
उप-सम्पादक—वैद्य श्री मोहनलाल शास्त्री

पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४२ अंक ११	दिल्ली, कार्तिक २०१२, नवम्बर १९५५	वार्षिक ५) एकप्रति ॥)

सम्पादकीय

कहना है कि अ...

...गा । आयुर्वेद इसीलिये श्र...

दवे स... आयुर्वेद ही ऐसा आरोग्य शास...ommitee)

प्रायः सर्व... । अन्य पन्थ ऐसे नहीं । इसीलि...मध्यशासक (Central Govt. of India) स्थापितया ... आयुर्वेद के द्वारा जनता की सेवा...al Council of Health) आयुर्वेद

—श्री मंगलदास पकवासा, ...

यूनानी-होम्योपाथि इति ... नयस्य, शास्त्रशिक्षा-

(पृष्ठ ५४० का शेष)

कर्माभ्यासयोः सर्वत्र भारते ए... ...निर्देष्टुं

काचिदुपसमितिः गते १९५५ जन... लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार ...

अस्याः समित्याः प्रथममधिवेशनं ... पधारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की । उत्तर में श्री राष्ट्र-

सारं निर्दिष्टत्रिविधवैद्यकनयस्य ... में एक ओजस्वी ... और उत्साहवर्द्धक भाषण

भ्यः, व्यक्तिविशेषेभ्यः ... नहीं था अत... को लिपिबद्ध करके

कलनाय पृथ... अनुमति ले...

श्री० ... बंस... नाध्यक्ष ...

... निकार ...

पश्यत प्रथमं मेलनेकौटिल्यम् । भारते प्रचरतां सर्वविधानामेव वैद्यकनयानां तत्तद-नुसारिभिषजां पञ्जीकरणनियमनादिकं (Registration & Regulation) यदि पुनः-संस्करणीयमिति राजकीयानां प्रवृत्तिः, तर्हि आयुर्वेदयूनानीहोम्योपाथिवद् आलोपाथिक वैद्यकमपि इह गृहीतं स्यात् । आलोपाथिकं हित्वा आयुर्वेदयूनानिहोमयोपाथि इति त्रितय-स्यैव मिलित्वा एकसूत्रीकरणे किंवा हृदयम् ? न क्लेशेन मृग्यम्, स्पष्टमेव । अद्य राज्य शासकानां मते वैद्यकं सर्वं, वैज्ञानिकं अवैज्ञानिकमिति द्वेधा विभक्तम् । आलोपाथिकमेकमेव वैज्ञानिकं । शिष्टं सर्वमवैज्ञानिकमितितैर्विभागः कल्पितः । वैज्ञानिकवैद्यकस्य शिक्षाकर्मा-भ्यासनियमनादिकमपि पृथगेव परिपालनीयं परिपाल्यत एव । अन्यानि वैद्यकानि परस्परं भूयिष्ठं भिन्नान्यपि अवैज्ञानिकत्वेन एकगणान्तर्योज्यानि इति अभिसन्धाय, आयुर्वेद यूनानि होमयोपाथि इति त्रयाणां वैद्यकानां एकसूत्रे बन्धः कृतः । विदेशीयत्वेन आलोपाथिकं न गृहीतं आयुर्वेदादिना सहेति नैवाशङ्कितुं शक्यम्, होमियोपाथिकस्यापि विदेशीयतरत्वात् । किञ्च, भारतीयानामपि न समेषां वैद्यकानामिह सङ्कलनं कृतं । मद्रासप्रान्ते महाप्रसिद्धस्य देशीयस्य सिद्धवैद्यकसंप्रदायस्य अगृहीतत्वात् । सिद्धवैद्यकसंप्रदायस्य आयुर्वेदान्तर्भूतत्वा-त्तस्य अपृथग्ग्रहणमिति चेत् पृथग्गणितं यूनानिवैद्यकमपि भूयसा आयुर्वेदादभिन्नमेव । अतो-वैज्ञानिकवैद्यकं अवैज्ञानिकवैद्यकमिति द्वेधा विभजनमेव राजकीयानामन्तराशय इति न संशयः । परं, तथा विस्पष्टं निर्वचनं भारते भूयिष्ठानां प्रजानां मनस्तापावहं स्यादिति, तथा अनिर्दिश्य वचसा, कर्मणा एकी[illegible]

अतोऽस्माभिरायुर्वेदीयै रा[illegible] यदायुर्वेदचिकित्सकानां पञ्जीकरणे (Registration) [illegible] आवश्यकान् [illegible] नियम विशेषान् संपूर्णंत आद्रियामहे । कि[illegible] वैज्ञानिकावैज्ञानिक-भेदकल्पना कण्ठरवेणानुक्ताऽपि [illegible] नां पृथक् श्रेणीनिपातेन आयुर्वेदस्य अवैज्ञा[illegible] महे । अथ यदि मन्यते भारते वै[illegible] योः (Regulation) सौक-[illegible] नां पञ्जिकाव्यवस्थे चिकीर्षिते, [illegible] न कापि क्षतिः । अद्यत्वे भारते [illegible] इति पञ्चप्रकाराणि वैद्यकनयानि [illegible] भारतीयचिकित्सापद्धतीनां [illegible] of Ind. Medi-[illegible] रीयाश्च,

पृथक् संपादनमेव साधु स्यात् । पाश्चात्य पौरस्त्य वैज्ञानिकावैज्ञानिकविशुद्धमिश्रितेत्यादि-रूपेण पञ्जिकानां विभजनं सर्वथा व्याकुलकारणं स्यात् ।

इदानीं भारतवर्षे वर्त्तमानायाः वैद्यकवर्गानाँ शिक्षासरण्याः परिस्थित्यां सम्यक् परामृष्टायां, सर्वव्यापिकाया एकस्याः पञ्जिकायाः परिकल्पनं नैवयुज्यते । पञ्जीव्यवस्थयोनियमान् निर्धार्य, वैद्यकानां वर्गानुसारिण्याः पञ्जिकायाः कल्पनमेव युज्यते । अतः, दवे समित्यां आयुर्वेदयूनानिहोमियोपाथि इति त्रयाणां एकस्यां पञ्जिकायां सूत्रणं यदुद्दिष्टं तदसम्यक् । पृथक् पृथगेवैषां पञ्जिकासंपादनीया समित्या विसृष्टानां प्रश्नानां विमर्शं आगामिनि मासे करिष्यामः ।

—वा० बा० नटराज शास्त्री आयुर्वेदाचार्यः

(पृष्ठ ५४० का शेष)

... लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार ... पधारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की । उत्तर में श्री राष्ट्र... में एक ओजस्वी ... और उत्साहवर्द्धक भाषण ... नहीं था अतः ... को लिपिबद्ध करके ... अनुमति ले... ...नाध्यक्ष ... बहुत ब...

मिश्रित शिक्षा पद्धति आयुर्वेद के लिए हानिप्रद

श्री वैद्य शंकरलाल शर्मा, भिषगाचार्य, फतेहपुर, (राजस्थान)

बहुत पुराने समय से आयुर्वेद-विज्ञान मानव को स्वास्थ्य प्रदान करता आ रहा है। दो हजार वर्ष पहले यह आयुर्वेद-शास्त्र पूर्ण उन्नतावस्था में था, परन्तु दैव दुर्विपाक से अथवा उत्थान एवं पतन क्रम से आते हैं इस नियम से समझें, वर्तमान समय में आयुर्वेद का वह रूप जो कि हजार वर्ष पहले था नहीं रहा। इसका कारण यह है कि हमारा देश हजारों वर्ष पराधीन रहा है। यह मानी हुई बात है कि विजेता देश विजित देश पर अपनी सभ्यता, संस्कृति व अन्य सभी [illegible] हठात् थोप देता है। पराधी[illegible] हमारी सभ्यता व संस्कृति पर [illegible] थे वैसे ही आयुर्वेद पर भी हुए [illegible] वेंद के बहुत से अमूल्य रत्न नष्ट [illegible] उसी का यह परिणाम है [illegible]

[illegible]

स्वतंत्र होने के ३ वर्ष बाद ही एक पञ्च-वर्षीय योजना तैयार की थी जो अब समाप्त होने जा रही है और द्वितीय पञ्च-वर्षीय योजना करीब करीब तैयार हो चुकी है। प्रथम पञ्च-वर्षीय योजना में आयुर्वेद की उन्नति के लिये सरकार ने कोई महत्व-पूर्ण उपाय नहीं किये, केवल आयुर्वेद के लिए साढ़े सत्रह लाख रुपये की सहायता दी थी। द्वितीय योजना में पूर्वोक्त राशि से कुछ विशेष राशि नियत की है। प्रान्तीय [illegible]रकारें भी कुछ कुछ कार्य आयुर्वेदोन्नति [illegible] रही हैं। परन्तु एक समस्या [illegible] है। वह यह कि वर्तमान [illegible] का [illegible]म कैसा होना [illegible] महानुभावों, एवं अन्य [illegible]य है कि आयुर्वेदीय पाठ्य-[illegible]ुनिक एलोपैथी के विषयों का [illegible]वेश होना चाहिये क्योंकि केवल [illegible]द के ग्रन्थों के अध्ययन से काम नहीं [illegible]। कुछ वैद्य महानुभावों की राय है [illegible] विशुद्ध आयुर्वेद के ग्रन्थ कर्माभ्यास [illegible] व्यवस्था होनी चाहिये। [illegible] विषय में दो मत [illegible] करना है [illegible] या [illegible] से

[illegible] च्यवन को यु[illegible]कुमार को आ[illegible]जनक यो[illegible] वाली वनस्पतियां आज भी भा[illegible] मौजूद हैं। अधिकांश वनस्पतियों को [illegible] प्रयोग भी करते हैं किन्तु [illegible] आश्चर्यजनक लाभ नहीं [illegible] क्यों है? केवल इसलिए कि उनका प्र[illegible], और संचय के उस वैज्ञानि[illegible]

एलोपैथी विज्ञान के विषय भी पढ़ाये जावें। शुद्ध का अर्थ है चरकादि ग्रंथ ही पढ़ाये जावें। जहाँ तक मेरा अपना निजी ख्याल है मिश्रित शिक्षापद्धति से आयुर्वेद का अहित ही होगा कारण कि वर्तमान में जो भी आयुर्वेद पढ़ते हैं उनका लक्ष्य अधिक द्रव्योपार्जन करना मात्र रहता है। बहुत कम ऐसे वैद्य होंगे जिनका लक्ष्य "नार्थार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति" यह हो। ऐसी अवस्था में मिश्रित शिक्षा से शिक्षित वैद्यों का आयुर्वेद की उन्नति से कोई प्रयोजन न होकर अधिक द्रव्योपार्जन करना ही लक्ष्य रहेगा। वे उक्त भावना से प्रेरित होकर चिकित्सा क्षेत्र में प्रवृत होंगे और आधुनिक औषधियों का ही अधिक प्रयोग करेंगे। प्रायः यह सभी जानते है कि आधुनिक औषधियाँ सद्यः फलप्रद होती हैं; भविष्य में चाहे हानि ही क्यों न हो। यद्यपि सा... से लेकर प्रतिष्ठित व्यक्ति ... विश्वास है ... औषधि... में अवश्य करती हैं और ... कर देती हैं तथा कोई अनि... नहीं करतीं इसके विपरीत अ... धियाँ जितना जल्दी लाभ करती ... अधिक हानिप्रद भी हैं। यह सब कुछ ... हुए भी चूंकि समय का प्रवाह ही ... कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी श्रेणी ... क्यों न हो, रुग्ण होने पर ... ठीक होना चा... सिवाय वि... उपाय ...

अध्ययन न हो सकेगा और न आधुनिक विज्ञान का ही; ऐसी अवस्था में "धोबी का कुत्ता घर का न घाट का" वाली कहावत चरितार्थ होगी। मिश्रित शिक्षा पद्धति के समर्थकों का यह तर्क है कि आयुर्वेद विज्ञान में शारीर, शल्य शालाक्य, प्रसूतितन्त्र, कौमारभृत्य, विष इनका वर्णन, जैसा आधुनिक विज्ञान में सविस्तार है वैसा नहीं है और न निदानविषयक ही कोई साधन है अतः मिश्रित शिक्षा पद्धति अत्यावश्यक है।

शारीर का वर्णन सविस्तार नहीं है यह कहना ठीक नहीं। स्वर्गीय कविराज गणनाथ सेन महोदय द्वारा लिखित "प्रत्यक्ष शारीर" आधुनिक शारीर शास्त्र से किसी भी रूप में कम नहीं है। कुछ महानुभावों का कहना है कि यह प्रत्यक्ष शारीर पाश्चात्य ...शास्त्र का अनुवाद मात्र है, परन्तु ...ठीक नहीं क्योंकि लेखक महोदय ...स्तक के उपोद्घात में इसका ... कर दिया है। समय-समय पर ...नाओं के द्वारा ही शास्त्र का ... बृहत्त्रयी भी एक साथ ही ...यी में शिरा

...कहना है कि अ... ...गा। आयुर्वेद इसीलिये श्र... आयुर्वेद ही ऐसा आरोग्य शास्... अन्य पन्थ ऐसे नहीं। इसीलि... ...आयुर्वेद के द्वारा जनता की सेवा...

—श्री मंगलदास पकवासा, ...

(पृष्ठ ५४० का शेष)

लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार ... पधारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में श्री राष्ट्र... में एक ओजस्वी ... और उत्साहवर्द्धक भाषण ... न नहीं था अतः ... को लिपिबद्ध करके ... अनुमति ले... ...नाध्यक्ष ... बहुत ब...

में सुश्रुत एवं वाग्भट में जो कुछ वर्णित है उसका प्रत्यक्षीकरण करते हुए उसको और बढ़ाना चाहिये । आप लोगों को सुनकर आश्चर्य होगा कि हड्डी टूटना, मुड़ना, सन्धि-च्युति को ठीक करना तो अब भी कई ग्रामीणों के लिए साधारण बात है । सुश्रुता-चार्य ने व्रण के जो ६० उपक्रम बताये हैं वे कितने महत्त्व के हैं परन्तु कोई भी वैद्य उन पर पूरा ध्यान नहीं देता केवल परीक्षोत्तीर्ण करने के लिये रट लिये जाते हैं । मनुष्य में लगन होनी चाहिये फिर वह क्या नहीं कर सकता । क्या पाश्चात्य शल्य शालाक्य आज से २० वर्ष पहले इतने उन्नत थे जितने कि आज ? उन लोगों ने "शरीरं पातयेय कार्यं साधयेयम्" इस भावना से प्रेरित होकर कार्य किया उसी का यह सुन्दर फल है । भारत के पुराने शल्य चिकित्सक [illegible] जीवक आदि के पास एक्सरे [illegible] छांगार [illegible] साधन थे फिर भी उन्होंने कैसे [illegible] के शल्य कर्म किये यह इति[illegible] छिपा नहीं है । हमारे पूर्वज मह[illegible] ऐसे २ उपाय आविष्कृत किये थे [illegible] कल जो रोग [illegible]

चिकित्सा एक वैद्य महानुभाव ने वरुण छाल क्वाथ, शिलाजतु, सर्वतोभद्र रस से की । मेरे लिखने का यह अभिप्राय नहीं है कि वैद्यों को शल्य शास्त्र की शिक्षा की आवश्यकता नहीं है । आवश्यकता है परोपकार की भावना से प्रेरित होना । दुःख है कि वर्तमान में आयुर्वेद को केवल धनोपार्जन करने का साधन मान लिया है । हमारे पूर्वज महर्षियों ने इसका आविष्कार प्राणि-मात्र के कल्याण के लिये किया था ।

प्रसूति तन्त्र और कौमार भृत्य के विषय में जो कुछ चरकादि में लिखा है वह भी महत्वपूर्ण है । गर्भाधान से प्रसवपर्यन्त स्त्री की चर्या का कितना सुन्दर वर्णन है, यदि गर्भवती स्त्री इसका पालन प्रथम दिन से करने लग जावे तो वर्तमान में जो गर्भा-वस्था में कई उपद्रव होते हैं बिलकुल ही न [illegible]रन्तु उन नियमों का पालन कोई करे [illegible] संस्कार जो कि लिङ्ग परि-[illegible] सम्पन्न [illegible]या जाता है [illegible]मारे पूर्वज [illegible] । इसके द्वारा [illegible] शिशु लड़के के रूप में [illegible]सकता है । आजकल के सभ्य [illegible]वाले व्यक्ति चाहे इस पर विश्वास [illegible] परन्तु यह बात बिलकुल सत्य है । [illegible] नामक सिद्ध योग की देन भी [illegible]ही है । इस सिद्ध योग से स्त्रियों की [illegible] सम्बन्धी सभी विकृतियां चाहे वे [illegible] च्यवन को [illegible] हो समूल नष्ट हो [illegible] कुमार को [illegible] सन्तान होती वाली वनस्पतियां आज भी भा[illegible]किया है मौजूद हैं । अधिकांश वनस्पतियों को [illegible] प्रयोग भी करते हैं किन्तु [illegible] आश्चर्यजनक लाभ नहीं क्यों है ? केवल इसलिए कि उनके प्र[illegible] और संचय के उस वैज्ञानि[illegible]

[illegible] आयुर्वेद [illegible] । शिवशरन [illegible]
जोधपुर [illegible] में [illegible] लहद । जनार्दन श[illegible]
[illegible] चिलाल, इस[illegible]
[illegible] भूतपूर्व [illegible]
[illegible]सकीय आयुर्वेदिक [illegible]
प्रास्ता[illegible]
माननीय मुख्य मंत्रीजी, स्वास्थ्य [illegible]
यह देख कर भी अधिक प्रसन्नता हो रही है

से मूढगर्भ की स्थिति हो जाय तो उसके लिये प्रथम कई उपचारों का सुन्दर वर्णन तदपुरान्त शस्त्र प्रयोग का विधान किया है। परन्तु वही शल्य शालाक्य वाली स्थिति इसमें भी है, अर्थात् ग्रन्थ ज्ञान के सिवाय और कुछ नहीं। केवल ग्रन्थ ज्ञान मात्र से तो काम नहीं चल सकता, आखिर कर्माभ्यास हर क्षेत्र में अपेक्षित है। स्वयं सुश्रुताचार्य ने ही कहा है कि जो वैद्य केवल शास्त्र को ही जानता है वह शल्य आदि कर्म नहीं कर सकता, उसकी दशा उस सिपाही जैसी होती है जो कि डरपोक है पर हठात् लड़ाई के लिए युद्ध में जाना पड़ता है अर्थात् जैसे डरपोक व्यक्ति लड़ाई के मैदान में जाकर कुछ भी नहीं कर सकता डर के मारे काँपने लग जाता है ठीक वैसे ही केवल शास्त्र ज्ञाता वैद्य भी रोगी के पास जाकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है। यदि रोगी शल्य-… हो तो और भी अधिक दुर्दशा हो… आज यही … शल्य साध… लोगों की है।

विष विज्ञान भी अन्य … अपना महत्व रखता है। सुश्रु… विषय में कितना अन्वेषण कर… परन्तु कर्माभ्यास की कमी ही इ… खटकती है। उन प्राचीन महर्षियों ने … अन्वेषण किया यह हम जैसे साधारण … वालों के लिए आश्चर्यपूर्ण है। … दो बड़े भेद और … सविष अन्न… उपचा… की… वि…

…सीनता। धन्य है उन महर्षियों के त्रिकालाबाधित ज्ञान को जिसके द्वारा उन्होंने "विषस्य विषमौषधम्" तथा "मात्रायुक्तं विषममृततुल्यं" आदि सिद्धान्त स्थिर किये। सर्पविष का जो कि महाकाल है औषधि के रूप में आविष्कार उन्हीं की बुद्धि की उपज थी।

वर्तमान में बहुत से महानुभाव कह देते हैं कि वैद्यों के पास निदान के साधन नहीं हैं, इसके विपरीत एलोपैथी में निदान के लिए बहुत साधन हैं जैसे एक्सरे, रक्त, मल, मूत्र, कफ आदि का परीक्षण। एक्सरे को छोड़कर आयुर्वेद में भी रोगी के मल, मूत्र, थूक, रक्त आदि के परीक्षण का स्पष्ट उल्लेख है। यह बात अवश्य है कि आधुनिक अणुवीक्षण एवं अन्य उपायों से करते हैं, परन्तु वैद्यों का परीक्षण वात, पित्त, कफ पर …धारित है। यह बात अवश्य है कि जो … आत्म सहकृत बुद्धि से होगा वह … निर्जीव पदार्थ है, उसके द्वारा …। आयुर्वेद की यह एक विशे… …ब कि, रोग का अंकुर उत्पन्न … है, तभी उसके (आयुर्वेद) द्वारा … लग जाता है।

…कहना है कि अ… आयुर्वेद इसीलिये श्र… आयुर्वेद ही ऐसा आरोग्य शास्… अन्य पन्थ ऐसे नहीं। इसीलि… …युर्वेद के द्वारा जनता की सेवा…

—श्री मंगलदास पकवासा, …

(पृष्ठ ५४० का शेष)

… लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार … …वारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में श्री राष्ट्र… … में एक ओजस्वी … और उत्साहवर्द्धक भाषण … नहीं था अतः … को लिपिबद्ध करके … अनुमति ले… …बंस… …नाध्यक्ष … …निकार… बहुत ब… …रोध है।

जाता है। वैद्य के लिए इन छः अवस्थाओं का ज्ञान अत्यावश्यक है जैसा कि सुश्रुत में लिखा है—

"संचयं च प्रकोपं च प्रसरं स्थान संश्रयम्
व्यक्तिं भेदं च यो वेत्ति दोषाणां स भवेद् भिषक्"

आचार्यों ने निदान के सम्बन्ध में एक और महत्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। वह है उपशय। कभी कभी एक ही रोगी में दो या तीन रोगों के मिश्रित लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं, उस अवस्था में क्या उपाय करना चाहिये, क्योंकि एक रोग में जो दवा अनुकूल पड़ती है, वही दूसरे रोग के विपरीत सिद्ध होती है ऐसी अवस्था में साधारण वैद्य को घबराहट होना स्वाभाविक ही है परन्तु उस समय उपशय नामक सिद्धान्त का आश्रय लेना चाहिये, उससे रोग का स्पष्टीकरण पूरण हो जाता है। जै[illegible] कि चरकाचार्य ने लिखा है—"गूढलिङ्[illegible] व्याधिमुपशयानुपशयाभ्यां परीक्षेत।" इ[illegible] निदान के सम्बन्ध में पर्याप्त [illegible] केवल कमी इसी बात की है कि [illegible] नियमानुसार आचरण कम होता [illegible] परीक्षा आयुर्वेद की [illegible] वैद्य [illegible]

योग वर्णित हैं वे रोग को निर्मूल कर मानव को पूर्ण स्वस्थ कर देते हैं। इन (योगों) में यह दुर्गुण नहीं है कि ये एक रोग को दूर कर अन्य रोगों को उत्पन्न करें। जो योग एक रोग को शान्त कर अन्य रोग को उत्पन्न करें वह योग आयुर्वेद ने शुद्ध नहीं माना। आयुर्वेद की दृष्टि में वही योग शुद्ध है जो उत्पन्न रोग को शान्त ही करे और अन्य रोग उत्पन्न न करें। जैसा कि अष्टाङ्ग हृदय में लिखा है—

प्रयोगः शमयेद् व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत्।
नाऽसौ विशुद्धःशुद्धस्तु शमयेद् यो न कोपयेत्॥

प्रधानतया चिकित्सा के दो भेद हैं, शोधन और शमन। शोधन का अर्थ है वमन, विरेचन, आस्थापन, नस्य, रक्त-मोक्षण इनके द्वारा शरीर में संचित दूषित कफ, पित्त, [illegible] रक्त के मलभूत अंशों को बाहर निका-[illegible] [illegible] का अर्थ है जो औषध या [illegible] या वृद्ध दोषों को समा-[illegible] करे और [illegible] दोषों को [illegible] अपेक्षा शोधन चिकि-[illegible] माना जाता है क्योंकि [illegible] शान्त दोष फिर कभी भी [illegible] हैं परन्तु शोधन के द्वारा [illegible] फिर कोप नहीं हो सकता [illegible] का विकृत अंश शरीर से पृथक् [illegible] जाता है। जैसा कि वाग्भट ने [illegible]

[illegible] लंघनपाचनैः [illegible] वः॥

[illegible] च्यवन को यु[illegible] कुमार को [illegible] जनक यो[illegible] वाली वनस्पतियां आज भी भा[illegible] मौजूद हैं। अधिकांश वनस्पतियों को [illegible] प्रयोग भी करते हैं किन्तु [illegible] आश्चर्यजनक लाभ नहीं [illegible] क्यों है? केवल इसलिए कि उनके प्र[illegible] और संचय के उस वैज्ञानिक [illegible]

सवे[illegible] आयुर्वेद [illegible] शिवश[illegible] जोधपुर में [illegible] (वि[illegible] सहद। जनार्दन श[illegible] [illegible] चिमलाल, इस[illegible] [illegible] द्विवेदी [illegible] शास्त्री [illegible] भूतपूर्व [illegible] नेर। वी[illegible] सकीय आयुर्वेदिक [illegible] पाठ्यक्रम [illegible] पांडे, कान[illegible] हरि[illegible] प्रस्ता[illegible]

माननीय मुख्य मंत्रीजी, स्वास्थ्य [illegible] यह देख कर भी अधिक प्रसन्नता हो रही है [illegible]

भी चिकित्सा पद्धति में नहीं हैं। रसायन का अर्थ है श्रेष्ठ रस रक्त आदि धातुओं की उत्पत्ति का उपाय तथा वाजीकरण का अर्थ है शुक्रवृद्धि के उपाय और दूषित शुक्र का शोधन।

प्राचीन समय में रसायन भेषजों का प्रयोग दो विधियों से कराया जाता था। (क) कुटी प्रवेश विधि। (ख) वातातपिक विधि। शास्त्रों में द्वितीय विधि की अपेक्षा प्रथम विधि के विशेष गुण लिखे हैं।

रसायन सेवन करने वाले व्यक्ति को दीर्घायु स्मृति (स्मरण शक्ति), मेधा (धारण शक्ति), बुद्धि (ज्ञानशक्ति) शुक्र, ओज आदि बढ़कर पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। परन्तु कालक्रम से आयुर्वेद का यह अङ्ग भी नष्टप्राय हो गया। वर्तमान में हम भारत... का स्वास्थ्य कितना गिरा हुआ है... विज्ञ जानते हैं। इसका ... खाद्याभाव ... अतिनि... दिनादिचर्या का भ... जो प्राचीन काल में ... आजकल कितना फैल ... सरकार इस भयंकर बीमार... लिए बी० सी० जी० जैसे कृत्रिम ... आश्रय ले रही है परन्तु ये कृ... आखिर कब तक शरीर को न... सकेंगे यह एक विचार... वेद में महर्षि... रसायन ...

...कहना है कि आयु... आयुर्वेद इसीलिये श्र... आयुर्वेद ही ऐसा आरोग्य शास्त्र... अन्य पन्थ ऐसे नहीं। इसीलि... आयुर्वेद के द्वारा जनता की सेवा...

—श्री मंगलदास पकवासा, ...

(पृष्ठ ५४० का शेष)

...लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार ... उतारने के लिए कृतज्ञता प्रकट ... । उत्तर में श्री राष्ट्र... में एक ओजस्वी ... और उत्साहवर्द्धक भाषण ... नहीं था अतः ... को लिपिबद्ध करके ... अनुमति ले...

तो कितना अच्छा है। परन्तु हम वैद्यों की कौन सुनने वाला है!

आयुर्वेदीय काय चिकित्सा और रसायन वाजीकरण में रसशास्त्र का बहुत महत्व बढ़ गया है। यदि आयुर्वेद में इस चिकित्सा का समावेश न होता तो बहुत सम्भव है आयुर्वेदीय चिकित्सा का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता। यद्यपि बृहत्त्रयी में भी कहीं २ इस चिकित्सा का अति संक्षेप में उल्लेख मिलता है परन्तु इसका विशेष प्रचार बाद में ही हुआ है। इस चिकित्सा में पारद, गन्धक, स्वर्णादिधातु रत्न आदि का विशेष उपयोग होता है। रसतन्त्रकारों कि आज्ञा है कि पारद का जितना अच्छा शोधन किया जायगा उतने ही उसके गुणों की वृद्धि होगी, तथा लोहादि धातुओं की भस्म भी जब तक वारि... न हो तब तक उनका मारण करते रहना ...। परन्तु न तो आजकल पारद का ही ...शोधन होता है और न स्वर्णादि धातुओं ...तर भस्म बन पाती हैं। तन्त्रकारों ने ...द के अठारह संस्कार लिखे हैं, इनमें ... तो व्याधिहरणार्थ हैं और शेष ... निर्माणार्थ लिखे ...

हैं कि शास्त्रों में औषधियों के जो गुण लिखे हैं वे तदनुसार फल नहीं दिखातीं, परन्तु वे महानुभाव यह सोचने का कष्ट नहीं करते कि इन औषधियों का निर्माण आखिर शास्त्रोक्त विधि से होता भी है या नहीं।

रस शास्त्र में बहुत सी औषधियाँ अचिन्त्य प्रभाव वाली हैं जैसे पर्पटियाँ, मकरध्वज, पारदभस्म आदि। पर्पटी में इतनी शक्ति है कि उसके सेवन से मनुष्य की पाचन शक्ति खूब तीव्र हो जाती है जिससे वह दूध या छाछ दस पन्द्रह सेर तक एक ही दिन मे पचा लेता है। विश्व की किसी भी पैथी में आजतक इतनी शक्ति-शाली औषज का आविष्कार नहीं हुआ है। इसी तरह पारदभस्म, मकरध्वज आदि भी अपने अद्भुतगुणों के कारण रस शास्त्र में [illegible] हैं।

शास्त्रकारों ने चिकित्सा के [illegible] माने हैं। वैद्य, औषध, परिचारक, [illegible] वैद्य चाहे खूब पढ़ा लिखा एवं अनु[illegible] क्यों न हो, परन्तु औषध [illegible] रोगी [illegible]

[illegible] प्रस्ताव [illegible]

माननीय मुख्य मंत्रीजी, स्वास्थ्य [illegible] यह देख कर भी अधिक प्रसन्नता हो रही है [illegible]

सकेंगी। काष्ठौषधियों का महत्व अत्यधिक है। यहां तक कि पारद के संस्कारों में तथा भस्मादि निर्माण करने में भावना के लिए भी इन्हीं काष्ठौषधियों का ही उपयोग अधिक होता है अतः इनका रस वीर्य पूर्ण होना आवश्यक है। वर्तमान में इस तरफ बहुत कम ध्यान दिया जाता है यही कारण है कि औषधियाँ पूर्ण गुण नहीं करतीं। जो काष्ठौषधियाँ हर समय काम में आती हैं उनका ग्रहण करना और उनकी स्थापना दोनों ही काम विपरीत होते हैं। औषधियों का ग्रहण प्रायः पन्सारियों द्वारा होता है। वे लोग एक साथ अधिक मात्रा में औषधियाँ मंगा लेते हैं और जब तक वे समाप्त नहीं होतीं तब तक वे उनसे द्रव्योपार्जन करते रहते हैं। उन्हें तो अपने पैसे से मतलब [illegible] औषधि के गुणों से क्या मतलब! [illegible] जंगलों में जाकर औषधियाँ [illegible] सम्पन्न [illegible] जंगलों में जा[illegible] औषध [illegible] है। वहाँ जाने [illegible] पड़ते हैं। यह कार्य [illegible] कि आयुर्वेद ज्ञान से शून्य [illegible] के कारण ही वर्तमान में [illegible]ष्ठौषधियाँ आकृति एवं नाम से [illegible] गई हैं। अष्टवर्ग, रास्ना, मूर्वा, [illegible] आदि औषधियाँ न तो असली ही [illegible] और न इनकी असलियत का ज्ञान [illegible] च्यवन को यु[illegible] की महा- [illegible] कुमार को [illegible] विषय में [illegible] वाली वनस्पतियां आज भी [illegible] मौजूद हैं। अधिकांश वनस्पतियों को [illegible] प्रयोग भी करते हैं किन्तु [illegible] आश्चर्यजनक लाभ नहीं [illegible] क्यों है? केवल इसलिए कि उनका [illegible] और संचय के उस वैज्ञानिक [illegible]

के विषय में भी लेख प्रकाशित हुए हैं। ये दोनों द्रव्य भी सन्दिग्ध हैं। यह है हमारे काष्ठौषधियों की स्थिति। जब काष्ठौषधियों की यह स्थिति है तो चिकित्सा की स्थिति इससे भी अधिक चिन्तनीय है क्योंकि चिकित्सा तो इन्हीं काष्ठौषधियों से होती है। जब ये ही असली न मिलें तो चिकित्सा में कैसे सफलता मिल सकती है ?

चरक एवं सुश्रुत दोनों संहिताओं में काष्ठौषधियों के नाम रूप का ज्ञान भेड़, बकरी चराने वाले, व्याध तथा अन्य बन वासी मनुष्यों से करना चाहिए और गुण शास्त्र में लिखे हुये हैं यह निर्देश है जैसा कि चरक में लिखा है—

"औषधीर्नामरूपाभ्यां जानते ह्यज
अविपाश्चैव गोपाश्च ये च

औषधियों
से ही काम नहीं चल
भी अवश्य जानने चाहियें
प्रकृति आदि का विचार
प्रयोग करता है वही वास्तव
है जैसा कि चरक में लिखा है—

न नामज्ञानमात्रेण रूपज्ञानेन वा
औषधीनां परां
योगवि
नि
निर्माण संस्था
राय साध क
साध पात्र के पैकिंग में सर्वत्र प्राप्य है। जन
एकमात्र असली बंसलोचन का कारखा

कहना है कि आ
। आयुर्वेद इसीलिये श्र
आयुर्वेद ही ऐसा आरोग्य शास
अन्य पन्थ ऐसे नहीं। इसीलि
आयुर्वेद के द्वारा जनता की सेवा

—श्री मंगलदास पकवासा,

(पृष्ठ ५४० का शेष)
लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार
पधारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में श्री राष्ट्र-
में एक ओजस्वी और उत्साहवर्द्धक भाषण
त नहीं था अत को लिपिबद्ध करके
अनुमति ले
बंस
नाध्यक्ष
निकार
बहुत ब
रोध है।
बाँस मार्का अ
थ सं० १८८७ से
२३
राय सम्पतराय साध, क

ही है परन्तु वैद्य की भी बहुत अपकीर्ति होती है इसलिए औषधियों का पूर्ण ज्ञान होना वैद्य के लिए अत्यावश्यक है। जैसा कि चरक में लिखा है—

"यथा विषं यथा शास्त्रं यथाऽग्निरशनिर्यथा॥
तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं यथा।
औषधं ह्यनभिज्ञातं नाम-रूपगुणैस्त्रिभिः॥
विज्ञातं चापि दुर्युक्तमनर्थायोपपद्यते।

हमारा देश सभी तरह की औषधियों का अमूल्य निधि है, यदि उनका ज्ञान कराया जाये तो देशवासियों का धन एवं स्वास्थ्य दोनों ही सुरक्षित रह सकते हैं। काष्ठौषधियों का वितरण भी सरकार को अपने अधिकार में ले लेना चाहिए। एतदर्थ जहाँ जहाँ धियाँ प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होती हैं ोग्य वैद्य और रक्षक उनकी देख लिए नियुक्त करने चाहिये या एक उपवन लगवाया जावे जिसमें सभी की औषधियाँ हों। उनको उचि हवा, गर्मी पहुंचे ऐसे ऋतु

इसमें और अन्वेषण की आवश्यकता नहीं है। यह सब कुछ लिखने का तात्पर्य यही है कि पहले वैद्यों को अपना आयुर्वेद रूपी घर देखना चाहिये वे "दूसरे की थाली में घी ज्यादा" वाली कहावत चरितार्थ न करें। अभी समय है, समय रहते यदि वैद्य समाज न संभलेगा तो एक दिन ऐसा आ सकता है कि आयुर्वेद और वैद्य दोनों को खतरे का सामना करना पड़ेगा। सुबह का भूला भटका यदि सायंकाल भी अपने घर आजावे तो अच्छा ही होता है। वैद्यों के लिए यह कठिन परीक्षा है—समय गुजर रहा है, यदि इसमें पूर्ण सावधानी के साथ सफलता न मिली तो भविष्य में खतरा हो सकता है। में अन्य किसी भी पैथी का विरोध न करते हुए अपने आयुर्वेद शास्त्र को परिस्कृत करना चाहिये। वर्तमान में मिश्रित शिक्षा पद्धति तो आयुर्वेद के लिए हानिकर ... गी। इस विषय में पूना विश्वविद्या... उप-कुलपति श्रीमान डा० एम० ... कर ने जो वक्तव्य दिया वह भी ... योग्य है। डाक्टर महोदय ने ... वि... षण में कहा है कि ... ग्राम के ...

उस गुलामी के युग में इस चिकित्सा को सख्त धक्का लगा। मिश्रित शिक्षा पद्धति के समर्थकों को चाहिये कि वे उप-कुलपति महोदय के उक्त विचारों का ध्यानपूर्वक मनन करें। अधिक विस्तार न कर अन्त में हमारे माननीय वृद्ध वैद्यों से यही विनम्र निवेदन है कि वे महाकवि भारवि के "सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्" इस उपदेश का पालन करते हुए सहसा ऐसा कोई कार्य न करें जो आयुर्वेद शास्त्र के लिए हानिकर हो। भारतीय वैद्य महानुभाव वही मार्ग ग्रहण करें जिसमें आयुर्वेद का भविष्य उज्ज्वल हो।

सर्व... आयुर्वेद ... शिवश... जोधपुर में ... विशेष ... जनार्दन शर्मा ... रक्षाफ... चिलाल, इस... ... द्विवेदी एम० ए० शास्त्री ... भूतपूर्व ... नेर। वी... सकीय आयुर्वेदिक ... पांडे, कान... प्रास्त... माननीय मुख्य मंत्रीजी, स्वास्थ्य ... यह देख कर भी अधिक प्रसन्नता हो रही है

सूर्य देवता

श्री रघुवीरशरण शर्मा वैद्य, रसायनशाला, बुलन्दशहर

सूर्य ऋषि कश्यप का पुत्र था इसकी माता का नाम अदिति था। सूर्य के इन्द्र, विष्णु, भग और अंशादि नाम के ११ भाई और थे। अदिति पुत्र होने के कारण इनका नाम आदित्य भी था। सूर्य की स्त्री का नाम सुरेणु था[1], इसी का दूसरा नाम संज्ञा भी था, सूर्य के मनु, यम, और दोनों अश्विनी कुमार नाम के चार पुत्र थे। सूर्य चारों वेद, अष्टांग आयुर्वेद, धनुर्वेद, आयुर्वेद के अन्तर्गत रस-शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, योगशास्त्र ... ज्ञाता तथा अनेक वैदिक मंत्रों ... था[2]।

... शास्त्र ...

श्रीकृष्ण भगवान् ... है कि—इमं विवस्वते ... मव्ययम्। विवस्वान् मनवे ... कवेऽब्रवीत्। भगवद् गीता ४।१।

अर्थात् इस अविनाशी योग शा... सर्वप्रथम सूर्य को पढाया था। सूर्य ... पुत्र मनु को और मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु बताया था।

इस पर अर्जुन ने शंका की है कि—

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति।
भगवद् गीता ४।४।

अर्थात् आपका जन्म अब द्वापर युग के अन्त में हुआ है और सूर्य का जन्म त्रेता युग के आरंभ में हुआ था फिर यह कैसे संभव ...ता है कि सूर्य को आपने योग शास्त्र ...श दिया। इसका उत्तर श्रीकृष्ण ... इस प्रकार दिया है—

... व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
...वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप।
भ. गी. ४।५

... तेरे दोनों ही के ...

१ त्वाष्ट्री ... सवितुर्भार्या पुनः ... विश्रुता। प्रासूत ... विवस्व...

...हना है कि अ... आयुर्वेद इसीलिये श्र... आयुर्वेद ही ऐसा आरोग्य शास्... अन्य पन्थ ऐसे नहीं। इसीलि... ...युर्वेद के द्वारा जनता की सेवा...

—श्री मंगलदास पकवासा, ...

(पृष्ठ ५४० का शेष)

... लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार ... ...वारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में श्री राष्ट्र... में एक ओजस्वी ... और उत्साहवर्द्धक भाषण ... नहीं था अत... को लिपिबद्ध करके ... अनुमति ले... ...नाध्यक्ष ... बहुत ...

याज्ञवल्क्य ने सूर्य से कहा है कि आप मुझे उन सब ऋचाओं को पढ़ा दें जिन्हें कि मेरे गुरू वैशंपायन भी नहीं जानते हैं, तदनुसार सूर्य भगवान् ने उन सभी ऋचाओं को पढ़ा दिया, जिनको ऋषि वैशंपायन भी नहीं जानते थे। इस प्रकार याज्ञवल्क्य ने शुक्ल यजुर्वेद की सूर्य से १५ शाखाओं का अध्ययन किया था[1] और उनको सैकड़ों शिष्यों को पढ़ाया था। इसकी चर्चा ऋषि याज्ञवल्क्य ने राजा जनक से की थी।

ततः शतपथं कृत्स्नं सरहस्यं स सग्रहम्।
चक्रेसपरिशेषेण हर्षेण परमेणहा।
कृत्वा अध्ययनं तेषां शिष्याणां शतमुत्तमाम्।
विप्रियार्थं सशिष्यस्य मातुलस्य महात्मनः।
म० भा० शा० प० ३१२१।

अर्थात् मैंने रहस्य सहित समस्त शत... ब्राह्मण की रचना की है, शुक्ल यज... सूर्य से अध्ययन करके उसको सौ शि... पढ़ाया है यह सब मेरा कार्य मेरे... तथा गुरू वैशंपायन तथा उनके शि... अच्छा नहीं लगा। वास्तविकता... प्रारम्भ में ऋषि ...
ऋ... ग्राम क...

सर्वे ... आयुर्वेद ... । शिवशं... लन; कुरु...
जोधपुर में ... विशेषहृद। जनार्दन शर्मा ...
... छांगाण ... सम्पन्न ...
... भूतपूर्व ...
नेर। जी ... सकीय आयुर्वेदिक ... पाठ्यक्रम
पांडे. कान...
प्रस्ता...
माननीय मुख्य मंत्रीजी, स्वास्थ्य ...
यह देख कर भी अधिक प्रसन्नता हो रही है

इन्होंने भी शुक्ल यजुर्वेद का अध्ययन सूर्यसे ही किया था जिसका उल्लेख वृहदारण्यकोपनिषद् में मिलता है—

"अंभिणी आदित्याद् आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषिवाजसनेयेन याज्ञवल्क्येन आख्यायन्ते।" वृ. आ. उ. ६।५।३। अर्थात् ऋषि अंभिणी ने शुक्ल यजुर्वेद का अध्ययन आदित्य से किया था और आदित्य द्वारा प्राप्त शुक्ल यजुर्वेद का वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने व्याख्यान किया था। इस प्रकार ऋषि याज्ञवल्क्य और ऋषि अंभिणी नाम के दो ऋषि ऐसे थे जिन्होंने शुक्ल यजुर्वेद का अध्ययन सूर्य से किया था।

पुराणवक्ता सूर्य

सूर्य ने पुराण शास्त्र का अध्ययन देवगुरू वृहस्पति से किया था और अध्ययन के बाद अपने पुत्र यम को पढ़ाया था। ... अपने पितृव्य (चाचा) इन्द्र को ...

... सवि... नन्तरम्।
... युश्चेन्द्रायवै पुनः।
... ब्रह्माण्ड पुराण ४।४।६०

...आयुर्वेद प्रवर्तक

... केवल आयुर्वेद के ज्ञाता थे, तंत्र... त्सक, आयुर्वेद प्रवर्तक भी थे। ...क शिष्य थे जिनका उल्लेख ब्रह्म... राण में मिलता है। ऋग्यजुः सामार्थ... च्यवन को यु... पतिः। ...कुमार को ... नक ... रसः।६। ... वाली वनस्पतियां आज भी भा... । ... मौजूद हैं। अधिकांश वनस्पतियों को ... योग भी करते हैं किन्तु ... आश्चर्यजनक लाभ नहीं ... क्यों है? केवल इसलिए कि उनके प्राप्ति और संचय के उस वैज्ञानिक ...

तेषां नामानि विदुषां तंत्राणि च कृतानि च ।
धन्वन्तरिर्दिवोदासः काशिराजोऽश्विनी सुतौ ।१२।
नकुलः सहदेवार्किश्च्यवनो जनको बुधः ।
जावालो जाजलिः पैलः करथोऽगस्त्य एव च ।१३।
एते वेदाङ्ग वेदज्ञाः षोडषव्याधिनाशकाः ।
ब्रह्मवैवर्त पुराण ब्रह्मखंड अ० १६

प्रजापति ब्रह्मा ने[1] ऋग् यजु साम और अथर्व नाम के चारों वेदों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन करके एक आयुर्वेद ग्रंथ की रचना की । फिर सर्वप्रथम उस ग्रंथ को सूर्य को पढ़ाया । सूर्य ने पढ़ने के बाद अपने नाम की भास्कर संहिता की रचना की । फिर उसको धन्वन्तरि आदि १६ शिष्यों को पढ़ाया जिनके नाम ये हैं:—धन्वन्तरि, दिवोदास, काशीराज, दोनों अश्विनी[2], नकुल, सहदेव, आर्कि[3] (... जनक, चन्द्रपुत्र बुध[5], जाजलि, ऋ... पैल, ... अगस्त्य[6], ये सभी वे ... के द्वारा जनता की सेवा ... चिकित्सक थे ।

सूर्य से आयुर्वेद का ... बाद इन सब ही ने अपने अ... की भी रचना की । उनके नाम ...

चिकित्सातत्वविज्ञानं नामतंत्रं
धन्वन्तरिश्च भगवान् चकार प्रथमे ...
चिकित्सादर्पणं ना...

चिकित्साकौमुदीं दिव्यां काशिराजश्चकार सः ।१५।
चिकित्सासारतंत्रं च भ्रमघ्नं चाश्विनीसुतौ ।
तंत्रं वैद्यकसर्वस्वं नकुलश्च चकार सः ।१६।
चकार सहदेवश्च व्याधिसिन्धुविमर्दनम् ।
ज्ञानार्णवं महातंत्रं यमराजश्चकार सः ।१७।
च्यवनो जीवदानं च चकार भगवानृषिः ।
चकार जनको योगी वैद्यसन्देहभञ्जनम् ।१८।
सर्वसारं चन्द्रसुतो जावालस्तंत्रसारकम् ।
वेदांग सारतंत्रंच चकार जाजलिर्मुनिः ।१९।
पैलोनिदानं करथस्तंत्रं सर्वधरं परम् ।
द्वैधनिर्णयतंत्रंच चकार कुंभसंभवः ।२०।
चिकित्साशास्त्रवीजानि तंत्राण्येतानिषोडश ।
ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्मखंड अ० १६

अर्थात् चिकित्सा तत्व विज्ञान धन्वन्तरि ने चिकित्सादर्पण दिवोदासने, चिकित्सा कौमुदी ...शिराज ने, चिकित्सासार तंत्र और भ्रमघ्न ...यने, वैद्यक सर्वस्व नकुल ने, व्याधि... विमर्दन सहदेव ने, ज्ञानार्णव तंत्र ...

२. अश्विनी कुमार यजुर्वेद अ० २... ...-२३ क। ऋषि है ।
...०।१४ । ऋ १०।१०...

—श्री मंगलदास पकवासा, ...

(पृष्ठ ५४० का शेष)

...हना है कि अ...
... आयुर्वेद इसीलिये श्र...
...आयुर्वेद ही ऐसा आरोग्य शास्त्र...
... अन्य पन्थ ऐसे नहीं । इसीलि...
...ायुर्वेद के द्वारा जनता की सेवा...

लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार ...धारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की । उत्तर में श्री राष्ट्र... में एक ओजस्वी ... और उत्साहवर्द्धक भाषण ... नहीं था अत... को लिपिबद्ध करके ... अनुमति ले... ...नाध्यक्ष ... बहुत ब... ...प्र...

१...
ऋ...
...बंस...
...निकार...
निर्माण संस्था... ...रोध है ।...
राय साध क... ...ा बाँस मार्का अ...
साध पात्र के पैकिंग में सर्वत्र प्राप्य है । जन... ...स्थापित सं० १८८७ से ...
एकमात्र असली बंसलोचन का कारखा...
...२३।
...राय सम्पतराय साध, का...

यमराज ने, जीवदान ऋषि च्यवन ने, वैद्य सन्देह भञ्जन जनक ने, सर्वस्वसार चन्द्रपुत्र बुध ने, तंत्रसार ऋषि जावाल ने, निदान ऋषि पैल ने, सर्वधर तंत्र ऋषि करथ ने और द्वैध निर्णय नामक तंत्र की ऋषि अगस्त्य[1] ने रचना की थी।

किन्तु खेद है उपरोक्त तंत्रों में से आज वर्तमान काल में एक भी उपलब्ध नहीं है। और न इनके कहीं उद्धरण ही मिलते हैं। प्राचीन काल में सूर्य की बनाई हुई 'सावित्र' नाम की संहिता भी थी किन्तु वर्तमान समय में वह भी अप्राप्य है, सुश्रुत संहिता के टीकाकार आचार्य डल्हण ने एक स्थान पर इस के मत को उद्धृत किया है—"तथाहि सावित्रे—सर्वएते सर्पादंशविषा भवन्ति मल दशन दंष्ट्रा चक्षु लाला निःश्वासेन्दियमत्र पुरीष प्रच्छै इति।" (सु क० स्था... आचार्य तीसट ने अपनी चिकित्... में आयुर्वेदाचार्यों को नमस्क... इनमें सूर्य का भी नाम है। ... न्तरिसुश्रुतादीन्"। सूर्य आयुर्वेद ... रस शास्त्र के भी आचार्य ... वाग्भट ने ...

सूर्य अनुभवी चिकित्सक था, इसका प्रमाण लवण भास्कर चूर्ण है, यह सूर्य का आविष्कृत योग है जिसका व्यवहार प्रतिदिन वैद्य समाज में आदर के साथ होता है; जिसके सम्बन्ध में आयुर्वेदचार्यों का कथन है कि यह चूर्ण संसार के हित के लिये सूर्य भगवान् ने निर्माण किया था[1]। सूर्य आयुर्वेद का प्रकाण्ड विद्वान एवं उत्तम कोटि का चिकित्सक था इसी आधार पर इस जनश्रुति का प्रचार हुआ था कि "आरोग्यं भास्करादिच्छेत्' अर्थात् आरोग्य की इच्छा सूर्य से करनी चाहिये।

राजयक्ष्मा चिकित्सक

सूर्य राजयक्ष्मा का सिद्धहस्त चिकित्सक था इसका प्रमाण अथर्ववेद के निम्नलिखित मन्त्र से मिलता है—

इन्द्रस्य वचसा वयं मित्रस्य वरुणस्य च।
...वानां सर्वेषां वाचा यक्ष्मं ते वारयामहे।
अथर्व ।६।८५।२।

...रोगी से कहता है कि हम इन्द्र के ...र्य के और ... के उपदेशा... ... रोग का निवारण ... अतिरिक्त ऋषि भरद्वाज*

...चूर्णिकृतं सर्वं लवणं भास्कराभिधम्।
...हितार्थाय भास्करेणोदितं पुरा।
शार्ङ्गधर संहिता।

*काशिराज धन्वन्तरि ने ऋषि भरद्वाज ...ही आयुर्वेद की शिक्षा पाई थी। ...क्षा पाने के बाद धन्वन्तरि ने आयुर्वेद को ... च्यवन को ... करके शिष्यों को ...कुमार को ... राज काशिराज ... ...त थे। इसी ... वाली वनस्पतियां आज भी ... दिवो... मौजूद हैं। अधिकांश वनस्पतियों को ...भर... ...प्रयोग भी करते हैं किन्तु ... ...पर ... आश्चर्यजनक लाभ नहीं ...रि... क्यों है? केवल इसलिए कि उनके प्रा... और संचय के उस वैज्ञानिक ...

... ग्रा... क...
सर्व... आयुर्वेद सम्मेलन, ... शिवश...
जोधपुर में ... (विक्रीहद)। जनार्दन श... ...
...किलाल, इस्...
... भूतपूर्व ...
सकीय आयुर्वेदिक ... पाठ्यक्रम
प्रस्ता...
माननीय मुख्य मंत्रीजी, स्वास्थ्य ... यह देख कर भी अधिक प्रसन्नता हो रही है ...

शुक्राचार्य और च्यवन आदि जो आयुर्वेद विज्ञानाचार्य हैं उनके उपदेशानुसार भी तेरे राजयक्ष्मा का निवारण करते हैं। मित्र नाम सूर्य का है—

"द्युमणिस्तरणिर्मित्रश्चित्रभानुर्विभावसुः ।
(अमरकोश)

देव का अर्थ विद्वान् है "विद्वांसो हि देवाः।"
(श० प० ब्रा०)

उपरोक्त वेद मन्त्र से सिद्ध है कि इन्द्र और व रुण देवों के तथा भरद्वाज आदि भारतीय ऋषियों के समान ही सूर्य भी उच्च कोटि के चिकित्सक माने जाते थे।

भारत से संबंध

सूर्य देव जाति के मनुष्य थे किन्तु भारतवर्ष से इनका अति घनिष्ट सम्बन्ध था। सूर्य की स्त्री का नाम सुरेणु था इसका दूसरा नाम संज्ञा भी था। वह दैत्य गुरु शुक्राचार्य के पुत्र त्वष्टा की कन्या थी … यह भारत वर्ष के रहने वाली त… कन्या थी। इससे सूर्य के दो… कुमार, यम और श्राद्ध देव … थे। श्राद्धदेव सातवें मनु … (सूर्य) के पुत्र होने के … मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए। इ… जन्म देवलोक में ही हुआ था। … देवों के चिकित्सक बने[2] किन्तु भारत… भ्रमण करते रहते थे। यम देवलोक … याधीश (जज) बने और मनु ने युवाव… जलप्लावन के[3] पश्चात … त्याग करके भारत में आकर अपना निवास स्थान बना लिया था। मनु ने भारत में आकर उत्तर प्रदेश में अयोध्या पुरी का निर्माण किया। उसको राजधानी बनाकर राज्य करने लगे थे। जिसका उल्लेख शतपथ ने भी किया है —मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह" (श० प० १३।४।३।३) इस प्रकार सूर्य के पुत्र मनु ने भारत से अपना घनिष्ठ संबन्ध स्थापित किया था। वैवस्वत मनु वेद, वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, राजशास्त्र (राजनीति) धनुर्वेद आदि के ज्ञाता तथा अनेक मन्त्रों के दृष्टा थे[1]। मनु की स्त्री का नाम श्रद्धा था इस श्रद्धा से मनु के इक्ष्वाकु, नरिष्यन्त, शर्याति करूषकादि दस पुत्र और इला नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई।[2] इसी वंश में सम्राट मांधाता, हरिश्चन्द्र, दिलीप, रघु, और …र्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र का … था। सूर्य देव जाति के थे अतः …न पुरंजय (ककुत्स्थ) खट्वांग, …थ आदि राजाओं ने देवासुर … देवों की सहायता भी की थी। …त्रिय आज भी भारत में संभवतः … जिनके कारण सूर्य

१ सुरेण…
यवीयसी…
संज्ञे…

…हना है कि आ… आयुर्वेद इसीलिये श्र… आयुर्वेद ही ऐसा आरोग्य शास… अन्य पन्थ ऐसे नहीं। इसीलि… युर्वेद के द्वारा जनता की सेवा…

—श्री मंगलदास पकवासा,

(पृष्ठ ५४० का शेष)

… लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य ग्रंथों का सार … वारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में श्री राष्ट्र- … में एक ओजस्वी … और उत्साहवर्द्धक भाषण … नहीं था अतः … को लिपिबद्ध करके … अनुमति … वंस… नाध्यक्ष … निकार … बहुत ब… रोध है …

स्थान द्वारकापुरी में था । यह सूर्य का परम मित्र एवं भक्त था । इसी कारण सूर्य ने प्रसन्न होकर इसको बहूमूल्य स्यमन्तक नाम की मणि प्रदान की थी ।[1] यह जिस देश में रहती थी उस देश में इच्छानुसार वर्षा होती थी और विषूचिका, तथा मसूरिका आदि औपसर्गिक रोगों का भय नहीं रहता था यह इसका प्रभाव था ।[2]

सूर्य का पुत्र अंगद

त्रेता युग के अन्त में दक्षिण भारत में ऋक्ष नाम का एक वानर जाति का राजा था। यह चक्रवर्ती राजा था । इसकी स्त्री का नाम विरजा था । यह परम सुन्दरि थी, सूर्य इस पर मोहित हो गये, और अनुचित सम्बन्ध हो गया फलस्वरूप वानर अंगद का जन्म हुआ ।[3]

सूर्य पुत्र कर्ण

महाभारत काल में (कलि... सन्धि में) एक शूरसेन नाम के ... इनकी पुत्री का नाम पृथा था फिर ... कुन्ती भी कहने लगे थे यह भग... कृष्ण चन्द्र की फूआ थीं । ...

... आयुर्वेद ... शिवशं... जोधपुर में ... (विशेषहद । जनार्दन शर्मा ... रसोफार्मा ... चिमनलाल, इस्... ... वेदी एम० ए० शास्त्री ... भूतपूर्व ... सकीय आयुर्वेदिक ... आस्था ... माननीय मुख्य मंत्रीजी, स्वास्थ्य ... यह देख कर भी अधिक प्रसन्नता हो रही है

जिक बन्धनों का स्मरण हुआ, व्यभिचार के दुष्परिणामों ने उसे सचेत किया । कुन्तीका हर्ष विषाद में परिणत हो गया । तब कुन्ती ने क्षमा याचना के साथ सूर्य से वापिस जाने की प्रार्थना की । किन्तु सूर्य की काम पिपासा जागृत हो चुकी थी । ऐसी अवस्था में उन्होंने वापिस जाना अस्वीकार कर दिया और स्पष्ट शब्दों में कहा कि—

अमोघं दर्शनं देवि आधित्स्ये त्वयि चात्मजम् । योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताहंते सुमध्यमे । इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्या दिवंगतः । भागवत ९।२४।३४-३५ ।

हे देवी हमारा आना व्यर्थ नहीं होता अब मैं गर्भ धारण करवाकर ही जाऊंगा, हां चण्डवेग के आघातों से तेरी योनि को दूषित अर्थात् क्षतविक्षत नहीं करूंगा । आश्वासन देकर ...ते कुन्ती से मैथुन किया और मैथुन से ...कर तत्काल ही अपने देश त्रिवि... ...) को चले गये ।

...र्य की पुत्रियां

...तपती और कालिन्दी[1] नाम ...यीं । इनमें तपती का विवाह ... राजा संवरण[2] से हुआ था । ... खलु वैवस्वती तपतीं नामोपयेमे" ...मा० आ० प० ९५।३७) इसकी ...भागवत से भी होती है—

... च्यवन को सु...तनया यमुना शमन ...कुमार को ... वाली वनस्पतियां आज भी भा... कुरु ने मौजूद हैं । अधिकांश वनस्पतियों को ...ी प्रयोग भी करते हैं किन्... आश्चर्यजनक लाभ नहीं क्यों है ? केवल इसलिए कि उनके प्रा...त और संचय के उस वैज्ञानिक...

कन्या च तारती या वै वव्रे संवरणं पतिम् ।
भा० ६।६।४१

सूर्य की दूसरी पुत्री कालिन्दी का विवाह श्रीकृष्ण से हुआ जिसकी घटना इस प्रकार है—

एक बार श्रीकृष्ण भगवान् द्वारका से युधिष्ठिर आदि पांडवों से मिलने को इन्द्रप्रस्थ में आये थे। इन्द्रप्रस्थ में रहते हुए एक दिन श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुन को साथ लेकर मृगया (शिकार) के लिये बन में गये वहां पर जब उनको प्यास लगी तब वे यमुना नदी के पास गये और यथेच्छ उन्होंने जलपान किया। अकस्मात् वहीं पर भ्रमण करती हुई सूर्य की पुत्री कालिन्दी से उनकी भेंट हो गई। कालिन्दी युवती तथा अनुपम सुन्दरी थी उसको देखकर अर्जुन ने प्रश्न किया कि—

का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतो...
त्वि...
मन्ये त्वां पतिमिच्छन्तीं सर्वं...
...भा० १०...

अर्जुन ने कहा कि हे सुन्द... किसकी लड़की है, क्या चाहती... बता किन्तु हमारा विचार तो ऐसा... पति की चाह में घूम रही है।

इस पर कालिन्दी ने कहा कि—

अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती...
विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परमास्थिता...
नान्यं पतिं वृणे वीर...
तुष्यतां मे स...

कालिन्दी... निर्... तथ... र...

कालिन्दी ने श्रीकृष्ण भगवान् को उत्तर दिया कि—निःसन्देह मैं पति की चाह में घूम रही हूं, विवाह करना चाहती हूं, किन्तु हे श्रीकृष्ण ! सिवाय तुम्हारे और किसी व्यक्ति से विवाह नहीं करूंगी, अतः आपसे प्रार्थना है कि प्रसन्नतापूर्वक मेरा पाणिग्रहण करके मुझे अनुग्रहीत कीजिये। अपना परिचय देते हुए कहा है कि—मैं सूर्यदेव की पुत्री हूं, कालिन्दी मेरा नाम है, यहीं पास ही में यमुना के तट पर मेरे पिता का घर है इसी घर में मैं रहती हूं। इतना सुनने के बाद अर्जुन ने कालिन्दी के प्रस्ताव का अनुमोदन किया तब श्रीकृष्ण भगवान् यमुना की प्रार्थना को स्वीकार करके उसे रथ में बैठालकर इन्द्रप्रस्थ को ले गये।

समुद्र मंथन

...मंथन का कार्य भी भारत में ...में सूर्य भी सम्मिलित थे। समुद्र ...धान उद्देश्य अमृत की प्राप्ति ...अमृत के साथ अन्य पदार्थ भी ... इसी समय धन्वन्तरि

...हना है कि अ...
आयुर्वेद इसीलिये श्र...
...र्वेद ही ऐसा आरोग्य शास्...
...य पन्थ ऐसे नहीं। इसीलि...
...र्वेद के द्वारा जनता की सेवा...
—श्री मंगलदास पकवासा,

(पृष्ठ ५४० का शेष)

लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार
...वारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में श्री राष्ट्र-
...में एक ओजस्वी ... और उत्साहवर्द्धक भाषण
...नहीं था अत... को लिपिबद्ध करके
...अनुमति ले...
...नाध्यक्ष...
...बहुत ब...

विष्णु का अवतार माना है। [1]

उपरोक्त धन्वन्तरि के वंश, माता, पिता भाई, बन्धु आदि बातों का इतिहास और पुराणों में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। केवल इतना मिलता है कि समुद्र मंथन के समय अर्थात् दैत्य, दानव, मानव, नाग और देवों ने मिलकर अमृत के लिये जो समुद्र मध्यवर्ती द्वीप तथा समुद्र के समीपवर्ती स्थानों की खोज की थी उस समय कौस्तुभमणि उच्चैः श्रव अश्व, पारिजात वृक्ष, ऐरावत हस्ति आदि अनेक बहुमूल्य पदार्थ मिले थे उसी समय एक प्रतिभाशाली, हृष्ट पुष्ट, आजानु वाहु, श्याम वर्ण के महापुरुष भी मिले थे। इनका नाम धन्वन्तरि था, इनके हाथ में अमृत से भरा हुआ पात्र था और ये आयुर्वेद विज्ञान के आचार्य थे। इस धन्वन्तरि को सूर्यदेव भारत से देवलोक में ले गये। [illegible] बाद पुनः धन्वन्तरि सम्बन्धी कोई ले[illegible] मिलता इससे स्पष्ट है कि इनका भ[illegible] सर्वांश में सम्बन्ध विच्छेद हो गया। [illegible]

प्रसङ्गवश यह कहना भी आवश्[illegible] भारतीयों से विशेष [illegible]

[illegible] आयुर्वेद [illegible] । शिवश[illegible] जोधपुर [illegible] (वि[illegible] । जनार्दन [illegible] [illegible] चिलाल, इस[illegible] [illegible] आयुर्वेदिक [illegible] प्रास्ता[illegible]

माननीय मुख्य मंत्रीजी, स्वास्थ्य [illegible] यह देख कर भी अधिक प्रसन्नता हो रही है

केवल दिवोदास से मानव आयुर्वेद का अध्ययन किया था अपितु हय और गजायुर्वेद का भी किया था। [3] अस्तु वृद्धावस्था में दिवोदास अपने पुत्र 'प्रतर्दन[4]' को राज्य भार देकर स्वयं वानप्रस्थी होकर वाराणसी में ही आश्रम बनाकर रहने लगे थे। इसी आश्रम में दिवोदास ने सुश्रुत, औपधेनव, पौष्कलावत, आदि शिष्यों को शल्य प्रधान आयुर्वेद पढ़ाया था।

दिवोदासके समकमलीन-धन्वन्तरि उपाधि धारी दिवोदास के माहिष्यती के राजा कीर्त वीर्यार्जुन, राजा दशरथ, अंगदेश का राजा रोमपाद, कैकेय देश का राजा अश्वपति, पांचाल देशका राजा दिवोदास[5] समकालीन थे। श्रीरामचन्द्र के राज्याभिषेक महोत्सव में [illegible]दास धन्वन्तरि का पुत्र प्रतर्दन सम्मिलित [illegible]

[illegible]र दिवोदास धन्वन्तरि से ही [illegible] उपकार हुआ है। इन्होंने [illegible] द्वारा आयुर्वेद का प्रचार [illegible] को भारत के कोने-कोने में [illegible]युर्वेद के भाषान्तर अनुवाद [illegible]पान, लंका, मिश्र और अरब [illegible] में पहुंचाया है इनके उपदेश आज [illegible] संहिता में सुरक्षित हैं जिनपर भार[illegible] समाज को गर्व है। अतः मेरी वैद्य [illegible] धन्वन्तरि जयन्ती के [illegible] च्यवन को [illegible] करें स्तुति [illegible]कुमार को [illegible]नक यो[illegible] [illegible]रिचय वाली वनस्पतियां आज भी [illegible] मौजूद हैं। अधिकांश वनस्पतियों को [illegible]योग भी करते हैं किन्तु [illegible] आश्चर्यजनक लाभ नहीं [illegible] क्यों है ? केवल इसलिए कि उनके प्रति[illegible] और संचय के उस वैज्ञानिक [illegible]

करें और पूजन के समय इन्हीं के चित्र (तस्वीर) का व्यवहार करें। यद्यपि चित्र भी कल्पना प्रसूत होगा और वह जटाजूट धारी आश्रमवासी राजर्षि का होगा। इस प्रकार का चित्र मैंने अपनी पुस्तक धन्वन्तरि परिचय के मुख पृष्ठ पर दिया है। वर्तमान समय में वैद्य समाज जिस चित्र का व्यवहार करता है वह मेरी तुच्छ बुद्धि से उचित नहीं है।

अमृत

प्रसङ्गवश अमृत क्या पदार्थ है इस पर भी विचार करना आवश्यक है।

जन साधारण का विश्वास है कि अमृत का सेवन अमरत्व प्रदान करता है। यह निराधार तथा सर्वांश में असत्य है। मेरा विचार है कि अमृत रोग निवारक, बल... और आयुवर्धक है। मेरे कथन... शतपथ ब्राह्मण से भी ... एतद्वै मनुष्यस्य ...मृतम् ...

अमृत उसका नाम है ... पूर्णायु अर्थात् शत वर्षायु बना... कहा है कि—

य एवं शतं वर्षाणि यो वा भूयांसि... है वैतदमृतमाप्नोति।" (श०प१०...

जो अमृत सेवन क... वह ... अथवा सौ वर्षों ... है। उपरो... क...

होते हैं बलवर्ण की वृद्धि होती है और आयु की वृद्धि होती है। रसायन के सेवन से वशिष्ठ और भृगु आदि अनेक ऋषि दीर्घजीवी बने हैं। आयुर्वेद इसका साक्षी है।

इनके अतिरिक्त अमृत का पर्याय 'सुधा' भी है। सुधा का अर्थ चूना अथवा भाषान्तर नाम कैलशियम भी है। कैलशियम भी रोग निवारक बलवर्धक और आयुवर्धक है। समुद्र मंथन में इसी प्रकार की औषधियों की तथा द्रव्यों की खोज की थी परिणाम स्वरूप इसको प्राप्त भी किया था।

उपसंहार

सूर्य भगवान् देव जाति के मनुष्य थे किन्तु भारत वर्ष से इनका जितना सम्बन्ध रहा है इतना अन्य किसी भी देवता का नहीं ...। इनका देश त्रिविष्ठप (तिब्बत) था ... इनका निवास स्थान दोनों देशों में ... दोनों देशों में रहते थे। इनका घर ... में था और भारतवर्ष में भी। ये ...वर्तक थे इनका वंश देवलोक में नहीं ... फला और फूला था। इनके वंश ... ही हुआ था। सूर्य ...

...ना है कि अ... आयुर्वेद इसीलिये श्र... ...र्वेद ही ऐसा आरोग्य शास... ...य पन्थ ऐसे नहीं। इसीलि... ...र्वेद के द्वारा जनता की सेवा...

—श्री मंगलदास पकवासा

(पृष्ठ ५४० का शेष)

...लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार ... ...धारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में श्री राष्ट्र... ...में एक ओजस्वी ... और उत्साहवर्द्धक भाषण ... नहीं था अत... को लिपिबद्ध करके ... अनुमति ले... ...नाध्यक्ष ... ...निकार... बहुत ब... ...प्रत...

काशीराज आदि राजा अगस्त्य, जावाल और करथ आदि ऋषि आयुर्वेद के और याज्ञवल्क्य ऋषि शुक्ल यजुर्वेद के इनके शिष्य थे। वानर सुग्रीव और कौन्तेय कर्ण उनके पुत्र थे। सूर्य समुद्र मंथन में सम्मिलित होकर धन्वन्तरि को भारत से देवलोक ले गये थे।

तीन सूर्य

भारतीय साहित्य में तीन सूर्यों का उल्लेख मिलता है सूर्य देवता सूर्यवंश प्रवर्तक जिसका कि हम ने वर्णन किया है।

दूसरे सूर्यदेव आकाशचारी हैं इनके गुण इनकी शक्ति और इनके कार्य का वर्णन वेदों में पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

तीसरा सूर्य दानव था। यद्यपि यह भी ऋषि कश्यप का ही पुत्र था। किन्तु इसकी माता का नाम दनु था अतः यह दानव था देवों का विरोधी था।

अभवन् दनु पुत्रास्ते वंशे ख्याताः महासुराः।
धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्रमा इन्द्रतापनः।

ब्रह्माण्ड पु० ३।६।८

नोट—यह लेख लेखक की 'देवता' नामक रचना का एक अंश है पुस्तक अप्रकाशित है अतः सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

गृष्टिका (गेंठी)

श्री वैद्य प्रल्हाद राय शर्मा आयुर्वेदाचार्य, सीकर

गृष्टिका के सम्बन्ध में आयुर्वेद महा-सम्मेलन पत्रिका के सितम्बर मास के अंक में श्री वैद्यरत्न कविराज प्रताप सिंह जी रसायनाचार्य द्वारा इसी शीर्षक से लिखे गये लेख को मैंने बड़े चाव से पढ़ा क्योंकि जड़ी बूंटियों के बारे में मेरी भी सदा से ही गहरी दिलचस्पी रही है।

गृष्टिका का उल्लेख आयुर्वेद के कई ग्रन्थों में आया है जिसका तत्सबन्धी उद्धरण में क्रमानुसार नीचे दे रहा हूं। मेरी ना है कि अ में यह वनस्पति न तो दुष्प्राप्य आयुर्वेद इसीलिये श्र असाधारण। आयुर्वेद शास्त्रों में ही ऐसा आरोग्य शास स्थान स्थान पर की गई है पन्थ ऐसे नहीं। इसीलि के ज्ञाता भली भान्ति जान द के द्वारा जनता की सेवा हैं। यह कोई नवीन वस्तु —श्री मंगलदास पकवासा

वेंद जगत इससे वाराहीक (पृष्ठ ५४० का शेष)

परिचित है और इसे वर्षों से लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार लाता आ रहा है। निघन्टुओं में धारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में श्री राष्ट्र- विशद वर्णन है। में एक ओजस्वी ... और उत्साहवर्द्धक भाषण

आदरणीय कविराज जी ने नहीं था अत ... को लिपिबद्ध करके ज्योतिषी के द्वारा एक ... अनुमति ले ... और ज्योतिषी ... बंस ... नाध्यक्ष उसके आ ... निकार ... बहुत ब ... निर्माण संस्था ... रोध है ... राय साध क ... बांस मार्का अ ... साध पान के पैकिंग में सर्वत्र प्राप्य है। जन ... स० १८८७ से एकमात्र असली बंसलोचन का कारखा ... २३। ... राय सम्पतराय साध, क

में कुष्ठरोग चिकित्सा के महातिक्तघृत के प्रकरण में सुश्रुत संहिता में खस, पीपलामूल, दारु हल्दी, का अभाव है और सारिवा एक ही प्रकार की लिखी है तथा वाराही कन्द अधिक है, ऐसा लिखा है।

"शालिग्रामनिघन्टुभूषण" शाकवर्ग पृ० ६४७ वाराहीकन्द की विशेष नामावली में गृष्टि, गृष्टिका, विल्वमूला, शूकरी, क्रोड़-कन्या, कौमारी, अमृत, महावीर्य, कुष्ठनाशक, धिहन्ता आदि नाम गृष्टिका के हैं जो कि कन्द के ही पर्याय शब्द हैं।

सी को संस्कृत भाषा में वाराही कन्द ष्टिका, हिन्दी में गेंठी, बंगला में चामालु मराठी में डूकरकन्द कहते हैं।

... ओं के नामों से भी गेंठी ... होता है

एक तीसरा प्रमाण भी है:

सुश्रुत संहिता भाषाटीका चिकित्सा स्थान अध्याय ६ पृष्ट सं० ६०३ में महा-तिक्तघृत की भाषा में गृष्टिका (वाराहीकन्द) लिखा है।

इन प्रमाणों से यद्यपि महातिक्तघृत में वाराहीकन्द लेना उपयुक्त होता है किंतु श्रद्धेय कविराज जी ने गृष्टिका या गेंठी को वाराही कन्द से भिन्न वनस्पति बताई है उससे मुझ जैसे साधारण वैद्य को भ्रम हो जाना स्वाभाविक ही है। इसलिए मैं कविराज जी से विनम्र अनुरोध करूंगा कि वे अपने अनुभव और प्रयोगों के आधार पर कृपया यह स्पष्ट करने की कृपा करें कि गृष्टिका और वाराहीकन्द एक ही वनस्पति हैं या भिन्न-भिन्न।

इस लेख द्वारा कविराज जी की ... और इस सम्बन्ध में किए गये सत... की आलोचना करने की मेरी मं... लेकिन कविराजजी ने जो विषय ... उस पर वैद्य बन्धु अधिक से अधिक ... डालें और इस बारे में एक निश्चित ... पर पहुंचें, इसी दृष्टि से यह पंक्ति... की हिम्मत कर रहा ...

... ग्राम क...

सर्व... रहता ० आयुर्वेद ... शिवश...

जोधपुर ... में ... (विश्... जनार्दन शर्मा ... की

... चिरंजीलाल, इस...

... शास्त्री ...

... भूतपूर्व ...

... सकीय आयुर्वेदिक ...

प्रस्ता...

माननीय मुख्य मंत्रीजी, स्वास्थ्य ... यह देख कर भी अधिक प्रसन्नता हो रही है

... च्यवन को यु...
...कुमार को ...नक या...
वाली वनस्पतियां आज भी ... मौजूद हैं। अधिकांश वनस्पतियों को ... प्रयोग भी करते हैं किन्तु ... आश्चर्यजनक लाभ नहीं ... क्यों है ? केवल इसलिए कि उनके प्राप्त ... और संचय के उस वैज्ञानिक ...

वाराही कन्द—गृष्टिका (गेंठी)

कविराज पं० अमरनाथ वैद्यशास्त्री, अध्यक्ष वनस्पति औषधालय, देहरादून

महासम्मेलन पत्रिका के सितम्बरांक में कविराज पं० प्रतापसिंह जी रसायनाचार्य का लेख 'गृष्टिका' के अनुसंधान विषयक प्रकाशित हुआ, उसमें औरों का अनुभव जानने का भी संकेत था अतएव मैंने लिखना उचित समझा।

श्री कविराज जी वर्षों से इसकी खोज करते रहे और किसी निघण्टु में भी विवरण न मिला, यह वास्तव में आश्चर्य की बात है। आप मेरे पुराने परिचित हैं और यह भी जानते हैं कि मेरा समस्त जीवन 'वनस[...] अनुसंधान' में ही व्यतीत हो रहा [...] मुझ से भी पूछ लेते तो आपका[...] समय गृष्टिका की ढूँढभाल में [...] तत्काल विवरण सहित मूल[...]

गृष्टिका का पहाड़ी न[...] इसकी वल्ली विवरण भी ठीक[...] कविराज जी ने लिखा है। पर[...] विशेष प्रसिद्ध व्यवहारिक नाम आपक[...] न हो सका। तदपि आपने ढूँढभाल क[...] बेल वाटिका में लगा ली, श्रम सफल[...] कविराज जी वर्षों तक ह[...] संस्था का संचालन[...] यत्रतत्र बाड़ों[...] हैं। [...] व्यक्तियों को बूटियों का परिचय कराया वे प्रतिवर्ष पचासों मन गेंठी मूल कन्द खोद कर लाते और विक्रय कर लाभ उठा रहे हैं।

प्रसिद्ध नाम—

संस्कृत, वाराहीकन्द
हिन्दी, वाराहीकन्द, गेंठी
लैटिन, डायोस्कोरिया सेटिवा (Dioscorea sativa)

अवलोकन कीजिये—

१. शालिग्राम निघण्टु भूषण, शाकवर्ग, पृष्ट [...]१४
[...]नघण्टु रत्नाकर पृष्ट ५१७
[...]प्रकाश पृष्ट ३२५
इसी[...]लिग्राम निघण्टु भूषण में चित्र पृष्ट ३६
[...]प्रकाश निघण्टु में:—

[...]कहना है कि ग्र[...]
आयुर्वेद इसीलिये श्र[...]
ही ऐसा आरोग्य शा[...]
पन्थ ऐसे नहीं। [...]
[...]के द्वारा जनता की सेवा

—श्री मंगलदास पकवासा

(पृष्ठ ५४० का शेष)

लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार [...] वारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में श्री राष्ट्र- [...] में एक ओजस्वी [...] और उत्साहवर्द्धक भाषण [...] नहीं था अत[...] को लिपिबद्ध करके [...] अनुमति ले[...] नाध्यक्ष [...] बहुत [...] [...]रोध है [...]

आयुर्वेद और हम

सुश्री रमल जैन वैद्या, देहली

आयुर्वेद चिकित्सा संसार की सबसे प्राचीन चिकित्सा पद्धति है। यह प्रणाली केवल पुरानी ही नहीं बल्कि चिकित्सा अष्ट अंग पूर्ण है। संसार परिवर्तन शील है। प्रत्येक वस्तु समय पर बदलती है यहां तक कि शरीर का प्रत्येक सैल (cell) हर सात वर्षों में बदल जाता है। अन्य चिकित्सा प्रणालियों ने समय-समय पर अपने सिद्धान्तों को छोड़ कर नवीन सिद्धा[illegible] अपनाया है। आयुर्वेद चिकित्सा प्र[illegible] एक ऐसी प्रणाली है जिसका एक ही [illegible] वात, पित्त और कफ का सिद्धान्त [illegible] सदियों से चला आ रहा है। आजतक [illegible] वेंद को इस सिद्धान्त को छोड़ कर अन्य सिद्धान्त को अपनाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई है और न निकट भविष्य में सम्भावना ही है।

आज जो आयुर्वेद कुछ पिछड़ा प्रतीत होता है उसका कारण आयुर्वेद की कमी नहीं है बल्कि आयुर्वेद चिकित्सकों का प्रमाद है।

[illegible] बौद्ध काल से चिकित्सकों ने सर्जरी का [illegible]ड़ दिया है उसका परिणाम यह हुआ [illegible] सम्पन्न जीवक जैसे वैद्य खोपड़ी का आपरेशन [illegible] थे वहां आजकल के वैद्य एक [illegible]साधारण व्रण को भी चीरा [illegible]कते हैं। ब्राह्मण काल से चिकि-[illegible]स और वसा का प्रयोग करना [illegible]ा था। आज हम देखते हैं कि इस परिणाम स्वरूप आयुर्वेद में एक त्रुटि [illegible]ीत होती है।

मरणोन्मुख लक्ष्मण को प्राणादान करने [illegible]ली, च्यवन को युवा बनाने वाली, अश्वनी [illegible]कुमार को [illegible] योगों से जादू भरने वाली वनस्पतियां आज भी भारत भूमि में मौजूद हैं। अधिकांश वनस्पतियों को हम [illegible]योग भी करते हैं किन्[illegible] [illegible]रह [illegible]आश्चर्यजनक लाभ नहीं [illegible] क्यों है? केवल इसलिए कि उनके [illegible] और संचय के उस वैज्ञानिक [illegible]

तो हरा अथवा सूखा [illegible]

सक[illegible] ग्राम क[illegible]

सर्व[illegible] आयुर्वेद [illegible] शिवश[illegible]लन कुं[illegible]

जोधपुर में [illegible] (विशेष[illegible] जनार्दन श[illegible] की

रक्षाफ[illegible] [illegible]चिलाल, इस[illegible]

[illegible] वाल[illegible]

[illegible] द्विवेदी एम. ए[illegible] शास्त्री [illegible] चन्द्रि[illegible]

[illegible] भूतपूर्व [illegible] बचन[illegible] चा

नेर। वी [illegible] सकीय आयुर्वेदिक [illegible] उ

पांडे, कान[illegible]

हरि[illegible] आस[illegible]

माननीय मुख्य मंत्रीजी, स्वास्थ्य [illegible]

यह देख कर भी अधिक प्रसन्नता हो रही है [illegible]

गये हैं, अथवा यह कहिए कि आलस्य के इस युग में पड़ कर इस झगड़े को ही मोल लेना व्यर्थ समझ बैठे हैं ।

यह वैज्ञानिक जगत में पूर्ण रूप से सत्य प्रमाणित है कि चन्द्रमा और तारागण अपनी किरणों द्वारा वनस्पतियों में अमृत तत्व का संचार करते हैं । यह तत्व प्राप्त कर ही इन वनस्पतियों में रोगनाशक शक्ति और शरीर पुष्टिकरण एवं सम्वर्धन की क्षमता उत्पन्न होती है, इसीलिए चन्द्रमा को औषधीष बताया गया है; और औषधि संग्रह करने के लिए समयानुकूल प्रथक-प्रथक समय निश्चित किए गये हैं और उसी समय और शुभ-बेला में औषधि संग्रह करने से आज भी उनमें उसी वैद्युक्तिक युग का अनुभव किया जा सकता है ।

आज सस्तेपन के इस युग में, प्रतियो[illegible] की इस दौड़ में हम इन नियमों का [illegible] नहीं करते । फलस्वरूप औषधियों [illegible] अमृततत्व का ही समावेश हो [illegible] न उसकी रक्षा ही हो पाती है [illegible]

वनस्पति संग्रह के इस दूषि[illegible] दूर करने और आयुर्वेद को आ[illegible] योगिताओं में सशक्ति खड़ा रख[illegible] शास्त्रीय योगों के पूर्व की भाँति [illegible] जनक गुणों के लिए हमें आज पुनः [illegible] रूपों में ही औषधि संग्रह करना होगा ।

हिमालय की गोद में पल[illegible] इन औ[illegible] धियों को प्राप्त करने के लिए औषध-विधि[illegible] ज्ञाता वैद्यों को औषधि का संचय करना [illegible] चाहिए और शास्त्रानुकूल उनका निर्माण कर अप[illegible] साध[illegible] [illegible]त्सा पद्धति का प्राचीन [illegible] चाहिए ।

आज आयुर्वेद के उस महत्वपूर्ण अंश [illegible]ल्य तंत्र का प्रचार करना आवश्यक है । जो लोग इस तक नहीं पहुँचे उनका मत है कि आयुर्वेद में चीरफाड़ का कोई वर्णन नहीं है । अतः उनकी इस निर्मूल धारणा के निवारण के लिए वैद्य समाज को चाहिए कि इस तंत्र की शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था करें । प्राचीन पद्धति में नवीन संस्कार पैदा करके उसे अधिकाधिक उपयोगी बनावें जिससे भविष्य में जीवक की तरह वैद्य बनें जो कठिन से कठिन एवं जटिल से जटिल रोगों का निराकरण कर सकें । आयुर्वेद की उन्नति हो और वह अन्य चिकित्सा प्रणालियों के समक्ष अपना मस्तिष्क ऊँचा रख सके ।

आयुर्वेद एक अथाह समुद्र है जो अमूल्य रत्नों से भरा पड़ा है । इस समुद्र का मन्थन कर, रत्नों को निकाल जनता के समक्ष रखा [illegible]य तो आयुर्वेद प्राचीन समयानुसार पुनः [illegible] लगेगा । यदि हम राष्ट्र के सच्चे [illegible] हैं तो अपनी इस राष्ट्रीय [illegible]-आयुर्वेद को अपने कठोर परिश्रम [illegible]ति के शिखर पर लेजाना हमारा कर्तव्य है ।

मध्यभारत भी बंबई के साथ

निराशावादी तथा विघ्नसन्तोषी निरन्तर यह रट लगाते रहते हैं कि आयुर्वेद तथा आयुर्वेद महासम्मेलन दोनों का अन्त होने वाला है। परन्तु वास्तविक घटनायें यह सिद्ध कर रही हैं कि आयुर्वेद के भीतरी और बाहरी शत्रु शनैः २ गिरते जा रहे हैं और आयुर्वेद स्थिर गति से उन्नति की ओर जा रहा है।

बम्बई में शुद्ध आयुर्वेद का पाठ्यक्रम मान्य हो गया है और इस क्रम के स्नातकों को पूर्ण अधिकार दिये जाने के लिये बिल बन रहा है।

बम्बई में शतशः वैद्य सरकारी स्वास्थ्य बीमा योजना में भरती किये जा चुके हैं और सहस्रों बल्कि लाखों श्रमिक उनसे चिकित्सा करा रहे हैं।

वहाँ फैकल्टी और बोर्ड डाक्टरी चंगुल से छूट गए हैं अब इन महत्वपूर्ण संस्थाओं पर वैद्य समाज का ही अधिकार है। डाइरेक्टर आफ आयुर्वेद के पद का निर्माण हो गया है उस पर आयुर्वेद के ऊंचे विद्वान की [illegible] गई है।

यह रही धन में सर्वोत्कृष्ट रा[illegible] छांगाए[illegible]

(२) जनसंख्या में सबसे बड़[illegible] है। उसमें बनारस के आयुर्वेदिक कालिज का विशेष महत्व है। वहां [illegible] सम्पन्न [illegible]ठ्यक्रम प्रविष्ट करने के लिये इसी मास में अकाडेमिक कौंसिल में [illegible] विश्वास है कि उस संस्था में आयुर्वेद का आधिपत्य शीघ्र ही स्था[illegible]

इसी प्रकार लख[illegible] वास्तविक आयुर्वेदिक कालिज के [illegible] ग्राम [illegible]

सब[illegible] है मध्यप्रदेश। वहां भी मध्यप्रदेश [illegible] जनार्दन [illegible] का उद्घाटन वहां के मुख्य मंत्री [illegible] द्वारा किया गया है। जो भाषण उद्घा[illegible] "[illegible]द सेवक" से साभार उद्धृत किए जा रहे [illegible] संतोष होगा कि इस संस्था के निर्माण में [illegible] भूतपूर्व [illegible] का हाथ है।

[illegible]सकीय आयुर्वेदिक [illegible] उद्घाटन में डा. शाहाणी का प्रास्ताविक भाषण

माननीय मुख्य मंत्रीजी, स्वास्थ्य मंत्री महोदय, भाइयो और बहनो, मुझे यह देख कर भी अधिक प्रसन्नता हो रही है कि हमारे प्रान्त के प्रसिद्ध [illegible]

छांगाणी जी यहां पधारे हुए हैं। आज राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के जन्मदिवस के शुभ अवसर पर इस राज्य के लोकप्रिय मुख्य मंत्रीजी प्रथम शासकीय आयुर्वेद कालेज प्रारम्भ होने की घोषणा करने वाले हैं तथा उन्हीं के करकमलों द्वारा सौ बिस्तरे के आयुर्वैदिक रुग्णालय की इमारत का शिलान्यास भी होने वाला है। गत १५ अगस्त को स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर जबलपुर मेडिकल कालेज की स्थापना मुख्य-मंत्री जी के हस्ते हुई थी उसके केवल दो महीने के भीतर यहाँ पर आयुर्वेद कालेज की स्थापना भी आज से हो रही है; यह शासन की लोक-कल्याणकारी योजनाओं की ओर विशेष अभिरुचि का एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।

सन् १९५० में आयुर्वेद विद्यालय शुरू हुआ था जिसका कोर्स केवल तीन वर्ष का था। वह बहुत ही कम समझा गया और हमारे माननीय मुख्य-मंत्री जी तथा स्वास्थ्य मंत्री जी को उससे सन्तोष नहीं हो रहा था अतः उन्होंने आयुर्वेद के भारत-प्रसिद्ध विद्वान बम्बई निवासी पं० शिवशर्माजी से सलाह लेकर वर्तमान कोर्स जो कि ५॥ वर्ष का है प्रारम्भ करने का निश्चय किया। कॉलेज के साथ सौ बिस्तर का एक अस्पताल भी होगा। १०० बिस्तरे के अस्पताल में वे सभी साधन और उपकरण होंगे जो नागपुर मेडिकल कालेज में हैं किन्तु चिकित्सा का पूरा का पुरा स्वरूप ठेठ आयुर्वेदीय होगा।

आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति बहुत ही पुरानी है और भारतवर्ष में केवल इसी पद्धति से १७ वीं शताब्दी तक चिकित्सा होती[ना है कि आ]यु पद्धति में समयानुसार विकास होते रहे हैं। संभवतः प्रथम केवल जड़ीब[आयुर्वेद इसीलिये] [उ]नके रस का उपयोग करते रहे। हर स्थान पर ताजी वनस्पति न [मि]ली [ऐसा आरोग्य श]बनाने की प्रथा शुरू हुई। कहीं कहीं काढे बनाने में भी जब दिक्क[तें पन्थ ऐसे नहीं।] [इसी]बाद चूर्ण तथा गोलियां बनाई जाने लगीं। जहां तक मुझे स्मरण[के द्वारा जनता की सेव]नागार्जुन ने धातुओं द्वारा चिकित्सा करने की पद्धति का आविष्क[—श्री मंगलदास पकव]... भस्में बनाई जाने लगीं।

तात्पर्य यह है कि प्राच[(पृष्ठ ५४० का शेष)] ... रही। चरक के काल में आयुर्वेदीय चिकित्सा के [लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य अंशों का सार] ... सिद्धि के लिए विद्वत् परिषदें होती [धारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में श्री राष्ट्र-] जाते थे। आजकल वर्तमान वैद्य सम[ा] [एक ओजस्वी] ... [और उत्साहवर्द्धक भाषण] जीवित शास्त्र (living science) नहीं था अत ... [को लिपिबद्ध करके] रहे। यह कालेज आयुर्वेद में खोज शुरू [अनुमति] ... है इसमें कार्य करने वाले विशेष रुचि दिख[ा] [ध्यक्ष] ...

प्रथम पंचवर्षीय योजना में इमार[ा] [बहुत ब] ... अन्य कामों के लि[ए] रुपया रखा गया है द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ... और रकम इस मद में खर्च वाली है जो करीब ४० लाख तक पहुंचेगी। संभवतः द्वितीय पंचवर्षीय योजना के सौ बिस्तर का एक और आयुर्वेद अस्पताल इस प्रांत में खोला जावेगा जिसमें इस का[लेज] के विद्यार्थियों को काम करने का अवसर मिलेगा।

इस प्रान्त में करीब साढे चार सौ आ० अस्पताल हैं जिनमें से बहुत से ऐसे हैं जिन में कि (Qualified vaidya) उपयुक्त शिक्षा प्राप्त वैद्य नहीं हैं। इस कालेज के विद्यार्थियों को अस्पतालों में काम करने का मौका दिया जावेगा। इस महाविद्यालय के आचार्यों के लिये क्लास एक और २ का वेतन मान देने का निश्चय किया गया है ताकि हमें योग्य आचार्य मिल सकें।

हमारी प्रार्थना को मान देकर माननीय मुख्य मंत्री जी तथा हमारे स्वास्थ्य मंत्री जी ने अपनी असुविधाओं पर ध्यान न देते हुए जो यहां पधारकर हमारा उत्साह बढ़ाया है उसके लिये मैं उनका बड़ा आभारी हूं।

अन्य सज्जन जो कि यहाँ पधारे हैं उनका भी मैं आभार मानता हूं कि उन्होंने अपनी उपस्थिति से इस कार्य की शोभा बढ़ाई है।

रायपुर आयुर्वेदिक कालेज के उद्घाटन

समय पर

स्वास्थ्य मंत्री श्री कन्नमवारजी का भाषण

मध्यप्रदेश के स्वास्थ्य मंत्री श्री कन्नमवार जी ने कहा कि आज यह परम सौभाग्य का दिन है कि भारत की प्राचीनतम चि[illegible]ति आयुर्वेद के सक्रिय शिक्षण के लिए हम यह कार्य प्रारम्भ करने जा रहे हैं [illegible] प्रान्त में अनेकों आयुर्वेदीय औषधालय चलाये जा रहे हैं उनके लिए योग[illegible]न्त आवश्यकता है। हम चाहते हैं कि यहाँ से शिक्षा प्राप्त स्नातक आ[illegible] की सेवा करने में विशेष उपयोगी सिद्ध हों। हमारा देश सदैव से सचाई [illegible] की इज्जत करता रहा है। हमें आडम्बर और अनुपयोगी दिखावे [illegible]। आवश्यकता है, प्रत्येक व्यक्ति के जीवन से [illegible]तों के प्रतिकार की। आज हमारे [illegible] दिक्कतें हैं। आयुर्वेद जनता [illegible]द्धा भी है किन्तु शिक्षा की सुविधा [illegible] शासन की यह आन्तरिक अभिलाषा [illegible]ने में आयुर्वेद के वैद्य तैयार हों और [illegible] करें। आज हम यह देखते हैं कि आयु-[illegible] छात्र पूरे डाक्टर के स्वरूप में प्रतीत होते [illegible] चाहते हैं एतदर्थ शासन ने भारत के सुप्रसिद्ध [illegible]वशर्माजी की सलाह से [illegible]ठ्यक्रम तैयार कराया है और उसके अनुसार ही [illegible] की व्यवस्था की गई है।

प्रस्तुत पाठ्यक्रम की अच्छाई और उपयोगिता आयुर्वेद जगत के लिये एक विशेष [illegible]दिशा का निर्माण करने वाली होगी। आज हम देखते हैं कि हमारे पाठ्यक्रम की इतनी मांग हो रही है कि कुछ कहा नहीं जाता।

मुझे विश्वास है कि यहां के छात्र और अध्यापक अपने कर्तव्य को न भूलते हुए आयुर्वेद की उन्नति के साथ ही जनता के आरोग्य निर्माण में अपने विशेष अनुभव और ज्ञान का उपयोग देंगे।

शासकीय आयुर्वैदिक कालेज रायपुर के

उद्घाटक

मुख्यमंत्री श्री शुक्लजी का भाषण

माननीय मुख्यमंत्री श्री पं० रविशंकर शुक्लजी ने शासकीय आयुर्वेदिक कालेज रायपुर का उद्घाटन करते हुए कहा कि आयुर्वेद चिकित्सा भारत की प्राचीन पद्धति है। भारतीयों के स्वभाव और रहन सहन के अनुकूल पड़ती है। इसकी औषध व्यवस्था के लिए हमको किसी का मुहताज नहीं बनना पड़ता और औषधियों के निर्माण, उनकी योजना तथा रोग परीक्षण के लिये भी उतनी ही स्वतंत्रता हैं। सच्चे माने में विज्ञान वही होता है जो अपनी पूर्णता से सम्पन्न और सर्वोपकारक हो, चिकित्सा के प्रत्येक सिद्धान्तों पर आयुर्वेद के पूर्वाचार्यों ने जितनी खोज और प्रगति की है वह बेजोड़ है। आज के विज्ञान का भी हमें आदर है किन्तु अपनी पुरानी पद्धति को भी आगे बढ़ाना है। सरकार ने आयुर्वेद के सर्वाङ्गपूर्ण अध्ययन को लक्ष्य में लेते हुए यह पाठ्यक्रम बनवाया है। गत जून में पं० शिवशर्मा जी को शासन की ओर से पचमढ़ी बुलाया गया था, उनसे इस विषय में विस्तृत विचार विमर्श हुआ, उन्होंने संप्रति प्रचलित आयुर्वेदीय कालेजों के पाठ्यक्रम की कमजोरियों पर हम लोगों का ध्यान आकृष्ट ... और उससे होने वाली बुराइयों को भी स्पष्ट उदाहरणों द्वारा बताया ... इसीलिये ... को जनता और आयुर्वेद पद्धति की हित दृष्टि से उचित समझा। ... ऐसा आरोग्य ... शासन द्वारा स्वीकृत किया गया है सर्वांग परिपूर्ण है। इसके द्वारा ... ऐसे नहीं। ... तो होगा ही, साथ ही इधर पद्धतियों के उच्चस्तरीय ज्ञान का ... द्वारा जनता की ... दिया जावेगा। इस कालेज से निकलने वाले छात्र चिकित्सा शास्त्र के ...

—श्री मंगलदास प...

(पृष्ठ ५४० का शेष)

वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा ... भी सदस्य हैं। सुना है वहां भी वर्तमान पाठ्यक्रम ... लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य ... सार ...

कालेज के साथ ही सौ बिस्त... ारने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। ... आपने श्री राष्ट्र-... किया। अपने भाषण में पं० शुक्ला जी ... एक ओजस्वी ... और उ... की स... भाषण चिकित्सा का महत्व स्थापित करेगा। इस ... हीं, था ... को लिपिबद्ध करके कालेज के अस्पताल में हैं। आपने कहा स... ति ले... रश-करना चाहती है जो आज एलोपैथी के लिए है ...

मैं विश्वास करता हूं यहां के अध्यापक और ... आयुर्वेद का ... खोज कर देश और शास्त्र की उन्नति में सहायक हों ...

वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा जी का शुभ सन्देश

प्रान्त के आयुर्वेदिक इन्स्पेक्टर पं० काशीराम जी शर्मा ने शुभसन्देश प... कहा कि कालेज के उद्घाटन अवसर पर प्राप्त शुभसन्देशों में मुख्य पं० शिवशर्मा जी का सन्देश हमें प्राप्त हुआ है जो इस प्रकार है—

प्रिय श्री डाक्टर शाहाणी महोदय,

आयुर्वेद महाविद्यालय, रायपुर के उद्घाटन समारंभ का निमन्त्रण-पत्र आपके व्यक्तिगत कृपापत्र सहित प्राप्त हुआ, धन्यवाद।

मध्यप्रदेश के तपस्वी तथा तेजस्वी नेता पण्डित श्री रविशंकर जी शुक्ल के करकमलों द्वारा इस संस्था का उद्घाटन होना ही इसका प्रमाण है कि इस संस्था का भविष्य दृढ़ और उज्ज्वल है। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि यह संस्था सफल तथा प्रगतिशील सिद्ध हो तथा देश की अधिकाधिक सेवा करने में अनन्य तथा अनुकरणीय आदर्श बनें। आयुर्वेद जगत की ओर से इस शुभ कार्य को संपन्न करने पर मैं मध्यप्रदेश शासन के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मुझे खेद है कि इस शुभ अवसर पर मैं स्वयं उपस्थित नहीं हो सकूंगा परन्तु मुझे यह विश्वास भी है कि उद्घाटन के समय कोई ऐसा प्रसंग नहीं जिसमें मेरी अनुपस्थिति किसी प्रकार बाधक अथवा हानिकर हो, तथापि अनुपस्थिति के लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

शिवशर्मा

बम्बई २३-९-५५

श्री छांगाणी जी का समर्थन

शासकीय आयुर्वेदिक कालेज, रायपुर, के उद्घाटन समारंभ में भाषण देते हुए प्रान्त के प्रसिद्ध विद्वान् आयुर्वेद बृहस्पति पं० श्री गोवर्धन जी शर्मा छांगाणी ने कहा कि वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा जी आज के आयु[illegible] छांगाण[illegible] सच्चे निर्मापक हैं। उनके द्वारा निर्मित पाठ्यक्रम आयुर्वेद का पूर्णतः पोषक है। [illegible] पाठ्यक्रम की आज आयुर्वेद जगत् को आवश्यकता थी उसकी पूर्ति हो गई [illegible] सम्पन्न [illegible]

मुझे विश्वास है अन्य प्रान्तीय [illegible] पनाकर आयुर्वेदिक साहित्य के सच्चे ज्ञान का संवर्धन करने में आगे आवें [illegible]

मध्यप्रदेश शासन का मैं अन्तः[illegible] भनन्दन करता हूँ कि उसने प्रस्तुत पाठ्यक्रम क[illegible] यम किया है।

सर्व [illegible] उदारता का परिचय देगा। आगे श्री [illegible] जी ने [illegible] कार ने यह एक ऐसा कार्य किया [illegible] इतिहास की पुनरावृत्ति है जो भारतीय [illegible]

[illegible] चिकित्सक कांग्रेस का विशेषाधिवेशन

[illegible] खिल सिलोन आयुर्वेदिक चिकित्सक कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन कोलम्बो [illegible] नवम्बर १९५५ को हो रहा है जिसमें श्री लंका सरकार द्वारा जारी किये [illegible] पर श्वेत-पत्र के सम्बन्ध में श्री लंका के वैद्यों द्वारा क्या पग उठाये जायें, [illegible] विचार किया जायेगा।

श्री लंका आयुर्वैदिक कांग्रेस ने अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री पं० शिवशर्मा को अपने मुख्य अतिथि के रूप में अपने व्यय पर विशेषतया आमंत्रित

किया है ताकि जो निश्चय किये जायें उनमें वे उनका पथ-प्रदर्शन कर सकें। पं० शिवशर्मा ने इण्डियन एयर लाईन कार्पोरेशन के एक विमान द्वारा १६ नवम्बर को प्रातःकाल बम्बई से कोलम्बो के लिये प्रस्थान किया। उनका श्री लंका का भाषण पत्रिका के किसी आगामी अंक में प्रकाशित किया जायेगा।

आलोचकों को पं० शिवशर्मा का उत्तर

गत कुछ मास से मेरे विरुद्ध कुछ लेख एक-दो पत्रों में निकल रहे हैं जिनके अनुसार मेरे कार्यों से आयुर्वेद तथा आयुर्वेद महासम्मेलन को भारी क्षति पहुंची है।

कुछ पत्र और मित्र मेरा उत्तर माँगते हैं। निम्न कारणों से मैं उत्तर नहीं भेज सकूंगा:—

(१) जो समय इन लेखों का उत्तर देने में लगेगा वह अन्य आवश्यक कार्यों में लगाना कहीं अधिक उपयुक्त होगा।

(२) मैं समझता हूं कि उत्तर देना लेखकों को वह महत्व प्रदान करेगा जो न तो उन्हें प्राप्त है न आगे होने की संभावना है।

(३) यदि कोई व्यक्ति श्वेत वस्त्र पहिनकर निकले और कोई उसपर कीचड़ फ़ेंक दे तो न तो वह दूसरे पर कीचड़ फेंकता है न वहां बैठकर स्वयं कपड़े धोने लगता है। वह कपड़े धोबी को संभाल देता है। इसी [illegible] है कि [illegible]ले लेखों द्वारा धवलयश पर फेंके गये कर्दम को दूर करने का भी सुप्रबंध है ही[illegible]र्वेद इसीलिये [illegible]

(४) हमारे सदस्यबंधु दो [illegible] ऐसा आरोग्य [illegible]सत्य जानना चाहते हैं दूसरे तमाशा देखना चाहते हैं। न्यायालय दो[illegible] ऐसे नहीं। इसी[illegible]करता है। वहां सत्य का निर्णय भी निश्चयात्मक होता है और हमा[illegible] द्वारा जनता की [illegible]थियों को तमाशा भी अच्छा दीखता है।

(५) व्यक्तिगत रूपसे —श्री मंगलदास [illegible]शरण जाना किसी संस्था को अदालत में घसीटने के तुल्य अपराध नहीं। (पृष्ठ ५४० का शेष)

इन कारणों से मैंने वह पत्र [illegible]लिए मुद्रित हुआ था उसके मुख्य [illegible] वह इन[illegible] राष्ट्र- को न्यायाधीश के सामने अपने अभिय[illegible]रने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। [illegible] देंगे। साथ [illegible] भाषण सुविधा भी होगी कि कार्यालय की जो [illegible] एक ओजस्वी [illegible] और [illegible]ों था अत[illegible] को लि[illegible]द्ध करके मंगाया जा सकेगा और लेखक यह शिकायत [illegible]त्ति ले[illegible]क [illegible]श- नहीं दी।

इसके अतिरिक्त न्यायालय का निर्णय झगड़े [illegible] समाप्त कर देता है [illegible] न तो कभी समाप्त होते हैं न कोई ऐसा निर्णय ही होता है जिसे अन्तिम और नि[illegible] कहा जा सके।

आशा है यह पग सभी बंधुओं के लिए (जिनमें मैं लेखकों को भी गिनता हूं) संतोषजनक सिद्ध होगा।

६-११-५५

शिवशर्मा

स्वागत समिति

४१ वां अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, कुरनूल

आयुर्वेद महोत्सव

४१ वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के ता० २९, ३० तथा ३१ दिसम्बर १९५५ को होने वाले ऐतिहासिक अधिवेशनों के सम्बन्ध में हम एक नियमित आयुर्वेद महोत्सव कर रहे हैं ।

आन्ध्र, राज्य जो अभी अपनी बाल्यावस्था में ही है, को समस्त भारतीय देश भक्तों के संरक्षण की आवश्यकता है । अतः महोत्सव से सम्बन्धित समारोहों में भाग लेने के लिये हमने अधिक से अधिक भारतीय नेताओं को निमंत्रित करने का कार्यक्रम बनाया है ।

इस घोषणापत्र के साथ महासम्मेलन का प्रायोगिक कार्यक्रम संलग्न है । इस वर्ष महासम्मेलन की विशेषता यह है कि महासम्मेलन को विभिन्न विभागों में बाँटा गया है । इन विविध विभागों के अधिवेशन भिन्न भिन्न हालों में होंगे । किसी विशेष विभाग में भाग लेने के इच्छुक व्यक्ति उस विभा[illegible] सम्मिलित होकर विचार-विनिमय कर सकते हैं ।

[illegible]

सामान्य अधिवेशन, जो कि मुख[illegible] सम्पन्न होगा, में वे सभी व्यक्ति उपस्थित हो सकते हैं, जो ऐसा करने के इच्छुक हों । [illegible]

ए० लक्ष्मीपति
प्रधान मंत्री,
स्वागत समिति ।

[illegible] वें अ० भा० आयुर्वेद म[illegible] सम्मेलन, कुरनूल, के कार्यक्रम की रूपरेखा

(वि[illegible] । जनार्दन श[illegible] की प्रतीक्षा करें)

[illegible] चिल्लाल, इस [illegible] १२-५५

[illegible] वाले एम० अनन्तशयनम् आयंगर संसद सदस्य, [illegible] द्विवेदी एस० एस० शास्त्री [illegible] नई देहली द्वारा ।

[illegible] प्रदर्शनी का उद्घाटन—माननीय श्री गोपाल रेडी गारू, मुख्य मंत्री, आंध्र राज्य द्वारा ।

" विज्ञान-परिषदों का उद्घाटन—महामहिम श्री डा० पट्टाभि सीतारमैया गारू द्वारा । अध्यक्ष—श्री डा० पी० एम० मेहता, एम० डी०, डायरेक्टर—केन्द्रीय अनुसन्धानशाला, जामनगर, सौराष्ट्र ।

१०-३० " " ऐतिहासिक अधिवेशन का उद्घाटन,—माननीय श्री बी० वी० केसकर,

संसद सदस्य, सूचना तथा प्रसार सचिव द्वारा ।
अध्यक्ष—महामहिम श्री के० एम० मुंशी, राज्यपाल, उत्तर प्रदेश ।

३ बजे सायंकाल उद्घाटन अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन-महामहिम श्री सी० एम० त्रिवेदी, राज्यपाल, आन्ध्र राज्य द्वारा ।

६ " " उद्घाटन योगव्यायाम—माननीय श्री डी० संजीवैया गारू, सचिव सहकारी विभाग, आंध्र राज्य ।
अध्यक्ष—श्री स्वामी कुवल्यानन्द (कैवल्याधान, लोनावला)—

३०-१२-५५ शुक्रवार

३ बजे " आयुर्वेद शिक्षा सम्मेलन का उद्घाटन—श्री यू० एन० ढेबर, अध्यक्ष, राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा ।

३१-१२-५५ शनिवार

८ बजे " स्वास्थ्य रक्षा परिषद—अध्यक्ष श्री आचार्य विनोबा भावे ।
विशेष (१) अनुभूत प्रक्रियाा सम्भाषा परिषद् और स्वास्थ्य तथा पंचवर्षीय योजना फिलम शो प्रति दिन होंगे (२) ऐतिहासिक तथा विज्ञान परिषदें प्रातःकाल प्रतिदिन होंगी ।

कार्यालय—
४१वां अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन
२०।१०, पेटा,
कुरनूल (आन्ध्र)

ए० लक्ष्मीपति
बी. ए. एम. बी. एण्ड सी. एम.
प्रधानमन्त्री—
स्वागत समिति

निश्चित कार्यक्रम आगामी पत्रिका [illegible] शित किया जायेगा तथा सदस्य महानुभावों की सेवा में स्वागत समिति द्वारा [illegible] निमन्त्रणपत्र के साथ भी भेजा जायेगा ।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति एवं निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ की कार्यकारिणी समिति के

सम्मिलिताधिवेशन का कार्यविवरण

स्थान—युनिवर्सल हैल्थ इन्स्टीट्यूट, बुद्ध भवन, आउट्रम रोड, फोर्ट, बम्बई—१।

समय—दिनांक २९ अक्टूबर १९५५, दिन शनिवार, २ बजे अपराह्न से।

उपस्थितिः—

वैद्य श्री वाई. पार्थनारायण पण्डित, महासम्मेलनाध्यक्ष, बंगलौर। वैद्य श्री भि. वि. ड्ग्वेकर, विद्यापीठाध्यक्ष, जबलपुर। सर्व श्री माधवप्रसाद, रतलाम। माधवगणेश जोशी, पूना। श्री गोवर्द्धन शर्मा, छाँगाणी, नागपुर। नानकचन्द्र, देहली। कृष्ण शास्त्री कवड़े, पूना। शिवशर्मा, बम्बई। श्रीगुलराज शर्मा मिश्र, नागपुर। वैद्यनाथ शर्मा, बम्बई। प्यारेलाल शर्मा, बम्बई,। कन्हैयालाल भेड़ा, बम्बई। नन्दकिशोर पाठक, मथुरा। वासुदेव शास्त्री, उज्जैन। पाण्डुरंग शिवराम शेण्ड्ये, दमोह। श्रीराम शर्मा, बम्बई। गजानन शर्मा, बम्बई। प्रहलादराय, बम्बई। गंगाधर बालकृष्ण बभ्रे, नागपुर। बूटीवैद्य ए. एन. उदासी, बम्बई। केदारनाथ शर्मा, नागपुर। शिवकरण शर्मा छांगाणी, नागपुर। शान्तिलाल नारायण जी बसन्त, बम्बई। अन्तुभाई वैद्य, बम्बई। अ. [illegible]दग, बेलगांव। एम. सी. कृष्णन नम्बूदिरी, बम्बई। सोमेश्वर मयाशंकर भट्ट, बम्बई। [illegible]रायण हरि जोशी, बम्बई। बिन्दु माधव पण्डित, नासिक। बिहारीलाल अम्बालाल शर्मा, नवसारी। मोहनलाल गुप्त, बम्बई। रामचरन चतुर्वेदी, बम्बई। व्रजजाल जे. पण्डया, बम्बई। त्रिकमलाल जे. रावल, बम्बई। पाण्डुरंग हरि देशपाण्डे, पूना। वामनराव दी. वैद्य, बम्बई।

निम्नलिखित महानुभावों की ओर से सम्मतिपत्र प्राप्त हुए :—

सर्वश्री हरनाथ त्रिपाठी, कानपुर। शिवशर्मा द्विवेदी, अजमेर। मेघराज शर्मा सारस्वत, जोधपुर। हरिचरणसिंह, सरहिंद। जनार्दन श[illegible] रायगढ़। चन्द्रप्रकाश शास्त्री, देहली। [illegible]रायण मिश्र, का[illegible] [illegible]चिलाल, इस्लामपुर। बद्रीविशाल त्रिपाठी, कानपुर। ब्रह्मदत्त शर्मा, [illegible] बालकृष्ण शास्त्री, कानपुर। चन्द्रशंकर रविशंकर, राजकोट। द्विवेदी एस. एस. शास्त्री, [illegible]नगाड़ी। आचार्य नित्यानन्द, पिलानी। मुंशीराम, भटिन्डा। बिहारीलाल, बदरुखां। पद्मनाभ शास्त्री, बीकानेर। ठाकुरप्रसाद शर्मा, बीकानेर। वी. बी. नटराज शास्त्री, त्रिचनापल्ली। वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर। शम्भूनाथ पांडे, कानपुर। शिवशंकर उपाध्याय, लहेरिया सराय। गयाप्रसाद शास्त्री, हैदराबाद। हरिप्रसाद सी. भट्ट, बड़ौदा। हरिदत्त त्रिपाठी, जबलपुर। रामदेव ओझा, मुजफ्फरपुर। सुरेन्द्रनाथ ओझा, मुजफ्फरपुर। मोहनलाल जीवराम ठाकुर, जूनागढ़। वेणीमाधव शास्त्री, नागपुर। अमरनाथ आचार्य, मथुरा। लक्ष्मीकान्त दामोदर पुराणिक, नागपुर। सरयूकान्त

झा, धरहरा। रामेश्वरसिंह कंवर, जालन्धर। यू.एस. मोहन, विजयवाड़ा। रमेशचन्द्र व्यास, अजमेर। पुरुषोत्तमदेव मुलतानी, हैदराबाद। एम. वेंकट शास्त्री, विजयवाड़ा। गिरिजाशंकर पाठक, बरौनी। शम्भूप्रसाद ज. रावल, अहमदाबाद। माधवप्रसाद नः शास्त्री, अहमदाबाद। बाबूराम रणछोड़लाल अहमदाबाद। शिवजी जेठाभाई, माण्डवी। जामनगर। मणीशंकर मूलशंकर त्रिपाठी, अहमदाबाद। हरप्रसाद भाईशंकर जोशी, लक्ष्मीशंकर रामकृण शास्त्री, अहमदाबाद। पंचमदास उदासीन, खुड्डीकलाँ। जगन्नाथ रथ, पुरी। राधाकृष्ण, नालागढ़। आचार्य अमर आयुर्वेद, विद्यालय, अजमेर।

कार्यविवरणः--

महासम्मेलनाध्यक्ष वैद्य श्री वाई. पार्थनारायण जी पण्डित, के सभापतित्व में कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम श्री सभापति जी ने एक संक्षिप्त भाषण दिया जिसका सारांश यह था "दिल्ली से एक पत्रक श्री पं० श्रीदत्त तथा श्री जगदीशप्रसाद के नाम से प्रकाशित हुआ है जिसमें लिखा है कि मैंने सदस्यों को धोखा दिया है, विधान का उल्लंघन किया है तथा ६१ सदस्यों द्वारा देहली में बुलाई गई मीटिंग की सूचना पाकर घबराहट में असत्य भाषण किया है। मैं सदस्यों से सानुरोध प्रार्थना करूंगा कि आवेश में आ कर हम लोगों को अपना सन्तुलन नहीं खो वैठना चाहिये। और शब्दों का प्रयोग सूझबूझ से करना चाहिए और निराधार किसी पर आरोप नहीं लगा देने चाहियें। हम लोग अपने अपने क्षेत्र में कार्य करते हुये इतने ईमानदार [illegible] समझे जाने चाहिएं कि हम अपने व्यवहार में न्यायोचित रहें और शिष्टाचार [illegible] खोवें और न झूठ बोलें और न घबरायें। हमारे लिये भयभीत होने का कारण ही क्या है, हमें सहिष्णु होना चाहिए और आपत्तियों का समाधान करते रहना चाहियें। इसी विचारधारा के अनुसार मैं सदस्य महानुभावों का सहयोग चाहता हूं और यदि हमारे कार्य में कोई भूल भी हो तो उसे मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए।" वैद्य श्री वैद्यनाथ जी (बम्बई) ने पूछा कि श्री प्रधान जी द्वारा ६१ सदस्यों के पत्र का उत्तर नियमित अवधि में दे दिया गया था? उत्तर देते हुए श्री प्रधान जी ने बताया कि पत्र के मिलने के दो दिन पश्चात् श्री जगदीशप्रसाद जी को उत्तर दे दिया था और वह भी सर्टिफिकेट ऑफ पोस्टिंग के आधीन। श्री सभापति जी ने यह भी [illegible] कि दिल्ली की मीटिंग का जो एजण्डा प्रधान के लिए भेजा गया [illegible] वह देहली में १४ अक्टूबर को तब पोस्ट किया गया है जब कि आफि[illegible]यल एजण्डा उसी दिन प्रातःकाल की डाक से देहली में सदस्यों को मिल चुका था।

१—तदुपरान्त प्रधानमन्त्री जी ने विचारणीय विषयों को उपस्थित करते हुए विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के गताधिवेशन के कार्यविवरण की स्वीकृति की प्रार्थना की और कहा कि उक्त कार्यविवरण आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के जुलाई मास के अंक में यथासमय प्रकाशित हो चुका है। वैद्य श्री कन्हैयालालजी भेड़ा, बम्बई, ने कहा कि ऐसा ही होना चाहिए।

वैद्य श्री नन्दकिशोर जी पाठक, मथुरा, ने कहा कि "विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के

गताधिवेशन के कार्य विवरण की स्वीकृति" के विषय के उल्लेख के साथ साथ यह स्पष्ट निर्देश कर देना चाहिये कि उक्त कार्यविवरण विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के अमुक तारीख के अधिवेशन का है। कार्यालय की ओर से आश्वासन दिया गया कि भविष्य में ऐसा ही कर दिया जायेगा। प्रधानमन्त्री द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया कि विषयाधीन विद्यापीठ कार्यविवरण समिति के ता० २६ जून १९५५ के अधिवेशन का है जो ऋषिकेश में सम्पन्न हुआ था।

वैद्य श्री कृष्ण शास्त्री कवड़े, (पूना) ने कहा कि गत समिति की कार्यवाही सभा में पढ़ कर ही सुनाई जानी चाहिये। तदुपरान्त कार्यालय मन्त्री ने सम्पूर्ण कार्यविवरण पढ़कर सुनाया और वह सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ।

२—नवीन सदस्यता एवं सम्बद्धता का विषय उपस्थित हुआ तथा निम्नलिखित सदस्यतायें स्वीकार हुईं :—

क:—आजीवन सदस्य :—

वैद्य श्री नवनीतलाल बद्रीनाथ पण्ड्या, बम्बई।

कविराज श्री राजेन्द्रनाथ पंजाबी, शिवपुरी।

वैद्य श्री कौरचन्द्र शर्मा, भटिण्डा।

ख—मान्य सदस्यता—वे सभी सज्जन जिनका मान्य सदस्यता शुल्क २९ अक्टूबर १९५५ तक कार्यालय में प्राप्त हो चुका है।

३—निम्नलिखित आयुर्वेदिक शिक्षण संस्थाओं की विद्यापीठ से सम्बद्धता स्वीकार की गई :—

१—श्रीमती फूलीबाई संस्कृत पाठशाला, रामगढ़, सीकर।

२—श्री गिरिनारायण आयुर्वेदाश्रम, जूनागढ़, सौराष्ट्र।

३—श्री दिनकर आयुर्वेद विद्यालय, बारां, कोटा।

४—श्री अमरकृष्ण आयुर्वेद महाविद्यालय, पटियाला।

५—श्री गंगा आयुर्वेद भवन, शिक्षण विभाग, उदयपुर।

४—नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की सन् १९५५ वर्षीय परिशिष्ट परीक्षाओं का परीक्षाफल पढ़कर सुनाया गया और सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया।

५—प्रजावैद्य परीक्षा के सर्वथा बन्द कर देने पर विचार हुआ और निश्चय हुआ कि उक्त परीक्षा दक्षिण भारत सहित समस्त भारतवर्ष में बन्द कर दी जाय।

६—श्री दवे समिति की प्रश्नावलि पर विचार हुआ। निश्चय हुआ कि उक्त प्रश्नावलि का उत्तर उन्हीं धाराओं पर दे दिया जाय जिस प्रकार आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के अक्टूबर मास के अंक में सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं।

७—निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ की परीक्षा नियमावलि में प्रस्तुत संशोधनों, परिवर्तनों एवं परिवर्द्धनों का विषय उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि

क—परीक्षा आवेदन-पत्र केवल परीक्षा-शुल्क की प्राप्ति पर ही कार्यालय से भेजे जावें। दो आने के मूल्य से आवेदन-पत्र देने का नियम हटा दिया जाय। तथा

ख—परीक्षा आवेदन-पत्र केवल उसी वर्ष के छपे हुए प्रयुक्त किये जायं और विगत वर्षों के अर्थात् पुराने आवेदन-पत्र मान्य न किए जायं। ये दो सुझाव सर्वसम्मति से स्वीकार किये जायं और शेष सभी सुझाव ४१ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के विचारार्थ एवं निर्णयार्थ उपस्थित किये जायं,

८—विद्यापीठाध्यक्ष, वैद्यराज श्री भिकाजी विनायक डेग्वेकर जी का विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के अधिवेशन बुलाने के विषय पर ता० १३ अक्टूबर १९५५ का वक्तव्य विचारार्थ उपस्थित हुआ। (वक्तव्य परिशिष्ट सं० १ में मुद्रित है)

इसी वक्तव्य का सारांश सभा में प्रस्तुत करते हुए श्री विद्यापीठाध्यक्ष जी ने कहा कि श्री पं० श्रीदत्त जी ने दो बार उनकी अनुमति के बिना सभा बुलाई। उन्होंने विरोध भी किया परन्तु पं० श्रीदत्त जी ने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया।

श्री नन्द किशोर जी पाठक (मथुरा) ने पूछा कि क्या श्री विद्यापीठाध्यक्ष जी ने २८ अगस्त की सभा के अनियमित घोषित करने की सूचना सदस्यों को दी थी, जिससे उनके समय और धन का अपव्यय न होता। श्री विद्यापीठाध्यक्ष जी ने उत्तर में बताया कि तदर्थ समय बहुत थोड़ा था और उन्हें यह भी विश्वास नहीं था कि ऐसी सूचना को श्री पं० श्रीदत्त जी प्रसारित करायेंगे कि नहीं ? इसी लिए वे स्वयं देहली की सभा के लिए भी गये और वहां जा कर भी सभा को अनियमित घोषित किया। श्री पं० श्रीदत्त जी से मिल कर वे इस बात का निपटारा भी करना चाहते थे परन्तु पहिले समय निश्चित करके भी श्री पं० श्रीदत्त जी उन्हें नहीं मिले।

वैद्य श्री वैद्यनाथजी, बम्बई, ने कहा कि विद्यापीठ नियमावलि में जो संशोधन कोट्टकल महासम्मेलन में हुए, वे विद्यापीठ नियमावलि में नहीं छापे गये, वे महासम्मेलन की नियमावलि में ही छापे गये हैं अतएव विद्यापीठ की जो नियमावलि १९५४ में छपी है वह ही विद्यापीठ की नियमावलि मानी जाय। श्री अध्यक्ष जी ने विद्यापीठ की नियमावलि को पहिले भली प्रकार नहीं पढ़ा और उसी का फल उन्हें भोगना पड़ रहा है और पड़ेगा। इस पर श्री पं० शिवशर्मा जी ने श्री वैद्यनाथ जी से इन शब्दों का स्पष्टीकरण मांगा। वैद्य श्री वैद्यनाथ जी ने कहा कि नियमावलि के विषय पर उनका यह मत है यही उनका अभिप्राय है।

वैद्य श्री सोमेश्वर मयाशंकर भट्ट (बम्बई) ने कहा कि श्री विद्यापीठ मंत्री जी ने श्री विद्यापीठाध्यक्ष जी के आदेश की अवहेलना की है यह अध्यक्ष एवं संस्था का अपमान है।

श्री शिवकरण शर्मा छांगाणी (नागपुर) ने कहा कि सन् १९५४ में दोनों नियमावलियां छपी हैं। उनमें परस्पर विरोधी वाक्य हैं उनका संशोधन अब तक नहीं किया गया यह कार्यालय की बड़ी भूल है और इससे सदस्य भ्रम में पड़ रहे हैं।

वैद्य श्री कृष्ण शास्त्री कवड़े (पूना) ने पूछा कि बड़ा ग्राश्चर्य है कि सन् १९५४ में ही तीन नियमावलियां प्रकाशित की गईं। यह कैसे ग्रौर क्यों छपीं ? इस पर कार्यालय मन्त्री से स्पष्टीकरण मांगा गया।

कार्यालय मन्त्री ने बताया कि विद्यापीठ नियमावलि की इतनी बिक्री प्रतिवर्ष होती है कि उसका एक संस्करण प्राय: प्रतिवर्ष निकालना पड़ता है। विद्यापीठ नियमावलि का सन् १९५३ में जो संस्करण निकला था वह समाप्त होने पर सन् १९५४ के प्रारम्भ में ही (वैक्रमाब्द २०१० में) ३९ वें ग्रखिल भारतीय ग्रायुर्वेद महासम्मेलन कोट्टकल के पूर्व ही विद्यापीठ नियमावलि का एक संस्करण देहली कार्यालय द्वारा निकाला गया था। यह सन् १९५४ की पहिली नियमावलि है। तदुपरान्त ३९ वें ग्रखिल भारतीय ग्रायुर्वेद महासम्मेलन, कोट्टकल, जो मार्च १९५४ में सम्पन्न हुग्रा, पर महासम्मेलन तथा विद्यापीठ की नियमावलियों में संशोधन किए गये। महासम्मेलन द्वारा संशोधित महासम्मेलन की नियमावलि ग्रप्रैल १९५४ सम्वत् २०११ में दिल्ली कार्यालय द्वारा प्रकाशित की गई। यह दूसरी नियमावलि है। इसी नियमावलि के ग्रन्तर्गत विद्यापीठ का संगठनात्मक विधान भी है।

विद्यापीठ की संशोधित नियमावलि श्रीमान् विद्यापीठ मन्त्री जी ने श्री स्वामी दयानिधि जी, तत्कालीन विद्यापीठ उप सभापति, द्वारा ऋषिकेश में सन् १९५४ परन्तु सम्वत् २०११ में ३९ वें महासम्मेलन के बाद ऋषिकेश में छपवाई। यह तीसरी नियमावलि है। इसके छपवाने में कार्यालय का कोई भी हाथ नहीं था। इसकी मूल कापी स्वयं श्रीमान् विद्यापीठ मन्त्री जी ने ग्रपने पास रख छोड़ी थी ग्रौर उन्होंने ही इसे श्री स्वामी दयानिधि जी को सौंपा था। जब नियमावलि छप कर कार्यालय में पहुंच गई कार्यालय ने तो तब देखा कि विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति द्वारा तथा ३९ वें महासम्मेलन द्वारा किए गये ग्रनेक संशोधनों तथा परिवर्तनों का समावेश इस नियमावलि में किए जाने से रह गया है।

तदुपरान्त विषय पर विचार-विमर्श के ग्रनन्तर निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किए गये :—

१—२८ ग्रगस्त १९५५ की जो विद्यापीठ कार्यकारिणी की सभा श्री पं० श्रीदत्त जी ने श्री विद्यापीठाध्यक्ष के स्पष्ट ग्रादेश के विरुद्ध बुलाई, २—वह पोस्टकार्ड, जो ता० १५-८-५५ को विद्यापीठाध्यक्ष ने कार्यालयमन्त्री को लिखा जिसके बारे में यह कहा जाता है कि इससे पं० जी को मीटिंग बुलाने की ग्रनुमति मिल गई, तथा ३—इस सम्बन्ध में जो वक्तव्य श्री विद्यापीठाध्यक्ष जी ने दिया—इन विषयों पर विचार करके निश्चय हुग्रा कि उक्त सभा ग्रवैधानिक थी तथा इस सम्बन्ध में श्री विद्यापीठाध्यक्ष ने संस्था के हित तथा संविधान की रक्षा के लिये जो कार्यवाही की उसे मान्य ग्रौर स्वीकार किया जाय।

प्रस्तावक—श्रीकृष्ण शास्त्री कवड़े, पूना।
ग्रनुमोदक—श्री वासुदेव शास्त्री, उज्जैन।
" श्री गुलराज शर्मा, नागपुर।

वैद्य श्री वैद्यनाथ शर्मा, बम्बई, वैद्य श्री कन्हैयालाल भेड़ा, बंबई, तथा वैद्य श्री केदारनाथ

जी, नागपुर, ने इस प्रस्ताव के विरोध में मत दिया और शेष सबने पक्ष में। इस प्रकार बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

.२—निश्चय हुआ कि नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की नियमावलि में संविधान सम्बन्धी वे सब संशोधन, परिवर्द्धन और परिवर्तन लागू कर दिये जांय जो अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की नियमावलि के अन्तर्गत ३९ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, कोट्टकल, द्वारा किये गये थे।

प्रस्तावक—वैद्य नन्दकिशोर पाठक, मथुरा।

अनुमोदक—बूटीवैद्य श्री ए० एन० उदासी, बम्बई।

प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ।

वैद्य श्री वैद्यनाथ शर्मा, बम्बई, ने कहा कि इन सब संशोधनों की चिट विद्यापीठ नियमावलि में लगा दी जाय। सभा ने यह सुझाव सर्वसम्मति से स्वीकार किया।

९—श्री पं० श्रीदत्त शर्मा द्वारा ता० २८-८-५५ को मारवाड़ी औषधालय, किनारी बाजार, देहली, में आयोजित मीटिंग की घटनाओं एवं उनकी पुनरावृति न हो सके ऐसे उपायों पर विचार उपस्थित हुआ। सदस्यों ने कहा कि क्योंकि २८-८-५५ की सभा के अवैधानिक होने तथा इस सम्बन्ध में श्री विद्यापीठाध्यक्ष जी की कार्यवाही को मान्य एवं स्वीकार करने का पहले विषय के अन्तर्गत प्रस्तावानुसार निश्चय हो चुका है अतएव स्थिति देखते हुए अभी इस विषय पर विचार स्थगित रखा जाय। यह सुझाव सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ।

१०—आयुर्वेदाचार्य क्रमांक १०२, श्री कान्तिनारायण मिश्र, की परीक्षा उत्तर पुस्तकों के सम्बन्ध में श्री पं० श्रीदत्त शर्मा के कार्य एवं उपक्रम पर विचार उपस्थित हुआ। श्री विद्यापीठाध्यक्ष जी ने बताया की पटियाला में तत्संबन्धी जांच अभी पूरी नहीं हो सकी है। अतएव इस विषय को अभी स्थगित रखा जाय। यह सुझाव सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ।

११—क—श्री पं० श्रीदत्त शर्मा के विद्यापीठ मन्त्रित्व से विवादास्पद त्यागपत्र पर विचार किया गया। उनके इस आरोप पर भी विचार किया गया कि इस त्यागपत्र पर उनके हस्ताक्षर श्री वामनराव जी तथा श्री तिलकराम शर्मा द्वारा जाली बनाये गये हैं। इस संबंध में श्री पं० शिवनाथ जी शर्मा, देहली, द्वारा श्री पं० शिवशर्मा जी को लिखे गये पत्र में वर्णित उस जालसाजी की सम्भव क्रिया, जो कार्यालय में श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा के हस्ताक्षर की मोहर इत्यादि द्वारा की गई समझी गई, पर भी विचार हुआ।

निश्चय हुआ कि त्यागपत्र के मौलिक पत्र पर से किसी न्यायाधीश अथवा जस्टिस औफ पीस के सामने एक टुकड़ा काट कर और इन दोनों भागों पर अधिकारी की मोहर लगवा कर एक भाग को श्री पं० शिवनाथ जी शर्मा को देकर उसकी रसीद ले ली जाय और उनसे प्रार्थना की जाय कि असाधारण सभा के लिये ६१ हस्ताक्षर कर्त्ताओं में से कोई दो व्यक्ति कार्यालय समय में कार्यालय में ६ दिन बैठ कर तथा हस्ताक्षरों की मोहर आदि

सम्पूर्ण सामग्री का उपयोग करके यदि तत्सम हस्ताक्षर बना सकते हों तो बनाकर दिखायें, तथा तत्पश्चात् श्री शिवनाथ जी शर्मा वह कागज कार्यालय को वापस करके उसकी रसीद ले लें, तथा त्यागपत्र के दोनों भाग पुनः विचार के लिये स्थायी समिति के आगामी अधिवेशन के समक्ष उपस्थित हों।

यह भी निश्चय हुआ कि जब तक स्थायी समिति इस विषय पर अन्तिम निर्णय न कर ले तब तक विद्यापीठ के कार्य संचालन के लिये जो प्रबन्ध प्रधान मन्त्री ने किया है वह चालू रहे।

प्रस्तावक—वैद्य प्यारेलाल शर्मा, बम्बई।
अनुमोदक—वैद्य माधवप्रसाद, रतलाम।

यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ।

तत्पश्चात् बूटी वैद्य ए० एन० उदासी, बम्बई, ने एक भाषण द्वारा सभा से अपील की कि इस प्रकार व्यर्थ के झगड़ों से समय समय पर हमारी इस प्रिय अखिल भारतीय संस्था एवं इसके कार्य को हानि पहुंचती है, यह एक बहुत खेद का विषय है। हमें ऐसे उपायों पर अवश्य विचार करना चाहिये जिससे ऐसी स्थितियों की पुनरावृत्ति न हो। उपस्थित सदस्यों ने उनकी सद्भावनाओं का हार्दिक समर्थन किया। वैद्य श्री नन्दकिशोर जी, मथुरा, ने कहा कि दुर्भाग्यवश ऐसी परिस्थितियां हो ही जाती हैं। हमें इन्हें शान्तिपूर्ण रीति से निपटाते रहना चाहिए। श्री उदासी जी ने कहा कि यदि न्यायालय में ही जांना पड़े तो बहुत धन व्यय होगा, सम्मेलन को इस व्यय से बचना चाहिए। श्री शिवकरण जी छांगणी, नागपुर, ने कहा कि यह विषय हमें पारस्परिक मध्यस्थता के द्वारा ही निपटाना चाहिए। वैद्य श्री वैद्यनाथ शर्मा, बम्बई, ने भी ऐसे ही भाव प्रकट किये।

ख—इसी सम्बन्ध में विद्यापीठ कार्यालय के ऋषिकेश से देहली परिवर्तित करने के विषय पर प्रधान मन्त्री तथा कार्यालय मन्त्री के विरुद्ध श्री पण्डित श्रीदत्त शर्मा के इस आरोप पर विचार हुआ कि उनकी जानकारी के बिना विद्यापीठ कार्यालय ऋषिकेश से देहली को परिवर्तित कर दिया गया। इस विषय पर कार्यालय मन्त्री का स्पष्टीकरण उपस्थित हुआ। विचार-विमर्श के अनन्तर निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ।

"स्थायी समिति का यह अधिवेशन विद्यापीठ कार्यालय के ऋषिकेश से देहली परिवर्तित करने के विषय पर श्री प्रधान मन्त्री जी के कार्य पर सन्तोष प्रकट करता है क्योंकि यह कार्य ४० वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के सर्वसम्मत प्रस्ताव के सर्वथा अनुसार और संस्था के हित में है।

"यह भी निश्चय हुआ कि इस सम्बन्ध में श्री पं०श्रीदत्त शर्मा द्वारा कार्यालय मन्त्री श्री तिलकराम शर्मा के विरुद्ध जो आरोप लगाये गये हैं तथा उनका कार्यालय मन्त्री ने जो उत्तर दिया है उन्हें सर्व सदस्यों की जानकारी के लिये इस अधिवेशन के कार्यविवरण के अन्तर्गत प्रकाशित कर दिया जाय।"

विशेष-कार्यालय मन्त्री पर आरोप तथा उनका स्पष्टीकरण क्रमशः परिशिष्ट सं० २ तथा ३ में देखें।

ग—इस परिस्थिति के दूसरे पहलुओं पर ध्यान देते हुए ६१ सदस्यों द्वारा देहली में ता० ३० अक्टूबर के लिये बुलाई गई सभा के विषय पर विचार-विमर्श हुआ। वैद्य श्री जगदीशप्रसाद ने देहली की मीटिंग के विषय पर श्री पं० श्रीदत्त शर्मा के साथ जो वक्तव्य प्रकाशित किया है उस पर भी विचार हुआ। इसी सम्बन्ध में श्री कुन्दनलाल खेतल नामक व्यक्ति के वकील के नोटिस पर भी विचार हुआ। विचारविमर्श के अनन्तर निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हुए:—

१—निश्चय हुआ कि देहली में जो सभा ता० ३०-१०-५५ के लिये कुछ सदस्यों द्वारा बुलाई गई है वह अनियमित एवं अवैधानिक है तथा यदि ऐसी सभा वहां की गई तो उसके परिणामों का उत्तरदायित्व उन सदस्यों पर पृथक् पृथक् तथा सामूहिक रूप में रहेगा।

यह भी निश्चय हुआ कि महासम्मेलन एवं विद्यापीठ के प्रधानों के हस्ताक्षरों से उपर्युक्त प्रस्ताव की सूचना देते हुए एक एक्सप्रैस तार आज ही ६१ हस्ताक्षर कर्ताओं में ५ अग्रणी व्यक्तियों को देहली भेज दी जाय।

प्रस्तावक—वैद्य श्री माधव गणेश जोशी, पूना।
अनुमोदक— " कृष्णशास्त्री कवड़े, पूना।
" " ए० एन० उदासी बूटवैद्य, बम्बई।
" " गंगाधर बालकृष्ण बभ्के, नागपुर।
" " वासुदेव शास्त्री, उज्जैन।
" " वैद्य श्री मोहनलाल गुप्ता, बम्बई।

यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ।

२—देहली के पं० जगदीश प्रसाद ने अपने मुद्रित वक्तव्य में महासम्मेलनाध्यक्ष के प्रति असत्य भाषण, घबरा जाने और संस्था के विधान उल्लंघन के जो आरोप लगाये हैं, उन्हें यह समिति सर्वथा निर्मूल समझती है और उनकी भाषा तथा भाव का तीव्र विरोध प्रकट करती है एवं ऐसे शब्द प्रयोग के लिये उनसे पश्चाताप करने का आग्रह करती है।

यह समिति महासम्मेलनाध्यक्ष वैद्य श्री वाई० पार्थनारायणजी पण्डित में अपना पूर्ण विश्वास प्रकट करती है।

प्रस्तावक—वैद्य श्री कृष्ण शास्त्री कवड़े, पूना।
अनुमोदक—वैद्य श्री मोहनलाल गुप्त, बम्बई।

३—श्री कुन्दनलाल खेतल नामक व्यक्ति के वकील द्वारा भेजे हुए उस नोटिस पर विचार हुआ जिसमें वकील ने रिक्वीजिशन मीटिंग के ६१ हस्ताक्षर कर्ताओं की ओर से अध्यक्ष तथा प्रधानमन्त्री महासम्मेलन को आज की सभा करने के विरुद्ध चेतावनी दी है। नोटिस में यह देखा गया है कि न केवल अध्यक्ष महोदय का नाम ही उनके नाम से भिन्न लिखा गया है बल्कि वकील के मुख्य मुवक्कल श्री कुन्दनलाल खेतल का नाम भी जानकर या अनजाने में कुन्दन खेतल लिखा गया है। अतएव निश्चय हुआ कि कानून की दृष्टि

से यह नोटिस निकम्मा है और इस पर कोई ध्यान न देकर इसे फाइल कर दिया जाय।

यह भी निश्चय हुआ कि यदि कोई एक या अधिक व्यक्ति महासम्मेलन विद्यापीठ अथवा इनके अधिकारियों पर अभियोग करके अधिकारियों को कठिनाई में डालें और संस्था के कार्य-संचालन में बाधा डालें तो यह संयुक्त अधिवेशन प्रधान मन्त्री को अधिकार देता है कि संस्था के हित और संगठन की रक्षा के लिए कोई भी आवश्यक कार्यवाही, जिसे वह उचित समझें करें।

प्रस्तावक—श्रीकृष्ण शास्त्री कवड़े, पूना।
अनुमोदक—श्री सोमेश्वर मयाशंकर भट्ट, बम्बई।

यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ।

४—महासम्मेलन स्थायी समिति एवं विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति का यह संयुक्ताधिवेशन महासम्मेलनाध्यक्ष वैद्य श्री वाई० पार्थनारायण पण्डित, द्वारा किये गये उस प्रयत्न की प्रशंसा करता है जो उन्होंने विद्यापीठ में उत्पन्न विवाद की मध्यस्थता करने के लिये राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष, श्री यू० एन० ढेबर, को तैयार करने में किया। श्री ढेबर महोदय के प्रति यह अधिवेशन अपना आभार प्रकट करता है कि उन्होंने अति कार्यग्रस्त होते हुए भी इस संस्था के कार्य के लिये अपना अमूल्य समय देने की स्वीकृति दी। परन्तु क्योंकि कुछ विवादियों ने इस मध्यस्थता को स्वीकार नहीं किया, अतएव यह अधिवेशन अब खेद के साथ पन्ची के विचार को स्थगित करता है।

प्रस्तावक—श्री नन्दकिशोर पाठक, मथुरा।
अनुमोदक—श्री माधवगणेश जोशी, पूना।

१२—वैद्य श्री गुलराज शर्मा मिश्र, प्रचार मन्त्री, द्वारा प्रस्तुत प्रचार योजना पर विचार हुआ। निश्चय हुआ कि तदर्थ आगामी महासम्मेलन तक दो मास के लिये २५ रुपया मासिक डाक व्यय के लिये स्वीकार किये जायं।

१३—श्री बनवारी लाल आयुर्वेद विद्यालय, देहली, को नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के आधीन लेने के विषय पर विचार उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि अन्तिम निश्चय के लिये इस विषय को आगामी महासम्मेलन के अवसर पर उपस्थित किया जाय।

१४—पटियाला, नागपुर तथा रामगढ़ की परीक्षा-केन्द्रों की व्यवस्था के आरोपों के सम्बन्ध में निरीक्षकों की रिपोर्ट पर विचार करने का विषय निम्नलिखित महानुभावों द्वारा निर्मित एक समिति को सौंपा गया।

समिति के सदस्यः—

१—विद्यापीठाध्यक्ष, श्री भि० वि० डेग्वेकर।
२—वैद्य श्री कृष्ण शास्त्री कवड़े, पूना।
३—वैद्य श्री नन्दकिशोर शर्मा, मथुरा।
४—वैद्य श्री वैद्यनाथ शर्मा, बम्बई।
५—वैद्य श्री प्यारेलाल शर्मा, बम्बई।

१५—परीक्षा समिति के निर्माण का विषय उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि सन् १९५६ वर्षीय परीक्षाओं की व्यवस्था के लिये निम्नलिखित महानुभावों द्वारा निर्मित एक परीक्षा समिति का निर्माण किया जायः—

१—विद्यापीठाध्यक्ष, श्री भि० वि० डेग्वेकर, जबलपुर।
२—वैद्य श्री प्यारेलाल शर्मा, बम्बई।
३—वैद्य श्री वासुदेव शास्त्री, उज्जैन।
४—वैद्य श्री शंकरदत्त गौड़, जबलपुर—उपमन्त्री, विद्यापीठ।
५—वैद्य श्री नानकचन्द शर्मा, स्थानापन्न विद्यापीठ मन्त्री।

१६—ऋषिकेश से विद्यापीठ कार्यालय में आये हुए नवीन कर्मचारियों की नियुक्ति का विषय उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि जिस जिस दिन से ये कर्मचारी क्रमशः निम्नलिखित वेतन पर कार्य कर रहे हैं उस दिन से उनकी अस्थायी नियुक्ति स्वीकार की जाय।

क्रमसंख्या	नाम कर्मचारी	पद	मासिक वेतन	महंगाई भत्ता
१—	श्री राममूर्ति संगर	अकाउण्टेंट	१४०-०-०	२१-०-०
२—	श्री केदारनाथ शर्मा	लेखक	६०-०-०	२१-०-०
३—	श्री जय भगवान शर्मा	"	६०-०-०	२१-०-०
४—	श्री श्रीनिवास कृष्णाचारी	"	६०-०-०	२१-०-०
५—	श्री ओमप्रकाश	चपरासी	३५-०-०	१२-४-०
			तथा साइकल भत्ता :—	५-०-०

इनकी स्थायी नियुक्ति पर ३१ मार्च सन् १९५६ के पश्चात् विचार किया जाय, यह भी निश्चय हुआ।

१७—मिश्रित विषय :—

क—सभा को यह जानकर खेद हुआ है कि ४० वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, त्रिवेन्द्रम, की स्वागत समिति, अभी तक ४० वें महासम्मेलन सम्बन्धी कुछ आवश्यक बिल किन्हीं वैधानिक अथवा अन्य अड़चनों के कारण नहीं चुका सकी है। सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि महासम्मेलन के उद्घाटनकर्ता श्री मोरारजी देसाई, मुख्यमन्त्री, बम्बई, के वायुयान के किराये का बिल तथा महासम्मेलन एवं शिक्षासम्मेलन के दोनों अध्यक्षीय भाषणों की छपाई के बिल अभी महासम्मेलन कोष से चुका दिये जायं और ये धनराशियां ४० वें महासम्मेलन की स्वागत समिति के नाम डाल दी जावें। तदुपरान्त यह रुपया स्वागत समिति से प्राप्त कर लिया जाय।

ख—अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलनके ४१ वें अधिवेशन, जो कुरनूल, आन्ध्र राज्य, में सम्पन्न होने जा रहा है, के लिये २९, ३० तथा ३१ दिसम्बर ५५ की तिथियां सर्वसम्मति से स्वीकार की गईं।

ग—एक प्रान्त के वैद्यों को दूसरे प्रान्त में चिकित्सा करने में कोई अड़चन न डाली जाय इस विषय में वैद्य श्री नन्दकिशोर जी पाठक, मथुरा, द्वारा निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया गया :—

"अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति इस स्थिति पर खेद प्रकट करती है कि एक प्रान्त के वैद्य को दूसरे प्रान्त में चिकित्सा व्यवसाय करने में कुछ प्रादेशिक सरकारों द्वारा प्रतिबन्ध लगाये जा रहे हैं। इस समिति के मत में ऐसे प्रतिबन्ध हमारे राष्ट्रीय विधान तथा कानून के विरुद्ध हैं और इनका तत्काल हटाया जाना अपेक्षित है।"

"यह समिति निश्चय करती है कि वैद्य वर्ग को इन प्रतिबन्धों से शीघ्र ही मुक्त करने के लिये आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय द्वारा शीघ्र ही आवश्यक पत्र-व्यवहार किया जाय।"

इस प्रस्ताव का समर्थन वैद्य श्री श्रीगोवर्द्धन शर्मा छांगाणी, नागपुर, वैद्य श्री केदारनाथ शर्मा, नागपुर, तथा वैद्य श्री प्यारेलाल शर्मा, बम्बई, ने किया और यह सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया।

घ—निश्चय हुआ कि महासम्मेलन की प्रत्येक प्रादेशिक शाखा को निर्देश किया जाय कि वह अपने प्रदेश के किसी मुख्य नगर में १—प्रदेश की ६० सर्वोत्तम बूटियों का एक उद्यान लगायें, २—आयुर्वेदीय ग्रन्थों का एक पुस्तकालय बनायें तथा ३—उस देश के मुख्य द्रव्यों का एक संग्रहालय बनायें।

प्रस्तावक—वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह जी, बनारस।
अनुमोदक—वैद्य श्री कन्हैयालाल जी भेड़ा, बम्बई।
,, वैद्य श्री वासुदेव शास्त्री, उज्जैन।

समागत सभ्यों एवं सभापति महोदयों का धन्यवाद करके सायं ७-३० पर सभा विसर्जित हुई।

नानकचन्द्रः
स्थानापन्न—विद्यापीठ मंत्री,

वामनराव दीनानाथ वैद्य
प्रधानमंत्री,
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन।

परिशिष्ट सं० १

श्री विद्यापीठाध्यक्ष का वक्तव्य जो १३ अक्तूबर १९५५ को प्रकाशित हुआ

प्रिय महानुभाव,

आपकी सेवा में श्रीदत्त कुटी, कनखल, से भेजा हुआ नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यकारिणी के अनधिकृत तथा अवैधानिक तथाकथित पंचमाधिवेशन का निमंत्रण-पत्र

पहुंचा ही होगा। यह निमन्त्रण विद्यापीठाध्यक्ष की अनुज्ञा के बिना दिए जाने के कारण नियम विरुद्ध है।

१—इस प्रकार की दो अनधिकृत बैठकें क्रमशः दि० २८-८-५५ तथा १८-९-५५ को बुलाई गयीं थीं। उनमें से प्रथम दि० २८-८-५५ की बैठक में स्वयं उपस्थित होकर मैंने उसके नियम विरुद्ध तथा अनधिकृत होने का विधान के अनुसार स्पष्टीकरण किया था तथा उस बैठक को अवैधानिक घोषित करके मैंने सभास्थान का त्याग किया था।

२—तत्पश्चात् श्रीमान् श्रीदत्त जी ने १८-९-५५ को उसी प्रकार की अनधिकृत एवं अवैधानिक बैठक बुलाई। ऐसी बैठक में की गई कार्यवाही किस प्रकार वैधानिक दृष्ट्या व्यर्थ होगी इसका स्पष्टीकरण करते हुए एक पत्रक मैंने विद्यापीठ कार्यकारिणी के सदस्यों की सेवा में भिजवाया था, जिसके कारण सदस्यों को वास्तविक स्थिति की जानकारी हुई और वे बैठक में उपस्थित नहीं हुए। इसी कारण श्रीमान् रायबहादुर श्रीदत्त जी को उस अनधिकृत कार्यवाही का सम्पादन करना असम्भव हो गया और विवशतया उन्हें बैठक स्थगित करनी पड़ी।

३—किन्तु इन दोनों घटनाओं से वास्तविक परिस्थिति का ज्ञन तथा तज्जन्य बोध न लेते हुए श्रीमान् रायबहादुर साहब ने फिर से वही जलताड़न का कार्य किया है, जिसमें जो कुछ इने गिने व्यक्ति उपस्थित होंगे उन्हें फिर से उसी प्रकार वापिस जाना होगा।

४—मेरे गत बैठक के पूर्व भेजे हुए अथवा इस पत्र से मान्य विद्यापीठ सदस्यों के अन्तःकरण में किसी भी प्रकार का भ्रम होना सम्भव नहीं है। प्रत्येक सदस्य महोदय भली भांति जानते हैं कि हर एक संस्था का संचालन अधिकृत नियमों के अनुसार ही होता है। विद्यापीठ संस्था स्वतंत्र संस्था नहीं है किन्तु अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के अन्तर्गत संस्था है। नियमावली की धारा २०-क में पृष्ठ २० पर स्पष्ट नियम है कि "महासम्मेलन के अधीन 'निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ' नाम की एक संस्था होगी।" अतएव अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के वार्षिक अथवा अन्य किसी अधिवेशन में जो वद्यापीठ के नियमों में परिवर्तन किया जायगा वह विद्यापीठ के कार्यकर्ताओं को-विद्यापाठ, महासम्मेलन के अधीन संस्था होने के कारण-मान्य करना ही होगा।

५—३९ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, कोट्टकल, दक्षिण मालावार, में स्वीकृत नियमावली के अनुसार पृष्ठ २१ पर स्पष्ट नियम है कि (ग० कार्यकारिणी की सभा देखिए) "सभापति या सभापति की अनुमति से विद्यापीठ मन्त्री जब कभी उचित समझेंगे, कार्यकारिणी की सभा बुला सकते हैं।" यह स्वीकृत नियमावली एप्रिल १९५४ में "नया हिन्दुस्तान प्रैस, चांदनी चौक, देहली" में छपी हुई है। इसके पश्चात् आज तक कोई परिवर्तन, त्रिवेन्द्रम के अधिवेशन में नहीं हुआ। अतएव यही नियम अन्तिम और आज तक लागू होने वाले है।

६—जब किसी संस्था के किसी अधिवेशन में नियमों में परिवर्तन किया जाता है, तब उस परिवर्तन के कारण संस्था के तद्विषयक पहिले बने हुए सभी नियम—यदि वे नये

नियमों के विरोधी हों— कार्यक्षम नहीं रहते किन्तु रद्द (inoperative) हो जाते हैं। अतः कोट्टकल में स्वीकृत नियमों के कारण संस्कृत नियमावली—जिसके नियम कोट्टकल अधिवेशन के पूर्व बने हुए हैं, तथा कोट्टकल अधिवेशन में स्वीकृत नियमों से स्पष्टतया विरोधी हैं (apparently inconsistant) स्वयं रद्द हो जाती है।

७—संस्कृत नियमावली के अनुसार विद्यापीठ कार्यकारिणी का अधिवेशन बुलाने का अधिकार अवश्य ही विद्यापीठ मन्त्री जी को है। (पृष्ठ ५ परीक्षा नियमावली देखिए।)

"१—सत्यामावश्यकतायां विद्यापीठमन्त्री कार्यकारिणीसमितेः अधिवेशनमायोजयितुं शक्नोति।"

परन्तु कोट्टकल अधिवेशन में इस धारा में संशोधन किया गया। अतः सन् १९५४ में जब संस्कृत नियमावली फिर से प्रकाशित की गई तब उसमें नियमानुकूल परिवर्तन कराकर उसे छपवाना विद्यापीठ मन्त्री जी का नितान्त आवश्यक तथा नियमित कार्य था।

८—श्रीमान् रायबहादुर श्रीदत्त जी की इस भूल के कारण वे अपनी ही तूती बजाते जा रहे हैं। अतः विद्यापीठ की कार्यकारिणी के सदस्यों से मेरी नम्र प्रार्थना है कि वास्तविक परिस्थिति की ओर ध्यान देकर स्वयं अपने विचार से निश्चय करें कि कौन सा पक्ष शुद्ध और वैधानिक है।

९—जो संस्था स्वयं बनाये हुए नियमों का पालन करने में समर्थ नहीं होती उसका संचालन किस प्रकार किया जा सकता है? इसी उद्देश्य को साध्य करने के लिए श्रीमान् वैद्य वाई० पार्थनारायण जी पण्डित, महासम्मेलनाध्यक्ष, ने प्रचलित वाद का निर्णय कराने के लिए श्रीमान् ढेबर भाई, कांग्रेसाध्यक्ष, को मध्यस्थ करने का विचार किया है, तथा आगामी २९ अक्टूबर को बम्बई में अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति तथा विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति का सम्मिलिताधिवेशन निश्चित किया है जिसका एजेण्डा संलग्न है।

१०—महासम्मेलनाध्यक्ष श्री पार्थनारायण जी ने श्रीमान् ढेबरभाई जी के मध्यस्थ नियुक्ति सम्बन्ध का जो पत्र दि० १३-९-५५ को ६ व्यक्तियों के पास भेजा था और जो आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित हो चुका है, उसमें अन्त में स्पष्ट आदेश दिया है कि—

P.S. "Pending a decision on whether the disputants are submitting to the arbitration or not, I would advise that no meeting be called to discuss the dispute, as it will lead to further complications. While keeping the previous issues absolutely open I may rule for the further meetings that any meeting called by any Secretary against nstructions of the President shall be *ill*egal and void."

सम्मेलनाध्यक्ष का इतना स्पष्ट आदेश होते हुए भी श्रीमान् रायबहादुर श्रीदत्त जी द्वारा १६-१०-५५ को विद्यापीठ कार्यकारिणी की मीटिंग बुलाया जाना स्पष्ट शब्दों में महासम्मेलनाध्यक्ष तथा तद्द्वारा समग्र महासम्मेलन विद्यापीठ का अपमान एवं निरादर करना निश्चित होता है। इसका भी विचार कार्यकारिणी समिति के मान्य सदस्यों को अवश्य करना चाहिए, ऐसी मेरी विनम्र प्रार्थना है।

११—अन्त में सदस्यों को बम्बई में होने वाले सम्मिलिताधिवेशन में उपस्थित होने की विनति करके मैं विराम लेता हूं।

भवदीय,
ह० भि० वि० डेग्वेकर,
विद्यापीठाध्यक्ष।

परिशिष्ट नं० २

श्री पं० श्रीदत्त शर्मा द्वारा श्री तिलकराम शर्मा को भेजा गया आरोप-पत्र

श्री पं० तिलकराम जी,

आपको सूचित किया जाता है कि आपने आयुर्वेद विद्यापीठ के सीनियर क्लर्क की हैसियत से विद्यापीठ के कार्य को हानि पहुंचाई है और आपके विपक्ष में बहुत दोषपूर्ण आरोप हैं।

१—तुम्हारे विपक्ष में विद्यापीठ के कार्य के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की शिकायतें मेरे पास आई हुई थीं जिनकी जांच पड़ताल करना चाहता था, किन्तु उनकी जांच पड़ताल न हो इस भावना से मेरी अनुपस्थिति और बिना मेरी आज्ञा के छुप कर आयुर्वेद विद्यापीठ के कार्यालय को ऋषिकेश से दिल्ली परिवर्तन कर लिया। इससे आयुर्वेद विद्यापीठ को बड़ी हानि हुई है, और उसकी जिम्मेदारी तुम्हारी है।

२—आपको कभी किसी कार्यकारिणी समिति ने कार्यालय मन्त्री नहीं बनाया आप स्वयं ही कार्यालय मन्त्री बन कर एवं लिख कर वैद्य समाज को धोखा देते रहे हैं।

३—आपने बार बार अनुशासन भंग किया है और मेरे आदेशों का उल्लंघन किया है जिनके सम्बन्ध में जांच के समय पूछा जायगा।

४—२८-८-५५ की विद्यापीठ की कार्यकारिणी के समय आप विद्यापीठ मीटिंग सम्बन्धी सभी कागजात लेकर भाग गये। और फिर आपको सूचना भेजी उसको लेने से इन्कार किया और मीटिंग में बुलाने पर भी उपस्थित नहीं हुए। ये सब कार्यकारिणी का भारी अपमान है।

५—उपरोक्त तथा अन्य आरोपों के कारण मैं आपको आज तारीख २९-८-५५ से मुअत्तिल करता हूं। जब तक आपके विषय में पूरी तहकीकात होकर निर्णय न हो तब तक आप कोई विद्यापीठ का कार्य न करें और कोई मनीआर्डर, हुन्डी, चिट्ठी, बीमा आदि न लें और कोई चिट्ठी अपने हस्ताक्षर से न भेजें। आप अपना चार्ज पं० राममूर्ति को देकर उनसे रसीद प्राप्त कर लें।

ह० श्रीदत्त शर्मा
विद्यापीठ मन्त्री।

ता० २९-९-५५

परिशिष्ट सं० ३

परिशिष्ट सं० २ में दिये गये उपर्युक्त आरोप-पत्र का श्री तिलक राम शर्मा, कार्यालय मंत्री, द्वारा दिया गया उत्तर—

देहली, ता० २१ अक्तूबर १९५५

सेवा में—

वैद्यराज श्री वाई पार्थनारायण जी पण्डित,

अध्यक्ष, अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन।

माननीय महानुभावाः,

सविनय निवेदन है कि रायबहादुर श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा की कुछ कृतियों से जो दुःखद परिस्थिति उत्पन्न हुई है उसमें जिन विषयों में उन्होंने मुझे घसीटा है उनके सम्बन्ध में मैं अपना वक्तव्य प्रस्तुत करता हूं। सर्वप्रथम, मैं उस आरोप पत्र को लेता हूँ जो उन्होंने मेरे विरुद्ध निकाला है। (उक्त आरोप पत्र परिशिष्ट सं० २ में उपरि प्रकाशित है)

जैसा कि मैं अभी सिद्ध करूँगा, यह आरोप पत्र निराधार, अयुक्त, असत्य और द्वेषपूर्ण है। और यद्यपि इस ओर मुझे तनिक भी ध्यान देना आवश्यक नहीं था क्योंकि यह आरोप पत्र एक ऐसी सभा में तैयार किया गया है जिसे पहिले ही श्री विद्यापीठाध्यक्ष महोदय ने अनधिकृत और अवैधानिक घोषित कर दिया था और तत्पश्चात् उसे स्वयं भंग किया था, तो भी मैं इस ओर ध्यान इस लिये दे रहा हूँ ताकि मेरी स्थिति स्पष्ट रहे और किसी को भी इस महती संस्था में साधारणतया और नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ में विशेषतया मेरे कार्य और आचरण के विषय में कोई सन्देह न रहे।

इन आरोपों के सम्बन्ध में मेरा उत्तर क्रमशः निम्न प्रकार है:—

१—आरोप पत्र में मेरे विरुद्ध कोई शिकायत न लिखित है और न विशेष रूप से वर्णित, इसलिये मेरे उत्तर देने के लिये वहाँ कुछ विद्यमान ही नहीं। वास्तव में, ऋषिकेश में मेरे विरुद्ध कोई शिकायत थी ही नहीं, जैसा कि श्री पं० श्रीदत्त शर्मा के हाल के ही कुछ अपने लेखों से पूर्णतया सिद्ध हो जायगा।

(क) कई वर्षों तक नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के प्रधान तथा मन्त्री श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री को अपने पत्र सं० ४६१३ ता० १८ अप्रैल १९५५ में श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा लिखते हैं:—"इन दिनों दिन रात जो परिश्रम किया है उसमें श्री तिलकराम ने मेरे साथ बहुत लग्न से परिश्रम किया है। अगर मैं राजा होता और मेरे अधिकार में ग्राम होते तो १० ग्राम इनको दे देता।" इससे यह प्रमाणित होता है कि १८ अप्रैल १९५५ तक श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा को मेरे विरुद्ध कोई शिकायत नहीं थी।

(ख) लगभग एक मास पश्चात् ता० १२ मई १९५५ को श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने वेतन वृद्ध्यर्थ मेरे प्रार्थना पत्र पर निम्नलिखित वक्तव्य दिया है:—

"प्रार्थी ने मेरे साथ सन् १९५५ से कार्य किया है। इसने बहुत परिश्रम से कार्य किया है और मैंने उसे सदैव एक ईमानदार और बहुत

शुद्धमति एवं शीलवान् कार्यकर्त्ता पाया। एक ठोस वेतन वृद्धि के लिये उसके विषय की मैं पुरजोर सिफारिश करता हूँ। मेरे कार्यकाल में अभी तक उसे कोई वेतन वृद्धि नहीं मिली है।" (अंग्रेजी से अनूदित) इससे पुष्ट होता है कि १२ मई १९५५ तक मेरे विरुद्ध कोई शिकायत विद्यमान नहीं थी।

(ग) ग्यारह दिन पश्चात् श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा का उपर्युक्त वक्तव्य ४० वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, त्रिवेन्द्रम, के समक्ष ता० २३ मई १९५५ को उनकी उपस्थिति में पढ़ा गया, जिससे यह सिद्ध होता है कि ता० २३ मई १९५५ तक श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा को मेरे विरुद्ध शिकायत का स्वप्न भी नहीं आया था।

(घ) लगभग दो मास पश्चात्, श्री विद्यापीठाध्यक्ष जी को अपने पत्र सं० ६४८० ता० १९-७-५५ में श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा लिखते हैं:—**मैं यह भी कह सकता हूँ कि हमारा कार्यालय इसमें (आयुर्वेदाचार्य क्रमाङ्क १०२ श्री कांति नारायण के विषय में) बिल्कुल निर्दोष होगा, मेरा कार्यालय पर पूर्ण विश्वास है।"** जिससे यह प्रमाणित होता है कि १९ जुलाई १९५५ तक भी, अर्थात् ऋषिकेश से दिल्ली कार्यालय परिवर्तन के एक सप्ताह पूर्व तक भी, श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा को मेरे विरुद्ध कोई शिकायत नहीं थी।

(ङ) लगभग एक मास पश्चात्, अपने पत्र ता० १७-८-५५ द्वारा श्री पं० श्रीदत्त शर्मा ने मुझे लिखा कि मैं उनसे अपने ३ वर्ष के प्रेम को समाप्त न करूं, जिससे जहां एक ओर यह परिपुष्ट होता हैं कि १७ अगस्त, १९५५, तक उन्हें मेरे विरुद्ध कोई शिकायत नहीं थी वहाँ दूसरी ओर यह व्यक्त होता है कि अपने ३ वर्ष के प्रेम और अच्छे सम्बन्धों के नाम में वे मुझ से अपनी योजनाओं में सहयोग चाहते थे।

(च) इसके तीन दिन पश्चात्, ता० २० अगस्त १९५५ को, जब कि विद्यापीठ कार्यालय पहिले ही देहली में आ चुका था, श्रीमान् प्रधान मन्त्री जी को लिखित अपने पत्र में श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने लिखा कि मेरे सम्बन्ध में उनकी (श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा की) राय श्रीमान् प्रधान मन्त्री जी की राय से भी ऊँची थी किन्तु दिल्ली में पहूँच कर मुझे कुछ हो गया है, जिससे यह भली प्रकार सिद्ध होता है कि जब तक विद्यापीठ कार्यालय ऋषिकेश में था मेरे विरुद्ध कोई शिकायत नहीं थी।

(छ) अपने २१-८-५५ के पत्र में श्री पं० श्रीदत्तजी शर्मा मुझे लिखते हैं—"और सब तैयारी आपसे सम्मति करके कर लेंगे," जिससे यह प्रमाणित होता हैं कि २८ अगस्त की सभा, जिसमें मेरे विरुद्ध उपर्युक्त आरोप पत्र तैयार किया गया है के एक सप्ताह पूर्व ता० २१ अगस्त १९५५, तक श्री पं० श्रीदत्तजी शर्मा को मेरे विरुद्ध न केवल कोई शिकायत ही नहीं थी अपितु उनका मेरे में विश्वास था।

मैंने ऊपर जो केवल लिखित प्रमाण ही साक्षी रूप में उपस्थित किये हैं उनसे यह भली प्रकार सिद्ध हो जाता है कि ता० २१ अगस्त १९५५ तक श्री पं० श्रीदत्त शर्मा के पास मेरे विरुद्ध कोई शिकायत थी ही नहीं और न ही उन्होंने ता०२८ अगस्त १९५५ तक मौखिक अथवा लिखित रूप में मुझे अथवा किसी अन्य पदाधिकारी को मेरे विरुद्ध किसी

शिकायत की सूचना दी। इसके विपक्ष में श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा के उपर्युक्त निजी लेखों से यह प्रमाणित होता है कि वे मेरे कार्य और आचरण के पूर्ण रूप से प्रशंसक थे।

उपर्युक्त तो हाल के ही कुछ लिखित दृष्टान्त हैं जो श्री पं० श्रीदत्त शर्मा द्वारा मेरे विरुद्ध घड़े गये आरोप पत्र के सात दिन पूर्व तक पहुँच जाते हैं। मैंने उन्हें इस लिये उद्धृत किया है ताकि यह निश्चित रूप से सिद्ध हो जाय कि जब तक विद्यापीठ कार्यालय ऋषिकेश में था, और २१ अगस्त १९५५ तक भी, मेरे विरुद्ध कोई शिकायत कभी विद्यमान ही नहीं थी, तथा २८ अगस्त १९५५ की अनधिकृत एवं अवैधानिक सभा की मिथ्या कार्यवाही के संचालन के समय जो शिकायतें मेरे विरुद्ध प्रदर्शित की गई होंगी उन सबका निर्माण किसी शैतान के कारखाने में किया गया होगा, अथवा, हो सकता है कि अज्ञ जनता के मनोरंजन के लिये श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा द्वारा इन शिकायतों की रचना अभी होनी शेष है।

क्योंकि मेरे विरुद्ध कोई शिकायत कभी उपस्थित ही नहीं थी, अतएव "शून्य" में अथवा "अविद्यमान वस्तु" की किसी जाँच का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। क्योंकि कोई जांच न विचाराधीन थी और न ही गर्भ में, अतएव उस जांच-पड़ताल से किनारा करने का यत्न करने अथवा उससे भयभीत होने का प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि जाँच से परे हटने का कोई कारण ही नहीं था, इस लिये यह आरोप, कि मैंने विद्यापीठ कार्यालय ऋषिकेश से दिल्ली को इस भावना से परिवर्तित कर दिया ताकि मेरे विरुद्ध जाँच-पड़ताल न हो सके, स्वतः भूमि पर चित्त गिर जाता है। इसके अतिरिक्त, ऋषिकेश से दिल्ली को कार्यालय का परिवर्तन मात्र मेरे विरुद्ध "अनेक एवं विभिन्न" आरोपों का एकदम गला नहीं घोंट सकता था, यदि वे आरोप वास्तविक होते। और देखिये, केवल यही एक तथ्य कि श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने कार्यालय परिवर्तन के स्पष्टतया असंगत विषय को मेरे विरुद्ध कथित शिकायतों के साथ जोड़ने का यत्न किया है, पर्याप्त रूप से यह प्रमाणित करता है कि कोई शिकायतें विद्यमान ही नहीं थीं, क्योंकि यदि शिकायतें काल्पनिक अथवा मनघढन्त नहीं थीं तो उनकी जाँच पड़ताल देहली में भी खूब हो सकती थी, क्योंकि कार्यालय का सम्पूर्ण रिकार्ड (कुछ विवादयुक्त विषयों की फ़ाइलें और रिकार्ड को छोड़कर जो श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने स्वयं अपने पास रख छोड़े हैं "ताकि उन्हें कभी कोई देख न सके।") देहली को सुरक्षित लाया गया है। अब मैं श्रीमान् जी से न्याय और स्वच्छ खेल के नाम पर प्रार्थना करूँगा कि आप श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा से कहें कि वे मेरे विरुद्ध अपनी शिकायतें एक निश्चित अवधि के भीतर २ लिख कर दें, ताकि अपने मान की रक्षा के लिये मुझे एक अवसर और मिल सके।

अब मैं यह सिद्ध करता हूँ कि नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ का कार्यालय ऋषिकेश से दिल्ली को श्री पं० श्रीदत्त शर्मा के स्पष्ट आदेशों के आधीन ही नहीं पलटा गया अपितु उनके पूर्ण सहयोग, सहमति एवं जानकारी के साथ पलटा गया है। किन्तु ऐसा करने से पूर्व, मैं संक्षेप में ऋषिकेश से दिल्ली कार्यालय परिवर्तन के विषय

पर श्री पं श्रीदत्त जी शर्मा की भावनाओं, जैसा कि मैंने उन्हें समझा, का उल्लेख कर देना उचित समझता हूँ।

जैसा कि नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की कार्यकारिणी समिति के २९ जून १९५५ के अधिवेशन के मुद्रित कार्यविवरण से तथा उस पत्रव्यवहार से जो श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने कार्यालय परिवर्तन के विषय पर (१) श्रीमान् प्रधान मन्त्री जी (२) श्री विद्यापीठाध्यक्ष जी (३) वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी (४) श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री तथा (५) श्रीमान् जी से किया, स्पष्टतया व्यक्त है, श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा की यह इच्छा और भावना थी कि त्रिवेन्द्रम महासम्मेलन के सर्वसम्मत प्रस्ताव के विद्यमान होते हुए भी विद्यापीठ कार्यालय अनिश्चित काल तक ऋषिकेश में ही लटकाये रक्खा जाय, और ऐसा करने का सम्पूर्ण दोष एवं उत्तरदायित्व आप सभी महानुभावों पर साधारणतया और श्रीमान् प्रधानमन्त्री जी पर विशेषतया डाला जाय। जिस आधार पर वे ऋषिकेश में कार्यालय रोकना चाहते थे वह भी स्पष्टतया दृढ़ नहीं था, जैसा कि बाद में सिद्ध हो गया है। श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा के दबाव पर भी कार्यकारिणी समिति ने उस विषय में कोई प्रस्ताव पास नहीं किया। तब उन्होंने श्रीमान् प्रधान मन्त्री जी तथा उपर्युक्त महानुभावों को कार्यालय को रोकने के ध्येय से उनके आदेश प्राप्त करने के लिये पत्र लिखे। जब श्रीमान् प्रधान मन्त्री जी की ओर से कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिला तब श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने ता० १९ जुलाई को उन्हें एक रजिस्टर्ड पत्र कनखल से डाला जिसमें लिखा था कि उनका (श्री प्रधान मन्त्री जी का) definite अर्थात् पक्का आर्डर आना चाहिये कि "कार्यालय बदल दो।" उसी पत्र में उन्होंने (श्रीपं० श्रीदत्त जी शर्मा ने) यह भी लिखा— "आप जिस समय लिख देंगे कि कार्यालय परिवर्तन कर दिया जाय उसके दूसरे दिन ही परिवर्तन कर दिया जायगा।" यही नहीं, अपने पत्र सं० ६४९३ ता० १९-७-५५ द्वारा श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने आपके समक्ष यह शिकायत की कि प्रधान मन्त्री ने उनके ४ जुलाई १९५५ के पत्र का तब तक भी उत्तर नहीं दिया है।

तत्पश्चात् श्रीमान् प्रधान मन्त्री जी की ओर से पहिले एक तार और फिर एक पोस्टकार्ड मिला जिनके द्वारा उन्होंने श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा को कार्यालय परिवर्तन के लिये "प्रार्थना की", "आदेश नहीं दिया"। तार २१ जुलाई को मिला और पोस्टकार्ड २३ जुलाई को। जब ऋषिकेश में तार मिला श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा कनखल में थे। श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा को तार देने के लिये मैं स्वयं २२ जुलाई को प्रातःकाल कनखल गया। तार पढ़कर एक मिनट के लिये वे अपना मिज़ाज खो बैठे, परन्तु शीघ्र पश्चात् ही सम्भल कर बोले—"ईश्वर वामनराव जी का भला करे। मैं जानता हूँ विश्वविद्यालय योजना कभी सफल होने वाली नहीं परन्तु पब्लिक में यह कहता फिरूंगा कि ऋषिकेश में विश्वविद्यालय स्थापित होने वाला था परन्तु ऋषिकेश से दिल्ली को कार्यालय परिवर्तन कर देने के श्री वामनराव जी के आदेश ने सम्पूर्ण योजना को मलियामेट कर दिया है।" वे फ़िर बोले, "अपने अन्तःकरण से मैं श्री वामनराव जी को आशीष देता रहूँगा क्योंकि मेरे

मान की रक्षा में वह एक हथियार बन गया है जिससे सम्पूर्ण दोष में उनके कन्धों पर डाल सकता हूँ।" इन तनावपूर्ण क्षणों के बाद श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने मुझे आदेश दिया कि मैं ऋषिकेश से दिल्ली को शीघ्रातिशीघ्र कार्यालय परिवर्तन करने का प्रबन्ध करूँ। उन्होंने उन वाहन एजन्सियों का भी निर्देश किया जिनके द्वारा मैं transport अर्थात् वाहन का प्रबन्ध करूँ। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि वे अगले दिन अर्थात् २३-७-५५ को ऋषिकेश आयेंगे जब कि ऋषिकेश में कार्यालय बन्द करने के सम्बन्ध में सभी आवश्यक कार्य एवं तैयारियां पूरी की जायं। बाद में, समय २ पर अपने संकेत और निर्देश देते हुए उन्होंने इन सभी कार्यों में पूर्ण सहयोग दिया।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ता० २३ जुलाई को ऋषिकेश में पधारे और २२ जुलाई तक के व्यय के सभी कागजात पर अपने हस्ताक्षर किये। श्री प्रधान मन्त्री जी के जिस पोस्ट कार्ड का मैंने ऊपर उल्लेख किया है, वह उनकी उपस्थिति में ही कार्यालय में आया, और उसे पढ़कर उन्होंने मुझे पुनः कार्यालय के सभी कर्मचारियों की उपस्थिति में आदेश दिया कि कार्यालय को pack अर्थात् इकट्ठा करके बान्ध दूं और जितना शीघ्र हो ट्रक्स का भाड़े पर प्रबन्ध करूँ। उन्होंने मुझे यह भी कहा कि विदा होने से पूर्व मैं उन्हें फिर कनखल में मिल लूं। मैं २५ जुलाई को पुनः कनखल गया जब कि मैंने बैंकस् में धन और हिसाब दिल्ली को परिवर्तित कर देने के लिये पत्र दिये। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि वे उसी रात्रि को अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन की मीटिंग में भाग लेने के लिये दिल्ली जा रहे हैं। उन्होंने मुझे आदेश दिया कि दिल्ली में मैं उन्हें मारवाड़ी औषधालय, किनारी बाजार, के पते पर ऋषिकेश से कार्यालय के विदा होने की तिथि की सूचना दूँ, जो मैंने कार्यालय पत्र सं० ६५८३ ता० २६ जुलाई १९५५ द्वारा उन्हें दे दी। पहिला ट्रक ऋषिकेश से २७ जुलाई को सायंकाल निकल कर २८ जुलाई को प्रातःकाल देहली पहुँचा।

उन्होंने अपने कुछ मित्रों की एक अनौपचारिक सभा ३० जुलाई को मारवाड़ी औषधालय, किनारी बाजार, देहली, में की थी जहाँ कि बहुत से सदस्य महानुभावों को ऋषिकेश से दिल्ली कार्यालय परिवर्तन की जानकारी स्वयं श्री पं० श्रीदत्त शर्मा द्वारा हुई।

सामान का दूसरा ट्रक लाने के लिये मैं २९ जुलाई को दिल्ली से ऋषिकेश के लिये विदा हुआ। वापिसी पर ३० जुलाई प्रातःकाल मैं श्री पं० श्रीदत्त जी से मिलने के लिये उनके निवास-स्थान कनखल में से गुजरा, परन्तु अपने पूर्व-सूचित कार्यक्रमानुसार वे कनखल नहीं पहुँचे थे। अस्तु, मैंने उनकी धर्मपत्नि से प्रार्थना की कि यदि श्रीरायबहादुर जी अपराह्ण तक आ जायं तो उन्हें सूचित कर दें कि उसी दिन रात को दूसरा ट्रक देहली जायेगा।

इस सम्बन्ध में विशेष रूप से अंकित करने वाली बात यह भी है कि त्रिवेन्द्रम महासम्मेलन द्वारा स्वीकृत सर्वसम्मत प्रस्तावानुसार ऋषिकेश से दिल्ली को कार्यालय परिवर्तन का कार्य-भार एक मात्र श्री विद्यापीठ मन्त्री को सौंपा गया था। परन्तु श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा उसी प्रस्तावानुसार रु० २०५०) दो हजार पचास रुपये स्वयं प्राप्त करके भी उक्त

प्रस्ताव को कार्यान्वित नहीं करना चाहते थे। बहुत चतुराई के साथ इस लक्ष्यसिद्धि के लिये सर्वप्रथम वे विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के पास गये, परन्तु वहां असफल रहकर, उन्होंने उपर्युक्त महानुभावों को उपर्युक्त प्रकार इस विषय में लाने का यत्न किया। इस प्रकार सर्वोच्च सभा के एक बहुत स्पष्ट प्रस्ताव के होते हुए भी श्री पं० श्रीदत्त जी ने एक ऐसे विषय में अन्य महानुभावों को फंसाने का यत्न किया जिससे उनका दूर का सम्बन्ध था। बिना किसी युक्ति अथवा कारण के उन महानुभावों के श्री पं० श्रीदत्त जी ने आदेश मांगे ताकि जब एक बार उनके आदेश,जो स्पष्टतया अनपेक्षित थे, मिल जायं तो उनका उन्हें बहाना मिल सके।

अब कार्यालय परिवर्तन के विषय पर अपने उपर्युक्त वक्तव्य की पुष्टि में मैं निम्न-लिखित लेख्य-प्रमाण प्रस्तुत करता हूं।

(क) ऋषिकेश में आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना के विचार को स्थगित करने और वहाँ से वापिस लौटने के विषय पर त्रिवेन्द्रम महासम्मेलन के प्रस्ताव को पूरी तरह क्रियान्वित करने के ध्येय से ऋषिकेश में कार्यालय समेटने की दिशा में जो सर्वप्रथम कदम श्री पं० श्रीदत्त जी ने उठाया वह यह था कि उन्होंने विद्यापीठ कोष से २०५० रुपये (दो हजार पचास रुपये) नकद ता० ८ जून १९५५ को तत्सम्बन्धी चैकस्, वौचर्ज और रसीदों आदि पर हस्ताक्षर करके स्वयं प्राप्त किये। इस सम्बन्ध में यह विशेष उल्लेखनीय है कि कर्मचारियों के वेतन के चैक पर हस्ताक्षर कराने के लिये जब कार्यालय के अका-ऊन्टेन्ट कनखल गये तो श्री पं० श्रीदत्त जी ने उस चैक पर यह कहते हुए हस्ताक्षर करने से इन्कार कर किया कि उक्त चैक पर वे उन चैकस् के साथ ही हस्ताक्षर करेंगे जिनके द्वारा उन्होंने स्वयं धन लेना है। केवल इसी कारण कार्यालय कर्मचारियों का मई मास का वेतन आठ दिन के लिये रोका गया।

(ख) अपने पत्र सं० ५७७९ ता० ८ जून १९५५ द्वारा श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने आयुर्वेद मार्त्तण्ड वैद्यराज श्री यादव जी त्रिकमजी आचार्य को लिखा कि आयुर्वेद विद्यापीठ का कार्यालय दिल्ली जा रहा है।

(ग) ऋषिकेश से कार्यालय परिवर्तन के सम्बन्ध में जो अन्य पक्का पग श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने उठाया वह यह था कि उन्होंने कार्यालय के पांचों अस्थायी कर्मचारियों को उनकी सेवाओं से ८ जुलाई १९५५ को उन्हें मुक्त किये जाने के लिखित नोटिस दियें। श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने उक्त नोटिसज् पर ९ जून १९५५ को हस्ताक्षर किये और तभी ये नोटिस कर्मचारियों को दिये गये।

(घ) श्री पं० श्रीदत्त शर्मा ने देहली को कार्यालय परिवर्तन के विषय पर महा-सम्मेलन तथा विद्यापीठ के प्रधानों, प्रधान मन्त्री और वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी एवं श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री को उनका निर्देश प्राप्त करने के लिये ता० ४ जुलाई १९५५ को पत्र लिखे क्योंकि "स्थिति बदल गई थी।"

(ङ) ६ जुलाई १९५५ को श्री पं० श्रीदत्त जी ने श्री स्वामी दयानिधि जी के साथ

पंजाब नैशनल बैंक, हरिद्वार, के नाम एक पत्र पर हस्ताक्षर किये जिसके द्वारा उक्त बैंक को विद्यापीठ का चालू हिसाब बन्द कर देने का आदेश दिया गया।

(च) श्री विद्यापीठाध्यक्ष को अपने पत्र सं० ६२३६ ता० ७ जुलाई १९५५ द्वारा श्री पं० श्रीदत्त शर्मा ने उपर्युक्त पैरा 'घ" में लिखित पत्र ता० ४-७-५५ की ओर उनका ध्यान आकर्षित कराया और उनसे शीघ्र उत्तर मांगा।

(छ) श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा के ४ जुलाई के पत्र का उत्तर देते हुए श्री विद्यापीठाध्यक्ष जी ने लिखा कि क्योंकि कार्यालय के परिवर्तन के विषय पर महासम्मेलन द्वारा प्रस्ताव पास किया गया है अतएव उसमें महासम्मेलन अथवा कार्यकारिणी ही परिवर्तन कर सकेगी ऐसा उनका अनुमान है और कानूनी सलाह का सुझाव दिया।

(ज) जैसा कि ऊपर लिखा गया है श्री पं० श्रीदत्त शर्मा ने ता० १९ जुलाई को कनखल से श्रीमान् प्रधान मन्त्री जी को रजिस्टर्ड पत्र भेजा और कार्यालय परिवर्तन के विषय पर उनका आदेश चाहा।

(झ) जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है अपने ता० १९ जुलाई के ही पत्र द्वारा श्री पं० श्रीदत्त जी ने श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी से शिकायत की कि श्री प्रधान मन्त्री जी ने उनके ४ जुलाई के पत्र का उस तारीख तक भी कोई उत्तर नहीं दिया।

(ञ) उपर्युक्त पैरा "ज" में लिखित पत्र का उत्तर श्रीमान् प्रधान मन्त्री जी की ओर से सर्वप्रथम ता० २१ जुलाई १९५५ को तार द्वारा मिला। इस तार को लेकर अगले दिन मैं स्वयं कनखल गया और मेरे वहां जाने के विषय में जो यातायात बिल है वह श्रीमान् पं० श्रीदत्त जी द्वारा पास किया गया है तथा हस्ताक्षरित है। १ रुपया १५ आने के उस यातायात बिल का शीर्षक उल्लेख यह है—"श्रीमान् महासम्मेलन प्रधान मन्त्री जी की कार्यालय परिवर्तन सम्बन्धी तार तथा कार्यालय के अन्य कागजात लेकर कनखल जाने तथा वहाँ से आने सम्बन्धी यातायात व्ययपत्र ता० २२-७-५५"।

(ट) २३ जुलाई १९५५ को श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने पंजाब नैशनल बैंक हरद्वार के नाम पत्र सं० ६५५६ की तीन कापियों पर विद्यापीठ के भूतपूर्व (१) उपाध्यक्ष, (२) कोषाध्यक्ष तथा (३) विद्यापीठ के बैंक अकाऊन्टस् पर अधिकार रखने वाले एक सदस्य महानुभाव के साथ अपने हस्ताक्षर किये, जिस पत्र के द्वारा विद्यापीठ के बचत खाते के २२०५९ रुपये ९ आने ४ पाई (रुपये बाईस हजार उनसठ, आने नौ पाई चार) हरिद्वार से देहली को परिवर्तित किये गये।

(ठ) २३ जुलाई १९५५ को श्री पं० श्रीदत्त शर्मा ने नैशनल बैंक आफ लाहौर, ऋषिकेश, के नाम पत्र सं० ६५५५ की तीन कापियों पर बैंक अकाउन्टस् के उपर्युक्त तीन अधिकारियों सहित अपने हस्ताक्षर किये, जिस पत्र के अनुसार उक्त बैंक की देहली की शाखा पर ३२९७ रुपये १४ आने (रुपये तीन हजार दो सौ सतानवें आने चौदह) की हुण्डी प्राप्त की गई।

(ड) जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है २३ जुलाई १९५५ को श्री पं० श्रीदत्त शर्मा कनखल से ऋषिकेश पधारे। अपनी इस यात्रा के लिये उन्होंने २ रुपये ८ आना का बिल हस्ताक्षर करके दिया। उक्त बिल पर शीर्षक उल्लेख यह है—"महासम्मेलन प्रधान मन्त्री का कार्यालय परिवर्तन सम्बन्धी तार मिलने पर तत्सम्बन्धी व्यवस्था करने-कराने के लिये कनखल से ऋषिकेश आना-जाना-यातायात व्ययपत्र ता० २२-२३ जुलाई १९५५"।

(ढ) २५ जुलाई १९५५ को श्री पं० श्रीदत्त जी ने पंजाब नैशनल बैंक, फव्वारा, देहली के नाम विद्यापीठ के बचत और चालू हिसाब खोलने के लिये दो • पृथक् २ आवेदन पत्रों पर अपने हस्ताक्षर किये।

(ण) कार्यालय के पत्र सं० ६५८३ ता० २६-७-५५ द्वारा मैंने श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा को उनके देहली के पते (द्वारा मारवाड़ी औषधालय, किनारी बाजार, देहली) पर सूचना दी कि विद्यापीठ कार्यालय २७ जुलाई १९५५ को सायं ऋषिकेश से बाहर निकलेगा।

(त) कनखल से मुझे देहली को लिखे गये अपने पत्र ता० ५ अगस्त १९५५ द्वारा श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने मुझे आदेश दिया कि विद्यापीठ कार्यालय में एक चपड़ासी की नियुक्ति के लिये प्रार्थनापत्र अपनी सिफारिश के साथ उनके पास भेजूँ।

(थ) अपने ५ अगस्त १९५५ के उसी पत्र द्वारा श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने मुझे सूचित किया कि उन्होंने श्री पं० केदारनाथ शर्मा तथा श्री राममूर्ति जी (कार्यालय के दो कर्मचारी जिन्हें श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा के विशिष्ट आदेशों के आधीन पीछे ऋषिकेश में छोड़ा गया था) को देहली चले जाने का आदेश दे दिया है।

(द) ऋषिकेश से लिखे गये अपने पत्र सं० ६७७५ ता० ६ अगस्त १९५५ द्वारा विद्यापीठ के अकाऊन्टेन्ट श्री राममूर्ति जी संगरने मुझे सूचित किया कि विद्यापीठ का कार्यालय ऋषिकेश में बन्द कर दिया गया है और रायबहादुर जी (श्री पं० श्रीदत्त शर्मा) के आदेशानुसार उन्हें कार्यालय की कुंजियाँ देने वे कनखल जा रहे हैं।

(ध) ऋषिकेश से लिखित अपने पत्र ता० ९ अगस्त १९५५ द्वारा श्री राममूर्ति जी संगर ने मुझे सूचित किया कि श्रीमान् विद्यापीठ मन्त्री (श्री पं० श्रीदत्त शर्मा) जी को कार्यालय की कुंजिया देने के लिये वे कनखल जा आये हैं।

(न) अपने ८ अगस्त १९५५ के पत्र द्वारा मैंने श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा को लिखा कि यद्यपि वे अपने आदेश ४ अगस्त को दे चुके हैं तो भी कार्यालय के उपर्युक्त दोनों कार्यकर्त्ता उस दिन तक भी देहली नहीं पहुंचे हैं और कार्यालय के कार्य को उस कारण हानि पहुँच रही है।

(प) श्रीदत्त कुटि से लिखित अपने पत्र ता० ९ अगस्त १९५५ द्वारा मुझे श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने सूचित किया कि—"हमने एक गुप्त कांड किया उससे यह लोग (काली कमली वाले) घबरा गये हैं।" (शेष पृष्ठ ६७१ पर)

Reply to Dave Committee's 46th Question

By

Pandit Shiv Sharma, Ayurvedacharya

(46) In the absence of a vaidya on the personnal of your esteemed committee, this question assumes exceptional importance as an answer to it remains the only avenue available to the Vaidyas to give your committee a presentation of significant facts having a bearing on the future development and growth of the Ayurvedic medicine in this country.

I am listing below a few tell-tale incidents. A clear understanding of these incidents shall go a long way to meet the imparative need of familiarising the committee with a correct and complete picture of the ground the committee should cover before finalising its recommendations.

(a) While carrying out a rendom inspection of the dispenaries of some of the applicants for the Ayurvedic physicians' posts under the State Employee Health Insurance Scheme, I discovered that most of the Ayurvedic graduates produced by the Government Ayurvedic colleges were not prescribing Ayurvedic medicines for their patients. The two other members of the Allocation Committee, who accompanied me, namely Dr. Ghose, the representative of the State Insurance Corporation and Shri Lele, the Principal of the Poddar Ayurvedic College, who was also the Chairman of the Allocation Committee, expressed surprise when an Ayurvedic graduate of the Banaras Hindu University (Ayurvedic College) remarked that during the last 15 years of his practice he had not used a single Ayurvedic drug and that unless allopathic drugs were released for his use he would prefer to withdraw his application. It was practically the same story with Bombay graduates. Only in one dispensary we found some Ayurvedic medicines, which hardly amounted to 5% of the total medicines stocked in the dispensary.

(b) An Ayurveda Visharad, a graduate of Aryangla Ayurveda Vidyalaya, Satara, (Bombay), in an interview with the committee, confessed that he had not used an Ayurvedic medicine since he had graduated. On being asked whether he would *try* to introduce Ayurvedic medicines in his prescriptions in future he candidly said that he would not. As this gentleman could not be called an Ayurvedic physician by any standard of truth, fairness, justice or ethics, or even imagination, the committee rejected his candidature. Later on, the Government of Bombay sent a note to the Committee asking them to reconsider the decision.

The Chairman of the committee wrote back that if the Government was desirous of giving an Ayurvedic post to the applicant the committee would not object to it.

It may be mentioned here that in the present Government set-up the claims of this graduate to the principalship or the professorship of an Ayurvedic college shall override the claims of any other genuine scholar of Ayurveda not holding the above degree. Most of the important Ayurvedic teaching posts are now filled with these graduates.

(c) Prior to the recent changes brought about in the administration of the Ayurvedic departments in the Bombay State, all major Ayurvedic offices were held by non-vaidyas. One of these non-Ayurvedic masters of the Ayurvedic departments, when questioned about the inadequacy of the Ayurvedic knowledge of the said graduates, candidly admitted before no less a person than a minister in the cabinet of the Government of India, "We have deliberatly kept the Ayurvedic departments under ourselves so that the task of exposing the worthlessness and hollowness of Ayurveda and its consequent abolition in favour of the only 'scientfic' system all over India is completed without delay."

(d) When the Pandit Committee was working on its report, a high official of the Central Health Department was drawing up a confidential note suggesting various uses for the buildings of the Ayurvedic institutions after they would cease to house the Ayurvedic colleges and hospitals. He also circulated a confidential canvassing letter addressed to the Health Departments of various States in which he made an appeal to the various States to reject certain recommendations of the Chopra Committee Report as mere matters of opinion.

(e) The Central Health Department usually avoided nomination of Ayurvedic Committees but if the Ayurvedic element was ever represented, its reliability in aligning itself with the Centre's view-point appeared to be the chief factor weighing in favour of such a nomination. Thus the only Ayurvedic member of the Chopra Committee having signed the report, admitted that he had signed something which amounted to slow poisoning of Ayurveda in this country. The Joint Secretary of your Committee is in a position to personally testify to this fact.

These incidents should be enough to draw the attention of the committee to the fact that a number of allopathic administrators and physicians believed that they could successfully bring about total replacement of Ayurveda by allopathy in India in a not too distant future. It can be conceded that some, though not all, of them honestly believed that Ayurveda was un-scientific and out of date, and that they were only serving their country by trying to usher in an era of "exclusively scientific" medical education and practice. Once this noble decision was taken then the ethics of the means employed to achieve it did not merit attention.

With that end in view the courses of study and the qualifica-

tions for admissions were so framed that the students were naturally more receptive to allopathy and non-receptive to Ayurveda. The anomaly of the Ayurvedic graduates insisting on possessing allopathic sounding counterparts of their Ayurvedic degrees, e. g., D.A.S.F., M.A.M.S., B.I.M.S., etc; prescribing allopathic medicines instead of Ayurvedic ones; and desiring to appear, behave like, and be taken for allopaths; and their hopeless inadequacy of faith and efficiency in, and mastery of, Ayurveda; arise directly out of the tragically wrong approach to qualifications for admission to the Ayurvedic courses.

(f) Disparaging Ayurveda in the Parliament the Central Health Minister claimed that nobody demanded of her the Ayurvedic treatment. She made this statement after twice turning down a mass representation of the Post and Telegraph Workers begging her to be permitted to pay for their Ayurvedic treatment out of the funds collected through a compulsory cut in their emoluments to give them allopathic treatment.

(g) On another occasion, while advocating allopathy she claimed in the Parliament that the modern science had conquered every disease except, "perhaps, the advanced stages of Tuberculosis and Cancer". The committee will do well to assess the difference between the actual fact and the above-mentioned official statement of the Government of India. It shall be easy for the committee to do so with their able Joint Secretary sitting at their elbow. Then they will be in a better position to appreciate the importance of the question of the future custodianship of the Ayurvedic education and practice.

I am a member of the Academic Council of the Banaras Hindu University. I am also a Fellow of the Lucknow University for ancient and modern medicine. I have intimately contacted and addressed the students of Bengal and Madras also. Recently, I have taken over the Presidentship and the Chairmanship of the Board and Faculty of Ayurveda, Bombay. I can say it with a very clean conscience that in none of these places did I find the atmosphere congenial to the proper development of the science and the art of Ayurveda. The major concern of the students is to have degrees in English alphabet attached to their names. Most of the Professors are the graduates of these institutions and they oppose the improvement of the Ayurvedic part of the curriculum even more vehemently than the allopathic principals and departmental officers themselves.

It is interesting though ironical that the allopaths who are chiefly responsible for the production of such 'Ayurvedic' graduates as do not like or practise Ayurveda surpass the Ayurvedic physicians themselves in their criticism and disapproval of their own academic produce. If unanimity reigns anywhere on an Ayurvedic issue among different contending groups, it does so only on one subject—the failure of the Ayurvedic education during the last quarter of a century. Year after year the curriculums are revised on the plea that the graduates are not good Vaidyas. Repeatedly the

same allopaths or their nominees are called upon to revise them. They prefer the same old approach, i. e., if the Ayurvedic knowledge is inadequate, raise the admission qualifications which further increase the students' receptivity for allopathy and further decrease the liking and receptivity for Ayurveda.

In spite of the fact that your committee has no Ayurvedic expert on its personnel, I have full confidence in the integrity and fairness of all its members, majority of whom I know personally. I beseech them to give their earnest consideration to the suggestions given below.

CUSTODIANSHIP :

A close scrutiny of the history of the Ayurvedic administration shall reveal certain peculiarities.

The atmosphere around the Ayurvedic institutions is neither scientific nor academic. It breathes intrigue and uncertainty. It is quite common for an allopathic Chairman of an Ayurvedic body to say a few encouraging words to his Ayurvedic subordinates while presiding over some public function, and then step out and go for the ministers and the government who refuse to wind up the 'unscientific' system. While one high official in the Health Department conducts an inquiry on Ayurveda, another prepares a secret note on how to use the Ayurvedic Colleges and Hospital buildings after Ayurveda has been successfully liquidated. It is not uncommon for modern officials to tamper with a truth here and adjust a fact there if the case for Ayurveda can be weakened here and for allopathy strengthened there.

The Committee, therefore, must make up its mind and give a clear verdict on whether Ayurveda deserves to survive on its merits or not. If it comes to a conclusion that it does not deserve to survive, it should permit chosen representatives of the Ayurvedic profession to present the case for Ayurveda before the committee in the presence of the protagonists of the abolition of Ayurveda.

If, however, the committee comes to the conclusion that Ayurveda deserves to survive and that the handling of the Ayurvedic question in the past has been, to put it mildly, extremely peculiar and without a parallel in the history of the dealings of this or any other country with any art or science, then the committee should take the first important basic step, i. e., it should establish a sound and sabotage—proof machinery for safeguarding the future of Ayurvedic development. The essence of my reply to the curcial question (No. 46) is that the final shaping and conducting of the Ayurvedic education and practice should be the concern and responsibility of those who have a deep and genuine faith in, and knowledge of, the science and practice of Ayurveda. It should be clearly borne in mind that even well worded and foolproof recommendations have been distorted and flouted by the unsympathetic executive to damage the science and bring a bad name to it, and even unwilling and halting concessions can be exploited by men of firm faith, integrity and earnestness to build up a deservedly

great name for it. I speak from full knowledge and experience of the history of the former dealings with Ayurveda. Identical words and phrases of the recommendations, many times, have had antonymous meanings for people having different objectives and given their names, one could always predict the meanings they would attach to, and the actions they would take on, the text of a given recommendation.

In view of what I have stated above, the committee should very thoroughly and impartially consider my reply to question No. 45 and note that in spite of my belief that the Ayurvedic stuff produced during the last two decades by the allopaths who captured and exercised complete control over the official Ayurvedic world exclusively, cannot represent Ayurveda by any standard of justice and fairness. I, belonging to a different world of Ayurveda altogether, have, of my own accord, offered it 50% representation on the Central Council. I have not lost faith in the goodness of human nature and I hope that if the committee gives equal representation to the Vaidyas and the allopath-produced Vaidyas on the council it will be a sound step towards neutralisation of vested interests and eventually the Ayurvedic profession, left to itself, shall jointly find a way to progress along an agreed or a majority decision.

Another very important recommendation the committee should make is that the writers and publishers of text-books should be debarred from directly sitting on the text-book prescribing committee. Non-observance of this salubrious practice, prevalent among all universities and academic bodies, has lowered the standard of our education ethics. This is a reform which is bound to receive support from all well wishers of the Ayurvedic education. It is hoped that vested interests shall not be allowed to torpedo this healthy move towards better Ayurvedic education.

The Special Session of the All Ceylon Ayurvedic Practitioners Congress:

A special session of the All Ceylon Ayurvedic Practitioners, Congress is being held at Colombo on the 20th November 1955 to consider what steps the Ceylonese Vaidyas should take in connection with the White Paper on Ayurveda issued by the Ceylon Government. The Ceylon Ayurvedic Congress has specially invited, at their own expense, Pandit Shiv Sharma, Ex-President of the All India Ayurvedic Congress, as their Chief Guest to guide them in formulating their decisions. Pandit Shiv Sharma left Bombay for Colombo by an Indian Air Lines Corporation Plan on the morning of the 19th November 1955. His Ceylon address will" be published in a subsequent issue of the Patrika."

41st All India Ayurvedic Congress, Kurnool.

Ayurveda Mahotsava.

We are having a regular Ayurveda Mahotsava at Kurnool in connection with the Historic Sessions of the 41st All India Ayurvedic Congress on 29th, 30th and 31st December, 1955.

The young Andhra State needs the patronage of all patriots from all over India. We have therefore laid out an ambitious programme for inviting as many all India leaders as possible for associating themselves with the ceremonies connected with the Mahotsava.

I am enclosing herewith a tentative programme of the Congress. The special feature of this year's Congress is that the Congress is devided into different sections. The several sections will be held in different halls. Those who wish to take part in a particular section may hold their deliberations in that section.

The general sessions, which will be held in the main hall may be attended by all those who desire to attend it.

Sd/- A. Lakshmipathi,
General Secretary,
Reception Committee,
41st All India Ayurvedic Congress, Kurncol.

TENTATIVE PROGRAMME.

I

29-12-55 Thursday	8-00 A.M.	Flag Hoisting ; Sri Hon'ble M. Anantasayanam Iyengar, M.P., Dy. Speaker, Lok Sabha, New Delhi.

II

,,	8-30 A.M.	Opening of the General Exhibition :— Hon'ble Shri Gopala Reddy Garu, Chief Minister, Andhra State.

III

,,	9-30 A.M.	Inauguration of Scientific Sessions :— His Excellency Shri Dr. Pattabhi Seetaramayya Garu. President :— Dr. P.M. Mehta, M.D,, etc., Director of Central Research Institute, Jamnagar, Sourashtra.

IV

,, 10-30 A.M. Inauguration of Historical Session :—
Hon'ble Shri B. V. Keskar, M.P., Minister for Information and Broadcasting.
President :—
H.E. the Governor of U.P., Shri K. M. Munshi.

V

,, 3-00 P.M. Opening of the Congress :—
H.E. the Governor of Andhra, Shri C.M. Trivedi.

VI

,, 6-00 P.M. Opening of Yoga Vyaayaam :—
Hon'ble Shri D. Sanjeevayya Garu, Minister for Co-operation of Andhra.
President :—
Shri Swami Kuvalayananda of Kaivalyadhan, Lonavala.

VII

30-12-55 Friday 3-00 P.M. Opening of the Ayurveda Adhyaapaka Parishad : Shri U.N. Dhebar, A.I.C.C., President.

VIII

31-12-55 Saturday 8-00 A.M. Swasthya Raksha Parishad : President, Shri Acharya Vinobha Bhave.

Note. i. Anubhuta Prakriya, Sambhasha Parishad and Film shows on Health and Five-year Plans daily. ii. Historical and Scientific sessions continue in the mornings daily.

Sd/- Dr. A. Lakshmi Pathi, B.A., M.B. & C.M.,
General Secretary,
Reception Committee.

Collection of One lakh of Rupees.

Andhra Ayurvedic Fund

Bhishagratna Dr. Achanta Lakshmipathi addressed a public meeting today at 8-30 A.M. and explained to the people the efficacy of Ayurveda and its superiority over other systems of medicine.

Dr. Lakshmipathi said that the Ayurvedic System is based on the recognition of the presence of Atma who is the Director and source of all energy in the body. The conception of the human body and of health and disease according to Ayurveda is very scientific. The human body consists of ingoing nutrition called Vaata, Pitta and Kapha, the stationary cells and tissues and the outgoing debris. The equillibrium of these is health and their ill-balance is disease. The prevalent notion that the human body is similar to a machine and that any part which is deranged may be set right or replaced is very crude. The mental factor is most important and this is not found in the machine. The prakrit or the personal factor has much to do with the ailments of man.

(*Continued on page 670*)

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठम्
१९५५ वर्षीय परिशिष्ट परीक्षाफलम्
१—आयुर्वेदाचार्य परीक्षाफलम्

(क) आयुर्वेदाचार्य परीक्षोत्तीर्णाः—८ करुणाशंकर त्रिवेदी द्वितीय। ४२ भवानीशंकर व्यास द्वि०। १८७ मदनलाल शर्मा तृ०। १८८ हनुमत्प्रसाद शर्मा द्वि०। १९७ कन्हैयालाल मिश्र द्वि०। २३७ पुष्कर दत्त जोशी तृ०। २६४ धनीराम स्वामी द्वि०।

(ख) आयुर्वेदाचार्य प्रथमखण्ड परीक्षोत्तीर्णाः— ९ पतंजलि भट्ट। २१५ काशीदत्त शर्मा मुद्गल। २२३ रामनिवास दाधीच। २३६ ताराचन्द चतुर्वेदी। २४३ रामेश्वर प्रसाद त्रिवेदी। २६९ जगदीश प्रसाद गौड़।

(ग) आयुर्वेदाचार्य परिशिष्ट परीक्षाधिकारिणः—२१२ नागरमल शर्मा कायचिकित्सा।

२—वैद्याचार्य प्रथमखण्ड परीक्षोत्तीर्णाः—

७ रमेशचन्द्र अग्रवाल। ८७ सदाशिव अष्टुनकर। ११० मुरलीधर शर्मा।

३— आयुर्वेद विशारद परीक्षाफलम्

(क) आयुर्वेद विशारद परीक्षोत्तीर्णाः—९६ रतिराम शर्मा तृ०। १६३ रामस्वरूप शुक्ल द्वि०। २८९ रामस्वरूप शर्मा द्वि०। ३१० प्रकाशचन्द्र जैन तृ०।

(ख) आयुर्वेद विशारद प्रथमखण्ड परीक्षोत्तीर्णाः—६८ मदनलाल शर्मा। ८३ कृष्णदत्त शर्मा। २३४ बनवारीलाल शर्मा। ३०५ शिवलाल शर्मा। ३४४ पूर्णचन्द्र शर्मा।

(ग) आयुर्वेद विशारद परिशिष्ट परीक्षाधिकारिणः—११० श्री अवधेश त्रिपाठी काय०।

४—वैद्यविशारद परीक्षाफलम्ः

(क) वैद्यविशारद परीक्षोत्तीर्णाः—५० देवेन्द्र दत्त भट्ट तृ०। ५३ दुर्गादेवी तृ०। ६८ पूर्णानन्द शर्मा भट्ट तृ०। १०८ रामशब्द मिश्र तृ०। १२२ लालजीराम धारणा तृ०। २२० रामदत्त मिश्र तृ०। २४० वद्रीनारायण शर्मा द्वि०।

(ख) वैद्यविशारद प्रथमखण्ड परीक्षोत्तीर्णाः—२६ नवलकिशोर वर्मा। ४५ रामकिशन जोशी। ७१ घनानन्द शर्मा। १५४ ब्रह्मानन्द शर्मा। १५७ हनुमान दत्त। २०६—दामोदर प्रसाद शर्मा—अष्टांग० परिशिष्ट।

५— आयुर्वेद भिषक् परीक्षाफलम्—

(क) आयुर्वेद भिषक् परीक्षोत्तीर्णाः—१०२ जयरामदास श्रीवैष्णव तृ०। ११३

११३ जगदीशप्रसाद शर्मा तृ० । ३२३ प्रयागनारायण बाजपेयी द्वि० ३६६ बालकृष्ण शर्मा तृ०। ३८६ देवराज तृ०। ४५६ राजेन्द्रकुमारी द्वि० । ४६० ऊषा सेठी तृ० । ४६३ अमृतकौर तृ० । ४६४ दमयन्तकौर तृ० । ५१० सौ० सीताजोशी द्वि० । ५२८ ओंप्रकाश शर्मा "गालव" तृ० ।

(ख) आयुर्वेद भिषक् प्रथमखण्ड परीक्षोत्तीर्णाः—८ मदनगोपाल मिश्र । ४० उत्तमराव देशमुख । ५६ जगदीशचन्द्र शर्मा । ६१ दलीपकुमार । ६४ दर्शनलाल। ७० द्वारिकानाथ शर्मा । ८० नवनीतलाल शाह । ८५ भगीरथ । ९३ अरविन्द । ९६ अरविन्द कुमार। १२३ विपिनकुमार जैन । १३१ कृष्णदत्त शर्मा । १५६ रामेश्वर व्यास । १५८ गोपाल दत्त द्विवेदी । १६० द्वारका प्रसाद । १६८ गणेश । १७२ सुन्दरलाल शर्मा । १८५ गोविन्दराज । २२४ खुमानसिंह । ३३६ मदनलाल त्रिपाठी । ३६७ वासुदेव शर्मा ३७९ वखतराम । ३८० थावरदास । ३८६ मधुकर । ३९८ कान्तिचन्द्र । ४०३ मदनलाल शर्मा । ४०४ थानाराम सियाग । ४०८ मोहनदास विरक्त । ४४३ मदनगोपाल शर्मा । ४५७ ओंप्रकाश । ४६६ नीलमकान्ता । ४८२ ओंप्रकाश शर्मा । ४९१ निर्मलकुमार । ५०६ नरहरि ढोमणे । ५१८ गोविन्दराव । ५२७ रामभक्त शर्मा । ५३८ धर्मसिंह । ५३९ श्यामलाल शर्मा । ५४० गिरधारीलाल । ५४९ प्रभाधर शर्मा । ६५४ मग्घरसिंह । ६८४ श्यामसुन्दर शर्मा । ७५६ कान्तिबाई मिश्र । ७९७ पि० वरद्रानायक । ८१८ घूरेलाल जैन । ९०३ श्रीनिवास दीक्षित । ९५२ रामकृष्ण शुक्ल ।

(ग) आयुर्वेद भिषक् परिशिष्ट परीक्षाधिकारिणः—१०७८ वी० सीतारमैय्या स्वस्थ ।

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठीय परीक्षाओं में सर्वप्रथम रहने वाले परीक्षार्थियों को

पारितोषिक

पनवेल के प्रसिद्ध पुराणिक परिवार द्वारा स्थापित भारत विख्यात श्रीधूतपापेश्वर आयुर्वेद ट्रस्ट का स्तुत्य दान

आयुर्वेद जगत को विदित ही है कि निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ की आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद विशारद एवं आयुर्वेद भिषक् परीक्षाओं में सर्वप्रथम रहने वाले परीक्षोत्तीर्णो को पनवेल के प्रसिद्ध पुराणिक परिवार द्वारा स्थापित भारत विख्यात श्री धूतपापेश्वर आयुर्वेद ट्रस्ट की ओर से प्रतिवर्ष क्रमशः २५) रु० २१) रु० और १५) रु० पारितोषिक रूप में दिये जाते हैं और सर्वप्रथम रहने का एक एक प्रमाणपत्र भी दिया जाता है । उक्त पारितोषिक सन् १९३३ से प्रतिवर्ष श्री धूतपापेश्वर आयुर्वेद ट्रस्ट की ओर से दिया जाता है ।

सन् १९५५ वर्षीय परीक्षाओं में उक्त पारितोषिकों एवं प्रमाणपत्रों के विजेता निम्नलिखित परीक्षार्थी हैं:—

परीक्षानाम	क्रमांक	परीक्षार्थी नाम	स्थायी निवास स्थान	परि०
आयुर्वेदाचार्य	९५	रामलखन मिश्र	गौहानी, फैजाबाद, (उ० प्र०)	२५)
आयुर्वेद विशारद	२३१	सोमनाथ मिश्र	हेतमपुर, शाहबाद, मुजफ्फरपुर (बिहार)	२१)
आयुर्वेद भिषक्	२७६	विश्वभारती	धामपुर, विजनौर (उ० प्र०)	१५)

विशेषः—यदि ये परीक्षार्थी चाहें तो अपना अपना फोटो आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं।

स्थानापन्न विद्यापीठ मन्त्री।

(*Continued from page 667*)

Ayurveda can incorporate all that is taught in Allopathy. But, Allopathy as it is taught today cannot integrate all the principles of Ayurveda. The part played by the drugs and medicines is the least important.

Dr. Lakshmipathi impressed upon the people the necessity of having a permanent fund to supplement the efforts of the Government to promote Ayurveda in the Andhra State. He appealed to the people to subscribe liberally to the Andhra Ayurvedic Fund established for the advancement of Ayurveda and starting of Ayurvedic Colleges and Schools. He said that funds collected will, as far as possible, be utilised in the area of collection.

The meeting was held at the residence of Dr. P. Seetharama Rao, and there was a large and distinguished gathering of Vaidyas and students of the town and Dr. D. Ramakrishnan, M.A. Ph. D. presided. It was resolved to form a local committee with a Chairman, Vice-chairman, Secretary and Joint Secretary, and 3 members with power to co-opt and Dr. P. Seetharama Rao was constituted Secretary, and Shri Veka Appalaswamy as Joint Secretery.

Sd. V.S. N. Sharma.

(पृष्ठ ६६० का शेषांश)

(फ) अपने पत्र ता० ११ अगस्त १९५५ द्वारा श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने मुझ से पूछा कि कार्यालय के उपर्युक्त दोनों कर्मचारी देहली में पहुंच गये हैं अथवा नहीं।

(ब) कार्यालय परिवर्तन के सम्बन्ध में ऋषिकेश से देहली आने जाने में जो मैंने यात्रा की उसका भत्ते का ८ रुपये का मेरा बिल श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने ता० १७ अगस्त १९५५ को स्वीकार किया।

(भ) १७ अगस्त १९५५ को ही श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने विद्यापीठ कार्यालय के लिये अपने लिखित आदेशों के आधीन एक चपरासी नियुक्त किया।

(म) ता० १८ अगस्त १९५५ को श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा के सख्त आदेश के आधीन विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के "अनधिकृत" अधिवेशन का एजण्डा जारी किया गया। उक्त एजण्डे का विषयाङ्क ६ ऋषिकेश से देहली कार्यालय में परिवर्तन के विषय पर था और यह विषय श्री पं० श्रीदत्त जी के विशेषतया लिखित आदेश के अनुसार ही एजण्डे में जोड़ा गया था। एजण्डे में यह विषय इस प्रकार था—"प्रधानमन्त्री वैद्य श्री वामनराव दीनानाथस्याज्ञया नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यालस्य इन्द्रप्रस्थे परिवर्तन सम्बन्धी सूचना।"

(य) आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के अगस्त मासीय अङ्क, जो २० अगस्त १९५५ को डाक में डाला गया था, के सर्वप्रथम पृष्ठ पर विद्यापीठ मन्त्री, श्रीदत्त शर्मा, के नाम से प्रकाशित एक विज्ञप्ति द्वारा वैद्य समाज एवं आयुर्वेद जगत की विशेष जानकारी के लिये सूचित किया गया कि ४० वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, त्रिवेन्द्रम, के प्रस्तावानुसार नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ का कार्यालय ऋषिकेश से देहली परिवर्तित हो गया है और विद्यापीठ कार्यालय देहली का भविष्य का पता भी प्रकाशित किया गया।

मैंने ऊपर कुछ पत्र-प्रमाणों का इस लिये उल्लेख किया है कि सत्य में रुचि रखने वाले महानुभाव यह जान सकें कि श्री पं० श्रीदत्त शर्मा का मेरे ऊपर यह आरोप कि मैंने विद्यापीठ कार्यालय उनके आदेश और जानकारी के बिना परिवर्तित कर दिया सर्वथा निर्मूल है।

क्योंकि वह आधार शिला, जिसके पर श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा द्वारा मेरे प्रति आरोप-पत्र निर्मित किया गया है, ही ढहाई जा चुकी है, अतएव उसके ऊपर जो कुछ खड़ा किया गया है वह स्वतः ही पृथ्वी पर गिर जाता है।

२—मैं इस संस्था का चिरकाल से "कार्यालय मन्त्री" हूँ, और मेरी व्यक्तिगत फाईल के निरीक्षण से किसी भी महानुभाव को इस विषय में निश्चय हो जायगा। इस कार्यालय में इसी स्थान में जो व्यक्ति मेरे से पूर्व कार्य करते थे उनका पद भी "कार्यालय मन्त्री" का था यद्यपि उनका वेतन मेरे से कम था। तीन वर्ष तक श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा भी मुझे ऐसा ही मानते रहे हैं। इस विषय में मैं उनका ध्यान विभिन्न समितियों के कार्य विवरणों की ओर भी आकर्षित कराना चाहता हूँ—जो सभी कार्य-विवरण आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित हैं। विशेषतया मैं उनका ध्यान स्थायी

समिति के ता० २८ जनवरी १९५१ के कार्य विवरण की ओर खींचना चाहता हूं। इसलिये इस विषय में श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा की सहसा जागृति के लिये मैं केवल आश्चर्य ही प्रकट कर सकता हूँ।

३—"बार बार अनुशासन भंग और आदेशों के उल्लंघन" का एक भी उदाहरण नहीं दिया गया, इस लिये मेरे स्पष्टीकरण के लिये कुछ है ही नहीं।

४—श्री पं० श्रीदत्त शर्मा द्वारा ता० २८ अगस्त १९५५ के लिये आयोजित विद्यापीठ कार्यकारिणी की सभा स्वयं माननीय श्री विद्यापीठाध्यक्ष जी द्वारा, पहिले श्री पं० श्रीदत्त जी को पत्र लिखकर, और पुनः सभा में उपस्थित होकर अपनी घोषणा से, अनियमित एवं अनधिकृत घोषित की गई थी। सभा को भंग करके सभापति महोदय ने सभा-भवन का त्याग किया। संस्था के प्रधान मन्त्री और विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के बहुत से सदस्यों ने भी सभापति जी का अनुगमन किया। उनके पीछे चलना मेरा पुनीत कर्त्तव्य था।

यह सत्य नहीं है कि मैं "सभी कागजात" लेकर सभा-स्थान से चला आया क्योंकि मेरे पास तो कोई कागज थे ही नहीं। फाईलज, रजिस्टर, रसीद बुकस और अन्य कागजात विद्यापीठ के रिकार्ड कीपर, श्री जयभगवान शर्मा, के पास थे, और उन्हीं से कुछ रजिस्टर, रसीद बुक और रिकार्ड श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा और उनके मित्रों ने छीना, जिसके प्रत्यक्ष साक्षीरूप बहुत से लोग हैं।

क्योंकि मैं सभा-स्थान से कर्त्तव्याधीन चला आया था, और विद्यापीठ कार्यकारिणी की सभा पहिले ही भंग हो चुकी थी, अतएव मेरे द्वारा विद्यापीठ कार्यकारिणी के अपमान का प्रश्न ही नहीं उठता।

५—क्योंकि कोई आरोप निर्दिष्ट ही नहीं, अतएव इस आरोप की ओर अभी मैं कोई ध्यान नहीं देता।

उपर्युक्त प्रकार आरोप पत्र पर अपना उत्तर मैं समाप्त करता हूँ और इस आरोप-पत्र की यथार्थता और इसके स्वरूप का निर्णय श्रीमान् जी पर छोड़ता हूँ। आरोप-पत्र में जो कुछ स्पष्टतया निर्दिष्ट था उसका पूरा उत्तर दे दिया गया है जो आरोप अनिश्चित एवं अस्पष्ट हैं उनके विषय में मेरी श्रीमान् जी से विनम्र प्रार्थना है कि श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा तथा इस विवाद में उनके मित्रों को कहा जाय कि वे आरोपों को स्पष्ट शब्दों में लिख कर दें। इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की जांच के लिये मैं सदैव पूरी तरह तैयार हूँ।

धन्यवाद पूर्वक—

मैं हूँ आपका सच्चा सेवक

तिलकराम शर्मा,

कार्यालय मन्त्री,

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ।

वैद्यनाथ प्रकाशन

आयुर्वेदीय-साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ, जो अभी प्रकाशित हुआ है

आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान

(पूर्वार्ध)

आयुर्वेद-मार्तण्ड वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी, आचार्य-बम्बई

किसी भी रोग की चिकित्सा के पूर्व रोगों के निदान का ज्ञान होना परमावश्यक है। रोग के सम्यक् निदान के बिना रोगी की चिकित्सा सफल नहीं हो सकती।

इसीलिए व्याधि-विज्ञान (निदान-रोग विनिश्चय) आयुर्वेद के प्रधान विषयों में सम्मिलित एक उपयोगी विषय है। इस ग्रन्थ में व्याधि विज्ञान के साधनों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। व्याधियाँ कितने प्रकार की होती हैं; निज, स्वाभाविक और आगन्तुक व्याधियों में क्या भेद है, स्वतन्त्र और परतन्त्र व्याधियों के स्वरूप क्या हैं; प्रभाव, बल, अधिष्ठान, निमित्त और समुत्थान भेद से १० प्रकार के रोगानीक कैसे हो जाते हैं; रोगों का आश्रय क्या है, आदि अनेक ज्ञातव्य बातें इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्याय में वर्णित हैं। यह पूर्वार्ध खण्ड पांच अध्यायों में विभाजित है, जिन्हें अध्ययन कर लेने के बाद निदान सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य सिद्धांत करामलकवत् प्रतिभात हो जाते हैं। आयुर्वेदीय प्रेमी विद्वान् और विद्यार्थी, दोनों के लिए यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी है।

इस ग्रन्थ के लेखक के सम्बन्ध में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

डिमाई साइज के ११२ पृष्ठ की सुन्दर छपी हुई सजिल्द पुस्तक का मूल्य मात्र २॥)

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,

कलकत्ता : पटना : झांसी : नागपुर।

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन ... द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—नया हिन्दुस्तान प्रेस दिल्ली।




Compiled
1999-2000